श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

ज्ञानार्णव प्रवचन

१८, १९, २०, २१ भाग

प्रवक्ता:
अध्यात्मयोगी सिद्धान्तन्यायसाहित्य शास्त्री, न्यायतीर्थ
पूज्य श्री गुरुवर्य्य मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द महाराज"

प्रकाशक:
खेमचन्द जैन सर्राफ,
मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उत्तर प्रदेश)

स्वाध्यायार्थी बन्धु, मन्दिर एवं लाइब्रेरियोको
भारतवर्षीय वर्णी जैनसाहित्य मन्दिरकी ओरसे अर्धमूल्यमे।

प्रथम संस्करण १०००] सन् १९७३ [मूल्य १५)

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके संरक्षक

(१) श्रीमान् ला० महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, संरक्षक, अध्यक्ष एवं प्रधान ट्रस्टी, सदर मेरठ
(२) श्रीमती सौ० फूलमाला देवी, धर्मपत्नी श्री ला० महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ
(३) श्रीमान् लाला लालचन्द विजयकुमार जी जैन सर्राफ, सहारनपुर

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके प्रवर्तक महानुभावों की नामावली—

क्र०		नाम	स्थान
१	श्रीमान्	सेठ भवरीलाल जैन पाण्ड्या,	झूमरीतिलैया
२	,,	वर्णीसघ ज्ञानप्रभावना समिति, कार्यालय,	कानपुर
३	,,	कृष्णचन्द जी जैन रईस,	देहरादून
४	,,	सेठ जगन्नाथ जी जैन पाण्ड्या,	झूमरीतिलैया
५	श्रीमती	सोवती देवी जी जैन,	गिरिडीह
६	,,	मित्रसैन नाहरसिंह जी जैन,	मुजफ्फरनगर
७	,,	प्रेमचन्द ओमप्रकाश, प्रेमपुरी,	मेरठ
८	,,	सलेखचन्द लालचन्द जी जैन,	मुजफ्फरनगर
९	,,	दीपचन्द जी जैन रईस,	देहरादून
१०	,,	वारूमल प्रेमचन्द जी जैन,	मसूरी
११	,,	बाबूराम मुरारीलाल जी जैन,	ज्वालापुर
१२	,,	केवलराम उग्रसैन जी जैन,	जगाधरी
१३	,,	सेठ गैंदामल दगडूशाह जी जैन,	सनावद
१४	,,	मुकुन्दलाल गुलशनराय जी, नई मडी,	मुजफ्फरनगर
१५	,,	श्रीमती धर्मपत्नी बा० कैलाशचन्द जी जैन,	देहरादून
१६	,,	जयकुमार वीरसैन जी जैन,	सदर मेरठ
१७	,,	मत्री, जैन समाज,	खण्डवा
१८	,,	बाबूराम अकलकप्रसाद जी जैन,	तिस्सा
१९	,,	विशालचन्द जी जैन रईस,	सहारनपुर
२०	,,	बा० हरीचन्दजी ज्योतिप्रसाद जी जैन, ओवरसियर,	इटावा
२१	,,	सौ० प्रेमदेवी शाह सुपुत्री बा० फतेलाल जी जनसघी,	जयपुर
२२	,	मत्राणी, दिगम्बर जैन महिला समाज,	गया
२३	,,	सेठ सागरमल जी पाण्ड्या,	गिरिडीह
२४	,,	बा० गिरनारीलाल चिरंजीलाल जी जैन,	,,
२५	,,	बा० राधेलाल कालूराम जी मोदी,	

२६	श्रीमान् सेठ फूलचन्द बैंजनाथ जी जैन, नई मण्डी,	मुजफ्फरनगर
२७	,, सुखबीरसिंह हेमचन्द जी सर्राफ,	बडौत
२८	,, गोकुलचद हरकचद जी गोधा,	लालगोला
२९	,, दीपचद जी जैन रिटायर्ड सुप्रिन्टेन्डेन्ट इजीनियर,	कानपुर
३०	,, मत्री, दि० जैनसमाज, नाई की मडी,	आगरा
३१	,, सचालिका, दि० जैन महिलामडल, नमक की मंडी,	आगरा
३२	,, नेमिचन्द जी जैन, रुडकी प्रेस,	रुडकी
३३	,, झब्बनलाल शिवप्रसाद जी जैन, चिलकाना वाले,	सहारनपुर
३४	,, रोशनलाल के० सी० जैन,	सहारनपुर
३५	,, मोल्हडमल श्रीपाल जी, जैन, जैन वेस्ट	सहारनपुर
३६	,, बनवारीलाल निरजनलाल जी जैन,	शिमला
३७	,, सेठ शीतलप्रसाद जी जैन,	सदर मेरठ
३८	,, दिगम्बर जैनसमाज	गोटेगाँव
३९	,, माता जी धनवती देवी जैन, राजागज,	इटावा
४०	,, ब्र० मुख्त्यारसिंह जी जैन, "नित्यानन्द"	रुडकी
४१	,, लाला महेन्द्रकुमार जी जैन,	चिलकाना
४२	,, लाला आदीश्वरप्रसाद राकेशकुमार जैन,	चिलकाना
४३	,, हुकमचद मोतीचद जैन,	सुलतानपुर
४४	,, ला० मुन्नालाल यादवराय जी जैन,	सदर मेरठ
४५	,, इन्द्रजीत जी जैन, वकील, स्वरूपनगर,	कानपुर
४६	श्रीमती कैलाशवती जैन, ध० प० चौ० जयप्रसाद जी	सुलतानपुर
४७	,, * गजानन्द गुलाबचन्द जी जैन, बजाज	गया
४८	,, * बा० जीतमल इन्द्रकुमार जी जैन छावडा,	झूमरीतिलैया
४९	,, * सेठ मोहनलाल ताराचन्द जी जैन वडजात्या,	जयपुर
५०	,, * बा० दयाराम जी जैन आर एस डी. ओ.	सदर मेरठ
५१	,, × जिनेश्वरप्रसाद अभिनन्दनकुमार जी जैन,	सहारनपुर
५२	,, × जिनेश्वरलाल श्रीपाल जी जैन,	शिमला

नोट—जिन नामोंके पहले * ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावोंकी स्वीकृत सदस्यताके कुछ रुपये आ गये हैं, शेष आने है तथा जिन नामोके पहले × ऐसा चिन्ह लगा है उनकी स्वीकृत सदस्यताका रुपया अभी तक कुछ नही आया, सभी बाकी है ।

आत्म-कीर्तन

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री शान्तमूर्ति पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज द्वारा रचित

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ।।टेक।।

अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यह रागवितान ।
मै वह हू जो हैं भगवान, जो मै हू वह है भगवान ।।१।।

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।।२।।

सुख दु:ख दाता कोइ न आन, मोह राग दुःख की खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुःखका नहिं लेश निदान ।।३।।

जिन शिव ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुंचू निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ।।४।।

होता स्वयं जगत परिणाम, मै जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहू अभिराम ।।५।।

••••○••••

[धर्मप्रेमी बधुओ ! इस आत्मकीर्तनका निम्नाकित अवसरो पर निम्नाकित पद्धतियों मे भारतमे अनेक स्थानोपर पाठ किया जाता है । आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिए]

१—शास्त्रसभाके अनन्तर या दो शास्त्रोके बीचमे श्रोतावो द्वारा सामूहिक रूपमे ।
२—जाप, सामायिक, प्रतिक्रमणके अवसरमे ।
३—पाठशाला, शिक्षासदन, विद्यालय लगनेके समयमे छात्रो द्वारा ।
४—सूर्योदयसे एक घटा पूर्व परिवारमे एकत्रित बालक, बालिका, महिला तथा पुरुषो द्वारा ।
५—किसी भी आपत्तिके समय या अन्य समय शान्तिके अर्थ स्वरुचिके अनुसार किसी अर्थ, चौपाई या पूर्ण छदका पाठ शान्तिप्रेमी बन्धुओ द्वारा ।

ज्ञानार्णव प्रवचन अष्टादश भाग

अनन्तानन्तमाकाश सर्वत स्वप्रतिष्ठितम् ।
तन्मध्येऽस्य स्थितो लोक श्रीमत्सर्वज्ञवर्णित ।।१६७०।।

अनन्तानन्ताकाशके मध्यमे लोककी प्रतिष्ठा—अपने आपके स्वरूप दर्शनके लिए यह आवश्यक है कि पहले अपने आत्माके स्वरूपका परिचय तो पायें और आत्मस्वरूपके परिचयके लिए यह आवश्यक है कि आत्मा और अनात्मा दोनो तत्त्वोका निर्णय हो, क्योंकि अनात्म तत्त्व के परिहार बिना आत्मतत्त्वका परिचय नही बनता और आत्मतत्त्व अनात्मतत्त्वका परिचय बने, जानकारी बने—इसके लिए आवश्यक है कि हम स्वयका और स्वयसे भिन्न अन्य सबका सक्षेप मे यथायोग्य विस्तारमे ज्ञान प्राप्त करे । स्व परका ज्ञान प्राप्त होना इसके अर्थ इस प्रकरण मे लोकका वर्णन चल रहा है । सस्थानविचय धर्मध्यानमे ज्ञानी सम्यग्दृष्टि क्या-क्या चिन्तन करता है ?वह सब वर्णन इस प्रसगमे आवेगा । धर्मध्यानोमे यह चतुर्थ धर्मध्यान है और आज्ञा-विचय, अपायविचय, विपाकविचय नामक धर्मध्यानकी अपेक्षा इस सस्थानविचय धर्मध्यान के करनेके लिए ज्ञानबल, वैराग्यबलकी विशेष आवश्यकता होती है और इसीलिए परम्परामे यह बताया है कि सस्थानविचय धर्मध्यानकी पूर्ति छठवे ७वे गुणस्थानमे होती है । जिस ज्ञानी पुरुषको लोक और कालकी रचना स्पष्ट उपयोगमे आती हो उसके वैराग्य वृध्यगत हुआ करता है । जहाँ तीन लोकका विस्तार उपयोगमे हो, कितना बडा लोक है, कितनी जगह है, कहाँ कहाँ यह जीव बारबार जन्म मरण कर चुका है, सर्वत्र लोकाकाशके सब प्रदेशोपर काल कितना बडा है, अनादिकाल अनन्तकाल जिसकी कोई सीमा नही है उतने वृहत् कालमे यह जीव जन्म मरण करता चला आया है और आगे अनन्त काल व्यतीत होगा वह किस रूप मे व्यतीत होगा ? शुद्ध स्वरूप परिणति बने तो शुद्ध परिणमनमे अनन्तकाल व्यतीत होगा । जिनके अज्ञानभाव रहेगा उनका अनन्तकाल यो ही जन्म मरणमे व्यतीत होगा । यो लोक और कालकी नाना प्रकारकी रचनाएँ उपयोगमे स्पष्ट हो तो उन्हे वैराग्य बढना है । इसी कारण सस्थानविचय धर्मध्यानीका धर्मोपदेशमे बहुत बडा महत्त्व बताया गया है । मुझसे बाहर यह सब मायाजाल यह सब पदार्थसमूह है, यह बतानेके लिए प्रथम आधारभूत द्रव्यका वर्णन किया जा रहा है ।

सर्व पदार्थोकी स्वस्वप्रतिष्ठितता—सर्व पदार्थोका आधार आकाश है, यह व्यवहारमे बात बतायी जा रही है । परमार्थसे तो प्रत्येक वस्तुका आधार वही वस्तु है, उस ही पदार्थका

निजी क्षेत्र है। जैसे कोई कहे कि यह जीव आकाशमे रह रहा है तो यह बात कहाँ तक परमार्थकी मानी जाय? यद्यपि अनादिकालसे अनन्त काल तक यही बात रहेगी। आकाशको छोडकर अन्य कहाँ जीव जाय? लोकाकाशमे रहेगा, आकाश है, इससे बाहर जाता नही, कदाचित् जाता भी मान ले तो भी आकाश है, आकाशको छोडकर जीव कहाँ जायगा? यद्यपि यह बात मानने योग्य है, लेकिन द्रव्यके एकत्वपर दृष्टि दी जाय तो आकाश अपने एकत्वस्वरूपमे है, जीव अपने एकत्वस्वरूपमे है। भले ही यह सगति बैठ गई कि आकाशमे जीव है और यो कह लो कि जीवमे धर्मद्रव्य है, धर्मद्रव्यमे जीवद्रव्य है। जब एक ही प्रदेश है, समस्त द्रव्योकी स्थिति है तो जो कुछ भी कह डाले, पर परमार्थमे तो जीव जीवमे है, धर्मद्रव्य धर्मद्रव्यमे है, प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने स्वक्षेत्रमे है। सबका आधार स्वय है, लेकिन जहाँ वस्तु रचना बताई जाती है वहाँ सब तरहमे वर्णन चलेगा। तो यह सब बृहत् आकाश जो कि अनन्तानन्त है, चारो ओरसे अपने आपके आधारपर है, उसके मध्यमे यह लोक स्थित है, आकाश कितना है? अनन्तानन्त। देखिये आकाशके अनन्तानन्तका दृष्टान्त ऐसा माप है कि हम बहुतसी समस्याओका हल इस आकाशके अनन्तानन्त तद्‌आधार पर कर सकते है। चलो जितने आकाशमे बुद्धिसे ज्ञानसे यो पूरेको तो नही जाना जा सकेगा कितने समयो तक जायगी, चली जाय बुद्धि। बुद्धि और मनसे तो आप एक सेकेण्डमे बम्बई भी जा सकते है। तो लगाये मन आकाशमे, एक ओर उन्हे देख जाये जहाँ तक आकाश हो। आकाश नही है तो भी होना चाहिए। आकाश तो एक पोलका नाम है तो कोई ठोस होना चाहिए। वह ठोस आकाशके आधारपर होगा और उस ठोसकी भी हद होगी। उसके बाद क्या मिलेगा? क्या कोई प्रदेश ऐसा मिलेगा कि जिसके बाद अब आकाश नही है ऐसा कहा जा सके? तो आकाशके प्रदेश कितने हुए? अनत हुए। ध्यानमे लाइये। इससे भी अनतगुणी जीवराशि है।

आकाशके अक्षय अनन्त प्रदेशोसे अनन्तगुणे जीवोकी गणना व एक जीवके ज्ञानकी सर्वाधिक व्यापकता—यद्यपि अक्षय आकाश भी है, पर करणानुयोगकी पद्धतिमे गुरुपरम्परामे जो उपदेश मिला है समझो आकाशपद्धतिसे अनन्तगुणे जीव प्राप्त है जिनके बारेमे कभी कोई शका कर सकता है कि मोक्षमे जीव लगातार जा रहे है। यहाँसे निकलते जा रहे हैं तो कोई समय ऐसा आयगा कि जब ये कोई जीव न रहेगे। पहिला प्रमाण तो यह है कि अबसे पहिले अनन्तकाल व्यतीत हो गया, अब तक तो जीवसे शून्य हुआ नही ससार, और जितने जीव मुक्त गए है उनसे अनन्तगुणे ससारी जीव हैं ऐसा आगमका उपदेश है, और अनन्तकालके बाद तो यही बात कही जायगी कि अब तक जितने मुक्त हुए है उनसे अनन्तगुणे ससारमे जीव है। यहाँ प्रकरण चल रहा है आकाशका। कितना बडा आकाश है, और उस आकाशमे लोक है, ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक, अधोलोक। कितना बडा है जिसका वर्णन अभी आगेके श्लोकोमे आयगा।

उस वर्णनको सुनकर चित्तमे एक बार तो ऐसा आ ही जाता है कि इतने बड़े लोकमे यह हमारे नगरकी दुनिया यह हमारा वैभव प्रदर्शनका क्षेत्र कितना है ? न कुछ बराबर। जब हम इस क्षेत्रको छूते हुए अन्य क्षेत्रमे अपना प्रभाव नही जमा सकते, अपना परिपाटा नही रख सकते तो जरासे क्षेत्रमे ममता करके अपने इस ज्ञानानन्दस्वरूप अतरतत्त्वपर क्यो आक्रमण किया जा रहा है ? क्यो अपने आपका घात किया जा रहा है ? एक बार ऐसा तो ताप उत्पन्न होगा ही। उस समस्त लोकका आधारभूत यह आकाश है। आकाशके बीचमे यह लोक स्थित है। इस प्रसगमे एक बात और भी जानिये कि बताइये मोटीमे पतली चीज समा जाती है या पतली चीजमे मोटी चीज समा जाती है ? बहुतसे लोग तो बता देगे कि मोटीमे पतली चीज समा जाती है लेकिन यह बात नही है, बारीक चीजमे मोटी चीज समाया करती है। ये मोटी चीज है–मकान, पत्थर, ढेला, नगर, पृथ्वी तो ये सब समाये हुए है पानीमें। आजकलके वैज्ञानिक भी कहते है कि पृथ्वीके चारो ओर पानी है और जैन सिद्धान्त कहता है कि द्वीपके चारो ओर पानीसे पतली है हवा, सो हवामे पानी है। हवाका क्षेत्र पानीसे ज्यादा है, पानीका क्षेत्र द्वीपोसे ज्यादा है, और हवासे पतला है आकाश। सो आकाशका क्षेत्र हवासे ज्यादा है, और आकाशसे भी पतला क्या है ? ज्ञान। सो ज्ञानक्षेत्र आकाशसे भी ज्यादा है। भगवानके केवलज्ञानमे आकाश जैसे और भी कितने ही द्रव्य हो तो वे सब समा जाते हैं। तो यो एक यह अमूर्त आकाशतत्त्व अनन्तानन्त प्रदेशोमे है, उसके बीचमे यह एक लोक स्थित है, वह लोक कैसा है ?

स्थित्युत्पत्तिव्ययोपेतै पदार्थैश्चेतनेतरै।
सम्पूर्णोऽनादिससिद्ध· कर्तृव्यापारवर्जित ॥१६७१॥

सर्व पदार्थोंकी उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकता—उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे युक्त चेतन और अचेतन पदार्थोंसे यह लोक व्याप्त है। लोक कहते किसे है ? अवलोकते सर्वाणि द्रव्य यत्र स लोक.। जहाँ समस्त द्रव्य दिख जाये, पाये जाये उसे लोक कहते है। समस्त द्रव्योका ही नाम लोक है। ये समस्त द्रव्य उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे युक्त है। प्रत्येक पदार्थ चूँकि वे है अतएव नियमसे बनते है और बिगडते है। उत्पाद उसमे होता है और पूर्व पर्यायका व्यय होता है। कोई भी पदार्थ कल्पना करो कि बनता नही, बिगडता नही और फिर भी हो तो बुद्धि तो गवा ही न देगी, श्रद्धाके आधारपर भले ही कोई कह दे एक अपरिणामी ब्रह्म। और जरा भी उसकी अवस्था न हो, परिणमन न हो वह बुद्धिमे तो आयगा नही। श्रद्धामे तो जो चाहे चीज जानी जा सकती है पर श्रद्धा सत्य वह है जो यथार्थ वस्तुस्वरूपकी हो। प्रत्येक पदार्थ उत्पादव्यय ध्रौव्य करके युक्त है, त्रयात्मक हैं, त्रिदेवतात्मक है, जिनकी अनेक लोगोने ब्रह्मा विष्णु महेशके नामसे कल्पना की है और बताया हे कि ये देवता हुए है, ब्रह्माने उत्पत्ति की है, विष्णुने

रक्षा की है और महेशने प्रलय किया है। व ब दृष्टि की, कब तक रक्षा की, कब प्रलय करेंगे, इसका अन्तर लम्बा लम्बा है लेकिन वस्तुस्वरूप यह बतला रहा है कि इसका अगला काल लम्बा नही है। एक ही समयमे ब्रह्मत्व विष्णुत्व महेशत्व प्रत्येक पदार्थमे पाया जा रहा है अर्थात् उत्पाद व्यय ध्रौव्य श्रेष्ठ होना, उसकी रक्षा रहना अर्थात् सत्त्व बना रहना, ध्रुव रहना और व्यय होना, प्रलय होना प्रत्येक पदार्थमे निरन्तर पाया जा रहा है। त्रिगुणात्मक है समस्त द्रव्यसमूह। और पदार्थकी ही बात है। आजका हमारा राष्ट्रध्वज भी लहराकर कह रहा है कि प्रत्येक पदार्थ त्रिगुणात्मक है। राष्ट्रके ध्वजमे तीन रग है, बीचमे सफेद और ऊपर नीचे लाल, हरा। साहित्यमे हरा रग उत्पादमे आता है और लाल रग व्ययमे आता है। सफेद रग धीरता स्थिरतामे आता है, और देखो कि ध्रुवके साथ ही मे सफेद रगके आस-पास ही उत्पाद व्ययके रग चढे हुए है। उत्पाद होते हुए ध्रुव निरन्तर बना रहता है जो उत्पाद व्यय दोनोको सम्हाले हुए है। हम सत् है, निरन्तर उत्पाद व्यय ध्रौव्य करते है।

सबका अपने अपने निज क्षेत्रमे अपने गुणोका योग्यतानुसार परिणमन—हम अपने ही प्रदेशोमे रहकर अपना उत्पाद किया करते है। और नवीन अवस्थाका उत्पाद हुआ, उसीके मायने यह है कि पूर्व पर्यायका व्यय होगा। मैं ही क्या, जगतके समस्त चेतन अचेतन पदार्थ अपने आपके अस्तिकायमे अपने ही गुणोमे अपना परिणमन किया करते है और इसी कारण प्रत्येक पदार्थ आज तक है। यदि कभी ऐसी गडबड हो गयी होती कि एक पदार्थ किसी दूसरे पदार्थमे अपना परिणमन धर दे तो जगत शून्य हो जाता। यह सारा जगत अब तक टिका है, सामने दिख रहा है। यह ही इस बातका प्रमाण है कि वस्तुका स्वरूप चतुष्टय अपना-अपना है। हाँ, इतनी बातको मना नही किया जा सकता कि इन परिणमनोमे जो विभाव-परिणमन है, अपने स्वभावके विरुद्ध परिणमन है, विकार परिणमन है, वे सब परिणमन किसी पर-उपाधिके ससर्गमे हो रहे है। ये पर-उपाधिके बिना केवल अपने आपके स्वभावसे ही विभावपरिणमन नही हो रहे, सो ऐसे विभावरूप परिणमनमे इस प्रमेयमान उपादानकी ऐसी कला है कि वह किसी अनुकूल निमित्तका सन्निधान पाकर विभावरूप परिणम जाय। यो पदार्थोंको निरखना उनके एकत्वस्वरूपमे।

कर्तृत्वविवर्जित विशुद्ध अन्तस्तत्त्वकी दृष्टिमे आकुलताओकी समाप्ति—देखिये बात सब ओरकी सही है, निमित्तनैमित्तिक भावकी बात सही है, उपादानके एकत्वकी बात सही है, निर्णय के लिए सब निर्णय कर लीजिए, पर हम उस चर्चा को क्यो लम्बा करे जिस चर्चामे हमे बुद्धि अनेक पदार्थोपर उनके सम्बधपर दे देकर उपयोग को भ्रमाना पडा। वह सब सत्य है, यह भी सत्य है, लेकिन हम अपना हित किस दर्शनमे पाते है, हम अपनेको अनाकुल किस दर्शनमे अनुभवते है ? उसका भी तो निर्णय रखि-

येगा । प्रत्येक पदार्थ अपने उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे रहते हुए अनादिसे चले आये है । अनन्त काल तक चले जायेंगे । यों यह लोक चेतन अचेतन समस्त पदार्थोंसे परिपूर्ण है, इस दृष्टिमे स्व स्वामित्वका सम्बध परके साथ नही रहता । इस दृष्टिमे परके कर्तृत्वका अभिमान नही ठहरता । इस दृष्टिमे उपयोगको बहुत बहुत भटकना नही पडता । पदार्थके एकत्वस्वरूपका दर्शन जो स्वरूपपदार्थमे नित्य अन्त. व्यक्त है, प्रकाशमान है, पर मोही जीव चूकि कषायोमे उपयोगको मिला रखा है तो उन कषायोकी प्रेरणामे अपनी बुद्धिको गवाकर पदार्थके एकत्व-स्वरूपका दर्शन नही कर पाता । यों यह लोक कहो या पदार्थ कहो अनादिकालसे इसी प्रकार प्रसिद्ध चला आया है, और यह लोक कर्तृत्वके व्यापारमे रहित है । जैसे अनेक लोग यह धारणा बना लेते है कि इस लोकको किसीने बनाया तो है और ऐसा गाकर उस ईश्वरके उसमे महत्ता स्थापित करते है । अरे ईश्वरकी महत्ता उस विशुद्ध ईश्वरकी महत्ता बताकर बढेगी । कर्तृत्व तो एक रोग है जिस रोगमे रहकर हम बेचैन रहा करते है । कोई एक रुई धुनने वाला विदेश गया हुआ था, वहाँसे जब अपने घरको लौटा तो पानीके जहाजमे बैठकर आया । उस जहाजमे हजारो मन रुई लदी हुई थी । धुनिया उस रुईको देखकर एकदम अशात हो गया, हाय रे हाय कितनी रुई लदी है, यह सब रुई हमीको तो धुननी पडेगी । बस चिंता हो गई, सिर तक असर गया, हरारत हो गई, बुखार भी हो गया, लोग आये, दवा की । कुछ आराम न हुआ । एक चतुर व्यक्ति आया, बोला आप लोग जाइये, हम इसकी ओषधि करेगे । बैठ गया, आपसमे बोलचाल होने लगी । चिकित्सक बोला कि तुमको यह हरारत कब हुई, कहाँसे आ रहे ? बोला हम विदेशसे आ रहे, पानीके जहाजमे बैठकर आये । अच्छा तुम्हारे साथ कितने लोग थे ? धुनिया बोला कि आदमी तो एक भी न था, पर उसमे हजारो मन रुई लदी थी, उसकी इस रागमय बातको सुनकर वह पहिचान गया कि इसे क्या रोग है । बोला—अरे तुम उस जहाजसे आया, वह जहाज तो आगेके बन्दरगाहमे ज्यो ही लगा कि न जाने क्या हुआ कि सारा जहाज आगसे जल गया । अरे जल गया ? लो चगा हो गया । अब वह चिन्ता न रही कि हाय हमको ही यह सारी रुई धुननी पडेगी ।

सुखानुभवका आधार इच्छाका अभाव—एक और राज देखिये कि हम आप सबको जितने सुख होते है वे सब सुख इच्छाके अभावसे होते है । मानते यह है कि इच्छाकी पूर्तिमे सुख हुआ । अच्छा यह बतलावो कि पूर्ति नाम किसका ? क्या जैसे बोरामे गेहू भरते है और भर भरकर बोरेकी पूर्ति कर देते है । ऐसे ही हम आत्मामे इच्छा भरते है और भर भरकर हम इच्छाकी पूर्ति करते है ? इच्छाके न रहनेका ही नाम इच्छाकी पूर्ति है । अरे सर्व सुखोमे आप यह बात पायेंगे कि इच्छा नही रही उसका सुख है । भोजन कर चुकनेके बाद जो सुख अनुभवा जाता है अब इस तरहकी इच्छा नही रही उसका सुख है । कोई कहे—वाह भोजन

किए बिना इच्छा न रहे, सुख लूट लेवे। तो लूटने वाले वहाँ भी सुख लूट लेते हे। भोजन भी कर चुके, अब निरखियेगा, भीतर पेट भरा इससे सुख नही आ रहा, ज्ञान देखिये किस तरहका ज्ञान आ रहा है जिसपर सुखकी प्राप्ति चल रही है। वहाँ भोजन सम्बधी इच्छा नही हे उसका सुख है। जो साधु योगीश्वर भोजन किए बिना दो-दो चार-चार दिनका उपवास करने पर भी भोजनकी इच्छा नही रखते उनके बराबर आनन्द चल रहा है। एक बात। दूसरी बात यह देखिये कि जिसको जब भी सुख मिल रहा है वह इस भावका मिल रहा है कि मेरे करनेको अब काम नही रहा। खूब विचार करके देखिये—किसीको मकान बनवाना ह, दुःखी है, जब तक मकान पूरा नही बनता बडा श्रम करता है, मकान बन चुकनेके बाद जो उसे सुख होना है वह मकान बननेका सुख नही होना, किन्तु उस स्थितिमे उसके यह भाव बनता है कि अब मेरे करनेको काम नही रहा, उसका सुख हुआ है। हर काममे काम कर चुकनेके बाद जो सुख होता है वह काम करनेका सुख नही होता, किन्तु अब मेरे करनेको काम नही रहा इस भावका सुख होना है। खूब सूक्ष्म दृष्टि रखकर परख लीजिए, और ज्ञानी जीव बिना कुछ काम किए ही सुखी बने रहते है क्योकि उनके सभी पदार्थोका यह निर्णय पडा हुआ है कि मेरे करनेको परपदार्थमे कुछ काम ही नही। अपने स्वरूपसे बाहर मेरी कही परिणति ही नही। अपने स्वरूपसे बाहर मेरी कही परिणति ही नही। मे जानता हू तो अपनेमे ही जो कुछ कर रहा हू बस यही जान रहा हू, जो कुछ भी अनुभवता हू मै अपने ही क्षेत्रमे सब अनुभवता हू। मेरे करनेके लिए कुछ पडा ही नही, बाहर किया ही नही जा सकता, अब इसको किया ही न जा सकेगा, अर्थात् मेरे करनेको कही कुछ काम है ही नही, इस भावका सुख है। जो बात जिस पद्धतिसे होती है वह तो उसी पद्धतिसे होती है पर मोही जीव अपनी कल्पनामे अन्य बात मान लेता है। जिस जन्मके बाद मरणकी बात, शरीर रचनाकी बात जिस विधिसे होती है उसी विधिसे चलती रहे, पर कल्पनामे अपनी भेष मुद्रा चाहे जिस ढगकी कर लें पर जन्म मरण तो सबके जैसे होते वैसे ही होते, उनमे कोई भिन्नता नही कर पाते। तो ऐसे ही इन समस्त पदार्थोकी रचनामे विधि मे उत्पत्तिमे सब कुछ बातमे जो है सो ही चल रहा है, पर अज्ञानी जीव मानकर कल्पनाएँ करके कुछ विरुद्ध बात मान लेते है और इसी कारण अज्ञान मे भटकना बराबर बनी रहती है।

पदार्थोका स्वरूपस्वातन्त्र्य—लोक क्या है ? यह विश्व है। विश्वका अर्थ दुनिया नही। विश्व मायने है समूह। यह लोक क्या है ? समूह है अर्थात् सर्वपदार्थोका समूह है। ये पदार्थ अपने एकत्वस्वरूपको नही छोड़ते। तभी सारी व्यवस्था बनी है। एक पिण्ड भी बने, जीव और अजीवका पिण्ड बन गया जिसे हम असमानजातीय पर्याय कहते हे। वैसे भी सब तत्त्व सब द्रव्य अपने आपके द्रव्य क्षेत्र काल भावमे है, यह अजीव अजीवका पिण्ड बन गया,

मगर समानजातीय द्रव्य पर्याय कहते हैं वहाँपर भी प्रत्येक अणु अपने-अपने स्वरूपको लिए हुए है। यह वस्तुस्वरूप है, इसे कौन मेटे ? ६ साधारण गुण ही सर्वप्रथम इस व्यवस्थाको बना लेते हैं। वस्तु है, अस्तित्व हुआ, पर सब रूप नही, ऐसा ख्याल करनेके लिए है वस्तुत्व अर्थात् अपने स्वरूपसे है पररूपमे नही। पर है है मे काम नही चला, वह परिणामी भी है, इसके लिए द्रव्यत्व गुण संकेत कर रहा है कि प्रतिसमय पर्यायरूपमे द्रवता रहता है, अर्थात् क्या स्वच्छन्द होकर पदार्थ जिस चाहेके पर्यायरूपमे द्रवता है ? नही। उसपर कंट्रोल करनेके लिए अगुरुलघुत्व गुण है। प्रत्येक पदार्थ अपने आपमे ही परिणमता है, अर्थात् पदार्थ न गुरु बनता, न लघु बनता। गुरु तो तब बनता जब दूसरे पदार्थका परिणमन उसमे आया तो वजनदार बन गया। जब वजनदार बने तब उस पदार्थका परिणमन खिचकर अन्यमे पहुचा तो यह रीता हो गया, लघु हो गया, ऐसा गुरु लघु नही होता। ये सब पदार्थ अपने अपने प्रदेशोको लिए हुए है। लोकमे वजनदार जच रहे और ये पदार्थ किसी न किसीके ज्ञानमे प्रमेय हैं यह प्रमेयत्व गुण है, लेकिन साधारण गुणोमे वही व्यवस्था विदित हो गयी जो पदार्थके नित्य पदार्थमे होना चाहिए। यो चेतन अचेतन पदार्थ अपना अपना स्वरूप लिए हुए हैं, अनादि कालसे अवस्थित है, अनन्त काल तक रहेगे। उन सब पदार्थोंके समूहका नाम यह लोक है। यह लोकका चिन्तन चल रहा है। इस विस्तारके चिन्तनसे आत्माके रागद्वेष भी पतले हो जाते है, दूर हो जाते हैं, उपयोग बदल जाता है। संस्थानविचय धर्मध्यानकी बात चल रही है। इस धर्मध्यानके पात्र उत्कृष्ट रूपसे साधु जन ही होते हैं। इसमे स्वका और पर का स्वरूप विदित होगा। उससे भेद ज्ञान होता है। भेदज्ञान करके अनात्मतत्त्वको छोड़कर अपने आत्मतत्त्वका ग्रहण करनेका विवेक करना होता है। उसको देखकर उसमे रमकर उसमे ही तृप्त होकर हमे अपने ये दुर्लभ क्षण सफल बनाना चाहिए।

ऊर्ध्वाधोमध्यभागैर्यो बिभर्ति भुवनत्रयम्।
अतः स एव सूत्रज्ञैस्त्रैलोक्याधार इष्यते ॥१६७२॥

लोकके ऊर्ध्व, मध्य व अधोभागका निर्देश—यह जो लोक है वह तीन भागोमें बटा हुआ है— ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक। इस वजहसे इस समस्त लोकको तीन लोक का आधार भी कह सकते हैं। प्रथम तो आधारकी कोई बात ही नही, चाहे लोक कहो, चाहे तीन लोक कहो—ये सब पुरुषाकार रूपमे है। जैसे ७ बालक बराबरके ऊँचे एकके पीछे एक खड़ा कर दे, ७ बालकोकी लाइन लग गयी। सभी पैर पसारकर कमरपर हाथ धरकर खड़े हो तो वह लोकका नक्शा बन जाता है। एक बालकको एक राजू चौड़ा मान लेते हैं, ७ राजू पीछे मोटा है, सबसे नीचेसे देखो और सामनेसे देखो ७ राजू कमरपर एक राजू, टिहुनियोंपर ५ राजू और ऊपर एक राजू उनका जोड़ दिया जाय तो ३४३ घन राजू बैठेगा, तो इस

प्रकार तीन लोकके विभागके रूपसे यह समस्त लोक है। उस लोकके चारों तरफ क्या है, उसका वर्णन कर रहे हैं।

उपर्युपरि मक्रान्तैः सर्वलोऽपि निरन्तरैः ।
त्रिभिर्वायुभिराकीर्णो महावेगैर्महाबलैः ॥१६७३॥

लोककी त्रिविधवायुपरिवेष्टितता—समस्त लोकके चारों तरफ तीन प्रकारकी वायु है, वह लोकसे बाहर नहीं है वायु। वायु तक लोक है। जैसे पुरुषाकार लोक माना तो उस लोक के चारों तरफ पहिला तो है घनवातवलय, बादमें है घनोदधि वातवलय और सबसे अन्तमें है तनुवातवलय। घन वातवलयके मायने बहुत मोटी वातु और धनोदधि वातवलयके मायने मोटी वायु है। कुछ जलकण है और सबसे अन्तमें तनुवातवलय है, वह सबसे अन्तकी वायु है। ये चार तरहके अलोकाकाश हैं, वे बहुत बलवान हैं तभी तो देखो उस वायुके आधारपर यह सारा लोक सधा हुआ है। बहुतसे लोग कल्पनाएँ करते हैं कि इस लोकको कछुवेने अपनी पीठपर रख रखा है, कोई कहते हैं कि शेष नागके फनपर यह लोक है, कोई कहते हैं कि यह दुनिया अपनी छोटी कीलीपर है, वह कीलीपर सधी हुई है, इस प्रकार अनेक कल्पनाएँ करते हैं। जैन शासनमें बताया है कि तीन लोकके विभागमें यह सारा लोक है और लोकके चारों ओर तीन प्रकारकी वायु है, उस वायुपर यह लोक सधा हुआ है। इस ही वायुको अगर शेष नाग कहा जाय तो ठीक है क्योंकि शेष नागका भी अर्थ है वायु। नागमें ३ शब्द है—न अ ग। गच्छति इति ग। जो जाये उसे ग कहते हैं और अगच्छति इति अग। जो न चले सो अग है, अग मायने पर्वत। जो चलता नहीं। और न अगच्छति इति नाग, जो स्थिर न रहे उसे नाग कहते हैं। स्थिर नहीं रहती वायु तो वायुका नाग नाम है, और शेपनाग मायने शेषकी जो वायु है, जो शेष बची हुई अन्तकी वायु है उसे शेपनाग कहते हैं। अर्थात् यह ही वातवलय है। इन वातवलयोंके आधारपर यह सब लोक टिका हुआ है।

धनाब्धि प्रथमस्तेषा ततोऽन्यो घनमारुत ।
तनुवातस्ततोऽन्ते विज्ञेया वायव क्रमात् ॥१६७४॥

लोकके चारों ओर धनोदधि, धनवात, तनुवात नामके वायुओंका परिवेष्टन—पहिली वायुका नाम तो है धनोदधि। उसके ऊपर जो वायु है उसका नाम है धनवात और उसके ऊपर अतमें तनुवातवलय है। इस प्रकार तीन वातवलयोंसे यह लोक भरा हुआ है, इसी कारण यह लोक इधर उधर हट नहीं सकता, स्थिर है, और यह लोक है कहाँ ? तो आकाशके बीच में है, याने समस्त आकाश अनन्त है। उस आकाशके मध्यमें ये लोक रचनाएँ हैं। तो आकाश अनन्त है, तो किसी भी जगह लोक रचनाएँ हो वह सब आकाशका मध्य है और फिर वैसे भी मध्य है। तो समस्त आकाशके बीचमें ये लौकिक रचनाएँ हैं और इनके चारों ओर तीन

प्रकारके वातवलय है जिनके आधारपर यह लोक दृष्ट होता है। अब देखिये—इतने बडे लोक में ऐसा कोई प्रदेश नही बचा है जिस प्रदेशपर हम आप अनन्त बार पैदा न हुए हो। हमारा जन्म मरण क्या है ? अनन्त बार प्रत्येक प्रदेशमे अपना जन्म मरण हुआ। उसमे कहाँ क्या रचना है—यह सब आगे बताया जायगा। किस जगह स्थावर जीव है, किस जगह त्रस जीव है, कितनेमे देव जीव है, कितनेमें नारकी जीव है यह सब वर्णन अभी आयगा। तो चार गतियोके जीवोसे फैला हुआ यह लोक है और लोकमे ही सिद्ध भगवान विराजे है, वे लोकसे बाहर नही है पर लोकके अन्तमें है। जहाँ तक लोक पाया जाता है, जिसके बाद फिर लोक नही है वहाँ सिद्ध भगवाय विराजे है।

उद्‌धृत्य सकल लोक स्वशक्त्यैव व्यवस्थिता ।
पर्यन्यरहिते व्योम्नि मरुतः प्रागुविग्रहा ॥१६७५॥

वायुओके मध्य लोकको स्वप्रतिष्ठितता—ये तीनो ही पवन तीन लोकको धारण करके अपनी शक्तिसे ही इस अनन्त आकाशमे अपने शरीरको विस्तृत किए हुए स्थित है। यह लोक अपनी शक्तिसे है, यह वायु अपनी शक्तिसे है, किन्तु चारो ओरकी जो वायुका वलय है उसका निमित्त पाकर यह इतना विस्तृत लोक सधा हुआ है। पवनोका विस्तार कितना है लम्बाईमे कि जितना यह लोक है। चारो ओरसे उतना इसका विस्तार है। सो पवनका भी विस्तार उतना है और लोकका भी विस्तार उतना है, क्योकि लोकमे ही पवन है और पवन जहाँ तक है वही तक लोक है, उसके आगे लोक नही है।

घनाब्धिवलये लोक स च नान्ते व्यवस्थित ।
तनुवातान्तरे सोऽपि स चाकारो स्थित स्वयम् ॥१६७६॥

वायुमध्यमे लोकको स्वयं स्थितता व अकृतता—यह लोक तो घनोदधि नामके वातवलयमे स्थित है और घनोदधि वातवलय घनवातके मध्यमे है और घनवातवलय तनुवातवलयसे घिरा हुआ है। ऐसा होनेमे किसीका कर्तव्य नही है। किसीने इस लोकको बनाया हो और बनाकर उस लोकके चारो तरफ वायु बैंठाल दी हो, ऐसा किसीने किया नही। यह सब अनादिसे प्रकृत्या अपने आप बनी हुई रचना है। मानो किसीने यह बनाया होता तो यही बतलावो कि बनाने वालेने भी किसीको बनाया या नही ? अगर कहो कि बनाने वालेने किसी को बनाया नही तो जैसे वाला बिना आश्रय अपने आप है तो ऐसे ही सारे पदार्थ बिना बनाये अपने आप है और कहो कि बनाने वाले ईश्वरको भी किसने बनाया तो उसे किसने बनाया इस तरहसे उत्तर देते जावो, कही भागना ही न पडेगा। और फिर मानो किसीने बनाया तो किसी वस्तुसे बनाया या कुछ था ही नही और एकदम यो ही बन गया। जैसे कुम्हार घडा

बनाता है तो मिट्टीका पिण्ड है, जल है कुछ चीज है उसे ले करके बनाते हैं तो इस तरहसे ईश्वरने किसी उपादानको लेकर इस लोकको बनाया है या कुछ भी न था उपादान यह लोक बन गया है ? अगर कहो कि कुछ था उपादान जिससे इस लोकको बनाया गया तो लोक नया बनाया फिर ? वह तो चीज पहिले ही थी। उसका एक रूप अविस्तृत कर दिया, और आकाश कुछ भी न था और एकदम बना दिया तो उसको कोई बुद्धिमान नही मान सकता कि असत् भी बन सके। कुछ भी न हो और सत् बन जाय, ऐसा कोई मान ही नही सकता, और भी सोचो—बनाने वाला कहाँसे बनाता है, जगतको किस प्रयोजनसे बनाया है, उसकी क्या मशा है ? क्या उसने इस कारण बनाया है कि उसका दिल खुश रहे या लोगोंके उपकार के लिए बनाया है, या उसे कोई पीडा थी, वेदना थी, दु ख था जो दु खको शान्त करनेके लिए बनाया है ? किसलिए बनाया है ? अगर कहो कि उसने अपना दिल खुश करनेके लिए बनाया तो ये बातें तो हमारी सामान्य जनोकी बातें है। ऐसा महान ईश्वर क्या दु खी था जो अपना दिल खुश करनेके लिए ऐसी चीज बनाया जिससे अनेक आदमी दु खी हो ? यदि ऐसा कोई करे तो वह विवेकका काम नही है। कोई कहे कि उसने लोगोके उपकारके लिए बनाया तो लोगोका उपकार तो कुछ इस समय नजर आ नही रहा, क्योंकि कुछ जीव सुखी है तो उनसे अनन्तगुने जीव दु खी भी है। दु खी जीवोकी सख्या अधिक है और न बनता, कुछ भी न होता तो बडा ही उपकार था। न कुछ होता, न कोई दु खी होता। कहो कौनसा उसे दु ख था जो अपने दु खको शान्त करनेके लिए बनाया। यदि ईशको दु ख था तो वह ईश क्या और उस दु खको शान्त करनेके लिए उसने बनाया यह जगत् तो अनेक युक्तियोसे सोचो तो यह जगत किसीके द्वारा बनाया गया है यह युक्तिमे बैठना नही है। यह जगत स्वय अपने आप अनादिसे ऐसा ही प्रसिद्ध है, जो रचना यहाँ बतायी जा रही है यह रचना लोककी अनादिसे इस ही प्रकार है।

अधो वेत्रासनाकारोमध्ये स्याज्झल्लरीनिभ.।
मृदङ्गोभस्ततोप्यूर्ध्वं स त्रिधेति व्यवस्थित ॥१६७७॥

लोकका आकार—यह लोक नीचेसे तो चौडा है और फिर घटता-घटता सकरा हो गया, वहाँ एक राजूप्रमाण है। यह तो हुई अधोलोककी रचना और मध्यलोक है झालरके आकार, बडे मध्य लोककी चौडाईसे करीब थोडा बाद थोडा नीचे है और उसके ऊपर ऊर्ध्वलोक है वह मृदगके आकार है। जैसेमे ढग नीचे सकरा और ऊपर सकरा और बीचमे बडा बैठे इसी प्रकार यह ऊर्ध्व लोक नीचे एक राजू, ऊपर एक राजू और मध्यमे ७ राजू है, इस तरहकी तीन लोककी रचना है। अनेक गणितसे फैलाया जाय तो यह सब ३४३ घन राजू प्रमाण विस्तार का निकलता है। इन सबका परिमाण कितना है ? तो उस परिमाणको जाननेके लिए कई

तरहसे गणित बनती है। मोटे रूपसे तो यो हिसाब लगाये कि नीचे अधोलोक ७ राजू चौडा है और ऊपर एक राजू चौडा है तो ये ८ राजू हुए और नीचे बराबर ७ राजू है तो उस ७ राजूके आधे कर दिया जाय तो ३॥ हुए। ८ मे ३॥ का गुणा किया और ७ राजू सर्वत्र चौडा है तो ७ राजूमे गुणा किया उतने प्रमाण तो अधोलोक है। मध्यलोकका अलगसे कुछ प्रमाण नही बताया गया। कारण यह है कि मध्यलोक प्रतर रूपमे एक राजू चौडा तो है, पर उसकी मोटाई राजू प्रमाण नही होती। ऊर्ध्व लोकका प्रमाण है नीचे एक राजू, बीचमे ५ राजू जो कि ३॥ राजू तक है अर्थात् १ + ५ = ६ हुए, ६ के आधे ३ हुए और ३ मे ३॥ का गुणा किया तो हुए १०॥, और १०॥ का ७ राजूसे गुणा किया, उतना ही ऊपर है तो दोनोको मिलाकर ऊर्ध्वलोककी रचना होती है।

मनुष्यलोककी रचनाका वैभव—देखिये हम लोग कहाँ है, इसके ऊपर कई लोक माने जाते हैं, देवता लोग निवास करते है कुछ लोग ऐसा मानते है कि हम सब लोगोकी रक्षा करनेके लिए ऊपर देव बना दिए गए, नीचे नारकी हैं, मानो मनुष्योको स्वरक्षित रखनेके लिए नीचे नारकियोको भेज दिया गया, और फिर देखो हम आप लोग जम्बूद्वीपके बीचमे है, उसके चारो तरफ असख्याते द्वीप समुद्र हैं, जो असख्याते कोट और खाइया भी चारो ओर है। कविकी कल्पनाके अनुसार मनुष्यकी रक्षा के कितने साधन बनाये गए फिर भी इस मनुष्यकी रक्षा न हो सकी। ये ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक तीन प्रकारकी लोक रचनाएँ है जिनमे यह सारा लोक समा गया है, और इस लोकमे जो कुछ भी चीजे मिलती है वे सब इस आत्माके लिए पर है। उन सब गुणोसे इस आत्माका कोई लाभ नही है। आत्मा उन सब परिस्थितियोमे मोह करके, बाहर उपयोग देकर रागी बनकर स्वय कल्पनाएँ करके दु खी हो रहा है। उस दु खको मिटानेका सही उपाय यह है कि लोकमे सत्य विज्ञान करे, अपने आत्माका सत्य ज्ञान करे, इस सत्य ज्ञानसे मोह हटेगा क्योकि प्रत्येक पदार्थ अपना ही अपना स्वरूप लिए हुए है। किसी पदार्थका किसी पदार्थमे कर्तृत्व नही है। यो स्वतत्र अपने एकत्वस्वरूपमे अवस्थित पदार्थका परिचय होनेपर मोह नही बसता। मेरा कौन है ? सभी जुदे हैं, सभी अपने आपमे अपना उत्पाद व्यय ध्रौव्य किया करते है, सभी अपने अपने स्वरूपमे हैं। मैं किसे अपनाऊँ ? यथार्थ विज्ञान होनेपर आत्माका परवस्तुवोसे मेल नही रहता।

अस्य प्रमाणमुन्नत्या सप्त सप्त च रज्जव ।
सप्तैका पञ्च चैका च मूलमध्यान्तविस्तरे ॥१६७८॥

लोकका परिमाण—उस लोकका यह विस्तार बताया है जो अभी कहा गया है।

देखनेमे तो ऐसा लगता कि इतना सुडौल चारों ओरसे सुन्दर एक प्रकारके सस्थानोमे रचा हुआ यह लोक है। तो जो अकृत्रिम चीज है वह सुडौल सुन्दर एक कैसे बन सकती है, जो सुडौल सही बनाया जाय, यदि प्रमाण अनुकूल बनाया जाय तभी तो बन पायगा। अपने आप जो चीज हो, वह तो चटपट होनी चाहिए लेकिन यह ध्यानमे रखियेगा कि जो चीजें बनायी नही जाती, प्रकृत्या बनती है उन चीजोकी सुन्दरतामे तो कही रच फर्क नही आता। बनाई गई चीजमे कुछ अन्तर आ सकता है। ये जहाँ कही रत्न हीरा जवाहरात खानमे से निकलते है तो कैसा सुडौल सुन्दर होते है? फिर उनकी सुन्दरताके लिए भले ही उनमे नक्काशी की जाय। नदियोंके जो पत्थर होते ह उनकी बनावट कैसी गोल तिकोना ऐसी सुन्दर हुआ करती है उसे कौन बनाता है? प्रकृतिसे जो अपने आप चीज हे उसकी सुन्दरतामे सदेह न करना चाहिए। चाहे बनाया गया हो, चाहे बिना बनाया हो, जो सुन्दर होगा वह सुडौल ही है। तो ऐसा चारो ओरसे बराबर कायमे रहने वाला यह लोक इस अनन्त आकाशके बीचमे अवगाहित है। जिस लोकके बीचमे बिल्कुल तुच्छसे क्षेत्रपर हम आप रहते है। हम आपका जितने क्षेत्रमे परिचय है वह क्षेत्र लोकके सामने न कुछ चीज है। समुद्रमे से एक बूँद जलका तो कुछ गणित बन सकता है पर इतनेसे परिचित क्षेत्रका गणित इस लोकके सामने नही बन सकता। तो इस छोटेसे क्षेत्रमे परिचय बनाकर कुछ कामना करके अपने आपको क्यो बरबाद किया जा रहा है? इस लोकमे अक्षयानन्त जीव है, इनमे अनन्त मुक्त हो गए है, अनन्त मुक्त हो जायेंगे, फिर भी ये अनन्तानन्त ही है, उन अनन्तानन्त जीवोमे से १० हजार, २० हजार, लाख दो लाख, करोड़ परिचित मनुष्य है तो यह कितनी सी सख्या है? उसके अनन्तवे भाग, कुछ भी तो गणनामे नही आता। अब बतलावो कि अनन्त जीवोंने तो हम आपको कुछ जाना, नही कुछ समझा नही। तो जब अनन्त जीव हमे कुछ जानते समझते नही है, उनसे हमारा कुछ परिचय नही है तो जब परिचित अनन्त जीव है तो फिर थोडे ही जीवोमे परिचय बनानेकी धुनसे अपना कौनसा लाभ बनेगा? कुछ भी लाभ नही है।

लोकरचनाके परिज्ञानका हितमार्गमे महत्त्व—लोग तो यहाँ तृष्णा करके, ममता करके अपने आपको दुखी बना रहे हैं। जो परिवार है, जो घरके सम्पर्क हैं ये लोग ही मेरे सब कुछ है—इस प्रकारका चिन्तन करते हैं, और जिनको तीन लोककी रचना स्पष्ट विदित है उन्हें तो मोह नही आ सकता, क्योकि इतने बडे लोकके एक कोनेमे हम आप है। जरा सी जगहमे जब तक इन लोगोंसे हमे कुछ नही मिला तो थोडेसे लोगोंमे परिचय बनाकर हम क्या लाभ पा लेंगे, ऐसी स्पष्ट धारणा हो जाती है इस लोकके आकार प्रकार और रचनाका परिज्ञान होनेसे। यह समग्र लोक ३४३ घन राजू प्रमाण है, उसमे से एक राजूप्रमाणको हम

थोड़ा सा सुनें तो सही। जिस जम्बू द्वीपमे हम रहते है वह एक लाख योजनका है। उसको वेढ कर लवणसमुद्र है, वह एक एक ओर सर्वत्र दो दो लाख योजनका है। उसको वेढ कर दूसरा द्वीप समुद्रसे दुगुना है उसको वेढ कर दूसरा समुद्र द्वीपसे दुगुना है। इस तरह असंख्याते द्वीप और समुद्र चले गये है। एक एकसे दुगुने दुगुने अन्तमे स्वयभूरमण समुद्र है। स्वयभूरमणसमुद्रकी चौडाई समस्त द्वीप समुद्रोंके विस्तारसे भी कुछ अधिक है। इतना सब असख्यात द्वीप समुद्र जितने क्षेत्रमे समाया है वह क्षेत्र अब भी एक राजूसे कुछ कम है। सो यह एक राजू कपटेकी तरह फैलाव रूपमे है। एक राजू चौडा एक राजू मोटा एक राजू ही लम्बा क्षेत्र एक घनराजू क्षेत्र कहलाता है। ऐसे ऐसे ३४३ घनराजू प्रमाण यह लोक है।

तत्राधोभागमासाद्य संस्थिता सप्तभूमय.।
यासु नारकषण्ढाना निवासा. सन्ति भीषणा ॥१६७९॥

लोकके अधोभागमे सात नरकोंकी रचना—यह लोक क्या है, जिस लोकमे हम आप ये ससारके प्राणी निवास करते है। यह लोक तीन भागोंमे बँटा हुआ है—अधोलोक, मध्य-लोक और ऊर्ध्व लोक। अधोलोकमे ७ भूमियाँ है। जिस भूमि पर हम आप चलते फिरते है यह बहुत मोटी है और इस भूमिके ३ भाग है। पहिले और दूसरे भागमे तो देव मिलते है जो छोटी जातिके है और तीसरे भागमे पहिले नरककी रचना है। इसमे कुछ आकाश छोड कर नीचे फिर दूसरी भूमि है, उस दूसरी भूमिमे नरकोकी रचना है। उसके बाद आकाश छोडकर तीसरी भूमि है, इससे ७ भूमिया है, जिनमे ७ नरक बसे हुए है। उन भूमियोमे उन नारकियोका निवास है। जो मनुष्योको, पशु, पक्षियोको मारे, सताये, खाये, असत्य भाषण करे, खोटे आचरणसे रहे, जो माता पिताको सतायें वे जीव मरकर नरकमे उत्पन्न होते है। सो यहाँ तो थोडेमे भी कष्टोमे घबडा जाते, जरा भी कष्ट नही सह सकते, धीरता नही रह सकती और वहां नरकोमे सागर पर्यन्त असख्यात वर्षो तक बडा कष्ट भोगना पडता है। उन्हे क्या क्या कष्ट भोगने पडते है, कैसा उनका जीवन है ? वह सब आगेके श्लोकोमे बताया जा रहा है।

काश्चिद्वह्न्यानलप्रख्या. काश्चिच्छीतोष्णसंकुला।
तुषारबहुला. काश्चिद्भूमयोऽत्यन्त भीतिदा. ॥१६८०॥

नरकभूमियोकी दु खसाधनता—उन नरकोंमे नारकी जीव एक दूसरेको मारते है वे तो दुःख है ही, मगर वहा भूमिका ही महान दुःख है। वहाँ की भूमि कुछ तो अत्यन्त वज्रा-नलसे दीप्त है अर्थात् तेज गरमी है। ऐसी तेज गरमी है कि लोहेका पिण्ड गल जाय। ऐसी तीक्ष्ण गरमी वाले नरकोमे वे नारकी जीव स्वयं बडा दुःख भोगते है। कुछ भूमि ऐसी है कि जिसमे अत्यन्त शीत है। यहाँ ही पूस माहके महीने मे जब कि शिमलाके सरदीमे बर्फ

गिर जाय तो ऐसी शीतकी लहरे चलती है कि यह मनुष्य उस शीतमे चल नही सकता, उससे भी अधिक शीत उन नरकोकी है जिनको पाकर लोहा भी गल जाता है। जैसे जब बहुत शीत होती है तो वृक्ष जल जाते है, वहाँ पत्थर भी गल जाय ऐसी तीक्ष्ण ठढ पडती है। तो ठढ गर्मीका ही वहाँ दुःख अपने आप है तो वहाँ पर घोर दुःख ये नारकी जीव भोगते है।

नरकभूमियोके अस्तित्वमे निःसन्देहता—यह नरक है अथवा नही, इस विषयमें कुछ लोग शका कर सकते है। प्रथम तो शका करनेकी यो बात नही है कि जिन जिनेन्द्र भगवान् ने जो आगममे प्रणीत किया है अथवा जो बात हम यथार्थ अनुभव करते है, ७ तत्त्वोका स्वरूप, पदार्थोंका स्वरूप हम यथार्थ पाते है जैसा जिनेन्द्र वाणीमे लिखा हुआ हे तो हमे यह श्रद्धा हो ही जायगी कि उनके द्वारा प्रणीत जो कुछ भी उपदेश है, प्रयोजनकी बात है हम आँखोसे नही निरख सकते बहुत दूरकी बात, पर जिनेन्द्रको असत्यसम्भापणसे क्या प्रयोजन था ? जो युक्ति और अनुभवसे जाना कि वह योग्य उपदेश है। जब वह हमे शव्दार्थ मिला तो वहाँ ही सब उपदेश शव्दार्थ है। जैसे कोई मनुष्य किसी दूसरेकी हत्या कर दे तो राजा उसे मृत्युदण्ड देता है। फिर कोई लोग करोडो पशु मारें, अन्याय करे तो उसका दण्ड मनुष्यभव मे ठीक मिल सकना तो कठिन है, जिसने हजारो लाखो, करोडो पशु पक्षियोको मारा उसको मरकर नरकगतिमे जाना पडता है। वे नारकी जीव इतना दुःख सहते है कि उनके तिल-तिल बराबर खण्ड हो जाते, फिर भी पारे की तरह वे टुकडे फिर मिलकर एक बन जाते है। वहाकी बात भी थोडी देरको जाने दो, यही भी देख लो, जो मनुष्य बुरे विचार रखता है, कषाय परिणाम रखता है, कषाय की प्रवृत्ति करता है, बहुत–बहुत उलझनोमे बना रहता है उसको तत्काल भी महान् अशान्ति है और निकट भविष्यमे भी उसे अशान्ति रहेगी। तो पापके जो कर्म है वे तो नियम से खोटा फल देते हैं। यहा ही निरख लो और आगमको निरख लो, बहुत बडी कमाई है, हजारो लाखोकी सम्पत्ति पासमे है पर दूसरोके प्रति परिणाम छल कपट दगाबाजीका रखे, दूसरोके सतानेका परिणाम आये तो उसकी वह सम्पत्ति बेकार है, उसकी वह सम्पत्ति पूर्वभवकी कमाई है, इस भवकी कमाई नही है। यह वैभव तो पुण्य पापके उदयके अनुसार आता जाता है।

उदीर्णानलदीप्तासु निसर्गोष्णासु भूमिषु।
मेरुमात्रोऽप्ययं पिण्ड क्षिप्त सद्यो विलियते ॥१६८१॥

नरकभूमियोमे तीव्र उष्णताका निर्देश—यहाँ नरकोमें गरमी और ठढकी बात दिखाई गई है कि नरकोमे अग्नि है अथवा उष्ण है, न भूमियोमे तो ऐसी उष्णता हे कि जिसमे मेरु समान भी लोहा डाल दिया जाये तो तत्काल गल जाता है। उष्णताभे लोहा गल ही

जाता है तो इसमे कोई सन्देहकी बात नही और उष्णताके जब दिन आते है तो ये घर भी गर्म हो जाते है। भीतरकी भीत छुवो तो गर्म, शामके समय छतपर भी जाकर बैठे है, सोते है तो वहाँ भी गरमी। तो जब यहाँ की गरमीसे हम लोग विह्वल हो जाते है, चैन नही पाते है तो उमसे भी कई गुना गरमी उन नरकोमे है, वहाँ लोहेका गोल हो तो वह भी गल जाता है। ऐसे उष्ण स्थानमे जो नारकी जीव निवास करते है उनके दु खका कौन वर्णन कर सकता है ? यहाँ तो हम आप मामूलीसे दु ख भी सहन नही कर पाते। एक रात्रिको जल का त्याग करना भी मुश्किल हो जाता है। यद्यपि दिन दिनमे जितने चाहे बार पी सकते, फिर भी सिर्फ रात्रिभरको भी जल का त्याग नही कर सकते। ससारमे तो न जाने कितने कितने दुःख सहने पडते है ? परवश होकर तो दु ख बहुत सहा जाता पर स्ववश होकर कुछ भी नही सह सकते। तो ऐसी उष्ण पोलमे नारकियोको अपने पापके उदयमे घोर दु ख सहना पडता है।

शीतभूमिष्वपि प्राप्तो मेरुमात्रोऽपि शीर्यते।
शतधासावय पिण्ड प्राप्य भूमि क्षणान्तरे ॥१६८२॥

नरकभूमियोंमे तीव्र शीतका निर्देश—जिस तरह गरम नरकोमे लोहेका पिण्ड भी गल जाता है इसी प्रकार शीतप्रधान भूमिमे मेरूके समान लोह भी खण्ड खण्ड होकर बिखर जाता है। तो बात बिल्कुल यथार्थ है कि गरमीमे तो लोहा गल जाता है और ठडके दिनोमे पेड वगैरह ये खण्ड-खण्ड होकर सूख जाते है। ठडके दिनोमे खिर-खिर, कर, बिखर बिखरकर ये विलीन हो जाते है। तो यह खण्ड-खण्ड होकर शीर्ण हो जाना यह तो ठडका प्रताप है और गलकर पानी बन जाना, यह गरमीका प्रताप है।

हिसास्तेयानृब्रह्माबह्वारम्भादि पातकै।
विशन्ति नरक घोर प्राणिनोऽत्यन्तनिर्दया ॥१६८३॥

नरकोमे जन्मका कारण—नरकोमे जीव किस पापके उदयसे गमन करते है वह इस गाथामे बताया है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इन पापोंके कारण ये निर्दयी जीव नरकोमे जन्म लेते है और दु ख पाते है। जिन जीवोकी हिंसामे प्रवृत्ति रहती है, जो बेरहम होकर भोले भाले पशुवोपर खजर चलाते है उन्हे उसके फलमे नरक गतिमे गमन करना पडता है। जो मनुष्य झूठ बोलनेकी प्रकृति रखते है, झूठी गवाही देते है, हँसी मजाकमे भी बहुत बार झूठ बोलते है तो ऐसे झूठ बोलने वाले जीव नरक आयुका बध करते है और नरकोमे जन्म लेते हैं। एक बार भी कोई झूठ बोले तो उसकी बाढ खतम हो जाती है और फिर दूसरी वार झूठ बोलनेका भी द्वार खुल जाता है, फिर उसका जीवन ही झूठ बोलनेमे व्यतीत हो जाता है। झूठ बोलनेमे खुदका कितना घात है। अपने आपकी सुधि तो वहाँ रहती

ही नही, दूसरेको दुःख होगा—इस ओर भी ख्याल नही रहता, दयाहीन भी हो जाता है और जान समझकर भी कि मेरे झूठ बोलनेमे इसका विगाड है—वह अपनी झूठ बोलनेकी ही प्रवृत्ति रखता है। यदि किसीको मालूम हो जाय कि इसने झूठ बोला तो वह झूठ बोलने वाला इसकी निगाहसे उतर जाता है। व्यापार कार्योमे भी ग्राहक लोग उसे सत्य समझकर ही उससे माल खरीदते है, यदि पता पड जाय कि यह झूठ बोलता है तो ग्राहक लोग उसके पाससे कोई चीज नही खरीदते। झूठ बोलनेसे एक तो प्राणपीडा होती है और यह झूठ बोलना कभी-कभी दूसरेके प्राणहरणका कारण बन जाता है। तो हिंसाकी तरह झूठ पापमे भी इस जीवको नरक गतिमे जाना पडता है। इसी तरह चोरीका पाप है। किसीकी चीज चुरा लेना सो चोरी है। ये चोर लोग चोरी करना उस समय तो कुछ इष्ट मानते होगे लेकिन चोरी करके भी वे प्रसन्न नही रह पाते, और जरा-जरासी बातोमे शक कर लेते है कि ये कही हमारी बात जान तो नही गए। तो चोरी करने वाला पुरुष कही शान्त नही रह सकता, सुखी नही रह सकता और एक ईमानदार गरीब भी हो, मेहनत करता हो तो सबके सामने निर्भय बैठकर ठडा पानी तो पी लेगा, मगर चोरी करने वाला पुरुष तो किसीके पास बैठने भी न पायगा और उसे एक महान पाप करके नरक गतिमे जन्म लेना पडेगा। कुशील पाप मे—अपनी स्त्रीके सिवाय अन्य सब स्त्रियाँ भी अपनी मा बहिन बेटी की तरह है लेकिन कुशील पापका उदय आये तो यह अज्ञानी जीव उनपर स्त्रियोको बुरी निगाहसे देखता है तो उसमे इसे इतना पाप लगता है कि जिसके उदयमे नरकोमे जन्म लेना पडता है। परिग्रह पापमे—किसीके १०-२० दूकाने है, कम्पनी है, कारखाने है, और भी कारखाने कम्पनियाँ खोलनेकी धुनमे है, अनेक आरम्भोको जो बसाये है उसका दिल देखो—वह कितनी बडी बडी आपत्तिया भोग रहा है, ऐसा पुरुष मरण करके नरक गतिमे जन्म लेता है। बहुत मूर्छा हो परिग्रहमे, परिग्रहको जानकी तरह माने, ऐसी आसक्ति वाले पुरुष नरक गतिमे जन्म लेते है और घोर दुःख भोगते है, और वहाँ जाकर वे नारकी जीव दयाहीन हो जाते है।

मिथ्यात्वाविरतिक्रोधरौद्रध्यानपरायणाः।
पतन्ति जन्तवः श्वभ्रे कृष्णलेश्यावशं गताः ॥१६८८॥

नरकोमे जन्म पानेके हेतुभूत अन्तरङ्ग पापोका वर्णन—ये तो ऊपर कुछ प्रवृत्तिरूप पाप बताये जो कि लोगोको दिखते है, समझमे आते है, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील तथा परिग्रह। अब इस छदमे बतला रहे है कि जो भीतरी पाप है उन पापोसे भी इस जीवको नरक गतिमे जन्म लेना पडता है। जैसे मिथ्यात्व। है तो भिन्न पदार्थ, परपदार्थ, और उसे माने निज पदार्थ अर्थात् इस रूप ही मैं हू ऐसी मान्यता रखना सो मिथ्यात्व है। इस मिथ्यात्वके फलमे जीवको नरकगतिमे जन्म लेना पडता है। कोई यह सोचे कि मैं किसी

प्रकार बच जाऊ सो बच नही सकता ।

मिथ्यात्वविषयक और भी मोटी बात देखिये—ससारके समस्त समागम धन वैभव कुटुम्ब आदिक ये सब विनाशीक है, इनका वियोग नियमसे होगा । ये सब समागम अनित्य है तो इन्हे अनित्य ही जानना चाहिए तब तो सही बात है, किन्तु अनित्यपदार्थोंको यह मनुष्य समझ रहा है कि ये नित्य है । कोई मरेगा या धन नष्ट होगा तो दूसरेका मरेगा, मेरा कोई नही मरनेका, ऐसा विश्वास लिए हुए लोग बैठे है । कभी जीभसे बोलना पडता है तो बोला जाता है, पर भीतरमे यह बात श्रद्धापूर्वक नही बैठती । तो समस्त समागम अनित्य है लेकिन यह मानना कि ये सब नित्य है बस यही तो दु खका कारण है ।

जरा सोचिये कि घरमे कोई बडा प्यारा कुटुम्बका कठिन बीमार है, उसको उस बीमारीसे ग्रस्त हुए दो तीन वर्ष हो गए, खाटसे भी नही उठा जाता, लोगोका यह विश्वास हो गया कि अब यह बचेगा नही, सो एक तो ऐसे व्यक्तिका मरण हो जाय और एक ऐसे व्यक्तिका मरण हो जाय कि जो बडा हृष्ट पुष्ट रहा हो और अचानक ही मरण कर गया हो । सो यह बताओ कि इन दोनोमे से किसके मरण पर अधिक दु ख लोगोको होगा ? दुःख तो ऐसे व्यक्तिके प्रति अधिक होगा जो हट्टा-सट्टा हो और अचानक ही मर जाय । उसका कारण यह है कि एक पुरुषके प्रति तो पहिलेसे ही जानकारी बना रखी थी कि यह अब बचेगा नही और एक पुरुषके प्रति पहिलेसे कोई जानकारी न बनायी थी कि अब इसका मरण हो जायगा, इस कारण जिस व्यक्तिके बारेमे बहुत पहिलेसे मरणकी बात जान रहे थे उस व्यक्तिके प्रति तो लोगो को दु ख नही होता और दूसरे व्यक्तिके प्रति दुःख होता है । जिस व्यक्तिके बारे मे पहिलेसे ही जान रहे थे कि अब यह बच न सकेगा उसका मरण हो जाने पर उसका सम्बन्धी ऐसा ख्याल करता है कि देखो जो मै पहिले जान रहा था ना कि यह बचेगा नही, सो वैसा हो हुआ । इस कारण उसके प्रति दु ख नही होता और जिसके बारेमे पहिलेसे जानकारी ही नही बनायी हो और उल्टी ही श्रद्धा हो कि यह तो सदा ही रहेगा, उसके वियोगमे दुःख होता है । तो ये बारह भावनाओमे जो 'अनित्य भावना' भायी जाती है कि समस्त पदार्थ विनाशीक है, जो समागम मिले है वे नियमसे मिटेंगे, इस भावनाका फल यह है कि जब वियोग होता है तब उसको क्लेश नही होता । उस समय यह जान रहा है कि यह तो मै पहिलेसे ही जान रहा था । जैसे किसी चीजका एक आविष्कार किया जा रहा हो और उसके विषयमे दूसरा जानकारी रख रहा हो और कई बार वह बना चुका हो तो उस पदार्थके बननेपर वह ज्यादा खुश नही होता, क्योकि वह समझ रहा है कि इस तरहसे इसका निर्माण होता है, यह तो हम पहिलेसे ही जानते थे । इसी तरहकी बात है । जिस वियोगको हम पहिले से ही समझ रहे हो उस वियोगमे अधिक क्लेश नहीं होता । अनित्य

भावना भानेसे गृहस्थोको भी कितता अधिक फायदा है ?

असिपत्रवनाकीर्णे शस्त्रशूलासिसंकुले ।
नरकेऽत्यन्तदुर्गन्धे वसासृक्कृमिकर्दमे ॥१६८५॥
शिवाश्वव्याघ्रकङ्काढ्ये मासाशिविहगान्विते ।
वज्रकण्टकसकीर्णे शूलशाल्मलिदुर्गमे ॥१६८६॥
सभूय कोष्टिकामध्ये ऊर्ध्वपादा अधोमुखाः ।
ततः पतन्ति साक्रन्द वज्रज्वलनभूतले ॥१६८७॥

नरक कैसे हैं, कि असिपत्र (तरवार) सरीखे हैं पत्र जिनके, ऐसे वृक्षोसे तथा शूल तलवार आदि शस्त्रोसे व्याप्त है, अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त हैं, वसा (अपक्वमांस), रुधिर और कीटो से भरा हुआ कर्दम है जिनमे ऐसे हैं, तथा सियाल, श्वान, व्याघ्रादिकसे तथा मांसभक्षी पक्षियोसे भरे हुए है, तथा वज्रमय काटोसे शूल और शाल्मलि वृक्षोंसे दुर्गम भरे हुए हैं, अर्थात् जिनमे गमन करना दुःखदायक है, ऐसे नरकोमे बिलोंके सपुटमे उत्पन्न होकर वे नारकी जीव ऊचे पाँव और नीचे मुख चिल्लाते हुए उन सपुटो से (उत्पत्तिस्थानोंसे) वज्राग्निमय पृथिवीमे गिरते है ।

अयःकण्टककीर्णासु द्रुतलोहाग्निवीथिषु ।
छिन्नभिन्नविशीर्णाङ्गा उत्पतन्ति पतन्ति च ॥१६८८॥

उस नरकभूमिमे वे नारकी जीव छिन्नभिन्न खड खड होकर बिखरे हुए अगसे पड कर बारबार उछल उछल के गिरते हैं, सो कैसी भूमिमे गिरते हैं कि जहाँ पर लोहेके काँटे बिखरे हुए है और जिनमे गलाया हुआ लोहा और अग्नि है ।

दुःसहा निष्प्रतीकारा ये रोगाः सन्ति केचन ।
साकल्येनैव गात्रेषु नारकाणा भवन्ति ते ॥१६८९॥

जो रोग असह्य हैं, जिनका कोई उपाय (चिकित्सा) नही है, ऐसे समस्त प्रकारके रोग नरकोंमे रहने वाले नारकी जीवोके शरीरमे रोमरोमप्रति होते हैं ।

अदृष्टपूर्वमालोक्य तस्य रौद्र भयास्पदम् ।
दिश सर्वा समीक्षन्ते वराका शरणार्थिनः ॥१६९०॥

फिर वे नारकी जीव उस नरकभूमिको अपूर्व, रौद्र (भयानक) देखकर किसीकी शरण लेनेकी इच्छासे चारो तरफ देखते है, परन्तु कही कोई सुखका कारण नही दीखता और न कोई शरण ही प्रतीत होता है । वहाँ उनको जो घोर वेदना होती है, उसको नारकी पाते ही

नोटः—पृष्ठ संख्या १८ से २० तक एक पृष्ठमें ही मे डाल दिये, क्योंकि भूल हो गई है ।

जाते हैं।

न तत्र सुजन कोऽपि, न मित्र न च बान्धवा ।
सर्वे ते निर्दया पापा क्रूरा भीमोग्रविग्रहा ।।१६६१।।

निर्दय, पापी, क्रूर नारकियोकी वराकता - उन नरक भूमियोमे कोई भी सज्जन पुरुष नही नजर आते। बडी भयानक पृथ्वी है वह, जहाँ गरमी है तो इतनी अधिक है कि लोहका पिण्ड भी गल जाय, ऐसी कठिन गरमीको भी वे नारकी जीव सहन करते है। ऐसे ही ठडकी वेदना भी वहाँ ऐसी है कि लोह पिड भी पिघल कर पानी जैसे बन जाते है इस तरहकी तीव्र ठडकी वेदना भी वे नारकी जीव सहन करते है। बडे-बडे भयानक देहधारी क्रूर पशु हैं (है वे वैक्रियक शरीरधारी नारकी ही) जो कि दूसरे नारकी जीवोको सताते है, एक नारकी जीव दूसरे नारकी जीव पर टूट पडता है, खण्ड-खण्ड कर देता है। तो वे नारकी जीव निरन्तर दुखी रहा करते है, उनको कभी भी किसी भी प्रकारका चैन नही है। वे नारकी जीव पापके उदयके वशीभूत होकर यो दुख सहते है। वे सभी नारकी पापी है—गम खाने वाले कोई नही है। वे निर्दय है, क्रूर है, भयानक तीक्ष्ण उनके देह है, उग्र नारकी जीवोको कभी किसी प्रकारका किसीसे कोई सहारा नही मिलता। देखिये यह जीव भूल तो जरासी करता है और कष्ट कितने भोगने होते है? जो अपना स्वरूप नही है उसे माना कि यह मै हू, की इतनी सी भूल और फल कितना भोगना पडा कि चौरासी लाख योनियोमे इस जीवको जन्म मरण धारण करना पडता है। इस प्रसगमे एक बात और विलक्षण देखो कि जिन गतियोमे सुखके बड़े साधन है उन गतियोसे जीवको निर्वाण नही होता। जैसे देवगति, भोगभूमियाके लोग जिनको कोई कष्ट नही है उनको निर्वाण प्राप्त करनेका अवसर नही मिलता है, नारकी जीव यद्यपि घोर दुख सहते है पर ऐसा उदय है कि उन्हे दुखी ही होना पडता है, ऐसा कठिन पाप है। सबसे महान पाप तो मोह है, मिथ्यात्व है, इनका आश्रय करके उदय होता और खूब उदयभर वे अपना फल भोगते।

सर्वे च हुण्डसस्थाना स्फुलिङ्गसदृशे क्षणा ।
विवर्द्धिताशुभध्याना प्रचण्डाश्चण्डशासना ।।१६६२।।

नारकियोकी अशुभ ध्यानिता व विड्रूपता—ये नारकी जीव सभी हुंडक संस्थान वाले है। हुडक सस्थान कहते है बेढगे शरीरको। नारकियोके बेढगे शरीर हैं। अभी हम आपके कितने सुडौल शरीर है, पर कोई अग कैसा ही हो, कोई कैसा ही हो तो वह हुंडक संस्थान कहलाने लगता है और भी देखो, उन नारकी जीवो की आँखोसे अग्नि बरषती है। ऐसी अत्यन्त गरमीका कष्ट भोगने वाले नारकी वहा नरकोमे जन्म लेते है, दुखी होते है। वे नारकी जीव निरन्तर सक्लेश परिणाम बनाये रहते है, उनके क्रोध कषाय अत्यन्त

प्रचड है। उनका शासन भी प्रचण्ड है। बडेसे बडा शासन करने वाला भी कोई नारकी हो तो भी उसके पुण्य इतना नही है कि वह उस पुण्यके फलमे कुछ सुख प्राप्त कर सके, ऐसा नही है कि उस शासन कालमे वह कुछ शान्ति प्राप्त कर सके। वे नारकी जीव निरन्तर अशुभ परिणाम बनाये रहते है। सबसे अधिक दुख तो है इस मनका। धन वैभवके कम होनेका या अपमान आदिक होनेका उतना बडा क्लेश नही होता जितना क्लेश मनके सोच लेनेका क्लेश होता है। तो वहाँ गर्मीके दिनोमे गरमी अत्यन्त प्रचण्ड है, सर्दीके दिनो मे सर्दी अत्यन्त प्रचण्ड है, उन नारकियोका शासन भी प्रचण्ड है और उनके क्रोध कषाय भी प्रचण्ड है, तो निरन्तर ऐसी ही घटनाओके बीच उन नारकियोका समय कटता है, ऐसी ही उन नारकियोकी निरन्तर प्रक्रियाएँ चलती हैं जिनके कारण उन नारकी जीवोको निरन्तर दुःख भोगना पडता है।

तत्राक्रन्दरवै सार्द्धं श्रूयन्ते कर्कशा स्वना ।
दृश्यन्ते गृध्रगोमायुसर्पशार्दूलमण्डला ॥१६६३॥

नारकियोका घोर आक्रन्दन — उस नरकभूमिमे चारो ओरसे रोनेके, पुकारनेके कर्कश शब्द सुनाई पडते है, ऐसे अधोलोकमे जहाँ कि भयानक दुख है, स्याल, सर्प, सिंह आदिक पशु यद्यपि वहाँ नही है फिर भी वे नारकी जीव विक्रिया करे ऐसे भयानक शरीरोको धारण करते हैं और दूसरे नारकी जीवोको दुख देते हैं। तो ऐसा कुछ उनके पापका उदय चलता है कि उनको निरन्तर आकुलित बने रहना पडता है। वे नारकी जीव कल्पनाएँ करके अपने आपमे बडी आकुलता मचाते रहते है। सुननेमे यद्यपि ऐसा लगता होगा कि हैं कहाँ नारकी, उसके शिरपर कहाँ आ गये, कल्पनाएँ करके बडे कष्ट ही भोगते हैं।

घ्रायन्ते पूतयोगन्धा स्पृशयन्ते वज्रकण्टका ।
जलानि पूतिगन्धोनि नघोऽसृग्मासकर्दमा ॥१६६४॥

नरकभूमियोकी घोर दुर्गन्धका महाकष्ट—जिस नरकभूमिमे दुर्गन्ध सूँघनी पडती है और वज्रमय काटोसे छिदना पडता है, जहाँ शरीर दुर्गन्धमय है, जहाँ सर्प बिच्छू आदिक भयकर जीव है, ऐसा घोर दुखोका घर जो नरक है वहाँपर यह नारकी जीव जन्म लेता है। बडे आरम्भ परिग्रहोमे इस जीवने अपना चित्त रमाया था, पाप पापमे ही उसकी विशेष प्रवृत्ति थी, कृष्ण लेश्याके वशीभूत होकर इस नरक गतिमे आया और यहाँके घोर दुख सहने पडे, इस प्रकारका चिन्तन कर रहा है ऐसा नारकी जो कि उन नारकियोमे कुछ विवेक रखता है। उन नरकोका जल दुर्गन्धमय है, मास रुधिरका कादा है जिसमे ऐसी नदिया बहती है।

चिन्तयन्ति तदालोक्या रौद्रमत्यन्तशङ्किता ।
केयं भूमि क्व चानीत के वयं केन कर्मणा ॥१६६५॥

दु:खपीड़ित नारकियोंका चिन्तन— उस नरकमे वे नारकी जीव रौद्र भयानक स्थान पाते है, अत्यन्त शकित होकर विचार करते है कि अरे यहाँ कहाँ आ गए ? कोई लोग अलकारमे यो बताते है कि जैसे जब मनुष्य उत्पन्न होता है तो वह यो शब्द बोलता है—कहाँ, कहाँ, कहाँ । वह इसी बातसे सगत है कि मैं किस जगह आया । तो ऐसे ही वह नारकी जीव चिन्तन करता है कि मै कहाँ आया । जब उतने दु:ख कभी देखा नही, भोगा नही तो झट वह चिग्घाड पडता है अरे मैं किस जगह आया, यहाँ कोई मेरी रक्षा करने वाला भी है क्या ? यो बोलता है, पर उसको वहाँ शरण कुछ नही मिलता है । ऐसे नारकी जीवके उदयमे हम आप सागरोपर्यन्त आयु पाकर अपना समय दु:ख ही दु:खमे गुजारते रहते है । ऐसा जानकर ससार शरीर और भोगोसे विरक्त अवश्य होना चाहिए और ज्ञानबल बढाकर अपने स्वरूपपर दृष्टि देकर अपने आपको सबसे निराला केवल ज्ञानमात्र अनुभवना चाहिए, अन्यथा इस ससारमे कोई भी अपना शरण न होगा और दु:ख ही दु:खमे अपना समय व्यतीत करना होगा । अपना परिणाम निर्मल न रखे, इस प्रकारकी अहिसामय चर्या हो तो फिर वहाँ किसी भी प्रकारके सकट नही बसते और फिर जन्म मरणके दु:ख नही सहने पडते है ।

ततो विदुर्विभङ्गात्स्व पतित श्वभ्रसागरे ।
कर्मणाऽत्यन्तरौद्रेण हिसाद्यारम्भजन्मना ॥१६६६॥

नारकियोंको फल भोगते समय कृत पापोका स्मरण—आत्माकी सुधसे रहित विषयो मे आसक्त व्यसनी रौद्र परिणाम वाले पुरुष मरकर नरकमे जन्म लेते हैं । वहाँ नरकोमे जो नवीन नारकी उत्पन्न हुए है वे उत्पन्न होनेके बाद बडे शकित हो करके विचारते है, क्योकि अपरिचित स्थान है, भयानक रौद्र स्थान है तो वे शकित होकर भ्रमण करते है और सोचते है–अरे यह भूमि कौनसी है जिस भूमिपर पडते ही हजारो बिच्छुवोके काटने जैसा दु:ख होता है, तो यह बात कोई गलत नही है । जैसे कभी अपने ही मकानमे बिजली का करेण्ट छू जाय तो मकानमे पैर धरना मुश्किल हो जाता है, तो वहाँकी जमीन ऐसी ही करेण्ट वाली निरन्तर रहती है । तो यह भूमि कौनसी है और हम यह कौन है ? और इन भयानक कर्मोंने, इन खोटे कर्मोंने लाकर यहाँ पटक दिया है । ज्ञानी पुरुष संस्थानविचय धर्मध्यानमे लोककी रचनाका विचार कर रहा है । लोक कितना बड़ा है, उसमे कहाँ-कहाँ कैसी-कैसी रचनाएँ है ? इस समय अधोलोककी रचनाका विस्तार चल रहा है । फिर वे कुअवधिज्ञानसे जानते है । जो उनके अवधिज्ञान हुआ है उस ज्ञानसे वे जानते है । ये हिंसा

आदिकके त्याग किये, बड़े आरम्भ किये, उन आरम्भोमे उत्पन्न हुआ जो खोटा रौद्र परिणाम है उससे हम नरक समुद्रमे आये।

आर्त रौद्रध्यानका फल—खोटे ध्यान ८ होते है। चार आर्तध्यान और ४ रौद्रध्यान। आर्तध्यान है इष्टवियोगज। इष्ट चीजका वियोग होनेसे जो उस इष्टके सयोगके लिए तड़फन होती है, वेदना होती है उसको इष्टवियोगज कहते है। अनिष्टसयोगज–अनिष्ट पदार्थ—कोई बैरी विरोधी किसी भी प्रकारसे अनिष्ट हो, उसका सयोग हो जाय तो उसके वियोगके लिए जो ध्यान चलता है उसे अनिष्टसयोगज आर्तध्यान कहते है। वेदनाप्रभव आर्तध्यान–शरीर मे कोई रोग आदिक की वेदना हो जाय उस वेदनासे जो ध्यान बनता है वह वेदनाप्रभव ध्यान है और चौथा आर्तध्यान है निदान। आगामी भोगोकी इच्छा करना, आशा बाँधना ये सब निदान हैं। तो इन चार प्रकारके ध्यानोमे जीवको खेद रहता है। ये तो चार आर्तध्यान हुए और रौद्रध्यान चार सुनिये—हिंसानन्द, हिंसा करते हुए आनन्द मानना, किसी ने हिंसा की हो, किसी जानवरका मरण हुआ हो तो उसमे आनन्द मानना, मृषानन्दमे झूठ बोलनेमे मौज मानना, दूसरोसे झूठ बुलवाना, झूठ बोलने वालेकी तारीफ करना और उसमे मौज मानना सो मृषानन्द है, चौर्यानन्द—चोरी करके आनन्द मानना, किसीकी चीज चुरा ले जाय, किसीपर डाका डाले और चोरी हो जाय तो उसे सुनकर आनन्द मानना चौर्यानन्द है। और परिग्रहानन्द—विषयोके जो साधन है उन साधनोके रक्षण और सग्रह करने मे आनन्द मानना सो परिग्रहानन्द है। अब आप देखिये कि आर्तध्यानमे तो खेद रहता है और रौद्रध्यानमे जीव मौज मानता है, मगर रौद्रध्यानके मौजसे यह जीव नरकमे जन्म लेता है। तो नरकोमे जो जीव उत्पन्न हुए हैं उनके अवधिज्ञान हुआ करता है। देव और नारकी दो भव ऐसे है कि जिन भवोमे जन्म लेकर नियमसे अवधिज्ञान होगा। ज्ञानी है तो सम्यक् अवधिज्ञान होगा और अज्ञानी है तो खोटा अवधिज्ञान होगा। तो नारकी जीव वहाँ जन्म लेनेके बाद विचार कर रहा है—ओह! हमने पूर्वजन्ममे हिंसाके कार्य किया, अनेक बाह्य परिग्रहोमे बुद्धि रखी, बडी ममता की, लोगोपर अन्याय किया, नाना व्यसन किया, उनके फलमे आज हम इस नरकरूपी समुद्रमे पडे है।

नरकोके अस्तित्वकी सिद्धि—देखिये नरक स्वर्गोकी बात केवल कल्पनाकी बात नही है। जैसे कि लोग कह देते है कि लोगोको बहकानेके लिए केवल बाते गढ दी गई हैं। नरक और स्वर्ग बराबर है, इसे समझनेके लिए पहिले तो ऐसा निर्णय रखिये कि जितना आगममे प्रतिपादन है वह सब दो प्रकारका प्रणीत है—एक तो ऐसा कि जिसे हम निश्चय से अपरिणामी सिद्ध कर सकते है और एक केवल ऐसा कि जिसमे युक्ति और अनुभव नही चलता किन्तु परोक्षरूप है। तो उनमेसे जिनमे हमारी युक्ति चल सकती है, कानूनसे सिद्ध

कर सकते, अविनाभावसे बता सकते, ऐसा तत्त्व जब सही बनता है तो जिसने यह प्रतिपादन किया उसीने परोक्षभूत नरक स्वर्गोका प्रतिपादन किया तो उसकी श्रद्धा और ऐसी हो जाती है। सर्वज्ञ देवकी भक्तिमे तत्त्व श्रद्धानकी बातको सही उतारनेपर कि स्वर्ग नरकका भी वर्णन बिल्कुल सत्य है। वीतराग ऋषि सतोको झूठ बोलकर कौनसा लाभ लेना है ? यथार्थ प्रतिपादन करना वीतराग ऋषि सतोका प्रयोजन होता है। अब जरा थोडा ऐसा भी सोच लीजिए कि आखिर यहाँ पृथ्वी है। इस पृथ्वीके नीचे केवल यह पृथ्वी हो और नरक हो तो उसमे बाधा क्या आयी, खण्डन करने वाले हो क्या ? लोग तो यह कहते है कि आखो दिखाई नही देता, न दिखाई दे, मगर उसके सद्भावमे बाधा क्या है ? यदि हो तो उसमे बाधा क्या ? फिर दूसरे जो लोग यह पाप करते है, हजारो लाखो पशुवोके शिकार करते हैं, उन्हे बडी बुरी तरह बेमौत मार डालते है, अनेक प्राणियोको सताते है, अनेक प्राणियो को मार भी डालते है, तो आप ही बताइये कि इस ही दुनियामे उनको दण्ड देनेका क्या उपाय है ? फाँसी लगा दी गई तो उसमे एक बार ही तो मरण हुआ। पर जिन कसाइयों ने हजारो लाखो पशुवोको मारा, लाखो प्राणियोका दिल दुखाया ऐसे मनुष्योको केवल फासी लगायी जाय तो वह पर्याप्त दण्ड नही मिला। लाखो मनुष्योको, पशु पक्षियोको सतानेसे जो पाप होता है उसका फल ऐसा होता है कि जैसे अनगिनते बार जीव मरे और मरकर भी मरे नही, किन्तु वे शरीरके खण्ड-खण्ड फिर मर जायें, फिर ज्योका त्यो शरीर बने इस प्रकारका भव हो तो यहाँके इन अनेक पापोका दण्ड प्राप्त किया जा सकता है। वही चीज है नरक।

घोर पापोके फलमे घोर नरकवेदना--उन नरकोमे पहुचे हुए ये प्राणी विचार कर रहे हैं कि अहो ! हमने बहुत आरम्भ किया, बहुत परिग्रह किया, बहुतसे प्राणियोको सताया, झूठ बोला, चोरी की, परस्त्री वेश्या आदिक पर कुदृष्टि की, परिग्रहमे ममता रखी, उन सब पापोके फलमे आज नरकके दुख भोगने पड रहे है। अच्छा नरकोकी बात तो जाने दो, यही देख लो, जो मनुष्य अपना खोटा विचार करता है उस खोटे विचारके कारण उसे तत्काल हैरानी होती है और उसका सिल्सिला ऐसा बढ जाता है कि उससे भविष्यमे भी हैरानी होती है, और जो सही बात विचार रखा, शुद्ध परिणाम रखा उसको हैरानी नही है। जैसे कोई पुरुष किसीको सतानेका परिणाम करे, किसी की निन्दाका परिणाम करे, किसी को दुर्वचन बोलनेका प्रयत्न करे तो उसे अपने चित्तमे पहिले कितनी हैरानी लेनी पडती है, कितना अपनेको दुखी करना पडता है, तब जाकर दूसरोको दुख पहुंचानेका यत्न होता है। कोई पुरुष दूसरेका सत्कार करे, सम्मान करे तो उसे कोई श्रम नही करना पडता। बडी प्रसन्नतासे आराममे वह सब बातोको कर लेता है। तो खोटे

परिणामोका फल तो इस ही भवमे इस जीवको यही प्राप्त हो जाता है, फिर जो विशेष खोटे भाव है उनमे नारकादिक आयुका बध होता है और ऐसा जीव मरकर नरकमे पहुँचता है, और अनगिनते वर्षो तक महान दुख भोगता है। अब सोच लीजिए कि यहाँ जो समागम पाया है तो वह कौनसा खास समागम है, कब तक रहने वाला है, समागमके समयमे भी कौनसा आनन्द भोग लिया जाता है ? क्षोभ चिन्ता, शोक आदिक नाना प्रकार की विडम्बनाए बनती है। इन समागमोमे जो आसक्त रहते है ऐसे पुरुषोको नरक गतिमे जाना पडता है।

तत प्रादुर्भवत्युच्चै पश्चात्तापोऽपि दु सह ।
दहन्नविरत चेतो वज्राग्निरिव निर्दय ॥१६६७॥

कृतपापके फलके स्मरणमे नारकियोका पश्चात्ताप—इसके वाद नारकी जीवोको ऐसा कठिन दु सह पश्चाताप प्रकट होता है कि जो सताप बज्राग्निके समान निर्दय होकर चित्तका दहन करता हुआ इसे दुखी करता है। जैसे यहा कोई भूल कर जाय तो भूल तो कर चुका, उस भूलके बाद इसे बडा पश्चाताप होता है और चित्तमे दाह उत्पन्न होती है कि मैंने कैसी कठिन भूल कर दी, इसी तरह यहाँ समझो कि ये प्राणी भूल तो कर गए, असयममे रहे, नाना प्रकारके खोटे व्यसनोमे रहे, अपनी सुधसे बिल्कुल दूर रहे, निर्दयता बसी, रौद्रध्यान बना, भूल तो की, उसके फलमे यह जीव नारकी बनता है, ऐसी नरकगतिमे यह दु सह क्लेश भोगता है। वहाँ एक नारकी दूसरेको मारनेके लिए कही बाहरसे कोई शस्त्र नही लाता हाथ उठाया और जैसे सकल्प किया कि मैं तलवार मारूँ तो हाथ ही तलवार बन जाता है। यह एक उनकी खोटी विक्रिया है। किसी दूसरे नारकीको साप बिच्छू बन कर सताना है ऐसी भावना बनी तो झट वे साँप बिच्छू आदि बनकर उसे सताने लगते हैं। जहाँकी भूमि इतनी दु सह वेदना वाली है कि बताया है कि सहस्र बिच्छू भी डसें तो भी उतनी वेदना नही होती जितनी वेदना नरककी भूमिको छूने मात्रसे होती है। जहाँ नारकियोको एक दाना भी नही मिलता, और भूख इतनी है कि सारी भूमिका अनाज खा ले तो भी भूख नही मिटती। बतावो यहाँ तो रात्रिका ही भोजन नही छोड सकते, दिनमे एक दो बार अच्छी तरह खाकर भी बिना खाये रात काटी नही कटती। एक कल्पना ऐसी लोगोकी बन गई है कि दिन ही दिन खानेका समय नही मिलता, कुछ परिस्थितिया ऐसी है कि जिनके कारण रात्रिको खाना ही पडता है। अरे यह बात उनकी ठीक नही है। एक बात तो यह है कि दिनमे एक दो बार अच्छी तरह खा लेने पर फिर खानेकी कोई जरूरत ही नही रहती, स्वास्थ्यमे कोई कमी आती नही, बल्कि दिनमे एक दो बार खाने पर स्वास्थ्य अच्छा रहता है। रात दिन कई बार खा पी कर तो स्वास्थ्य और

विगड जाता है । वाजारकी सडी गली चीजे, दही, जलेवी, रवडी आदि अभक्ष्य चीजे सर्वदा त्यागने योग्य है, जिन चीजोमे त्रस जीवोका घात होता है ऐसी चीजे सर्वदा त्याज्य है । लोग तो रात दिन जो चाहे सो खाते पीते रहते है उस खाने पीनेमे वडा मौज मानते है वह खाना पीना छोड नही सकते, लेकिन ऐसे असयमके फलमे, ऐसी खोटी वासनाओके फलमे नरकगतिमे जन्म हो गया तो फिर वहाँ क्या हाल होगा ? अभी जरा पुण्यका उदय है सो जरा भी कष्ट नही सहा जाता । यही देख लो अनेको मनुष्य जिनके पापका उदय है सभी दु ख पाते है । तो जैसे वे मनुष्य हैं ऐसे ही ये पुण्य वाले मनुष्य है । हाथ, पैर पेट, पीठ आदि सव एकसे है एकसा ही सभीका जन्म और मरण होता है । यही देख लो मनुष्य कष्ट पाते कि नही । पुण्यके उदयमे मौज माननेकी धुनि ऐसी वनी हुई है कि वडे नखरे करते है, जरा भी दुःख नही सहन कर सकते, सयम साधना नही कर सकते । उसके ही फलमे नरकगतिमे जन्म होता है और उनके चित्तमे ऐसी दाह पैदा होती है जैसी कि वज्राग्निकी दाह पैदा होती है ।

मनुष्यत्व समासाद्य तदा कैश्चिन्महात्मभि ।
अपवर्गाय सविग्नै कर्म पूज्यमनुष्ठितम् ॥१६६८॥

तिर्यग्गतिके जीवोकी वराकताका चित्रण—सस्थान विचय धर्मध्यानके प्रसगमे नारक भवमे नारकी क्या चिन्तन करता है—यह चिन्तन चल रहा है । कोई पुरुष कोई महान आत्मा किसी पुण्यके योगसे मनुष्यभवको प्राप्त करता है । देखिये सभी जीवोपर दृष्टि डालकर मनुष्यका भव कितना श्रेष्ठ है ? ये वृक्ष पृथ्वी आग वायु जल, वनस्पति फल फूल ये भी तो जीव हैं । इन जीवोकी अपेक्षा मनुष्यमे कितनी श्रेष्ठता है ? ये वेचारे जड जैसे हैं, जड नही है वे, है एकेन्द्रिय, मगर कोई क्रिया नही, कोई रचना नही, कोई विचार नही, वोल सकते नही, हिलडुल सकते है नही, जहाँ खड़े है, जैसे वने है वैसे पडे है अर्थात् वे जड जैसे लगते है कितनी निम्न स्थिति है उन एकेन्द्रियोकी ? उनसे तो मनुष्यभव कितना श्रेष्ठ है । कभी यह जीव दो इन्द्रिय भी हुआ, कीडा मकोडा हुआ तो वहाँ भी क्या विशेषता पायी ? यद्यपि कुछ इन्द्रियका ज्ञान वडा है मगर उससे लाभ क्या ? आहार, भय, मैथुन, परिग्रह—इन चार सज्ञारूपी ज्वरोसे वे पीड़ित है । उनको कुछ आत्माकी सुध भी नही है, ऐसे कीड़े मकौडे वनकर भी कुछ लाभ नही पाया । पशु पक्षी हुए तो उनका भी जीवन देख लो । पशुवोपर कौन दया करता है ? आज कुछ लोग कहते है कि गऊ वध वद करो । ठीक है । और कोई लोग ऐसा सोचते है कि अगर ये गाय वैल अधिक वढ़ जायेगे तो फिर ये कहाँ रहेगे, क्या खायेंगे ? देशमे वैसे ही भुखमरी है । तो प्रगट दिख रहा है कि जब तक गाय दूध वछड़ा देती है, वैल भी जब तक खेती वाडीके काम आता है तब तक तो

लोग उन्हे अच्छे ढंगसे रखते है, उनकी अच्छी प्रकार सेवा करते हैं, पर जब वे किसी कामके नही रहते, वृद्ध हो जाते हैं तो लोग उन्हे कसाइयोके यहाँ बेच देते है और उनका वहा बुरी तरहसे मरण किया जाता है। यह तो हालत है इन पशुवोकी। ये भैसे देखो कैसे जोते जाते है ? कितना उनको मारा जाता है, वे जीभ निकाल देते है, हाफते जाते हैं, बहुत बडा बोझा लादे जाते है, गले से खून भी टपकता है फिर भी कोडोसे पिटते जाते हैं। कौन उन पर दया करता है ? कुछ और बूढे हुए काम लायक न रहे तो कसाइयोके यहा बेच दिये जाते है। तो देखो उनकी कैसी दुर्दशा हो रही है। तो उन पशु पक्षियोके जीवन के मुकाबले यह मनुष्यभव कितना श्रेष्ठ भव है ? ये पशु पक्षी अपने मनकी बात भी दूसरे से नही बता सकते, दूसरोंके मनकी बातको जान भी नही पाते, उनके अक्षरात्मक बोली नही है, वही बाय बाय चे चे बोलकर अपना जीवन गुजारते हैं।

मनुष्यभवकी विशेषता मनुष्यको देखो—कितना हाव भाव, कितना अलकार, कैसा कैसा साहित्य, कैसी कैसी रचनाए, बडी बडी कलापूर्ण कविताएँ, ये सब रच डालते है। तो मनुष्यकी बुद्धि। मनुष्यका जन्म उन पशु पक्षियोसे कितना श्रेष्ठ है। ऐसे मनुष्यभव पाना जरा सोचिये तो सही कितने विशिष्ट पुण्यका फल है ? अब यदि हम उसी पुण्य फल पर प्रहार करते है तो जरा विचार तो करो कि हमारी क्या गति होगी ? यदि हम अशुभ भावमे रहते है तो नियमसे हमारी दुर्गति होगी। इस मनुष्यभवको पाकर हमे अपनी ऐसी सम्हाल करना चाहिए कि जिस सम्हालसे हमे आगे इससे भी अच्छी गति मिले, इससे भी अच्छे प्रसग आगे मिले। हम इस स्थितिसे कही नीचे न गिर जायें ऐसी चित्तमे धारणा रखना चाहिए। देखिये ससारमे हम आप जीवोका कोई दूसरा रक्षक नही है, खूब विचार कर लीजिए, अपने जीवनके अनुभवसे भी देख लीजिए। कदाचित् कोई मित्रादिक हमारी रक्षा करने वाले भी बनें तो वे इसलिए हमारे रक्षक बनते हैं कि हम सदाचारी हैं। तो कितने पुण्ययोगसे यह मनुष्यभव प्राप्त हुआ ? कदाचित् यह जीव मनुष्यभव पाता है तो ज्ञानी बने, विरक्त बने और मोक्षके लिए पवित्र आचरण करे। यदि पशु पक्षियोकी तरहसे ही अज्ञानतापूर्वक अपना जीवन बिता दिया तो मनुष्यभव पानेसे लाभ कुछ भी न पाया, बल्कि यहांसे मरण करके फिर निम्न गतियोमे जाना होगा।

मनुष्यभव पाकर महान् आत्माओ द्वारा महान् कार्यका यत्न—इस मनुष्यभवमे आ कर तो कोई ऐसा काम करना है जो किसी भी भवमे नही किया जा सकता। वह काम क्या है ? ज्ञान और वैराग्य। धर्मकी बातको आप दो भागोमे बाट लीजिए—ज्ञान और वैराग्य। जिन मनुष्योको शरीरादिक परद्रव्योसे भिन्न अपने आत्मस्वरूपका ज्ञान नही है उन मनुष्योसे धर्मपालन नही हो सकता। धर्म किसे करना है, धर्म क्या चीज है, धर्मका क्या

फल है और यह धर्म किया जा सकता है या नही, ये सब बाते जिनके निर्णयमे नही है वे धर्मपालन क्या करेगे ? धर्म क्या चीज है ? स्वभावका नाम धर्म है । हमारा स्वभाव क्या है ? जानन और देखनकी स्थिति रहना । ज्ञाताद्रष्टा रहना, केवल चैतन्यस्वरूप रहना, यही है हमारा स्वभाव । हम अपनेको मात्र चैतन्यस्वरूप प्रतीतिमे लाये । मै चैतन्यमात्र हू, मेरा कही और कुछ नही है । जो भी समागम मिले है वे धर्मके लिए मिले है, सभी विनाशीक है, भिन्न पदार्थ है, उनसे मेरा कुछ भी सुधार बिगाड नही है, मेरा सुधार बिगाड मेरे ही भावोसे हुआ करता है, मेरा रक्षक मैं ही हू, दूसरा कोई नही । जब मेरा कोई रक्षक नही तो मैं किसको प्रसन्न करनेके लिए अपनी धुनि बनाऊँ ? लोग तो इस लोकमे अपना यश, अपनी नामवरी बढानेकी धुनिमे रहते है पर जरा विचार तो करो कि वे लोग कौन है ? अरे वे स्वय कर्मोके प्रेरे मलिन जीव है, उनमे यशकी वाञ्छा करनेसे क्या लाभ ? प्रथम तो जिनमे अपना नाम चाहते है वे लोग इसे कुछ जानते नही, और जानते भी है तो इस शरीरपिण्डको ही जानते हैं । आत्मा तो इस शरीरसे न्यारा, रूप, रस, गध, स्पर्शसे रहित, अपने ही ज्ञानादिक गुणोमे तन्मय है, ऐसी चैतन्यमात्र वस्तुको तो वे कोई लोग जानते नही, अगर वे इसे जान जाये तो वे खुद ज्ञानी हो गए । उनकी दृष्टिमे फिर वह व्यक्ति न रहे, एक चैतन्यस्वरूप रहा । तो कोई मुझे पहिचानने वाला नही है । मै किसे प्रसन्न करूँ ? यह सर्व मायाजाल है । प्रसन्न करे तो एक अपने आपको करे । अपने उपयोगको ऐसा निर्मल बनाये, अपने आपके स्वभाव की ऐसी विशिष्ट दृष्टि बनाये कि ज्ञान बढे । ज्ञानरूप रहू मै, केवल जाननहार रहूँ तो यह ज्ञान धर्मपालन है । मै यथार्थ जान रहा हू तो मैं धर्मपालन कर रहा हू । दूसरा धर्मपालन है वैराग्य । जिन्हे मैंने पर समझा, अनात्म तत्त्व समझा उनसे राग न रहना चाहिए, उनसे प्रीति करनेमे क्या लाभ है, वे सब बाह्य चीज है ? तो परवस्तुवोसे वैराग्य रहे और अपने आपके स्वरूपका ज्ञान रहे, बस यही तो धर्मपालन है । अब जो लोग धर्मके लिए श्रम कर रहे है उन्हे अपने आपसे पूछना चाहिए कि हम ज्ञान और वैराग्यपर चल रहे है क्या ? अगर ज्ञान और वैराग्यका कोई अकुर नही उठा तो समझे कि हम धर्मपालनके पात्र नही है । शाति के लिए हमे ज्ञान और वैराग्यका यत्न करना चाहिए । सो वैराग्य तो होगा अपने आप । कोई बनावटसे नही होता, पर ज्ञानका तो हम प्रयत्न कर सकते है, हम वस्तुस्वरूपका अभ्यास करे, कुछ जानकारी रखे । सही-सही जाने, अपना ही ज्ञान मेरे हितका साधक है । हम ज्ञानाभ्यास मे अधिकाधिक यत्नशील हो तो वह ज्ञानाभ्यास हमारे कल्याण का हेतु बनेगा ।

विषयाशामपाकृत्य विध्याप्य मदनानलम् ।
अप्रमत्तैस्तपश्चीर्णं धन्यैर्जन्मार्तिशान्तये ॥१६६९॥

उपसर्गाग्निपातेऽपि धैर्यमालम्व्ये चोन्नतम् ।
तैः कृत तदनुष्ठान येन सिद्ध समीहितम् ॥१७००॥
प्रमादमदमुत्सृज्य भावशुद्ध्या मनीषिभि ।
केनाप्यचिन्त्यवृत्तेन स्वर्गो मोक्षश्च साधित ॥१७०१॥
शिवाभ्युदयद मार्गं दिशन्तोऽप्यतिवत्सला' ।
मयावधीरिता सन्तो निर्भर्त्स्य कटुकाक्षरैः ॥१७०२॥

नरकजन्महेतुओके स्मरण होनेपर पूर्वकृत पापका सताप— सस्थानविचय धर्मध्यान का प्रकरण चल रहा है । इसमे लोककी रचनावोका चिन्तन चल रहा है । कितना बडा लोक है, कैसी कैसी रचनाएँ हैं ? इस समय अधोलोकके चिन्तनमे नारकी जीव नरकमे उत्पन्न होकर यह सोच रहा है कि ओह ! मै यहाँ किस भूमिपर आ गया हू ? सारी भूमि भयानक दिखती है । थोडी देरमे जब कुछ प्रतिवोध होता है तो वहाँ ज्ञानी विचारता है कि अहो ! यह सब धर्मसे विमुख होनेका फल है । ऐसे साधु सतोकी वाणी मुझे बडी कटुक लगी, जिन साधु सतोंने विपयोकी आशा दूर कर कामरूपी अग्निको बुझाकर अप्रमत्त होकर महान तपश्चरण किया था, एक जन्म जरा मरणकी पीडा मिटानेके लिए ससारके दु खोसे छूटनेके लिए जो प्रतिबद्ध थे, निष्कपाय थे उन्होंने करुणा करके उपदेश भी किया तो मैंने उसे नही माना, विमुख रहा, उसे कटुक ही समझा, उस अधर्मका यह फल है कि इस नरक भूमिमे जन्म लेना पड रहा है ।

ज्ञानी पुरुषका सारके लिये सार उद्यम—देखिये सार तत्त्व, ज्ञानी पुरुषोंने ऐसा कौन सा एक आश्रय किया जिससे उन्हे सफलता मिली, मनको स्थिर किया, वश किया और अपने आत्माके प्रयोजनकी सिद्धि की । वहुतसे लोग यह समस्या सामने रखते है कि हम जब जाप देते है, पूजन करते हैं, सामायिक करते हैं, ध्यानमे बैठते है तो मन चारो ओर टिकता फिरता है । कही लगता नही । ऐसी ऐसी जगह मन पहुचता है कि जहाँ धर्म करते समय नही पहुचता । समाधानमे केवल एक ही बात है । जिन जीवोंने उस एक उपदेशका निर्णय नही किया, जो परमार्थभूत है, सत्य है, अपने आपमे शाश्वत विराजमान है वह मनको कैसे स्थिर कर सकता है ? एक स्वान्तस्तत्त्वके अनुभवके बिना किसीको भी धर्म मानकर वहाँ मन टिकाना चाहेगा, तो आखिर वह भी परस्थान है, भिन्न वस्तु है, मन कहाँ टिकेगा ? जिन्होने अपना अनुभव किया है मै देहसे भी निराला, तर्क वितर्कोसे भी परे, इन रागद्वेष विकल्पोसे भी परे अपने ही स्वभावसे केवलज्ञानप्रकाशमात्र, चित्स्वरूप मात्र यह मैं अतस्तत्त्व हू ऐसा जिनको प्रत्यक्षकी तरह अपना आत्मस्वरूप अनुभवमे आया है वे तो मनको झट वही टिका लेंगे, अपने मनको वश कर सकेंगे, किन्तु जिन्हे इस परमार्थ परम एक पदका अनुभव नहीं है

वे कदाचित धर्मके नाम पर भी मनको लगायेंगे तो कहाँ लगायेंगे ? मूर्तिमे लगायेंगे । किसी आकारको सोचकर उसकी भक्तिमे लगाये अथवा किन्ही विकल्पोमे लगायें । वे सब परस्थान है, वहाँ चित्त नही लग सकता । स्थिर होनेकी जगह तो निज स्वरूप है । जिन सतपुरुषोने ऐसे निजस्वरूपका अनुभव किया और जगतके जीवोपर करुणा करके कुछ उपदेश दिया तो जिन जीवोने उसे कटु माना, उस धर्मसे विमुख रहे, विषयोमे आसक्त रहे वे पुरुष नरक आयु का बध करते है, नरकमे जन्म लेते है और दुःख भोगते है । सस्थानविचय धर्मध्यानमे ज्ञानी-पुरुष चिन्तन कर रहा है । कैसी कैसी लोकमे जगह है और किस-किस तरहके जीव रहा करते है, इतने विस्तार वाले वर्णनको सुनकर, जानकर, लोकके विस्तृत स्वरूपको समझकर पुरुष रागसे दूर होते है और वैराग्यमे बहुत साधक है । लोक विस्तार और काल विस्तारका वर्णन जानना ।

सतोके उपदेशकी अवहेलनाका कटु परिणाम—जो जीव लोक विस्तारको नही जानते, कितना बडा लोक है और वहाँ प्रत्येक प्रदेशपर इस जीवने अनन्त बार जन्म लिया है, यह बात जिनके ज्ञानमे नही है वे अपने पाये हुए थोडेसे क्षेत्रमे ममता करते है । वहाँकी यश नाम-वरीसे वहाँके निवाससे उनके ममता हो जाती है और जिन्हे लोकस्वरूपका विस्तृत बोध है उन्हे अपने क्षेत्रमे ममता नही रहती । तो ऐसे साधु सतोका उपदेश जिन्हे नही रुचता वे जीव नरकमे जन्म लेते है । कैसे है वे सत पुरुष कि अपने तत्त्वज्ञानमे ऐसा दृढ है कि उपसर्ग आ जाय, अग्निदाह हो जाय, कैसी ही कठिन विपदा आ जाय पर धर्मका आलम्बन करके जिन्होंने अपने आत्माका अनुमान किया है और शुद्धि प्राप्त की है । ज्ञानमे ज्ञान है, ज्ञानका ज्ञान करने वाला ज्ञान है, जो ज्ञान ज्ञानके स्वरूपका ज्ञान कर रहा हो वह ज्ञान आत्मानुभव है । आत्मा को केवल ज्ञानके रूपमे जान सकते है, अन्य रूपमे इसकी परख नही हो पाती । यद्यपि आत्मा विस्तृत है, लम्बा चौडा फैला हुआ भी है, देहमे रहते हुएकी स्थितिमे यह देहप्रमाण है । देह मे मुक्त हो जानेपर जिस देहसे मुक्त होता है उस देह प्रमाण है, उसमे लम्बाई चौडाई है पर उस सब विस्तारको देखनेसे आत्माको आत्माका अनुभव नही मिलता । इस प्रकार आत्माकी अवस्थाएँ अनेक है, शुद्ध अशुद्ध परिणतियाँ अनेक है, उन परिणतियोको उपयोगमे रखनेपर आत्मानुभव नही होता, किन्तु आत्मा केवल ज्ञानमात्र है, एक प्रतिभासस्वरूप है ऐसा ज्ञानमे लेनेपर ज्ञानानुभव हुआ, वही आत्मानुभव है, ऐसा उत्कृष्ट ज्ञान कैसे प्रगट हो उसका साधक है भेदविज्ञान । यह मै आत्मा एक सद्भूत वस्तु हू । सद्भूत ज्ञानके नाते निरन्तर उत्पाद व्यय भी करता रहता हू । उत्पाद व्यय करके भी मै अपने स्वभाव द्रव्य स्वरूप ध्रौव्यको कभी नही छोडता । यो मैं आत्मा उत्पादव्ययध्रौव्यसे युक्त हू । मै उत्पादशील हू ना, अर्थात् मुझमे अनेक पर्यायें बनती रहती है, मै अपने परिणमनमे स्वतत्र हू अर्थात् किसी दूसरे पदार्थकी परि-

णति लेकर नही परिणमता हू । ... ही उपादान अशुद्ध हो, पर अन्य निमित्तका सन्निधान पाकर आत्मामे विषम परिस्थितिया होती है पर परिणमा यह आत्मा अकेला ही, निमित्तको साथ लेकर नही परिणमा । प्रत्येक पदार्थ यों उत्पादव्ययशील है । मैं परिणमता हू अपने लिए, मेरा फल केवल मुझे मिलता है। सुख मिले, दु.ख मिले, शाति मिले, मुक्ति मिले, मलिनता हो, आकुलता हो, अनाकुलता हो, मेरे लिए ही परिणमन है, मै अपने मे ही परिणमता हू । अपनी ही परिणतिका परित्याग करके नवीन परिणतिया लेता हू । यह मै आत्मा सर्वत्र अकेला हू । जब अपने स्वरूपका उपयोग रखता हू तब तो मोक्षमार्ग रहता है और जब स्वरूप का उपयोग छोडकर परपदार्थोंको अपनाता हू तो वहाँ बन्धनका मार्ग मिलता है । मेरा मैं ही जिम्मेदार हू, दूसरा मेरा जिम्मेदार नही, कोई परपदार्थ मेरा रक्षक नही । ऐसे तत्त्वज्ञानी पुरुषने अकेले स्वतत्र मार्गका साधन किया, उन्होने उपदेश किया, उस उपदेशको कटुक जान कर जो लोग दूर रहे, धर्मविमुख रहे, विषयोमे बसे रहे, रागद्वेषके बन्धनमे ही जकडे रहे ऐसे व्यसनी पुरुषोंने नरक आयुका बध किया और वे वहा जाकर दु ख भोगते है ।

संस्थानविचय धर्मध्यानमे ज्ञानीका चिन्तन—सस्थानविचय धर्मध्यानमे यह ज्ञानीका चिन्तन चल रहा है । जिन सत पुरुषोंने प्रमाद छोडकर, अभिमान छोडकर भावशुद्धि करके स्वर्ग और मोक्ष की साधना की, उन्होने स्वर्ग और मोक्षके मार्गको बताया बडे प्रेमपूर्वक करुणा से, लेकिन मैने उन वाक्योका तिरस्कार किया, उन साधु सतोका तिरस्कार किया जिनके कारण यहाँ अब मैं नरकभूमिमे दु ख भोग रहा हू । देखिये किन्ही भी विषयोंके भोगोमे इस आत्माको कुछ भी लाभ नही मिलता । एक विशेष इच्छा होती है, वेदना जगती है । रहा न जाय तो शान्तिके लिए उपाय करते हैं, मगर अन्तमे एक शान्त दिमागसे सोचा जाय तो यह निर्णय मिलेगा कि पञ्चेन्द्रियके विषयोमे से किसी भी विषयके भोगसे आत्माके साथ कुछ लगता नही है । जैसे कानोसे खूब राग भरी बात सुनते है, राग रागनियाँ प्रेमकी बाते, मोह उत्पन्न करने वाली बातें, काम भरी बाते सुनते हैं उन्हे सुन करके आत्माका क्या लाभ है ? परिणाम मलिन कर लेते है और अपना समय गवा लेते है । किसीका सुन्दर रूप नेत्रोसे देख लिया तो उससे क्या लाभ मिला, कुछ भी तो हाथ नही लगा बल्कि अपने परिणाम बिगाडा, ऐसी ही बात घ्राणेन्द्रियकी है । बहुत बहुत सुगधित तेल फुलेल लगा लिए, बडे सौरभ वातावरणमे रहे तो इससे आत्माको क्या लाभ मिला ? रसना इन्द्रियसे अनेक प्रकारके रस चख लिया, कुछ थोडासा स्वाद ले लिया तो उससे भी इस आत्माको क्या लाभ मिला ? हा थोडा इतनी बात है कि रसास्वादनसे कुछ क्षुधाकी वेदनाका शमन होता है, शरीरमे बल रहता है, जीवन रहता है तो यह कुछ थोडा लाभकी बात है । यो उस सम्बन्धमे यदि मृत्यु हो जाय तो जन्ममरणका भटकना तो बराबर चला । तो उदरपूर्तिसे थोडासा लाभ हुआ,

मगर रससे क्या लाभ लूटा ? रसका जो आस्वादन किया, और उसमें बडा उपयोग भ्रमाया, बहुत बहुत उसमे चैन माना, अब उससे क्या हाथ लगा ? बल्कि पेट दर्द करे, शिर दर्द करे। तो रसना इन्द्रियसे भी लाभकी बात कुछ न रही। स्पर्शनइन्द्रियके विषयभोगमे यह जीव अपना ही घात करता है। उपयोग बिगाडा और अपना देहबल भी बिगाडा, लाभ कुछ नही मिलता है। तो जो विषयोसे उपेक्षा करके अपने आत्मस्वरूपका बोध करते हे और आत्म-तत्त्वका निर्णय करके वहां उपयोग गमन करते है जीवन तो उनका धन्य हे। ऐसे पूज्य पुरुषो ने उपदेश किया करुणा करके, लेकिन मैने उस उपदेशसे विमुख होकर उनका तिरस्कार ही किया और अपनेको विषयोमे आसक्त ही रखा। इसका फल यह हुआ कि नरक भूमिके दुःख भोगने पड रहे है।

तस्मिन्नपि मनुष्यत्वे परलोकैकशुद्धिदे।
मया तत्सञ्चितं कर्म यज्जात श्वभ्रशंबलम् ॥१७०३॥

उत्थानके हेतुभूत मनुष्यत्व पाकर भी पापकर्म किये जानेका फल नरक जन्म— नारकी जीव विचार कर रहा है कि मै मनुष्य था और वहाँ ऐसा वातावरण भी मिला कि परलोकको मै शुद्ध बना लेता, इतना ज्ञानावरणका क्षयोपशम भी मिला, जानकारीकी योग्यता भी मिली। मै उस योग्यताका सदुपयोग कर लेता तो मै ससारके दुःखोमे छूटनेका उपाय बना लेता, लेकिन ऐसे योग्य मनुष्यभवमे भी मैने ऐसे ही कर्मोका सचय किया, ऐसी ही कुबुद्धि की, जिसके फलमे यह नरकका सम्बल मिला इनाम मिला, नारकी होकर दुःख भोगना पड रहा है। कितना अमूल्य जीवन है यह मनुष्यका भव। तुलना करके देखो जगतके अन्य जीवोसे साफ विदित होगा कि इससे श्रेष्ठ अन्य कोई भव न मिलेगा। लोग तो ऊपरी तारीफ करते है कि मनुष्यका चमडा भी काम न आया, पशुवोका तो चमडा भी काम आया, मनुष्योकी हड्डी भी काम न आयी, मनुष्यके रोम भी काम न आये, पर पशुवोकी हड्डी, रोम आदि भी काम आ जाते है, तो इसको इस दृष्टिसे सुना जाय कि मनुष्य यदि धर्मकार्य न करे तो इससे अच्छे पशु है, ठीक है, लेकिन तुलना करके विचारो तो मनुष्य ससारके सर्व जीवोमे सर्वोपरि जीव है। जहाँ सयम साधना कर सकते है, अपने उपयोगको अपने आपमे ऐसा स्थिर कर सकते हैं कि जितनी स्थिरता अन्य भवमें सम्भव नही है। श्रुतकेवली यह मनुष्य ही होता है, मनःपर्ययज्ञानी यह मनुष्य ही होता है, परमावधि और सर्वावधि ज्ञान मनुष्य भवमे ही होता है, केवलज्ञान मनुष्यभवमे ही होता है, बादमे रहा आया सिद्ध अवस्थाकी भी प्राप्ति इस मनुष्यभवमे ही होती है, ऐसा यह श्रेष्ठ मनुष्यभव है, किन्तु एक सत्सगतिका लगार लगा रहे जिससे उपयोग कुछ सावधान रहे और यह उपयोग सन्मार्गमे लगे तो भला है और सत्सग का अभाव रहा, उपयोग गलत मार्गमे चला जाय तो कुमार्ग ही कुमार्ग बढता जायगा। वहाँ

अशुभ कर्मका बन्ध, अशुभ आयुका बन्ध होता है जिसके फलमे इस जीवको अनेक त्रास भोगने पडते है। उस लोकमे अधोलोककी ऐसी विषम रचना है जहाँकी भूमि अटपटी है, जहाँके स्थल सुहावने नही, जहाँ जन्मस्थान भी अटपटे, एक तिकोने ऊपर भागसे वे नारकी टपक पडते है, वहाँसे उत्पन्न होकर अधोमुख गिरते है, वे स्थान टेढे मेढे ऐसे स्थान हैं कि वहाँसे ये नारकी जीव जन्म लेकर नीचे गिरते है। गिरते ही हजारो बार उस भूमिपर गेदकी तरह उछलते है और दूसरे नारकी जीव उन्हे मारनेके लिए उनपर टूट पडते है। शरीरके खण्ड-खण्ड कर डालते है फिर भी कुछ ऐसा अशुभ कर्मका उदय है कि वे मरते नही हैं, वे शरीर के टुकडे फिर पारेकी तरह मिलकर शरीर रूप हो जाते है, घोर वेदना पाते है, किन्तु उनकी आयु अनगिनते वर्षोकी होती है और वे आयु पूरी करनेसे पहिले मरते नही है, ऐसी नरक गतिमे जन्म अशुभ भावके कारण होता है।

अविद्याक्रान्तचित्तेन विषयान्धीकृतात्मना।
चरस्थिराङ्गिसघातो निर्दोषोऽपि हतो मया ॥१७०४॥

अज्ञानमे विषयान्ध होकर जीवघात किये जानेके पापका संताप—नारकी जीव विचार करता है कि मैने अज्ञानसे आक्रान्त होकर और विषयोमे अध होकर त्रस और स्थावर प्राणियो का घात किया। भला बतलावो कि शिकार खेलनेके व्यसनमे जिस जीवका प्राण घात किया उस जीवने इस शिकारीका क्या बिगाड किया, लेकिन वह शिकारी निर्दय होकर उस निर-पराध पशुको मार डालता है। इस अपराधके फलमे उस हिसक पुरुषको ऐसे ही नरकोमे जन्म लेकर घोर दु ख सहने पडते है। यहाँपर कोई पुरुष एक-आध जीवका अपकार करे तो राजा भी उसे दण्ड दे दे, पर जिसने अनेक जीवोका हनन किया उसको उतना दण्ड देनेकी सामर्थ्य यहाँ किसमे है? राजाने एक बार फासी दे दी तो उसका एक ही बार मरण हुआ, उसे अभी उतने पापोका फल तो नही मिल पाया। तो उन सभी पापोका फल है नरकोमे जन्म लेकर घोर दु ख सहन करना। दिन भरमे करोडो बार मरण हो और फिर शरीरके टुकडे टुकडे इकट्ठे हो जाते है फिर उसी दु खको भोगना पडता है, यह सब अज्ञानका माहात्म्य है। जिसने आत्मस्वरूपको जाना वह सबमे उसी स्वरूपको जानता है। देखिये स्वरूपदृष्टिसे आत्मा सब समान है और समानको एक कह दिया जाता है। जैसे गेहूँका ढेर लगा हो तो ग्राहक लोग गेहूँको बहुवचनमे नही कहते, एक वचनमे बोलते है, यह गेहू किस भावमे दिया है? अरे भाई! तू क्या एक दाना खरीदना चाहता है? अगर तू बहुतसे दाने लेना चाहता है तो यह कह कि इन गेहुवोको किस भावसे दोगे? मगर ऐसा कोई नही कहता। क्यो नही कहता कि जो समान चीज है उसमे एक वचनका प्रयोग होता है। स्वरूप दृष्टिसे सब आत्मा एक समान है, चाहे प्रभु हो, चाहे ससारी हो, चाहे स्थावर हो, चाहे त्रस हो, जीवका स्वरूप

एक ही है । स्वरूपदृष्टिसे आत्मा एक है, ब्रह्म एक है ऐसा कहनेमे कोई हर्ज नही है परन्तु द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चतुष्टय लेकर पूर्ण सत् निरखकर एक कल्पना कर लिया जाय तो तो वहाँ आपत्ति आती है ।

स्वरूपदृष्टिसे समान व व्यक्तित्वदृष्टिसे अनेक जीवोंके तथ्यके ज्ञान बिना पापप्रवृत्तिकी संभवता—स्वरूपदृष्टिसे आत्मा एक है, पर अनुभवदृष्टिमे आत्मा अनेक है । आपका सुख दुःखका अनुभव आपमे चल रहा है, मेरा सुख दुःखका अनुभव मेरेमे चल रहा है । यदि सभी जीव मिलकर एक ही ब्रह्म हो तो जो एकको अनुभव है वही सबको होना चाहिए, पर अनुभव सबके जुदे जुदे है । इससे सिद्ध है कि आत्माये अनेक है अनन्त है किन्तु स्वरूप एक है । जैसे गेहुवोका स्वरूप आकार रग रूप और उसका स्वाद रस सब एक समान हैं, इसी प्रकार जीवका सारा ढाँचा व गुण पिण्ड व स्वभाव सब जीवोमे एक है । जिसने अपने आत्माके स्वरूपका अनुभव किया उसने सब आत्मावोमे उस स्वरूपका निर्णय किया, वह दूसरोके सतानेका, उनका घात करनेका भाव कैसे कर सकता है ? जिसका चित्त अज्ञानसे दबा हुआ है अपना कुछ पता नही और अपना और पराया भी मानेगे तो एक पर्याय बुद्धिमे अटककर ही अपने परायेका निर्णय करेंगे । जिनको परमार्थस्वरूपका बोध नही, अज्ञानसे जिनका चित्त आक्रान्त है और इसही कारण विषयोमे जो अध बन गए है ऐसे पुरुषोने त्रस स्थावर प्राणियोका उन निर्दोष प्राणियोका घात किया, जिसके फलमे नरकभूमिमे उत्पन्न होकर घोर दुःख उठाने पडे । मारे दुःखोकी जड अज्ञान है । जो मै नही हू उसे मानना कि मै हू यह अज्ञान है । देह मै नही, पर देहमे इतना अभ्यास बना है, ऐसा अभिप्राय लगा है जीवके कि मै यह हू । देहको देखकर बोलते है कि यह मै हू, मै ऐसा हू । ये रागादिक विकार यद्यपि ये मेरे परिणमन है फिर भी मै नही हू । ये कर्मउपाधिका निमित्त पाकर होते है, मेरे स्वभाव नही, मेरे स्वरूपके कारण नही उठे है, लेकिन उन विकारोको मानना कि यह मै हू । पोजीशन नामवरी यश ख्याति इन सबमे मानना कि इनसे मेरा हित है । ये ही मेरी चीज है, इनसे ही मेरा बडप्पन है, यह सब मान्यता अज्ञानमयी है । सत्यभूत चीज क्या है ? अपनेमे इसका यदि दर्शन करते है तो ये चतुराइयाँ, ये सब ज्ञान, ये सब विकल्प जो हमने सीखे है उन सबको दूर करके देखा जा सकता है, मेरेमे सत्य तत्त्व क्या है ? जब तक हम किसी विकल्पको अपनाये रहेगे तव तक हमे उस सत्यका दर्शन न होगा । विकल्पोको अपनानेमे, पर्यायोको आपा माननेमे अज्ञानसे मेरा चित्त दबा रहा, विषयोमे अध रहा, असयम किया, इसके फलमे नरकभूमिमे जन्म लेना पडा है—ऐसा कोई प्रतिबुद्ध नारकी चिन्तन कर रहा है ।

परवित्तामिषासक्त परस्त्रीसगलालस ।
वहुव्यसनविध्वस्तो रौद्रध्यानपरायण: ।।१७०५।।
यत्स्थित प्राक् चिर काल तस्यैतत्फलमागतम् ।
अनन्तयातनासारे दुरन्ते नरकार्णवे ।।१७०६।।

मासभक्षण, परस्त्रीसेवन व व्यसनासक्तिसे हुए पापोका संताप—नारकी जीव पश्चाताप करता है कि मै परके धनमे आसक्त रहा, परस्त्रीका सग करनेमे मोही रहा, परस्त्री सग की लालसा रखता रहा, परके धनरूपी मासमे आसक्त रहा, और-और भी बहुत प्रकारके व्यसनोसे पीडित होकर रौद्रध्यानमे रहा, तो जब पूर्व जन्ममे इस प्रकारके कुपथपर रहा तो उस ही कारण इन अनन्त पीडावोंमे अपार नरकरूपी समुद्रमे हमे गिरना पडा। जब मनुष्यो को भी कठिन वेदना आती है तो उस समय उसका भी दिमाग कुछ ठिकाने होता है। यह लौकिक आनन्द, यह रौद्रध्यान, यह परिणामोकी मलिनताका अधिक कारण है। दु:खमे परिणामोकी मलिनता उतनी नही होती जितनी विषय सुखोंके मौजमे। नारकियोमे जो नारकी कुछ विवेकी है वह चिन्तन करता है, बाकी अज्ञानी जीवोके वह चिन्तन नही है। मारो, काटो, इन ही प्रसगोमे वे व्यस्त रहते है। सम्यग्दृष्टि नारकी हो तो उनके तो ध्यान पहुचता ही है, पर जो विशिष्ट ज्ञान रखते है उनके न भी सम्यग्दर्शन हुआ हो तो तब भी यह विचार बन सकता है। जैसे यहाँ मनुष्योमे अनेक मनुष्य धर्मके सम्बधमे चिन्तन रखते है, सभी तो सम्यग्दृष्टि नही है, फिर भी कुछ ध्यान रखते है तो ऐसे ही नारकियोमे जिनके मिथ्यात्व मोह कुछ कम है, कुछ विवेक है वे भी चिन्तन करते है और सम्यग्दृष्टि नारकी चिन्तन करता है और इस प्रसगमे। तो भी मुनिराज ऐसा विचार कर रहे है कि यह लोक इतना बडा है, इसमे अधोलोककी ऐसी रचना है वहाँ नारकी ऐसा चिन्तन कीजिए। यह प्रकरण है सस्थानविचयधर्मध्यानका। सस्थानविचयधर्मध्यानका अर्थ है उसका जो लोक और कालकी रचनाके आश्रय धर्मध्यान चलता है, जो समागम प्राप्त हुए है, जिन विकल्पोमे हम रहा करते है वे सब एक विडम्बना है। ये विकल्प और ये भोग, ये आत्माके हितरूप नही है। यह बात जिनके चित्तमे समाई हुई है वे लौकिकतासे बढकर कुछ अलौकिक तत्त्वमे आ जाते है और जिनके चित्तमे यह ससार ही समाया है, अपना नाम यश प्रतिष्ठा, ये ही जिनके चित्तमे समाये है वे अज्ञानी जीव है और उनको आत्महितकी वाञ्छा नही होती। तो नारकी इस प्रकार चिन्तन करता है कि मैं मनुष्यभव पाकर और कुछ हितसाधन पाकर भी विकारो मे व्यसनोमे आसक्त रहा जिनके फलमे आज नरकमे जन्म लेना पडा है।

यन्मया वञ्चितो लोको वराको मूढमानस. ।
उपायैर्बहुभि पापै स्वाक्षसन्तर्पणार्थिना ।।१७०७।।

कृत पराभवो येषा धनभूस्त्रीकृते मया ।
घातश्च तेऽत्र सप्राप्ता कर्तु तस्याद्य निष्क्रियाम् ॥१७०७॥

प्रवञ्चनासे हुए पापोका संताप—पूर्वजन्ममे मैने इन बेचारे गरीव लोगोको ठगा, अनेक अन्यायरूप उपाय किया, अपनी इन्द्रियो को पोषने लगा, अपनी स्वार्थवृत्तिके कारण मैने अनेक गरीब लोगोको सताया, परका धन, परकी भूमि, परस्त्री लेनेके लिए मैने जिन जिनका अपमान किया, जिन जिनका घात किया, जिन जिनको सताया वे ही लोग इस नरक-भूमिमे आये है और मेरे मारनेके लिए उद्यमी हुए है। कोई खोटा परिणाम करे तो उसका फल भोगना पडता है, अच्छा करे तो उसका भी फल भोगना पडता है। वर्तमानमे कुछ पुण्य के कारण इस समय पाप करते हुए भी फल नही सामने आ रहा तो मत आवो, लेकिन आज जो पापका परिणाम किया जा रहा है यह सब फल देगा। लोग थोडेसे धन की लिप्सा रखकर अन्याय और पापकी बातको एकदम गौणकर देते है, अपने परिणाम मलिन रखते है और धन लाभकी ओर दृष्टि रखते है, मगर विश्वास नही है उन्हे, असत्य बोलकर, मायाचार करके बेईमानी करके किसी प्रकार कपट करके भी जो धन मिला है वह धन बेईमानी कपट करनेसे नही मिला है किन्तु वह तो मिलना था सो मिला है, बल्कि बहुत कुछ सम्भव है कि इससे अधिक मिलना था, पर वर्तमानमे कपट आदिक भावोके कारण तुरन्त ही कम हो जाता है। जिसे आत्महित चाहिए उसका जीवन फकीराना हो जाता है। वह अपने परिणामोकी साव-धानी रखता है। अपने परिणामोको मलिन करनेका भाव ज्ञानी पुरुष नही रखता। क्या है, धन मिल गया तो उससे इस अमूर्त निर्लेप आत्माको लाभ क्या मिल जायगा ? कुछ भी तो उससे इस आत्माका सुधार नही होनेका है। धन कमाकर तो लोग इसी बातमे लाभ मानते कि इन लोगोंमे हमारी भी कुछ गिनती हो जायगी। सो लोग भी असार है, मायामय है, उन लोगोसे कौनसा लाभ मिलेगा, लेकिन जहाँ इस ही ख्यालके बहुतसे लोग है वहाँ कोई ज्ञानी विरक्त एक हो तो उसकी क्या चले ? बल्कि जैसे आजकल कोई सच्चाईसे चले तो उसे सब बेवकूफ कहते है, क्योकि प्राय सभी लोग सच्चाईसे गिरे हुए है, इसी तरह कोई निर्मोह रहकर कुछ धर्मकी विशेष चर्चाये करके अपने जीवनको सयमपूर्वक बिताये और उसमे भी गरीबी रहे तो भी उस ज्ञानी पुरुषको इसकी कुछ परवाह नही रहती। मेरे लिए तो मै ही रक्षक हू। दूसरा मेरा कोई साथी तो नही। जो हितकी बात हो उसे करना है मुझे। ऐसी ज्ञानी की धुनि रहती है। दूसरेकी भूमि हर लेना, छल प्रपच करके कुछ अधिक भूमि बना लेना यह कोई भली बात है क्या ? अरे यह भूमि साथ जायगी क्या ? यह तो थोडे समयका गुजारा है, जिस समयकी कुछ गिनती भी नही। उस अनन्त कालके सामने सागरों पर्यन्त कालकी तो कुछ गिनती नही, फिर यह १०–२०–५० वर्षकी तो कुछ गिनती

ही क्या ? इतनेसे समयके लिए कुछ अपने को खुश करनेकी बात बनाये तो उसमे लाभ क्या हुआ ? जीवन उसका धन्य है जो वीतराग सर्वज्ञदेवके लगावमे रहते है, जो उसही ओर अपना चित्त लगाकर खुश रहा करते है और व्यवस्थाकी बात तो छोटेसे छोटे लोग भी व्यवस्था बना लेते है और बडेसे बडे धनिक भी व्यवस्था बना लेते है। एक लक्ष्य होनेकी बात है फिर सब आ सकता है। मुझे आत्महित करना है, मुझे आत्मस्वरूपके दर्शनमे यत्न रखना है, यही रमना है, ऐसा लक्ष्य बन जाय तो मेरे लिए ये व्रत नियम सयम और गरीबी की भी व्यवस्था ये सारी चीजे उसे आसान है, पर जिन्होंने अपना लक्ष्य नही बनाया, स्वरूप दर्शन नही किया उनका चित्त तो बाहर बाहर ही रमेगा, उन्हे शान्ति कहाँसे होगी ?

परस्त्री सेवनसे हुए पापोका नरकमे संताप—परस्त्रीका विकल्प कितना गदा विकल्प है, परस्त्रीका स्नेह करके पुरुप रहेगा कहाँ, क्या स्थिति बनेगी ? निरन्तर उसके आकुलता बेचैनी रहेगी, भय रहेगा और चित्त ठिकाने ही न रहेगा। कितना कर्मबन्ध होगा ? उस कर्मके उदयमे नरकमे ही जन्म लेना होता है। यह नारकी जीव विचार कर रहा है कि परस्त्री, परधनके पीछे मैने लोगोपर अन्याय किया, अपमान किया, उनका तिरस्कार किया, घात किया। जिन जिनका हमने घात किया, जिन जिनको हमने सताया वे जीव भी यहाँ नारकी बने है और मेरे घातपर उतारू है।

ये तदा शशकप्राया मया बलवता हता:।
तेऽद्य जाता मृगेन्द्राभा मा हन्तुं विविधैर्बधै ॥१७०९॥

शिकार करने, जीवघात करनेका नरकमे सताप—नारकी जीव विचार कर रहा है कि जब मै मनुष्यभवमे था तो मै बलवान था, मेरे आगे ये ही नारकी जो मेरे मारनेको उद्यमी हो रहे थे वे मेरे समयमे बेचारे दीन गरीब खरगोशकी तरह थे, मै बलवान था, मैने इन्हे मारा, किन्तु आज ये सिहके समान हो रहे है और नाना प्रकारके घातोसे मुझे मारनेके लिए उद्यमी हो रहे है। परदृष्टि बहुत बडा पाप है, परमे राग अथवा द्वेष होनेसे अपने आपकी कुछ सुध नही रहती। यह महापाप है क्योकि जीवोको शान्तिका पथ ही नही मिल सकता। बाह्यदृष्टि करना यह जीवका एक विरुद्ध काम है। सारी आकुलता परदृष्टिसे उत्पन्न होती है, चित्त ठिकाने नही रहता, मन वशमे नही रहता, यह सब परदृष्टिके कारण हुआ करता है। कितना दु:ख भोगना पडता है ? अभी अभी कानपुरमे एक धनिकके घर छापा मारकर सरकारने उसका करीब ५० लाखका धन जब्त कर लिया। उस समय उसके परिवारके सभी लोग अपना दिल मसोसे बेचैन हालतमे पडे हुए है। तो करोडो रुपयेकी जायदाद छिपाकर रखा, उसका फल क्या हुआ सो देख लीजिए। कजूसके पास धन कितना है यह तभी प्रकट हो पाता है जब उसकी चोरी, मारपीट लुटाई हो। तो जिस परिग्रहके लिए लोग निरन्तर व्या-

कुल रहा करते है वह परिग्रह जुड जानेपर व्याकुलता मिट जायगी क्या ? सब जगह दृष्टि डालकर देखो, पर धनिक बननेकी इच्छा सभीके लगी है। धनिक बनकर मिलता-जुलता कुछ नही बल्कि आकुलताएँ बढती है, कितने ही लोग तो कोई बडी हानि हो जानेपर हार्ट फेल होकर गुजरते है। तो जिन समागमोमे लोग मौज मानते है वे समागमपर दृष्टिके दृढ करनेमे कारणभूत बन जाते हैं, अतएव उनके खोटे कर्मोका बन्ध होता है, दुर्गतिमे जन्म लेना पडता है। नारकी जीव चिन्तन करता है—हाय ! मै कैसा बलवान था, इनको अपने वश रखता था, ये बेचारे गरीब मेरेसे भय करते थे, पर ये ही नारकी बनकर आज मेरा नाना तरहसे घात कर रहे हैं। यह सब कर्मोकी बरजोरीकी बात है। जो मनुष्य खोटा परिणाम करता है प्राय. करके वह खाली नही जाता, उसका फल अवश्य भोगता है, और कुछ अनुभवसे भी विचार लीजिए कि खोटा परिणाम यद्यपि तत्काल फल नही दिखाता, मगर कुछ समय बाद उसका फल इसी भवमे दिख जाता है।

मानुष्येऽपि स्वतन्त्रेण यत्कृत नात्मनो हितम् ।
तदद्य कि करिष्यामि दैवपौरुषवर्जित ॥१७१०॥

मनुष्यभवको प्रमादमें गंवाकर नरकमे आनेकी परवशताका चिन्तन—वह नारकी जीव विचार करता है कि जब मै मनुष्य भवमे स्वाधीन था तब ही मैने आत्महितका साधन नही किया तो अब इस नरक भवमे जहाँ भाग्य भी साथ नही दे रहा और पुरषार्थ भी नही चल रहा तो इस नरक भवमे मै क्या कर सकता हूँ, यहाँ मेरा हित साधन नही हो सकता। जहाँ हितसाधन हो सकता था उस भवको तो मैने व्यसनोमे पापोमे गवा दिया, अब यहाँ नारकीका भव मिला है तो यहाँ भाग्य तो साथ यो नही दे रहा कि कोई साधन ही नही है, सारे असाताके फल भोगनेके स्थान है। कोई सत्सगति ही नही है। सभी जगह क्रूर जीवोका वास है। यह एक ऐसा भव है कि जहाँ कोई पुरुपार्थ नही है, व्रत नियम वगैरह भी नही हो सकते है। तो जिस भवमे मैं हित कर सकता हू उस मनुष्यभवको तो मैने बिगाड दिया, असयममे खो दिया, अब उसके फलमे आज नारकी हुआ हू तो यहाँ मै क्या कर सकता हू ? देखिये कितनी बडी जिम्मेदारी है इस मनुष्य भवकी, लेकिन अज्ञानी इस मनुष्यभवको पाकर, उस बल शक्तिको प्राप्त कर स्वच्छन्द होकर जैसा मन चाहता है वैसी ही वृत्ति करनेको उद्यमी बन जाता है। चाहे वह अति खोटा व्यसनी ही क्यो न हो चित्तमे आया और सामर्थ्य उसके है, कर सकता है तो उन व्यसनोको पापोको सभीको कर सकता है। कहाँ तो मनुष्यभवसे सदाके लिए ससार सकटोसे छूटनेका उपाय बनाया जा सकता है और कहाँ यह मनुष्य भव नरकमे उत्पन्न होनेका कारण बन गया। नारकी जीव ऐसा चिन्तन कर रहा है कि अब मेरा भाग्य भी अनुकूल नही है और पुरुपार्थ भी मै कुछ नही कर सकता, ऐसी हीन दशा है

नरक भूमि।

सम्यग्दृष्टि नारकी वृत्ति—यदि कोई नारकी सम्यग्दृष्टि है तो उस सम्यग्दृष्टिके सम्यक्त्वकी महिमा देखिये कि ऐसे घोर दु खोंके बीच पडा हुआ भी नारकी ज्ञानामृतके पानसे तृप्त रहा करता है। सम्यग्ज्ञानकी महिमा देखियेगा, सम्यक्त्वका प्रताप देखियेगा, शरीरके खण्ड-खण्ड हुए जा रहे है, नाना प्रकारके शस्त्रोसे छेदन किया जा रहा है, चमडी छील छील करके उसके खण्ड-खण्ड किए जा रहे है, पर ज्ञानी नारकी अपने उपयोगमे सम्यक्त्वकी भावना बनाता है, अपने स्वरूपका दर्शन करके तृप्त हो रहा है। देखो सम्यग्दृष्टिका नरकमे भी बिगाड होता है। बेचैन है मिथ्यादृष्टि जीव, देवागनाओको मनानेमे और नाना तरहकी परदृष्टिमे आकुलित है। भले ही वे मौज मान रहे है पर वह मौज व्याकुलतासे भरी हुई है। हाँ सम्यग्दृष्टि देव होगा तो वह भी वैसा ही पवित्र है। जैसे कि नारकी दु खोसे नही घबडा रहा और ज्ञानामृतका पान कर रहा है, इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि देव सुख और मौजमे मस्त नही हो रहा किन्तु एक ज्ञानामृतका पान कर रहा है।

ज्ञान ही हमारा रक्षक, पिता, कुटुम्ब, शरण, सर्व कुछ ज्ञान ही है। खूब विचारो कि हमारे पास सभी साधन है, सारी सम्पदा है, परिजन भी बहुत अच्छे हैं, मुझे सुखी देखना चाहते है, पर हमारा ज्ञान खोटा हो, आशय हमारा मलिन हो, पागलपन हमारे छा गया हो तो वहाँ हमारा शरण कौन हो सकता है ? केवल हमारा ज्ञान ही हमारा शरण हो सकता है। बुद्धि ठिकाने रहे, इससे बढकर कोई वैभव नही। धनिक भी हो और बुद्धि ठिकाने न हो, अस्तव्यस्त दिमाग हो, तो उसका भी जीवन क्या जीवन है और जिसका विवेक जागृत हो वह गरीब भी हो, किसी तरह मुश्किलसे अपना गुजारा चलाता हो, किन्तु हृदय पवित्र हो, ज्ञान सही है तो वह तृप्त रहा करता है। तृप्ति किसी बाहरी चीजसे नही मिल सकती, तृप्ति तो ज्ञानसे ही मिलती है। कितना ही धन जुडे, तृप्ति नही हो सकती। जैसे कितनी भी नदियाँ आकर मिल जाये तो भी समुद्र तृप्त नही होता, इसी तरह धन कितना ही आये पर यह मनुष्य तृप्त नही हो सकता। कोई मनुष्य यह कहनेको तैयार नही है अपने बारेमे कि मुझे जो कुछ धन मिला है वह मेरी जरूरतसे बहुत अधिक मिला है। इस दुनिया मे अपने बडप्पनकी जो चाह लगी है, धनी होकर लोकमे मेरा कुछ नाम होगा यश होगा ऐसी जो भ्रान्ति लगी है उस भ्रान्तिके कारण यह तृप्त नही है। अरे अनन्त भव व्यतीत हो गए, उन भवोको कौन जानता है, आज उन भवोकी घटनासे कौन परिचित है, मेरा क्या यश है अब ? जब उन अनन्तभवोका कोई यश नही रहा अब तो इस भवका भी यश क्या रहेगा ? ज्ञान ही वैभव है और अज्ञान ही दारिद्रय है।

मदान्धेनापि पापेन निस्त्रिंशेनास्तबुद्धिना ।
विराध्याराध्यमन्तान कृत कर्मातिनिन्दितम् ॥१७११॥

नारकी जीव द्वारा कृतपापका निन्दन—नारकी जीव फिर विचार कर रहा है कि मदसे अधे, पापी निर्दय जिसकी बुद्धि नष्ट हुई है ऐसे इस भयसे आराधना योग्य शान्तिपथमे लगाने वाले पूज्य पुरुषोका सम्मान नही किया बल्कि अपमान किया, निन्दनीय कर्म किया उसके फलमे आज नरकका फल भोगना पडा। लोग अपनी चतुराईमे आकर जैसी उनकी बुद्धि है उस माफिक अपने को वडा होशियार जानकर बडे पुरुषोका अपमान करते रहते है। हो तो रहे है ये सब आसान काम इनके लिए, क्योकि आज पुण्यका उदय पाया है, कुछ इस प्रकार की बुद्धि आदिक पायी है, पर उन खोटी वृत्तियोके फलमे उन्हे नरक गतिमे जन्म लेना पडता हे और घोर दुःख सहना पडता है। महापुरुषोका अपमान करना, निन्दा करना इसका फल नरक भवमे जन्म लेना बताया है। यह नारकी जीव विचार कर रहा है कि मैं उस मदमे अधा था, पापी था, दयाहीन था, जिससे बुद्धि नष्ट हो गई थी, मैंने पूज्य पुरुषोका तिरस्कार किया था, अति निन्द्य कार्य किया था, उसके ही फलमे आज मुझे ये नरक भूमिकी अनेक पीडाये सहनी पडी। सस्थानविचयधर्मध्यानमे एक सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष अधोलोककी रचनाका चिन्तन कर रहा है कि नरकमे रहने वाले नारकियोकी कैसी स्थिति है और उनमे कोई विवेकवान नारकी हो तो वह इस प्रकारका चिन्तन कर रहा है। इस धर्मध्यानमे जो लगता है उसको विषयकषाय नही सताते, अज्ञान नही सताता और शान्तिसे अपना समय व्यतीत करता है। ज्ञान ही समस्त विपदावोसे निवृत्त होनेकी कुञ्जी है, ऐसा जानकर ज्ञानी पुरुष ज्ञानकी आराधनामे अपनेको लगाते है।

यत्पुरग्रामविन्ध्येषु मया क्षिप्तो हुताशनः ।
जलस्थलबिलाकाशचारिणो जन्तवो हताः ॥१७१२॥
कृन्तन्ति मम मर्माणि स्मर्यमाणान्यनारतम् ।
प्राचीनान्यद्य कर्माणि क्रकचानीव निर्दयम् ॥१७१३॥

ग्रामादिको अग्निसे जलानेके पापका सताप—नारकी जीव विचार करता है कि मैंने पूर्वभवमे गाँवमे, वनमे अग्नि डालकर ज्वालायें बढाया और जलचर, थलचर, नभचर और बिलोमे रहने वाले असंख्यात जीवोको मारा। वे ही उस पाप करते समय जब उसके स्मरण मे आते है तो उसका हृदय दयारहित होकर करोतके समान भेदता है। इस प्रसगमे यह भी बात बतायी जा रही है कि कोन कोनसे पाप करनेसे जीव नरकगतिमे जन्म लेता है? जो लोग वैरसे या कौतूहलसे गाँवमे या वनमे आग लगा डालते है वे कितनी हिंसा करते है? वहाँके जलचर जीव मरे, थलचर जीव मरे और आकाशमे उडने वाले जीव मरे। तो मैंने

पापकर्म है । ये इतने घोर पाप कर्म है कि इनके फलमे नरक आयुका बध होता है । नरकमे आकर इस जीवको उन जीवोके द्वारा जिन्हे मारा था दु ख उठाना पडता है, वे इसकी हिसा करते है । नारकी जीवका अर्थ ही यह है कि एकको दूसरेसे प्रेम नही है । जैसे यहाँ मनुष्योमे कुछ ऐसे भी मनुष्य है कि परस्परमे बडा प्रेम रखते है । पक्षियोमे भी कुछ पक्षी ऐसे होते है कि जो परस्परमे प्रेमसे रहते है, पर नारकियोमे तो ऐसी प्रकृति है कि वे नारकी जीव परस्पर मे प्रीतिपूर्वक नही रह सकते ।

कि करोमि क्व गच्छामि कर्मजाते पुरः स्थिते ।
शरण क प्रपश्यामि वराको दैववञ्चित ॥१७१४॥

नारकीका अशरणतामे विलाप—फिर विचार करता है यह नारकी कि ऐसे नरकोके दु'खोमे भी ये कर्मसमूह मेरे सामने हैं । अब मै क्या करू ? नरक भूमिमे पडा, नरक भवमे फसा और फिर ये असाता वेदनीय आदिक अनेक कर्म मेरे सामने है, उदयमे आ रहे है, क्या करू, कहाँ जाऊँ, किसकी शरण देखूं ? कभी सतापसे तृप्त होकर वृक्षकी छायाके नीचे जाता हू तो वहीकी पत्ती तलवारकी धारके समान गिरती है । कभी डरकर नारकी जीवके समीप जाऊँ तो वही नारकी घात कर डालता है । पृथ्वीपर ही पडा रहू, न हो कोई दूसरा मारने वाला तो वहाँके भूमिजन्य दु खोसे पीडित रहता हू । कहाँ जाऊँ, अब तो मुझे सुखका कोई उपाय नही दिखता ।

यन्निमेषमपि स्मर्तु द्रष्टु श्रोतु न शक्यते ।
तद्दु खमत्र सोढव्य वर्द्धमान कथ मया ॥१७१५॥

नरककी दु'खवेदना सहनेका विषाद—फिर विचार करता है कि इतना भी तो कुछ दु'खसे छुटकारा नही कि नेत्रके टिमकार मात्र भी समय कुछ चैनसे रह सकूं । इतने कठिन दु'खके निमेष मात्र भी उनका स्मरण करे, दो वर्णन सुने तो इतना देखने सुननेकी भी सामर्थ्य नही । प्रतिक्षण बढते हुए यहाँके दु ख है, इन्हे मै कैसे सहन करू ? नारकी जीव ऐसा चितन करता है । ऐसा ध्यान यह सस्थानविचय धर्मध्यान वाला ज्ञानी सम्यग्दृष्टि कर रहा है । जैसे यहाँ कितने ही दु ख ऐसे है कि दूसरोका दु ख देख ले तो जितना दु ख वे दूसरे न मानते हो उससे ज्यादा दु ख यह मान लेता है । यह सोचकर कि ऐसे ही दु.ख अब हमपर भी तो आने को है । बुखारकी याद आती है । थोडी हरारत हुई तो मालूम पडा कि अब बुखार आ गया है, इतना क्लेश करता है यह मनुष्य कि बुखार आ जाय तब उतना क्लेश नही मानता जितना कि क्लेश पहिले मानता । कितने ही दु ख यहाँ भी ऐसे है जिन्हे देखा नही जा सकता, याद नही किया जा सकता, सुना भी नही जा सकता । नरकोमे तो दु ख ही दु'ख भरे है । पापके उदयका फल अधिकमे अधिक मिल सके ऐसा वह नरकका स्थान है । वहाँ नारकी

जीव विचार करता है कि इन दुःखोको मै कैसे सहू ? यहाँ मनुष्य मोहमे कितना मस्त रहते है कि उन्हे रचमात्र भी अपने भविष्यकी परलोककी सुधि नही है। मेरा क्या होगा, वर्तमान मे सुख मिलना चाहिए। तो कल्पनाके अनुसार वे वर्तमानमे मौज मानते हैं पर वस्तुत मौज वहाँ भी नही है। आनन्द तो एक ही है। जहाँ निराकुलता हो वह आत्मीय आनन्द है, इन्द्रियजन्य आनन्दमे यह तारीफ नही है कि निराकुलता रह सके। कदाचित थोडा कुछ समय अशान्तिका उपशम भी हो तो आगे पीछे विकट अशाति उत्पन्न करते है। इन्ही विषयानन्दोके फलमे और जीवोको सतानेके फलमे नरकगतिमे जन्म लेना पडता है।

एतान्यदृष्टपूर्वाणि बिलानि च कुलानि च।
यातनाश्च महाघोरा नारकाणा मयेक्षिताः ॥१७१६॥

नारकियोका अपूर्व कठोर पीडनमे विलाप—फिर चाह करता है यह नारकी जीव कि नरकोकी भूमि नारकियोके कुल और नारकियोकी महा तीव्र वेदना, ये सब बाते मैने अब तक नही देखी, ये नवीन ही बडी तीव्र यातनाएँ दिखनेमे आ रही है। ऐसी यातनाएँ अन्यत्र कही नही देखी। नरकभवमे जो वेदनाए होती है वैसी वेदनाएँ न पशुवोमे है, न पक्षियोमे है, न मनुष्योमे है, न देवोमे है। किसी भी गतिमे ऐसी वेदनाए नही है जैसी कि नरकगतिमे है। नरकगतिकी बात बहुत-बहुत सुनकर कुछ असर यो नही होता कि किन्हीको विश्वास ही नही है कि नरक हुआ करता है। यहाँ पशु और पक्षियो के दु खका वर्णन करें तो जल्दी असर होता है लेकिन यह तो बतावो कि जिन सर्वज्ञदेवके शासनमे सात तत्त्व नौपदार्थ द्रव्यास्तिकाय वस्तुस्वरूपका जो वर्णन है वह वर्णन हमारे अनुभव मे उतरा, उसे मैने युक्तियोसे समझा, वह यथार्थ है। ऐसे यथार्थ प्रवक्ता गणधर आदिक और मूलवक्ता सर्वज्ञदेवके शासनमे वह नरक और स्वर्गोका वर्णन है, जिसकी कोई भी बात अनुभवगम्य युक्तिगम्य यथार्थ सिद्ध होती है और मेरी उस बातमे जिसमे कि अनुभव और युक्ति नही, जो परोक्षभूत है वह बात श्रद्धालु भक्त पुरुष असत्य कभी नही मानते। यह नारकी जीव उस नरकभूमिमे पहुचकर ऐसा बडा दिल देखकर सोचता है कि ऐसा स्थान तो हमने कभी भी नही देखा। उनका शरीर देखकर, हुडकसस्थान विचित्र बेढगा शरीर देखकर सोचता है नारकी कि ऐसा शरीर तो हमने कभी भी नही देखा, भयानक पशुवो जैसा शिर मुँह बना हुआ जैसा चाहे डावाडोल शरीर बना लिया। उनको ही हाथ नख शस्त्र जैसे छेदने वाले है, ऐसे बेढगे शरीर हमने कभी नही देखे। ऐसी तीव्र वेदनाएँ जहाँ इतना आताप कि गरमीके मारे मेरुपर्वत समान लोह भी गल जाय, जहाँ इतनी ठढ कि ठढके सामने मेरुपर्वत समान लोह पिण्ड भी गलकर खण्ड खण्ड होकर खिर जाय, ऐसी यातनाए हमने कहीं नहीं देखी। शरीरके खण्ड-खण्ड हो गए लेकिन जान नही जाती, वे टुकडे फिर पारे की तरह मिल

जाते है और फिर शरीर बन जाता है। ऐसी महान घोर यातनाएँ ये नरकोकी मैंने कही नहीं देखी, ऐसा विचार करता है नारकी।

विपज्वलनसकीर्णं वर्द्धमान प्रतिक्षणम्।
मम मूर्ध्नि विनिक्षिप्त दु ख दैवेन निर्दयम् ॥१७१७॥

सिरपर आ पडी विपदामे नारकीका आक्रन्दन—तो नारकी विचार करता है कि विप और अग्निसे व्याप्त क्षण-क्षणमे बढने वाले ये सब दु ख, कर्ममे दयारहित होकर मैंने माथे पर डाल रखे है। तो कर्मोदयवश नारकियोको ऐसा कठिन दु ख भोगना पडता है जैसे कभी यहाँ दु ख आये तो मनुष्य कह बैठता है कि ओह! यह विपत्ति तो मुझसे नही सही जाती है। ऐसी कठिन कठिन विपत्तियो वाली उन नरकोकी भूमिके दु ख असाता आदिक पापकर्मके कारण सहन करने पडते है। अधोलोकके स्वरूपके चिन्तनमे ज्ञानी पुरुष उन नरक और नारकियोकी बातोका चिन्तन कर रहे है कि वे नारकी किस तरह विह्वल रहते है, क्या क्या सोचते रहते है, कैसे कठिन कठिन दु ख पा रहे हैं? यहाँ देखो पच पाप, व्यसन, विपयासक्त, बैरविरोध—इन सब पापकर्मोंका फल है। सस्थानविचय धर्मध्यानमे लोककी रचनाका विचार चलता है उन रचनाओका यथार्थ बोध करनेपर वैराग्यकी बुद्धि होती है। स्नेह और मोह करनेकी बान फिर नही रहती।

न दृश्यन्तेऽत्र मे भृत्या न पुत्रा न च बान्धवा।
येपा कृते मया कर्म कृत स्वस्यैव घातकम् ॥१७१८॥

जिनके लिये पाप किये उनके नरकमे न दिखनेपर सकृत पापका पश्चात्ताप—अहो! अब वे नौकर मुझे नही दिख रहे है जिन नौकरोके लिए मैंने अपना ही घात करने वाले कर्म किया। अब वे पुत्र मुझे यहाँ नही दिख रहे जिन पुत्रोके वास्ते मैंने अनर्थ अपना ही घात करने वाले नाना पापकर्म किया। जिनके पीछे मैंने पापकर्म किया, जिसके फलमे नरकमे जन्म लेना पडा, अब वे लोग यहाँ एक भी नही दिख रहे है। सारा क्लेश हमे अकेले ही भोगना पड रहा है। वे बान्धव परिवार मित्रजन वे सब कुछ भी यहाँ नही दिखते है। जो अन्याय करके, लोगोको धोखा देकर धनोपार्जन किया जाता है अथवा नाना प्रकार के छल कपट किए जाते हैं, उस द्रव्यका जो जो लोग भोग करते है उन सबमे पाप बँट जाये, ऐसा नही है। जिसने जो पाप किया उसका वह पूरा पाप है। दूसरे घरके परिवारके लोग यह जानकर भी कि यह धन बहुतसे लोगोको सताकर आया है, अन्याय करके आया है, वे मौजसे खाये तो वे नया पाप और बाँधते है, पर इस पुरुषके पापको वे बाँटते नही है। जो मनुष्य जैसा अपना परिणाम करता है उसके अनुसार कर्मका बध उसको स्वय होता है। उसमे ऐसा नही है जैसे कि लोग सन्तोप करते है कि भले ही हम पाप कर्म करते है, मगर

इस धनका भोग तो घरके ये दसो लोग करते है उन दसोमे वह पाप बँट जायगा तो मेरे पाप कम हो जायेंगे, ऐसी बात नही है क्योकि पापका भण्डार कम नही है । तो जिन लोगोंके लिए मैने पापकर्म किया, अपने आपकी बरबादीके कर्म किया । अब वे लोग यहाँ एक भी नहीं दिखते है । मेरा कोई साथी नही हो रहा है ।

न कलत्राणि मित्राणि न पापप्रेरको जन. ।
पदमप्येकमायातो मया सार्द्ध गतत्रप ॥१७१९॥

जिनके लिये पाप किये उनके यहा न आ सकनेपर व्यर्थ कृत पापका विषाद—वे स्त्री पुत्र मित्रादिक पापकी प्रेरणा करने वाले ये मनुष्यादिक ये एक भी कदम मेरे साथ नही आये जिनके लिये मैने नाना पापकर्म किया । वे ऐसे निर्लज्ज हो गए कि एक कदम भी मेरे साथ नही आये । जिनके लिए मैने नाना पापकर्म किया, जिन्होने मुझे पापमे प्रेरणा दी, जिनके बहकावेमे आकर मैने पाप किया तो उस समय तो वे बहुत हृदय मिले चल रहे थे लेकिन अब वे ऐसा निर्लज्ज हो गए है कि एक कदम भी मेरे साथ नही आये, पश्चाताप करता है, चिन्तन करता है । जब कोई बात बीतती है खुदपर उस समय जो भाव आता है जो विचार उठता है वह विचार उसीके खुदके विचार है, दूसरेके नही । मनुष्यभवमे भी जब कोई वेदना होती है, हर तरहसे बरबाद हो जाता है, कोई पूछने वाला नही होता है अथवा कोई उस दु.ख दर्दको बाँट सकने वाला नही होता है तो उस समय वह भी अपने आपको असहाय निरखता है । मेरा कोई साथी नही, मेरा कोई सहाय नही, इस प्रकार वह नारकी जीव भी उस कठिन वेदनामे रहकर अपनेको निरन्तर असहाय निरखता है । ओह ! जिनके पीछे मैने अनेक पाप किए वे कोई सहाय नही हो रहे है ऐसी उसके एक झुँझलाहटसी होती है, और उसे खेद होता है कि यदि मै उस समय ऐसे पापकर्मोमे न पडता तो मै कितना स्व-रक्षित रहता ।

आश्रयन्ति यथा वृक्ष फलित पत्रिण पुरा ।
फलापाये पुनर्यान्ति तथा ते स्वजना गता ॥१७२०॥

पूर्व जन्मके स्वजनोकी स्वार्थपरताका विचार—वह नारकी जीव पुन ऐसा विचार करता है कि जैसे पक्षी पहिले तो फूले हुए वृक्षोका आश्रय करते है, परन्तु जब वृक्षमे फल नही रहते हैं तो वे सब पक्षी उड जाते हैं । यही हालत यहाँ भी है कि जब तक उन कुटुम्बियोंने मित्रोंने हमने मित्रता रखी जब तक कि उनके हम काम आये, जब तक उनके विषय साधनोंमे हम सहायक रहे, उनके सुखके साधनोको जब तक हम जुटाते रहे तब तक तो वे मेरे साथी थे लेकिन जब भव छूटा और हम इन पापफलोंमे नारकी हुए तो उस समय कोई भी साथ न आया, सभी जहाँके तहाँ रह गए अन्यथा वही चले गए । वह नारकी इस तरह

विचार कर रहा है। कभी तो मरने वाला टोटेमे रहता है जीने वाला नफेमे रहता है और कभी जीने वाला टोटेमे रहता है और मरने वाला नफेमे रहता है। जिस जीवने पापकर्म किया, मरकर पचकर कष्ट सहकर लोगोको बहुत सुख पहुचाया, उनके सुख साधन जुटाया, अब वृद्ध हो गया, कुछ करनेमे समर्थ नही रहा ऐसा पुरुष मर गया तो वह पुरुष तो मरकर नरकोंमे जाकर घोर यातनाएँ सहेगा, वह तो नुकसानमे रहेगा और ये जीने वाले सुख साधनोका लाभ उठायेंगे और एक जो व्यथासी बन रही थी, कष्ट करना पडता था उससे वह छूट जाता है। कोई पुरुष बडे अच्छे आचरणसे रहनेवाला अपनी सब व्यवस्थावोसे सुन्दर जीवन बिताने वाला और इस ही कारण सर्व कुटुम्बियोको बडा प्रिय लगने वाला वह यदि गुजर जाय तो वह तो मरकर नया शरीर पायगा, वहाँ अपने जीवनमे अ आ इ ई शुरू कर लेगा, वह अपने ढगसे है और जीने वाले लोग उसकी याद कर करके अपने स्वार्थसे रो रो करके दु:खी हो जाते है, तो वह मरने वाला तो लाभमे रहा और ये जीने वाले टोटेमे रहे। यहाँ नरकगतिमे जन्म लेने वाला नारकी टोटेमे रहा, अपने आपको बडे क्लेशमे निरख रहा, और सोच रहा है कि ओह! वे सब लोग जो मेरे हर बातमे साथी थे, अब यहाँ कोई भी नही आया, सभी उड गए फलहीन वृक्ष देखकर। इस जगतमे कोई किसीका मित्र नही है, बन्धु नहीं है, दोस्त नही है, सभी अपने अपने स्वार्थकी ही सिद्धिमे लगे है। स्वयमे जो कषायकी वेदना होती है उसको शान्त करनेमे ही लगा करते है। यह पूरबकी प्रतीति है। स्वरूप ही ऐसा है, ऐसा सुनकर किसीसे घृणा करनेकी बात न सोचना, स्वरूपको समझना है। प्रत्येक जीव केवल अपने आपके प्रयोजनकी सिद्धिमे रहा करता हे, कोई किसीका पालक पोषक रक्षक मित्र हो ऐसी कोई बात नही है। किसीमे अपने आपके स्वार्थसिद्धि करते हुएमे कोई अनुकूल पड जाय तो उसे मित्र मान लेते हैं, पर जब एक जीव दूसरेका कुछ कर ही नही सकता, न सुधार न बिगाड तो कोई जीव किसी दूसरेका शत्रु अथवा मित्र कैसे बन सकता हे ? सभी अपने-अपने स्वार्थकी सिद्धिमे लगे है। सभी जीवोको यो देखना कि यह मेरा मित्र है यह मेरा शत्रु है, केवल भ्रम मात्र है, वस्तुत तो मैं ही अपना शत्रु हू। जब अपने स्वभाव दर्शनसे चिगकर परनिमित्तमे लगता हू परके आश्रयसे परकी दृष्टिमे लगता हू तो मै ही अपने आपका शत्रु बन जाता हू और जब मैं परका स्नेह रागद्वेष छोडकर अपने स्वरूपके निकट बसा करता हू तो मैं ही अपना मित्र बन जाता हू, है नही कोई शत्रु मित्र। लेकिन यहाँ नारकी यह चिन्तन कर रहा है कि जिनके पीछे मैने बहुत श्रम किया, पाप किया उनमे से यहाँ एक भी मेरे साथ नही आये।

शुभाशुभानि कर्माणि यान्त्येव सह देहिभिः।
स्वार्जितानीति यत्प्रोचु. सन्तस्तत्सत्यता गतम् ॥१७२१॥

कर्मोका स्वयं फल भोगनेके तथ्यका विचार—नारकी जीव विचार कर रहा है कि जो बडे-बडे पुरुष कहते थे कि अपने ही उपार्जन किए हुए शुभ अशुभ कर्म जीवके साथ जाते है और कोई साथ नही जाता, तो यह बात मुझे आज बिल्कुल सत्य लग रही है। यही तो होता है कि यहाँ जन्म हुआ पूर्वभवसे आकर लेकिन कुछ भी साथ नही आया। कितना धन कमाया लाखो करोडोकी सम्पदा जोडकर रख ली, मगर उसमे से एक धेला भी साथ नही आया, एक दो बार नास्ता ही कर ले इतनी भी चीज साथ नही आयी, और आये है तो ये जो पापकर्म बाँधे थे वे ही साथ आये है। जिन जिनसे मोह किया, प्यार किया, जिनके पीछे बडे बडे विकल्प किया उनमे से कोई साथ नही आया, यह मै अकेला ही इन सब दारुण दु खोको भोग रहा हू। सो यह बात बिल्कुल सच निकली जैसा कि सत पुरुष कह गए थे कि ये जीव अपने ही अपने उपार्जन किए हुए शुभ अशुभ कर्मोको साथ ले जाते है, दूसरा और कोई साथ नही जाता। जिस शरीरका इतना पोपरग करते है, जिस शरीरको खिलानेमे आसक्त होकर हम अपनी सब कुछ सुध बुध खो बैठते है वह शरीर भी साथ नही जाता है। हाँ सूक्ष्म शरीर तैजस कार्माण शरीर साथ जाता है जो नवीन शरीरकी रचनाका बीजभूत बनता है, अर्थात् कर्म तो साथ जाते है जीवके मरनेपर, पर चेतन अचेतन परिग्रह जो कुछ भी इकट्ठे हुए है वे कुछ भी साथ नही जाते। क्षणभरमे ही देख लो कितना महान अन्तर हो गया ? अभी क्षणभर पहिले तो थे करोडपति, लोग इसकी हू हजूरीमे रहते थे और क्षणभर बाद ही हो गया नारकी, अकेला ही नरकभूमिमे पहुचकर नारकी दु ख सहने लगा। तब तो कुछ नही विचारा इस जीवने कि मेरा सही कर्तव्य क्या है, अकर्तव्य न करना चाहिए, लेकिन उन कर्मो के फलमे आज जो यह दुर्गति हुई है उस दुर्गतिको तो भोगना ही पडेगा, वे भोगे बिना छूट नही सकते। जो कोई प्रबुद्ध नारकी है वह तो कुछ विचार करके ज्ञानबल बढाता है और अज्ञानी नारकी उन कष्टोको सह-सहकर असाता कर्मोका फल भोगता है।

धर्म एव समुद्धर्तु शक्तोऽस्माच्छ्वभ्रसागरात्।
न स स्वप्नेऽपि पापेन मया सम्यक् पुरार्जित. ॥१७२२॥

उद्धारक धर्मका सेवन न किये जानेका विषाद—नारकी जीव विचार करता है कि इस नरकरूपी समुद्रसे उद्धार करनेके लिए एक धर्म ही समर्थ है, लेकिन मुझ पापीने स्वप्नमे भी कभी धर्मका उपार्जन नही किया जिसके फलमे अब नरककी महती यातनाएँ भोगनी पड रही है। जीवका उद्धार करनेमे समर्थ एक धर्म ही है। उद्धार क्या चीज ? शाति होना, अना-कुलता होना, कष्ट न होना इसीका नाम उद्धार है। जीवका उद्धार अर्थात् जीवको शान्ति प्राप्त होना, शान्तिका हेतु एक धर्म ही है। धर्मको छोडकर और कुछ शान्तिका उपाय नही है। धर्म नाम है आत्माके स्वभावका। आत्माके स्वभावको जानकर उस स्वभावमे ही उपयोग

रमाना इसका नाम है धर्मपालन । यह बात अपने जीवनमें कितने अशमे बनती है इस पर कुछ दृष्टि जरूर करना चाहिए । आत्मा ज्ञानरूप है । यह ज्ञान अपने आधारभूत ज्ञानस्वरूपको न जाने और अपने आधारसे विमुख होकर बाह्यमे दृष्टि करके पदार्थोंकी जानकारी बनाये वह सब अधर्म है, अशान्तिका हेतुभूत है । अपने आपमे सत्य क्या है, इसका निर्णय तब तक नही हो सकता जब तक पर्यायबुद्धिको न छोडे । मेरा वास्तविक स्वरूप जो अपने आपके सत्त्वके कारण सहज है किसी परकी अपेक्षा नही रखता, स्वय जो मेरा स्वरूप है, जिस स्वरूपसे मेरा निर्माण है उस स्वरूपकी खबर इस मनुष्यको तब आ सकती है जब इन चतुराइयोका परित्याग कर दे, अर्थात् इस लोकमे कुछ जानकारी देह जाति कुलका कुछ लगाव अथवा धर्मके नामपर जो जो कुछ भी हमने जाना है उपदेशोसे, दूसरोसे वे भी विकल्प करते है । ये सारे विकल्प जब टूटे तो उन विकल्पोसे रहित अवस्थामे स्वय अपने आपको विदित हो सकता है कि मेरेमे सत्य तत्त्व क्या है ? हम अध्ययन करते हैं, शास्त्र भी पढते है, जो हमने सीखा है ठीक है, सीखा है, मगर सीखा इसलिए है कि इन सब सीखोको भी भूलकर इन सब सीखोके विकल्पोको भी तोडकर हम एक परमविश्राममे अपना उपयोग बनायें । वहाँ ही सत्यका अनुभव हो सकता है । जब तक हम कोई विकल्प पकडे हुए है तब तक हमे सत्यका अनुभव नही होता ।

धर्मोद्भवके आधारका विचार—धर्म कही बाहर नही है, जो जगतमे भ्रमण करके हम उस धर्मको पा ले । धर्म न किन्ही क्षेत्रोमे है, न किन्ही बाह्य पदार्थोंमे है, और न वह मेरा धर्म किसी देव, शास्त्र, गुरुसे प्राप्त होता है । वह तो अपने आपमे अपनी सहज कलासे स्वय प्रगट होता है । हाँ देव, शास्त्र, गुरु, क्षेत्र, तीर्थ, वन्दना आदिक ये सब हमारी पात्रता बनानेके कारण है कि हम अपने आपमे बसे हुए धर्मका अनुभव करें । कोई देव या कोई गुरु मुझे धर्म दे जाय, ऐसा धर्म कोई देने लेनेकी चीज नही है । हाँ गुरु स्वय धर्मयुक्त है, हम उनकी सगतिमे रहकर और उनके अनुभव वचनोको सुनकर हम अपने आपमे स्वय ज्ञान बनाते है और धर्मका अनुभव कर लेते है । धर्ममय यह आत्मा स्वय है, अपने धर्मका आश्रय न किया जानेके कारण जगह-जगह इन जीवोको रुलना पडता है । हमारा आत्मा स्वय ज्ञान और आनन्द स्वरूप है, ज्ञानका स्वरूप है प्रतिभास, मात्र जानन । उस आत्माको निर्विकार, उपाधि रहित निरखे तो हमे अपने स्वरूपका भान होता है । सबसे बडी अटक है धर्मसे विमुख होनेमे पर्यायबुद्धि । प्रथम तो यह जीव इस देहमे ही आत्मबुद्धि कर रहा है, जिस जीवको जो देह मिला उसे ही 'यह मै हू' इस प्रकार स्वीकार करता है और इसी कारण देहके विषयोंके साधनोमे अपना हित समझता है । देहसे आत्मबुद्धि हटे, देहसे निराला मैं कोई ज्ञानमात्र तत्त्व हू इस प्रकारकी दृष्टि आये तो आत्मा धर्मपालनका अधिकारी हो सकता है । जब तक अपनी

सुधि नही हुई, अपना परिचय नही मिला धर्म कहाँ करेंगे ? किसका नाम धर्म हुआ ? मनसे जो कुछ विचारा जाता है वह आत्माका स्वरूप नही है । वचनोसे जो कुछ बोला जाता है, जो चेष्टा की जाती है, शरीरसे भी जो चेष्टा की जाती है—खडे रहना, यात्रा करना, पूजन करना, अमुक अमुक पैरोकी चेष्टा करना, केवल ये चेष्टामात्र धर्म नही है । इन चेष्टावोके करते हुए जो अपने आपके स्वभावपर दृष्टि जाती है, यह मै सबसे निराला शाश्वत ज्ञानज्योतिस्वरूप आनन्दमय अमूर्त निर्लेप निरञ्जन अन्तस्तत्व हू—ऐसी अपने अखण्ड शाश्वत ज्ञानस्वभावकी सुधि आये तो वहाँ धर्मपालन होता है । पूजनसे भी यही बात सीखते है, प्रभुके गुणोका स्मरण अपने आपकी सुधिके लिए है । हम अपनी सुधि तो कुछ करे नहीं और बाह्यमे धर्मके नाम पर कितना ही मन वचन कायका विस्तार बनाले तो वहाँ निराकुलता उत्पन्न नही होती । धर्म करना अर्थात् अपने स्वभावका आश्रय करना यही एक ऐसा महान पुरुषार्थ है कि जो हमारा उद्धार कर सकता है । उस धर्मका तो पालन किया नही, इसके फलमे आज तक जन्म मरणके घोर दुःख सह रहे है । कोई प्रतिबुद्ध सम्यग्दृष्टि नारकी हो तो वह ऐसा चिन्तन करता है कि अब जितने अशमे उसके ज्ञान है उसको शान्ति प्राप्त होती है ? धर्म ही आत्माका उद्धार करनेमे समर्थ है । मैने स्वप्नमे भी पूर्व जन्ममे धर्म नहीं किया, ऐसा वह नारकी चिन्तन कर रहा है ।

महायः कोऽपि कस्यापि नाभून्न च भविष्यति ।
मुक्त्वैकं प्राक् कृत कर्म सर्वसत्त्वाभिनन्दकम् ॥१७२३॥

लोकमे अशरणताका विचार—इस ससारमे कोई किसीका सहायक नही है, सहायक हो कैसे ? वस्तुके स्वरूपपर दृष्टिपात करिये—प्रत्येक पदार्थ अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे है । उदाहरणमे यहीकी वस्तु ले लीजिए, यह एक घडी है और यह एक चौकी है । तो घडी का स्वरूप घडीमे है और चौकीका स्वरूप चौकीमे है । यह चौकी घडीका कुछ नही कर सकती । तो एक पदार्थ दूसरे पदार्थका कुछ भी करनेमे समर्थ नही है । जब घडी चौकीपर रखी है तब भी चौकी घडीमे कुछ नही कर रही, किन्तु चौकीका एक आश्रय लेकर घडी अपने स्वरूपमे मौजूद है । परिवारमे १०-५ जीव बस रहे है, परस्पर प्रेमसे रहते है, एक दूसरेकी सुध लेते है, भोजन कराते है इतनेपर भी कोई किसीका कुछ नही कर रहा । तत्त्व-दृष्टिसे देखो—प्रत्येक जीव अपने भावमात्र है । मेरा स्वरूप है ज्ञानानन्द, उसके ही विस्तारमे वह अपने ज्ञानानन्द भावको छोडकर दूसरे जीवका कुछ भी करनेमे कोई भी समर्थ नहीं है । सभीके अपनी-अपनी कषाय लगी है, राग लगा है, तो उस कषाय और रागकी वेदना शान्त करनेके लिए वे परिवारके सभी लोग आपकी अपनी चेष्टाएँ करते है, दूसरेको सुखी करनेके लिए कोई चेष्टा नही कर रहे, किन्तु अपनी वेदना मिटानेके लिए वे चेष्टा कर रहे है । अनेक

दृष्टान्तोंसे समझ लीजिए। आपके सामने कोई भिखारी बडे कातर स्वरमे रोता हुआ आये, आपने दया करके उसे भोजन करा दिया तो लोकव्यवहारमे तो कहा जायगा यह कि देखो अमुक सेठने उस भिखारीका दुःख मेट दिया, पर उस भिखारीकी परिणति भिखारीमे है, सेठकी परिणति सेठमे है, उस सेठने स्वय अपनेमे उस भिखारी जैसा क्लेश बनाया तो उस अपने ही क्लेशको मिटानेके लिए सेठने उसे भोजन दिया और भोजन करके भिखारी जो सुखी हुआ, उसने अपना दुःख मेटा, सो भिखारीने अपना विचार करके अपना दुःख मेटा, सेठने अपनी वेदना शात करनेके लिए उसे भोजन दिया। वह दूसरेको सुखी अथवा दुःखी नही कर सकता। कोई विरोधी मनुष्य है वह किसीपर आक्रमण करे, किसीको दुःखी करे तो लोकव्यवहारमे यह कहा जाता है कि देखो अमुक वैरीने अमुकको बडा परेशान कर डाला, लेकिन वस्तुस्वरूप यह कहता है कि उस विरोधीने केवल अपनी कल्पनाएँ, अपना परिणाम किया, इसमे बाहर कुछ नही किया। अब उसका ही उदय ऐसा खोटा आया कि उस वैरीके निमित्तसे वह परेशानीमे पड गया। उसमे दूसरेने कुछ नही किया। तो एक पदार्थ किसी दूसरे पदार्थका कुछ भी करनेमे समर्थ नही है, निमित्त भले ही बना रहे, पर कर रहे है सभी स्वतत्र रूपसे अपना-अपना परिणमन।

पुण्य, पाप परिणाम—जब किसी जीवका भवितव्य अच्छा है, पुण्यका उदय है तो दूसरे जीव भी उसके सहायक बनते है और अगर उसका ही उदय प्रतिकूल है तो दूसरे जीव उसकी रक्षामे निमित्त भी नही बन पाते। कोई भी दूसरा जीव किसी दूसरे जीवका न कभी सहायक हुआ, न सहायक है और न कभी सहायक होगा। पापोंसे बुद्धि हटे, विषयोसे प्रीति हटे, बाह्यपरिग्रहोकी तृष्णा हटे, अपने आपके स्वरूपका भान हो, अपनी ओर रहे तो यही वास्तविक अपना सहारा है। बाह्यमे किसी भी पदार्थकी आशा करना कि ये मेरे सहायक होगे यह तो एक भ्रमकी बात है, पर मोहमे यह जीव परको सहायक मानता है। बालक उत्पन्न हुआ तो छोटी ही अवस्थामे उसे निरखकर लोग ऐसी कल्पना बनाते, ऐसी बुद्धि बनाते कि यह बडा होगा, मेरे साथ बडे विनयका व्यवहार करेगा, मुझे सुख शान्ति देगा, मेरा सहायक होगा, मेरा यह बच्चा सहारा है पर यहाँके बच्चोकी परिणति देखकर आप अनुभव कर लीजिए कि कौन किसका सहारा हो सकता है? कदाचित् कोई बच्चा अनुकूल भी हो तो वह भी मेरे दुःखके लिए है ऐसा आप निर्णय कर लीजिए। कोई बच्चा मेरे प्रतिकूल है तो वह भी मेरे दुःखके लिए है। जो बच्चा प्रतिकूल है वह तो दुःखके लिए है ही, पर जो अनुकूल है, विनयशील है, बडे प्रेमके बोल बोलता है वह तो मेरे और विशेष दुःखके लिए है, क्योकि मैं उसके सुखी रखनेके लिए भरसक प्रयत्न करूँगा, रात दिन उसको ही दिलमे बसाकर क्षोभमे रहा करूँगा, तो दूसरा पदार्थ मेरे सुखके लिए कौन हो सकता? तो यहाँ कोई किसीका

सहाय नही। अपना सहाय तो एक अपना ही ज्ञान है, अपना ही सदाचार है। यहा भी यदि कोई दूसरा मेरी बात पूछता है तो मै अमुक चद हू, अमुक लाल हू। इस वजहसे लोग मेरी बडी पूछ करते है यह बात नही है किन्तु बडे अच्छे सदाचारसे रहता हू, बडी नीति व्यवहार से रहता हू तब लोग पूछ करते है। यदि मै ही किसी दूसरेको गाली देने लगूँ अथवा असद्-व्यवहार करने लगूँ, अभिमानसे रहने लगूँ तो फिर कौन मेरी पूछ करेगा? लोग मुझे बडा क्यो मानते है? अरे जब मेरी करतूत अच्छी है, व्यवहार न्याययुक्त है इसकी वजहसे लोग पूछ करते है। यहाँ जो पूछ भी करते है वे अपने सुखी रहनेके लिए पूछ करते है, फिर जगत मे कौन किसके लिए सहाय है? अपनी जिम्मेदारी अपने आपपर है, दूसरा मेरा कोई जिम्मेदार नही, कोई किसीसे प्रीति करने वाला नही। कैसा ही कोई बडा प्रीतिवान हो, स्त्री हो, पुत्र हो, निष्कपट भी हो, कोई छल भी न रखता हो तिसपर भी वस्तुस्वरूप यह बतला रहा है कि वह जीव केवल अपने ही भाव बना पा रहा है मेरा परिणमन कुछ नही कर सकता।

अपनी ही सुध बनाये रहनेमे श्रेयोलाभ—जब सर्व पदार्थ अपना ही परिणमन करते है तब इस स्थितिमे हम यदि अपने-आपका कुछ ध्यान रखे, अपनी कुछ लगन बनाये, अपनी ओर आयें तो हमारा जीवन सफल है, नही तो बाह्य वृत्तियोमे हमारा जीवन ऐसा ही बेकार समझिये जैसे अनन्त भव हमारे गुजर गए। जो भी शान्त हुए है सबको इस धर्मकी छायामे आना पडा है। जो भी शान्त हो सकेंगे, निराकुल हो सकेंगे वे इस धर्मकी छायामे आकर निराकुल हो सकेंगे। हम कभी सुखी होगे शान्त होगे पर जितना हम विलम्ब कर रहे है, धर्मपालनके लिए हम जितनी देर कर रहे है उतना ही इस ससारमे अधिक रुलेंगे। पता नही कि यह मानव देह फिर कब मिले? तो यह यथार्थ समझ रखें कि धर्मके लिए हम विलम्ब न करें। यह विश्वास रखें कि परिवारमे ये जो १० जीव है ये सब अपने-अपने कर्म लिए हुए है। कहो पिता गरीब रहे और बच्चा ऐसा होशियार हो कि थोडे ही समयमे वह धनिक बन जाय, बडी कुशलता प्राप्त कर ले, बडी चतुराई आ जाय। तो यह सब जीवोका अपना अपना उदय है। ऐसा भ्रम करना भूल है कि मै किसीका जिम्मेदार हू, मै ही करने वाला हू, मै करता हू तब इन जीवोको सुख मिलता है, इनका पालन पोषण होता है। ये सब भ्रम पूर्ण बातें है। पुरुषार्थ चलता है मोक्षमार्गमे और भाग्य प्रधान रहता है सासारिक कार्योंमे। ये दो चीजें है—भाग्य और पुरुषार्थ। दोनो बातें चलती है यहाँ भी, लेकिन सासारिक सुख मिले, वैभव मिले, इज्जत मिले, इन सबमे मुख्य है भाग्य और हमारा परिणाम सुधरे, हमारे कर्म कटें, मोक्षमे हमारे कदम बढे इन कामोमे मुख्य है पुरुषार्थ। दो पुरुष परस्परमे झगड गए, एक कहे कि भाग्य बडा है और एक कहे कि पुरुषार्थ बडा है। राजाके यहाँ न्याय गया तो राजाने उन दोनोको कच्ची जेल दे दी। एक कोठरीमे बद कर दिया और कह दिया कि

तुम्हारा न्याय दो दिन बाद होगा। उसी कोठरीके अन्दर सेर सेर भरके दो लड्डू एक जगह पहिलेसे ही छिपाकर रखवा दिये। दूसरे दिन जब उन्हे भूख लगी तो उनमे से जो पुरुषार्थ को प्रधान कहता था वह इधर उधर कोठरी भरमे कुछ ढूंढने लगा। उसे एक जगह दो लड्डू दीखे। वह बडा खुश हुआ। स्वयं खाया और दूसरेपर भी दया आयी सो उसे भी खिलाया, दोनोने भूख मेट ली। जब राजाने उन दोनोको कोठरीसे निकालकर न्याय करनेके लिए खडा किया तो उस पुरुषार्थ-प्रधान कहने वाले व्यक्तिने पहिले ही कह दिया कि देखो महाराज! हमने पुरुषार्थ करके दो लड्डू उस कोठरीमे खोज लिए थे, यह भाग्यवादी अपने भाग्यको लिए बैठे ही रहे थे। हमने खुद लड्डू खाकर अपनी भूख मिटाई और इस भाग्यवादीको भी खिलाकर इसकी भी भूख मिटाई, तो महाराज पुरुषार्थ ही प्रधान हुआ। तो भाग्यवादी झट बोल उठा—महाराज हमने कुछ भी प्रयत्न न किया था, प्रेमसे बैठे रहे, पर हमारा भाग्य था तभी तो इनके द्वारा हमे लड्डू खानेको मिले थे। तो महाराज भाग्य प्रधान हुआ। तो ये सासारिक चीजें भाग्यके अनुसार प्राप्त होती है और मोक्षमार्ग सम्बधी चीजें पुरुषार्थकी प्रधानतासे प्राप्त होती है। ज्ञानी जीव तो इन सासारिक चीजोंमे अपना हित हो नही समझता इसलिए न वह भाग्यको महान मानता और न इन सासारिक सुखोको। ज्ञानी जीव तो एक धर्मके आश्रयको महत्त्व देता है। जीवोका उद्धार करने वाला शरणभूत एक धर्म है। नारकी जीव विचार कर रहा है कि यहाँ मेरा कोई सहायक न हुआ, न है और न होगा। यदि ससार मे कोई सहायक हो सकता है तो अपने शुभ कर्म ही सहायक हो सकते है।

सस्थानविचय धर्मध्यानमे ज्ञानीका नरक संबधी दशाका चिन्तन—सस्थानविचय धर्मध्यानमे इस समस्त लोककी रचनाका विचार किया जा रहा है। अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक—इन तीन भागोमे यह लोक बटा हुआ है। कैसी-कैसी रचनाएँ हैं, कैसे कैसे जीव रहते है इसका वर्णन चल रहा है। अधोलोकमे नारकी जीव बिलोमे रहा करते है। यद्यपि वे बिल इतने बडे हैं जैसी कि आजकी यह परिचित दुनिया है। लेकिन उन्हे बिल यो कहते है कि उसके चारो ओर पृथ्वी है, नीचे अगल-बगल और ऊपर पृथ्वी है। तो जैसे कोई एक फिट लम्बा चौडा मोटा काठ पडा हो और उसके भीतर १०-२०-५० छिद्र हो तो जैसे उनका मुख किसी तरफ बाहर नही निकला है, वह भीतर ही भीतर है ऐसे ही मोटी मोटी ७ पृथ्वी है, उनके भीतर कुछ बिल है जिन बिलोमे वे नारकी जीव रहते हैं तो वे बिलोकी तरह है। उन बिलोमे नारकी जीव निवास करते है। नरकमे उत्पत्ति पापकर्मके उदयसे होती है। तो पापकर्मका विपाक इतना कटुक है ऐसा समझनेके लिए सस्थानविचय धर्मध्यानमे अधोलोकका चिन्तन चल रहा है।

तत्कुर्वन्त्यधमाः कर्म जिह्वोपस्थादिदण्डिता ।
येन श्वभ्रेषु पच्यन्ते कृतार्तकरुणस्वरा ॥१७२४॥

नारकियोके आर्तस्वरताका चित्रण—फिर नारकी जीव ऐसा विचार करता है कि जो अधम पुरुष जिह्वा और स्पर्शन इन्द्रियसे दण्डित होते है वे ऐसे कर्म करते है जिसके उदय से वे नरकमे उत्पन्न होते, पकाये जाते है, रोते है, चीत्कार शब्द करते है, नाना व्याधिया सहते है । देखिये पञ्चेन्द्रियके विषयोमे घ्राण इन्द्रियका विषय उतना प्रवल नही जितना कि स्पर्शन और रसना इन्द्रियका विषय प्रवल है, इसी प्रकार चक्षु और श्रोत्र इन्द्रियके विषय भी उतने प्रबल नही है जितने कि स्पर्शन और रसना इन्द्रियके विषय है । स्पर्शन और रसना—इन दो इन्द्रियोमे ये ससारी जीव अधिक आसक्त रहते है । जहाँ स्वाद चखनेकी लालसा जीवमे लगी हुई हो, वहाँ अपने धर्म कर्मकी कहाँ सुधि रहती है ? मै एक चैतन्यमात्र आत्मतत्त्व हू, अमूर्त हू, निर्लेप हू, इस प्रकारकी भावना उसे कहाँ हो सकती है जो रसास्वादनमे मस्त है । इसी तरह जब विषयभोग भोगे जा रहे हो उस समय कहाँ अपने अमूर्त आत्मतत्त्वकी सुधि होती है ? इन अशुभ कर्मोके कारण इस जीवको नरकोमे जन्म लेकर घोर यातनाएँ सहनी पडती है । हम आप सबको यह शिक्षा लेनी है कि इन विषयोके साधन बनाये रहनेसे इस आत्माका कुछ भी हित नही है । विषयोकी प्रीतिसे लाभ कुछ नही होता, अन्तमे पछतावा ही होता है । यह समय गुजर जायगा । यह अमूल्य जीवन फिर मिलना कठिन हो जायगा । इन विषय साधनोसे प्रीति तजे, उन्हे असार अहितकर धोखामयी समझें, उन्हे अपने चित्तसे हटा दें । ऐसी बात यदि किसी भी क्षण बन सके तो अपने आपमे एक ऐसा अद्भुत आनन्द प्रकट होगा जो आनन्द परमात्माके होता है । उसका आशिक अनुभव कर लेंगे और तब समझ जायेगे कि आत्माका असली स्वरूप यह है, उसे दृष्टिमे रखना सो धर्मका पालन है, और यह धर्मपालन ही हम आपका उद्धार करनेमे समर्थ है ।

चक्षुरुन्मेषमात्रस्य सुखस्यार्थे कृत मया ।
तत्पाप येन सम्पन्ना अनन्ता दुःखराशयः ॥१७२५॥

उन्मेषमात्र सुखके लिये किये गये पापके संतापका चित्रण—लोकके वर्णनमे अधोलोककी रचनाएँ बतायी जा रही हैं । अधोलोकमे ७ नरक है । उन नरकोमे रहने वाला नारकी जीव ऐसा विचार करता है कि मैंने पूर्व भवमे केवल इतने समयके सुखके लिए जैसे नेत्रके टिकारनेमे जितना समय लगता है उतने समयके सुखके लिए इन्द्रिय विषयोके आनन्दके लिए जो पाप किया उस पापके फलमे यह वहुत अनन्त दुखो की राशि उत्पन्न की है याने विषय सुखोके थोडेसे समयके लिए जो पाप किया, जो घमड बनाया, जो परदृष्टिया की, जो छल अन्याय किया, उनके फलमे अब ये नरकमे अनन्ते दुख

भोगने पड रहे है—ऐसा यह नारकी जीव विचार कर रहा है। सो नारकियोमे जो कोई विवेकी हो सो ही ऐसा विचार कर सकता है वाकी तो अज्ञानी नारकी मरने मारनेमे ही अपना समय गवाते हैं।

यानि सार्द्धं तत पाति करोति नियतं हितम्।
हन्ति दु ख सुख दत्ते य स वन्धुर्न योषित ॥१७२६॥

धर्मकी वन्धुता व स्वजनोकी अवन्धुताका विचार—फिर यह नारकी विचार करता है कि धर्मरूपी बन्धु ही साथ जाता है, और जहाँ जाता है वहाँ रक्षा करता है, और शेष बधु जिनके लिए पाप किया वे कोई यहाँ नही आये और उन पापोका फल अकेला ही भोगना पड रहा है। मनुष्योको यह बहुत आवश्यक है कि अपने परिणामोमे क्रूरता न लावें, और किसी दूसरेको सताना, धोखा देना, झूठ बोलना या कोई छल करना, इन बातोमे लगे तो ये बातें तो बडी दु खदायी है। थोडासा लाभ भी समझते है, मगर उनके फलमे नरक गतिमे दु ख भोगना होता है। नरक गति यही है वास्तवमे। जिनेन्द्रके कहे हुए वचन कभी झूठे नही होते। जब उन्होने बताया ७ तत्त्व ६ पदार्थ वस्तुस्वरूप आत्मधर्म मोक्षमार्ग ससारबधन आदिकके उपदेश जब उनके यथार्थ सत्य उतरे है तो उन्होंने जो जो भी उपदेश किया है वे सब यथार्थ है। अब यह रचना परोक्षभूत है। स्वर्गोंकी रचना बिल्कुल परोक्ष है इन्द्रियोसे परे है, नरकोकी रचना भी इन्द्रियाँ जान नही सकती तो उनके जाननेका हमारे पास कोई साधन नही है, और हम ऐसा सोचे कि जो चीज हमे नही दिखती है वह चीज है ही नही तो यह बात कोई ठीक माने नही रखती। चीजे तो बहुतसी यहाँकी भी नही दिखती, पीछे दिखती, पर मानते है कि ये है। तो अरहतदेवके शासनमे जो नरक और स्वर्गोकी रचनाका वर्णन है सो देखो समस्त ग्रन्थोमे एकसा वर्णन है और अकेले अकेलेके मापका वर्णन है, वह वर्णन यथार्थ है। नरक भूमि है, वहाँ जीवको पापोदयमे जन्म लेकर दु ख भोगना पडता है। जिन लोगोके लिए पापकर्म किए जाते है वे कोई वहाँ साथी नही बनते। वह नारकी विचार करता है कि यह धर्म ही मेरा वन्धु है, वही मेरा रक्षक है ऐसे धर्मरूपी बन्धुको मैंने पहिले पोषा ही नही, उसका पालन ही नही किया और जिनको मित्र समझा उनमे से कोई यहाँ साथ नही आया। नारकी जीव ऐसा विचार रहा है। धर्म नाम है अपने आपके असली स्वरूपका जानना और ऐसी प्रतीति रखना कि यह मैं हू अन्य कुछ नही हू, यही मेरा स्वरूप है, अन्य कोई चीज मेरी वस्तु नही है, मै चतन्यमात्र हू, ज्ञानानन्दस्वरूप हू, रूप, रस, गध, स्पर्शसे रहित हू, देहसे भी न्यारा हू, निर्लेप हू, ऐसा ज्ञानानन्दमात्र मै हू। इस मेरेका दुनियामे और कुछ नही है, देह भी नही, घर भी नही, लोग भी नही, इज्जत पोजीशन आदि ये सब चीजे भी नही। मैं तो एक ज्ञानानन्दस्वरूप हू

इस प्रकारकी प्रतीति करना, ऐसा ही ज्ञान बनाना, और ऐसा ही जानकर परकी उपेक्षा करके अपने आपमे रत होना यही धर्म है और इस धर्मका लक्ष्य करके फिर जो कुछ भी इस धर्मकी उपासनामे प्रवृत्ति की जाती है वह सब व्यवहारधर्म है। जिन्होने धर्मका साधन किया, धर्मका शरण गहा उनका तो उद्धार हुआ और जो विषयोकी उपासनामे रहे वे ससारमे घूमते ही रहे। नारकी जीव विचार कर रहा है कि मैंने धर्म नही पोषा इस कारण नरकभूमिमे आकर ये दु ख सहने पड रहे है। ससार दु खमय है पर यह मोही प्राणी उन पञ्चेन्द्रियके विषयोमे ही रत होकर सुख मान रहा है, कभी कोई जरा भी कष्ट आया तो उसमे झट वह घबड़ा जाता है। इस मोही जीवके दो प्रकृतियाँ पडी है—एक तो विषयोमे सुख मानना और किसी भी प्रकारका क्लेश आये तो उसमे बडा दु ख अनुभव करना। वह यह नही सोच सकता कि पशु पक्षियोंके भवोमे, नारकोंके भवोमे कितने कठिन कठिन दु.ख है, उन दु खोके आगे इस मनुष्यभवका कौनसा दु ख है ?

परिग्रह महाग्राह सग्रस्तेन्नस्तचेतसा।
न दृष्टा यमशार्दूलचपेटा जीवनाशिनी ॥१७२७॥

परिग्रह पापके सतापका चित्रण—अधोलोकमे उत्पन्न हुआ नारकी जो कोई विवेकी है वह ऐसा विचार करता है कि परिग्रहरूपी महादाहसे पीडित होकर मैने इस यमकी चपेटको नही देखा अर्थात् परिग्रहोमे इतना आसक्त रहा कि उसकी धुनमे सारा जीवन खोया और अन्तमे मरण करना पडा। परिग्रहोमे आसक्त होकर निरतर पाप ही कर रहा हैं। सूत्र जी मे बताया है कि जो बहुत आरभ परिग्रह रखता है उसे नरक आयुका बध होता है। बहुत-बहुत अपने काम-काज बढाना, दुकान मिल आदिक बढाना यह तो आरम्भ है और परिग्रह नाम मूर्छाका है। जो जितना परिग्रह रखता है प्राय उसको उतनी मूर्छा लगी रहती है। जहाँ परपदार्थमे ममता का परिणाम हो उसका नाम परिग्रह है। कहो ६ खण्डकी विभूति है और मूर्छा बिल्कुल न हो। जो यह जानता है कि ये सब बाहरी चीजें है, पुण्यके अनुसार आती है, उसकी उपेक्षा करना है। जिसे यह ज्ञान है कि ये सब बाह्य वस्तु है, इनसे मेरा कोई सम्पर्क नही है, मै आत्मा इन परिग्रहोंसे निराला हू, कोई मेरा स्वामी नही, मै अपने सतसे परिपूर्ण हू और ये बाहरी स्कध है, परिग्रह है, इनसे मेरा कोई सम्पर्क नही, ऐसा जो जानता है वह बडी विभूति पाकर भी उससे उपेक्षा भाव रखता है। इस वैभवकी उपेक्षा करनेसे कही वह वैभव घटता नही है और कहो बढ जाय। जितनी मायासे उपेक्षा रखो उतनी ही आती है और जितना मायाकी ओर अपन जायें उतनी ही माया दूर होती है। तो जो उपेक्षा रखता है उसके पुण्य रस बढता है, वैभव कम नही होता है। तो ६ खण्डकी विभूति वाला पुरुष भी यदि ज्ञानी है, अन्तरङ्गमे मूर्छा परिणाम नही रखता है तो वह निष्परिग्रह ही कहा गया है, और कोई

भिखारी ही क्यो न हो, जो कुछ भी उसके पास है उसमे यदि उसे मूर्छा है तो वह परिग्रही है और वह नरक गतिमे जन्म लेगा। नरक गतिमे जन्म लेनेके मुख्य दो कारण है—एक तो बहुत आरम्भ करना और दूसरा बहुत परिग्रह रखना। मूर्छा रखे तो इस परिणामके फलमे नरकगतिका बध होता है और वहाँके घोर दु'ख सहन करने पडते हैं।

पातयित्वा महाघोरे मा श्वभ्रेऽचिन्त्यवेदने।
क्व गतास्तेऽधुना पापा मद्वित्तफलभोगिन ॥१७२८॥

वित्तफलभोगियोके स्वार्थपरत्वविषयक आक्रन्दन—नारकी सोचता है कि मैंने अन्याय करके धन कमाया, अब उस धनका जिन जिनने उपभोग किया वे आज मुझे इन महाघोर नरकोमे पटककर कहाँ गए ? वे तो यहाँ कोई दिखते ही नही। जो कुटुम्बी जन मेरे उपार्जित किए हुए धनके फलको भोग रहे थे वे पापी मुझे इन घोर नरकोमे डालकर अब यहाँ दिखते भी नही, कहाँ चले गए, वे हमारे इस दु खमे कोई साथी नही हो रहे हैं, और है सही बात, यहाँ जितने लोग घरमे आकर इकट्ठे हुए हैं—कुछ पता तो नही कि कौन कहाँ था, कौन किस गतिसे आया, क्या सम्बध था, कुछ भी तो नही पता, अटपट कहीसे आकर यहाँ पैदा हो गए। अनन्त जीव है, उनमे से कोई जीव अपने घर उत्पन्न हो गया, कोई यह हिसाब तो नही कि इस जीवको इस घरमे ही आना था और यह मेरा कुछ लग रहा है। इस जीवमे ऐसी मोहकी आदत पडी है कि जो आ गया अपने घर उसीसे यह जीव मोह कर बैठता है। तो यो यह जीव चेतन अचेतन परिग्रहोमे मूर्छा रखता है और उसके फलमे नरकोमे जन्म लेता है। तो जिन कुटुम्बियोसे बडी प्रीति रखा, जिनसे अपना बडप्पन माना, जो मेरे लिए सर्वस्व थे, जिनका खूब ध्यान लगाया, जिनके लिए ही प्राण थे, जिनके लिए ही सर्वस्व था वे आज कोई मेरे साथी नही हुए, उन पाप कर्मोका फल मुझे अकेले भोगना पड रहा है।

इत्यजस्र मुदु खार्ता विलापमुखराननाः।
शोचन्ते पापकर्माणि वसन्ति नरकालये ॥१७२९॥

महादु'खपीडित नारकियोके विलापका चित्रण—इस प्रकार निरन्तर महान दु खोमे पीडित होता हुआ यह नारकी जीव मुखसे पुकार विलाप करता हुआ अपने पूर्वके पापकर्मोका स्मरण करता हुआ बडा सोच करता है और नरकमे दु ख भोगता है। यहाँ जैसे मनुष्यभवमे कोई पाप किया हो और पीछे कोई दुर्गति हो जाय, दरिद्रता आ जाय, अपमान हो जाय, घर बरबाद हो जाय तो जैसे यहाँ मनुष्य बडा सोच करता है, अपनी पुरानी बात सोच सोच करके मैने देखो ऐसे पाप किये, उसके फलमे इसी भवमे निर्धन हो गए और कोई पूछने वाला नही रहा, तो कुछ नारकी जीव तो अवधि ज्ञानी भी होते, वे पूर्व भवकी बाते भी विचार लेते है तो वहाँ बडा पश्चाताप करते है कि मैंने पूर्वभवमे ऐसे नाना पापकर्म किया, जिनके

फलमे यहाँ बडे दु ख भोगने पड रहे है । वह पापकार्य मूलमे एक ही प्रकारका है—परकी ओर दृष्टि लगाना । परसे अलग होकर बाहरी पदार्थोमे ही चित्तको फसाना, जिससे विषय सुखोमे आसक्ति होती है और विरोधी जीवोके प्रति बडा द्वेष जगता है । मूलमे तो एक पर-दृष्टि है और उसके विस्तारमे वे तो है ही, मगर प्रवृत्ति रूपमे ५ पाप है—हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, कुशील सेवन करना और परिग्रहमे ममता रखना । इन सभी प्रकारके पापकर्मोके फलमे नरक गतिमे जन्म लेना पडता है, सो यह जीव बडे दु खमे पडता है, निरन्तर विलाप करता रहता है, अपने उन पापकर्मोका शोक करता रहता है, पर होता क्या है शोकसे ? उन नरकोकी आयु इतनी विकट है कि शरीरके खण्ड-खण्ड भी हो जाते है पर उनका मरण नही होता । मरण जैसे दुःख पा लेते है फिर भी मरण नही होता, वे शरीरके खण्ड-खण्ड फिर इकट्ठा हो जाते है, फिर पूरा शरीर बन जाता है, फिर मरने मारने वाले बन जाते है ।

इति चिन्तानलेनोच्चैर्दह्यमानस्य ते तदा ।
धावन्ति शरशूलासिकराः क्रोधाग्निदीपिता ॥१७३०॥
वैर पराभव पाप स्मारयित्वा पुरातनम् ।
निर्भर्त्स्य कटुकालापै पीडयन्त्यतिनिर्दयम् ॥१७३१॥

अन्य नारकियोके द्वारा आक्रमणका संताप—इस प्रकार चिन्तारूपी अग्निमे जलते हुए उन नारकियोके ऊपर उसी समय अन्य पुराने नारकी टूट पडते है, आक्रमण कर बैठते है । नारकी उत्पन्न हुआ तो वहाँ सब नई नई चीजे देखता है । अरे मै किस भूमिमे आ गया ? कैसी कठिन कठिन रचना है, सब नई चीजें देखकर वह नारकी चितातुर होता और कुछ अपने पूर्व भवके पापोका स्मरण करके पश्चाताप करता है, और कोई नारकी आकर शस्त्रोसे उसके खण्ड खण्ड कर डालता है । महाक्रोधी भयकर चीत्कार करते हुए अन्य नारकी जीव उसपर टूट पडते है और उसे पीडित करते है । नारकी पूर्वभवके पापोको याद करता है । ओह ! मैने पूर्वजन्ममे ये पाप किए थे इसलिए अब उन पापकर्मोका फल भोगना पड रहा है । दूसरे नारकी उसके ही शरीरके मासको उसे खिलाते है और कहते है कि ले तू खूब मास अब खा ले, पूर्व भवमे मास खानेका तू बडा लोलुपी रहा, किसी नारकीने पूर्व भवमे खूब शराब पी हो तो अन्य नारकी उस नारकीको तप्त लोहा, तावा आदिका तप्तायमान जल पिलाते हैं, कहते है कि ले, तूने पूर्वभवमे बहुत शराब पी, अब पी ले खूब शराब । किसी ने पूर्व जन्ममे कहो उसका उपकार किया हो पर वहाँपर उसे वह विरोधी जचता है । चाहे किसी माँ ने अपने बच्चेकी आँखमे अजन लगाया हो बडी हित बुद्धिसे, पर मा और बेटा यदि नरकमे जन्म लेते है तो वह बेटा यो विचार करता है कि इसने पूर्व जन्ममे मेरी आँखोमे

रीक घुमेडकर मेरी आँखे फोडना चाही थी। तो वे नारकी पूर्वभवके पापोकी याद दिलाते हैं, बैरकी याद दिलाते हैं और बहुत कटुक वचनोसे उसका तिरस्कार करते है। बडी निर्दयतासे जिस प्रकार भी बनता हे वे पुराने नारकी उस नये नारकीको दुख देते है। जब वह नया नारकी समर्थ हो जाता हैं तो वह भी दूसरे नारकियोको मारने लगता है। बहुतसे लोग उन नारकी जीवोंके फोटो बनाते है उनका मुख ऊँट जैसा, बैल जैसा, जिनके सीग भी लगे हैं, तो वे कोई पशु हो ऐसी बात नही है। वे स्वय नारकी ही हैं जो अनेक प्रकारसे अपने शरीरकी रचना कर लेते हैं। उनका बडा भयानक रूप हो जाता है, जिस प्रकार बने वे दूसरे नये नारकीको दुख देनेकी ही बात सोचा करते हैं। वे सभीके सभी नारकी परस्परमे ही लडते हैं और परस्परमे ही एक दूसरेका घात करते है।

उत्पाटयन्ति नेत्राणि चूर्णयन्त्यस्थिसञ्चयम्।
दारयन्त्युदर क्रुद्धास्त्रोटयन्त्यन्त्रमालिकाम् ॥१७३२॥

नारकियो द्वारा नारकियोके दुःखका चित्रण—वे पुराने नारकी उस विलाप करते हुए नये नारकीके नेत्रोको उखाड लेते हैं, उनके ऐसे वैक्रियक शरीरके अग है कि वे अपने हाथको जो चाहे सो बना डालते है। जैसे शेरका पञ्जा बनाना है तो उनका हाथ ही पञ्जा बन जाता है। उन्हे कोई शस्त्र चाहिए तो उनका हाथ ही शस्त्र बन जाता है। जैसे देख लो—मनुष्य लोग अपने ही हाथकी कितनी ही चीजें बना लेते है, पकडनेकी सम्सी बनालें, मारनेके लिए गदा बना लें, टेढा करके हाथ मारे तो कहो तलवार जैसी चोट लगा दें, अगु-लियोसे चोट ले तो कहो चीटी बना ले, इसी हाथसे कटोरा, चम्मच आदिका काम ले ले तो जैसे यहा ही मनुष्य लोग अपने हाथके कई आकार धारण कर सकते है, इसी प्रकार वे नारकी अपनी विक्रियासे अपने हाथके ही अनेक शस्त्र बना लेते है। विक्रियासे उनके हाथ बढते भी तो है, उन्हे मारनेके लिए किसी शस्त्रकी जरूरत हुई तो वह शस्त्र उन्हे कही बाहर से नही लाना पडता, उनके ही हाथ वह शस्त्र बन जाते है। जैसे किसी नारकीको किसी नारकी का सिर कुल्हाडीसे काटना है तो हाथ उठाते ही वह हाथ कुल्हाडी बन जाता है। तो एक नारकी दूसरे नारकीको देखकर क्रोधमे आकर उसकी आँखोको उखाड लेता है। कोई नारकी हड्डियो को चूर्ण चूर्ण कर डालते है, उदरको फाड डालते हैं और अत्यन्त क्रुद्ध होकर उस नारकी की आँतोको तोड डालते है। नारकियोके भी वैक्रियक शरीर है और देवोके भी पर इन दोनोके वैक्रियक शरीरोमे बहुत अन्तर है। देवोको भूख प्यास ही नही लगती, हजारो वर्षोंमे जब कभी भूख प्यास लगी तो उनके ही कठसे अमृत झरता है जिससे वे तृप्त हो जाते है। और नरकोमे भूख प्यासकी इतनी तीव्र क्षुधा है कि सारा अन्न भी खा जावे फिर भी क्षुधा न मिटे, सारे समुद्रका जल पी जावे फिर भी तृषा न मिटे, लेकिन खानेको

वहा एक दाना नही और पीनेको वहा एक बूंद पानी नही । देवोंके शरीरका घात नही किया जा सकता और नारकियोके शरीरके खण्ड खण्ड हो जाते है, हालाकि वे नारकी बीचमे मर नही सकते, इस कारण वे टुकडे फिर मिल कर शरीररूप हो जाते है, वेदना वैसी ही होती है जैसी कि मनुष्योको होती है । तो वे नारकी एक दूसरे पर क्रुद्ध होकर अपने ही हाथोको शेरके पञ्जे जैसा बनाकर दूसरे नारकी की आँतोको फाड डालते है ।

जैसे यहाँ एक कुत्ता दूसरे कुत्तेको देखकर शान्त नही रहता है भौंकता है, उसपर आक्रमण करता है, ऐसी प्रकृति है कुत्तोमे और कुत्तेमे यही बुरा अवगुण बताया है कि वे दूसरे कुत्तेको देखकर गुर्राते है, उस पर आक्रमण करते है तो ऐसे ही ये नारकी जीव भी दूसरे नारकीको देखकर क्रुद्ध होकर उसपर आक्रमण करते है । मनुष्य लोग तो यहा फिर भी कुछ विरोध जचने पर धैर्य धारण करते है पर वे नारकी रच भी धैर्य नही धारण करते, एकदम ही दूसरे नारकी पर टूट पडते है । वे नारकी इतने समर्थ है कि दूसरे नारकी का जो चाहे सो कर दें । कहो छुरेसे उसका पेट फाड दें, शस्त्रसे गला काट दे अथवा अग्निमे जलाकर भस्म कर दें । अग्नि भी उन्हे कही बाहरसे नही लानी पडती है । उनका ही शरीर अग्नि बन जाता है । तो वे नारकी जीव एक दूसरेको देखकर परस्परमे कलह करते है और एक दूसरे नारकीको दु खी करते है ।

निष्पीडयन्ति यन्त्रेषु दलन्ति विषमोपलैः ।
शाल्मलीषु निघर्षन्ति कुम्भीषु क्वाथयन्ति च ॥१७३३॥

कुम्भीपाक आदिकी वेदनाका चित्रण—वे नारकी जीव एक दूसरेको घानीमे अर्थात् कोल्हूमे डालकर पेल देते है, उस नारकीके शरीरका चूरा-चूरा हो जाता है । उनको वह कोल्हू कही बाहरसे नही लाना है, उनका ही शरीर कोल्हूरूप बन जाता है । उनकी इच्छा हुई कि मै इसे पत्थरकी दरेतीमे दल दूँ अथवा चक्कीमे पीस दूँ तो उनका ही शरीर दरेती चक्की आदि बन जाता है और उसमे उस नारकीको डालकर पीस डालते हैं, उस नारकीके शरीरको चूर-चूर कर डालते है । लोहेके कांटो वाले वृक्षोसे वे उस नारकीको रगडते है, कडाहीमे डालकर उनको उबालते है । जैसे बडे-बडे कडाहे गर्म हो, उनमे खूब तप्तायमान तेल हो, उसमे निर्दयी लोग पशु पक्षी आदिकको डालकर उबाल लेते है ऐसे ही नारकी जीव एक दूसरे नारकीपर क्रुद्ध होकर तप्तायमान कडाहीमे डालकर उन नारकियोको कष्ट देते है । उन नारकियोके शरीरके खण्ड-खण्ड हो जाते है, फिर भी उनके ऐसा अशुभ कर्मका उदय है कि वे शरीरके खण्ड-खण्ड फिर पारेकी तरह मिलकर शरीर रूप हो जाते है और फिर मरने मारने के लिए तैयार हो जाते है । ऐसे दु खपूर्ण जीवनको वे नारकी व्यतीत करते है यह सब उनके पाप कर्मोका फल है । तो वह नारकी विचार कर रहा है कि मैने पूर्वजन्ममे ऐसे पापकर्म

किया था जिनका फल यहाँ अकेले भोगना पड रहा है। कोई दूसरा साथी नही है। यह सब अर्थ संस्थानविचय धर्मध्यानी प्राप्त कर रहा है कि अधोलोकमे इस तरहकी प्रवृत्तियाँ हैं।

असह्यदुःखसतानदानदक्षा कलिप्रिया ।
तीक्ष्णदंष्ट्रा करालस्या भिन्नाञ्जनसमप्रभाः ॥१७३४॥
कृष्णलेश्योद्धता पापा रौद्रध्यानैक भाविता ।
भवन्ति क्षेत्रदोषेण सर्वे ते नारका खला ॥१७३५॥

नारकियोकी अशुरूपताका चित्रण—पापके उदयका तीव्र फल मिलनेका स्थान या तो निगोद है या नरक है। यहाँ नरक गतिका वर्णन चल रहा है कि नरकोमे रहने वाले नारकी दूसरेको असह्य दु ख देनेमे निरन्तर चतुर रहा करते है। दूसरे नारकियोको निरन्तर दु खी करनेमे ही वे अपनेको सन्तुष्ट मानते है। वहाँ दिन रात तो नही है पर अपने शब्दोमे हम यो कह रहे है कि वे नारकी रात दिन चौबीसो घटे केवल दूसरे नारकियोको कठिनसे कठिन वेदनाएँ पहुचानेमे ही अपनेको संतुष्ट मानते है। जैसे यहाँ भी मनुष्योमे अनेक लोग इस प्रकृति के होते है कि दूसरोको दु खी होता हुआ देखनेमे बडा मौज मानते है, ऐसे ही नारकियोमे भी ऐसी क्रूरता है कि वे दूसरे नारकीको असह्य दु ख देनेमे ही अपनेको सन्तुष्ट मानते है। नरकमे पहुचना रौद्रध्यानके प्रतापसे होता है। हिसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रहमे आनन्द मानना यह रौद्रध्यान है, ऐसे रौद्रध्यानके कारण वे नरकमे गए तो वहाँ भी रौद्रध्यानकी विशेषता है। नरकोमे एकेन्द्रिय जीव उत्पन्न नही होते, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय और चारइन्द्रिय जीव भी नरकमे नही उत्पन्न होते, पञ्चेन्द्रियमे असञ्ज्ञी जीव पहिले नरकमे कदाचित् उत्पन्न हो सकते है पर प्राय सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव ही नरकमे जाते है। तो जो असञ्ज्ञी जीव है, जो चारइन्द्रिय तकके जीव है उनमे रौद्रध्यानकी विशेषता नही है। रौद्रध्यान उनके भी होता है मगर तीव्र रौद्रध्यान कर सकनेमे समर्थ मन वाले जीव ही हो सकते हैं। उस रौद्रध्यानके कारण नरकमे गए। नारकी जीव मरकर तुरन्त नरकमे नही जाते, देवगतिके जीव मरकर, भोगभूमिया मनुष्य नरकमे नहीं जाते, केवल कर्मभूमिया मनुष्य और तिर्यञ्च मरकर नरक गतिमे जाते है। तो रौद्रध्यानकी जडसे जिनकी नरक आयु बँधी और नरकमे उत्पन्न हुए तो जीवनभर उनके रौद्रध्यानकी प्रमुखता रहती है। वे नारकी कलहप्रिय है, वे चाहते ही नही कि हम शान्तिसे रहे, और दूसरे भी शान्तिसे रहे। शान्तिका वहाँ कोई स्थान नही है, वे एक दूसरेकी कलह ही देखना चाहते है। वे नारकी जीव भयानक मुख वाले हैं, उनका सारा शरीरका आकार भी भयानक है। उनके निरन्तर क्रूरता ही बसी रहा करती है। यहाँ ही देख लो—जो मनुष्य क्रूर हैं अथवा जिनकी क्रोध करनेकी प्रकृति है उनका चेहरा भयानक दीखता है और जो शान्तिप्रिय लोग हैं उनके चेहरेमे कोई भयानकता नही टपकती। फिर

ये नारकी तो हुडकसस्थान वाले है, वे निरन्तर क्रूरताका परिणाम रखते है, तो उनका चेहरा अत्यन्त भयानक हो जाता है। बिखरे हुए काजलके समान उनके शरीरकी काली प्रभा है। उनका परिणाम कृष्णलेश्या, नील लेश्या और कापोतलेश्यामय बना रहता है, इस कारण सदा उद्धत रहा करते है। उनके मुख्यतासे कृष्ण, नील और कापोत लेश्याये है इस कारण निरतर उनके रौद्रध्यानकी भावना रहा करती है। वह नरकका क्षेत्र ऐसा ही दूषित है कि क्षेत्रके दोपसे सारे नारकी दुष्ट होते है। ऐसी नरक भूमिमे ये मनुष्य तिर्यञ्च पापोमे व्यसनोमे आसक्ति रखनेसे उत्पन्न होते है। जीवको स्वदृष्टि न मिले और बाहरी विपयोमे ही उसकी हित वुद्धि जाय इस कारण बाह्य पदार्थोमे इसका आकर्षण होता है। ऐसी जो स्थिति है यह स्थिति ही पाप है। परपदार्थोमे रुचि होना, परपदार्थोमे दृष्टि लगाना, उसे ही हित मानना, अपने निकट आना ही नही, अपनी सुधि हो ही नही, परवस्तुके पीछे दौड लगाये, ऐसी जो जीवकी स्थिति है यह स्थिति स्वय पाप है और ऐसी स्थितिमे पाप कर्मका बन्ध होता है जिसके फलमे नरक जैसे कठिन दु ख भोगने पडते है।

वैक्रियकशरीरत्वाद्विक्रियन्ते यदृच्छया।
यन्त्राग्निश्वापदाङ्गैस्ते हन्तु चित्रैर्वधै· परात् ॥१७३६॥

विक्रियानिर्मित शस्त्रो द्वारा हननकी वेदना—उन नारकियोका शरीर वैक्रियक है, वे अपनी इच्छाके अनुसार जैसी उनकी भावना है उस भावनके अनुकूल अपना रूप बना लेते है। कभी वे ही नारकी घानी बन जाते है। पापका कितना तीव्र उदय है कि उनके दु·खके साधन यहाँ वहाँसे खोजकर नही लाने पडते, उनका शरीर ही घानी बन जाता है, दो नारकी मिलकर एक नारकीको मार रहे हों तो उनमे से एक नारकी घानी बन गया और एक नारकी बैल बन गया। झट उसे घानीमे पेल देते है। उस नारकी की भावना हुई कि मै इसे अग्निमे जलाकर भस्म कर दू तो उनका ही शरीर अग्नि बन जाता है। उनका ही शरीर हिसक जन्तु बन जाता है। उसकी इच्छा हुई कि मै शेर बनकर इसकी हड्डियोका चूर चूर कर दू तो उसका ही शरीर शेररूप बन जाता है। उनके शरीरकी रचना ही ऐसी है जो दु ख देनेका जो साधन चाहे, तुरन्त उनका ही शरीर उस साधनरूप बन जाता है। औदारिक शरीर नही है किन्तु वह शरीर ही इस प्रकारका विलक्षण है कि जो शरीर दु खका बहुत-बहुत कारण बन सकता है। तो वह नारकी जीव अपनी इच्छासे नानारूप बनाता है और अनेक प्रकारसे परस्पर एक दूसरेको मारनेके लिए वह विक्रिया करता रहता है। अभी यही देख लो—नाटकोमे लोग कोई भयानक चेहरा अपने मुखके सामने लगा लेते है तो वे कितने भयानक लगते है? फिर जिन नारकियोके शरीरमे ऐसी विक्रिया है कि वे जैसा चाहे भयानक रूप धारण कर ले तो फिर उनकी भयानकताका तो कहना ही क्या है? ऐसी

भयानक मुद्राको देखकर यदि मनुष्य हो तो वहीं अपने प्राण ही खो दे। पर वे नारकी इतना अभ्यस्त हैं कि वे परस्परमे लडकर कटा मरा करते है।

न तत्र बान्धवः स्वामी मित्रभृत्याङ्गनाङ्गजा ।
अनन्तयातनासारे नरकेऽत्यन्तभीषणे ॥१७३७॥

अनन्त यातनावोका धाम—वह नरक अत्यन्त यातनावोका घर है। यहाँके मनुष्य तो जरा जरासे दुःखको पाकर घबडा जाते हैं। थोडासा भी घरमे क्लेश हुआ तो ऐसा अनुभव करते कि हमारा घर तो एक नारकी जीवनसा बन गया, लेकिन और जीवोके दुःखको देखकर यह निर्णय होता कि हम आपको इस पर्यायमे कठिनसे भी कठिन दुःख आयें तो वे कुछ भी दुःख नही है। क्या दुःख आ गया? इष्ट वियोग हो गया। यही तो दुःख मानते है ये जीव, पर वह दुःखकी क्या चीज है? अरे जीव हैं, जन्म लेते है, मरण करते है, कोई यहाँ आ गया, इस भूमिमे कुछ दिन रहकर चला गया। यह तो ससार है। यहाँ तो आना जाना लगा ही रहता है। इसमे मेरा क्या बिगडा, पर कल्पनाएँ करते है और उन कल्पनाओंसे अपना दुःख बढाते हैं। कौनसा और दुःख हो गया? मान लो कि हजारोका घाटा पड गया तो क्या हो गया? यह वैभव तो आता जाता रहता है, इसकी ऐसी प्रकृति ही है, और वह पुण्यवानका आश्रय करता है तो उसे छोडकर चला जाता है। इतनेपर भी हम मनुष्य है तो पुण्यवान तो है ही, और जीवोकी अपेक्षा तो हमारा पुण्य विशेष है ही। कितनी ही दरिद्रता की स्थिति आ जाय, पर मनुष्यभवका पाना स्वय एक पुण्यका फल है, और फिर उदरपूर्ति के लायक तो वैभव बना ही रहता है। प्रत्येक मनुष्य अपनी उदरपूर्ति अपने अपने उदयके अनुसार करता ही रहता है। कौनसा दुःख आ गया? और भी दुःख सोच लो, शरीरमे बाधा बढ गई, कोई रोग हो गया, कठिन वेदना हो गयी तो यह जीव बडा दुःख मानता है। हाँ इसे थोडा दुःख कह सकते, लेकिन जिस समय भेदविज्ञान जगता है, शरीर और आत्मा भिन्न भिन्न दिखते है उस समय शरीरकी वेदना भी शान्त हो जाती है। मनुष्यभवमे और विशेषकर जैन शासनका शरण पाकर हम अपनेको दुःखी अनुभव करे तो यह हमारे लिए एक मूर्खतापूर्ण बात होगी। कोई भी परिस्थिति आये पर अपनेको दुःखी अनुभव न करें और बहुत सुखी है, शान्त है, पवित्र है इस प्रकारकी अपनी दृष्टि बनाएँ। देखिये ये नारकी जीव नरकमे कैसे घोर दुःख भोगते है, उनका वहाँ न कोई बन्धु है, न कोई स्वामी है, न कोई हितू है, न कोई मित्र है, न कोई नौकर है, न कोई स्त्री है। मनुष्यभवमे तो अनेक नौकर स्त्री पुत्रादिक होते है, पर उन नारकियोंके ये कोई भी नही है। तिर्यञ्चोंके—गाय भैस, पशु पक्षी इनका तो एक दूसरेसे प्रेम हो जाता, एक दूसरेके मित्र बन जाते, एक दूसरेके सहयोगी हो जाते, जितना बन सकता उतनी सेवा करते, पक्षी भी एक दूसरेकी सेवा करते है, उनके पास

तत्र ताम्रमुखा गृध्रा लोहतुण्डाश्च वायसा ।
दारयन्त्येव मर्माणि चञ्चुभिर्नखरै खरै ॥१७३८॥

नरकोमें विक्रियासे घातक पक्षी बनकर कष्ट पहुंचानेकी यातना—उन नरकोमे ऐसे कौवा, गृद्ध आदिक पक्षी है। जिनकी चोच नुकीली है, कठोर है। देखो नरकोमे सिवाय नारकी जीवोंके और स्थावर जीवोके कोई जीव न मिलेंगे। ये गृद्ध, कौवा आदिक जो पक्षी है वे पक्षी नही है, वे नारकी ही है जो कि विक्रियासे अपना शरीर उस रूप बना लेते है। उनकी चोच ऐसी तीक्ष्ण धार वाली है कि उन नारकी जीवोंके मर्मको बिगाड डालते है। उन नरकोमे निरन्तर कलह मची रहा करती है। क्या जीवन है वह ? जैसे किसीके घर रात दिन लडाई होती रहे तो पडौसके लोग कहते है कि देखो इन्होने पूरा नरक बना रक्खा है। जहाँ निरन्तर अशान्ति रहे, एक दूसरे को न सुहाये, सक्लेश परिणाम ही बना रहे, कलह प्रपच घृणा जहाँ अपना साम्राज्य रखता है वह जीवन भी नारकी जीवनके तुल्य माना गया है। यह बात नारकियोके निरन्तर रहा करती है।

क्रमय पूतिकुण्डेषु वज्रसूचीसमानना ।
भित्वा चर्मास्थिमासानि पिबन्त्याकृष्य ॥१७३९॥

विक्रियानिर्मित कीट जोको द्वारा होने वाले उपद्रवोका चित्रण—उन नारकी जीवो के पीबके कुण्डोमे बज्रकी सुईके समान जिनके मुख है ऐसे कीडे बाजोके नारकी जीवोके चमडे और हाडमाँसको विदार कर रक्तको पीती है। नारकी जीव कहते उसे है जो शान्त न रह सकें। नारक शब्दका अर्थ है—जो जीवोको निरन्तर पीडित करता रहे। हर तरहसे दु:ख देकर भी वे नारकी जीव कभी भी तृप्त नही होते। उनके निरन्तर चाह बनी रहती है कि मै इस तरहसे इनको दु:ख पहुचाऊ। जैसे किसी मनुष्यका तलवारसे खण्ड-खण्ड कर देने पर भी शान्ति नही मिलती इसी प्रकार उन नारकी जीवोको दूसरे जीवोका खण्ड-खण्ड कर देने पर भी शान्ति नही मिलती। अनेक प्रकारके और और भी उपाय करके उन नारकी जीवोका घात करते रहते है। कही चक्कीमे पीस दिया, कही कोल्हूमे पेल दिया, कही कडाहीमे उबाल दिया, कही कीडे व जोक आदिक बनकर उनके शरीरको बिगाड दिया, इस तरहकी अनेक विक्रियायें करके वे नारकी जीव दूसरे नारकी जीवोका घात करते रहते है। यहाँ तो थोडामा मच्छर भी काटते है तो लोगोको वह वेदना असह्य मालूम पडती है। मक्खी जो कि काटती भी नही है वह भी यदि शरीरमे कही बार बार बैठती रहती है तो उसकी भी वेदना लोगोको असह्य मालूम होती है, फिर उन नारकी दु:खोकी तो कहानी ही क्या कही जाय ? वे नारकी जीव बडी भीषण वेदनाए बहुत काल तक सहते रहते है।

बलाद्विदीर्य सदृशैर्वदन क्षिप्यते क्षणात् ।
विलीन प्रज्वलत्ताम्र यैः पीत मद्यमुद्धतै ॥१७४०॥

नरकोमे मदिरापानका फल——पूर्वभवमे जिन जीवोने मद्यपान किया था उद्धत होकर वे जीव मरकर नरकोमे उत्पन्न होते है तो दूसरे नारकी जीव मायामयी नारकीके मुखको सडासीसे फाड फाडकर पिघलाये हुए ताबेको पिलाते है, लो तुम्हे मद्य बहुत अच्छा लगता था, अब खूब पी लो । शराब पीना, मास खाना यह कितना खोटा आचरण है । इसको हम आप यो समझते है कि उससे बहुत दूर रहे, उसे देखना भी नही चाहते, और जो मद्यपान करते है उन्हे कितना ही समझावो कि न पियो मगर वे यही कहेगे कि उससे हमे बडा विश्राम मिलता है, बडी नीद आती है । अरे इस शरीरको विश्राम देनेकी जिसकी भावना बनी, शरीर को ही जो यह मै आत्मा हू ऐसी जिसकी मिथ्याबुद्धि लगी हुई है वह ब्रह्मके मर्मको क्या जाने, और उस मद्यपानके फलमे नरकमे जन्म लेना पडता है, इसलिए नहीं कि पिया था इसलिए पिलाते है । उनका यह एक बहाना है दूसरे नारकीके विदारण करनेका । नही चाहता वह नारकी उसका पीना । पिलाते समय वह अपने मुखको दबोच लेता है किन्तु वे नारकी जबरदस्ती उसके मुखको सडासीसे फाड फाडकर अग्निसे गले हुए ताबेका रस पिलाते है । कोई गर्म पानी ही पी लेवे तो उसका मुख जल जाता है फिर वह ताबेका रस जो कि अत्यन्त गर्म होता है उसे उस नारकीको पिलाया जाता है तो जरा सोचो तो सही कि उसका क्या हाल होता होगा ? तो जैसे वहाँ मद्यपायी जीवका सडासीसे मुख फाड-फाडकर ताँबा, लोहा, चाँदी, सोना आदिकका गलित रस पिलाया जाता है इसी प्रकार जो मासभक्षी जीव वहाँ उत्पन्न होते है उन नारकी जीवोको दूसरे नारकी निर्दय होकर उनके ही शरीरका मासखण्ड निकालकर या उसमे जो कुछ भी भाग है उस खण्डको निकालकर उसे भून भूनकर पका पकाकर उनको ही खिलाते है और कहते है कि ले खा ले मास ! तू मास खानेका बडा शोकीन था । इस प्रकार नारकी जीव दूसरे नारकी जीवो को दुःख देनेकी आदतके कारण दुःख देते है, और करीब करीब उस ही प्रकारका दुःख देते है जिस प्रकारका उन्होने पापकर्म किया था ।

परमासानि यैः पापैर्भक्षितान्यतिनिर्दयैः ।
शूलापक्वानि मामानि तेपा खादन्ति नारका ॥१७४१॥

मांसभक्षरणका फल——जिन पापी प्राणियोने मनुष्यभवमे निर्दय होकर दूसरे जीवोका मास खाया है वे पापी मनुष्य मरकर नारकी होते है तो उनके शरीरके मासके भी खण्ड पका पकाकर नारकी जीव खाते है । यह सब एक दुःखकी यातना बतानेका वर्णन है । नारकी जीवोको खानेको कुछ नही मिलता है जिससे उनकी तृषा शान्त हो जाय और चेष्टा करते है

वे दूसरेके शरीरके खण्ड खण्ड पकाकर खानेकी, मगर वह सब एक वैक्रियक स्कध है, वहाँ उनकी क्षुधा शान्त नही होती। वे नारकी जीव ऐसी याद दिला दिलाकर कि तूने पूर्वभवमे जीवोका मास खाया है, तुझे मास खानेका बडा शौक है इसलिए ले अब तू अपना ही शरीर का मास खा, यो कहकर उस नारकीके शरीरके खण्ड-खण्ड करके पका करके उस ही नारकी के मुखमे डालते है और दूसरे नारकी भी एक अपना दिल बहलानेको दूसरेके शरीरके मासके टुकडोको पका पकाकर खाते है। उनके शरीरमे यद्यपि मास नही होता मनुष्य और तिर्यञ्चो की तरह, लेकिन नारकियोका वैक्रियक शरीर देवोके वैक्रियक शरीरके समान नही है। नारकियोके शरीरमे दुख जैसे उत्पन्न होता उस तरह मनुष्योके शरीरकी बनावटके माफिक कुछ अश होता है। जो लोग यहाँ मास खाते है उनकी कितनी बेसुधी और भूल है? उनके चित्त मे रच भी यह बात नही आती कि दूसरे जीव भी इस प्रकार तडफ तडफकर मरते है जिनका कि मास खाया जा रहा है, जरा भी दया उनके चित्तमे नही है। यदि दया आ जाय तो फिर मास कहाँ खा सकते है? ऐसे निर्दय जीव नरकमे उत्पन्न होते है और नाना दुःख भोगते है।

य प्राक्परकलत्राणि सेवितान्यात्मवञ्चकैः।
योज्यन्ते प्रज्ज्वलन्तीभिः स्त्रीभिस्ते ताम्रजन्मिभि ॥१७४२॥

परस्त्रीसेवनका फल— जिन मनुष्योने पूर्वभवमे परस्त्री सेवन किया है उनको अन्य नारकी ताबेकी अग्निसे लाल की हुई पुतलियोको जिनका आकार स्त्रीकी तरह है उन्हे चिपकाते है कि ले तुझे परस्त्रीकी बडी अभिलाषा थी तो इस ताती पुतलीका सगम कर। इस तरह अन्य नारकी जीव उन कामी पुरुषोको उन ताती पुतलियोको चिपकाकर त्रास देते है। इसमे कोई सदेहकी बात नही है कि यह जीव जैसे परिणाम करता है उस प्रकारका कर्मबन्ध होता ही है, और प्राय उस कर्मका उदय आनेपर उस उदयके अनुसार उसका फल भोगना पडता है। कभी ऐसा लगता है कि कोई मनुष्य कर तो रहा है पाप, लेकिन फल मिल रहा है अच्छा तो उसका कारण यह है कि इस पुरुषने पूर्वजन्ममे पुण्य विशेष कमाया था जिसके उदयमे पाप कर्म करनेपर भी उसका असर नही हो पा रहा है, लेकिन उस पापकर्मका असर अवश्य होगा। कुछ समय बाद होगा। देर है पर अधेर नही है। जो मनुष्य पापकर्म करता है वह उस पापकर्मके फलमे नियमसे दुर्गति प्राप्त करता है। हाँ कोई ज्ञानबल ऐसा आ जाय, पहिले ही सम्यक्त्वकी भावना जग जाय तो वह पापबधको हटा दे, पापकर्मकी निर्जरा कर दे यह बात तो अलग है मगर ऐसा तो कोई विरला ही सत पुरुष हो जो बाँधे हुए कर्मोको टाल सकता है।

न सौख्य चक्षुरुन्मेषमात्रमप्युपलभ्यते।
नरके नारकैर्दीनैर्हन्यमानैः परस्परम् ॥१७४३॥

नरकोमे क्षणमात्र भी साताका अभाव—नरकमे नारकी जीव परस्पर एक दूसरेको मारते है, सो वे दीन नारकी एक पलक मात्र सुखको नही प्राप्त कर सकते। निरन्तर छेदना, वेदना, अग्निमे गिरा देना, गर्म तैलकी कडाहीमे गिरा देना, कोल्हूमे पेल देना, करौतोसे काट डालना, नाना तरहके नारकी जीव वहाँ त्रास दिया करते है। उनको कोई सहाय नही हो पाता। कोई नारकी किसीको आक्रमणसे बचा दे ऐसा वहाँ प्रेम बिल्कुल नही है। जैसे यहाँ मनुष्योमे किसी मनुष्यपर कोई वार करता हो तो दूसरा कोई मनुष्य उस वारको रोक देता है, इस तरहका प्रेम करने वाला उन नरकोमे कोई नही है। हाँ केवल जिन्होने तीर्थंकर प्रकृति का पहिले बध किया था क्षयोपशम सम्यक्त्वमे और फिर वह नरकमे पहुचा, अथवा क्षायक सम्यग्दृष्टि भी पहिले नरकमे उत्पन्न हो सकता है। यदि पहिले नरककी आयु बाँधली हो ऐसा कोई हो यह तीर्थंकर प्रकृतिका बध होता है उन नारकियोके जिनके गर्भमे आनेसे ६ महीना पहिले देव जाकर एक कोट रच देते है जहाँ वे नारकी सुखपूर्वक रहते है। अन्यथा यह बडे असमजसकी बात होगी कि यहाँ तो गर्भमे आनेसे ६ महीना पहिले रत्न वर्षा हो रही हो और जिस जीवकी खुशीमे रत्नवर्षा हो रही हो वह जीव नरकमे कूदता फादता हो तो ऐसा ही प्राकृतिक नियम है कि ६ महीना पहिले नरकोमे देव जाकर एक कोट रच जाते है जिससे तीर्थंकर होने वाला नारकी वहाँ सुखपूर्वक रहता है। इसके अलावा वहाँ और कोई खैर नही है। निरन्तर नाना प्रकारके त्रास मिलते है। तो उस नारकी जीवने जिसने पूर्वभवमे तीर्थंकर प्रकृतिका बध किया था और नरक आयुका भी बध किया था, तीर्थंकर प्रकृतिके बाधने वाले वे जीव नरकमे तो उत्पन्न होते, अब नरकसे निकलकर मनुष्य होकर तीर्थंकर होकर उसी भवमे मोक्ष जायेगे। जो पचकल्याणकधारी तीर्थंकर होते है वे या तो स्वर्गसे आकर होते है या नरकसे अन्य भवोसे आकर नही होते। जो पुरुष क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि है उसने पहिले सम्यक्त्वमे पहिले नरक-आयुका बध कर लिया हो, बादमे क्षायोपशमिक सम्यक्त्व हो जाय और तीर्थंकर प्रकृतिका बध भी करले ऐसा पुरुष मरते समय क्षायोपशमिक सम्यक्त्वसे तो छूट जायगा और नरकमे उत्पन्न होगा और अन्तर्मुहूर्तके लिए तीर्थंकर प्रकृतिका बध रुक जायगा। तीर्थंकर प्रकृति निरन्तर बध वाली प्रकृति है। वह बधती है तो बराबर बधती चली जाती है जब तक उसका गुणस्थान पूरा न हो। वह क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि था तो मरणके समयमे तीर्थंकर प्रकृतिका बध रुक जायगा और नरकमे जन्म लेनेके बाद भी वह अन्तर्मुहूर्त तक तनपूर्ण नही होता है और तीर्थंकर प्रकृति न बँधेगी इन दो अन्तर्मुहूर्तके बाद फिर तीर्थंकर प्रकृति नरकमे भी बराबर बधती रहती है और जिनने पहिले नरक आयुका बध किया पीछे क्षायक सम्यक्त्व हुआ और क्षायक सम्यक्त्वकी स्थितिमे तीर्थंकर प्रकृतिका बध किया उनके सम्यक्त्व न छूटेगा। मरण समय भी तीर्थंकर प्रकृतिका बध रहेगा और

नरकमे उत्पन्न होते समय भी तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध बराबर होगा, लेकिन ऐसा जीव सिर्फ पहिले ही नरकमे जाता है और नरकके नीचे सम्यग्दृष्टिका उत्साह नही है अर्थात् सम्यक्त्व रहती हुई अवस्थामे रहता हो तो वह पहिले नरकसे नीचे नही जाता है ।

किमत्र बहुनोक्तेन जन्मकोटिशतैरपि ।
केनापि शक्यते वक्तु न दु.ख नरकोद्भवम् ॥१७४४॥

नरक दु खोकी वचनागोचरता—आचार्यदेव कहते है कि बहुत कहनेमे क्या लाभ ? अर्थात् थोडेमे ही बहुत समझ लेना चाहिए कि नरकोमे उत्पन्न हुए जो दु ख है उनको कोई करोडो जिह्वावो द्वारा भी नही बखाना जा सकता है । वे नारकी जीव एक दूसरेको मारते है, घात करते है, पर क्रूर वचन कहकर घात करते है, ऐसे क्रूर वचन कि जिन वचनोका ही घाव बहुत तीक्ष्ण हो जाता है । मर्मभेदी वचनोका भी दु ख सहे और मनमे तो तडफन होती ही है उसका दु ख सह सके, और शारीरिक दु ख अनेक है वे दु ख सहे । तो ऐसे जो दु ख नरकमे सहे जाते है उन दु खोका वर्णन करनेके लिए कोई समर्थ नही है । ऐसा दु ख इस जीवको अनेक बार सहना पडा लेकिन इस मनुष्यभवमे कभी कोई दुःखी होता है तो उसे बहुत वडा दु ख मानता है । यह सुधि नही करता कि इससे भी अनत गुने दु ख हमने नरकोमे भोगे, निगोदमे भोगे, अन्य पर्यायोमे भोगे, ये दु ख कोई कठिन दु.ख नही है ।

विस्मृत यदि केनापि कारणेन क्षणान्तरे ।
स्मारयन्ति तदाभ्येत्य पूर्ववैर सुराधमा ॥१७४५॥

परस्पर बैरका स्मरण कराकर पीड़ित कराये जानेकी वेदना—यह वह नारकी कुछ थोडा बहुत भूल भी जाय एक दूसरे को सतानेमे तो वहाँ असुर जातिके देव जो सक्लिष्ट है उन्हे याद दिलाते है कि देखो वह तुम्हारा पूर्वभवका बैरी है । जैसे बहुतसे मनुष्योको तीतर, कुत्ता मनुष्य आदिक लडानेका बडा शौक होता है, उनकी लडाईको देखकर वे बडे खुश होते है ऐसे ही असुर जातिके देव है । असुर कुमारके देवोमे सभी देवोकी इस प्रकारकी अभिलाषा नही रहती, कोई खोटी जातिके देव असुरोमे भी जो ऊधमी है उनकी ऐसी प्रकृति होती है । भवनवासी, व्यतर, ज्योतिषी आदिके जितने भी इन्द्र है उन सब इन्द्रोमे असुर कुमार जातिके जो इन्द्र है उनका वैभव बहुत बढा चढा होता है । यो समझना कि सौधर्म स्वर्गके इन्द्रोके प्रति असुर कुमारके देवोकी ईर्ष्या चलती रहती है । वैभव असुर कुमारका अन्य इन्द्रोकी अपेक्षा बढा चढा है तो वहाँ नरकोमे ऐसे असुर कुमार जातिके देव पहुचते है और उन नारकियोको याद दिलाते है । देख तेरी आँखोमे इसने शूल छेदी थी, यह तेरा बैरी है, चाहे उसने आँखोमे अजन ही लगाया हो, लेकिन ऐसी ऐसी बाते कहकर उन नारकियोको वे आपसमे लडाते रहते है । तो स्वय मारने पीटनेका तो दु ख उनके है ही, मगर असुर जातिके देवोके

द्वारा भी उन्हे बहुत कुछ दुःख पहुचाया जाता है ।

बुभुक्षा जायतेऽत्यर्थं नरके तत्र देहिनाम ।
या न शामयितु शक्तः पुद्गलप्रचयोऽखिलः ॥१७४६॥

नरकोमे क्षुधाकी तीव्र वेदना—उस नरकमे नारकी जीवोको ऐसी कठिन भूख लगती है कि समस्त पुद्गलोका समूह भी खा लें तो भी उनकी भूखका शमन करनेमे समर्थ नही है । भूख ही तो है । सम्भावनामे ऐसा कह रहे है कि तीन लोकके सारे पुद्गल भी खा लें तो भी भूख नही मिट सकती । अभी तक तो तीन लोकके अनाजकी ही बात कह रहे थे अब तो पुद्-गलोकी बात कह रहे है । इसमे उन नारकियोकी वेदना बतलायी जा रही है कि उनको क्षुधा की कितनी तीव्र वेदना सहनी पडती है । क्षुधाकी वेदना बडी वेदना है । क्षुधाकी वेदना न हो तो यहा कोई मनुष्य किसी दूसरेकी पूछ ही न करे । कोई व्यवस्था ही फिर न बन पाये । घरमे सभी लोग व्यवस्था पूर्वक रहते है इसमे मुख्य कारण क्षुधाकी वेदना है । कभी कोई विवशता हो जाय, भोजन न मिले, किसी फदेमे पड जाय तो उस समय देखो उस भूखे व्यक्ति का कैसा बुरा हाल होता है, और लोग तो भूखे नही है फिर भी अनेक बार कुछ न कुछ खाते पीते ही रहते है । उनका वह शौक है, नही तो कोई पुरुष यदि भूख आनेपर ही खानेका भाव रखता है तो ऐसी अधिकसे अधिक दो बेलाये हो सकती है । मगर स्थिति ऐसी है कि चाहे खूब खा पीकर चगे मगे होकर निकले हो पर कोई चाट चटपटी वाला दिख जाये तो आने दो आनेकी चाट खानें भरको पेटमे जगह निकल ही आती है । तो बहुतसे लोग खानेके शौकसे भी बार-बार कुछ न कुछ खाते पीते रहते है, पर इस तरहकी प्रवृत्तिसे ऐसा कर्मोका बध होता है कि जिससे क्षुधाका दुःख लम्बा ही होता चला जाता है, उन नारकियोको इतनी कठिन भूख लगती है ।

तृष्णा भवति या तेषु वाडवाग्निरिवोल्वणा ।
न सा शाम्यति निःशेषपीतैरप्यम्बुराशिभिः ॥१७४७॥

नरकोमे तीव्र तृषाकी वेदना—उन नारकी जीवोकी तृषा भी बडवाग्निके समान अत्यन्त तीव्र होती है । ऐसी तीव्र होती है कि सारे समुद्रका पानी भी पी ले तो भी तृषा नही मिट सकती । यह सम्भावनामे वेदनाका स्वरूप कहा जा रहा है, और यह सम्भावना असत्य नही है । जैन शासनमे जो कुछ भी देते है सम्भावना उपमा आदिक वे सब यथार्थ होते है । उपमा भी एक सम्भावना है । जैसे पल्योका प्रमाण बताया है—हजारो लाखो, करोडोकी बात क्या, अनगिनते वर्ष लग जाते है, इतना है पल्यके समयका प्रमाण । उसे और कैसे बताया जाय ? जिसकी गिनती नही उसे उपमा द्वारा बताया गया है । सम्भावना द्वारा बताया गया है कि दो हजार कोशका लम्बा चौडा गहरा गड्ढा हो, उसमे ऐसे पतले-पतले छोटे-छोटे बालके

टुकडे डाले जायें कि जिनका दूसरा टुकडा न हो सके, उस गड्ढेको खूब भर दिया जाय और उसपर हाथी घुमाकर खूब ठसाठस भर दिया जाय, फिर सौ सौ वर्ष बाद एक एक बालको निकाला जाय। यों सारे बालोको निकालनेमे जितना समय लगे उसे कहते है व्यवहारपल्य। पहिले तो यही देख लो व्यवहार पल्यमे ही अनगिनते वर्ष हो गए, फिर उससे असख्यातगुने समयका नाम है उद्धारपल्य, इससे असख्यात गुणे समयका नाम है अद्धापल्य। तो उसे अनगिनते समयको बतानेका साधन उपमा और सम्भावना है। तो ये सारी उपमायें और सम्भावनाएँ सही है। ऐसे ही जम्बूद्वीपका प्रमाण बताया कि इतना लम्बा चौडा जम्बूद्वीप है, उससे दूने दूने और और अनेक द्वीप है, उन सभी समुद्रोका जल वे नारकी पीवें तो भी उनकी तृषा नही बुझ सकती, इतनी कठिन तृषाकी वेदना उन नारकी जीवोंके होती है।

बिन्दु मात्र न तैर्वारि प्राप्यते पातुमातुरैः ।
तिलमात्रोऽपि नाहारो ग्रसितु लभ्यते हि तैं ॥१७४८॥

नरकोमे तिल बिन्दु मात्र भी आहार जलकी अलभ्यता—उन नारकोमे भूख प्यास की अत्यन्त तीव्र वेदना होती है लेकिन उन नारकियोको न तो खानेके लिए एक दाना मिलता है और न पीनेके लिए एक बूद पानी मिलता है। इस प्रकार वे नारकी जीव भूख प्यासकी वेदनासे पीडित होकर निरन्तर भूख प्यास आदिककी वेदनाएँ सहते रहते है। इससे सिद्ध है कि उन नारकोमे इतने घोर दुःख है कि जिन दुःखोको भोगनेके बाद यद्यपि अशुभ कर्मोका बध होता है कि लेकिन इतना तीव्र बध नही हो पाया, उस कठिन दुःखमे इतने कर्म झडे कि वह जीव मरकर फिर तुरन्त नारकी नही होता। नारकी जीव मरकर या तो कर्मभूमिया मनुष्य बने या कर्मभूमिया तिर्यंच बने, बादमे फिर नरकमे चला जाय, यह सम्भव है। वेदना वहाँ इतनी तीव्र होती है क्षुधा और तृषा की कि वह अत्यन्त असह्य है। क्षुधाकी वेदनामे भी खोटी वेदना तृषा की है। क्षुधाके २ दर्जे है और तृषाके ४ दर्जे है। क्षुधा है तीव्र और मद और तृषा है अत्यन्त तीव्र, तीव्र, मद और अत्यन्त मद। जरासी भूख अगर लग जाये तो वह मालूम भी नही पडती। तीव्र भूख लग जाय तभी क्षुधा सताती है। प्यास तो थोडी भी हो तब भी मालूम हो जाती है। तो यहाँ मनुष्य भवमे बिना भूखके ही बहुत-बहुत खाते रहते है और अनेक कर्मबन्ध करते रहते है। लोग बडी असयम भरी प्रवृत्तिया कर रहे है, पर इनके फलमे नरक जैसी दुर्गतियोमे जन्म लेना होता है। अभी इस मनुष्यभवमे तो कुछ पुण्यका उदय है ना तो जैसी चाहे स्वच्छन्द होकर प्रवृत्तियाँ करले परन्तु उनका फल अच्छा नही है

तिलादप्यतिसूक्ष्माणि कृतखण्डानि निर्दयैः ।
वपुर्मिलति वेगेन पुनस्तेपा त्रिवेर्वशात् ॥१७४९॥

देहके तिल तिल खण्ड किये जानेकी वेदनायें—तिल तिलके बराबर भी उन नार-

कियोके शरीरके टुकडे कर दिये जाते है लेकिन वे सारे खण्ड फिर मिलकर शरीर बन जाते है। वहाँ इस ही प्रकारका विलक्षण कर्मोदय है। चारो गतियोके जीवोमे तिर्यञ्च नारकी ही ऐसे है जो मरना चाहते है, बाकी तीन गतियोके देव मरना नही चाहते। पशु पक्षी मनुष्य और देव। देव तो मरना ही क्यो चाहेगे बडे सुखके साधन है पर अत्यन्त हीन अवस्थाका भी मनुष्य तिर्यच हो, रोगी दु खी हो तो मरण तो वह भी नही चाहता लेकिन नारकी जीव मरना चाहते है। मेरी मृत्यु हो जाये, मै यहाँसे छुटकारा पाऊँ। तो जो मरना चाहते उनका बीचमे मरण नही होता और जो मरना नही चाहते उनका बीचमे मरण भी हो सकता है। मनुष्य और तिर्यञ्च तो असमयमे भी मर जाते है पर नारकी जीवोका असमयमे मरण नही होता। तिल तिल बराबर शरीरके खण्ड हो जाये तो भी वे खण्ड खण्ड फिर मिलकर शरीर रूप हो जाते है और फिर एक दूसरेको मरने मारने लग जाते है।

यातनारुक्शरीरायुर्लेश्या दु खभयादिकम्।
वर्द्धमान विनिश्चेयमधोऽध श्वभ्रभूमिपु ॥१७५०॥

अधः अध· नरकोमे तीव्रातितीव्र वेदना और उनसे बचनेका उपाय—उन नरककी भूमियो मे पीडा, रोग, शरीर, आयु, लेश्या, दु ख, भय ये सब नीचे नीचे नरकोमे बढते हुए चले गए है, पहिले नरकसे दूसरे नरकमे अधिक है, दूसरेसे तीसरेमे, तीसरेसे चौथेमे, चौथेसे ५वे मे, पाचवेसे छठेमे और छठेसे सातवेमे। इस क्रमसे अधिक अधिक बढते चले जाते है। ऐसे नरको मे यह जीव अपना जन्म पापकर्मोके उदयसे लिया करता है। तो वे पापकर्म न बने, परिणाम स्वच्छ रहे, पापोसे विरक्ति रहे, सयमका अनुराग रहे ऐसी मनुष्योको चर्या होनी चाहिए अन्यथा इसी प्रकार दुर्गतियोमे जन्ममरण लेना ही उनका फल है। इनसे बचनेके लिये मनुष्यको धर्मध्यानमे प्रयत्न करना चाहिये। धर्म चार प्रकारके होते है—आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और सस्थानविचय। ये चारो धर्मध्यान सम्यग्दृष्टि ज्ञानीके होते है, फिर भी मुख्यताकी अपेक्षा आज्ञाविचय धर्मध्यान तीसरे गुणस्थानसे शुरू मानते है। अपायविचय धर्मध्यान चौथे गुणस्थानसे मानते है, विपाकविचय धर्मध्यान ५वे गुणस्थानसे मानते है और सस्थानविचय धर्मध्यान मुनियोके मानते है। यह मुख्यताकी अपेक्षा है। सस्थानविचयका अर्थ है लोकके आकारका विचार करना। लोकमे कहाँ कहाँ कैसी कैसी रचनाए है उनका चिन्तन करना और समय कबसे क्या चला आया है और कौन कौन कब होते है उनके चारित्रका चिन्तन यह सब सस्थानविचय धर्म ध्यान है। जिस उपयोगमे लोकके आकारकी रचनाकी बात बनी रहती है उसमे वैराग्यका ज्यादा वास होता है, जो लोग छोटी सी भूमिमे, जरासे क्षेत्रमे अपना परिचय रखते है और आत्मीयताका व्यवहार करते है उनके राग बढता है।

संस्थानविचय धर्मध्यानमें वैराग्यवर्द्धक रचनापरिचय—लोकरचनाके चिन्तनमे इस समय अधोलोकका चिन्तन चल रहा है । अधोलोकमे ७ नरकोकी रचना है । जो मनुष्य तिर्यच पाप करते है वे मरकर नरकमे जन्म लेते हैं । उन नरकोमे उत्तरोत्तर नीचे नीचे नरकोमे अधिक-अधिक वेदना है । ऊपरके नरकोमे गर्मी और नीचेके नरकोमे ठडकी वेदना है । गर्मी की वेदनासे ठडकी वेदना अधिक मानी गयी है । ऊपरके नरकोसे नीचेके नरकोकी जमीनको छूनेसे भी बडा दु.ख है । नीचेके नरकोमे अधिक बार नारकी जमीनपर उछलता है । उत्तरोत्तर नीचेके नरकोमे नारकियोंके शरीरमे रोगकी बहुलता है । यद्यपि नारकियोका वैक्रियक शरीर है मगर वह दु.खदायी शरीर है, अतएव उन शरीरोमे रागादिक ही बसते है । इन नारकियोके शरीरकी लम्बाई इस प्रकारसे है—७ वे नरकके नारकियोका ५०० धनुपका शरीर होता है, छठवे नरकमे २५० धनुपका शरीर होता है, ५वे नरकमे १२५ धनुपका, चौथे नरकमे ६२।। धनुपका, तीसरे नरकमे ३१। धनुषका, दूसरे नरकमे १५ धनुष ३ हाथका और पहिले नरकमे ७ धनुप १।। हाथका शरीर होता है । तो नीचेके नरकोंके शरीर बडे बडे है, उनकी आयु भी उत्तरोत्तर अधिक है । पहिले नरकके नरकोकी आयु अधिकसे अधिक १ सागरकी है, दूसरे नरककी आयु ३ सागर है, फिर ७, १०, १७, २२ और ३३ सागरकी आयु ७ वे नरकमे है । उन नरकोमे इतने घोर दु ख है और इतनी लम्बी उनकी स्थिति है । दु ख डर सभी उत्तरोत्तर अधिक वढते गए । नारकियोके इन दु'खोका चिन्तन करके ज्ञानी जीव ससार शरीर भोगोसे और अधिक विरक्ति प्राप्त करते है ।

मध्यभागस्ततो मध्ये तत्रास्ते झल्लरीनिभ ।
यत्र द्वीपसमुद्राणा व्यवस्था वलयाकृति· ।।१७५१।।

लोकके मध्यभागके वर्णनका आरम्भ—अधोलोकके ऊपर मध्य लोक आता है । मध्य लोक मेरु पर्वतके बराबर माना जाता है । जितनी मेरु पर्वतकी लम्बाई है उतनी ही मध्य लोककी मोटाई है । मेरु पर्वत जमीनसे ९९ हजार योजन ऊपर है और जमीनके नीचे चलनेमे १००० योजन गहरा है । यो १ लाख योजनका मध्यलोककी ऊर्ध्व लोकको मोटाई समझिये, और चारो दिशावोमे यह मध्यलोक कितना वडा है, तो आगे द्वीप समुद्रकी रचना आयगी उससे विदित होगा यह मध्यलोक एक गोलाकार है, अथवा किन्ही आचार्योके मतसे चौकोर है और उसमे गोलाकाररूपसे अनेक द्वीप समुद्रकी रचनाए है । पृथ्वीका विस्तार सुनकर चित्त मे यह भावना बन जाती है कि इतना वडा लोक है, ऐसी ऐसी जगह है, वहाँ यह जीव अनन्त बार उत्पन्न हो चुका है और कही भी टिककर नही रहा, जन्म मरण कर रहा है । तो आजका परिचित इतनासा क्षेत्र यह मेरे लिए क्या सर्वस्व है ? जितने परिचित क्षेत्रमे विकल्प वढाकर अपने आपको अधेरेमे ले जाया जा रहा है । यह ममताके योग्य क्षेत्र नही है ।

विस्तार समझकर चित्तमे यह बात आती है।

जम्बूद्वीपादयो द्वीपा लवणोदादयोऽर्णवा ।
स्वयभूरमणान्तास्ते प्रत्येक द्वीपसागरा. ॥१७५२॥

मध्यलोकमे असंख्याते द्वीपसमुद्रोका निर्देश—उस मध्यलोकमे सबसे बीचमे मेरूपर्वत है, उस मेरूपर्वतको मध्यमे लेकर चारो ओर एक जम्बूद्वीपकी रचना है जिसका विस्तार एक लाख योजनका है। जम्बूद्वीप ही देखिये कितने बडे विस्तार वाला है? जम्बूद्वीपकी चर्चा अनेक मतोमे उनके पुराणोमे आ गयी है। तो मालूम होता है कि जम्बूद्वीपके ज्ञानकी बात बहुत पुरानी परम्परासे चली आ रही है। दो हजार कोशका एक योजन माना गया है। करीब २॥ मीलका एक कोश होता है। ऐसा एक लाख योजनका जम्बूद्वीप है। वर्तमानमे जितनी भूमि मानी जा रही है करीब १०–१५ हजार मील की मानी जा रही है। तो इतना सा यह क्षेत्र तो जम्बूद्वीपका एक छोटासा हिस्सा है। आजके भूगोल प्रकरणमे जमीन गोल मानी गई है, और वह गोल भी सही गोल नही किन्तु कुल लम्बाई लिए हुए और कुछ नीचे बहुत सूक्ष्मता लिए हुए जमीन गोल मानी गयी है, किन्तु जैन शासनमे जमीनको एक थालीके समान चपटी गोल माना है लेकिन इस जमीनपर इस अवसर्पिणी कालमे जमीनकी वृद्धिका ही मलमा इकट्ठा हुआ है। जो मलमा प्रलय काल आनेपर ध्वस्त हो जायगा। यह उठा हुआ मलमा आजके वैज्ञानिकोकी दृष्टिमे गोल रूप रख रहा है। यह गोल मलमा केवल भरत क्षेत्रके आर्यखण्डमे पाया जाता है, म्लेच्छमे नही और शेष भूभागमे नही। तो यह जम्बूद्वीप जिसके एक कोनेमे हम आप रहते है वह एक लाख योजनका लम्बा है, उसके चारो ओर दो लाख योजनके व्यासका लवण समुद्र है, उसके चारो ओर और भी द्वीप तथा समुद्र है। इस तरह असख्याते द्वीप समुद्र दूनी दूनी रचना वाले है। अब आप समझिये कि यह एक राजू कितना बडा होता है? ये असख्याते द्वीपसमुद्र जितनी मापमे है वह एक राजू पूरा नही है और फिर एक राजू यह एक प्रस्ताव रूपमे है, इतना ही लम्बा, चौडा, मोटा घनाकार होता है। ऐसे ऐसे ३४३ घनराजू प्रमाण यह मध्य लोक है, इसमे हम आप प्रत्येक प्रदेशपर अनन्त बार उत्पन्न हुए है। निगोद स्थावर आदिक बनकर रहे, और जहाँ जो जीव पाये जाते है वे जीव बनकर हुए, किन्तु आज तक न तो सर्वार्थसिद्धिमे उत्पन्न हुए और न दक्षिण, लोकपाल, ऋद्धि आदिक हुए। जिन जन्मोको पाकर यह जीव कुछ ही भवोमे मुक्त हो जाता है, ऐसे कोई जन्म नही पाये और उसका परिमाण यह है कि भटक भटककर आज इस पचमकालमे हम आप उत्पन्न हुए है। यद्यपि यहाँ भी सम्यग्दर्शनका साधन होता है और यथायोग्य सयमका साधन होता है पर हमारा यह भव यह बताता है कि हमने अबसे पूर्व कोई ऐसा विशिष्ट जन्म नही पाया कि जिस जन्मके बाद एक दो भव लेकर ही मुक्ति हो जाय। इस जीवको मुक्तिसे रोकने

वाला बाधक भाव है ममत्व। किस किस तरहका ममत्व जीवमे पाया जाता है ? किसीको शरीरमे ममता है, किसीको अपनी इज्जतमे ममत्व है, चाहे शरीर दुर्बल हो जाय, खानेको न मिले पर इज्जत प्राप्त हो, इस प्रकारका ममत्व किसीको होता है। इज्जत क्या कि कुछ लोग यह कह दें कि यह बडे अच्छे हैं। कौनसे लोग ? ये ही दु खी ससारी कर्म वाले ये प्राणी। इस ही का नाम तो इज्जत है। सो अनेक लोग इज्जतमे ममत्व रखते हैं। कोई धनमे ममत्व रखते है, कोई परिजनोमे, कुटुम्बियोमे ममत्व रखते है। जिसको जिससे स्नेह होता है उसको उसमे गुण ही गुण दिखते हैं। ये ममत्वके कारण दिखते है। तो यो ममता परिणाम करके जीव इस ससारमे रुलते जाते है। किसीका रहा कुछ नही अब तक, और जो समागम मिलेगा यह भी रहेगा कुछ नही, लेकिन ममता किए बिना यह मोही जीव चैन ही नही मानता, व्यर्थ का ममत्व किए जा रहे हैं। ममता करनेसे कोई चीज अपनी बन जाय तो चलो ममता कर लें ठीक है, अपना तो हो जायगा पर ममताका ही भाव जीव बना पायगा। इस जीवका कुछ हुआ नही अब तक, न कोई जीव इसका बना, न कोई वैभव इसका बन सका। सब अपना अपना स्वतत्र स्वतत्र अस्तित्त्व रखते हैं।

द्विगुणा द्विगुणा भोगा प्रावर्त्यन्योन्यमास्थिता ।
सर्वे ते शुभनामानो वलयाकारधारिण' ॥१७५३॥

अगले अगले द्वीपसमुद्रोके परिमाणकी द्विगुणद्विगुणता—मध्य लोकमे जो द्वीपसमुद्र बताये गए है वे दूने दूने विस्तार वाले है और एक दूसरेको घेरे हुए है, गोल आकारके है, उनके नाम भी बहुत शुभ है। जैसे जम्बूद्वीप धातकीद्वीप, पुस्करद्वीप, कालौदधि, लवणसमुद्र आदिक सभी शुभ नाम वाले है। ये द्वीपसमुद्र है असख्यात, गिनतीसे बाहर और ऐसी गिनतीसे बाहर जो अनेक कल्पनाएँ करके भी गिनती मानी जा सकती है, उमसे भी परे इतने असख्यात द्वीप समुद्र है। उन सबके नाम तो बताये जा सकते है क्योकि भगवानके ज्ञानसे बाहर नही है। गणधरदेव अवधिज्ञानी और मन पर्ययज्ञानी होते है, लेकिन उन नामो को लिखनेके लिए इतने कागज कहाँ मिलेंगे ? असख्याते द्वीप समुद्रोके नाम लिखे नही जा सकते, बताये नही जा सकते। उनको पढेगे तो कितने जीवन तक पढेगे ? इतने द्वीपसमुद्र है और वे मध्यलोकमे समाये हुए है। एक कविने कल्पना की कि देखो यह मनुष्य कितनी अच्छी सुरक्षित जगहमे उत्पन्न होता है कि जो दुष्ट नारकी थे उन्हे तो नीचे ढकेल दिया ताकि ये मनुष्योको बाधा न पहुचाये। वे नरकमे पडे है और जो देव है वे ऊपर बसाये गए कि उनकी छायामे यह मनुष्य लोक रहे और मनुष्यलोकके चारो तरफ अनेक द्वीप अनेक समुद्र है, असख्याते कोटकी रचनाए है, असख्याते खाइयाँ है तिस पर भी यह मनुष्य रक्षित नही है, जब चाहे मरणको प्राप्त हो जाता है।

मानुषोत्तरशैलेन्द्रमध्यस्थमतिसुन्दरम् ।
नरक्षेत्र सरिच्छैल सुराचलविराजितम् ।।१७५४।।

नरलोकके क्षेत्रका परिमाण—यह मनुष्यलोक ढाई द्वीपमे है अर्थात् पूरे जम्बूद्वीपमे दो लाख योजनका लवणसमुद्र है। लवणसमुद्रके चारो तरफ चार लाख योजन घातकी खण्ड द्वीप है और घातकी खण्ड द्वीपके चारो ओर ८ लाख योजनका कालोदधि समुद्र है और कालोदधि समुद्रके चारो तरफ १६ लाख योजन चौडा पुस्कर द्वीप है। पुस्कर द्वीपके उत्तरार्द्धमे ८ लाख योजन चोडा पुष्करार्द्ध द्वीप है। ऐसे ढाई द्वीप क्षेत्रमे यह मनुष्य रहता है इससे आगे नही। यह क्षेत्र ४५ लाख योजनका है। इतने लम्बे क्षेत्रमे किसी भी प्रदेशसे ये सिद्ध भगवान मुक्त होकर सिद्ध लोकमे जा विराजते है। तो ४५ लाख योजनका ही सिद्ध लोक है। इस ढाईद्वीपमे ऐसी कोई जगह नही बची जहाँसे मनुष्य निर्वाणको न पधारे हो। इसमे कुछ शका ऐसी की जा सकती है कि समुद्रोसे कैसे मोक्ष पधारे ? तो समुद्रसे मोक्ष जाने की यह विधि बनी है कि कोई मुनि महाराजको तपस्या करते हुएमे किसी बैरीने समुद्रमे पटक दिया हो, किन्तु उन मुनिराजका ध्यान उस समय उत्तम ही रहा, वहाँ ही केवलज्ञान प्राप्त किया और वहीसे मुक्त हो गए। तो समुद्रके भी प्रत्येक प्रदेशसे अनगिनते मुनिराज मोक्ष पधारे। एक शका और की जा सकती है कि जो मेरु पर्वत है उसका जो बीचका स्थान है, जहाँ एकदम चोटी ऊँची चली गई है और उस चोटीके ऊपर एक बालके अन्तरके बाद स्वर्गकी रचना चालू होती है, वहासे कैसे मुक्त गए होगे ? तो वहाँसे मुक्त होनेकी यह विधि बनी है कि कोई ऋद्धिधारी मुनि ऋद्धि बलसे उस मेरु पर्वतके भीतरसे भी गमन कर रहा हो तो उस मेरुके मध्य क्षेत्रमे रुककर वहाँ ही उत्कृष्ट ध्यानी बन जाय, आयु पूरी होनेका समय आ जाय, केवलज्ञान हो जाये और मुक्ति सिधार जाये तो वहाँसे भी मुक्ति होती है। इस ढाई द्वीपमे कोई भी ऐसा प्रदेश नही बचा जहाँसे अनेक जीव मोक्ष न गए हो। कुछ नई स्मृतियो के अनुसार हम कुछ स्थानोको सिद्ध क्षेत्र मानकर पूजते है, पर वस्तुत तो सिद्ध क्षेत्र प्रत्येक स्थान है। जिस जगह हम रहते है, घरमे बसते है, जहाँ बैठे है, जहाँ भी जायें, सभी जगह सिद्ध क्षेत्र है। तो ऐसा स्मरण करके जैसे लोग सोचा करते है कि भाई हम तीर्थ क्षेत्रमे है पापकी बात न विचारे, तो तीर्थक्षेत्र तो सर्वत्र है। हम सभी जगह पापकी बात न विचारे। जैसे मरण काल जब आता है तो मरने वाला भी सोचता है। लोग भी समझते है कि अब तो इसका मरण काल है। अपना परिणाम निर्मल रखो। तो मरण काल तो प्रति समय है। जो समय गया वह समय फिर नही आनेका है। बचपन गया, अब इस भवमे बचपन वापिस नही आनेका। जो जीवन गया वह वापिस तो नही आता। जो समय गया वह गया ही है ना। तो वह मरण है, प्रति समय जीवका मरण हो रहा है। तो मरण समयमे परि-

णाम सुधारो, इसका अर्थ यह जाने कि प्रत्येक समयमे अपना परिणाम सुधारें ।

तत्रार्यम्लेच्छखडानि भूरिभेदानि तेष्वमी ।
आर्या म्लेच्छा नरा सन्ति तत्क्षेत्रजनितैर्गुणैः ॥१७५५॥

मनुष्य क्षेत्रमे अनेक आर्यखण्ड व म्लेच्छखण्डोका निर्देश—इस मनुष्य क्षेत्रमे अनेक आर्यखण्ड हैं और म्लेच्छ खण्ड है । ५ भरत खण्ड और ५ ऐरावत खण्ड हैं और प्रत्येक भरत खण्डमे आर्यखण्ड है, और म्लेच्छ खण्ड ५ हैं । आर्यखण्डमे आर्य पुरुष रहते है, म्लेच्छ खण्डमे म्लेच्छ पुरुष रहते हैं, अर्थात् आर्योके उत्तम आचार उत्तम गुण हैं और म्लेच्छोंके जघन्य आचार और धर्मशून्यता उनमे पायी जाती है । हम आप ऐसे आर्यखण्डमे उत्पन्न हुए है और जितनी आजकी मानी हुई दुनिया है अमेरिका, चीन, जापान, भरत आदि सभी देश इस आर्य खण्डमे है । इस क्षेत्रके हिसाबसे आजकी दुनियामे रहने वाले जितने पुरुष है, चाहे वे किसी भी देशके हो वे सब आर्य कहलाते हैं । उन आर्योंमे भी और कुछ विशिष्ट पुरुष हुआ करत है, जिसे सम्यक्त्व हो गया वह दर्शनार्य कहलाता है और जिसके चारित्र हुआ वह चारित्रार्य कहलाता है । ये पुरुष और भी श्रेष्ठ पुरुष हैं, जिन्होने अपने उपयोगसे उस सहज स्वरूपको 'यह मैं हू' ऐसा मान लिया, मै ज्ञानानन्द मात्र हू, आकाशनिर्लेप हू, इसके स्वरूपमे न द्रव्यकर्म है, न भावकर्म है, न कोई नोकर्म है, सबसे निराला केवल चैतन्यस्वरूपको रखने वाला यह मै आत्मतत्त्व हू । यद्यपि उन प्रदेशोमे भावकर्मके उदय चलते है, रागद्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदिक रूप परिणमें । जब अपने ज्ञानस्वभावको निरखते है तो यह निर्णय होता है कि मैं स्वभावमात्र हू, मुझमे रागादिक विकार नही है, क्योकि रागादिक विकार मेरे स्वभावमे नही पाये जाते । जैसे जलके स्वभावमे गर्मी नही पायी जाती, क्योकि गर्मी अगर स्वभावमे आ जाय तो जल कभी ठडा ही नही हो सकता । ऐसे ही मेरे स्वभावमे रागादिक विकार नही पाये जाते । वह तो एक चैतन्यकी स्वच्छता लिए हुए एक परमतत्त्व है । जैसे दर्पणमे दर्पणके सामनेके पदार्ज प्रतिबिम्बित हो जाते है, झलकते हैं लेकिन वह सब झलकना, वह सब रूप रग वे सब दर्पणमें नही पाये जा रहे है । इस उपाधिके सम्बधसे और दर्पणकी स्वच्छताके कारण ये पदार्थ प्रतिबिम्बित हो गए, पर यह प्रतिबिम्ब दर्पणका निजी स्वभाव नही है, निज रूप नही है । दर्पणका निजी रूप तो स्वच्छतामात्र है जिस स्वच्छताके कारण पदार्थ प्रतिबिम्बित हो गए । इसी प्रकार आत्मा भी एक स्वच्छताको लिए हुए परमतत्त्व है, इस आत्मामे रागादिक विकार झलकते है, उत्पन्न होते है तो कर्मउपाधिका निमित्त पाकर उत्पन्न होते है । ये रागादिक विकार आत्मामे स्वयमे स्वयके सत्त्वके कारण स्वयके स्वरूपसे नही है । स्वयके स्वरूपमे तो वह स्वच्छता है, वह चैतन्य ज्योति है जिस ज्योतिमे ये रागादिक विकार झलक सकते है । मैं द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मसे रहित केवल ज्ञानज्योति

मात्र तत्त्व हू, यह प्रतीति तो महापुरुषोंके उपयोगमें समा गयी, और ऐसे उत्तम रूपसे समा गई कि धुनि बन गई, इस ही के मूल कारण अब परपदार्थोंमे ममता नही रही, रुचि नही रही, व्यग्रता नही रही, किसी प्रकारका लोक सकोच नही रहा, कोई शका भय नही रहा, एक आत्मतत्त्वको निरखकर। लो मैने सर्वस्व पा लिया, अब किसी भी प्रकारका मेरेमे भय नही है, कोई विपदा ही नही। जिन्होने अपने अमूर्त स्वभावको अपने लक्ष्यमे लिया है उसमे अब क्या आयगा? उसमे शरीर ही नही तो रोग क्या आयगा, जब शरीर ही नही तो इष्ट-अनिष्ट के दुःख भी कहाँ है, बधु मित्र भी इस आत्मामे कहाँ है? आत्मा जब किसी शरीररूप है ही नही तो उसमे क्या विडम्बनाएँ है? जिन्होने अपने सहज ज्ञायकस्वरूप आत्मतत्त्वको लक्ष्यमे लिया है वह पुरुष दर्शनार्य कहलाता है और ऐसे ही रूपमे जो स्थिर रहा करता है वह चारित्रार्य है। ये विशिष्ट आर्यपुरुष है। इस क्षेत्रमे हम आप जन्मे है। हम आप भी अपने धर्मकी ऊँची साधना बना सकते है। दृष्टि हो अपने आपपर और दया हो अपने आपकी तो मुक्तिके मार्गकी बात हम आपको आज भी प्राप्त हो सकती है और वही प्राप्त करना चाहिए बाकी तो सारे समागम नष्ट हो जाने वाले है। इनकी रुचिसे अपनेको कुछ भी लाभ नही मिलता।

क्वचित्कुमानुषोपेत क्वचिद्व्यन्तरसभृतम्।
क्वचिद्भोगाधराकीर्ण नरक्षेत्र निरन्तरम् ॥१७५६॥

मनुष्यलोकमें कुभोगभूमि, भोगभूमि व व्यन्तरावासोका सकेत—यह मनुष्य लोकका क्षेत्र कही कही तो कुमानुषोसे भरा हुआ है, कही व्यन्तरोसे भरा है, कही भोगधारियोसे भरा है। ऐसे इस मनुष्य लोकमे कुछ स्थान तो कर्मभूमिके है, कुछ स्थान भोगभूमिके है। और इस ही मनुष्यलोकमे कुछ स्थानोमे व्यन्तर भी रहते है। लोककी रचनाके चिन्तनमे यह ज्ञानी जीव इस समय मध्यलोककी रचनाका विचार कर रहा है। नाना क्षेत्र नाना रचनाये उपयोग मे आनेसे वर्तमान समागमोका मोह नही रहता। इस इतने बडे लोकमे ऐसे ऐसे स्थानोमे हम अनन्त बार उत्पन्न हुए है और वहाँ भी मेरा कुछ बनकर नही रहा। तो यहाके जो समागम है वे मेरे बनकर रहेगे क्या? तो रचनाओका चिन्तन करने से रागद्वेषमे शिथिलता हो जाती है। इस मनुष्य लोकमे कुछ रचनाएँ तो भोगभूमिकी रचनायें है जहाँ जुगलियाँ उत्पन्न होती है, मनोवाञ्छित भोग कल्पवृक्षोसे प्राप्त हो जाते है, कोई चिन्ता नही करनी पडती है। और ये भी आयुसे पहिले नही मरते। वह भोगभूमियोसे भरा हुआ कुछ क्षेत्र है और कुछ कुभोगभूमि है जिसमे खोटे मनुष्य भी रहते है और कुछ क्षेत्रोमे कर्मभूमि की रचनायें है, जहाँके उत्पन्न हुए मनुष्य तपश्चरण करके सयम धारण करके मुक्तिको प्राप्त हो जाते है। यो मध्यलोकका कुछ वर्णन करके अब आचार्यदेव ऊर्ध्वलोकका वर्णन करते है।

ततो नभसि तिष्ठन्ति विमानानि दिवौकसाम् ।
चरस्थिरविकल्पानि ज्योतिष्काणां यथाक्रमम् ।।१७५७।।

मनुष्यक्षेत्रके ऊपर तथा मध्यलोकमे अन्यत्र ऊपर ज्योतिष्क देवोके आवासका सकेत–ऊर्ध्व लोकके वर्णनसे पहिले मध्यलोकसे ऊपरी भागका वर्णन किया जा रहा है कि ज्योतिषी देव ऊर्ध्वलोकमे नही रहते, ये मध्यलोकमे ही है । लेकिन मध्यलोकमे ऊपर रहते है । सो ज्योतिषी देवोके ये विमान जो कुछ भी नजर आते है, सूर्य, चन्द्र, तारे ये सब विमान है, ये कोई तो स्थिर है और कोई चलने वाले है । मनुष्य लोकमे तो प्राय: चलने वाले विमान है, ध्रुवतारा वगैरह कुछ ही ऐसे विमान हैं जो जहांके तहाँ रहते है, बाकी तो सभी विमान सुदर्शन मेरुकी परिक्रमा देते रहते है । मनुष्य लोकमे बाहरके जितने विमान है ज्योतिषियोके वे सब स्थिर रहते है, वे यत्र तत्र भ्रमण नही करते ।

तदूर्ध्वे सति देवेश कल्पा· सौधर्मपूर्वका. ।
ते षोडशाच्युत स्वर्गपर्यन्ता नभसि स्थिता ।।१७५८।।

ऊर्ध्वलोकमे कल्पवासी देवोके आवासोका निर्देश––ज्योतिषी देवोके विमानोके ऊपर कल्पवासी देवोके विमान है जहाँ १६ स्वर्गोकी रचना है । मेरु पर्वतसे एक बाल मोटाईके अन्तरके बाद स्वर्गकी रचना शुरू हो जाती है । तो स्वर्गोकी रचना कुछ अलग नही है किन्तु पटलके रूपमे सब रचनाएँ पायी जाती हैं । जैसे बीचमे एक विमान हो, चारो दिशावोमे विमानोकी लाइन लगे और विदिशामे भी विमानोकी लाइन लगे और बीचमे जो अन्तर पड गया उसमे फैल फूट फूटकर अनेक विमान रहते है, ऐसे एक फैलावमे जितने ये सब विमान है उसे एक पटल कहते है, फिर कुछ और ऊपर आकाशमे दूसरा पटल है । इस तरहसे ये सब ६३ पटल है जिनके कुछ पटल स्वर्गोमे हैं, कुछ पटल स्वर्गोके ऊपर कल्पातीत विमानमे है । उन सोलह स्वर्गोमे इन्द्र, लोकपाल, सामानिक, प्रकीर्णक त्रायस्त्रिश, पारिसद, किलविसक आदि ऐसे १० प्रकारके देव रहते है, उनमे ऐसी कल्पना है । सोलह स्वर्गोमे कोई इन्द्र है, कोई सामानिक । इन्द्र ही देव कहलाते है जिनकी सब देवोपर हुकूमत चले । सामान्निक देव वे कहलाते है जिनका आराम इन्द्रकी तरह है मगर हुकूमत नही चलती । जैसे जिस प्रकार राजा खाता पहिनता है उसी प्रकार राजघरानेके कुटुम्बके लोग भी खाते पहिनते है पर हुकूमत केवल एक राजाकी चलती है इसी प्रकार इन्द्र और सामान्तिक देव है । त्रायस्त्रिश देव एक मत्रीकी तरह है । जैसे मत्रीगण राजाको सलाह देते है, राजाके खास अग है इसी प्रकार ये त्रायस्त्रिश देव इन्द्रके खास अग है । ये ३३ सख्यामे होते है इसलिए इनको त्रायस्त्रिश कहते हैं । यो समझिये कि राजाके ३३ मत्री हो तो इसमे प्राकृतिक बात यह देखो कि कितनी बढिया सख्या है यह ३३ की । जिसके कोरम ११ बैठते है । तो उनमे अपने आप बहु सम्मति

नजर आती है परिषद जातिके देव उनके सभासदकी तरह है। ये अगरक्षककी तरह है जो इन्द्रके साथ रहते हैं और इन्द्रकी रक्षा करते है। यद्यपि इन्द्रकी रक्षा करना कोई आवश्यक नही है क्योकि वे स्वय स्वरक्षित है। किसी भी देवकी आयु बीचमे नष्ट नही होती लेकिन एक वैभव है, इस तरहकी विभूति है। लोकपाल कोतवालकी तरह प्रजारक्षक है। कोतवाल का बडी ईमानदारीका दर्जा है। वह लोकपाल अर्थात् उन देवोका कोतवाल एक ही भवके बाद मोक्ष प्राप्त करता है और कोई जाये चाहे न जाय। लोकपालके बाद है प्रकीर्णक देवोकी तरहके देव, जो बडे देवोके बाहनके काम आयें। अर्थात् हाथी, घोडा, बैल, सिह आदिकके रूप रखकर उन इन्द्र आदिक देवोको अपने ऊपर सवारी करके ले जाते है। यद्यपि इन्द्रादिक देवो को सवारीकी आवश्यकता नही पर वह तो उनके पुण्यके वैभवकी बात है। एक किलविसक जातिके देव है, वे बडे गरीब देव है। सभी देवोमे निकृष्ट देव है जो बाहर बाहर ही रहते है। सभावोमे और बडे देवोमे इनका प्रवेश नही होता है। इस प्रकारकी कल्पना १६ वे स्वर्गमे पायी जाती है। १६ स्वर्गोसे ऊपर कल्पनाएँ नही हैं। सोलहवेसे ऊपर जो देवोकी रचनाएँ है उन्हे कल्पनातीत कहते है।

उपर्युपरि देवेश निवासयुगल क्रमात्।
अच्युतान्त ततोऽप्यूर्ध्वमेकैकत्रिदशास्पदम् ॥१७५६॥

ऊर्ध्वलोकमे कल्पवासियोके कल्प और इससे ऊपर अन्य विभावोका संकेत—देवोके निवास ८ कल्पोमे है, ८ जोडियोमे है। एक एक जोडीमे दो दो स्वर्ग चलते है। इस तरह सोलह स्वर्गोकी रचना है, उनके ऊपर एक-एक विमान करके ६ तो ग्रैवयक है, एक अनुदिश का पटल है, एक अनुतर विमानका पटल है। इसमे सम्यग्दृष्टि जीव ही उत्पन्न होते है, और नवग्रैवयकके विमानोमे मुनि ही उत्पन्न हो सकते है, चाहे सम्यग्दृष्टि हो अथवा मिथ्यादृष्टि हो। सोलह स्वर्गोमे तो सभी श्रावक उत्पन्न हो सकते है। बारह स्वर्गो तक तिर्यञ्च विशिष्ट उत्पन्न हो सकते है। इस प्रकार ऊर्ध्व लोकमे स्वर्गोकी और स्वर्गोसे ऊपर विशिष्ट विमानकी रचनायें है।

निशादिनविभागोऽय न तत्र त्रिदशास्पदे।
रत्नालोकः स्फुरत्युच्चै सतत नेत्रसौख्यदः ॥१७६०॥

वैमानिक देवोमे पुण्यफलकी महिमाका चित्रण—पुण्यका फल स्वर्गलोकमे और ऊपरके विमानोमे है। जैसे पापका फल विशेप नरकमे उत्पन्न होकर भोगना पडता है ऐसे ही पुण्य विशेष फलित होता है स्वर्गोके ऊपरके विमानोमे। उन स्वर्गादिकमे रात दिनका विभाग नही। सूर्य चन्द्र तो यही मध्यलोकमे है, ऊर्ध्वलोकमे नही है। वहाँ तो रत्नोका ही बहुत बडा प्रकाश है, जो नेत्रोको सुख देने वाला है। सूर्यको किरणे तो तीक्ष्ण होती है। सूर्यकी किरणो

की ओर तो आँखें भली प्रकार देख भी नही सकती, लेकिन वहाँ स्वर्गोमे ऐसे रत्नोका प्रकाश है जो नेत्रोको सुख देने वाला है। वहाँ रात दिनका भेद नही है। लेकिन समय तो सब जगह चलता है। यहाँ हम समयको रात दिनमे बाँट लेते हैं, वहाँ रात दिन नही किन्तु समयका व्यतीत होना तो बराबर निरन्तर जारी है। तो पुण्यका यहाँ विशेप फल होता है। पुण्यके अनुकूल ये स्थान बने हुए है जहाँ उत्पन्न होकर ये जीव मनचाहे मुख भोगते हैं।

वर्पातपतुपारादिसमयै परिवर्जित ।
मुखद सर्वदा सौम्यस्तत्र काल प्रवर्तते ॥१७६१॥

स्वर्गोमें शीतातपादिक दु खोसे रहितता—उन स्वर्गोमे वर्षा शीत तुपार गर्मी ये समय नही हैं। ऐसी ये ऋतुएँ नही होती। वर्पाके समय भी लोगोको बहुत सी असुविधायें हो जाती है। घर चू रहा है, ज्यादा बरप गया है, बाहर भ्रमण करने भी नही जा सकते, अनेक असुविधाये होती है पर स्वर्ग और ऊपरके विमान ये तो पुण्यके स्थान है, यहाँ असुविधा वाली बाते न होना चाहिए। सो वहा ये कोई ऋतुवे नही होती है। जहाँ विकलत्रय जीव भी उत्पन्न नही हैं कि कीडा मकोडा मक्खी मच्छर आदिककी तरह उन्हे सतावें, वहाँ वर्षा भी नही होती, शीतकाल भी नही होता, वहा देवोका शरीर ही वैक्रियक है और फिर ऐसी बाधा देने वाली ऋतुवे भी नही है। ठडका भी बहुत कठिन क्लेश होता है। जब ठढ अधिक पडती है तो लोग उस ठढसे परेशान होकर यह कहने लगते कि इस ठढसे तो गरमी अच्छी है और जब गरमी अधिक पडती है तो उससे भी बहुत परेशान होकर लोग कहने लगते कि इस गरमी से तो ठढ अच्छी है। तो ठढ गरमी—इन दोनोमे बहुत अधिक वेदनाएँ है। इस ठढ और गरमीका समय स्वर्ग लोकसे और ऊपर नही है, वहा सदा एक मध्यस्त काल रहता है। जैसे यहाँ बसत ऋतुमे या फागुन चैतके महीनोमे जब कि न अधिक गरमी है और न अधिक ठढ है, एक सम जलवायु रहता है, उसमे किसीको कोई ठढ गरमी की वेदना नही होती, इस प्रकारका मध्यस्त काल ऊर्ध्व लोकमे बना रहता है जिसमे वहाके देव बाहरी बाधावोसे भी परे रहा करते है।

उत्पातभयसन्तापभङ्गचौरादिविद्द्वरा ।
न हि स्वप्नेपि दृश्यन्ते क्षुद्रसत्त्वाश्च दुर्जना ॥१७६२॥

वैमानिक देवोके आवासमे उत्पात भय आदिका अभाव—उन स्वर्गोमे न कही उत्पात है, न कही उपद्रव है, न कोई किमी पर उपसर्ग करता है, न लडाई भगडे हे। लडाई झगडे का कारण तो परिग्रह है। उन्हे कमाई करनी नही, आजीविकाके माधन बनानेकी जरूरत नही, उनका वैक्रियक शरीर है, जब कभी हजारो वर्षोसे भूख लगती हे तो उनके ही कटमे अमृत झड जाता है और वे तृप्त हो जाते हैं। उनको शृङ्गारके लिए वस्त्र आभूपण ये स्वय

प्राप्त हो जाते है। तो वहा कलहकी कोई गुञ्जाइश नही है, फिर भी सूक्ष्मतासे तो यह नही कहा जा सकता कि उनमे कभी लडाई ही नही होती। होती है किसी प्रकारकी उनके ढगकी मगर ऐसी कलह ऐसा उत्पात कारणोका अभाव होनेसे नही होते जैसा कि मनुष्य लोकमे हुआ करता है। वहा भय भी कुछ नही है। भय किसी भी देववो नही है क्योकि सभी सुरक्षित है। बीचमे किसीका मरण नही होता लेकिन पुण्य पापके फल सर्वत्र फलते है। वहा इन्द्रोका और बडे देवोका छोटे देव कुछ भय मानते है, वह भय एक पुण्यसे प्रेरित भय है। उनकी आज्ञामे रहना पडता है इस कारणसे थोडी बहुत भयकी बात है पर जैसा भय यहा है कि आजीविका रहेगी कि नही, कही मरण न हो जाय, ऐसा भय उन देवोके नही है। वहा कोई सताप भी नही है। सताप यह दो प्रकारसे होता है—एक तो शारीरिक सताप और दूसरा मानसिक सताप। इष्टवियोग हो गया उसका खेद मान रहे है तो देवतावो को कोई शारीरिक सताप तो होते ही नही, इष्टवियोग भी उनके नही होता। वहाँ ऐसा ही नियोग है कि कोई देव गुजर गया तो उसके स्थान पर वहा जो भी देव होगा वह देव उसका इष्ट हो जायगा, वहा कोई देवागना मर गयी तो वहा जो दूसरी देवागना हो वह उस देवकी इष्ट बन जायगी। तो वहा सताप नही होता, चोर शत्रु आदिक की भी वहा बाधा नही है। किसका क्या चुराये ? यहा तो परिग्रहका सम्बन्ध आजीविकासे है तो कुछ परिग्रह मनुष्य लोग चुरा भी लेते है पर वहा क्या चुराये ? चोरी करके कहा रखना, उसका क्या उपयोग करना ? यद्यपि वहा भी बडे वैभव वाले, छोटे वैभव वाले देव है और वे कुछ मनमे सताप भी करते है दूसरेके बडे वैभवको निरखकर, लेकिन चुरानेका काम वहा नही है। यह तो पुण्योदयसे जिसे जो वैभव मिला उसे पा करके वह अपने भाव बनाता रहता है। तो वहा चोरीकी भी बात नही है। वहा बचक भी नही, ठगने वाले भी नही। जैसे यहा जेबकतरे लोग या और और भी अनेक पद्धतियोसे चोरी करने वाले लोग पाये जाते है वैसे वहा चोरी कोई देव नही करते। चोरी करनेका, ठगाई करनेका परिणाम वहा है ही नही। यहा तो मनुष्य लोग ठगाई करनेके चोरी करनेके नाना प्रकारके उपाय रचते है। जैसे अभी यात्राके प्रसगमे ही कितनी ही तरहसे लोगोको ठगनेकी बात देखनेमे आयी। कुछ पैसे बिखेर दिया, और कह दिया कि देखो तुम्हारे ये पैसे गिर गये, वह पैसे उठाने लगा इतनेमे ही उसकी कोई चीज लेकर वह चम्पत हो गया। किसीने पानी भरनेके लिया लोटा या गिलास मागा तो अपरिचित होकर भी वह उसे बडे प्रेमसे दे देता और जहा वह नहाने लगा तो झट उसकी कोई कीमती चीज लेकर चम्पत हो जाता। एक नया रिवाज और देखा सुना कि कोई जडी बूटी लगा दी शिरके पास। वह अपना सर खुजाने लगा, इतनेमे ही उसकी कोई कीमती चीज लेकर भाग गया। मौका मिल गया तो झट जेब काटकर धन चुरा लिया। तो जैसे यहाँ

मनुष्योमे नाना तरहकी ठगाई चलती है इस तरहकी ठगाई उन देवोमे नही है। क्षुद्र जीव, दुर्जन क्रूरता वाले जीव ऊर्ध्व लोकमे नही होते है।

चन्द्रकान्तशिलानद्धा प्रवालदलदन्तुरा ।
वज्रेन्द्रनीलनिर्माणा विचित्रास्तत्र भूमय ॥१७६३॥

देवभूमियोकी शोभनता—इन देवोंके निवासमे ऐसी भूमि है, उनके रहनेके भवन महलोमे ऐसी फर्श है जो चन्द्रकान्तमणि अथवा मूँगा आदिक मणियोसे रची हुई है। कही कही हीरा नील आदिक नाना प्रकारके चित्र विचित्र रत्न जडे हुए है ऐसे वहाके निवास स्थान हैं। पृथ्वी ही तो है, पर कही कही की पृथ्वी प्रकृतिसे सुहावनी होती हे, कहीकी पृथ्वी नुकीली, कडी पत्थरो वाली होती है। वहाँके भवन बहुत कीमती पुष्ट मणि आदिकसे रचे गए है। वहाँके भवन फर्श वहाँकी और और भूमिया नेत्रोंको सुख देने वाली नाना मणि मूँगा आदिकसे रची गई है। सुखके जो स्थानक होते हैं। वहाँ केवल इतनी ही सुविधा नही होती कि भूख प्यास न लगे और आरामसे समय कटे, रहनेके स्थान, और और भी वचन-व्यवहार इज्जत सम्मान अपमान यश गुणगान आदिक अनेक बाते होती है। तो उनके पुण्य फलकी बात चलती है। तो स्वर्गोमे इस प्रकारकी भूमि और ऐसे भवन है कि जो यहाँ बडा परिश्रम करके भी बनाये जाये चमक दमक वाले बडे सुन्दरसे सुन्दर तो ऐसी अच्छी सुन्दरता ऊर्ध्व लोकमे प्रकृत्या बनी हुई है। यह सब वर्णन चल रहा है सस्थानविचय धर्मध्यानका। एक ज्ञानी सम्यग्दृष्टि पुरुष लोकरचनाका विचार कर रहा है, जब लोकके विस्तारपर और रचनापर दृष्टि जाती है तो उस समय वह उपयोग रागद्वेषको पकडे हुए नही रह सकता है। जैसे घर कुटुम्ब का और अपने परिचित क्षेत्रमे जाने आनेका रोक बन जाय, उसे पकडे हुए रहे, यह बात नही बनती है क्योकि इसकी दृष्टि लोकके एक विस्तारपर है। उन सब रचनावोको निरख रहा है और उन रचनावोके सामने वर्तमान समागमोको महत्त्व नही दे रहा। उससे भी बढ बढकर उत्तम उत्तम स्थान लोकमे है। जो विशेष विरक्त पुरुष होते हैं उनकी ही दृष्टिमे यह सारा लोक काल ये सब रचनाएँ बन रही हैं। जो रागी द्वेषी पुरुष है, जिनका एक केन्द्रित अपरिचित क्षेत्र है, जहाँ ही रमकर वे अपनेमे मौज मानते है उनकी निगाहमे यह विस्तृत लोक नही रह पाता है। अगर यह विस्तृत लोक उनके उपयोगमे रहे तो इस थोडी सी भूमिका, थोडेसे समागमका उसको आदर नही होता। तो सस्थानविचय धर्मध्यानमे ज्ञानी योगी मुनि सत जन इस समय लोकरचनाका विचार कर रहे हैं, जहाँ ऊर्ध्वलोकका वर्णन चल रहा है कि पुण्य फल यो यो फलते है।

माणिक्यरोचिषा चक्रै कर्बुरीकृतदिङ्मुखा ।
वाप्य स्वर्णाम्बुजच्छन्ना रत्नसोपानराजिला ॥१७६४॥

देवभवनोकी शोभनता--जहाँकी बावडिया ऐसी शोभायुक्त है, माणिककी किरणोके समूहोसे दशो दिशायें अनेक वर्णमय चित्र विचित्र हो रही है तथा स्वर्णमय कमलोसे आच्छादित है और रत्नमय सीढियोसे सुशोभित है। उन सीढियोपर स्वर्णमय कलसोकी रचना है और दूसरी ओर चित्र विचित्र मणि वहाँ रचती है तो वह बावडी बहुत विशेष शोभाको प्राप्त होती है। उनकी रचनाएँ जगह-जगह है। जहाँ जावो तहाँ ही चित्तको हरने वाली है। यह पुण्यफल जहाँ विशेष फलता है वहाँ केवल एक दो बात विशिष्ट हो सो नही, किन्तु रहनेका घूमनेका स्थान, आरामका स्थान, लोगोका समागम जिन भवनोमे रहता है उनकी रचनाएँ सभी कुछ नेत्रोको हरने वाली है। पुण्यफलकी बात ज्ञानी जीवोको नही रुचती है। वे उस पुण्य फलको कुछ महत्त्व नही देते है। उस पुण्यफलको वे ज्ञानी पुरुष सारभूत नही समझते है, मगर बताया जा रहा है कि पुण्यफलसे जीव क्या पाते और पापफलसे जीव क्या पाते हैं, और लोककी कैसी कैसी रचनाएँ है जहाँ पुण्यफल और पापफल दिखाई दे रहे है। संस्थानविचय धर्मध्यानमे यह ज्ञानी पुरुष लोककी रचनाका चिन्तन कर रहा है और अपने कर्मोंको काट रहा है।

सरास्यमलवारीणि हंसकारण्डमण्डलैः।
वाचालैरुद्धतीर्थानि दिव्यनारीजनेन च ॥१७६५॥

वैमानिक देवस्थानोकी मनोहारिता—स्वर्गोमे सभी रचनाएँ नेत्र और मनको तृप्त करने वाली हैं। वह स्थान ही ऐसा एक पुण्यफलका धाम है कि जहाँ उत्पन्न होने वाले देव अपने मन माफिक समस्त मोज करते है। उन स्वर्गोमे सरोवर भी है जिनमे स्वच्छ निर्मल जल भरा हुआ है। सरोवरोमे हंस वा कारंड आदिक उत्तम-उत्तम जातिके पक्षी भी उसके निकट शोभा बढाते है। यद्यपि तिर्यञ्चोका विकलत्रयोका पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोका वहाँ सद्भाव नही है फिर भी या तो वहाँ बहुत कलापूर्ण पक्षियोकी मूर्तियाँ है प्राकृतिक अकृत्रिम अथवा कुछ खोटे देव अपना दिल बहलानेके लिए अथवा अन्य पुण्यवत देवोका मन प्रसन्न करनेके लिए ऐसी विक्रिया करके भी वहाँ शोभा बढाते है। उन सरोवरोके निकट अनेक देवागनाएँ अप्सरायें विहार करती है। जैसे कही किसी अच्छे स्थानपर बहुत सुन्दर सरोवर हो तो बहुत से लोग अनेक महिलायें वहाँ जाकर अपने चित्तका परिश्रम दूर करती है, इसी प्रकार वे भी जो कुछ मानसिक खेद या श्रम होता है तो उसे दूर करती है और मनका सुख वहाँ प्राप्त करती है। यह सब वहाँके पुण्य फलकी बात कही जा रही है। यह पुण्यफल ज्ञानियोकी दृष्टि मे हेय है। क्या होगा ऐसे देवभवमे जन्म लेकर कि जहाँ जीवन पर्यन्त विषयसाधनोमे उपयोग रहे और आत्माकी सुधके लिए अवकाश न मिले। होते है कुछ विरले देव सम्यग्दृष्टि लेकिन वे भी रागवश वैसे ही काम करते है। यह सब विषय साधनोका एक काम है। उन

विषय साधनोके प्रसगमे जीवका हित नही है । इस जीवके साथ कोई शत्रु लगा है तो यह विषयकपायका ही शत्रु लगा है । नीतिकारोने जीवके ६ शत्रु बताये हैं—काम, क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह । यह बात बिल्कुल तथ्यकी है । इस जीवको बरबाद करने वाला, सक्लेश देने वाला, ससारमे भटकाने वाला बस यह विषय कपाय मोहका परिणाम है । दूसरा जीव या बाह्यपदार्थका आना जाना सयोग वियोग—ये कोई दु खके उत्पन्न करने वाले नही है, किन्तु जीवमे जो अज्ञानभाव बसा है और विपय कषायोसे प्रेम बना है यह ही जीव को दु ख उत्पन्न करता है, ऐसे देवभवमे भी कोई जीव गया तो वहाँ भी एक अनात्मतत्त्वका ही उपयोग प्राय करके गया ।

गाव कामदुधा सर्वा कल्पवृक्षाश्च पादपा ।
चिन्तारत्नानि रत्नानि स्वर्गलोके स्वभावत ॥१७६६॥

स्वर्गलोकमें कल्पवृक्ष, चिन्तामणि आदिकी स्वत उपलब्धि—उस स्वर्गमे जो गायें है वे कामधेनु है । वहाँ गाय होती है इसकी कोई आवश्यकता नही है । ये जीव पाये नही जाते किन्तु लोकमे प्रसिद्धि है कि कामधेनु कोई होती है कि उससे जो मागो सो प्राप्त होता है इस आधार पर तथा वहाँकी जो कुछ भी इस आकारकी मूर्तिया बनी हो, रचनायें बनी हो और वे कल्पवृक्ष जैसा फल देनेमे निमित्त हो तो यह भी सम्भव हो सकता है । वहाँ गाय तो कामधेनु है, वृक्ष कल्पवृक्ष हैं । अनेक जातिके कल्प वृक्ष है जो प्रकाश दें, आभूषण दे, वस्त्र दें, जो देवोके मन चाहे भाव हो उन पदार्थोको देनेमे वे एक निमित्त है, ऐसा वहाँ वृक्ष कल्पवृक्षका रूप रखते है और रत्न हैं सो चिन्तामणि रत्न है । लोकमे ये दो तीन बातें बहुत महत्त्वकी मानी जाती है । चिन्तामणि रत्न उसे कहते है जो हाथमे आये और जो विचारो सो मिल जाय । सो कही अलगसे चिन्तामणि रत्नकी यह महिमा नही है । यह जीवके पुण्यकी महिमा है । जो पुण्यवान जीव है उनके पुण्य ऐसा ही फलता है कि जो चाहे सो तुरन्त प्राप्त होता है । यह सब पुण्यफल बतानेके लिए कहा जा रहा है । ये कोई प्राप्त करने योग्य पदार्थ नही हैं । इन अनेक समागमोसे जीवको लाभ क्या होगा ? जीवका उद्धार तो अपने आपके स्वभावके दर्शनसे ही होगा । जो महाभाग जो भव्य पुरुष अपने आपके स्वरूप का इस रूपमे प्रत्यय करते हैं कि मै सबसे निराला केवल ज्ञानानन्दस्वरूप मात्र हू, जो इस प्रकार अपने ज्ञानानन्दस्वरूपका चिन्तन करते है सत्य कमाई तो वे ही प्राप्त कर रहे है, बाकी तो सब सयोग वियोग विडम्बना है जहा पडकर जीवन निकल जायगा, पर अन्तमे हाथ कुछ न आयगा । बल्कि यह आत्मा यो ही रीता दूसरी गतिमे जन्म लेगा, पर होता है ससारमे पुण्य पापका ऐसा फल जिसे यहाँ दर्शाया जा रहा है । है क्या यह लोकमे सब कुछ इसका यथार्थ भान किए बिना इससे उपेक्षा कहा जगेगी, वैराग्य कैसे होगा ? अपने ज्ञानके

निकट आना कैसे बनेगा, इसलिए इस समस्त सासारिक व्यवस्थाका तथ्य कहा जा रहा है ।

ध्वजचामरछत्राङ्कैर्विमानैर्वनितासखा ।
सचरन्ति मुरासारैः सेव्यमाना सुरेश्वरा ॥१७६७॥

छत्र चमर आदिसे सुरेश्वर भवन आदिकी शोभा—उन स्वर्गोके अधिपति इन्द्र ध्वजा, चमर, छत्रोसे चिन्हित हुए विमानोके द्वारा अनेक देवागनाओ सहित यत्र तत्र विचरते है तो उनकी अनेक देव सेवा करते है । उन देवोके शरीर वैक्रियक है, उनके भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी आदिककी कोई वेदना नही है, मगर अनेक देवोके यह मानसिक दुख अब भी लगा हुआ है । इन्द्रादिक देव जब वहाँ विचरते है तो छोटे देव उनकी सेवा करते है और वे सेवा करते हुए मानसिक दुख प्राप्त करते रहते है । सो छोटे देव तो बडोकी सेवा करके दुःखी रहते है और बडे देव छोटे देवोपर हुकूमत करके दुखी रहते है । आप यह मत सोचे कि हुकूमत मानने वाला ही दुःखी रहता है । अरे जितना दुःख हुकूमत मानने वाला मानता है उससे अधिक दुख हुकूमत करने वाला मानता है । तो वहाँ जब इन्द्र अपनी ध्वजा चमर छत्र आदिकसे सज्जित होकर बडे वैभव सहित स्वर्गोमे यत्र तत्र विचरते है तो अनेक देव उनकी सेवा करते है । उनकी जीहजूरीमे रहते है । अब बतलावो क्या मुख रहा ? जैसे यहाँके धनी लोग जिन्हे खाने पीनेके लिए कुछ चिन्ता नही, पहिनने ओढनेकी कुछ चिन्ता नही, बहुत कुछ वैभव है । वे धनी किस बातसे दुखी रहते है ? कही अपमान महसूस कर ले, कही ठीक ठीक सम्मान न मिल पाये, कही अपनेसे अधिक दूसरेका धन बढ गया, यो कितने ही प्रकारके कष्ट बनाते है धनिक लोग भी, तो ऐसे ही समझिये कि उन स्वर्गोमे भी देव यद्यपि क्षुधा तृषा ठढ गर्मी शारीरिक रोग इन सब बातोसे बचे हुए है, पर उनसे भी बडा दुःख मनका दुःख होता है । सो अनेक देव जब दूसरोकी सेवायें करते है तो वे भी मानसिक दुःखोसे दुखी है और जो देव सेवा लेते हैं उनके भी विकल्प इस तरहके बनते है कि वे भी दुखी रहते है । केवल एक कल्पनासे मुख मान लिया गया है ।

यक्षकिन्नरनारीभिर्मन्दारवनवीथिषु ।
कान्तश्लिष्टाभिरानन्द गीयन्ते त्रिदशेश्वरा ॥१७६८॥

स्वर्गलोकमे देवोकी इन्द्रियसुखप्रियता—स्वर्गोंका जीवन एक विलासताका जीवन है । जैसे यहाँ मनुष्य जब किसी दुखसे पीडित नही रहता, दरिद्रता, भूख, प्यास आदिके दुख नही है, कोई शारीरिक रोग नही है तो उसका मन प्रायः करके विषयोके सुख भोगनेके लिए ही चला करता है तो सुखमे रहकर जीवोका मन एक मलिनताकी ओर बहता है, इसी प्रकार वे देव चूंकि शारीरिक बाधावोमे दूर है तो उनका मन भी एक इन्द्रिय सुख लेनेके लिए चला करता है । उन स्वर्गोमे इन्द्र मुन्दर सुन्दर स्थानोमे मदार वृक्षोकी गलियोमे जो दोनो ओर से

घने सुगंधित वृक्ष है, और भी रमणीक वातावरण है, यक्ष किन्नर सेवक देवागनावो सहित वहाँ विहार करते है और वे देवागनाएँ उस समयके आनन्दसे आनन्दित होकर बहुत राग रागनियोसे पूरित गान करती है। देखो—मनुष्य भी तभी गाते हैं जब वे कुछ सुखमे हो आपने देखा होगा कि बडे बडे पुरुष ऐसे गाते हुए नजर नही आते जितना कि छोटे लोग रिक्शा चलाने वाले, तागा हाकने वाले, बोझा ढोने वाले लोग चलते फिरते श्रम करते गाते रहते है। उनका चित्त मौजमे रहता है, वे अपनी छोटी बुद्धिके माफिक, अपनी छोटी ममता के माफिक समागम पाकर तुष्ट हो जाते है और वे गान करते रहते है। तो गाना गाना एक मौज बिना नही होता है। तो जब इतना बडा मौज, इतने बडे वैभव सहित, इन्द्रके सहित जा रही हो देवागनाएँ तो वे देवागनाएँ बहुत ही सुन्दर राग रससे पूरित गान करती है। गाने भी अनेक कलावोसे सहित होते है। जब यहाँके मनुष्य ही बहुत शास्त्रीय ढगसे गान करते है, तो कितनी ही पद्धतियो और कलावोसे पूरित वह वातावरण बन जाता है। एक बहुत बडी बुद्धिमानी जचती है, लोग उनकी चतुराइयोपर प्रसन्न हुआ करते है, तब उन देवो के नृत्य गानका तो कहना ही क्या है, उनमे तो स्वभावसे ऐसी कला पायी जाती है इसलिए पुण्य फलमे विभोर होकर वहाँ देवागनाये नाना प्रकारसे नृत्य गान करती है। यह स्वर्गोका ठाठबाट इस प्रकरणमे दिखाया जा रहा है। ज्ञानी जीव उसे एक बन्धनका फल मानता है। जैसे दु खमयी वातावरण मिलना जीवका बन्धन है ऐसे ही इन सासारिक सुखोका समागम मिलना यह भी जीवका बन्धन है। पुण्य और पाप दोनोके फलको ज्ञानी जीव बन्धन समझता है, पर पुण्यमे ऐसा हुआ करता है उसका प्रदर्शन किया जा रहा है, और जो जीव धर्मकी ओर उन्मुख होते है उनको वैसे ही पुण्यका बध होता है। जो यहाँ बडे-बडे महर्षि हुए है पचम कालमे भी उनका श्रद्धान ज्ञान और चारित्र पवित्र था, फिर भी रागभाव तो होता ही है। चाहे वह तपश्चरणका अनुराग हो, चाहे ससारके प्राणियोके उद्धारका अनुराग हो, चाहे ग्रन्थ रचनाका अनुराग हो तो उसके कारण उन्होने बडा पुण्यबध किया और उसके फलमे वे करीब करीब स्वर्गमे ही उत्पन्न हुए होगे, तो स्वर्गोमे भी वे महर्षि क्या कर रहे होगे ? वे बडे ऋद्धि-धारी देव बनकर ऐसे ही वातावरणमे होगे लेकिन उनका सम्यग्ज्ञान जागृत होगा तो वे वहाँ भी निर्लेप रहते है, उन विषयोमे आसक्त नही होते है, ज्ञानी जीवकी ऐसी ही विशेषता है। नरकोमे अनेक प्रकारके दु ख भोगकर भी जैसे उन दुःखोसे अछूते रहते है, अपनी श्रद्धा और उपयोगमे ऐसे ही पुण्यके फलमे देव होते हे तो वहाँ भी अनेक प्रकारके सुखोके बीच भी उन सुखोंसे वे अछूते रहते है।

क्रीडागिरिनिकुञ्जेषु पुष्पशय्यागृहेषु वा ।
रमन्ते त्रिदशा यत्र वरस्त्रीवृन्दवेष्टिताः ॥१७६६॥

देवोका स्वच्छन्द क्रीडन, रमरा—उन स्वर्गोंके देव क्रीडाके स्थान जिनमे बने हुए है ऐसी गुफावोमे, कदरावोमे जिनके द्वारोपर तथा जिनके भीतर भी पुष्पलता आदिककी बडी सुगध रहती है वहा वे देव अनेक देवागनावो सहित नाना प्रकारकी आनन्दमयी क्रीडा करते है। विषय सुखोमे सागरो पर्यन्तकी आयु भी नही जानी जाती है। यहाँ जो पुरुष जीवनभर सुखपूर्वक रहे वे सोचते है—अहो! हमारे जीवनके ये ६० वर्ष कसे निकल गए? पर जब दु ख आता है तो एक घटा भी दिन और महीना जैसा लगता है, मुश्किलमे व्यतीत होता है। बराबर घडीको निरखना पडता है, अरे वह समय काटा नही कटता है। लेकिन सुखमे ऐसा समय व्यतीत हो जाता है कि जाना नही जाता। देवोकी आयु नारकियोकी तरह सागर पर्यन्त होती है पर नारकी सदा दु ख भोगते रहते है और देव सदा सुखी रहते है। नारकियो का वह सागरो पर्यन्तका समय काटा नही कटता है पर देवोका वह सागरोपर्यन्तका समय उन्हे पता नही पडता कि कैसे निकल जाता है? अन्तमे जब उनकी आयुका पतन होता है तो उन्हे मध्यलोकमे जन्म लेना पडता है, तो वे सभी देव विषय सुखोमे अपना समय व्यतीत करते है। उन्हे काम क्या है? जैसे यहाँ ही कोई मनुष्य बडे आराममे रह रहा हो, सभी काम नौकर लोग करते हो, उसे किसी बातकी फिकर नही है तो वह अपने उपयोग को प्राय करके विषयसुखोमे लगाता है ऐसे ही वे देव भी प्राय करके अपने उपयोगको विषय सुखोमे लगाते है। जैसे यहा पर बिरले ही ज्ञानी जीव ऐसे होते है कि जो धर्मचर्चामे, तीर्थयात्रामे, तीर्थंकरोकी वदनामे और सधर्मीजनोके उपद्रवोके दूर करनेमे अपना कुछ समय व्यतीत करते है, बाकी तो सभी विषयसुखोमे अपने उपयोगको लगाते है, ऐसे ही बिरले ही कुछ देवोको छोड कर बाकी सभी देव वहा अच्छी-अच्छी जगह ढूँढते है और अपने मन माफिक वहा अपना मौज मानते है, यह पुण्यफल उन स्वर्गोमे हुआ करता है।

मन्दारचम्पकाशोकमालतीरेणुरञ्जिता ।
भ्रमन्ति यत्र गन्धाढ्या गन्धवाहा शनै शनै ॥१७७०॥

स्वर्गलोकमे सुगंधित मन्द समीरसंचरण—उन स्वर्गोमे मदार, चम्पक, अशोक, मालती आदि पुष्पो की रजसे रंजित भ्रमर विहार करते है। यह एक अलकार रूपसे कहा जा रहा है और उन सुगधित पुष्पोसे छू छूकर बडी शीतल पवन चला करती है। मनुष्य जैसे जब मौजमे होता है तो कुछ बेकार विषयोकी रुचि करता है, जैसे भोजन करना, क्षुधा मेटना, ये कुछ काम वाले विषय है। विषय तो नही कहते मगर उनमे भी यदि रसास्वादन की भावना है, वासना है तो वे भी बेकार है, लेकिन जैसे खाना पीना अति आवश्यक है ऐसे ही अन्य बातें तो आवश्यक नही है। जैसे अनेक सुन्दर स्थान सुन्दर रूप निरखना यह क्या आवश्यक है इस शरीरके लिए? लेकिन जब मौजमे होता है यह मनुष्य तब उसकी ये

लिप्सायें बढती है । अब चलो सुन्दर गाना सुनना है, अब चलो कोई सुन्दर रूप निरखना है, सुगधित तैल लगाना है, सुगधित जगह पर जाकर मन बहलाना है । तो ये लिप्सायें मौजमे बढती है । पर जैसे बिना बाधाके, बिना किसी वेदनाके कोई औषधिका सेवन नही करता इसी प्रकार बिना मनमे वेदना हुए इन विषयोका कौन सेवन करता ? तो ये विषय सुखोकी चीजें मानव मात्रको प्राप्त है । पुण्यके जो विशेष फल है उन्हे यहाँ बताया जा रहा है कि स्वर्गोके ये फल जगह-जगह पाये जाते है । अशोक, माल्ती, चम्पक, मदार आदिक वृक्ष है तथा नाना प्रकारकी लतावो वाले सुगधित वृक्षोसे वह स्थान सुशोभित है और वहा सुगधित वायु निरन्तर बहा करती है जो मनको प्रसन्न करने वाली है । वहा वे देव बडा मौज मानते हैं । देखो इस मनुष्यलोकके थोडेसे दुखोसे घबडाकर यदि अपने न्यायसे गिर जाय और थोडेसे सुखोंके लिए अपने विचारोको पतित कर दे तो समझिये कि ऐसे बडे स्वर्गोके सुखोसे वह वञ्चित हो जाता है । और कोई इन सुखोमे न ललचाये और दुखोसे न घबडाये, अपने मनका सतुलन रखे तो ऐसे पुण्यका बध होता है कि उसे सागरो पर्यन्त ऐसे ऐसे सुख प्राप्त होते हैं । यह पुण्यफलका वर्णन चल रहा है ।

लीलावनविहारैश्च पुण्यावचयकौतुकैः ।
जलक्रीडादिविज्ञानैर्विलासास्तत्र योषिताम् ॥१७७१॥

स्वर्गलोकमे विविध विलास—उन स्वर्गोमे देवागनाओका विलास बडी चतुराईसे भरपूर है । क्रीडा बनके बिहारोंसे तथा पुष्पोके चुननेके कौतुकसे तथा जलक्रीडाके विज्ञानोसे बडी शोभा है । क्या करे वे देव ? उन देवोका शरीर वैक्रियक है, नाना बाधावोसे विमुक्त है सो वे अपने चित्तको ऐसे ही बहलाते है । जैसे कोई बेकार हो तो उसका मन नही लगता, वह यहाँ वहाँ डोलता फिरता है, इसी प्रकार वे देव अपने चित्तको बहलानेके लिए यत्र तत्र विहार करते है । अगर उनके चित्तमे तृप्ति होती तो फिर जिस स्थानमे वे एक बार दो बार विहार कर चुके है उन्हे बार-बार वहाँ विहार करनेकी क्या आवश्यकता है ? वे अगर तृप्त होते तो क्यो वहाँ बार-बार विहार करते ? वे प्रायः दुखी रहा करते है । आनन्द तो वास्तवमे विषयातीत आत्मानुभवसे ही प्राप्त होता है, और तो ये सब पञ्चेन्द्रियके विषय सुख आत्माके प्रतिकार है । इन पञ्चेन्द्रियके विषय सुखोमे तो वेदनाएँ ही बसी हुई है । ये सब पञ्चेन्द्रिय के विषय विडम्बनारूप है जिनको लोग बडे महत्त्वकी दृष्टिसे देखते है । जब तक शुद्धोपयोग नही होता है शुभोपयोग साथ चल रहा है । ज्ञानी भी पुरुष हो, शुद्ध अनुभवी पुरुष भी हो लेकिन शुभोपयोग जब चलता रहता है तब उसके फलमे मिलेगा क्या ? स्वर्ग ही तो मिलेगा । तो ज्ञानी तो उसे विपदा समझता है, यह भी भोगना पडता है । उस ज्ञानीकी दृष्टि तो सर्व कर्मोसे विमुक्त एक आत्मस्वभावकी ओर रहती है, कुछ विकासकी ओर रहती है, सासारिक

सुखोंके लिए उस ज्ञानीकी दृष्टि नही जगती है। लेकिन पुण्यका फल क्या है यह तो प्राप्त होता ही है। ज्ञानी हो तो, मिथ्यादृष्टि हो तो, जिसने भी मन्द कषाय किया उसका फल उसे प्राप्त होता है। स्वर्गोंमे इस प्रकारके देव विहार अनेक कौतुक और अनेक तरहकी जलक्रीडायें—इन सबमे उनकी बडी चतुराई है और बडी चतुराईके साथ वे इन सासारिक सुखोका भोग किया करते है।

वीणामादाय रत्यन्ते कल गायन्ति योषितः।
ध्वनन्ति मुरजा धीर दिवि देवाङ्गनाहता ॥१७७२॥

स्वर्गलोकमें भोग, उपभोग, संगीत आदिकी प्रचुरता—वहाँ स्वर्गोंमे वे देव देविया मनचाहे भोग भोगा करते है और उनसे निपटनेके पश्चात् वे अपने गानतानमे रत हो जाते है। जैसे यहाँ भी धनी पुरुष और करते क्या है सिवाय एक शृगार विलास गान तानके साधनके। ऐसे ही इन शृगार विलास गान तानोंमे ही वे देव देविया भी अपना समय बिताते है। जैसे यहाँ धनिकोमे बिरले ही पुरुष ऐसे होते है जो कि परोपकार करनेकी बात सोचा करते हो, प्रायः सभी लोग इन विषयसुखोमे ही रत होकर अपना समय बिताते है, इसी तरह बिरले ही देव ऐसे ज्ञानवान होते है जो कि इन भोगसाधनोके बीच रहते हुए भी भोगसाधनो से अलिप्त रहा करते है। तो उन स्वर्गोंमे वे देवागनाएँ सभोगके बाद वीणा लेकर सुन्दर गान करती है, और मृदग आदिक अनेक तरहके साधन वहाँ है उनको बजाती है, गाती है और नृत्य करती है। यो वे देव देवागनाएँ विभोर रहा करते हैं। आत्माकी सुध आये ऐसा अवकाश बहुत कम है। देखो जहाँ क्लेश है वहाँ जीवके उद्धारका मौका भी है, और जहाँ क्लेश नही है, भोग भोग ही रहते है वहाँ उद्धारका अवसर नही मिलता। जिन स्वर्गोंमे इष्टवियोग अनिष्ट सयोग, भूख प्यास, क्षुधा, तृषा एव शारीरिक रोग आदिकी कोई वेदना ही नही है तो वहाँ आत्महित करनेका अवसर नही प्राप्त होता है। पुण्यके फलको पाकर तो वे देव उसी पुण्यफलमे रत होकर अपने आत्महितकी बातको भूल जाते है। एक यह मनुष्यभव ही ऐसा है कि जहाँसे यह जीव सच्चा ज्ञान बनाकर सर्व परकी उपेक्षा करके अपना उद्धार कर सकने मे समर्थ होता है।

कोकिला कल्पवृक्षेषु चैत्यागारेषु योषित।
विबोधयन्ति देवेशांल्ललितैर्गीतनिस्वने ॥१७७३॥

स्वर्गलोकमें भवन चैत्यालय उद्यान आदिसे गीतोंकी झनकार—उन स्वर्गोंमे कल्पवृक्षोपर तो कोकिलायें सुन्दर शब्दोसे इन्द्रको प्रसन्न करती है और चैत्यालयोमे देवागनाये सुन्दर गीतोंसे इन्द्रोको आनन्द प्रदान करती है। भवनमे रहे, वनमे जाये, चैत्यालयमे जायें, जहाँ भी इन्द्र और ये देव पहुचते है वहाँ ही चित्तको हरने वाले सुन्दर गीतोके शब्द सुनाई

देते है। स्वर्गोमे प्रत्येक बाते देखनेकी, सुनने की, सूघनेकी सभी पुण्यके फल रूप है और आनन्द वैषयिक मौज प्रदान करती है, लेकिन इनमे रमने वाले अज्ञानी देव होते है। ज्ञानी देव ऐसे समागमोमे रहकर भी उसमे उपेक्षाभाव रखते है। वे जानते है कि यह सब पुण्यफल है, औपाधिक चीजे है, बाह्य वस्तुये है, इन सबसे मेरे आत्माका कोई सुधार नही है। मै आत्मा सबसे निराला केवल ज्ञानानन्द स्वरूप हू, ये सब जड पदार्थ है। जडसे अथवा किसी अन्य आत्मासे मेरेमे कोई परिणति नही होती। मै ही खुद अपनी ही कलासे परिणमता रहता हू, औपाधिक परिणामोमे परपदार्थ अवश्य निमित्त होते है ऐसा ज्ञानी देवोका सदा जागरण रहता है और वे ऐसे पुण्यफलोमे आसक्त नही होते और अपनी सुध बराबर बनाये रहते है।

नित्योत्सवयुत रम्य सर्वाभ्युदयमन्दिरम्।
सुखसपद्गुणाधार कै स्वर्गमुपमीयते ॥१७७४॥

स्वर्गलोककी नित्यसमारोहसम्पन्नता—उस स्वर्गकी किससे उपमा दी जाय जो स्वर्ग नित्य ही उत्सवो सहित है। रोज-रोज नये नये उत्सव समारोह होते रहते है। जहाँ कभी किसी प्रकारका विशाद और शोकका काम नही है, इष्टवियोग नही है। कोई इष्टदेव गुजरे तो वही कुछ ही समय बाद दूसरा देव उत्पन्न हो जाता है। कोई देवागना अगर गुजर गयी तो दूसरी देवागना उसी जगह झट उत्पन्न हो जाती है। वहा बुढापा तो आता नही, सदा जवानी रहती है। वहा शारीरिक रोग तो होते नही, कष्टदायी रच भी बात नही आती है, फिर भी वहाके देव अपनी कल्पनासे मानसिक दुख बनाये रहते है। दूसरोका वैभव देखकर चित्तमे कुढा करते है, मेरे इतना वैभव क्यो न हुआ ? इसके पास तो इतना सब कुछ हे आदि। वह स्वर्ग इतना रमणीक है कि समस्त अभ्युदयोके भोगोका निवास है। योग और उपभोगकी सामग्री वहा विशेषतया पायी जाती है, सुख सम्पत्ति और गुणोका आधार है, इस कारणसे उस स्वर्गकी उपमा किसी भी स्थलसे नही दी जा सकती है। यहा कोई भी ऐसा स्थल नही जिससे स्वर्गकी उपमा दी जाय। उन देवोका एक शारीरिक ढाँचा ही सुख देने वाला है। वैक्रियक शरीर है, घृणाकी कोई चीज नही है। हड्डी रुधिर मल मूत्र ये जहा नही पाये जाते है, उनका देह ही इस प्रकारका सुन्दर वैक्रियक है तो वहाँ अन्यकी सुन्दरताका तो कहना ही क्या है ? वह स्वर्ग निरुपम है, ऐसा वैषयिक सुख अन्यत्र अलभ्य है। ऐसे पुण्यफल स्वर्गमे पाये जाते है। इस तरह सस्थानविचय धर्मध्यान वाला ज्ञानी पुरुष चिन्तन कर रहा है और साथ ही साथ यह भी जान रहा है कि शुभोपयोगके भावोसे अर्थात् दया दान आदिक शुभभावोके होनेसे ऐसे भोग साधन प्राप्त होते है।

पञ्चवर्णमहारत्ननिर्माणा सप्तभूमिका।
प्रासादा पुष्करिण्यश्च चन्द्रशाला वनान्तरे ॥१७७५॥

स्वर्गलोकमे मणिमय प्रसाद सरस्तीर आदिकी शोभा—उन स्वर्गोके बागोमे ५ वर्णों के रत्नोसे बने हुए ७-७ खण्डके महल है और वाटिका तथा चन्द्रशालाये अर्थात् प्रासादोके ऊपर जो कुछ महल जैसी रचनायें होती है वे सब वहाँ उत्तम रमणीक और शोभनीय है। ये सब अकृत्रिम रचनायें है। पृथ्वीका ही उस प्रकारका रूप है जो बडे बडे प्रासाद ऊँचे ऊँचे खण्डोके अनेक खण्ड पाये जाते है। वह एक प्राकृतिक रचना है और फिर कल्पवृक्ष भी अनेक ऐसे है कि मनचाहे प्रासादोको प्रदान करने वाले है। वहाँ क्या कैसी रचना हैं, कैसे सुखके साधन मिलते है ? वे सब अपनी कल्पनासे बाहरकी बाते है। पुण्यफल है। जब पुण्यका उदय होता है तो कैसे कैसे सुख साधन वहासे प्राप्त हो जाते है, उनका कौन ओर-छोर जानता है ऐसे ही जब पापका उदय आता है तो कब कहाँसे किस तरह क्या सकट आ पडता है, इसे भी कौन जानता है ? यह ससार बडा विषम है। जैसे सुख दुःखके चक्र इस ससारमे चल रहे है ऐसे ही ये पुण्य पापके चक्र इस ससारमे बराबर चलते रहते है। ज्ञानी पुरुष इस ससारकी मनमोहक चीजोको निरखकर उनमे रति नही करते बल्कि वे उससे बचनेका ही यत्न रखते है और जो विशिष्ट ज्ञानी है, विरक्त पुरुष है वे ऐसे परिग्रहोको त्यागकर अपने स्वरूपके ध्यानमे मग्न रहा करते है। उन देवोमे ये वैषयिक सुख है मगर आत्मीय सुखमे प्रगति कर सकें ऐसा उनमे कोई साधन ही नही है। इसी कारण ज्ञानी देव इन्द्रादिक होते है वे ऐसे प्रसगोमे जहा महापुरुष कर्मोको काटकर निर्वाण प्राप्त करते है उन प्रसगोमे वे अपने आपके भवपर बडा पछतावा करते है कि हाय मेरा क्या भव है जिस भवमे सयम भी धारण नही किया जा सकता है ! ऐसे सुखोकी ठाठ हो तो उससे लाभ क्या ? यही बात इन मनुष्योको भी विचारना चाहिए। अगर सुखके साधन मिल गए, कुछ अधिक धन वैभव बढ गया, कुछ ढग के महल बन गए तो इससे इस आत्माको लाभ क्या मिला ? यह तो कुछ दिन यहाका निवासी है। पीछे तो इसे सब कुछ छोडकर जाना ही होगा। उन स्वर्गोमे नाना रत्नो जडित, नाना वर्णोसे चित्रित अनेक खण्ड वाले प्रासाद है और उनकी रचनाएँ भी अपूर्व सुन्दरताको पोषने वाली है।

प्राकारपरिखावप्रगोपुरोत्तुङ्गतोरणैः ।
चैत्यद्रुममुरागारैर्नगर्यो रत्नराजिताः ॥१७७६॥

स्वर्गलोकमे उत्तम भवन, चैत्यालय आदिकी रचनायें—उन स्वर्गोमे नगरियोकी भी रचनायें है, जहाँ देव लोग कुछ निकट निकट रहा करते है वही वहाँकी नगरी है। उनमे कोट, खाई बडे दरवाजे आदिक जो जो कुछ नगरीकी शोभाकी चीजे है वे सब रत्नमयी शोभाको दे रही है। अपने महलके आरामके साधनोके अतिरिक्त वहाँ चैत्य वृक्ष और देवोके मदिर भी प्राय. भवनोके साथ लगे हुए है। जीवकी शोभा धर्मके लगावसे बढती है। कोई मनुष्य ८,,

धर्मका उसका कोई लगाव न हो, अन्दरमे भी लगाव नही, विषय कषायोका रुचिया है, दूसरे जीवोको कुछ गिनता नही है, अपने ही स्वार्थकी साधनामे जुटा रहता है ऐसा मनुष्य लोगोको प्रिय नही है और स्वयका जीवन उसका भाररूप है। जिसका जीवन धर्मकी लगनसे युक्त है, समयपर लगन करता है, भगवद्भक्ति करता है, आत्मचिन्तन करता है तो उसके शेष समयकी कुछ प्रवृत्तियोसे जो विषाद उत्पन्न होता है वह सब नष्ट हो जाता है। बहुत बहुत भूलकर भी एक घटा दो घटा कोई आत्माकी सुधके लिए, चर्चाके लिए समय लगाया जाय तो बहुतसी भूल भटकनाये दूर हो जाती है और एक शान्तिका मार्ग मिलता है। तो स्वर्गोमे भी भवनोके साथ-साथ चैत्यवृक्ष और देवोके मदिर रत्नमयी मौजूद है, जहाँ समय-समयपर देव लोग जाकर जिनेन्द्र भक्ति करते है और अपने आत्माकी कुछ सुधि लेते है। वहाँपर भी एक धर्मका प्रसग रहता है। जसे यहाँ लोग शास्त्रसभा करते है ऐसे ही स्वर्गमे भी सौधर्मइन्द्र शास्त्रसभा करते है। मध्यलोकमे कोई धर्मात्मा पुरुष हो तो उसकी वे सौधर्मइन्द्र प्रशसा करते है। कितने ही देवतावोको यह जिज्ञासा हो जाती कि चलो उस साधर्मी व्यक्तिके पास चलकर उसका परीक्षण करे। सो वे देव उस साधर्मी व्यक्तिका परीक्षण करने आते है जिसकी प्रशसा सौधर्म इन्द्रने की थी। तो वहाँ धर्मका साधन भी है, यह तो ठीक है क्योकि पुण्यका एक विशेष फल है, ज्ञानी देव वहाँपर भी धर्मकी चर्चा किया करते है।

इन्द्रायुधश्रिय धत्ते यत्र नित्य नभस्तलम्।
हर्म्याग्रलग्नमाणिक्यमयूखैः कर्बुरीकृतम् ॥१७७७॥

स्वर्गलोकमे नभस्तलकी मनोहारिता—स्वर्गोमे आकाश महलके अग्रभागमे लगे हुए रत्नोकी किरणोसे जो वहाँ एक विचित्र वर्ण वाला वातावरण बनता है उससे एक इन्द्रधनुष जैसी नित्य शोभा रहती है। यहाँ ही अनेक ऐसी चित्रण और कलापूर्ण कारीगरी होती है कि जहाँ नाना प्रकारकी शोभाये होने लगती है। तो वहाँ स्वर्गोमे तो बहुत ऊचे ऊचे प्राकृतिक महल है और उनमे बहुतसे मणि अपने आप अनादिसे ऐसे लगे होते है कि उनसे बहुत विचित्र शोभा होती है। ये सब पुण्यके ही फल है कि शोभायुक्त महलोमे रहना, बडे ऊचे प्रासादोमे रहना और जहाँ समागम भी बहुत पुण्यवानोका मिले, जहाँ वातावरण भी कुछ शान्तिका और सुखका मिले ऐसे स्थान पुण्यसे प्राप्त होते है। तो स्वर्गोमे ये ही पुण्यके बहुत से साधन जुटे रहते है। रहते है वहा देव, पर ज्ञानी देवोका अपने आत्माकी ओर ध्यान रहता है। वे स्थिर नही हो पाते, उनमे वीतरागता नही जग पाती, इस ही प्रकार कर्मोका उदय है लेकिन सम्यग्दर्शनका प्रताप सर्वत्र फलित है। जैसे नरकोमे नारकी जीव सम्यक्त्वके प्रतापसे वेदना नही सहते इसी प्रकार इन्द्रादिक इन विषय सुखोमे आत्मीयताका अनुभव नही करते। यही आत्मरक्षा है कि बाह्यमे दृष्टि न फसे, यथार्थ मार्ग सत्य बना रहे, यही अपने

आपकी रक्षा है।

सप्तभिस्त्रिदशानीकैर्विमानैरङ्गनान्वितैः ।
कल्पद्रुमगिरीन्द्रेषु रमन्ते विबुधेश्वराः ॥१७७८॥

स्वर्गलोकमे देवेश्वरोकी महती शोभा—स्वर्गोमे इन्द्र ७ प्रकारकी देव सेनावोंसे सहित होकर क्रीडा वनोमे आनन्द करते है। यद्यपि स्वर्गोके देव और इन्द्रोको किसी प्रकारके रक्षा के साधनोकी जरूरत नही है क्योकि उनकी असमयमे मृत्यु नही होती। फिर भी पुण्यका फल तो फलित होता ही है। शोभारूपमे वैभवरूपमे इन्द्रके साथ ७ प्रकारकी देवसेना रहती है। उन देव सेनाओसे सहित और देवागनावोंसे युक्त वे विहार करते हैं, कल्पवृक्षोमे और क्रीडा-वनोमे यथेष्ट रमण करते है। ऐसा सुख भोगते हुएमे सागरो पर्यन्तकी आयु उन्हे पता नही पडती कि कैसे व्यतीत हो जाती है ? देवतावोमे यदि कोई दु खकी बात आती है तो केवल उस प्रसगमे आती है कि जब उनका मरणकाल निकट होता है। देवोंके मरणसे ६ महीना पहिले उनके शरीरके बने हुए जो एक मालाके रूप अग है वे मुर्भा जाते है और उस मालाके मुर्झा जानेसे वे यह निश्चय करते है कि हमारी मृत्युका अब समय आया है। जैसे यहाके मनुष्योको कोई यदि बता दे कि तुम्हारा मरण दो चार महीनेमे होने वाला है तो उसकी बडी दुर्दशा हो जाती है, ऐसे ही जिन देवोको यह विदित हो गया कि अब मेरा मरण काल निकट है तो मरणका समय निकट जाननेपर ये देव बडा सक्लेश करते है। तो दुःखकी बात उन स्वर्गोमे एक यही है कि मरण काल निकट आनेपर चार-छः महीना पहिलेसे वे बडा सक्लेश मानते है, बाकी और समयमे वे यथेष्ट आनन्द भोगते है। सस्थानविचय धर्मध्यानमे ज्ञानी पुरुष लोकरचनाका विचार कर रहा है और पुण्यफलके रूपमे स्वर्गोकी रचनाका चिन्तन कर रहा है। तो जैसे पापफलको यह ज्ञानी जीव एक औपाधिक चीज समझता है इसी प्रकार पुण्यफलको यह ज्ञानी जीव एक औपाधिक चीज समझता है। तो वहाँ इन्द्र ७ प्रकारकी सेना सहित वनोमे और यत्र तत्र विहार करते है। वह सेना समुदाय केवल उनके एक वैभवके लिए है। कोई उनके रक्षाके प्रसगकी बात नही है। वे ७ सेनाएँ कौन कौन है, उसे बता रहे है।

हस्त्यश्वरथपादातवृषगन्धर्वनर्तकि ।
सप्तानीकानि सन्त्यस्य प्रत्येक च महत्तरम् ॥१७७९॥

स्वर्गलोकमे देवेन्द्रकी सप्तसेनाका प्रतिपादन—सेना मायने समूह। पहिली सेना है हस्ती। हाथीके समूह अथवा हाथी और हाथीके चलाने वाले देव। इनके समूहका नाम हस्ती सेना है। ये हस्ती तिर्यञ्च जातिके नही है। स्वर्गोमे तो देव है और स्थावर जीव है, और की सम्भावना नही है, जैसे कि नरकमे भी नारकी है और स्थावर जीव है। नरकमे तो देव

भी विहार कर जाते है और स्वर्गोमे तो नारकियोका विहार हो नही पाता, वहाँ तो दे मिलेंगे व स्थावर जीव मिलेंगे। तो यह देवोकी ही ऐसी विक्रिया है कि वे अपना हाथीरू रूप रख लेते हैं। जैसे यहाँपर हाथी सेना अलग होती है इसी प्रकार वे भी अपनी हाथी सेन के रूपमे अपना कर्मफल भोगते हैं। दूसरी सेना है घोडोकी सेना, तीसरी है रथसेना। ये दे अपनी जिन्दगीभर वेकार ही तो हैं। न कोई रोजिगार करना पडे, न कोई दूकान करना पडे न कोई काम करना पडे। उनका जब सारा समय वेकार है तो बैठे बैठे वे करे क्या ? उनक कर्मफल इसी तरहसे अनुभवमे होता है। चौथी सेना है पयादेकी सेना। जैसे यहाँ शस्त्र सज्जित सिपाही होते है इसी तरह शस्त्र सज्जित देव होते हैं वह है, पयादेकी सेना। ५वीं सेना है वृषभसेना। जैसे यहाके मनुष्य भी तो जान जानकर इच्छा कर करके कभी शेरका, कभी रीछका व कभी किसी चीजका चित्रण वनाते है, कभी तो अपनी इच्छासे बनते हैं और कभी किसी दूसरेकी आज्ञासे बनते है इसी प्रकार वे देव भी विक्रियासे कभी अपनी इच्छासे व कभी किसी दूसरेकी आज्ञासे कभी कुछ बनते हैं, कभी कुछ बनते है। देखो किसीको सभी सुख नही मिलते। कुछ न कुछ दु खकी बात भी रहती है। उन देवोको सभी सुख मिले, पर साथ ही साथ दुःखकी भी कुछ बाते है। स्वरूपदृष्टिसे देखो तो सुख तो तब माना जाय जब कि जिस चीजकी इच्छा हुई वह चीज तुरन्त प्राप्त हो जाय, मगर ऐसा कभी भी नही हो सकता कि जिस काल इच्छा हुई उसी काल उस इच्छाकी पूर्ति हो जाय। एक तो यह बात है कि जब किसी चीजकी इच्छा होती है तो वह चीज नही प्राप्त होती, और जब वह चीज मौजूद है तब उस चीजकी इच्छा नही होती। तो इच्छाके समय चीज नही और चीजके समयमे उस प्रकारकी इच्छा नही, तो सुख क्या ? जब वहुत बढिया भोजनकी चीजें भी सामने रखी हो तो उसके भी भीतर अनेक इच्छाएँ जगती रहती है। अब अमुक चीज खाना है, अब अमुक चीज खाना है ? तो जिस समय इच्छा की उस समय वह चीज मुहमे नही है। तो सूक्ष्मदृष्टिसे जिस जातिकी इच्छा है उस जातिका साधन नही है और साधन है तो इच्छा नही, इसलिए सुख कही है नहीं, फिर भी अपना कल्पनासे अपने ढगसे जीव सुख मानता है। तो स्वर्गोमे बताया है कि सुखके साधन बहुत हैं। छठी सेना है गधर्व सेना। जैसे यहाँ भी बाजे रहते है सेनामे भी, जिन बाजोके शब्दोको सुनकर लोगोका जोश बढे, इसी प्रकार यह गन्धर्व सेना तो अपना आनन्द पानेके लिए भी वहाँ बनी हुई है। तो ये देवता लोग इन्द्रको प्रसन्न किया करते है। क्यो प्रसन्न किया करते है ? कुछ यद्यपि ऐसी अटक उनके खास नही है कि ये देव इन्द्रको प्रसन्न करें, पर उनका कुछ कर्मफल ही ऐसा है कि वे स्वतत्र भी नहीं रह सकते, वे उस इन्द्रको खुश करके ही खुश रहते है। तो वे देव देविया नाना प्रकारके गीत गा गाकर इन्द्रको प्रसन्न किया करते है। ७वी सेना है नर्तकी सेना। नृत्यकलामे प्रवीण

देवागनाएँ होती है। वे इस बातमें अपनी चतुराई और अपना भाग्य समझती है कि मेरी चेष्टा देखकर यह इन्द्र प्रसन्न हो जाय। जैसे यहाँ अनेक लोग इस ही प्रयत्नमे रहा करते हैं कि लोग मुझपर खुश हो जाये। चाहे कोई चीज न चाहे। बडे बडे लोग भी ऐसा चाहते है कि नगरके लोग सब मुझसे खुश हो जायें, तो कर्मफल इस ही रूपमे वहाँ प्रकट होता है कि वे सभी देव देविया इन्द्रको प्रसन्न करनेकी मनमे चाह रखते है। इन्द्र प्रसन्न हो जाय तो उसमे वे अपना भाग्य समझते है। तो यह ७ प्रकारकी सेना होती है। ये सभी सेनाये एकसे एक बढकर हैं।

> शृङ्गारसारसम्पूर्णा लावण्यवनदीर्घिका ।
> पीतस्तनभराक्रान्ताः पूर्णचन्द्रनिभाननाः ॥ ॥१७८०॥
> विनीता. कामरूपिण्यो महर्द्धिमहिमान्विता ।
> हावभावविलासाढ्या नितम्बभरमन्थरा ॥१७८१॥
> मन्ये शृङ्गारसर्वस्वमेकीकृत्य विनिर्मिता ।
> स्वर्गवासविलासिन्यः सन्ति मूर्ता इव श्रिय. ॥१७८२॥

स्वर्गोमे देवोकी देवियोकी शोभाका चित्रण—उन स्वगोमे देवोकी, इन्द्रोकी वे देवागनाये कैसी है, उनका वर्णन इन तीन श्लोकोमे है। वे देवागनाये मानो शृङ्गारका सार है। स्वय ऐसी रूपवान होती है कि स्वय ही उनका रूप शृङ्गार है और सुन्दरता रूप जलकी बावडी है। जैसे बावडीमे जल भरा हुआ हो इसी प्रकार उनके देहमे सुन्दरता बसी होती है। देखो सुन्दरता क्या चीज है ? एक मोही जनोकी कल्पना, उनके मनका एक भाव। जैसे यहाँ मनुष्यलोकमे कुछ नजर करके देखो वही शरीर जो अत्यन्त रूपवान है। रूपवानके मायने कल्पनानुसार गोर रग, ठीक ढाचा। उस ही शरीर को रूपवानकी दृष्टिसे देखते है तो उसमे अद्भुत रूप नजर आता है। जब ऐसी दृष्टि करते है कि है क्या तो उसमे फिर सुन्दरता नही जचती है। कहो कृष्ण रग वाले से भी उस गौर शरीरमे मलिनता हो। जरा उस शरीरके भीतर क्या भरा है ? इस पर दृष्टि दें वही मल, मूत्र, खून, पीप, मास, मज्जा आदि सारी गदी चीजें भरी है, इस प्रकारकी दृष्टि देने पर फिर सुन्दरता नजर नही आती स्वर्गोमे तो उन देव देवियोका वैक्रियक शरीर है। सुन्दरता भी वहा एक कल्पनासे बढ जाती है और स्वरूपदृष्टि करे तो वहा फिर सुन्दरता नही ठहरती है। एक पदार्थ है, ज्ञेय हो जाता है। जैसा है वैसा जाननेमे आता है। तो स्वर्गोमे ऐसे विवेकी देवोकी सख्या अत्यन्त कम है। तो वहा सुन्दरता सभी देवोको जचती है। वे देवांगनाये सुन्दरतारूप जलकी बावडी हैं। पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान उन देवागनाओका मुख है, वे विनयशील है। देखिये विनयसे ही सुन्दरता बढती है। कोई पुरुष कटुक बोलने वाला हो, कोई खोटी प्रवृत्ति करता है तो

भी विहार कर जाते है और स्वर्गोंमे तो नारकियोंका विहार हो नही पाता, वहाँ तो दे मिलेंगे व स्थावर जीव मिलेंगे। तो यह देवोंकी ही ऐसी विक्रिया है कि वे अपना हाथीक रूप रख लेते है। जैसे यहाँपर हाथी सेना अलग होती है उसी प्रकार वे भी अपनी हाथी सेन के रूपमे अपना कर्मफल भोगते है। दूसरी सेना है घोडोकी सेना, तीसरी है रथसेना। ये देव अपनी जिन्दगीभर बेकार ही तो है। न कोई रोजिगार करना पडे, न कोई दूकान करना पडे, न कोई काम करना पडे। उनका जब सारा समय बेकार है तो बैठे बैठे वे करे क्या? उनका कर्मफल इसी तरहसे अनुभवमे होता है। चौथी सेना है पयादेकी सेना। जैसे यहाँ शस्त्र सज्जित सिपाही होते है उसी तरह शस्त्र सज्जित देव होते हैं वह है, पयादेकी सेना। ५वी सेना है वृषभसेना। जैसे यहाके मनुष्य भी तो जान जानकर इच्छा कर करके कभी शेरका, कभी रीछका व कभी किसी चीजका चित्रण बनाते है, कभी तो अपनी इच्छासे बनते है और कभी किसी दूसरेकी आज्ञासे बनते है इसी प्रकार वे देव भी विक्रियासे कभी अपनी इच्छासे व कभी किसी दूसरेकी आज्ञासे कभी कुछ बनते है, कभी कुछ बनते है। देखो किसीको सभी सुख नही मिलते। कुछ न कुछ दु खकी बात भी रहती है। उन देवोको सभी सुख मिले, पर साथ ही साथ दुःखकी भी कुछ बातें है। स्वरूपदृष्टिसे देखो तो सुख तो तब माना जाय जब कि जिस चीजकी इच्छा हुई वह चीज तुरन्त प्राप्त हो जाय, मगर ऐसा कभी भी नही हो सकता कि जिस काल इच्छा हुई उसी काल उस इच्छाकी पूर्ति हो जाय। एक तो यह बात है कि जब किसी चीजकी इच्छा होती है तो वह चीज नही प्राप्त होती, और जब वह चीज मौजूद है तब उस चीजकी इच्छा नही होती। तो इच्छाके समय चीज नही और चीजके समयमे उस प्रकारकी इच्छा नही, तो सुख क्या? जब बहुत बढिया भोजनकी चीजें भी सामने रखी हो तो उसके भी भीतर अनेक इच्छाएँ जगती रहती है। अब अमुक चीज खाना है, अब अमुक चीज खाना है? तो जिस समय इच्छा की उस समय वह चीज मुहमे नही है। तो सूक्ष्मदृष्टिसे जिस जातिकी इच्छा है उस जातिका साधन नही है और साधन है तो इच्छा नही, इसलिए सुख कही है नहीं, फिर भी अपना कल्पनासे अपने ढगसे जीव सुख मानता है। तो स्वर्गोंमे बताया है कि सुखके साधन बहुत है। छठी सेना है गधर्व सेना। जैसे यहाँ भी बाजे रहते है सेनामे भी, जिन बाजोके शब्दोको सुनकर लोगोका जोश बढे, इसी प्रकार यह गन्धर्व सेना तो अपना आनन्द पानेके लिए भी वहाँ बनी हुई है। तो ये देवता लोग इन्द्रको प्रसन्न किया करते है। क्यो प्रसन्न किया करते है? कुछ यद्यपि ऐसी अटक उनके खास नही है कि ये देव इन्द्रको प्रसन्न करें, पर उनका कुछ कर्मफल ही ऐसा है कि वे स्वतत्र भी नहीं रह सकते, वे उस इन्द्रको खुश करके ही खुश रहते है। तो वे देव देविया नाना प्रकारके गीत गा गाकर इन्द्रको प्रसन्न किया करते है। ७वी सेना है नर्तकी सेना। नृत्यकलामे प्रवीण

देवागनाएँ होती है। वे इस बातमे अपनी चतुराई और अपना भाग्य समझती है कि मेरी चेष्टा देखकर यह इन्द्र प्रसन्न हो जाय। जैसे यहाँ अनेक लोग इस ही प्रयत्नमे रहा करते है कि लोग मुझपर खुश हो जाये। चाहे कोई चीज न चाहे। बडे बडे लोग भी ऐसा चाहते है कि नगरके लोग सब मुझसे खुश हो जाये, तो कर्मफल इस ही रूपमे वहाँ प्रकट होता है कि वे सभी देव देविया इन्द्रको प्रसन्न करनेकी मनमे चाह रखते है। इन्द्र प्रसन्न हो जाय तो उसमे वे अपना भाग्य समझते है। तो यह ७ प्रकारकी सेना होती है। ये सभी सेनाये एकसे एक बढकर है।

शृङ्गारसारसम्पूर्णा लावण्यवनदीर्घिका ।
पीनस्तनभराक्रान्ताः पूर्णचन्द्रनिभाननाः ।। ।।१७८०।।
विनीता. कामरूपिण्यो महर्द्धिमहिमान्विता ।
हावभावविलासाढ्या नितम्बभरमन्थरा ।।१७८१।।
मन्ये शृङ्गारसर्वस्वमेकीकृत्य विनिर्मिता ।
स्वर्गवासविलासिन्यः सन्ति मूर्ता इव श्रिय. ।।१७८२।।

स्वर्गोमे देवोकी देवियोकी शोभाका चित्रण—उन स्वर्गोमे देवोकी, इन्द्रोकी वे देवागनाये कैसी हैं, उनका वर्णन इन तीन श्लोकोमे है। वे देवागनायें मानो शृङ्गारका सार है। स्वय ऐसी रूपवान होती है कि स्वय ही उनका रूप शृङ्गार है और सुन्दरता रूप जलकी बावडी है। जैसे बावडीमे जल भरा हुआ हो इसी प्रकार उनके देहमे सुन्दरता बसी होती है। देखो सुन्दरता क्या चीज है ? एक मोही जनोकी कल्पना, उनके मनका एक भाव। जैसे यहाँ मनुष्यलोकमे कुछ नजर करके देखो वही शरीर जो अत्यन्त रूपवान है। रूपवानके मायने कल्पनानुसार गौर रग, ठीक ढाचा ! उस ही शरीर को रूपवानकी दृष्टिसे देखते है तो उसमे अद्भुत रूप नजर आता है। जब ऐसी दृष्टि करते है कि है क्या तो उसमे फिर सुन्दरता नही जचती है। कहो कृष्ण रग वाले से भी उस गौर शरीरमे मलिनता हो। जरा उस शरीरके भीतर क्या भरा है ? इस पर दृष्टि दें वही मल, मूत्र, खून, पीप, मास, मज्जा आदि सारी गदी चीजें भरी है, इस प्रकारकी दृष्टि देने पर फिर सुन्दरता नजर नही आती स्वर्गोमे तो उन देव देवियोका वैक्रियक शरीर है। सुन्दरता भी वहा एक कल्पनासे बढ जाती है और स्वरूपदृष्टि करे तो वहा फिर सुन्दरता नही ठहरती है। एक पदार्थ है, ज्ञेय हो जाता है। जैसा है वैसा जाननेमे आता है। तो स्वर्गोमे ऐसे विवेकी देवोकी सख्या अत्यन्त कम है। तो वहा सुन्दरता सभी देवोको जचती है। वे देवागनाये सुन्दरतारूप जलकी बावडी है। पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान उन देवागनाओका मुख है, वे विनयशील है। देखिये विनयसे ही सुन्दरता बढती है। कोई पुरुष कटुक बोलने वाला हो, कोई खोटी प्रवृत्ति करता है तो

कितनी ही सुन्दरता उसमे हो, पर वह सुन्दर नही लगता । वे देवागनाए अति विनयशील है, चतुर है, सुन्दर है, महाऋद्धिकी शोभा सहित हे, मुखके हाव भाव चित्तविकार विलास-भ्रूविकार आदिसे भरी हुई है और विशेष क्या कहे ? वे आचार्य महाराज उत्प्रेच्छा अलकार मे यह बतला रहे है कि वे देवागनायें मानो समस्त शृङ्गार इकट्ठा करके बताया गया है कि जो मूर्तिमान लक्ष्मीकी तरह शोभा देती है । ऐसी विशिष्ट रूपवान देवागनायें उन देवोको प्राप्त होती है और वे देव ऐसी देवागनावोके साथ सुख ही सुखमे रहकर सागरो पर्यन्तका समय ऐसा विता देते है कि कुछ पता ही नही पडता । वे अन्तमे मरण करके मध्यलोकमे गिरते है और पशु पक्षी आदि बनते है । इस प्रकार पुण्यफलके वर्णनमे स्वर्गोका वर्णन किया जा रहा है, पर ज्ञानी जीव इस पुण्य फलको औपाधिक और हेय ही समझते है ।

गीतवादित्रविद्यासु शृङ्गाररसभूमिषु ।
परिरम्भादिमर्वेषु स्त्रीणा दाक्ष्य स्वभावतः ।।१७८३।।

स्त्रियोकी प्रकृत्या गीतादिचतुरता—सासारिक सुखोमे गीत नृत्य वादितकी प्रधानता है । जहाँ कोई सुखमे हो उसे फिर ये गीत वाजा नृत्य आदिकका मौज सुहाता है । स्वर्ग एक पुण्यका फल है तो वहाँ गीत नृत्य आदिक विद्यावोमे वे देवाँगनाएँ अत्यन्त प्रवीण है । उनकी चतुराईका वर्णन करते हुए आचार्य देव यहाँ 'यह कह रहे है कि गीत नृत्य व बाजे आदिमे स्त्रियोमे स्वभावसे प्रवीणता होती है, और फिर वहाँ कुछ विशेष ऋद्धिया होती है, कुछ चतुराइया विशेष होती है तो देवागनाओमे गीत बाजे व नृत्य आदिक विद्यावोमे प्रवीणता अत्यन्त अधिक है । ऐसे उन गायन नृत्य और सगीतके सुन्दर वातावरणमे वे देव और इन्द्र अपना पुण्यफल भोगते है । यह सब वर्णन सुनते हुए यह आत्माका सुध ध्यानसे न अलग करना कि ये सारी बातें आत्माके स्वभावसे विपरीत है । आत्माका आनन्द तो आत्मस्वभाव मे जितनी दृष्टि रहे अपने आत्माके निकट अपने उपयोगको जितना बसायें उतना ही आत्मीय आनन्द है । शेष तो सब विडम्बनाये है, कल्पित मौज हैं, उस मौजके बाद दुःख भोगना पडता है । लेकिन पुण्यका इस प्रकारका फल ही है कि वैषयिक सुखोके अनुभवरूपमे वह फल आता है ।

सर्वावयवसम्पूर्णा दिव्यलक्षणलक्षिता ।
अनङ्गप्रतिमा धीरा प्रसन्नप्राशुविग्रहा. ।।१७८४।।
हारकुण्डलकेयूरकिरीटाङ्गदभूषिता ।
मन्दारमालतीगन्धा अणिमादिगुणान्विता ।।१७८५।।
प्रसन्नामलपूर्णेन्दुकान्ता कान्ताजनप्रिया ।
शक्तित्रयगुणोपेता सत्त्वशीलावलम्बिन. ।।१७८६।।

विज्ञानविनयोद्दामप्रीतिप्रसरसम्भृताः ।
निसर्गसुभगा सर्वे भवन्ति त्रिदिवौकसः ॥१७८७॥

देवोके देहकी निसर्गसुभगता—उन स्वर्गोमे देव किस प्रकारके होते है, उनका कुछ यहाँ वर्णन चल रहा है । वे समस्त देव समस्त अवयवोमे सम्पूर्ण और सुडौल है । उन देवो के समचतुरस्रसंस्थानका उदय है । समचतुरस्रसंस्थानके नामकर्मके उदयसे शरीर पूर्ण सुडौल रहता है, उनकी नाभि शरीरके ठीक मध्यस्थानमे होती है, उस नाभिसे ऊपर तथा नीचे दोनो ओरकी लम्बाई बराबर होती है । चाहे शरीर छोटा हो, चाहे बडा हो, सभी देवोका शरीर सुडोल होता है । उनका जो मूल शरीर है वह तो वही रहा करता है, किन्तु उनका जो वैक्रियक शरीर है वह आसपास कुछ विचरण भी करता है । तो वह मूल शरीर अत्यन्त सुडौल है, दिव्य मनोहर लक्षणसे सहित है । मनुष्योके शरीरसे उनके शरीरमे विलक्षणता है, वही उनमे दिव्यता है । उस वैक्रियक शरीरमे न तो बुढापा है, न पसीना है और न थकावट आदिक है । यही शरीरके दिव्य लक्षण है । वह कामदेवके समान सुन्दर है । कामदेव कोई देव नही है जिसका नाम कामदेव हो, और कामदेवकी एक पदवी है । कामदेव पदवीके धारी पुरुष वे होते है जो पूर्ण सुन्दर होते है । भाव साहित्यमे तो काम नाम है मनोजका । उस कामभावमे भावुकको सुन्दरताके प्रति आकर्षण होता है, इसलिए साहित्यमे कामदेवका रूपक देवताके समान खीचा है । तो वे समस्त देव कामदेवके समान सुन्दर है, धीर है, क्षोभरहित है व प्रसन्न है और विस्तीर्ण शरीर वाले है । वहाँ मनुष्यो जैसा विशाद और शोकका स्थान नही है । वे सदा दिव्य वैषयिक सुखोमे रत रहते, चिन्तावोसे वे रहित है, अतएव उनका हृदय भी प्रसन्न रहता है । उन देवोका शरीर हार, कुडल, केयूर, किरीट, अगद आदि आभूषणोसे सहित है । स्वयं वे सुन्दर है और फिर आभूषणोके शृ गारसे रहते है । मन्दार, मालती आदि पुष्पोके समान उन देवोके अग सुगधित है । उन देवोंके पुण्योदयकी इतनी विशेषता है कि उनका शरीर स्वय सुगधित है । जैसे कि बहुतसे सुगधित पुष्प सुगधको प्रदान करते है ऐसे ही उन देवोके शरीर भी स्वत सुगधित है । वे देव अणिमा महिमादि अष्ट ऋद्धियोसे सिद्ध है । जिनमे ऐसी शक्ति है कि विक्रियासे अपना छोटेसे छोटा शरीर बना दे । कही इतना छोटा शरीर बना दे कि जो देखने वालोको आश्चर्यके योग्य हो । अपने शरीर को कही वे इतना बडा बना दे कि दिखने वाले शरीरोसे कई गुना बडा मालूम पडे । कही शरीर तो बहुत बडा बनाये और वजन उसका बहुत ही कम रहे, और कही शरीर देखनेमे बहुत ही छोटा बना दें पर उसका भार इतना अधिक कर दे कि वह किसीसे उठाया भी न जा सके । तो ऐसी अनेक सिद्धिया होती है । उन सिद्धियो करके वे देव सहित है ।

देवोकी विज्ञानादि कुशलता व कान्ताप्रियता—वे देव कान्ताजनोको प्रिय है । जैसे यहाँ

मनुष्योमे कोई कोई मनुष्य अपनी स्त्रीसे अप्रिय भी हो जाते है किसी आचरणसे या रूप आदिकसे या प्रवृत्तिसे वे सुहाते नही है, किन्तु वहा सभी देव अपनी देवागनाओको प्रिय होते हैं, क्योकि उनके योग्य उनके गुण भी है, शारीरिक कलाये भी है। उन देवोमे तीन गुणोकी अधिकता है—प्रभुत्व, मत्र और उत्साह। प्रभुता सामर्थ्य भी उनमे विशेष है, जिस ओर चले, जिन सासारिक कार्योको वे कर चले तो उनमे उनकी दक्षता है। तभी तो देखिये कि जब समवशरणकी रचना करनेको तैयार होते है तो अन्तर्मुहूर्तमे ही समवशरणकी रचना कर देते है। इतनी बडी रचना मनुष्योसे करायी जाय तो मनुष्य कई वर्षोमे भी वैसी रचना न कर सकें। ऐसी अद्भुत समवशरणकी रचना वे क्षणमात्रमे बना देते हैं। उनमे ऐसी ऋद्धियाँ हैं। कुछ तो अपने वैक्रियक शरीरसे रूप धारण कर लेते है, कुछ यहाँ वहाँके अमूल्य पाषाण रत्न आदिकसे कारीगरीकी कला द्वारा बहुत ही जल्दी तैयार कर देते हैं। तो प्रभुता उनमे बहुत है, उनमे विचारशक्ति है, मत्र शक्ति है और उत्साह विशेष है। वे बडे व्यवहारी है और बहुत उत्तम स्वभावका आश्रय रखने वाले है, जिनमे परस्परमे बहुत प्रीति बसी होती है। जैसे नारकियोंमे परस्परमे द्वेषकी पराकाष्ठा रहती है ऐसे ही इन देवोमे परस्परमे प्रेम व्यवहारकी पराकाष्ठा होती है। तो प्रीतिसे भरे हुए ऐसे स्वर्गोमे सभी देव शुभ आचरण वाले होते है जहाँ कि परस्परमे किसी भी प्रकारका कलह और सक्लेश न हो और सुखोंके भोगनेमे उनको बाधा न आये, ऐसे वे देव सब पुण्यफल वाले होते है।

न तत्र दुःखितो दीनो वृद्धो रोगी गुणच्युत ।
विकलाङ्गो गतश्रीक स्वर्गलोके विलोक्यते ॥१७८८॥

स्वर्गलोकमे दुखित दीनादिकोका अभाव—सस्थानविचय धर्मध्यान करने वाला यह ज्ञानी पुरुष लोककी रचनाका चिन्तन कर रहा है। अधोलोक और मध्यलोकका चिन्तन करने के बाद ऊर्ध्वलोकमे स्वर्गोकी बात निरख रहा है कि वहा कोई भी देव दुखी नही देखे जाते है। उनका शरीर है ऐसा दिव्य है कि जो रोग क्षुधा तृषा आदिकसे रहित है। यहा तक कि पसीनाका व घृणास्पद किसी भी चीजका वहा लगार नहीं है। सभी प्रकारके मलोसे रहित उनका शरीर है, तो दुखका वहा कोई अवकाश ही नही है। वहा कोई भी देव दुखी नजर नही आता, न कोई दीन नजर आता। जैसे मनुष्योमे भिक्षा मागने वाले कुछ दीन भिखारी फिरा करते है उस तरहसे देव लोग नही फिरा करते। हा, इतनी सी बात तो वहा पुण्य पापके अनुसार है कि कोई देव किसी देवका सेवक बनकर रह रहा है, कोई किसीको प्रसन्न करनेमे अपना बडप्पन समझता है। तो कुछ मानसिक दुख तो परस्परके व्यवहारका है पर दीन हीन भिखारी वहा कोई न मिलेगा। आवश्यकता ही नही है किसीको कुछ मागनेकी कोई आवश्यकता हो, किसी चीजकी पूर्ति न हो तब तो किसीसे दीनता की जाय। स्वर्गोमे

कोई दीन ही न मिलेगा, कोई वृद्ध न मिलेगा। वहाँ उत्पन्न होते ही वह देव अन्तर्मुहूर्तमे पूर्ण शरीर वाला बन जाता है। जैसे यहाँ मनुष्योमे पूर्ण शरीर वाला मनुष्य बननेमे १०-१५ वर्ष लग जाते है ऐसे उन देवोको पूर्ण शरीरी बननेमे समय नही लगता। वे तो एक मिनटमे ही पूर्ण शरीरी बन जाते है, वे फिर सारी जिन्दगी भर युवा रहते है, वृद्ध कभी नही होते। मरणकाल जब आता है तो ६ महीना पहिले उनके शरीरमे कुछ विचित्रता होने लगती है, उनकी माला मुर्झा जाती है तब उन्हे पता पडता है कि अब हमारी मृत्यु निकट आ गयी। वे वृद्ध नही नजर आयेगे। कोई देव गुणरहित नही होता उनमे अनेक प्रकारकी चतुराइयाँ होती है। देवोमे कोई विकल अग वाले भी नही है। किसीका हाथ कम हो, किसीका पैर कम हो अथवा कभी कोई हाथ पैर टूट जाय, लगडे लूले हो जाये ऐसी स्थिति देवोमे नही होती। वे समस्त देव सम्पूर्ण अग वाले होते है और कान्ति सम्पन्न होते है।

सामान्यमासानिकामात्यलोकपालप्रकीर्णका।
मित्राद्यभिमतस्तेषा पार्श्ववर्ती परिग्रह. ॥१७८६॥

स्वर्गोमे जो परस्परका समागम है वह भी अद्भुत और प्रीति सुखका देने वाला है। सभाके देव, सदस्य कहो, वे सभी उत्तम विचार वाले है, और किसी भी समस्याका मत्रणा करनेमे उनकी बुद्धि पैनी रहती है। वहाँ सामानिक देव तो इन्द्रके तुल्य ही वैभव वाले है, केवल एक आज्ञारहित है। वे देव भी उच्च विचारके है और प्रीति व्यवहार सुख देने वाले समस्त वाणी व्यवहारके करने वाले है। वहाँ अमात्यादिक देव सो मत्रणाका काम करते है, जो इन्द्रके साथ रहा करते है वे त्रायस्त्रिश देव भी बडी गम्भीर बुद्धि वाले है। प्रथम तो देवो को अवधिज्ञान होता है तो वे अवधिज्ञानसे सारी बातोका ज्ञान कर लेते है। कोई बात युक्तिसे विचारना होती है तो उसका भी विचार कर लेते है, ऐसे उन स्वर्गोमे देव पाये जाते है। वहाँ लोकपाल देव है जिनकी उच्चता और गम्भीरताके सम्बधमे विशेष क्या कहे ? इतना ही कहना पर्याप्त है कि वे अपनी शुद्ध दृष्टि न्याय दृष्टि, प्रजाजनोमे समता परिणामसे व्यवहार रखनेकी दृष्टि इतनी विशुद्ध रहती है कि वे एक भवावतारी होते है। एक मनुष्यका भव पाकर मोक्ष जाने वाले होते है। प्रकीर्णक देव अर्थात् सभी देव और उनके मित्रादिक सभी इष्ट परिवार उनके बहुत अधिक अभिमत है, इन्द्रके बहुत अनुकूल रहते है। इन्द्र भी सदा उन सभीके अनुकूल रहते है। उनमे परस्परमे प्रतिकूलताकी बात कभी भी नही आने पाती। इस प्रकारका विशेष पुण्यका फल वहाँ प्राप्त होता है।

वन्दिगायनसैरन्ध्रीस्वाङ्गरक्षा· पदातय।
नटवेत्रिविलासिन्य सुराणा सेवको जन ॥१७९०॥

स्वर्गलोकमें देवोकी विविध सेवा—उन स्वर्गोमे उन देवोकी सेवा करने वाले देव है

स्वर्गोंमे दु ख है तो यही कि कोई कम पुण्य वाला है तो विशेप पुण्य वालेके सामने वह कुछ नम्र होकर रहकर उसकी सेवामे अपना महत्त्व समझना पडता है । यह दुःख उनमे विशेप है । वैसे शारीरिक दृष्टियोसे देखा जाय तो उनमे किसी प्रकारकी वेदना नही है । वहाँ विशेप पुण्य वाले देव हैं तो उनके परिकर देव और विशेप रहते है । वदी जन होते है जो स्तुति करते है, प्रशसा किया करते है । यह भी एक पुण्यफल है । जैसे यहाँ पुण्यवान मनुष्योंके निकट अनेक लोग ऐसे बसा करते है जो उनमे गुणानुराग करनेमे, स्तवन करनेमे, मन प्रसन्न करनेमे अपना महत्त्व समझते है । ऐसे ही वहाँ ऐसे विशिष्ट देवोंके समीप वन्दीजन होते है जो उनका गुणगान किया करते है । वहाँ दड धरने वाले देव हैं । जैसे जब कभी अपन लोग समारोह निकालते है मदिरका रथका तो चादीके दड लेकर निकला करते है, इसी प्रकार उन बडे बडे देवोके और इन्द्रोंके साथ दडधारी देव चला करते हैं । यह केवल पुण्यकी बात है । कही ऐसा नही है कि वे इन्द्र इससे रक्षित रहते हो । कोई आक्रमण न कर जाय इसलिए रक्षाके लिए देव हो यह बात नही है । वह एक शोभाके लिए चीज है । जैसे यहाँके चादीके दड शोभाके लिए हैं । लडाईमे वे दड काम नही लिए जाते, केवल एक शोभाके लिए है । इसी प्रकार ऐसे दडधारी देव इन्द्रके साथ इन्द्रकी शोभा वढानेके लिए रहते हैं । वहाँ गाने वाले देव है तथा नाचने वाली विलासिनी अप्सरायें है । वे अप्सरायें गीत नृत्यादिमे अति कुशल है । ऐसे वैभव सम्पन्न सुखोको वे देव सागरो पर्यन्त तक भोगा करते हैं ।

तत्रातिभव्यताधारे विमाने कुन्दकोमले ।
उपपादिशिलागर्भे सभवन्ति स्वय सुरा ॥१७६१॥

देवोका सुखद उपपाद—देवोंके उत्पन्न होनेकी उपपादि शय्या है । देखिये जीवनमे अनेक और दु ख तो आया ही करते है मनुष्यके जीवनमे, पर सबसे बडा दु ख जन्मका और मरणका है । मरणके समयमे जो दु ख होता है उसे तो लोग अपनी बुद्धिमे जल्दी ग्रहण कर लेते है, मरते समय बडा क्लेश होता है क्योकि उस रोगीको पहिलेसे देखते रहते है कि देखो अब बीमार हो गया, अब श्वास धीरे चल रही है, अब बहुत धीमी श्वास चल रही है । अब प्राण निकल रहे है । पर मरणसे भी विकट दु ख जन्मका है । ६ मास तक वह बच्चा उल्टे मुह अगोको सकोचकर पडा रहता है अपनी माके पेटमे, जहाँ पर कि अत्यन्त गर्मी है, तो विचार करो कि वह कितने कष्टमे होता है, और फिर जन्मके समयमे अर्थात् गर्भसे निकलनेके समयमे उस बच्चेको कितनी वेदनायें सहनी पडती है ? तो जन्मका दु ख मरणके दु खसे अधिक विकट है । देवोमे ये जन्मके दु ख बिल्कुल नही है । तब वे कैसे जन्मते है, उनके जन्मकी विधि आगेके श्लोकोमे विशेषकर बतावेंगे । सामान्यतया ऐसा समझ लेना चाहिए कि वहाँ कुछ नियत स्थान होते है जिन्हे उपपाद शय्या कहते हैं । अभी कोई देव नही है और थोडी

ही देरमे वहाँ सोये हुए बालककी तरह देव दिखने लगता है। वही उसका जन्म है। उपपाद शय्यापर उन वैक्रियक वर्गणावोका जमाव हो जाता है और वहाँ पुण्यवान जीव आकर उस शरीरको ग्रहण करता है, वही देवका जन्म है। तो उनका जन्म इस विधिसे होता है, जैसे कोई सोया हुआ आदमी हो और वह जगकर उठ जाय। ऐसे ही उस उपपाद शय्यापर देव पडा हुआ एकदम उठ जाता है, इसी तरह उन देवोका जन्म होता है। तो वहाँ उपपाद स्थान कैसा है, उस स्थानकी विशेषता इन ५ श्लोकोमे बता रहे है।

सर्वाक्षसुखदे रम्ये नित्योत्सवविराजिते ।
गीतवादित्रलीलाढ्ये जय जीवस्वनाकुले ।।१७६२।।
दिव्याकृतिसुसस्थानाः सप्तधातुविवर्जिताः ।
कायकान्तिपय पूरैः प्रसादितदिगन्तरा ।।१७६३।।
शिरीषसुकुमाराङ्गाः पुण्यलक्षणलक्षिता ।
अणिमादिगुणोपेता ज्ञानविज्ञानपारगाः ।।१७६४।।
मृगाङ्कमूर्तिसकाशा शान्तदोषा शुभाशया ।
अचिन्त्यमहिमोपेता भयक्लेशार्तिवर्जिताः ।।१७६५।।
वर्द्धमानमहोत्साहा वज्रकाया महाबला ।
अचिन्त्यपुण्ययोगेन गृह्णन्ति वपुरूर्जितम् ।।१७६६।।

देवोकी सुखद जन्मविधि—वह उपपाद शय्याका स्थान समस्त इन्द्रियोको सुख देने वाला है, जहाँ रमणीक रचनायें है, रत्नमणि आदिकसे चित्र विचित्रित है, और देखनेमे भी वहाँ जन्मके समय कोई घृणा वाली बात नही नजर आती है। अभी कोई था नही और अब दिखने लगा, इतना ही मात्र उनका जन्म समझमे आता है। जिस समय वह शरीर नजर आने लगता है उस समय तो शरीर बहुत छोटा होता है बालक जैसा, पर एक मिनटके अन्दर ही वह शरीर एकदम युवा बन जाता है और उठकर सब कुछ निरखने लगता है। तो वह उपपाद शय्याका स्थान समस्त इन्द्रियोको सुख देने वाला है, सुहावना है, नित्य ही उत्सव सहित विराजमान है। उत्सव उसके समीप ही तो हुआ करता है जहाँ कोई जन्म होता है। तो इस प्रकारसे उस उपपाद शय्यापर देव उत्पन्न होते रहते है। देवोकी गिनती असख्यात है। मनुष्योंसे कई गुना देव हुआ करते है। तो वहाँ उपपाद शय्याके निकट सदा उत्सव समारोह हुआ करते है। जो जैसा देव है उसका वैसा उत्सव समारोह हुआ करता है। उन उत्पन्न होने वाले देवोंके पुण्यकी प्रेरणासे स्वर्गमे रहने वाले देव वहाँ आते है और उत्पन्न हुए देवकी महिमा गाते है और उनका चित्त प्रसन्न हो वैसा वार्तालाप करते है और वहाँकी सारी रचनावोका बखान करते है। तो वह उपपादका स्थान नित्य उत्सवसहित विराजमान है जहाँ

गीत बाजे व नृत्य आदिवकी अनेक लीलायें बनी रहती हैं। हे देव! जयवत होओ, चिरजीवी होवो, इस प्रकारके अनेक शब्द कहते रहते है। ऐसे स्थानोंपर वे देव उत्पन्न होते है। जो देव उत्पन्न होते वे किस प्रकार हे कि उनका दिव्य मुन्दर आकार है, सस्थान उनका समचतुरस्र है, शरीर सप्तधातुरहित है। वहाँ शरीरमे हड्डी, खून, मास, मज्जा, रोम, चमडी आदिक कुछ भी नही पाये जाते, पर हे वे मनुष्य जैसे शरीर। वे वैक्रियक वर्गणायें है जो शरीर तो है और मनुष्योके आकार जैमी बात है, पर शरीरमे घृणाकी बात नही। सप्त धातुवें नही, तो विचित्र ही वैक्रियक वर्गणाये है। पुण्यके फलकी बात है। जैसे यहाँ मनुष्योमे जैसे जैसे पुण्य-हीन मनुष्य है वैसे ही वैसे उनके शरीरोमे भी त्रुटिया बहुत पायी जाती है और तिर्यञ्चोमे तो स्पष्ट नजर आता है, कोई जीव किसी आकारका है कोई किसी आकार हे, किसीका कैसा ही बेढगा मुख है तो किसीका कैसा ही बेढगा शरीर है। स्थावर जीवोको देखो तो पेड किस तरहके आकार वाले है। तो उन देवोका शरीर सप्तधातुवोसे रहित है, उनके शरीरकी प्रभा समस्त देवतावोको प्रसन्न करने वाली है, उनका शरीर पुष्पके समान कोमल है, अनेक पवित्र लक्षणो वाला है, अणिमा महिमादि गुणसे युक्त है। वे देव अवधिज्ञानी होते है, उस अवधि-ज्ञानसे सारी बाते जानकर वे उपपाद शय्यापर पडे हुए देव अति प्रसन्न होते है। वे देव चन्द्रमाकी मूर्तिके समान है जिनमे सभी प्रकारके दोप शान्त हो गए है, उनको किसी भी प्रकारका कोई क्लेश नही रह गया है। उनको कोई चिन्ता नही रहती है, किसी प्रकारका भय, क्लेश, पीडा आदि नही है। उनका उत्साह सदा बढता ही रहता है, शरीर भी वज्र जैसा है। दृढ और पुष्ट शरीर है, बडे पराक्रम वाला हे। तो पुण्यवान देव पुण्यके योगसे इस उपपाद शय्या पर शरीरको ग्रहण कर लेते है। यो समझिये कि इस उपपादशय्यामे अभी कोई नजर नही आ रहा था लेकिन अब बालक नजर आता है। उसी समय देव आते हैं और उसका सम्मान करते है। इस प्रकार वे देव उपपाद शय्यापर आते है, उन्हे जन्मके समयमे किसी प्रकारकी कोई पीडा नही होती।

मुखामृतमहाम्भोधेर्मध्यादिव विनिर्गता।
भवन्ति त्रिदशा सद्य क्षणेन नवयौवना ॥१७६७॥

प्रकट होनेके बाद अन्तर्मुहूर्तमे देवोकी नवयौवनता—स्वर्गोमे देव किस तरह उत्पन्न होते हे, उसका वर्णन चल रहा है। वे मनुष्योकी नाई गर्भमे नही आते किन्तु उनकी उपपाद शय्या बनी हुई है, ऐसे अच्छे सुहावने लम्बे चौडे चबूतरे समझिये जो छतरियोसे ढके हुए है, मणियोसे जडित है ऐसी कोई रमणीक सुन्दर शय्यायें होती है। उस उपपादशय्यापर वे देव ऐसा उत्पन्न होते है कि जैसे मानो कोई समुद्रमे से निकल आये, इसी प्रकार उस उपपादशय्या पर देव शरीर बन जाता है। पहिले कुछ नही दीखता था लो अब वहाँ एक बालक दीखने

बादमे उसके गुणोका गान करके उसे प्रसन्न करते है ।

गीतवादित्रनिर्घोषैर्जयमङ्गलपाठकै. ।
विबोध्यन्ते शुभै. शब्दैः सुखनिद्रात्यये यथा ॥१७६६॥

जन्मसमयमे गीत वादित्र आदि घोषो द्वारा देवोका विबोधन––वह देव उस उपपाद शय्यामे इस प्रकार उत्पन्न होता है कि जैसे कोई राजकुमार सोया हो और वह गीत वादित्रो के शब्दोसे, जय जय आदिक मगलके वादोसे जगाये जाते है, ऐसी ही वहाँ की स्थिति है। मानो कोई सोया हुआ पुरुष वडे अच्छे पाठोसे, बडे अच्छे गीत वादित्रोसे जगाया जा रहा हो तो जगकर वह चेष्टा करता है, यहाँ वहाँ निरखता है ऐसे ही वहाँ उपपाद शय्यापर कोई था नही पहिले । कुछ ही मिनटमे एकदम वहाँ एक बालक दिखाई दिया और कुछ ही मिनटमे वह जवान होकर बैठकर चारो ओर निरखने लगता है, इस प्रकार सुखपूर्वक उन देवोका जन्म होता है । जन्मके समय अनेक देव वहा जय जय शब्द बोलते है । देखिये पुण्यका एक प्रभाव कि जैसे यहाँ लोग किसी महापुरुषके प्रति जय-जय शब्दोच्चारण करते हैं, पूज्य पुरुष का जयवाद किया करते है इसी प्रकार वहा उत्पन्न हुए देवके प्रति लोग जय-जय शब्द करते है, वहा प्राय करके वे ही मनुष्य उत्पन्न होते है जो तपश्चरण करते, धर्मसाधना करते । तो पवित्र आत्मा ही तो स्वर्गोमे उत्पन्न होते है । जिन देवोके प्रति अन्य देवोका आकर्षण है उनकी बात कही जा रही है । ऐसे महापुरुषोकी उत्पत्तिके समय अनेक देव उनके निकट पहुचकर उनका जयवाद करते हैं । ऐसे सुखपूर्ण वातावरणमे वे महर्धिक देव कुछ सावधान होकर यत्र तत्र निरखने लगते है ।

किञ्चिद्भ्रममपाकृत्य वीक्षते स शनै शनै ।
यावदाशा मुहु स्निग्धैस्तदा कर्णान्तिलोचनै ॥१८००॥

उत्पन्न होनेके बाद चारो ओर अवलोकन––उस उपपादशय्यामे वह देव उत्पन्न हुआ और कुछ ही क्षणोके बाद वह कुछ निरखने लगता है तो उसे कुछ विचित्र बात नजर आती है, कुछ भ्रमसा नजर आता है । जैसे कोई सोया हुआ पुरुष जब जगकर बैठ जाता है तो झट उठकर वह कुछ इधर उधर निरखने लगता है, कुछ सोचनेसा लगता है, इसी प्रकार वह देव भी उठकर बैठ जाता है और कुछ चिन्तन करने लगता है कि यह कौनसा स्थान है, मै किस नवीन जगहमे आया हू, उसे तो सारी चीजें नई दिखती है, वह सोचता है कि यह कौनसा क्षेत्र है, यह सब क्या समागम है ? खूब खुले हुए नेत्रोसे वह देव एक आश्चर्यमे आकर निरखने लगता है कि मैं यहा किस जगह आ गया, यह सब क्या समागम है ?

इन्द्रजालमथ स्वप्न· किं नु मायाभ्रमो नु किम् ।
दृश्यमानमिद चित्र मम नायाति निश्चयम् ॥१८०१॥

प्रकट होनेके बाद दिशावलोकनसे अद्भुत ठाठ देखनेपर आश्चर्य—क्या है यह सब ? क्या यह इन्द्रजाल है ? एकदम नवीन स्थानपर वह आत्मा देवके रूपमे उत्पन्न हुआ ना, तो एकदम एक विचित्र स्थानको देखा, और बहुतसे दिव्य कान्तिधारी नाना आभूषणोसे सुसज्जित मुखपर प्रसन्नता बखेरते हुए बहुतसे देव नजर आते है। ऐसे उस स्थानको निरखकर वह उत्पन्न हुआ देव सोचता है कि क्या यह सब इन्द्रजाल है ? अर्थात् होता तो कुछ भी नही किन्तु एक मायारूपमे बना हुआ है। क्या यह मायारूप भ्रम है अथवा मुझे क्या कोई यह स्वप्न आ रहा है ? जब वह देव निरख रहा है इस अद्भुत नवीन समागमको तो वह चिन्तन कर रहा है कि क्या यह स्वप्न है या सचमुच मै जागते हुए यह सब कुछ देख रहा हू ? उस समय वह दृढतासे निश्चय नही कर पाता कि यह सब चीज है क्या ? ऐसा सोचिये कि यदि आप कही ऐसे स्थानपर रख दिये जाये किसी एक सोते हुए स्थानमे कि जो एक नवीन है, विचित्र है, जिस स्थानको कभी देखा नही है, तो आपको वहा किस प्रकारका चित्त हो सकता है ? कुछ बात निर्णयकी नही आ पाती है, है क्या, किस जगह हू, उस समागमके प्रति कुछ भ्रमसा होता है, अपने प्रति भी भ्रम होने लगता है। क्या मै सचमुच देख रहा हू अथवा मुझे निद्रा आ रही है या स्वप्न आ रहा है, स्वप्नमे भी जो कुछ देखा जाता है वह सब यथार्थसा लगता है, यही तो घर है, यही तो पेड है, यही तो सरोवर है आदि। तो जैसे स्वप्नमे सब बातें सच मालूम देती है वैसे ही यह सब कुछ जो हमे नजर आ रहा है यह सब स्वप्न है अथवा वास्तवमे यह सब कुछ है। इस प्रकार भ्रम और आश्चर्यपूर्वक वह नवीन देव इन सब बातोको देखता है और कुछ निश्चयसा नही कर पाता।

इद रम्यमिद सेव्यमिद श्लाध्यमिद हितम ।
इद प्रियमिद भव्यमिद चित्तप्रसत्तिदम् ॥१८०२॥

देवोका दृश्यमान समागमोके प्रति विवेक—जैसे जैसे क्षण व्यतीत होते है वैसे ही वैसे इन दृश्यमान समागमोके प्रति उसका निश्चयसा बन जाता है। सभी वस्तुवे जो भी नजर आ रही है उन उनके प्रति यह निश्चय करता है कि ये वस्तुवें तो बडी सुन्दर है, बडी रमणीक लग रही है, ये सब वस्तुवे मेरे सेवने योग्य है, मेरे उपयोगके योग्य है, इनके सेवनसे मेरा हित है, भलाई है, सुख है, आनन्द है और मौज है, ये वस्तु सराहनीय है, प्रशसनीय है। वहाँ चेतन अथवा अचेतन सभी वैभव नजर आ रहे है, पर वे सब एक वैभवरूपमे नजर आ रहे है। यह वैभव प्रशसाके योग्य है, यह वैभव हितरूप है, यह प्रिय है, मनको आकर्षित करने वाला है। धीरे-धीरे जिन पदार्थोके प्रति उसे भ्रमसा था, कुछ निश्चयसा होता जा रहा है। जैसे बहुत समय तक किसी स्थानपर रहनेसे एक परिचयसा बढता है, विश्वाससा होता है, चित्त नि शकित रहता है, इस प्रकार नवीन उत्पन्न हुआ देव उस नवीन समागमके प्रति

निश्चय कर रहा है । यहाँ तो किसी नवीन अपरिचित जगहमे किसी सोते हुए व्यक्तिको उठा ले जाय तो उसके जगनेपर उसका क्या हाल होगा, सो तो विचारो । वह तो सोचेगा—ओह ! मैं कहाँ आ गया, यहाँ तो कोई मेरी पूछ करने वाला भी नही, कोई यहाँ मेरा अपमान न कर दे, कोई मेरा बहिष्कार न कर दे, आदि । पर वह देव उत्पन्न होकर उस स्थानपर जितने अधिक क्षण गुजरते है निश्चय होता है और उसका चित्त नि शकित हो जाता है ।

एतत्कन्दलितानन्दमेतत्कल्याणमन्दिरम् ।
एतन्नित्योत्सवाकीर्णमेतदत्यन्तसुन्दरम् ॥१८०३॥

दृश्यमान समागमोके प्रति देवोका विचार—तत्पश्चात् वह देव विचार करता है कि यह तो आनन्दको उत्पन्न करने वाला कल्याणका मदिर है । सभी कुछ तो उनकी दृष्टिमे आ रहा है । चैत्यचैत्यालय आदि ये सब कल्याणके मार्ग हैं, सुन्दर उत्सव रूप और अत्यन्त सुन्दर है, वहाँ स्वर्गोमे समारोहको बडी प्रचुरता रहती है । जीवनमे भी अनेक समारोह चलते है और जब कोई देव उत्पन्न होता है तो उसकी उत्पत्तिमे भी समारोह चलता है । यहाँ जैसे कोई बालक उत्पन्न होता है तो उत्पन्न होनेके समय पडौसी रिश्तेदार मित्र लोग भाई बधु ये सब कैसी खुशी मनाया करते है, तो वहाँ स्वर्गोमे जो देव उत्पन्न होते है उनकी प्रतिभा ऐसी महान है कि अन्य देव वहाँ आते है और खुशी मनाते है । आखिर वही देव कुछ ही क्षणमे नवयौवन सम्पन्न होकर हम सबके साथ व्यवहार रखेगा, हम सबको मार्ग दिखायेगा, हम सब उसको इसी कारण बडे एक गौरवकी दृष्टिसे देख रहे है इस प्रकार देवके चिन्तन हुआ करते हैं ।

सर्वर्द्धिमहिमोपेत महर्द्धिकसुरार्चितम् ।
सप्तानीकान्वित भाति त्रिदशेन्द्रसमाजिरम् ॥१८०४॥

महिम स्थान पद आदिके विषयमे देवोका विचार—वह देव यह विचार करता है कि यह स्थान समस्त ऋद्धि और महिमा सहित बडे ऋद्धिधारक देवोसे पूजनीय है । जिस स्थान पर उत्पन्न हुआ है उस स्थानकी वार्ता अब उसे विदित होती जा रही है । उसको नाना परिचय प्राप्त होते जा रहे है । और वे स्थान तो बडे बडे ऋद्धिधारक देवोके स्थान है, देवोसे पूज्यनीय है । वहाँ ७ प्रकारकी सेना है, उन देवोका वहाँ नि शकतापूर्वक निवास होता है । वह वहाँ विचार करता है कि यहाँ की तो बडी उत्तम भूमि है । उस भूमिमे किसीको किसी भी प्रकारकी दु ख पीडा बाधाये नही हैं । ऐसे स्थानोके प्रति इसका परिचय बढ रहा है । यह सब कुछ चेतन अचेतन समागमोकी रमणीकता निरखनेके बाद फिर उस नवीन उत्पन्न जीवका कैसा चिन्तन चलता है ?

मामेवोद्दिश्य सानन्द प्रवृत्त. किमय जनः ।
पुण्यमूर्तिः प्रिय' श्लाघ्यो विनीतोऽत्यन्तवत्सल ॥१८०५॥

जन्मसमय उपस्थित अत्यन्त वत्सल देवगणके प्रति देवका वात्सल्य—ये सब जो देव समूह दृष्टिगोचर हो रहे है तो यह केवल इतना ही नही कि यह है । है तो सही किन्तु यहाँ तो यह विदित हो रहा है कि ये सब लोग मेरा ही उद्देश्य करके बडे आनन्दके साथ खडे हुए है । यह है इतनी ही बात नही, यह निकट है और उसके खातिर ये खडे हुए ऐसे प्रतीत हो रहे है इन सबकी दृष्टि मेरी ओर लग रही है । ये सब बडी उत्सुकतासे मुझे देख रहे है। मुझसे ही कुछ कहना चाहते है ऐसा नजर आ रहे है । ये बडे पवित्र रमणीक पुण्यवान नजर आ रहे है । इनकी मुद्रा, इनकी प्रसन्नता ये सब बाहर टपक रहे है, ऐसे ये देव है जो बहुत प्रिय है, ये प्रशसनीय है, जिनकी मुद्रा, जिनका विचार, जिनका बर्ताव एक उत्तम पुरुप जैसा करने योग्य है । ये प्रशसनीय पुरुष है, ये सब कितना विनयके साथ खडे नजर आ रहे है ? यह उत्पन्न हुआ देव ज्यो ज्यो क्षण व्यतीत होते है त्यो त्यो उन समागमोको ऐसा आश्चर्य और प्रतीक्षापूर्वक देख रहा है । ये तो बहुत चतुर मालूम होते है । ये साधारण जन नही है, बहुत बुद्धिमान जन है, ये कैसा मेरी ओर आकर्षणके साथ खडे हुए है । इस प्रकार वहाँ आये हुए उन देवोके प्रति वह उत्पन्न हुआ देव विचार करता है ।

त्रैलोक्यनाथससेव्य' कोऽय देश सुखाकर. ।
अनन्तमहिमाधारो विश्वलोकाभिनन्दित ॥१८०६॥

जन्मस्थानके प्रति देवका आश्चर्य व आकर्षण—फिर वह देव विचार करता है कि यह कौनसा देश है, जिस जगह बडे सुखपूर्वक उपपाद शय्यापर जन्म लेता है वह देव तो उस स्थानको निरखकर व उन सब नवीन समागमोको देखकर चिन्तन कर रहा है कि यह कौनसा देश है ? यह तो सुखकी खान है । यहाँ तो सर्व वस्तुवे रमणीक और ये सब जन बडे दिव्य कल्पित रूप रखने वाले सुखी नजर आ रहे है । यह तो बडे बडे महापुरुषोके सेवने योग्य देश है । जिस देशके सभी लोग इच्छा करे, सबके द्वारा जो वाञ्छनीय है, सुखोका आधार है ऐसी यह कौनसी भूमि है ? इस प्रकार वह उत्पन्न हुआ देव चिन्तन कर रहा है ।

इद पुरमतिस्फीत वनोपवनराजितम् ।
अभिभूय जगद्भूत्या वलतीव ध्वजाशुकै' ॥१८०७॥

वनोपवनराजित अतिस्फीत जन्मपुरका प्रथमावलोकन—स्वर्गोमे है वे सब विमान ही विमान । उन सबको वैमानिक देव इसी लिए कहते है । पृथ्वी नही है स्वर्गोमे । वह पृथ्वी तो है पर जैसे इस पृथ्वीपर मनुष्य तिर्यञ्च विचरते है ऐसी पृथ्वी नही है किन्तु ज्योतिमान वह एक विमानके रूपमे है । वह विमान बहुत विस्तीर्ण होता है, इसलिए उन्हे एक पृथ्वी

कह दिया जाय तो कोई अत्युक्ति नही है, लेकिन पृथ्वीमे और विमानोमे अन्तर है। पृथ्वीके तीनो ओर वातवलय होते है, सभी ओर जिसपर निवास है उस भागको छोडकर किन्तु विमानोके लिए वातवलयकी आवश्यकता नही है। वह विमान एक ज्योतिमान है। तो जो ज्योतिमान चीज होती है वह अपने आपमे ऐसी लघुता धारण किए हुए होती है कि वह आकाशमे इस प्रकार स्वयमेव ठहर सकती है। तो वह विमान है जहा ये देव उत्पन्न होते है। वे विमान बहुत योजन कोशके है, तो उनके भीतर नगरो जैसी रचना पायी जाती है। यह नवीन उत्पन्न हुआ देव उस दृश्यको निरखकर चिन्तन कर रहा है कि यह नगर अति विस्तीर्ण है। इस नगरमे सारे महल बडी शोभा धारण किए हुए है, इन सभी महलोंमे ऐसी विशिष्ट सम्पदा है कि सम्पदा द्वारा मानो ये देव सारे ससारको जीतकर आये है इसलिए इन महलोपर ध्वजा फहरा रहे है। जैसे कोई पुरुष किसी पर विजय प्राप्त करके आये तो वह अपने महलमे ध्वजा फहराता है इसी तरह यह सारा नगर भी खुशीके मारे जगमग हो जाता है, बहुतसे रत्न मणि जगमगाते रहते है तो वहाँ अब एक अद्‌भुत बात नजर आ रही है। मानो वे देव सारे जगतकी सम्पदाको जीत लाये है, इस कारण उन महलोमे ध्वजा फहरा रहे है। वह फहराती हुई ध्वजा यह सूचित करती है कि ये देव जगतकी समस्त सम्पदाको जीत लाये है। ऐसी सुख सम्पदासे परिपूर्ण यह नगर अति विस्तीर्ण है। सब कुछ नया नया सा निरख रहा है ना, इसमे कुछ सम्भ्रमके साथ कुछ चिन्तन केसाथ इन समस्त समागमोको देख रहा है।

आकलय्य तदाकूत सचिवा दिव्यचक्षुष. ।
नातिपूर्व प्रवर्तन्ते वक्तु कालोचित तदा ॥१८०८॥
प्रसाद क्रियता देव नताना स्वेच्छया दृशा ।
श्रूयता च वचोऽस्माक पौर्वापर्यप्रकाशकम् ॥१८०९॥

उपस्थित देवो द्वारा उत्पन्न देवके प्रति सर्व समाचारोका आवेदन—वहाँ महा ऋद्धि वाले देव देवेन्द्र जब उत्पन्न होते हैं तो उनकी उत्पत्तिके समय उनके चित्तमे प्रथम क्या बीतती है, क्या चिन्तन चलता है उसका कुछ वर्णन चल रहा है। उनके मुखकी मुद्रासे उनके इन विचारोको जानकर और फिर अवधि ज्ञानके द्वारा उनके भावोको स्पष्ट जानकर उस समय मत्री जन उस उत्पन्न हुए देवेन्द्रके अभिप्रायका समाधान करनेके लिए उस देवको नमस्कार करके विनयपूर्वक प्रणाम करके वे मत्री जन कहते है कि हे देव! हम सेवकोपर आप प्रसन्न हूजिये। उन्ही खडे हुए सब देव देवियोंके प्रति उस देवेन्द्रका चिन्तन चल रहा है। यह कौन सा नगर है, यह कौनसी भूमि है? कोई पुरुष नगर अथवा भूमिका विचार करता हो तो उसमे यह बात अन्तर्गत है वहाँके निवासियोंके प्रति यह जिज्ञासा बनी है कि ये खडे हुए जो

दिव्य कान्ति वाले लोग है ये कौन है, तो उनकी ही बातका समाधान देनेके लिए इन मंत्रियो ने किस प्रकार विनयपूर्वक शुरुवात की ? हे देव ! हम सेवकोपर आप प्रसन्न हूजिये, और निर्मल दृष्टिसे देखिये—हमारे पूर्वापर परिपाटीके प्रकाश करने वाले वचनोको सुनो। उस देवेन्द्रने यही तो सब एक जिज्ञासा बनाया था कि यह सब है क्या ? यद्यपि थोडे ही समय बाद अवधिज्ञानसे वह सब समझ लेगा लेकिन तत्काल जैसा जो भाव हो उस भावकी बात यहाँ बतायी जा रही है। तो चित्तमे जिन जिन वस्तुवोके प्रति देवेन्द्रका एक निर्णयका ख्याल चल रहा था कि यह सब क्या चीज है, उस अभिप्रायको जानकर वहाके मत्री लोग उनकी समस्त समस्यावोका समाधान करेंगे। प्रथम हो तो एक अपनी चर्चा द्वारा अपनी जन्म परिणति द्वारा बहुत कुछ समाधान तो मत्रियोने तत्काल कर दिया है, एक उनके विनयपूर्ण भाव को देखकर जो कुछ इस उत्पन्न हुए देवने अर्द्ध निर्णय दिया था कुछ सम्भ्रमके साथ जो कुछ जानकारी बनाया था उसका समाधान तो मत्री बोलते ही जाते है। जो कुछ शका थी, जो कुछ एक विलक्षणता देखकर मनमे कुछ सम्भ्रान्ति थी वह सब सम्भ्रान्ति उन मत्रियोके विनयपूर्ण व्यवहारसे बहुत कुछ समाप्त हो जाता है। फिर वे मत्री जन अनेक वस्तुवोको दिखा दिखाकर उस देवेन्द्रके सभी प्रश्नोका समाधान करते कि यह सब है क्या ? यह पुण्यवान पुरुषोकी उत्पत्तिके समयकी घटना बतायी जा रही है। कैसा सुखद वातावरणमे इनका जन्म हुआ करता है ? जिन्होने पूर्व भवमे धर्म धारण किया, तपश्चरण किया, सयम किया, दया दानके परिणाम रखा ऐसे धर्मधारी जीव विशिष्ट रागके कारण जो पुण्य बाँधा था उसके फल मे यहाँ उत्पत्ति हुई, उस ही का यह सब वर्णन है।

अद्य नाथ वय धन्याः सफल चाद्य जीवितम्।
अस्माक यस्त्वया स्वर्गः सभवेन पवित्रितः ॥१८१०॥

उपस्थित देवो द्वारा उत्पन्न देवको धन्यवाद—जब वहाँ सौधर्म स्वर्गमे इन्द्र उत्पन्न होता है तो उत्पन्न होनेके बाद उपपाद शय्यासे उठता हुआ उस विस्मयके साथ निरखता है कि यह सब कौनसा देश है ? ये लोग कौन है ? उस समय वहाँ उपस्थित हुए मत्रीजन विनय पूर्ण वचनोसे जवाब देते है और कहते है कि हे नाथ ! हम सब लोग आज धन्य हुए है। हम लोगोका जीवन आज सफल हुआ है और आपने स्वर्गोमे उत्पन्न होकर स्वर्गोको पवित्र किया है। सीधा एकदम यो न कहकर कि यह स्वर्ग है, यह अमुक है एक अलकार रूपसे या कुछ अन्य प्रशसा रूपसे सर्व परिचय मत्री गण दे रहे है और ठीक भी है। वहा जो इन्द्र होकर उत्पन्न होता है वह कुछ विशेष भाग्यशाली और धर्मात्मा जीव है। जिन्होने मनुष्यभवमे धर्म का विशेष आचरण किया है, सम्यक्त्वकी और जिनकी विशेष भावना रहती है, आचरण भी जिनका पवित्र है और व्रत नियम आदिकसे भी जिन्होने आत्माका पुण्य किया है ऐसे पुरुष ही

इन्द्र जैसे महर्धिक देवोंकी पदवी प्राप्त करते हैं। ऐसे आत्माके प्रति धन्यवाद कहना और उस आत्माके स्वर्गमें आनेमें अपना जीवन सफल मानना यह एक प्राकृतिक ही बात है। लोकमें आत्माका एक धर्म ही शरण है। सर्वत्र दृष्टि पसारकर देखो—कहा जाना, कौन यहां शरण है। किसकी शरण पहुंचे तो आत्माको शान्ति प्राप्त हो? अपना शरण यहां अन्य कोई नहीं है। एक अपने ही आत्मामें बसा हुआ जो शुद्ध परमात्म तत्त्व है वह ही एक शरण है, ऐसे ही पुरुष इस इन्द्र पदवीको धारण करते हैं। रह गया उनका राग शेष, तो उस रागभावके कारण ऐसा विशिष्ट पुण्य बंध होता है कि जिससे स्वर्गोंमें उच्च पदोंपर उनका अधिकार होता है। तो ये मंत्री जन कह रहे हैं कि हे नाथ! आपने इस स्वर्गको पवित्र किया है, अतएव हम सब स्वर्गवासी देव धन्य हो गए।

प्रसीद जय जीव त्वं देव पुण्यस्तवोद्भव।
भव प्रभुः समग्रस्य स्वर्गलोकस्य सम्प्रति ॥१८११॥

उत्पन्न देवसे उपस्थित देवों द्वारा प्रसन्नताकी अभ्यर्थना—हे नाथ! आप प्रसन्न हूजिये, आप चिरजीव रहिये। आपका उत्पन्न हुआ पुण्यरूप है। आप पवित्र हैं, आप इस स्वर्गलोकके स्वामी हूजिये। सौधर्म इन्द्र परिणाम कल्पके आधेसे अधिक स्थानके विमानके अधिकारी होते हैं। स्वर्गकी रचनामें वहीं अलग अलग रचना नहीं है कि यह सौधर्म स्वर्ग है और यह ईशान। किन्तु वहां पटलकी रचना है। तो इस मेरु पर्वतके ऊपर एक पलके अन्तर पर ऋजु विमान है, इन्द्रका विमान है, उसके चारों ओर पटलपर श्रेणीबद्ध विमान हैं और बीचमें प्रकीर्णक विमान हैं। उनमेंसे दक्षिण पूरब पश्चिम दिशाके विमान और इनके बीचके विदिशाके विमान और इनके बीचके अन्य सब प्रकीर्णक विमान—ये ३१ पटलोंमें ऐसे ऐसे घटते हुए भी जो विमान ऊपर चले गए हैं उन सबके वे अधिकारी होते हैं, और शेष बची हुई उत्तर दिशा, दो विदिशा और उसके मध्यके प्रकीर्णक देव अधिकार ऐशान इन्द्र होते हैं। सौधर्म स्वर्गका अधिकारी सौधर्म इन्द्र तो है ही किन्तु जब तीर्थंकरका जन्म होता है तो सौधर्म इन्द्र उन तीर्थंकर देवका पंचकल्याणक मनाते हैं। सौधर्म देवकी बहुत बड़ी हस्ती है। मंत्री जन सौधर्म इन्द्रका जयवाद कर रहे हैं। हे नाथ! आप प्रसन्न हूजिये। आप चिरजीव हूजिये। हम सबपर आपकी कृपा बनी रहे। आपका जन्म बड़ा पवित्ररूप है, आपके जन्मसे आज यह स्वर्ग कृतार्थ हुआ है।

सौधर्मोऽयं महाकल्पः सर्वामरशतार्चितः।
नित्याभिनवकल्याणवार्द्धिवर्द्धनचन्द्रमाः ॥१८१२॥

उत्पन्न देवको जन्मस्थानके सम्बन्धमें प्रबोधन—हे नाथ! यह सौधर्म नामका महा स्वर्ग है। महास्वर्ग इसलिए कहा गया है कि सबसे अधिक विमान, सबसे अधिक संख्याके

स्वर्ग ये है, और साथ ही एक इस बातपर ध्यान दीजिये कि जब कभी तीर्थंकरके पचकल्याणक होते है और ऐसे अद्‌भुत समारोह होते है मानो सारा सौन्दर्य स्वर्गमे इकट्ठा हो गया है। यह सौधर्म इन्द्रका स्वर्ग महान स्वर्ग है। यह सैकडो हजारो देवोसे सेवित है। अनेक देव इस स्वर्गमे निवास करके अपना सुख भोगते है और इस स्वर्गको बहुत बडे महत्त्वकी दृष्टिसे देखते है। कवियोकी एक कहावत है—जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। जननी माता और जन्मभूमि हमे बहुत साधक है और जन्मभूमिको बताया है कि जो उत्पन्न करती है वह स्वर्गसे भी श्रेष्ठ होती है। तो बतलावो जिसकी स्वर्गसे उपमा दी जा रही है, जन्मभूमि स्वर्गसे भी श्रेष्ठ है, तो जो देव स्वर्गमे उत्पन्न होते है उनकी जन्मभूमि तो स्वर्ग है। उस भूमिके आश्रयसे वे इन सासारिक सुखोको भोगते है और वहाके आधारको समय-समयपर धर्मसमारोहोमे सम्मिलित होकर पुण्यबध करते है। वे अपनी योग्यताके अनुसार धर्मपालन करते है। तो स्वर्ग उनकी जन्मभूमि है, और उन देवोके द्वारा पूज्य है। जैसे इस भारतभूमिके लोग इस भारत को माता कहते हैं और इसकी पूजा करते है, भारतमाताकी जय आदिक बोलकर एक अपना भाव प्रदर्शित करते है। यो ही समझिये कि वहाँके देव अपनी जन्मभूमि स्वर्गके प्रति क्या क्या उच्च कामनाएँ न रखते होगे ? तो यह स्वर्ग हजारो देवोसे सेवित है। उन देवोके समस्त कल्याणकी वृद्धिके लिए वह स्वर्ग निमित्त है अर्थात् उन देवोका सर्व मगल, सर्व मनोरथ, सर्व कल्याण जैसी उनकी भावना है उन सबकी सिद्धि इस स्वर्गमे होती है।

कल्प· सौधर्मनामायमीशानप्रमुखाः सुराः।
इहोत्पन्नस्य शक्रस्य कुर्वन्ति परमोत्सवम् ॥१८१३॥

देवोका जन्मसमारोह—जब इन्द्र उत्पन्न होता है उस समयकी ये सब घटनाएँ बतायी जा रही है। उस समय ईशान इन्द्र और भी इन्द्र आदिक अनेक देव वहाँ खडे होते है। कैसा अद्‌भुत समारोहका समय होता होगा ? यहाँ ही किसी सेठके घर कोई बालक उत्पन्न होता है तो कितनी खुशिया मनायी जाती हैं फिर वह तो स्वर्ग है, वहाँ कैसा अद्‌भुत समारोह मनाया जाता होगा, उसका वर्णन कौन कर सकता है ? ईशान आदिक इन्द्र अनेक देव सौधर्म इद्रकी ओर मुख करके कुछ प्रतीक्षा करते हुए, अपने भाव प्रदर्शित करते हुए खडे होते है तो मत्री जन सौधर्म इन्द्रसे कह रहे है कि हे नाथ ! यह नामका कल्प है और ये ईशान आदिक प्रमुख देव है। ये सब यहाँ उत्पन्न हुए देवोकी उत्पत्तिकी परमशोभा बनाते है, बडा उत्सव मनाते है, ये सब आपका जन्मोत्सव मनानेके लिए ही एकत्रित हुए है। उस इन्द्रके मनमे जो कुछ पहिले सम्भ्रम था कि मै किस देशमे आया हू और ये सब दिव्य रूप कौन लोग है, उन सबके समाधानमे मत्री एक एक बातपर दृष्टि डालकर समाधान करते जा रहे है—हे नाथ ! ये सब आपके जन्मका परम उत्सव मनानेके लिए आये हुए है, यहाँ ऐसी परिपाटी है, और आपके

पुण्यका ऐसा ही प्रभाव है ।

अत्र सकल्पिता कामा नव नित्य च यौवनम् ।
अत्राविनश्वरा लक्ष्मी सुख चात्र निरन्तरम् ।।१८१४।।

स्वर्गलोककी विशेषताओंका आख्यान—हे नाथ ! इस स्वर्गमे वाञ्छित पदार्थ भोगने योग्य है, ऐसा पुण्यफल है यहाँ कि जो कुछ चाहा जाय उसकी प्राप्ति तुरन्त होती है । यहाँ तो किसी वस्तुका निर्माण करना हो तो उस वस्तुकी प्राप्तिमे विलम्ब न लगेगा । किसी वस्तु का व्यापार करना हो तो कहीसे मगानेमे विलम्ब लगेगा लेकिन वहाँ सर्व भोग भूमिकी चीजे कल्पवृक्षके निमित्तसे प्राप्त होती है । तो ज्यो ही इच्छा की, बस कुछ ही क्षणोमे उस वस्तुकी प्राप्ति हो जाती है । दृष्टान्त भी दिया जाता है । जैसे धर्म भावनामे बताया है कि—जाचै सुरतरुदेय सुख, चिन्तत चिन्ता रैन । बिन जाचे बिन चितये धर्म सकल सुख दैन ।। धर्म सर्व सुखोका देने वाला है, ये कल्प वृक्ष तो याचना करनेसे जो भी चाहा उस ही फलको देते हैं । यहाँ यह बात भी समझ लेनी चाहिए कि कल्पवृक्ष भी अगर सुखके साधन देते है, चितामणि आदिक रत्न भी सुखके साधन देते है तो उस ही पुरुषको तो वे सुख साधन मिलते है जो किसी भी रूपमे धर्मधारण करता है । तो धर्म ही प्रधान हुआ । समस्त सुखोकी प्राप्तिके लिए कारण धर्म ही हुआ । क्योकि उस धर्मके बिना, उस पुण्यके बिना तो यह कल्पवृक्ष और चिन्तामणियोका भी समागम नही मिलता है । मत्री जन कह रहे हैं कि हे नाथ ! इस स्वर्ग के सर्व मनोवाञ्छित पदार्थ भोगने योग्य हैं । यहाँ नित्य नवयौवन है, वैसी ही लक्ष्मी है । निरन्तर सुख ही सुख है । ऐसा सुखोका विशिष्ट धाम यह स्वर्ग है । मत्री उन सब समागमो का परिचय दे रहे हैं । यद्यपि यह इन्द्र अभी थोडी ही देरके बादमे अवधिज्ञानसे इससे भी अधिक जानेंगे, निर्णय करेंगे, किन्तु अवधिज्ञानको जब उपयोगमे लिया जाय तब ही जानेंगे न, यहा नई जगहमे उत्पन्न हुआ है, नये समागमोको देख रहा है तो अवधिज्ञानका उपयोग नही किया जा रहा है, फिर भी बहुत कुछ तो देखते ही परिचय मिल जाता है, और ये मत्री जन उसका परिचय करा रहे हैं ।

स्वर्विमानमिद रम्य कामज कान्तदर्शनम् ।
पादाम्बुजनता चेय तत्र त्रिदशमण्डली ।।१८१५।।

स्वर्गलोक विमानकी विशेषताओंका उपस्थित देवो द्वारा उत्पन्न देवके प्रति आख्यान-हे नाथ ! यह स्वर्गका विमान है, इससे जहाँ चाहे वही जा सकते हैं । देखिये एक तो होता है आवास विमान, जिसकी बहुत बडी लम्बाई चौडाई होती है । वह विमान जमीनकी तरह होता है पर उसके भीतर जो बसने वाले देव है उनके वहाँ सुन्दर भवन आदिकी स्वत सिद्ध रचना होती है तो एक मोटे रूपसे वे सब विमान है, जो एक बहुत लम्बे चौडे पृथ्वीके रूपमे

पड़े हुए हैं। उसमें और भी विमान होते जाते हैं। यहाँ विराज रहे हैं, उस विमानकी बात कह रहे हैं कि यह स्वर्गीय विमान है, इससे जहाँ जाना चाहे वहीं जा सकते हैं। इनका दर्शन अति मनोहर है। यह देवोंकी मडली आपके चरण कमलोंमे नम्रीभूत है। देखिये देवोंको किसी प्रकारकी चिन्ता नहीं, कोई शारीरिक वेदना नहीं, किसी भी प्रकारकी पराधीनताका कोई अवसर ही नहीं। शरीर सम्बधी वेदनाओंको मिटानेकी जब नौबत होती है तब पराधीनता आया करती है, पर देवोमे पराधीनताका क्या सवाल, लेकिन पुण्य पापके फल वहा भी किसी न किसी रूपमे पाये जाते हैं। पुण्यफल तो यों है कि वे सभी देव मनोवाञ्छित सुखोंकी सामग्री प्राप्त करते हैं और पापके फलमे यही कह लीजिए कि इन्द्रादिक बड़े देवोंकी हाँ हुजूरी मे खडे रहना पडता है कि यह इन्द्र मुझपर प्रसन्न रहे तो समझो मेरा जीवन सफल है। खैर मन्त्री सब परिचय करा रहा है कि यह देवोंकी जो सभा बैठी है यह आपके चरणकमलोमे नम्रीभूत है, बडे विनयसे ये सब देव आपकी ओर निहार रहे हैं।

एते दिव्याङ्गनाकीर्णाश्चन्द्रकान्ता मनोहरा ।
प्रासादा रत्नवाप्यश्च क्रीडानद्यश्च भूधरा. ॥१८१६॥

प्रासाद, रत्नवापी, क्रीडानदी व भूधरोंका आख्यान—और और भी जो कुछ दृष्टि गोचर हो रहे हैं उन सबका परिचय देते जा रहे हैं। यह मनोहर अप्सराओंसे भरा हुआ चन्द्रकान्तिके समान आपका प्रासाद है, इस आपके प्रासादमे पुण्यवती देवागनाएँ निवास करती हैं। देखिये कितना विचित्र कान्तिमय जीवन है उनका, जो यहाँके लोगोंसे तुलना करते हैं तो वे अद्भुत दिखते है। यहाँके शरीर मलमूत्रादिसे पूरित है, खून, हड्डी आदिक सप्त धातुवें यहाँके शरीरोमे भरी हुई हैं किन्तु उन देवोंका शरीर उन सप्त प्रकारकी धातुवोंसे रहित है। उनके शरीरमे न पसीना है और न बुढापा ही है। वे देव बडे विलक्षण हैं। मनोवाछित भोगसामग्री उन्हे प्राप्त होती है। कैसा सुखमय उनका जीवन है ? साथ ही यह भी सोचिये कि उस दिव्य जीवनसे उनका निर्वाण नहीं होता। निर्वाण जो भी प्राप्त करता है वह मनुष्य बनकर ही करता है। इससे श्रेष्ठ भव तो मनुष्यका है मगर इसका ठीक मोक्षमार्गके लिए उपयोग करे तब तो श्रेष्ठ है और अगर सर्व ससारी प्राणियोंकी ही तरह बन्धनके फसते रहनेका काम करेंगे तो फिर इस मनुष्यभवका पाना न पाना बराबर है। मन्त्री जन सौधर्म इन्द्रसे कह रहे हैं कि ये सब रत्नमयी वाटिकायें हैं जहाँपर ये देव और देवागनाये विहार करके अपने चित्त को प्रसन्न करते हैं।

सभाभवनमेतत्ते नतामरशतार्चितम् ।
रत्नदीपकृतालोक पुष्पप्रकरशोभितम् ॥१८१७॥

सभाभवनका निर्देशन—हे नाथ ! यह सभा भवन है। जब यहा ही विधान सभा

आदिक ऐसे उत्कृष्ट स्थान, बहुत मनोहर और विशाल बनाये जाते है तो समझिये कि सौधर्म स्वर्गमे जो सौधर्म इन्द्रका मुख्य सभाभवन होगा वह कितना विचित्र और रत्नादिककी काति से जगमगाने वाला और विशाल होगा ? उसकी ओर इशारा करके मत्री जन कह रहे है कि हे नाथ ! यह सभाभवन है जो समस्त देवोके द्वारा सेवने योग्य है जहाँ सभासद् अपनी धर्म वार्ता करते है, धर्मश्रवण करते है और नई नई समस्यावोपर विचार करते है, समाधान करते है । यह सब कुछ रत्नमयी दीपकोसे प्रकाशभूत हो रहा है, यह जीवनका एक उत्तम स्थान है । स्वर्गोमे सूर्य और चन्द्र नही होते हैं । वहाँ दिव्य रत्नोका, कल्पवृक्षोका अद्भुत प्रकाश है जिसके कारण वहाँ सदा दिनसा ही बना रहता है । दिन रातका वहाँ कोई विभाजन नही होता है, लेकिन समय नामक पर्याय काल द्रव्यमे परिणमती है, उसे कोई नही टाल सकता । कही सूर्यका उदय होनेसे समय बनता हो यह बात नही है, समय तो अपने आप बन रहा है, पर यह समयकी सूचना देने वाला है । जैसे घडी चलती है तो घडीकी सूई समयकी सूचना देती है कि अब इतने मिनट हो गए, लेकिन घडी समय नही बनाती है । समय तो कालद्रव्य के परिणमनसे बनता रहता है । इसी प्रकार यह सूर्य चलकर समयकी सूचना देता है । घडी की छोटी सूई जब एक पूरा चक्कर लगाती है तो १२ घटा कहलाते है तो सूर्यका भी देखनेमे आया हुआ यह चक्कर पूरा लग जाय तो वे १२ घटे कहलाते है, और भी अनेक सकेतोसे समयका ज्ञान होता है । तो ये सब समयका ज्ञान करानेके साधन है, पर समय नही बनाते, समय तो स्वय ही बराबर व्यतीत होता रहता है और वह समय जाना भी नही जाता कि कितना समय बीत गया ? समय वहा है परतु दिन रातका भेद नही है । वहाँ रत्नछटाका इतना अद्भुत प्रकाश है कि जहाँ सदा ही वह प्रकाश बना रहता है ।

विनीतवेपधारिण्य कामरूपा वरस्त्रिय ।
तवादेश प्रतीक्षन्ते लास्यलीलारसोत्सुका ॥१८१८॥

आदेशप्रतीक्षामें स्थित देवाङ्गनाओके विषयमे प्रबोधन—ये सब खडी हुई जो सुन्दर देवागनायें है ये बहुत चतुर है, विनयशील है, सुन्दर भेष धारण करने वाली है, नृत्य बाजे सगीत आदिक रसोमे ये उत्सुक है । ये आपके सामने नृत्य गायन आदि करनेके लिए, आपका चित्त प्रसन्न करनेके लिए आपकी आज्ञाकी प्रतीक्षा कर रही है । देखो यही जब कोई बालक उत्पन्न होता है तो उस बालकको तो दो चार माह तक अपनी भी कुछ सुधि नही होती । उसे नही पता पडता कि ये लोग जो खडे हुए है मेरे पास वे कौन है ? वह तो जब ८-१० वर्षका हो जाता है तब सारी बाते सीखता है, मगर ये देव तो उत्पन्न होनेके बाद एक मिनट के अदर ही युवावस्था सम्पन्न हो जाते है । सब कुछ समझ जाते है, तो उत्पन्न होते ही ये सब समारोह भी बन जाते हैं और इतनी बातचीते भी चल रही है । मत्रीजन कह रहे हैं कि

हे नाथ ! यह सब अप्सरावोका समूह है जो आपका यह सकेत चाह रही है कि मै आपका सकेत पाऊँ तो गीत बाजे नृत्य आदिसे उत्सव मनाऊँ । यहाँ भी पुत्रोत्पत्तिके समयमे लोग बडे-बडे उत्सव मनाते है । वहाँ वह देव जो कि अभी ही उत्पन्न हुआ, बालकके रूपमे है वह यहाके बालकोकी तरह बेसुध तो नही है, वह तो महा बुद्धिमान है, श्रेष्ठ मन वाला है और अन्तर्मुहूर्तमे ही नवयुवक हो जाता है, समस्त श्रुत ज्ञानका वेत्ता, द्वादशागका वेत्ता भी होता है, केवल एक अग बाह्यका परिचय जरा कम रहता है, तो ऐसे उच्च बुद्धिमान सौधर्म इद्रसे मत्री जन कह रहे है कि हे नाथ ! ये अप्सराये आपको प्रसन्न करनेके लिए गीत नृत्य आदि करना चाहती है, ये आपके सकेतकी प्रतीक्षामे है ।

आतपत्रमिद पूज्यमिद च हरिविष्टरम् ।
एतच्च चामरव्रातमेते विजयकेतवः ॥१८१९॥

उत्पन्न देवसे संबंधित सिंहासनादि वस्तुओका प्रबोधन—अब उस इन्द्रके समीप जो आभूषण है, जो शोभा है उसका वर्णन वे मंत्री कर रहे है । हे नाथ ! यह आपका सिहासन है, उस इन्द्रके सिहासनपर बैठनेका साहस किसी दूसरेका नही होता । यहा भी स्कूलोमे अगर अध्यापक मौजूद नही है तो किसी भी विद्यार्थीको उसकी कुर्सीपर बैठनेकी हिम्मत नही पडती । वे सोचते है कि कही अध्यापक महोदय आ न जाये, या कोई शिकायत न कर दे, न्यायालय वगैरहमे भी किसी बडे आफीसरकी कुर्सीपर बैठनेकी किसीको हिम्मत नही पडती । ऐसी ही बात उस स्वर्गकी समझो । इन्द्रके सिहासन पर कोई दूसरा देव बैठनेका साहस नही करता । तो मत्रीजन कहते है कि हे नाथ ! आपका यह सिहासन पूज्यनीय है । हे नाथ ! यह आपका सिहासन, यह चमरोका समूह और ये आपकी विजयकी सूचक ध्वजायें हम सब देवोके लिए पूज्यनीय है ।

एना अग्रे महादेव्यो वरस्त्रीवृन्दवन्दिताः ।
तृणीकृतसुराधीशलावण्यैश्वर्यसपद ॥१८२०॥
श्रृङ्गारजलधेर्वेलाविलासोल्लासितभ्रुवः ।
लीलालङ्कारसम्पूर्णास्तव नाथ समर्पिता ॥१८२१॥
सर्वावयवनिर्माणश्रीरासा नोपमास्पदम् ।
यासा श्लाघ्यामलस्निग्धपुण्याणुप्रभव वपुः ॥१८२२॥

पट्टदेवियोके विषयमे प्रबोधन—ये सब आपकी पट्ट देविया है । ये श्रेष्ठ देवागनायें देवो द्वारा वदित है, ये बहुत पूज्यवती है और श्रेष्ठ परिणाम वाली है । इनमे जो प्रधान इन्द्राणी होती है उसका यह नियम है कि वह एक भव धारण करके मुक्त हो जाती है । जब तीर्थंकर देवका जन्म होता है तो सर्व प्रथम उस सचि देवोकी ही उन तीर्थंकर देवका दर्शन

होता है, ऐसा उस सचि देवीका सौभाग्य होता है। इसी प्रकार अन्य भी अग्र महर्षिया भी पुण्यवान आत्मा है, उनकी सेवा समस्त देव करते है। वह सचि देवी अपने आपका उस समय बडा गौरव अनुभव करती है और उस इन्द्रके सारे समागमोको वह तुच्छ समझती है। इसको यो समझ लीजिये कि जैसे मनुष्योमे पतिव्रता स्त्री जो एक मात्र पतिसे अपना महत्त्व समझतो है वह वैभवको तुच्छ गिनती है और पतिके स्नेह और कृपाको महत्त्व दिया करती है। तो ये देविया शृंगाररूप समुद्रकी लहरोंके समान चचल है। सो हे नाथ! ये सब देविया आपके चरणोमे समर्पित है। ये सब आपके चरणोकी सेवाके लिए आयी है। इनकी शोभा अनुपम है, इनका शरीर योग्य चिकने पवित्र परमाणुवोसे बना हुआ है। घृणारहित इनका शरीर है, सभी उत्तम वर्गणावोसे इनका शरीर बना हुआ है, ये सब आपके चरणोंमे समर्पित हैं अर्थात् आपकी सेवाके लिए इनका जीवन है, आप इन्हे स्वीकार करें, इस प्रकार मत्रीजन उत्पन्न हुए सौधर्म इन्द्रको समस्त वार्ता बता रहे है।

अयमैरावणो नाम देवदन्ती महामना।
धत्ते गुणाष्टकैश्वर्याच्छ्रिय विश्वातिशायिनीम् ॥१८२३॥

ऐरावण देवदन्तीके सम्बन्धमे प्रतिबोधन—ज्ञानी पुरुष ४ प्रकारके धर्मध्यानोका ध्यान करता है—आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और सस्थानविचय। अर्थात् कभी तो जिनेन्द्र भगवानकी आज्ञाको प्रधानता देकर ध्यान करते है, कभी रागादिक भाव कैसे दूर हो इस प्रकारकी चिन्तना सहित ध्यान करते हैं, कभी कर्मोके नाना फलोका विचार करके ध्यान करते हैं और सस्थानमे समस्त लोककी रचनाओ और भूतकालमे जो हो उस सबका स्मरण करके धर्मध्यान करते है। इस प्रसगमे ऊर्ध्व लोकका चिन्तन किया जा रहा है। जब कोई पुण्यवान आत्मा उस सौधर्म इन्द्रके पदपर उत्पन्न होता है तो वह उपपादशय्यापर जैसे ही उत्पन्न हुआ कि वहाके देव उसका बडा समारोह मनाते हैं। उस समय वह इन्द्र जो अभी अभी उत्पन्न हुआ, उत्पन्न होते ही उन सब दृश्योको देखकर सम्भ्रम करता है कि यह कौन सा नगर है, ये कौन लोग खडे हैं, जब ऐसी मनमे शकासी करता है तो उस समय वहा खडे हुए मत्री लोग सौधर्म इन्द्रके उत्पन्न होनेमे उसे व सबको सब कुछ परिचय कराते है। इस परिचयमे अन्य अनेक परिचय कराते हुए इस समय ऐरावत अथवा ऐरावण हस्तीकी ओर ध्यान दिला रहे है। हे नाथ! यह ऐरावत नामका देव हस्ती है। वह कोई तिर्यञ्च नही है किन्तु देव ही है। वह प्राय हस्तीका ही रूप रखता है। हम और भी अनेक रूप रखते हैं पर इस ऐरावतको हस्तीका रूप रखना अधिक पसद है, और सौधर्मइन्द्र जब जब चलते हैं तो उनके बाह्यके रूपमे वह देवहस्ती आया करता है। तो हे नाथ! यह ऐरावत नामका देव-हस्ती है जो उदार चित्त वाला है और ८ प्रकारकी ऋद्धियोसे युक्त है। कभी अपना शरीर

बहुत छोटा बना ले और कभी बहुत बडा बना ले, कभी अत्यन्त हल्का शरीर बना ले और कभी अत्यन्त वजनदार। ऐसे नाना रूपोको जो बना सके ऐसी ऋद्धियो करके सहित है वह देवहस्ती। यह ऐसी शोभाको रख रहा है जिसकी शोभाका दूसरा हस्ती विश्वमे वही न मिलेगा। यह आपकी सेवामे खडा हुआ है।

इद मत्तगजानीकमितोऽश्वीय मनोजवम्।
एते स्वर्णरथास्तुङ्गा वल्गन्त्येते पदातयः ॥१८२४॥

हाथी, अश्व, रथ, पदाति सेनाके विषयमे प्रबोधन—अब मत्री उस सेनाके सम्बधमे परिचय दे रहे है कि हे नाथ! यह आपकी मदोन्मत्त हाथियोकी सेना है। वही वे हाथी तिर्यञ्च नही है, वे सब देव ही है, वहाँ कोई कष्टकी बात नही है, भूख, प्यास, क्षुधा, तृषा आदिककी वहाँ कोई वेदनाएँ नही है पर कुछ देवोके कर्मोका उदय ही ऐसा है कि जो अधिक पुण्यवान देवोकी सेवा किया करते है। तो यह बहुत प्रचण्ड बलशाली मदोन्मत्त अनेक कलावो सहित हस्तियोकी सेना है और यह देखो बडे वेग वाली अश्व सेना है। वहाँ कोई अस्व (तिर्यञ्च) भी नही है, वे देव ही है जो अश्वका रूप रख लेते है। यह चर्चा स्वर्गोकी चल रही है। स्वर्ग और नरक ये यद्यपि आखो नही दिख रहे लेकिन जो वर्णन जैन शासनमे किया गया है स्वर्ग और नरकोके सम्बधमे वह सब यथार्थ है। कैसे यथार्थ है इसे एक युक्ति से ही परख लीजिये। जिनेन्द्र देवने जितना जो कुछ वर्णन किया इस समस्त वर्णनमे कुछ वर्णन तो युक्ति और अनुभवमे उतारा जा सकता है और कुछ वर्णन ऐसा है कि सामने ही नही है, विचार ही क्या करे? युक्ति अनुभव कहाँ लगायें, कुछ ऐसी परोक्षभूत चीजका वर्णन है, किन्तु जब हम जिनेन्द्र देवके उपदेशमे से ७ तत्त्व ९ पदार्थ वस्तुस्वरूप आदिकको हम यथार्थ वर्णन पाते है तो युक्ति और अनुभवमे पूर्ण उतरता है। वस्तुका स्वरूप जैसा नपे तुले नय और शब्दोमे वर्णन किया है वह सब युक्ति और अनुभवमे पूर्ण उतरता है। तो जिनकी वाणी युक्ति और अनुभवजन्य स्वरूपको यथार्थ बता रही है तो उनके समस्त वचन प्रमाणभूत है। कितनी ही चीजे हम आँखो नही देखते है परन्तु है तो सही। तो जिनके धर्म और पुण्यके कर्म हैं उन्हे स्वर्गकी प्राप्ति होती है जिन्होने अधर्म और पापके कर्म किये है उन्हे नरक गति प्राप्त होती है। इन्द्रको परिचय कराया जा रहा है कि हे देव! इस तरफ देखो ये सब स्वर्ण रथ हैं। स्वर्ण निर्मित यह आपके रथकी सेना है, और इस तरफ देखो ये ऊँट खडे हुए है, यह सब आपकी पदातियोकी सेनाका समूह है, इस प्रकार सेनाओका परिचय कराया जा रहा है उस नवीन उत्पन्न हुए सौधर्म इद्रको।

एतानि सप्तसैन्यानि पालितान्यमरेश्वरैः।
नमन्ति ते पदद्वन्द्व नतिविज्ञप्तिपूर्वकम् ॥१८२५॥

सप्त सेनाओंका जात सुरेशके प्रति नमन—यह ७ प्रकारकी सेना है। यह परम्परासे पूर्ण थी, इन्द्रोके द्वारा पालित की गई है। अर्थात् आपसे पहिले जो इद्र था उस इद्रने समस्त सेनाको बडी प्रीतिसे पालन किया है। यह सब सेना केवल वैभवरूप है, इन्द्रोको अपनी रक्षा के लिए इस सेनाकी जरूरत नही है। ये ७ प्रकारकी सेनाये हे नाथ ! आपसे निवेदन कर रही है ये सब आपको कुछ विज्ञप्ति करते हुए आपको नमस्कार कर रहे है।

समग्र स्वर्गसाम्राज्य दिव्यभूत्योपलक्षितम्।
पुण्यैस्ते सम्मुखीभूत गृहाण प्रणतामरम् ॥१८२६॥

स्वर्गसाम्राज्यके स्वीकरणका आवेदन—यह समस्त स्वर्गका साम्राज्य जो दिव्य विभूति कर सहित है तुम्हारे पुण्यके कारण तुम्हारे सम्मुख हाजिर है। हे नाथ ! इस सब सामग्रीको आप ग्रहण कीजिये जिसमे ये नम्रीभूत समस्त देव भी सम्मिलित हैं। जो मनुष्य अपने पाये हुए समागमोमे बहुत आसक्ति रखता है, उसमे ममता रखता है तो वह मनुष्य इस भवमे उन सब समागमोका सुख भोग ले, पर वह आगेके लिए तो अपने सारे पुण्यको खो देता है। जो पुरुष पाये हुए वैभवमे ममता नही रखता है, यथार्थता समझता है, मिला है तो क्या है, आखिर पुद्गल ही तो है, मेरे स्वरूपसे जुदा ही तो है, इससे भी अधिक वैभव बहुत-बहुत भव भवमे मिला है, पर यह सब विनाशीक है, जुदा है, मैं इसमे कुछ नही करता यह वैभव मुझमे कुछ नही करता। मै अपने आप सत् हू, यह वैभव अपने आपमे परिणमन करता है, मेरा इससे कुछ सम्बध नही, ऐसा जो प्रत्यय रखता है, जिसे ऐसा सच्चा विश्वास है ऐसा पुरुप व्रत नियम संयम दान आदिक आचरण करता है तो उस अनुरागके प्रतापसे ऐसा पुण्य बध होता है कि उसे स्वर्गमे आकर बहुत बहुत पदविया मिलती है। तो मत्री जन उस सौधर्म इद्रसे कह रहे है कि यह सारा स्वर्ग साम्राज्य आपका है, सभी देव आपकी कृपाके अभिलाषी हैं, इन सबको आप स्वीकार कीजिये।

इति वादिनि सुस्निग्धे सचिवेऽत्यन्तवत्सले।
अवधिज्ञानमासाद्य पौर्वापर्यं स बुद्धचति ॥१८२७॥

सुरेशका अवधिज्ञानबलसे सर्व रहस्यका प्रबोध—जब मन्त्रियोने उस नवीन उत्पन्न हुए सौधर्म इन्द्रको स्वर्गकी विभूतिका परिचय कराया बडे मीठे वचनोसे बडी प्रेमयुक्त वाणी से बडी नम्रतामे और श्रद्धा प्रगट करने वाले वचनोसे, उस इन्द्रको सम्बोधित किया, उसका गुणानुवाद किया तो उस समय यह इन्द्र स्वय अवधिज्ञानको प्रकट करके पहिले और बादकी समस्त बातोको स्पष्ट जान जाता है। यह देव जब उत्पन्न होता है तो कुछ ही मिनटोमे यह जवान हो जाता है। मनुष्य तो १५–१६ वर्षोंमे जवान हो पाते है पर देव कुछ ही मिनटोमे युवा बन जाते है। उसे अन्तर्मुहूर्तका समय कहा गया है। तो अन्तर्मुहूर्त तक अवधिज्ञान

नही हो पाता । क्षायोपशमिक ज्ञान तो है किन्तु उसका उपयोग नही करते और अन्तर्मुहूर्त बाद मन्त्रियोने बताया उसको सुनकर अवधिज्ञानको प्राप्त करता है और अवधिज्ञानके द्वारा सब कुछ पहिले और बादकी बातें समझ जाता है । किस प्रकार समझा सौधर्म इद्रने, उसका वर्णन आचार्यदेव कर रहे है ।

अहो तपः पुरा चीर्णं मयान्यजनदुश्चरम् ।
वितीर्णं चाभय दान प्राणिना जीवितार्थिनाम् ॥१८२८॥

पुण्यफल देखकर सुरेश द्वारा पूर्वकृत तप आचार आदिका स्मरण—यह इन्द्र अवधिज्ञानसे सब कुछ जानकर अपने मनमे सोच रहा है कि अहो! देखो मैने पूर्व भवमे ऐसा तपश्चरण किया, धर्म किया जो अन्य जनोसे भी न पाला जाय उस तपके प्रसादसे आज देखो मैं नीची गतिसे निकलकर एक दिव्य गतिमें उत्पन्न हुआ हू । सौधर्म इन्द्रकी पदवी पाना यह बहुत बडे पुण्यकी बात है, और जो सयम धारण करता है, तपश्चरण धारण करता है, बडे विनयका परिणाम उत्पन्न होता है ऐसा पुरुष ही कोई सौधर्म इंद्र पदको प्राप्त करता है । धर्मका समागम हो तो उसके प्रसादसे यह पदवी प्राप्त होती है । ज्ञानी पुरुष इस पदवीको भी कुछ महत्त्व नही देते है । यह सब ससारका ही तो चक्र है । इस आत्माको इस पदवीमे भी सत्य सतोष नही प्राप्त होता, क्षोभ ही रहता है । इन वैषयिक सुखोंके भोगनेमे भी इस आत्माको शाति नही प्राप्त होती । शाति तो इस आत्माको अकेला ही रहनेमे है । यह मैं आत्मा सबसे निराला ज्ञानानदमात्र केवल अपने ही ज्ञान और आनद परिणमनको कर सकने वाला और इस ही ज्ञानानदके परिणामको भोग सकने वाला मै निराला सबमे आला आत्मवस्तु हू । इस प्रकार जो आत्मतत्त्वका ध्यान करता है वही तो जानने वाला ज्ञान और वही जाननेमे आ रहा ज्ञान, जब ज्ञान ज्ञेय एक हो जाते है उस समय इस ज्ञानी पुरुषको जो अद्भुत आत्मीय आनदका अनुभवी होता है तो आनद तो वास्तवमे वह है । ये सासारिक मायाजाल आनदके स्थान नही है । ज्ञानी तो यह सोचता है और यह सौधर्म इद्र भी ज्ञानी होकर इस वैभवमे आसक्त नही होता है, वह भी यथार्थ बात समझता रहता है लेकिन पुण्यका फल इन्ही रूपोमे फला करता है । अज्ञानी जन तो इस पुण्यफलकी चाह करते है पर ज्ञानी जन इस पुण्यफलकी भी चाह नही करते । वह इन्द्र विचार करता है कि देखो मैने पूर्वभवमे दुस्तर तपश्चरण किया, अनेक जीवोको मेंने अभयदान दिया, उसके प्रतापसे आज इस स्वर्ग लोकमे मै आया हू, ऐसा अवधिज्ञानसे पूर्व भवके आचरणोका वह विचार करता है । यह सब धर्मका माहात्म्य है ।

आराधित मन शुद्धया दृग्बोधादिचतुष्टयम् ।
देवश्च जगता नाथः सर्वज्ञ परमेश्वर ॥१८२९॥

पूर्वकृत चतुर्विध आराधनाका स्मरण—वह इंद्र अवधिज्ञानमें और भी वह विचार कर रहा है कि मैंने दर्शन ज्ञान चारित्र और तप—इन चार आराधनाओंसे उस परमतत्वका आराधन किया था। प्रत्येक मनुष्यके चित्तमें कोई एक मुख्य बात आराधनाके लिए रहा करती है। जिसमें जिससे प्रीति हो वह उसकी आराधना निरन्तर किया ही करता है। धनसे प्रीति करने वाला पुरुष निरंतर इस धनके संचयकी ही बात सोचा करता है। किसी पुरुषको अपनी स्त्री अथवा अपने पुत्रमें अधिक प्रीति है तो वह निरन्तर उसका ही ध्यान बनाये रहता है। उसीके ही स्वप्न वह सदा देखा करता है। प्रयोजन यह है कि हर एक मनुष्य किसी न किसी तत्वकी आराधना किया करता है। संसारी जन तो बाह्य पदार्थोंकी आराधना करते हैं किंतु ज्ञानीजन सम्यग्दृष्टि पुरुष दर्शन ज्ञान चारित्र और तपकी आराधना करते हैं। ये आराधनाएँ सब एक ही है। अपने आत्माकी आराधना, अपने आत्माके दर्शन गुणकी आराधना ज्ञानस्वरूपकी आराधना ये सब एक ही बात हैं। ज्ञानी लोग तो अपने आन्तरिक तपश्चरण करनेमें अपना उत्साह बढाते रहते हैं। दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप—इन चारों आराधनावोंको जिस देवने पूर्वके मनुष्यके भवमें किया था उनका स्मरण अब वह कर रहा है, ओह! मैंने पूर्वभवमें अपने मनको शुद्ध करके दर्शन ज्ञान चारित्र और तप आदिक आराधनाओंको किया था, उसके फलमें आज मैं स्वर्गमें उत्पन्न हुआ हूं। वह इंद्र विचार कर रहा है। पहिले तो इस प्रकारकी शंकायें की थीं कि मैं यहाँ कहाँ आ गया, ये सब पदार्थ क्या हैं, यह कौनसा स्थान है, यह कौनसा क्षेत्र है, यह कौनसा देश है आदिक शंकायें पहिले तो किया था, पर बादमें मंत्रियोंने परिचय दिया। वह खुद अवधिज्ञानके बलसे सब कुछ जान रहा है, और किस आचरणके प्रतापसे मैं यहाँ स्वर्गोंमें उत्पन्न हुआ, कैसे यह सब सम्पदा प्राप्त हुई है, उसका भी स्मरण कर रहा है।

निर्दग्ध विषयारण्य स्मरवैरी निपातित।
कषायतरवश्छिन्ना रागशत्रुर्नियन्त्रित ॥१८३०॥

पूर्वकृत विषयकषायविजयका स्मरण—वह इंद्र विचार कर रहा है कि मैंने पूर्व भवमें इन्द्रियके विषयोंसे परम उपेक्षा की थी, सम्यग्ज्ञानके बलसे यह उपयोग बनाया था कि ये विषयोंके उपभोग एक सरीके बेकारकी चीजे हैं, ये औपाधिक भाव हैं, मेरे स्वरूप नहीं हैं, इनसे मेरा कोई हित नहीं है, यों जानकर विषयोंसे उपेक्षा की थी, इस विषयवनको जला दिया था, कामरूपी शत्रुका नाश किया था। इन देवोंका बैरी एक कामभाव भी है जिस कामवासनामें आसक्त होकर मनुष्य अनेक उपद्रवोंमें पड जाता है, ऐसा यह कामभाव जो एक मनोज है उसका मैंने विनाश कर डाला था, सर्व परिग्रहोंसे मैंने मूर्छा परिणाम हटाया था, मैंने अपनी कषायोंको मंद किया था, दूसरे प्राणियोंको सतानेका मनमें भाव न आया था, मैंने

किसीकी झूठ बात न बोली थी, किसीकी निदा न की थी, परवस्तुवोंको अहितकर समझकर उनसे दूर रहा था, और भी वह इद्र निरतर विचार करता जा रहा है कि मैने पूर्वभवमे इस राग शत्रुपर आक्रमण किया था, इन समस्त बातोके कारण ही मुझे स्वर्ग प्राप्त हुआ है और यह सारो साम्राज्य प्राप्त हुआ है। इस जीवका मुख्य वैरी राग है। इस ही राग भावके कारण यह जीव निरन्तर दुःखी होता रहता है, फिर भी इसका इसे कुछ ख्याल नही होता। आप एक यह विचार कीजियेगा कि जितने भी क्लेश इस जीवको प्राप्त होते है वे रागभावके कारण प्राप्त होते है। चाहे स्त्री पुत्रादिकका राग हो, चाहे मान प्रतिष्ठाका राग हो, सभी जगह दु ख इस रागभावके कारण प्राप्त होता है। तो वह इन्द्र विचार करता है कि इस रागभावको भी मैने पूर्वभवमे ठुकराया था अर्थात् रागबैरीका विनाश किया था जिसके कारण मुझे आज यह स्वर्ग प्राप्त हुआ है और स्वर्गका यह सब इतना बडा साम्राज्य प्राप्त हुआ है।

सर्वस्तस्य प्रभावोऽयमह येनाद्य दुर्गतेः।
उद्धृत्य स्थापित स्वर्गराज्ये त्रिदशवन्दिते ॥१८३१॥

पूर्वकृत पुण्यधर्माचारके फलका निर्णय—जो जो कुछ तपश्चरण व्रत, सयम, दया, दान और परोपकार आदिक कार्य मैने पूर्व भवमे किए थे उसीका यह प्रभाव है कि मै दुर्गति से निकलकर स्वर्ग राज्यमे उत्पन्न हुआ हू। यद्यपि मनुष्यभव कोई दुर्गति नही है लेकिन सासारिक दृष्टिसे मनुष्यभवमे चूँकि रक्त आदिक धातुवे है, नाना प्रकारके सकट है, घृणाके बहुत स्थान है उस दृष्टिसे यह दिव्य शरीर कुछ विशिष्टता रख रहा है इस कारण यहाँ उद्धार की बात कही गई है। वैसे तो जीवका उद्धार मनुष्यभवसे ही होता है, कोई भी सिद्ध ऐसा नही है जो कि मनुष्य न होकर अन्य किसी गतिसे सिद्ध हुआ हो? चाहे कोई नरकसे आकर मनुष्यभव पाकर मोक्ष गया हो या कोई तिर्यञ्चसे आकर मनुष्यभव पाकर मोक्ष गया हो, अथवा देवगतिसे आकर मोक्ष गया हो, कितु जो भी पुण्यात्मा मोक्ष गए है वे मनुष्यभवको पाकर ही मोक्ष गए है। फिर वे उस पुण्यके फलमे दिव्य वैक्रियक शरीरको निर्मल निरखकर और क्षुधा तृषा आदिक वेदनाओसे रहित निरखकर कहा जा रहा है कि पूर्वभवमे ऐसे ऐसे पुण्य और धर्मके कार्य किये थे जिनके प्रतापसे वहाँसे उद्धार पाकर, मलिन शरीरसे निकलकर आज मै स्वर्ग राज्यमे आया हू, जो देव करके वदनीय हू। इस प्रकार यह सौधर्म इन्द्र अवधिज्ञानसे अपने पूर्वभवके परिणामोका स्मरण कर रहा है, और जो फल पाया है वह सब इस धर्मके प्रसादसे ही पाया है, ऐसा जानकर वह इद्र प्रसन्न हो रहा है, लेकिन थोडी ही देर बाद वह वहाँकी सौन्दर्ययुक्त देवागनाओमे अपना उपयोग देगा, उनके राग अनुरागकी ज्वालावोमे जलता रहेगा। इस दिव्य शरीरसे निर्वाणकी प्राप्ति नही होती है, यहाँसे मरकर नियमसे नीचे ही जाना पडेगा, इन सारी बातोका वह विचार करके कुछ विशाद भी करता

है और उस विशादमे उस ही मनुष्यभवको वह इद्र महत्त्व दे रहा है। जिस मनुष्यभवमे धर्म धारण करके आज वह स्वर्गके उस निर्मल वातावरणमे आया हुआ है उसका किस प्रकार यह सौधर्म इद्र चितन कर रहा है, इसका वर्णन अब आगे आयगा।

रागादिदहनज्वाला न प्रशाम्यन्ति देहिनाम्।
मद्वृत्तवार्यसंसिक्ता क्वचिज्जन्मशतैरपि ॥१८३२॥
तन्नात्र सुलभ मन्ये तत्कि कुर्मोऽधुना वयम्।
सुराणा स्वर्गलोकेऽस्मिन् दर्शनस्यैव योग्यता ॥१८३३॥

वर्तमान स्वर्गसमागम पानेके कारणोका सर्व समाधान—वह सौधर्म इन्द्र स्वर्गमे उत्पन्न होकर मत्रियो द्वारा सब परिचय प्राप्त करनेके पश्चात् अवधिज्ञानसे स्वय सारा समाचार और पूर्व भवका भी वृत्तान्त जानकर वह सब समाधान पा लेता है और समझ रहा है कि मैने पूर्वभवमे तपश्चरण किया, जीवोको दान किया, जिन्हे जीवन चाहिए उन्हे अभयदान दिया और दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तपकी आराधना की, कषायोको कम किया, राग शत्रुको जीता, उस सबका यह प्रभाव है कि मै आज इस सौधर्म स्वर्गका इन्द्र हुआ हू। इस ससारके प्राणियोको राग अग्निकी ज्वाला जला रही है जो कि इसे शात नही होने देती। सम्यक्चारित्र रूपी जलसे सीचे बिना यह रागादिक रूपी अग्निकी ज्वाला सैकडो जन्म लेनेपर भी नही बुझती। समागम तो सर्व सुखोका पाया, और अनेक तीर्थंकरोके कल्याणकका मुझे दर्शन मिल गया। ये सब सुयोग पाया, मगर सम्यक्चारित्रके बिना रागादिककी ज्वाला नही शात हो सकती, ससारसमुद्रसे पार नही हुआ जा सकता। अब ऐसा इद्र कुछ रगमे भगसा हो रहा है सो कुछ धर्मकी बातका चिन्तन करता हुआ अपनी वर्तमान विभूतिको तुच्छ देख रहा है। मिला तो क्या मिला ? ऐसे ही यहाँ सोच लीजिये कि धन वैभव मिला तो क्या मिला, सपदा, जायदाद, दूकान, कम्पनी, कारखाने अच्छे चल रहे है, ठाठसे अच्छे महलोमे रह रहे है, खूब सजे सजाये अच्छे कमरोमे रह रहे, इष्ट समागम भी खूब मिले हुए है तो इससे क्या होगा ? न तो इस समय शान्ति है और न भविष्यके लिए कोई शांतिका मार्ग है। यह सब तो ससार की परम्परा है। स्वप्नकी तरह कुछ दिनोका खेल है। सौधर्मइद्र विचार कर रहा है कि जिस सम्यक्चारित्र रूप जलके बिना रागादिककी ज्वाला सैकडो जन्मोमे भी बुझ नही सकती है वह सम्यक्चारित्र यहाँ सुलभ नही है। इस देवपर्यायमे वह सम्यक्चारित्र नही प्राप्त होता है। जहाँ दु ख नही आते, सुख और वैषयिक आरामोमे ही समय व्यतीत होता है वहाँसे उद्धारका अवसर नही है। वह सम्यक्चारित्र यहाँ सुलभ नही है तो अब हम क्या करे ? जिसने पूर्वभवमे धर्मकी साधना की थी, धर्मका सस्कार लेकर उत्पन्न हुआ है उसे अब उस धर्मकी सुध आ रही है। एक भव ऐसा है यह देवका वैक्रियक शरीर होनेके कारण कि उस

भवमे सम्यक्चारित्र सयम नही बन पाता। वैषयिक सुखके सारे साधन है। जब भूख ही नही लगती तो उपवास क्या करना ? कभी लगी हजारो वर्षोंमे भूख तो उनके ही कठसे अमृत झर जाता है और वे तृप्त हो जाते है। तो भूख प्यासकी कोई वेदना ही उनमे नही रही। ऐसे ही कोई इष्ट वियोगकी बात भी वहाँ नही है। रोग शोक आदिककी भी कोई बाधाये नही है, वे तो बडे सुखमे रहा करते है, इस कारण उनमे वैराग्य उत्पन्न होनेका कोई अवसर ही नही आता है। तो वह इद्र विचार कर रहा है कि यहाँ सम्यक्चारित्र नही हो सकता तो हम क्या करे ? करने योग्य तो यही काम था। आत्माके उद्धारका तो यही उपाय था, वह उपाय नही बन पा रहा है, ऐसे प्रसगको सुनकर तो कुछ अपने चित्तमे बात आना चाहिए कि मनुष्यभव ऐसा दुर्लभ है, उसे हम किस प्रकार व्यतीत कर रहे है ? हम इस मनुष्य भवका सदुपयोग कर रहे है, या यो ही गप्पसप्पमे इस मनुष्य भवको बिता रहे है। अर्थात् हम अपने चित्तको परपदार्थोमे लगा रहे है या अपने आपमे विराजमान शुद्ध ज्ञानस्वभावी परमात्मतत्त्वमे विराजमान रहते है, जरा सोचिये तो सही। यह मनुष्यभव बडी जिम्मेदारीका भव है। यहाँ न चेते तो फिर किस जगह ठिकाना है ? इद्र विचार कर रहा है कि यहाँ चारित्र तो है नही, अब हम क्या करें ? स्वर्ग लोकमे तो एक सम्यग्दर्शनकी ही योग्यता है।

अतस्तत्त्वार्थश्रद्धामे श्रेयसी स्वार्थसिद्धये।
अर्हद्देवपदद्वन्द्वे भक्तिश्चात्यन्तनिश्चला ॥१८३४॥

पुण्यफल निरखकर प्रभुभक्ति आदि पुण्याचारोके संकल्पका निर्णय—इस कारण जब कि स्वर्गलोकमे देवोके चारित्रकी योग्यता नही है, केवल सम्यक्त्व की ही योग्यता है तब मेरा तो अपने आत्माके प्रयोजनकी सिद्धिके लिए तत्त्वार्थकी श्रद्धा बनी रहे, यही कल्याणकारिणी है। मेरे सप्त तत्त्वका श्रद्धान रहे, अरहत देवके चरणोमे मेरी निश्चल भक्ति रहे, वीतराग सर्वज्ञ देवकी जिन्होने शरण गहा उन्होने एक सत्य शरण पाया, और जो स्त्री पुत्र मित्र और ये प्रजाके लोग मोही जन इनकी जिन्होने शरण गहा वे अपने आपको बरबाद गया समझें। प्रभु वीतराग सर्वज्ञ देवके निकट मेरा हृदय सदा बसा रहे। अरहत देवके चरण कमलोमे मेरी अत्यन्त निश्चल भक्ति रहे। सौधर्म इद्र करता भी अरहत भक्ति बहुत-बहुत है। तीर्थंकरोके कल्याणककी भक्ति करनेसे उसे कितना मौज मिलता है, जहाँ दो सागरकी आयु होती है। तो दो सागरकी आयुके बीच हजारो तीर्थंकरोके कल्याणक मना लेता है। एक सागरमे हजारो कोटपूर्व समाये हुए है और एक तीर्थंकरकी आयु अधिकसे अधिक कोट पूर्व तक ही हो सकती है। विदेह क्षेत्रमे तीर्थंकरोकी परम्परा सदा चला करती है। तो सभी तीर्थंकरोका कल्याणक वह सौधर्म इद्र मनाता है। तो सौधर्म इन्द्र चितन कर रहा है कि अरहत देवके चरण-कमलो

मे मेरी भक्ति अत्यन्त निश्चल बनी रहे।

यान्यत्र प्रतिबिम्बानि स्वर्गलोके जिनेशिनाम्।
विमानचैत्यवृक्षेषु मेर्वाद्युपवनेषु च ॥१८३५॥
तेषा पूर्वमहं कृत्वा स्वद्रव्यै स्वर्गसभवैः।
पुष्पचन्दननैवेद्यैर्गन्धदीपाक्षतोत्करैः ॥१८३६॥
गीतवादित्रनिर्घोषैः स्तुतिस्तोमैर्मनोहरैः।
स्वर्गैश्वर्यं ग्रहीष्यामि ततस्त्रिदशवन्दित ॥१८३७॥
इति सर्वज्ञदेवस्य कृत्वा पूजामहोत्सवम्।
स्वीकरोति ततो राज्य पट्टबन्धादिलक्षणम् ॥१८३८॥

सुरेश द्वारा सर्वप्रथम देवार्चताका निश्चय—सौधर्म इन्द्र विचार कर रहा है कि जितने प्रतिबिम्ब इस स्वर्गलोकमे जिनेन्द्रदेवके हैं, जो भी जिनेन्द्रदेवके प्रतिबिम्ब इस स्वर्गलोक मे समाये हुए है, चैत्यवृक्षोमे मेरु आदिक बनोमे बने हुए है उनकी द्रव्य, पुष्प, चदन, नैवेद्य, गध, दीपक व अक्षतोंसे सर्वप्रथम पूजा करके और गीत नृत्य वादित्रोके शब्दोसे मनोहारी स्तुतियोके समूहोसे उन अरहद बिम्बोकी पूजा करके फिर मै स्वर्गके ऐश्वर्यको ग्रहण करूँगा। किसीको वैभव मिलता है तो धर्मकी कुछ बात भी ख्यालमे न रखकर सबसे पहिले उस वैभव को ही बटोरनेके लिए दौडता है। ऐसी स्थितियाँ तो यहाँ भी लोगोकी देखी होगी। जब अधिक वैभव पासमे था तब तो मदिर भी जाते थे, भक्ति, पूजा, समारोह आदिके लिए भी अधिक समय था, पर पुण्यके प्रतापसे जब वैभव अधिक बढ गया तो ऐसी नौबत आ गयी कि दर्शन करने जाने तकका भी समय नही मिल पाता। लोग कहते कि बाबू जी दर्शन करने जाने का तो समय निकाल लिया करो तो क्या कहते कि क्या करे भाई! तुम्ही देख लो, कहाँ हमारे पास समय है, यहाँ वहाँ फसे है। तो ठीक है, कर लो स्वच्छन्द प्रवृत्तिया, कभी इकट्ठा समय मिल जायगा, फिर चाहे दर्शन कर सको या न कर सको। तो सौधर्मइन्द्र यह चितन कर रहा है कि मैं पहिले स्वर्गलोकमे चैत्य वृक्षोमे, मेरु आदिक बनोमे जितने भी प्रतिबिम्ब हैं उनका पूजन वदन करके फिर मैं स्वर्गके ऐश्वर्यको ग्रहण करूँगा। जो महापुरुष होते हैं उनमे इतनी महानता होती ही है कि वे वैभवमे इतना आसक्त नही होते कि धर्मके कार्यको छोडकर वैभवकी लिप्सा रखें। ऐसा विचार करके और उनका पूजन करके फिर यह सौधर्म इन्द्र जो देवो द्वारा वदित है, स्वर्गके देवो द्वारा पूजा महोत्सव आदि किया जानेपर वह राज्यको स्वीकार करता है। सबने हाथ जोडकर निवेदन किया, महाराज आप हमारे अधिपति हैं, हम सब पर कृपा कीजिये, अपना आधिपत्य स्वीकार कीजिये और जो भी नियोग होता हो। जैसे यहाँ लोग सिरपर पगडी बाँध देते ऐसे ही वहाँ भी कुछ तो नियोग होता ही है, नियोग कर दिया

कि बस इन्द्र पदकी घोषणा हो गई है, इन्द्र है यह। देख लीजिये सब। यह वैभव मिलता है पुण्यके उदयसे। पुण्य बनता है धर्मभावसे, अनुरागसे। तो फिर यह बतलावो कि वैभव कमाने का उपाय मेहनत है या धर्मका पालन है। खूब युक्तिपूर्वक देख लीजिए। मूल कारण तो धर्मपालन है, जिसके प्रसादसे यहाँका भी वैभव मिलता है और ऐसा रास्ता मिलता कि सदा के लिए ससारके सकट दूर हो जाते है।

तस्मिन्मनोजवैर्यानैर्विचरतो यदृच्छया।
वनाद्रिसागरातेषु दीव्यते ते दिवौकसः ॥१८३९॥

देवोका मनोनुकूल वनादिविहार—तत्पश्चात् वे सब देव मनके समान वेग वाले विमानोके ऊपर चढकर स्वच्छद विचरते वाले वनोमे, पर्वतोपर, समुद्रके तटपर, क्रीडा करते रहते है, मन बहलाते रहते है। मौकेपर धर्मकी मुध लेनेकी भी महत्ता होती है। वहाँ सारे जीवनभर सौधर्मेन्द्र या अन्य देव धर्ममे नही लगे रहते है, अधिक समय तो उनका क्रीडामे, विहारमे, आराममे व्यतीत होता है। किंतु जब समय आया तो इन सबकी दृष्टि न रखकर केवल एक धर्मके आलम्बनका कार्य रहता है, इसीलिए वे महान है। अनेक पुरुप तो देवोकी सिद्धिका मत्र पढा करते है कि कोई देवता सिद्ध हो जाय तो जैसा हमारा आदेश होगा वैसा वह देव काम कर देगा। पर ऐसा आदेश देने वाले मनुष्य यहाँ है कहाँ, पर यह एक उन लोगोके मनका शौक है, और साथ ही देव भी उस ही का सहाय करते है जिसके पुण्यका उदय है, जिसमे धर्मका सस्कार है। देव और मनुष्योकी बात एकसी ही तो है। मनुष्य भी उसके ही सहायक है जिसमे धर्म है, जिसके पुण्यका उदय है। यही बात देवोमे लगा लें। वे कुछ सासारिक कार्योको सिद्ध करानेमे मनुष्योसे विशेप समर्थ है, लेकिन इसका महत्त्व अज्ञानियोंके ही चित्तमे है। ज्ञानी पुरुप तो केवल धर्मको महत्त्व देता है, वह तो इन वैपयिक सुखोसे विरक्त रहकर अपनी आयु व्यतीत करता है।

सकल्पानन्तरोत्पन्नैर्दिव्यभोगैः समन्वितम्।
सेवमानाः सुरानीकै श्रयति स्वर्गिणः सुखम् ॥१८४०॥

देवोकी दिव्यभोगसम्पन्नता—सकल्पके अनतर ही उत्पन्न हुए दिव्यभोगोसे युक्त सुख को वे देव भोगा करते है। यहाँ भी कोई बडा पुरुप होता है तो इच्छा करते ही उसे वह चीज सुगमतासे प्राप्त हो जाती है। क्योकि खर्चकी कुछ परवाह नही, श्रमकी भी कुछ परवाह नही, जिस चीजकी इच्छा की अथवा जिस कामकी इच्छा की वह काम तुरन्त ही बन जाता है। दुःख सुखसे समन्वित सुख वही प्राप्त हो जाते है। सकल्प करते ही उत्पन्न हुए नाना भोगोको सेवते हुए देवोकी सेना सहित वह सौधर्म इन्द्र स्वर्गके सुखोको भोगता रहता है। लोग तो किसीके मर जानेपर कहने लगते कि अमुक तो स्वर्ग सिधार गया। पर उन्हे क्या

मालूम कि वह स्वर्ग सिधार गया या नरक सिधार गया। लोगोमे कुछ ऐसी परिपाटी थी कि जो अत्यन्त वृद्ध पुरुष मरता था जिसने अपने नाती पोते तथा पोताके भी नाती पोना देख लिया हो उसकी अर्थीके साथ चाहे एक चवन्नी भरकी ही हो, सोनेकी एक सीढी सी बनवाकर बाँध देते थे, इसलिए कि इस वृद्ध पुरुषको स्वर्ग जानेमे कोई कठिनाई न पडे। हो सकता है कि यह बात अब भी चलती हो। पर उन्हे यह पता नही कि सीढी चढनेके ही काममे नही आती वह तो उतरनेके भी काममे आती है। तो लोगोके चित्तमे स्वर्गकी बडी महिमा समायी हुयी है। जो लोग धर्म करते है वे करीब करीब ऐसा चित्तमे भाव रखते है कि हम देव हो और अच्छी विभूति पाये। किन्तु देव होकर भी किया क्या, विभूति भोगकर भी किया क्या? दो चार सागरका समय निकाल ही दिया तो क्या हुआ? समय तो अनन्तकाल पडा हुआ है। उद्योग ऐसा करें कि अपने आत्माकी पहिचान बने। अपने आपकी उपासना हो और ससारके क्लेश दूर हो सके। सबसे अधिक बाधक है तो पर्यायबुद्धिका अभिप्राय बाधक है। मेरी यहाँ इज्जत होनी चाहिए। मेरा नाम यहाँ सब जगह बढ जाना चाहिए। ये सब पर्यायबुद्धिके लक्षण है। जो इन बातोसे चिपटता है उसके भाव विशुद्ध नही रह सकते। और अन्तमे उसकी दशा भली नही बन सकती। ये देव यह इन्द्र सकल्पमात्रसे ही प्राप्त हुए भोगोमे सुखोमे सागरो पर्यन्त की आयु व्यतीत कर डालते है।

महाप्रभावसम्पन्ने महाभूत्योपलक्षिते।
काल गत जानति निमग्ना सौख्यसागरे ॥१८४१॥

महाभूतिसहित सुखसागरमे निमग्न देवोका कालक्षय—ये देव दिव्य सुख सागरमे निमग्न होते हुए व्यतीत होते हुए कालको नही जानते। कैसा है यह सुख, कैसा है यह सुख सागर? महाप्रभावसे युक्त है और बडी विभूतिसे उपलक्षित है, जहाँ महान वैभव बना हुआ है ऐसे सुख सागरमे वे देव इतना मग्न रहते है कि जो समय गुजर गया वह जाननेमे नही आता कि यह कैसे गुजर गया? यहीकी बात देखलो, जिसकी जितनी आयु हो गई है उसे यह नही लग रहा क्या कि अरे इतनी आयु कैसे व्यतीत हो गई? यहा तो बीच-बीचमे बडी कष्टप्रद स्थितियाँ भी आयी, मानो किसी बीमारीसे ग्रस्त थे, दिलपर हाथ धरे हुए घबडाये हुए बडी मुश्किलसे समयको काटा, ऐसी भी स्थितिया आयी पर साथमे कुछ सुखी भी रहे, इतनेसे ही सुखके कारण इतनी आयु व्यतीत हो गई और अब ऐसा लग रहा कि यह इतनी आयु कैसे चली गई, फिर वे तो देव ही है। उनका जीवन तो सुख ही सुखमे व्यतीत होता है, फिर उन्हे उस जीवनके बीतनेमे क्या पता पडे? सागरो पर्यन्तकी वह आयु पता नही पडती उस सुखके भोगते हुए मे कि वह इतनी लम्बी आयु कैसे व्यतीत हो गई। इस मनुष्यको जब वृद्धावस्था आती है तो यह ख्याल होता है कि अहो! मैंने इतना सारा जीवन

व्यर्थ ही गवा दिया, कोई हितकी वात न पायी। यों वृद्ध वस्थामे इस मनुष्यको बडा पछतावा होता है। ऐसी ही बुद्धि यदि बाल्यावस्थामे आ जाय तो इस मनुष्यका कल्याण हो जाय। पर बाल्यावस्थाको तो यो ही अज्ञानतामे बिता देता है, युवावस्थाको भोग भोगनेमे बिता देते है और अतमे जब वृद्धावस्था आती है तो इसे कुछ अपने आपकी सुध होती है—ओह! मैंने इतनी बडी आयु व्यर्थ ही गवा दी। ऐसे ही समझो वे देव भी उस सुख सागरमे निमग्न हुए सागरो पर्यन्तकी आयुको व्यतीत कर डालते है पर उन्हे यह पता नही पडता कि इतना बडा समय कैसे व्यतीत हो गया?

क्वचिद्गीतै क्वचिन्नृत्यै क्वचिद्वाद्यै मनोरमैः।
क्वचिद्विलासिनीव्रातक्रीडाशृङ्गारदर्शनै ॥१८४२॥
दशाङ्गभोगजैः सौख्यैर्लभ्यमानाः क्वचित् क्वचित्।
वसति स्वर्गिण स्वर्गे कल्पातीतवैभवे ॥१८४३॥

देवोके महाभूतिसम्पन्न सुखोका वर्णन—कही तो मनको लुभाने वाले गीत वादित्र नृत्योके द्वारा वे सुख प्राप्त करते हुए स्वर्गमे रहते है, कभी विलासिनी देवागनाओके समूहसे किए हुए क्रीडा शृङ्गारको देखनेमे समय व्यतीत करते है, वही १० प्रकारके भोगोसे कल्प-वृक्षोसे उत्पन्न हुए सुखो सहित अद्भुत वैभव वाले होकर स्वगोमे वे अपना समय व्यतीत करते है। जैसे यहाँ फालतू मोही अज्ञानी जीवोको जिन्हे सुख सुविधा बहुत मिली है वे अब क्या करे? लेटे लेटे ही प्रभुका ध्यान करे, पर वे क्या करते है कि अब सनीमा थियेटर आदि देखना है, अब क्लबकी गोष्ठियोमे जाना है, अब सगीत सुनने जाना है, आदिक प्रवृत्तियाँ करते है, वे विश्रामसे नही बैठ सकते है, ऐसे ही वे देव भी क्या करें बैठे बैठे? कोई रोजि-गार भी नही करना है, कोई चीजकी फिक्र नही है तो वे कभी गीतोसे कभी नृत्योंसे कभी वादित्रोंसे भी शृङ्गारोसे नाना प्रकारके सुखोको प्राप्त करते हुए वे देव स्वर्गोमे जहाँपर अद्भुत वैभव है कुछ आयु पर्यन्त बसा करते है। यह है ऊर्ध्व लोकको रचनाकी चर्चा। सस्थानविचय धर्मध्यानी सम्यग्दृष्टि पुरुष लोकके आकारका विचार कर रहा है। उस विचारमे ऊर्ध्व लोकका यह चितन कर रहा कि वहाँ ऐसे ऐसे देव है, ऐसी उनकी स्थितिया हैं।

लोकवासी संसारी जीवोके आवासोका संक्षिप्त कथन—लोकके तीन विभाग है—अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक। अधोलोकमे नारकियोका निवास है, मध्यलोकमे पशु पक्षी आदि और मनुष्योका निवास है, ऊर्ध्व लोकमे देवोका निवास है। तीनो ही लोकोमे जो श्रेष्ठ मन वाले जीव है वे जीव ज्ञानबलसे आत्मस्वरूप और परमात्मस्वरूपका निर्णय करके अपने आपमे प्रसन्न और तृप्त रहा करते है। नारकी जीव नाना कष्टोमे रहकर भी एक सम्य-ग्ज्ञानके बलसे अन्तरङ्गमे तृप्त रहा करते है। तो मध्यलोकमे ये मनुष्य और मन वाले तिर्यच

ये भी अपने स्वरूपकी सुध लेकर तृप्त रहा करते है और देवोमे भी नाना प्रकारके वैषयिक सुख भोगते हुए भी दिव्य सुखोंके आनदमे तृप्त नही रहा करते ज्ञानी देव, किंतु आत्मस्वरूपके अनुभवमे ही तृप्त रहा करते है। यद्यपि देवोमे सयम नही होता, फिर भी सम्यक्त्वकी साधना उनके रहा करती है। ज्ञानी पुरुषको अपने आपके स्वरूपमे एक विचार चलता है। इस ज्ञानी ने विश्वके समस्त पदार्थोका निर्णय कर लिया है। प्रत्येक पदार्थ स्वतत्र सत् है। कभी किसी निमित्तमे आकर कोई पदार्थ कैसी ही अपनी हालत वदले, तिसपर भी प्रत्येक पदार्थ अपना वस्तुस्वरूप कही मेटता। प्रत्येक पदार्थ सत् है, और जो सत् है वह प्रति समय नवीन अवस्था रूप बनता है, पुरानी अवस्थाको विलीन करता है और शाश्वत रहा करता है। यह पदार्थोकी वस्तुगत बात है। मैं भी सत् हू, मैं भी हू। यदि मैं न होऊँ तो बडा अच्छा था। फिर ये सुख दु.ख मुझे कैसे होते। पर ऐसा तो नही है। मैं तो हू, जब मै हू तो मेरी कुछ न कुछ हालत सदा चलती रहेगी। बिना अवस्थाके कोई पदार्थ रह नही सकता। आज अवस्था देखकर ही यह निर्णय कर लो कि मैं आगे भी किसी अवस्थामे रहूगा। तब एक बहुत बडी जिम्मेदारी अपने आपपर है कि अपनेको ऐसा न्याययुक्त रहना चाहिए अपनी पदवीके अनुसार अपने कर्तव्यमे निष्ठ रहना चाहिए कि हमारा भविष्य बिगडे नही, इस भवका भविष्य भी न बिगडे और इस भवको छोडकर जो जो आगेका परलोक होगा उसका भविष्य भी न बिगडे।

आत्महितके अर्थ कल्याणार्थियोका कर्तव्य और चिंतन—आत्महितके अर्थ श्रावकोको, गृहस्थोको एक सकल्पी हिंसाका त्याग बताया है। किसी भी जीवको अपना द्वेषी जानकर उसे द्वेषी मानकर उसका अकल्याण करनेपर अर्थात् उसका विनाश करनेपर उतारू न हूजिये, हाँ कोई विरोधी बनकर हमारे देश जाति आत्मापर कुटुम्बपर आक्रमण करता है तो उस आक्रमणकारीपर आक्रमण करके उसका पूरा मुकाबला करे। उसमे यदि घात हो जाय तो उसका नाम विरोधी हिंसा है। इस विरोधी हिंसाका त्यागी गृहस्थ नही होता। साधुजन तो शत्रु द्वारा आक्रमण किए जानेपर भी शत्रुके प्रति रचमात्र भी द्वेष न रखेगा और न कोई प्रतिक्रमण करेगा। वह तो अपनी साधनापर उतरा हुआ है, वह अपनेको विकल्पोमे न डालना चाहेगा। वह साधु विरोधी हिसा भी नही करता। गृहस्थ तो उद्यम आदिकमे, खान पान आरम्भ आदिकमे भी जो हिंसा होती है उससे अलग नही रह सकता, हाँ सकल्पी हिंसाका अवश्य त्यागी है, ऐसा गृहस्थ भी और ऐसा वह देव भी अपने आपके विषयमे ऐसा चिंतन रखता है कि मै क्या हू? एक सद्भूत वस्तु हू, स्वतत्र हू, यह आत्मा किसीके कैदमे नही आता, किसीकी पकडमे नही आता। लोग पकडे, गिरिफ्तार करें, कैद करे तो यह शरीर ही कैदमे आया, लेकिन वहाँ भी आत्मा अपने आत्मस्वरूपका चिन्तन करे तो वहाँ भी वह स्वतत्र है। यह मै आत्मा प्रतिसमय स्वतत्र हू। कोई खोटा परिणाम करता हू तो वहा भी केवल

मै ही खोटा परिणाम करता हू, कही दूसरा मुझमे मिलकर मेरा खोटा परिणाम करता हो ऐसा नही है। जब कभी मै शुभ परिणाम करता हू तो मै ही अकेला शुभ परिणाम करता हू, कोई दूसरा मुझमे मिलकर मेरी शुभ परिणतिको बनाता हो, ऐसा नही है। जब मैं शुभ अशुभसे हटकर केवल एक आत्मधर्ममे स्थिर होऊँगा तो वहाँ भी केवल मै ही स्थिर होउँगा, दूसरा कोई जीव मेरे साथ मिलकर स्थिर हो जाय ऐसा नही होता। मै प्रत्येक अवस्थामे स्वतत्र हू। जब भी दु.खी अथवा सुखी होता हू तो मै अकेला ही होता हू। मै अपना एक स्वभाव रखता हू। प्रत्येक पदार्थ अपना एक स्वरूप रखा करते है। चाहे वह पदार्थ बिगड जाय, और और रूप बन जाय फिर भी स्वभाव उसका एक ही रहा करता है। जैसे पानी गर्म भी हो जाय गर्मीसे अथवा अग्निसे, तिसपर भी उस जलका स्वभाव ठढा है इसी प्रकार मैं भी अपना कोई स्वभाव रखता हू।

मेरे शाश्वत स्वरूपकी शाश्वतता—आज हम यद्यपि बहुत बिगडी हुई स्थितिमे है। आत्माका कार्य था केवल जाननहार रहना, मगर इसमे राग, स्नेह, द्वेष, मोह ये सारे विष भरे पडे हुए है। इतनी बिगाड की स्थितिमे है। मेरा कार्य था कि मैं एक सहज आत्मीय आनन्दका ही अनुभव किया करता और अनेक दु.ख अनेक चिता अनेक कल्पनाओका मैं शिकार बना हुआ हू। बहुत बिगडी हुई स्थितिमे हू, फिर भी अपने अतस्तत्वको निरखा जाय तो मै एक शुद्ध ज्ञानानन्दस्वभावी हू। जब तक अपने इस ज्ञानानन्दस्वभावकी दृष्टि न जगेगी तब तक हमारी स्थिति सुधर नही सकती। तो मैं एक स्वभाव रखता हू जो स्वभाव मेरा सदा निश्चल है, कभी चलायमान नही होता। किसी भी वस्तुका स्वभाव चला जाय तो वस्तुकी सत्ता ही समाप्त हो जायगी। कितना ही बिगाड हो जाय, कितना ही विरुद्ध परिणम जाय कोई भी पदार्थ, मगर स्वभाव स्वरूप मेरा वही रहता है जो मेरे सत्त्वके कारण मुझमे अनादि अनन्त है। यह एक अपने आपको अपने सहज सिद्धस्वभावके देखनेकी बात चल रही है। इस जीवने बहुत-बहुत विकल्प किये, बाह्यदृष्टि करके अनेक मौज माने, अनेक कष्ट माने लेकिन फल कुछ हाथ न आया। बाह्य पदार्थ विमुख हो गया, मै अकेला ही रह गया और जो उस सयोगके समयमे पापकार्य किया उन पापकार्योकी वासना लगार तो मेरे साथ बनी हुई है। वे परपदार्थ तो बिछुड गए जिनकी दृष्टि करके मैने पापकार्य किया था लेकिन वे पापकार्य साथ चल रहे है। चल रहे है ठीक है, तिस पर भी यह ध्यान दीजिये कि मैने बाह्यपदार्थोका कुछ भी नही किया। वहाँ भी मै केवल अपने भाव ही बनाता रहा। पाप किया, खोटे भाव किया। खोटे भावोके बजाय यदि मै शुद्ध भाव कर लूँ तो खोटा भाव तो समाप्त हो जायगा, चिन्ता किस बातकी ? अगर कोई सोचे कि हम चिरकालसे पापी बने चले आ रहे है, खोटे भाव किए चले आ रहे है, मेरा क्या सुधार होगा ? तो भाई खोटे भावो

के सममगे खोटे भाव थे, परिणति ही तो है। यदि ज्ञानका अवलम्बन किया जाय और परिणामोको शुद्ध बना लिया जाय तो वे सभी खोटे भाव समाप्त हो जायेगे। परवाह, चिंता की क्या बात है? अपने स्वरूपकी सभाल करनेसे सारी गल्तियाँ क्षतव्य हो जाती है। स्वरूप को देखिये। मैने गल्तियाँ बहुत की, इच्छाये बहुत बढाया, स्वच्छन्दताये बहुत की, शक्ति, बला, चला, कीर्ति आदि पाकर भी मैने अनेक पातक कार्य किये, लेकिन मेरा आत्मा उन सर्व पापो से रहित है। मेरा स्वभाव एक ज्ञान और आनन्दरूप ही है। जरा भीतर निरखकर देखिये क्या मिलता है खुदमे? कोई रूप, रस, गध, स्पर्श नही है, एक जाननहार जो भीतर आत्मा है उस आत्माके ढाचेको देखिये, उस आत्माके स्वरूपको निरखिये क्या मिलेगा आत्मामे? एक ज्ञानप्रकाश, एक जाननभाव। तो केवल जाननभावरूप यह मै आत्मा अपने आपके स्वरूप को सभालूँ तो सारे पाप समाप्त हो जाते है।

मोहकी अपेक्षा ज्ञानकी अधिक बलवत्ता—लोग कहते है कि मोह बडा बलवान है, सब जगको वश कर डालता है, इस मोहसे पिंड छुटाना कठिन है, पर भाई! यदि मोहकी बलवत्ताके ही गीत गाते रहोगे तो इस मोहसे छुटकारा कैसे मिल सकेगा? अपनेको यदि कायर बना लिया तो यह मोह फिर छोड न सकेगा। लोग इस बातको तो भूल गये कि इस मोहसे भी बडा बलवान ज्ञान है। मोहने जिसके बधनको अनादि कालमे बना पाया है, चिर-कालमे बँध पाया है उस सारी बाँधको यह आत्मज्ञान क्षणभरमे ध्वस्त कर देता है। तो मोह की जितनी कला है, मोहका जितना प्रताप है, जितना उसका कार्य है सबको ध्वस्त कर देने का, और उसे भी क्षणमात्रमे नष्ट कर देनेका फल ज्ञानमे है। आत्मबल एक ज्ञानबलको ही कहते है। अपनेको अजर अमर स्वरूपमे निरखना और किसी भी परवस्तुको अपने उपयोगमे न रखना यही तो एक आत्मबल है, उसकी प्रतीति तो की नही और मोह बलवान है यही गुण गाते रहे तो स्वय हम कायर होकर मोहके दु खको मोहसे ही मिटानेका उपाय जानकर मोह मोहमे ही फसे रहेगे।

भ्रममे तथ्यका अभाव—एक कथानक है कि एक कुम्हारका गधा गुम गया था, सो शामको सूर्य छिपते समय वह पासके गाँवमे ही ढूढनेके लिए गया हुआ था। वहाँ एक खेतमे गेहू कट रहे थे। सूर्यास्त हो गया तो मालिकने गेहू काटने वालोसे कहा कि तुम लोग जल्दी जल्दी काम निपटावो और चलो नही तो अधेरी आ जायगी। हमे जितना डर अधेरीसे है उतना डर शेरसे भी नही है। इस बातको एक पेडके नीचे बैठे हुए शेरने सुन लिया। शेर सोचने लगा कि अभी तक तो मैं अपनेको इस जगलका राजा समझ रहा था, पर मुझसे भी अधिक बलवान कोई अधेरी हुआ करती है। सो शेर कुछ डर सा रहा था। इतनेमे कुछ अधेरा तो हो ही गया था। वह कुम्हार उस पेडके नीचे पहुचा। पेडके नीचे बैठे हुए शेरको

उसने अपना गधा समझा और शेरने समझा कि लो आ यी वह अधेरी । कुम्हारने उसके कान पकडे, भली बुरी दो चार बातें भी कही और अपने घरमे लाकर गधोके बीचमे बाँध दिया । जब सवेरा हुआ तो शेरने देखा कि यह क्या खेल, यह मै कहाँ बाँधा, मै गधोके बीच मे बँधा हूँ । उसने अपने स्वरूपको सम्हाला और बन्धन तोडकर भाग गया । यही हालत हम आपकी है, मोह ममताकी विशेष चर्चायें करते है, विषयोके साधनोको चित्तमे बडा महत्त्व देते है, जिनसे हमारे राग होता है उनका हम हृदयमे बडा बडप्पन मानते है । तो ये सब हमारी कायरताको बढाने वाली बाते है, अर्थात् हम मोही बन बनकर उनके ही आधीन रहा करते है । एक दृष्टिसे निरखो—आत्महितकी दृष्टिसे तो अपनेको जो इष्ट लगता है, जिसमे हमारा चित्त आदिक मोहित रहता है वह तो मेरे प्रति शत्रुताका ही काम करने वाला है । यदि मै इनमे ही फसा रहा, इनके ही रागमे दबा रहा, अपने आपका विवेक खो दिया तो फिर जगतमे कौन सा ऐसा पदार्थ है कि जिसकी शरण गहे तो मुझे वास्तवमे शान्ति प्राप्त हो ? कुछ भी नही है । मै अपने इस कामनारहित, विभावरहित केवल ज्ञानमात्रस्वरूपको निरखू तो मुझे शान्ति प्राप्त होगी । ऐसा यह मै केवल जाननदेखनहार एक आत्मा हू । देखिये—ज्ञान आत्माका गुण है । आत्मामे रहता है, आत्मामे अभेद है, आत्माका स्वरूप है, किन्तु मोही पुरुषोका ज्ञान अपने आधारकी तो खबर नही रख रहा और बाहरी पदार्थोमे ऐसा लम्बा मोह करता जा रहा है कि मानो इसने अपनी आदि ही छोड दी है, असीम बाह्य पदार्थोमे भटक रहा है । अरे उस भटकते हुए ज्ञानको अपने आपके निकट ले आये तो केन्द्रीभूत ज्ञानमे वह बल बनेगा कि अभी तो हम पदार्थोको जाननेके लिए तरसते है और ज्ञात नही हो पाते, पर उस ज्ञानबल से पदार्थोको जाननेकी इच्छा भी न रह सकेगी और सारा विश्व लोकालोक हमारे ज्ञानमे झलका करेगा ।

सहज आत्मस्वरूपके परिचयमें आत्माकी सच्ची दया—भैया ! अपने आत्मापर दया करना, अर्थात् अपने आत्माके नातेसे अपने आपके हितका निर्णय करना । देखिये हम जो अटपट विश्वास बनाये हुए है वे सब विश्वास हमारे सत्यस्वरूपके दर्शनमे बाधक है । मै मनुष्य हू, मै अमुक बिरादरीका हू, मैं अमुक पोजीशनका हू, मै अमुक परिवार वाला हू, मै इतने बच्चो वाला हू आदिक रूपसे जो कुछ अपना विश्वास बना रखा है वह विश्वास हमे अपनेमे बसे हुए परमात्म परमार्थ स्वरूपको सिद्ध नही करने देता और फिर धर्मके बारेसे भी जो हमने विश्वास बनाया है, मै अमुक धर्मका हू, अमुक मजहबका हू, अमुक मेरे गुरु है, उनका यह उपदेश है, ऐसे इन विकल्पोके आश्रयसे हम करना तो चाहते अपना कल्याण, पर उन विकल्पोकी अटक भी हमे अपनेमे बसे हुए परमार्थस्वरूपका दर्शन नही करने देती । सर्व विकल्पोको छोडकर एक बडे विश्रामसे अपने आपके स्वरूपके निकटमे ठहर जाये तो अपने

आप उस सत्यका दर्शन होगा जिस सत्यका दर्शन कोई दूसरा नही करा सकता । वह मैं परमात्मा परमार्थ स्वरूप हू । जैसा भगवानका स्वरूप है वैसा ही मेरा स्वरूप है । तब अनुभव मे आयगा कि मुझमे और प्रभुमे अन्तर नही है । अपनी तो मुख्य शक्ति और प्रभुका देखिये विराटरूप । उस विराटरूपमे जो शक्ति बनी हुई है वह शक्ति और मेरी शक्ति एक स्वरूपमे है, एक समान है । इसीलिए लोग कहते है कि ये सब प्रभुके अश है । मेरा स्वरूप उस प्रभुके समान है जिस प्रभुने अपने ज्ञानसे समस्त लोकालोकको जाना । अपने दर्शनसे अपने आपका साक्षात्कार किया । अपने आत्मीय आनन्दमे जो सदैव निरत रहा करते है, ऐसा ही ज्ञानानद स्वरूप मेरा है लेकिन परवस्तुवोकी आशा कर करके मैंने अपना ज्ञान खोया और भिखारीका रूप रख लिया । किसी भी पुरुषसे कुछ भी आशा रखना भिखारी नही है तो फिर और क्या है ? जो लोग प्रजा जनोसे लौकिक पुरुषोसे इन्द्र जालवत् मायामय पुरुषोसे अपने बारेमे खुद की बात सुननेकी आशा रखते है तो वह भी तो एक भीख मागना हुआ । कीर्ति चाहना, धन चाहना, कुछ भी परवस्तुसे चाहना वह सब भीख है । अरे आत्मन् ! तुममे कौनसी कमी है, जिसकी कीर्तिके लिए तुम परवस्तुवोसे कुछ मागना चाहते हो ? अरे मेरे स्वरूपमे ज्ञान न होता तो कितने भी मैं उद्यम करता, अध्ययन करता, ज्ञान कहाँसे होता ? आत्मामे ज्ञान स्वय है तभी तो किसी भी प्रसगमे यह अपना ज्ञान प्रकट कर लेता है । इस आत्माका स्वरूप ही आनन्द है तब यह आत्मा अपने आपमे आनन्द और सुख प्रगट कर लेता है । मुझमे अपनेमे क्या कमी है ? निहारो तो सही । बल्कि बाहरमे दृष्टि रखनेसे, बाहरमे किसीकी आशा रखनेसे हममे कमी आ जाती है । मैं अपने आपमे ही रहू तो कुछ कमी नही है, बाहर कुछ आशा रखता हू तो मेरेमे कमी आ जाती है । सो यह मै यद्यपि अतुल्य वैभव वाला हू, प्रभु समान हू तथापि आशा कर करके अपना ज्ञान खोया और निपट भिखारी बन गया । अरे अपने स्वरूपको निहारिये, मेरे सुखका देने वाला लोकमे कोई अन्य पुरुष नही है । मोही जन सोचते हैं कि मुझे स्त्रीने तो सुख दिया, पुत्रने तो सुख दिया, इस वैभवने तो सुख दिया, इस रसीले भोजनने तो आनन्द उत्पन्न किया । अरे इन प्रसगोमे भी जो आनन्द आया वह तेरे आनन्दस्वरूपका ही विकार है और वह अपूर्ण अश है । उन प्रसगोमे तूने अपने आनन्दका घात किया है, कुछ पाया नही है ।

अपने भविष्यका स्वयपर उत्तरदायित्व—तेरा सुख अथवा दु ख देने वाला कोई अन्य जीव नही है, अपना ही अज्ञान, अपना ही मोह परिणाम, अपना ही स्नेहभाव, अपना ही द्वेष भाव अपने आपको दु ख दिया करता है । दूसरा कोई जीव अथवा दूसरा कोई पदार्थ अपनेको दु ख नही दिया करता । अब किया है कर्म पहिले, उनका उदय है, दु ख आ पडा है, फँस गये है, शरीरका भी तो बडा विकट बन्धन है । इस घृणित शरीरमे बसना पड रहा है तिस

पर भी यह जीव इस घृणित शरीरको बडा पवित्र और हितकारी सुखदायी अथवा अपना सर्वस्व ही मान रहा है। बन्धन कितना विकट है, फसाव कितना घना है। अब क्या करें ? इस फसावसे बचनेका हम क्या उपाय बनाये ? दुःख जाल भी कितना बढा लिया, कितनी जगहके विकल्प बसा लिये, कितनी जगह व्यापार है, कितनी जगह काम है, कहाँ कैसी कमी है, कहाँ क्या व्यवस्था बनाना है ? अनेक चिन्तायें सता रही है, बडा दुःख है। अरे कुछ भी दुःख नही। अपनेको अपना जानो, परको पर जानो, फिर दुःखका कोई वहाँ स्वरूप नही रहता। कोई कारण नही रहता। तो इस अपने आपके स्वरूपके जाने बिना जगतमे अब तक अनेक जन्ममरण किये, अनेक उपाय बनाये, किन्तु सुख शातिका अश भी न प्राप्त किया। क्या खेल है कि प्रत्येक मनुष्य चाहे भिखारी हो तो, धनी हो तो, कैसी भी स्थितिमे हो, वह अपने विकल्प बनाता रहता है, अपनी वर्तमान स्थितियोमे, अपने वर्तमान साधनोमे कुछ न कुछ असुविधायें मानता रहता है और दुःखी होता रहता है। लोग एक दूसरेको सोचते है कि ये बडे सुखी होगे, गरीब लोग धनिकोको देखकर सोचते है कि ये बडे सुखी होंगे, इनके बडे अच्छे महल है, बडा वैभव है, बडी कार है, बडे ठाठ है, ऐसा वे सोचते है, लेकिन जीवोके चूंकि अज्ञान लगा हुआ है, अपने आपके आत्मस्वरूपकी सुध नही है इससे वे विकल्प ही तो बनायेंगे, और विकल्पोमे अशाति भरी है। किसी भी परवस्तुका राग ही तो करेंगे, और किसी भी परके प्रति राग करनेमे अशाति भरी पडी है। कोई सुखी नही है। उसका कारण यह है कि आत्मज्ञान नही किया। अपने आपके इस स्वतत्र निश्छल शुद्ध ज्ञानमय स्वरूपको निरखे और दृढ आग्रह करे, अपनी दृढ प्रतीति बनायें कि मै तो इतना ही हू। भाव ही करता हू और भाव ही भोगता हू। मेरा स्वरूप मेरे इन ही प्रदेशोमे है, इसमे ही मैं हू, ऐसा अपना निर्णय बनायें, बाह्यमे मोह त्यागे तो मुझे आत्मीय आनन्द प्राप्त हो सकता है।

प्रभुनामोंमे आत्माकी विशेषताकी झांकी—लोग नाम विशेषके आधारसे धर्मके बारे मे अपनी प्रतीति डिगा लेते है पर यह पता नही है कि जितने भी ईश्वरके नाम है, जितने भी पैगम्बरके नाम अवतार माने है, जितने भी गुरुजन माने गए है, जिन जिन नामोसे हम उन्हे पुकारते है जरा उन नामोको भी तो देखिये कि ये किसके नाम है ? कोई कहता है कि यह जिन है। सो जो जानेसे जिन। जानता कौन है ? आत्मा। तो जिन इस आत्माका ही नाम है। कोई कहता शिव। जो कल्याणरूप है सो शिव। कल्याणरूप है आत्मा। तो शिव भी उस आत्माका ही नाम हुआ। कोई कहता ब्रह्म। जो सृष्टि रचे है सो ब्रह्मा। सृष्टि रचता है हमारा आत्मा। अतः ब्रह्मा भी उस आत्माका ही नाम है। कोई कहता राम। जहाँ योगी जन रमा करें सो राम। योगी जन कहाँ रमते है ? आत्मामे। अतः राम भी उस आत्माका ही नाम है। कोई कहता है विष्णु। तो विष्णुका अर्थ है व्यापक। जो व्याप कर रहे सो

सम्यग्दृष्टि पुरुष ऊर्ध्वलोकका चिन्तन कर रहा है। इस ऊर्ध्व लोककी रचनाका परिज्ञान करने से क्या लाभ है ? मोह नहीं रहता। स्वर्गोंके सुखोंकी बात सुननेसे और अधिक बात नहीं तो इतनी तो बात लोग सोच ही लेते कि अरे यहाँके सुखोंमे क्या प्रेम करना, उस सुखके आगे तो यहाँका सुख कोई चीज ही नहीं है। यद्यपि सासारिक सुख सभी धोखे वाले हैं, जीवकी बरबादी करने वाले हैं अतएव ज्ञानी पुरुषोंके उपयोगमे तो सांसारिक सुखोंका चिन्तन ही नहीं है, फिर भी अपनी दृष्टि एक फैला देनेसे सकुचित क्षेत्रमे जो राग मोह बन रहा था वह नहीं रह पाता। रागको कम करनेका एक उपाय यह भी है कि उस रागको सब जीवोंमे फैला दिया जाय। सबसे प्रेम करने लगें, तो उसका वह राग क्षीण हो जायगा। तो सस्थानविचय धर्मध्यानमे उपयोग इतना फैल गया कि सारे लोककी रचनाका ज्ञान किया जा रहा है। तो वर्तमानमे मिले हुए समागमोमे भोगोमे प्रीति नहीं रह पाती।

अशेषविषयोद्भूत दिव्यस्त्रीसगसभवम्।
विनीतजनविज्ञानज्ञानाद्यैश्वर्यलाञ्छितम् ॥१८४६॥

स्वर्गलोकमे देवोंके सुखका पुन दिग्दर्शन—स्वर्गोंका सुख समस्त प्रकारके विषयोंसे उत्पन्न होता है, दिव्य स्त्रियोंके सगसे उत्पन्न होता है, विज्ञान चतुराई ज्ञान आदिक ऐश्वर्य सहित यह दिव्य सुख है। उस सुखका वर्णन अन्य कौन कर सकता है ? सुखका अर्थ है—सु मायने सुहावना लगना, ख मायने इद्रिय। जो इद्रियोको सुहावना लगे उसे सुख कहते है। और दुःख, दु मायने बुरा और ख मायने इन्द्रिया। जो इन्द्रियोको बुरा लगे अर्थात् जो इद्रियोको असुहा-वना लगे उसे कहते है दुःख। क्लेशका अर्थ है क्षोभ। क्षोभमे धीरता, शाति व स्थिरता नहीं रहती। इन दुःख व सुखोमे भी यही बात है। तो इन दुःख सुख दोनोमे क्लेश ही रहता है।

प्रश्न :—तो फिर वह देवोका सुख भी क्या कष्ट ही रहा ?

उत्तर.—हाँ कष्ट ही रहा। जैसे कोई पुरुष किसीका इन्तजार करे तो एक तो छाया मे बैठकर इन्तजार करे और एक धूपमे बैठकर इन्तजार करे तो इन दोनो ही स्थितियोंमे उन दोनोको क्लेश तो है ही। ऐसी ही बात इन सुख और दुःखोमे है। सुख पुण्यका फल है और दुःख पापका फल है। वस्तुतः ये दोनो ही हेय है।

सौधर्माद्यच्युतान्ता ये कल्पा षोडश वर्णिता।
कल्पातीतास्ततो ज्ञेया देवा वैमानिका परे ॥१८४७॥
अहमिन्द्राभिधानास्ते प्रवीचारविवर्जिता।
विवर्द्धितशुभध्याना शुक्ललेश्यावलम्बिन ॥१८४८॥

स्वर्गसुखकी उपेक्ष्यता—जहाँ हम आप रहते है यह तो मध्यलोक है। यह मध्यलोक मेरु पर्वतके बराबर मोटा है। उसके ऊपर स्वर्गोकी रचना है। १६ स्वर्गोके बाद फिर कल्पातीत

देवोंके विमान है। तो जैसे मनुष्योमे राजा, राजपरिवार, मन्त्री, प्रजा, सेना आदिक भेद होते है इसी प्रकार उन देवोमे भी भेद है और जहाँ ये भेद है, वहाँ शान्ति कहाँ है ? हुक्म देने वाला हुक्म देकर दु खी होता है और हुक्म मानने वाला हुक्म मानकर दुःखी होता है। यही बात स्वर्गोमे चल रही है। इस कारण स्वर्गोमे भी वास्तवमे सुख नही है। ये सुख मोही जनोकी दृष्टिमे सुख है, ज्ञानीको दृष्टिमे तो स्वर्गके सुख भी दु खरूप है। सब ओरसे विकल्प हटकर एक मात्र आत्मामे ही सहज स्वरूपमे ही उपयोग रम जाय तो अद्भुत आनन्द उत्पन्न होता है। दोपहरमे एक भाई साहबने प्रश्न किया था कि ये इच्छाएँ कैसे नष्ट हो ? इन इच्छावोके पीछे तो बडी परेशानी है। एक न एक इच्छा उठ खडी होती है। ये इच्छाये टाले नही टलती। तो इन इच्छावोका नाश कैसे हो ? तो भाई बात यह है कि इच्छा हमे जिन जिन चीजोकी होती है उनमे हमे मौज मिलता है, मजा आता है, सुख आता है। कुछ बात मनमे है ना इसीलिए इच्छायें होती है। दु खकी बातकी किसे इच्छा होती है ? जिसमे मनुष्य सुख समझता है उसकी इच्छा करता है। तो उस सुखसे बढकर कोई सुख इसे मिले तो उसकी इच्छा भी छोड़ दे। तो उस सुखसे बढकर स्थिति है, आनन्द है तो वह है आत्मानुभव मे। अपने सहज ज्ञानस्वरूपका अनुभव हो जाय अर्थात् ज्ञानमे ज्ञानस्वरूप समा जाय और वहाँ ज्ञान ज्ञेय एक बन जाये, उस हालतमे यहाँ वहाँके विकल्प न रहनेसे एक अनुपम आनन्द उत्पन्न होता है, जो शब्दोसे नही कहा जा सकता। शब्द तो उसी पुरुषको अर्थ बतायेगा जिसने यह अनुभव किया है। अनुभवशून्य व्यक्तिके शब्द अनुभवशून्य व्यक्तिको काम न देंगे। तो जिसने आत्मानुभव कर लिया है वह इन इच्छावोको दूर कर सकता है।

आत्मानुभवकी व एतदर्थ कुछ संयमनकी आत्महितार्थ आवश्यकता—यदि कोई पुरुष इन इच्छावोको बिना आत्मानुभव किए ही जबरदस्ती हटाये तो एक इच्छा हटनेके बाद दूसरी इच्छा पुन सामने आ खडी होगी। अभी खाना खाया, लो अब घूमनेकी इच्छा हो गई, लो अब पान खाने, सिगरेट पीने व सनीमा आदि देखनेकी इच्छा हो गयी। यों एक इच्छा हटनेके बाद दूसरी इच्छा जागृत हो जायगी। तो इन इच्छावोका निरोध करनेके लिए आत्मानुभव करें। मैं ज्ञानमात्र हू अन्य कुछ नही हू यो ज्ञानमात्र अपने आपको अनुभव करके इन इच्छावोको दूर किया जा सकता है। यह एक साधना है, और इस साधनाके लिए किसी प्रकारका तप और त्याग चाहिए। वास्तविक धर्म कहाँ है ? आत्माके अनुभवमे है, वास्तवमे शान्ति कहाँ है ? आत्माके अनुभवमे है। तो यही धर्मका पालन है। मदिर आकर भी यही चीज पानी थी, पर इसका लक्ष्य कौन रखता है ? मदिर आते न जाने कितने वर्ष बीत गए, पूजन भी करते, स्वाध्याय आदिक भी करते, धर्मकी सारी क्रियायें करते, पर अभी तक इस वास्तविक धर्मको, सही शान्तिको नही प्राप्त किया। न प्राप्त होनेका कारण क्या है कि वही

बाह्य पदार्थोंमे ममता बसाये हुए है, रात दिन उन्हीकी चर्चा चलती है, उन्ही परवस्तुवोकी रात दिन आशा लगाये रहते है, यही कारण है कि वह शाति नामकी चीज नही प्राप्त होती। यह तो एक साधनासाध्य बात है। शान्ति प्राप्त करने हेतु अर्थात् धर्मपालन करने हेतु इस साधनाको अति आवश्यक जानकर नियमित रूपसे घटा ठेढ घटा स्वाध्याय करें, ऐसा स्वाध्याय हो कि जो कुछ भी पढा जाय वह सब अपने आपपर घटाते हुए पढें। अन्य धार्मिक कार्य करे तो इन परवस्तुवोंसे ममता हटाते हुए करें, हसी खुशीमे मौज मस्तीमे ही इस अपने जीवनके अमूल्य क्षणोको न गवायें। जिस समय सामायिक करने बैठें तो ऐसी बात मनमे ठान कर बैठे कि हमे तो अब किसी भी परतत्त्वका विचार नही करना है। सो दो चार मिनट तो परपदार्थोको अपने उपयोगसे हटानेका यत्न करें। जिस समय भगवानका पूजन कर रहे हो उस समय भगवानके गुणोका इस तरहसे स्मरण करे कि अन्य बाहरी बातोपर ध्यान न रखो। ऐसी हठ करके बैठे कि हमे तो भगवानके गुणोका स्मरण करते हुएमे धन वैभव कुटुम्ब परिजन, आदिक किन्ही भी परपदार्थोंमे अपना चित्त नही फसाना है। हमे तो अपने इस ज्ञानके उपयोगके इस प्लेटफार्मको बिल्कुल शून्य छोडना है। इस तरहसे आत्मानुभव करे।

आत्महितके लिये नियमितताकी भी आवश्यकता—यह आत्मानुभव बिना साधना किए नही प्राप्त होता। मौजमे खुशीमे रहकर यह आत्मानुभवकी चीज मिल जाय सो बडी कठिन बात है। उन साधनाओको करने लगिये अभीसे। एक साधना तो यही है नियमित स्वाध्याय करना। बातें करते हुए नही, किन्तु एक उपयोग लगाकर जितना भी पढा जाय उसका अर्थ विचार कर, जो कुछ सुना जाय उसका अर्थ समझकर अपने आपमे उन सब बातो को घटाकर स्वाध्याय करिये। दूसरी साधना आप जाप सामायिक आदिमे बैठते हैं तो जाप कर लिया, बारह भावनायें बोल लिया,- भगवानका स्तवन बोल लिया, अपने किए हुए कर्मों का चिन्तवन कर लिया। इतना सब कुछ करने पर भी कुछ समय ऐसा व्यतीत करिये कि मैं अपने चित्तमे किसी भी पदार्थको न आने दूगा। जो भी पदार्थ उस समय ख्यालमे आये उसके प्रति भी यही चिन्तन करे कि अरे इससे भी क्या लाभ ? यह भी हमारी बरबादीके लिए है। तो उस समय किसी भी परपदार्थका ध्यान न रहे। तीसरी साधना यह है कि ज्ञानार्जनका, सत्सगका धर्मलाभको अधिक महत्त्व दें, इस धन वैभवको अधिक महत्व न दे। ऐसा चिन्तन करें कि हमारा तो धर्म साधना सहित जीवन व्यतीत होना चाहिए। आजके इन मिले हुए धन वैभव आदिकके समागमोंमे अधिक महत्वकी बात न सोचे। आराममे रहकर, सुखोमे रहकर खुशीमे रहकर आत्मानुभव होना बडी कठिन बात है। और इस आत्मानुभवके बिना इस जीवका उद्धार कभी हो ही नही सकता। उद्धार किसका नाम है ?

इस जीवमे कोई विकल्प न रहे, केवल एक ज्ञानामृतका ही पान करता रहे, इसीका तो नाम उद्धार है। यह उद्धार केवल अपने आन्तरिक ज्ञान पुरुषार्थसे ही सिद्ध हो सकता है, अन्य उपायसे नही हो सकता।

स्वर्गसे ऊपरके वैमानिक अहमिन्द्रोंके सुखका निर्देश—यह स्वर्गोका सुख बताया जा रहा था। किन्तु अब आत्मीय आनन्दके सामने ये वैपयिक सुख फीकेसे लग रहे है ना। हमारी जैसी दृष्टि बने उसके अनुसार ही बाह्य बात प्रतिभासमे आती है। स्वर्गोमे बडा भेद है और बडा क्षोभ है। वैषयिक सुख क्लेशरूप है। उन स्वर्गोसे ऊपर कल्पातीत देव है, वे ऋद्धि सिद्धिमे इन्द्रसे कम नही है। वे सभी एक समान वैभव वाले है, सभी अहमिन्द्र है। उन स्वर्गोमे सब कल्पातीत देव ही रहते है। उनका नाम अहमिन्द्र है और उन अहमिन्द्रोमे मौलिक विशेषता यह है कि वे कामवासनारहित है, उनके देवागनाये नही होती, वे अपने आपमे ही तृप्त रहा करते है। नाना प्रकारके उनके शुभ ध्यान बढते रहते है। सर्वारिसिद्धिमे तो ३३ सागर पर्यन्तका समय तत्त्वचर्चामे ही व्यतीत कर डालते है। उनके शुक्ल लेश्या है, अत्यन्त मद कपाय है, एक भवावतारी है। एक मनुष्यका भव प्राप्त करनेके बाद वे मोक्ष चले जाते हैं। वहाँ उनके योग्यतानुसार ध्यानकी वृद्धि होती रहती है और वे शुक्ललेश्या धारण करने वाले है। सभी कल्पातीत देवोंमे शुक्ल लेश्या होती है।

अनुत्तरविमानेषु श्रीजयन्तादिपञ्चसु।
सभूय स्वर्गिणश्च्युत्वा व्रजन्ति पदमव्ययम् ॥१८४९॥

अनुत्तरविमानवासियोंका मुक्तिनैकट्य—नवग्रेवयक अनुदिशके ऊपरके देव, अनुत्तर विमानोमे विदेह आदिकमे उत्पन्न हुए देव वहाँसे गिरकर मनुष्य होकर अवश्य ही अविनाशी पदको प्राप्त करते है। पुण्यफलमे और पापफलमे ऐसा अन्तर समझिये जैसे कोई दो व्यक्ति अपने अपने मित्रोकी प्रतीक्षा कर रहे हो, एक तो धूपमे बैठकर प्रतीक्षा करे और एक छायामे बैठकर प्रतीक्षा करे, तो हैरानी तो उन दोनोको ही होती है। पुण्यफलमे जीव थोडा मौज मान लेता है और पाप फलमे जीव दुखी हो लेता है पर आकुलताएँ तो दोनोमे ही बसी हुई है। तो इस पुण्यफल और पापफल दोनोका ही फल बन्धन है। इन पुण्य और पाप दोनो फलो से परे एक आत्मानुभव वाली स्थिति है, वही कल्याणका मार्ग है। सो ये देव पुण्यफलमे ऊँचे अहमिन्द्र देव हुए है पर उसके बाद मनुष्य होकर ये मोक्ष जायेंगे। जितने भी मनुष्य मोक्ष गए हैं उनमेसे कुछ मनुष्य तो कष्ट पाकर, वेदनाएँ पाकर, उपसर्ग पाकर मोक्ष गए है और अनेक मनुष्य ऐसे मोक्ष गए जो कि राजा महाराजा थे, बडा वैभव था उसको त्यागकर मोक्ष गए। मोक्ष जाने वालोमे ऐसे बहुत कम है जो दीन दुखी रहकर, कष्ट पाकर, उपसर्ग पाकर मोक्ष गए। ऐसोकी सख्या बहुत अधिक है जो बडे धन ऐश्वर्य साम्राज्यके बीचमे रहे, बडे

मौजमे रहे, लेकिन अन्तमे उस सारे वैभवको असार समझकर उसे ठुकराकर आत्मचिन्तनमे रत हुए और मोक्ष सिधारे। कोई बडी गरीब दीन हीन दशामे रहकर कष्ट पाकर मोक्ष सिधारे तो उसमे उतनी विशिष्टता नही समझी जाती जितनी कि बडे धन वैभव ऐश्वर्य आरामके साधनोके बीच रहकर उसे असार समझकर, तृणकी नाई त्यागकर, आत्मरत होकर मोक्ष सिधारनेमे समझी जाती है। तो पुण्य कार्य करना यह विशिष्ट चीज नही है परवे पुण्यकार्यको करके अहमिन्द्र देव होते है और वहाँसे गिरकर मनुष्य होकर वे निर्वाण प्राप्त करते है।

कल्पेषु च विमानेषु परत. परतोऽधिका ।
शुभलेश्यायुर्विज्ञानप्रभावै स्वर्गिण· स्वयम् ॥१८५०॥

वैमानिक देवोमे शुभलेश्या आयु विज्ञान आदिकी उत्तरोत्तर अधिकता—वैमानिक देवोमे अर्थात् सोलह स्वर्ग ऊपर ग्रैवयक, अनुदिश, अनुत्तर विमानोमे जो देव बसते हैं, वे इन बातोमे ऊपर ऊपरके देव नीचेसे अधिक अधिक हैं अर्थात् शुभ लेश्या आयु विज्ञान और प्रभाव ये सब ऊपरके देवोमे बढते हुए चले जाते है। जैसे पहिले स्वर्गमे पीत लेश्या है तो ऊपर बढते जायें तो पद्म और शुक्ल लेश्यायें हैं, फिर और विशिष्ट शुक्ल लेश्या है। उनकी कषायें और मद हो जाती है। नीचेके देवोमे जैसी कषायकी प्रवृत्ति चलती है उससे अत्यन्त मद कषायमे प्रवृत्ति ऊपरके देवोमे चलती है। एक भाईने प्रश्न किया था कि जब भगवानके कल्याणक होता है तीर्थंकरके तो उस समय स्वर्गोसे ऊपरके देव उस समारोहमे आते है या नही ? तो समाधान यह है कि वे आते नही है, उसका कारण यह है कि ऊपरके देवोमे लेश्यायें मद हैं, उनमे उस प्रकारकी इच्छाएँ कषायें विशेष नही हैं। वैसे स्वरूपदृष्टिसे सोचा जाय तो ये सब कषाय ही तो है। किसीपर गुस्सा करना, किसीको मारना पीटना ये भी है और मदिर चलना है, मदिरमे हम पूजन करेंगे, ऐसा परिणाम किया तो वह भी कषाय है। पर अन्तर बहुत है, वह है तीव्र कषाय और यह है मद कषाय। कषायरहित प्रवृत्ति तो नही है, कषायरहित प्रवृत्तिमे कोई परिणति ही नही होती। ऊपरके देवोमे मद कषाय होती है तो उनको इतनी तीव्रता नही होती, ऐसी ठेस उन्हे नही लगती कि वे देव अपने स्थानको छोडकर नीचे आयें। जैसे श्रावकोका तो मदिर आनेका नियम है और मुनि जनोका नियम नही है। हाँ सुगमतासे मदिर मिल गया तो दर्शन कर लिया, तो यह फर्क किस बातका है ? फर्क यही है। कि मुनि जनोके कषाय अत्यन्त मद है।

सर्वार्थसिद्धिके देवोका तत्त्वचर्चामे कालयापन—सर्वार्थसिद्धिके देव ३३ सागर पर्यन्त की आयु तत्त्वचर्चामे ही व्यतीत कर देते हैं। जैसे यहाँ मदिरमे पुरुष या महिलायें घटा डेढ घटा मदिरमे बैठते हैं तो कुछ तो धर्म चर्चा करते है और कुछ अपनी घर गृहस्थीकी बाते करके समय बिताते हैं, इस तरहसे वे सर्वार्थसिद्धिके देव तत्त्वचर्चा नही करते, वहाँ दिन रात

का तो भेद नही है, निरन्तर तत्त्वचर्चामे ही वे अपना समय व्यतीत करते हैं। उन देवोको मनुष्योकी नाई नीद भी नही आती। मनुष्य तो १८ घटे काम कर सकते है और ६ घटे सोनेमे जाते है पर देव लोग इस तरहसे नही सोते। यद्यपि निद्रा नामक दर्शनावरणका वहाँ उदय है पर उनको निद्रा चलती फिरती है। उनके थकावट तो होती नही। तो वे सर्वार्थसिद्धिके देव ३३ सागर पर्यन्तकी आयु निरन्तर तत्त्वचिन्तनमे ही व्यतीत करते है। आप सोचेंगे कि ऐसी क्या लम्बी तत्त्वचर्चा है कि ३३ सागर व्यतीत हो जाये। यहाँ तो किसी अजानकार से पूछो तो उसकी निगाहमे तत्त्वचर्चा कुछ है ही नही। उससे पूछोगे कुछ चर्चा करोगे, तो कहेगा कि हमे तो कोई शका ही नही है। अजानकारको शका क्या? जो लोग जानकार है, ज्ञानवान है, चर्चायें तो वही लम्बी रख सकेंगे। वहाँ तो ग्यारह अगोका भी ज्ञान है, देव श्रुत ज्ञानमे भी बढे चढे होते हैं, पर श्रुतकेवली नही कहलाते, पर उनका ज्ञान बहुत बढा चढा होता है और वे सारी आयु तत्त्वचर्चामे व्यतीत कर देते हैं। उनकी कषायें मद है। उनकी आयु बढी चढी होती है। पहिले दूसरे स्वर्गमे तो दो सागरकी आयु है और अतिम विमानमे सर्वार्थसिद्धिमे ३३ सागरकी आयु है। एक सागरमे लाख करोड अरब शख अथवा महाशखकी तो बात क्या, उसमे अनगिनते वर्ष हुआ करते है। उन ऊपरके देवोमे अवधिज्ञान भी बढा चढा होता है। दूसरेके स्वर्गके देव अवधिज्ञानसे जितना जान सकते उससे विशेष विशेष ऊपरके देव जानते है। एक इस प्रसगमे बात समझिये कि अवधिज्ञान जानता तो है चारो ओरकी बात, मगर बहुत अधिक क्षेत्रकी बात नीचेकी जानते है। अवधिज्ञानका विषय ऊपर अधिक न मिलेगा, नीचेकी दिशामे अधिक मिलेगा, नरकोकी बात जान लेगा, मगर ऊपरकी बात अधिक नही जान सकता। सर्वार्थसिद्धिका ज्ञान मुनियोके ही होता और उन मुनियोंके जो उस ही भवसे मुक्त होंगे। अवधिज्ञान भी ऊपरके देवोमे बढा चढा है। प्रभाव भी ऊपरके देवोमे अत्यत अधिक है। यो स्वर्गोमे ये बाते ऊपरके देवोमे बढी चढी होती है। एक ज्ञानी पुरुष लोककी रचनाका विचार कर रहा है, कहाँ क्या रचना है?

तनोऽग्रे शाश्वत धाम जन्मजातङ्कविच्युतम्।
ज्ञानिना यदधिष्ठान क्षीणानि शेषकर्मणाम् ॥१८५१॥

सर्वार्थसिद्धिके ऊपर सिद्ध शिला व सिद्ध शिलाके ऊपर सिद्धालय—अनुत्तर विमानो के मध्यमे है सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रक विमान, उससे ऊपर मोक्षका स्थान है। देखिये वह मोक्षका स्थान ऐसा स्थान नही है कि वहाँ जीव पहुच जायें तो वे परमात्मा कहलायें। ऐसा नियम नही है। जो अष्टकर्मोसे रहित होगा वह आत्मा भी वहाँ पहुचता है, शाश्वत सदाकाल के लिए वही विराजमान है, वह है परमात्मा। वहाँ परमात्मा भी रहता है और निगोदिया जीव भी रहते हैं, सो उस ही जगहमे परमात्मा तो अनन्त सुखका अनुभव करता है और

निगोदिया जीव एक श्वासमे अठारह बार जन्म मरण करते है और क्लेश भोगते हैं। पर मोक्षधाम वहाँके स्थानको इसलिए कहा गया कि मुक्त होनेपर जीव यत्र तत्र कही नही ठहरता, सीधा वही ऊर्ध्व लोकके अन्तमे पहुचता है और वही विराजमान है, इस कारण उसका नाम मोक्षधाम पडा। सो ससारसे उत्पन्न हुए क्लेशोंसे वे रहित है, क्लेश तो हम आप लोगोंने बनाये हैं और बनाते चले जा रहे है, न बनायें क्लेश तो कोई क्लेश नही। सोचनेकी बात है। हम परपदार्थोंमे अपने प्रवृत्ति बढाते है, लोकमे अपनी इज्जत समझते है, पोजीशन मानते हैं तो हम दु खमे अपनी कदम ज्यादह बढा लेंगे। हम वैभवसे अपना हित न मानें, बडप्पन न समझे, लोकमे अपनी नामवरीकी चाह न करें, सर्व कषायोको दूर कर दें, तो समझो कि सारे दु ख दूर हो गये। फिर परमार्थदृष्टिमे देखिये—आत्माके स्वरूपमे क्लेश नहीं है, ज्ञान है, निरन्तर वह जानता रहे ऐसा उसका स्वरूप है, ये रागद्वेष क्लेश आदि वास्तवमे कुछ भी नही है जीवके स्वरूपमे, लेकिन परवस्तुवोसे अपना सम्पर्क बनाकर हम विकल्प रखते है और दु खी होते हैं। इन सर्व दु खोसे जो सदाके लिए मुक्त हो जाते है वही भगवान हैं। उनका स्थान ढाई द्वीपके बिल्कुल सीधमे ऊपर ऊर्ध्व लोकके अन्तमे है और वहाँ वे निरन्तर अपने स्वरूपमे विराजे रहते है। उस मोक्ष स्थानमे समस्त कर्मोका नाश करने वाले सिद्ध भगवानका आश्रय स्थान है।

सिद्ध प्रभुके अनुपम आनन्दकी सुध—कोई लोग सोचते होंगे कि वह सिद्ध भगवान क्या आनन्द पाते होंगे, वे तो वहाँ अकेले है, उनके साथ कोई नही है, उनका कैसे समय कटता होगा ? यह शका उन लोगोकी है जो मोही है, जो अपने इष्ट परिवार या मित्रजनोंके बीचमे रहकर अपना समय गुजारते है, उसीमे मौज मानते हैं। वे लोग यहाँसे तुलना करते हैं। वहाँ तो खानेको तम्बाकू भी न मिलेगी, मिठाइया भी न मिलेगी, क्या सुख है वहाँ ? लेकिन उनको यह पता नही है कि ये सारी बातें दु खरूप ही तो है। वहाँपर इन सारे दुःखो का अभाव है, यही उनका अनन्त आनन्द है। जब कभी आप सामायिक करते हैं और जैसे एक दिन साधनाकी बात कही गई थी कि साधना करे कोई तो किसी भी परपदार्थको अपने विकल्पमे न आने दे, किसीका भी राग न करे, विश्रामसे रहे, अपने स्वरूपमे अपने आपको समा दे, ऐसा प्रयत्न करे तो इस परिणमन करते हुए के बीचमे यह शका तो नही होती कि यदि मैं ही आत्ममग्न हो गया तो फिर क्या होगा मेरे परिवार जनोका ? वे सुखसे रह सकेंगे या नही ? अरे यह कल्पना उठी तो समझो कि रगमे भग हो गया। कहाँ तो आत्मस्वरूपको निरखकर उसमे समानेका आनन्द लूटा जा रहा था और कहाँ यह विकल्प तरग उठ खडी हुई। अरे विकल्प तरगको मत उठा, अपने आपको अपने आपमे समा दे, समा जायगा, मग्न हो जायगा तो सदाके लिए तू दु.खोसे छूट जायगा। औरोकी तू क्या परवाह करता, पर तो

पर ही है, इन सर्वका विनाश होगा, इन सबके साथ कर्म लगे है, उसके अनुसार उनकी बात बनेगी। यदि तू अपने आपका ज्ञान करता है, अपने आपमे पूर्णरूपसे अपने आपको मग्न कर सकता है तो कर दे। किसी भी प्रकारकी चिन्ता न ला और विशुद्ध आनन्दकी प्राप्ति कर। यही आनन्द तो सिद्धकी जातिका आनन्द है। खुद इस विशुद्ध आनन्दका अनुभव कर सके कोई तो भगवानके आनन्दकी बात समझ सकता है, अन्यथा तो अनेक शकायें होगी, विश्वास ही न जगेगा कि परमात्मा क्या चीज है?

चिदानन्दगुणोपेता निष्ठितार्था विबन्धनाः।
यत्र सन्ति स्वयंबुद्धाः सिद्धाः सिद्धेः स्वयवराः ॥१८५२॥

सिद्ध भगवंतोकी निष्ठितार्थता—उस मोक्ष स्थानमे सिद्ध भगवान विद्यमान है। वे चैतन्य और आनन्द गुणो करके सयुक्त है। उन प्रभुके चैतन्यका विशुद्ध पूर्ण विकास है, वे केवलज्ञानसे समस्त विश्वको जानते है, वे सिद्ध भगवान अनन्त आनन्दकर सयुक्त है। वे सिद्ध भगवान कृतकृत्य है, अर्थात् उन्हे करनेको अब कुछ भी नही रहा, करने योग्य कार्यको कर लिया। तब ऐसी दृष्टि जग जायगी कि मैं आत्मा अपने ही प्रदेशोमे परिपूर्ण हू, मै जो कुछ कर सकता हू वह अपने आपके प्रदेशोमे ही कर सकता हू, अपने प्रदेशोसे बाहर मै कुछ भी नही कर सकता। वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है तब मेरेको करने लायक काम रहा कहाँ? मैं किसमे क्या करूँ, मै अपने भावोके सिवाय कुछ कर ही नही रहा था। अपने भावोके सिवाय मै अन्य कुछ कर ही नही सक रहा हू, न कभी कर सकूँगा, तब फिर मेरेको बाह्यपदार्थोंमे करने योग्य है ही क्या? कुछ भी नही। ऐसी दृष्टि जगे तो उसे कृतकृत्य जैसा समझ लीजिये। करनेको कुछ रहा ही नहीं। कुछ न करें तब यह बात बनेगी कि करनेको कुछ रहा ही नही। कोई पुरुष कर करके यह स्थिति चाहे कि मै सब कुछ कर लूँ, फिर करनेको कुछ बाकी न रहेगा, ऐसा ज्ञानबल जगे कि मेरे करनेको यहाँ कुछ नही है तो उसकी यह स्थिति बनेगी कि अब करनेके लिए कुछ रहा ही नही। क्या करना? प्रभु भगवान अपने केवलज्ञानसे निरन्तर सर्वत्र जानते रहते है, केवल दर्शनसे अपना दर्शन करते रहते है, अनत विशुद्ध आत्मीय आनद का निरतर अनुभव करते रहते है। वे करनेका कुछ विकल्प ही नही करते। यहाँ भी करनेका विकल्प अज्ञानी जन किया करते है, करनेका विकल्प ज्ञानी जन नही किया करते। वे प्रभु विकल्पोसे रागद्वेषादिक भावोसे सबसे मुक्त हो गए है, वे कृतकृत्य है। मुक्त प्रभु बन्धनरहित है। कर्मबन्ध अब कुछ नही रहा, वे स्वय बुद्ध है, परिपूर्ण ज्ञानी हैं, वहाँ पाठशालायें नही है, कोई कुछ सीखने वाले नही है, कही कोई बातचीत नही करता, वह सर्व शुद्ध रह गया, वह भगवान केवल ज्योति पुञ्ज है और निरन्तर आत्मीय आनन्दका अनुभव करता रहता है। वह स्वय बुद्ध है, ऐसा पुरुष है वह जो सिद्धिको स्वय करने वाला है।

समस्तोऽयमहोलोक' केवलज्ञानगोचर ।
त व्यस्त वा समस्त वा स्वशक्त्या चिन्तयेद्यतिः ॥१८५३॥

संस्थानविचयधर्मध्यानमे लोकचिन्तनाकी वृत्ति—हे भव्य जीव ! यह समस्त लोक केवलज्ञानके द्वारा ज्ञात है तो भी इस सस्थानविचय नामक धर्मध्यानी मुनि सामान्यसे तो सभी और विशेषसे अलग अलग कुछ पदार्थको अपनी शक्तिके अनुसार चिन्तवन करे । वस्तु-स्वरूपका चिन्तन और उसमे ही आ गया पचपरमेष्ठीके स्वरूपका चिन्तन । पच परमेष्ठी कोई किसीकी बपौती जैसा पद नही है कि किसी जीवका कोई यह हक ही है । जैसे कोई लोग कहते कि ईश्वर जगतका कर्ता है, उसका हक है ऐसे ही कोई हक रखने वाले परमेष्ठी नही कहलाते किन्तु कोई भी जीव हो, जो जीव कलकोसे रहित हो जाता, रागद्वेष मोहसे दूर होता है बस उसीका नाम परमेष्ठी है । वे परमेष्ठी ५ है—अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु । इन पाँचोमे सबसे पहिले कोई जीव साधु बनता है । साधु परमेष्ठी होना उसकी प्रथम अवस्था है । आचार्य उपाध्याय भी यदि वह होगा तो बादमे होगा । कोई गृहस्थ किसीसे सर्व प्रथम आचार्यकी दीक्षा नही लेता । पहिले साधुपनेकी दीक्षा लेता, फिर ज्ञान दर्शन व चारित्रमे वृद्धि करके आचार्य, उपाध्याय आदि बनता । बादमे चार घातिया कर्मोका विनाश करके अरहत बनता, फिर सिद्ध बनता । तो यहाँ तो इस पचपरमेष्ठी मत्रमे गुणकी पूजा है । किसी एक मनुष्यको भगवान मानकर रह गए हो, ऐसी बात नही है । चौबीस तीर्थंकरोकी नामावली आती है किन्तु ज्ञानी पुरुष तीर्थंकरको किसी एक व्यक्तिकी मुख्यतासे ध्यान नही करते, किन्तु वीतरागता और सर्वज्ञताके गुणोकी प्रधानता देकर तीर्थंकरका ध्यान करते है । भगवान महावीर त्रिशलाके नन्दन हैं, सिद्धार्थके पुत्र है, इस कारण ज्ञानियोको उनके प्रति आकर्षण नही है किन्तु वह आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्तदर्शन सम्पन्न है, समस्त मोह रागद्वेषो से रहित है, विशुद्ध है, पवित्र है, इस कारण उन गुणोका वे ज्ञानी पुरुष ध्यान करते हैं । तो जिन्होंने चार अघातिया कर्मोका विनाश किया, अनन्त गुण प्रगट किया, पूर्ण ज्ञानी बने, पूर्ण निर्दोष बने उनका नाम है अरहत परमेष्ठी और जब शेष बचे हुए चार घातिया कर्म भी नष्ट हो जाते हैं तो उनका नाम है सिद्ध परमेष्ठी । इस णमोकार मत्रमे आत्माके गुणोंके विकास को नमस्कार किया है, किसी नामधारीको नमस्कार नही किया है । तो धर्मध्यानी पुरुष इस प्रकार परमेष्ठीके स्वरूपका चिन्तन करता है और यह चिन्तन आगेके प्रकरणमे विशेषरूपसे आयगा । यह भी सस्थानविचय धर्मध्यानका अग है ।

विलीनाशेष कर्माण स्फुरन्तमतिनिर्मलम् ।
स्व ततः पुरुषाकार स्वाङ्गगर्भगत स्मरेत् ॥१८५४॥

धर्मध्यानमे लोकस्वरूपचिन्तनाके पश्चात् पुरुषाकार निज आत्मतत्त्वके ध्यानका उप-

देश—इस लोकके संस्थानका चिन्तन करनेके पश्चात् ज्ञानी ध्यानी पुरुप अपने शरीरके गर्भगत याने शरीरके मध्य स्थित पुरुषाकार कर्म रहित अति निर्मल चिन्तवन करे । सब कुछ ध्यान किया, वस्तुस्वरूपका खूब विचार किया । अन्तमे करना क्या है ? एक इस सहज ज्ञानस्वरूप आत्माका ध्यान । यह न कर सके तो वह ध्यान भी न रहे । सर्व ध्यानोका लक्ष्य यही है जो मोक्षमार्गमे प्रयुक्त होता है । अपने सहज चैतन्यात्मक आत्माका उपयोग बने, उस ही मे आत्म-मग्न रहे तो ये सब चिन्तवन करनेके पश्चात् अपने आपमे देहाकार, किन्तु देहसे निर्मल केवल ज्ञानमात्र आत्माके स्वरूपका ध्यान करे । अब इस संस्थानविचय धर्मध्यानके एक संक्षिप्त और सामान्य वर्णनको समाप्त करते हुए अन्तमे उपसंहार रूप एक छंद कहा जा रहा है ।

इति निगदितमुच्चैर्लोकसंस्थानमित्थम् ।
नियतमनियतं वा ध्यायतः शुद्धबुद्धे ॥
भवति सततयोगाद्योगिनो निष्प्रमादम् ।
नियतमनतिदूरं केवलज्ञानराज्यम् ॥१८५५॥

शुद्ध ध्यानका फल केवलज्ञानराज्य—आचार्य महाराज कहते है कि इस प्रकार जैसा कि वर्णन किया गया लोककी समस्त रचनाओको उस लोकसंस्थानको इस प्रकार नियत मर्यादा सहित या कुछ अनियत मर्यादामे चिन्तवन करते हुए यह निर्मल बुद्धि वाला पुरुप है ना, एक प्रमादरहित ध्यान करनेसे नियमसे वह केवलज्ञान प्राप्त होता है । इन ध्यानोमे आत्मध्यान हो तो आया और उस आत्मज्ञानका अनुभव निरन्तर बना रहे, उसमे इतनी अद्भुत सामर्थ्य है कि फिर क्षपक श्रेणीपर चढकर अन्तर्मुहूर्तमे वह केवलज्ञान उत्पन्न कर ले । जैसे कही कोई चीज बँट रही हो तो लेनेवाले यह भाव रखते हुए कि आने दो, अघाते नही है । इसी प्रकार ज्ञानी पुरुप अपनी आत्मभूमिकामे ज्ञानस्वरूप समा रहा है, आ रहा है, उस आत्मस्व-रूपमे मग्न होता है और यह मग्नता मोक्षप्राप्तिका कारण है । तो इस प्रकार संस्थानविचय धर्मध्यानमें इस लोकरचनाका विचार कर करके एक निर्मलता ज्ञान और वैराग्यका प्रकाश उत्पन्न होता है जिसके प्रतापसे यह ज्ञानी पुरुप अन्तर्मुहूर्तमे केवलज्ञानी होकर मोक्षपदको प्राप्त करता है । हम आपका कर्तव्य है कि इन पौद्गलिक चीजोको महत्त्व न दे, ये तो बरबादीके ही कारण हैं । महत्त्व दे अपने ज्ञानस्वरूप और भगवत्भक्तिको, और धर्मध्यान करके अपने जीवनको सफल बनाये ।

॥ ज्ञानार्णव प्रवचन अष्टादश भाग समाप्त ॥

ज्ञानार्णव प्रवचन एकोनविंश भाग

पिण्डस्थध्यान वर्णन प्रकरण ३५

पिण्डस्थ च पदस्थ च रूपस्थ रूपवर्जितम् ।
चतुर्द्धा ध्यानमाम्नात भव्यराजीवभास्करैः ।।१८५६।। (अ)

चतुर्विध ध्यानोमे आर्त व रौद्रध्यानका निर्देश---ध्यान चार प्रकारके होते हैं--आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान । आर्तध्यान तो दुःख भरी स्थितिमे जो ध्यान होता है उसका नाम है। जैसे इष्टका वियोग हो गया, अनिष्टका सयोग हो गया, शरीरमे कोई वेदना रोग हो गया, किसी वस्तुकी आशा लगाये बैठे है, किसीका निदान बाँधा, ऐसी स्थितियोमे दुःखभरी स्थिति होती है, उस समयके ध्यानका नाम आर्तध्यान है । देखिये जैसी पीडा इष्टके वियोगमे व अनिष्ट अर्थात् वरीके संयोगमे होती है, अथवा शरीरमे व्याधि रोग हो जानेपर होती है वैसी ही पीडा और बल्कि उससे भी बढकर किसी वस्तुकी आशा करनेमे, अमुक चीज मिले ऐसा निदान बाँधनेमे होती है । सुखी तो वे पुरुष है जिन्होने कोई इच्छा नही की । दूसरा ध्यान है रौद्रध्यान । रुद्र परिणाम होना, खुश रहना, मौज मानना और क्रूर परिणाम रखना, उसका नाम है रौद्रध्यान । जैसे हिसा करना कराना और उसमे आनद मानना, झूठ बोलना, चुगली करना, झूठी गवाही देना, निन्दा करना, असत्य वचनोंमे आनन्द मानना, किसीकी वस्तु चुरा लेना, कोई कलासे किसीका कोई द्रव्य हडप लेना, उस कलामे आनन्द मानना और अपनी चतुराई समझना---ये सब रौद्रध्यान है । परिग्रहोका सग्रह करके विषयोंके साधनोकी रक्षा करना, विपयके साधनोमे प्रीति बढाना ऐसे मौजोका नाम रौद्रध्यान है ।

धर्मध्यानका निर्देश---धर्मध्यान धर्मसम्बधी ध्यानको कहते है । प्रभुकी भक्ति करना, तत्त्वका चिन्तन करना, कर्मोका फल विचारना, जगतके स्वरूपकी रचनाका विचार करना आदिक ये सब धर्मध्यान है । और शुक्लध्यान नाम हे स्वच्छध्यानका । जहाँ रागाश नही प्रवर्तता है और वस्तुस्वरूपका ध्यान बनता है उसका नाम है शुक्लध्यान । इन चार प्रकारके ध्यानोंमे आर्तध्यान और रोद्रध्यान तो बुरे है, ससार बढावनहारे है और धर्मध्यान शुक्लध्यान ये मोक्षके कारणभूत है । इस प्रसगमे धर्मध्यानका वर्णन चल रहा है । धर्मध्यानके चार भेद है---आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और सस्थानविचय । प्रभुकी आज्ञाको प्रमुख

मानकर उस पद्धतिसे धर्मध्यान करना आज्ञाविचय है। अपायविचय नाम है रागादिक भाव कैसे विनष्ट हो, इन कर्मशत्रुवोसे छुटकारा कैसे हो, यो रागादिकमे विनाशका चिन्तन करना सो अपायविचय है। कर्मोके फलका विचार करना, पुराण पुरुषोंके चरित्र बाचकर अथवा वर्तमानके देवोको देखकर कर्मफलका चिन्तन करना विपाकविचय धर्मध्यान है। सस्थान-विचय धर्मध्यान लोकरचना, कालरचनाका चिन्तन करना सो सस्थानविचय धर्मध्यान है। अभी सस्थानविचय धर्मध्यानका वर्णन चला था, अव उस ही ध्यानके अगभूत चार प्रकारकी जो धर्मध्यान करनेकी पद्धतियां है उनका वर्णन करेंगे।

संस्थानविचय धर्मध्यानकी चार पद्धतियां—वे चार पद्धतिया क्या है, वे चार प्रकार के सस्थानविचयके भेद कौन है सो इस श्लोकमे बताया है। पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत—ये चार प्रकारके ध्यान आचार्य देवने बताये है। जिन योगीश्वरोके सद्वचन सुनकर भव्य जीव रूपी कमल प्रफुल्लित हो जाते है ऐसे सत योगीश्वरोने ये चार प्रकारके सस्थान-विचय ध्यान बताये है। इनका वर्णन आगे विस्तारसे आयगा, और फिर सामान्य रूपसे समझ लीजिये कि पिण्डस्थ नाम तो है अपने आपके पिण्डमे, शरीरमे, अपने आपके प्रदेशोमे कुछ ऐसी धारणा बनाना, कल्पना करना, जिसमे यह जीव बाह्य प्रसगोसे छूटकर अपने आपके एक चिन्तनमे और निर्भार ज्ञानानन्दस्वरूपके अनुभवमे आता है पिण्डस्थकी वह पद्धति है, स्वय आचार्य देव बहुत विस्तारसे बतायेंगे। पदस्थ ध्यान है किसी मत्र पद्धतिका आश्रय लेकर चिन्तन करें। मत्र कितने ही प्रकारके है—छोटे, बडे और मझोले। मत्र अनेक है। उनमें से किसी भी मत्रका सहारा लेकर ध्यान बने, चिन्तन करना, भक्ति करना वह पदस्थ ध्यान है। रूपस्थध्यान है अरहत भगवानका स्वरूप चिन्तन करके उनके ध्यानमे जो चिन्तन चलता है वह रूपस्थ ध्यान है और अष्टकर्मोसे रहित केवल निजस्वरूपमात्र आत्मतत्त्वका, परमात्मतत्त्व का चिन्तन होना रूपस्थ ध्यान है। इन चार ध्यानोमे से पिण्डस्थ ध्यानका इस अधिकारमे वर्णन कर रहे है।

पिण्डस्थ पञ्च विज्ञेया धारणा वीरवर्णिता।
सयमी यास्वसमूढो जन्मपाशान्निकृन्तति ॥१८५६॥ (ब)

पिण्डस्थध्यानमें पांच धारणायें—पिण्डस्थ ध्यानसे वीरभगवानकी दिव्यध्वनिसे प्रगट उपदेशमे बताया है कि ५ धारणायें होती है। उनमें सयमी मुनि ज्ञानी होकर उन ध्यानोमे उपयोग करके ससाररूपी जालको काट देते है। ध्यानके लिए सीधा तत्त्व तो है अपने आत्मा का सहजस्वरूप और यत्र तत्र न भ्रमण करना, उपयोग नही फसाना है। सारभूत तत्त्व तो अपना सहज ज्ञानानन्द स्वरूप है। वहाँ उपयोग देते है जिसके प्रतापसे सर्वकर्ममल, सर्व उपा-

धियाँ दूर होती है। जब यह सीधा ध्यान नही बन सकता जो कि सहज है, सुगम है और परमार्थ है तब मन वश करनेके लिए और मनको एक सत्पथमे लगानेके लिए इस ही निर्भार आत्मस्वरूपके चिन्तनके लिए कुछ धारणाये की जाती है, कुछ विचार बनाये जाते है और उन विचारोंके रूपमे अपनेको निरखा जाता है तो वे धारणायें कहलाती है। वे धारणाये ५ कौन कौन सी है, इसका वर्णन आगे के श्लोकमे कर रहे है।

पार्थिवी स्यात्तथाग्नेयी श्वसन वाथ वारुणी।
तत्त्वरूपवती चेति विज्ञेयास्ता यथाक्रमम् ॥१८५७॥

पाच धारणाओका निर्देश—पिण्डस्थध्यानके अगभूत ५ धारणाये हैं ये—पार्थिवी, आग्नेयी, श्वसना, वारुणी और तत्त्वरूपवती। इन सबका वर्णन आगे आयगा। बहुत अपने कामका वर्णन है। हम किस प्रकार अपना ध्यान बनायें, कैसी साधना करें कि हम अपने आपमे विराजे हुए इस अतस्तत्वको विशुद्ध बना लें, ससारके समस्त सकटोसे छूटें, इसके लिए ध्यानका सहारा लेना होता है। कितना मोहान्धकार छाया है जीव पर कि जो व्यर्थकी बात है—बाह्यसाधन परिवार मित्रजनोका मोह अथवा लोगोंमे अपना कुछ नाम चाहना आदिक कितनी एक विडम्बनाकी बातें है कि इनमे उपयोग पडा हुआ है और समय निकल जाने पर यह खुद अपने आप यह अनुभव करता है कि मैं रीताका रीता ही रहा। जन्म लिया, सम्पर्क मे बसा, क्या क्या किया, वह सब व्यर्थ ही गया। कुछ साथ न रहे, यह मैं रीता ही चला जा रहा हू, बल्कि जो कुछ मैंने पूर्वभवमे कमाई की थी उसको इस भवमे गवाकर जा रहा हू। एक कविने अलकारमे बताया कि देखो जब बालक पैदा होता है तो कुछ मुट्ठी-सी बांधे हुए रहता है और जब मरता है तो हाथ पूरा फैला हुआ रहता है। तो इसमे हुआ क्या कि जब आया तब पुण्यको बाँधकर लाया जन्म समय और ज्यो ज्यो आयु व्यतीत हुई, बडा हुआ कषाय जगी सो उसने अपना पुण्य बरबाद किया। अब कुछ हाथ नही रहा सो हाथ पसारे जा रहा है और भी देख लो, जब बच्चा छोटा होता है तब सबको कितना प्रिय रहता है? वह बच्चा छोटे बडे सभीके गोद गोदमे ही रहता है। सभी उस बालक को प्रसन्न रखना चाहते है, उसकी बडी सेवा होती हैं। तो मालूम होता है कि अभी उसके पुण्यका उदय है जो पुण्य पूर्वभवमे कमाया उसका यह फल है कि अशक्त है वह बालक, चल फिर भी नही सकता, अच्छी तरह बोल भी नही सकता, पर लोग उस बालकके लिए कितना आँखोकी पलकें बिछाये रहते हैं। तो क्या हुआ कि उसके पुण्यका उदय विशेष है। फिर जब वह बडा होता है तो फिर कुटता पिटता भी है, अनेक आपत्तिया भी आती हैं, घरसे निकाल भी दिया जाता है, वृद्ध हुआ तब तो और भी दीन बन जाता है। तो इससे भी यह साबित हो रहा कि मनुष्यभवमे पुण्यके साथ आया है सो वह बचपनमे बडा सुखी रहा और फिर विषय

कपायोमे पडकर उसने अपने पुण्यको खतम कर दिया। तो यह संसार बडा भयानक है। जन्म मरणसे प्रेरित है ये जीव। इनको उत्तम ध्यान ही शरण है। जब परमार्थ सहज ज्ञायकस्वरूपका ध्यान नही जमता, पात्रता विशेप नही है तो उस समय इस जीवको इन धारणाओका सहारा लेना चाहिए। उनमेसे पहिले पार्थिवी धारणाका स्वरूप बतलाते है।

तिर्यग्लोकसम योगी स्मरति क्षीरसागरम्।
निःशब्द शान्तकल्लोल हारनीहारसन्निभम् ॥१८५८॥

पार्थिवी धारणामे प्राथमिक ध्यानमें विशाल क्षीरसागरका चिन्तन—प्रथम ही योगी एक तिर्यक् लोकका विचार करे। तिर्यक् लोक उसे कहते है जिसमे जम्बूद्वीप, लवण समुद्र, धातकी खण्ड आदिक असख्याते द्वीप समुद्र विस्तारको प्राप्त है। देखो जब घरमे रहते है तब क्या हाल होता है और जब इन असख्यात द्वीप समुद्रोका ज्ञान करनेमे ध्यान रहता है तब अन्तरमे कितना एक हल्कापन रहता है, सन्तोषकी ओर सा रहता है, तो सर्व प्रथम पार्थिवी धारणामे क्या चिन्तन करे यह जीव ? यह धारणा पद्मासन, अर्द्ध पद्मासन जैसा आसन लगाकर की जाती है। यो चर्चा करते हुए या सोते हुए, या किसी भी तरह बैठे हुए यह बात बने ऐसा नही है। किसी स्थिर आसनसे बैठकर योगी अथवा श्रावक यह चिन्तन करे कि यह तिर्यक् लोक है जहाँ असंख्याते द्वीप समुद्र है और यह नि शब्द है, कहीसे कोई शोरगुल नही हो रहा, कोई शब्द नही हो रहे, सारा प्रदेश भूमण्डल और सागरका प्रदेश भूमण्डल और सागरका प्रदेश सब नि.शब्द है, समस्त सागर कल्लोलरहित है ऐसा पहिले इस तिर्यक् लोकका चिन्तन करे और फिर बर्फके तुल्य शान्त शीतल स्वच्छ एक क्षीर सागरका चिन्तन करे। यह पार्थिवी धारणामे एक प्रारम्भिक चिन्तन है। इसके पश्चात् क्या विचारे ?

तस्य मध्ये सुनिर्माण सहस्रदलमम्बुजम्।
स्मरत्यमितभादीप्त द्रुतहेमसमप्रभम् ॥१८५९॥

विशाल क्षीरसागरमे सहस्रदल कमलका चिन्तन—अभी चिन्तन किया था कि असंख्याते द्वीप समुद्रोसे वेष्टित, असख्याते लोकमे फैला हुआ यह तिर्यक् लोक है और इस तिर्यक् लोकके मध्यमे एक क्षीर समुद्र है, उसमे अथाह जल है, दूधके समान सफेद है, शान्त है, कल्लोलरहित है, ऐसा क्षीरसागर सोचा था, इसके पश्चात् यह धारणा करे कि उस क्षीर सागरके मध्यमे एक सहस्र दल कमल है, जिसकी रचना सुन्दर है और चारो ओर फैलती हुई दीप्तिसे कान्तिमान है और तपे हुए स्वर्णकी तरह लाल प्रभाववाला एक सहस्र दल वाले कमलका चिन्तन करें। इस चिन्तन करनेमे देर नही लगती। एक पलक मारते ही सारा चिन्तन हो गया। जैसे कभी कही बडी दूर रहने वाले रिश्तेदारका चिन्तन कर रहे है अथवा अन्य किसी मित्रका चिन्तन कर रहे है तो उसमे क्या विलम्ब लगता ? एक पलक मारते ही

वह स्मृतिमे आ जाता है। बम्बई कलकत्ता वगैरह जानेमे तो २४ घटे लगते होगे रेलगाडीसे, पर इस मनको भी क्या इतना समय लगता है ? अरे इस मनको तो पलक मारते मारते ही झट स्मृत हो जाता है। उसे कुछ भी विलम्ब नही लगता। तो यह एक धारणा बतायी जा रही है कि एक बडा तिर्यक लोक है इतने विस्तार वाला, असख्याते योजन वाला और उसके मध्य क्षीरसमुद्र है, उसके बीच एक तप्तायमान स्वर्णकी सी प्रभा वाला एक कोटिमान सहस्र दल कमल है, इसके बाद क्या चिन्तन करे ?

अब्जरागसमुद्भूतकेसरालिविराजितम् ।
जम्बूद्वीपप्रमाण च चित्तभ्रमररञ्जकम् ॥१८६०॥

पार्थिवीधारणामे आसनस्थानरूप कमलकी विशालताका चिन्तन—वह कमल जम्बूद्वीपके प्रमाण एक लाख योजनका फैला हुआ है। चिन्तन ही तो है। वहाँ कोई यह शका नही करना है कि इतना बडा कमल होता है क्या ? यह तो एक धारणा है। जब यह वर्णन समाप्त होनेको होगा, इस धारणाका स्वरूप पूरा जब सुन लिया जायगा और कुछ उसके अनुरूप अपने आपका चित्त बनेगा तो स्वय अनुभव कर लेंगे कि इस धारणामे इस जीवका उपयोग कितना विशुद्ध बन जाता है और अपने आपके स्वरूपका स्पर्शन करने वाला होता है। अभी तो एक चिन्तन चल रहा है। एक बडा तिर्यक लोक है, उसमे क्षीर समुद्र है, उसमे एक लाख योजनके विस्तारका सहस्रदल कमल है जिसकी लालिमासे उत्पन्न हुई जो केसरोकी पक्ति है उससे शोभायमान है। कमलके बीचमे बाल बराबर पतले कर्णिकासे कुछ उठे हुए बहुतसे केसर रहते हैं, हर एक फूलमे मिलेंगे और उनमें उनके ऊपर कुछ बूंद बूंद सी केसर रहती है जो झरती भी हैं, तो उस सहस्रदल कमलमें केसरकी पक्ति है, उससे शोभायमान है और मनको हरने वाला, चित्तको रजायमान करने वाला एक लाख योजनका ऐसा सहस्रदल कमल है। तीन केन्द्र तक आप आये। इतना बडा तिर्यक लोक जिसमे असख्याते द्वीप समुद्र समाये है, उसके मध्य क्षीर समुद्र और उसके बीच है एक लाख योजन का शोभायमान सहस्रदल कमल। फिर क्या चिन्तन करे ?

स्वर्णाचलमयी दिव्या तत्र स्मरति कर्णिकाम् ।
स्फुरत्पङ्गप्रभाजालपिशङ्गितदिगन्तरम् ॥१८६१॥

कमलमे स्वर्णिम कर्णिकाका चिन्तन—अब उस कमलके बीचमे कर्णिका का चिन्तन करे। कमलमे कर्णिका बहुत स्पष्ट होती है और फूलमे भी होती है, बीचमे कुछ उठा हुआसा भाग जिसके चारो ओर केसरकी पक्ति लगी रहती है, उसका नाम है कर्णिका। कमलकी कर्णिकामे ही तो कमलगट्टा पैदा होते है। उस कमलके मध्यमे मेरुपर्वतके समान स्फुरायमान पीत रगकी प्रभा वाले जिसे अपने पीत रगसे समस्त दिशावोको पीला बना दिया है ऐसी कर्णि-

काओका चिन्तन करे। यह चौथी भूमिका है। तिर्यक लोकके बीचमे क्षीरसमुद्रके मध्यमें एक लाख योजनका कमल और उसके मध्य मेरू समान विस्तार की कर्णिका का चिन्तन करे।

शरच्चन्द्रनिभ तस्यामुन्नत हरिविष्टरम्।
तत्रात्मान सुखासीन प्रशान्तमिति चिन्तयेत् ॥१८६२॥

विशाल कमलकर्णिकापर सिंहासनपर अपनेको आसीन होनेका अवलोकन—अब उस कमलके बीच जो कर्णिका है उस पर अपने आपको बिराजा हुआ निरखे, अपनेको नगरसे बहुत ऊँचे उठा ले गए और इतने बडे विस्तारमे तिर्यक लोकमे क्षीरसमुद्रके मध्यमे एक लाख योजनके कमलके बोच मेरू पर्वतके समान उत्तग कर्णिका पर यह मै स्वय बैठा हुआ हू ऐसा अपने आपके आत्माको बिराजमान निरखे। ले तो जाये कोई अपने उपयोगसे अपने आपको अपनेमे, देखिये वहाँ कितना हल्कापन प्रगट होता है? जब आप अपने बारेमे स्थिर आसन करके और इस तरहका चिन्तन करके अपनेको ऊपर उठा ले जायेगे, जमीनका भी पता न रहेगा कि मैं किस जगह बैठा हू, इस धारणामे इस तरहकी चिन्तना ले जायें कि मैं इतनी उत्तंग मेरू पर्वतके समान कर्णिका पर बिराजा हू और चारो ओर यह सब दृश्य है, उसके मध्य बहुत ऊँचे चलकर मेरू कर्णिकापर अपनेको बैठा हुआ चिन्तन करें, और भी कुछ विशेषताके साथ उस कर्णिकामे एक श्वेत स्वच्छ चन्द्रके समान धवल ऊँचा सिंहासन है, उसमे अपने आपको शान्तरूप निश्चल चिन्तन करे। लो यह मै हू। स्वय अपने आपका स्वरूप अपने उपयोगमे बिराजा रहे, ऐसा अपनेको उठायें और वहाँ अपनेको सुखी चिन्तन करें, शान्त चिन्तन करें।

रागद्वेपादि निःशेपकलङ्कक्षपरणमम्।
उद्युक्तं च भवोद्भूतकर्मसन्तानशातने ॥१८६३॥

अपनेको निष्कलंक देखनेकी दृष्टि—उस सिंहासनपर बैठे हुए अपने आत्माका ऐसा चिन्तन करे कि यह मै आत्मा रागद्वेषादिक समस्त कलकोका क्षय करनेमे समर्थ हू। इस भूमडल पर कितने स्वच्छ वातावरणमे, कितने ऊँचे अपने आपको बिराजमान करके यो निरख कर अपने आपको देखकर यह उत्साह भरे, यह सारे कलकोको दूर करनेमे समर्थ है। क्यो कलक किया था? कोई खोटा परिणाम बनाया था। कितने ही खोटे परिणाम बनाया हो, अब उनके बजाय यदि विशुद्ध चैतन्यस्वभावका उपयोग बने तो सारे कलक तो लो यो दूर ही तो हो गये। उन रागद्वेषादिक कलकोका क्षय करनेमे यह समर्थ है और ससारमे उत्पन्न हुए जो कर्म हैं उनकी परम्पराका नाश करनेमे लो यह बडा उद्यमी है। ऐसा अपने आपको राग-द्वेषमयी वातावरणसे बहुत ऊँचे उठाकर अपने आत्मामे इस प्रकार चिन्तन करें इसका नाम है पार्थिवी धारणा। इसमे भौतिक तत्त्वोका, पार्थिवी पिण्डका सहारा लिया गया है, इस कारण

इस धारणाका नाम है पार्थिवी धारणा ।

ततोऽसौ निश्चलाभ्यासात्कमलं नाभिमण्डले ।
स्मरत्यति मनोहारिषोडशोन्नत पत्रकम् ॥१८६४॥

आग्नेयी धारणामे नाभिमण्डलस्थ कमलका चिन्तन—इस पिण्डस्थ ध्यानमे जो चार प्रकारकी धारणावोका वर्णन किया जा रहा है—पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत । तो ये चारो धारणायें बिल्कुल जुदी है, सिलसिलेसे प्रारम्भ करनेकी है । वे ५ धारणायें है—पार्थिवी, आग्नेयी, श्वसना, वारुणी और तत्त्वरूपवती । इनमे पार्थिवी धारणासे जो कुछ चिन्तन कर लिया, उसके बाद फिर आग्नेयी धारणाकी बात शुरू होती है । ऐसा नही है कि कोई पार्थिवी धारणा करके ही अपना ध्यान समाप्त कर ले और कोई आग्नेयी धारणासे ज्ञान शुरू करे, किन्तु ये सब क्रमवर्ती है । पार्थिवी धारणामे इस ध्यानार्थी पुरुषने यह चिन्तन किया था कि असख्यात योजनका तिर्यक् लोक है, उसमे क्षीर समुद्र है, उसमेसे बीचमे मेरु पर्वतके समान एक सहस्र दल कमल है और उस कमलकी कर्णिकापर एक स्वच्छ सिंहासन पर मैं बैठा हूँ, ऐसा चिन्तवन करनेसे उसने अपने आपको दुनियाके वातावरणसे और उपयोग मे भूमितलसे उठाकर बहुत दूर अपनेको विराजमान किया है । इस ही ध्यानमे बहुतसे कषायो के मद होनेकी बात हो जाती है । इसके पश्चात् अब वही विराजा हुआ यह ध्यानार्थी पुरुष निश्चल अभ्याससे अपने नाभिमण्डलमे सोलह ऊँचे-ऊँचे पत्रोंके एक सुन्दर कमलका ध्यान करता है । मैं वहाँ ऊपर बैठा हू, और उसकी नाभिपर एक सोलहपत्रोका कमल है । इस कमल की क्यो कल्पना यह कर रहा है, उसका पयोजन क्या बतावोगे ? सामान्यत ऐसा समझ लो कि वहाँ दो कमल विचारे जाते है एक नाभिपर सोलह दल कमल, जिसकी पखुडी ऊपरको उठी हुई है और उसके ऊपर हृदयपर एक आठ पत्रोका कमल है जिसकी पखुडी नीचेको चली हैं । यो समझिये कि जैसे खिले कमलपर खिला कमल धर दिया जाय तो एकका मुख ऊपर हुआ, एकका मुख नीचे हुआ । ऐसा क्यो चितन किया जा रहा है, यह सब आगे आयगा । तो अभी इतना चिन्तन कर रहा है । अपनेको इस जीवनसे ऊँचे तो पहिले ही उठा रखा था, अब इस ही स्थानपर विराजे हुए अपने आपके शरीरमे नाभि कमलपर सोलह पत्रोंके कमल का यह योगी चिन्तन कर रहा है ।

प्रतिपत्रसमासीनस्वरमालाविराजितम् ।
कर्णिकाया महामन्त्र विस्फुरन्त विचिन्तयेत् ॥१८६५॥

नाभिमण्डलस्थ कमलके पत्रमे स्वरमालाका व कर्णिकामे महामंत्रका चिन्तन—इतना चिन्तन करनेके बाद उस कर्णिकामे जो नाभिपर विचारा है कमल, उसमे भी तो बीचमे कर्णिका है, उसमे महामन्त्रका चिन्तन करे । कौन महामन्त्र ? जो अभी आगे बताया जायगा,

जिसमें एक स्वर लगा हुआ है। णमोकार मंत्रकी बात नहीं कही जा रही है, किन्तु उसके बीच मंत्र होता है, जिसमे समस्त मंत्रोका सार गर्भित है, जिसका उच्चारण करना तो जरा कठिन है, उसका आकार एक 'ह' का अक्षर है, जिसपर रेफ लगा है और उसपर अनुनासिक मात्रा लगी है, जिसे कोई विशिष्ट वचन ऋद्धि वाला शुद्ध बोल सकता है। अर्हं बोलेंगे तो अ आयगा। अर्हंकी जो स्थिति है उसमे अ को निकालकर बोलिये, और उस कमलके सोलह पत्रोंपर सोलह स्वरोका चिन्तन करे। एक एक पत्रपर एक एक स्वर अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः। आजकल तो ऋ ॡ आदि शब्दोका तो हिन्दी भाषामे प्रयोग ही नही किया जाता, इन्हे कोई लोग जानते ही नही है। इगलिशमे भले ही आर-आई लिखें। तो उसमे व्यञ्जन लगाकर लिखते है। ऋ का व ॡ का आकार यदि स्वरके ढग। हो तो वह स्वर कहलाता है, और ऐसा विचार लो कि य र ल व का ल अक्षर है, उसमे ऋ लगी है तो वह व्यञ्जन बन जायगा। उसके उच्चारणमे कुछ अन्तर हो जायगा।

ये स्वर क्यो कहलाते है? तो जो स्वय बोला जाय उसे स्वर कहते है। व्यञ्जन खुद नही बोला जाता, उसमे स्वरका सहारा चाहिए। जैसे "क", तो क मे अ मिला है तब क उच्चारण कर सके। क मे अ लगाये बिना नही बोल सकते। कभी बोल भी सकते जैसे अक्। इसमे बोल दिया। मगर वहाँ विशुद्ध क के बोलने के लिए शुरूके अ का सहारा मिल गया। क्य, इसमे भी आधा क बोल दिया जायगा पर इस विशुद्ध क बोलनेमे अ का सहारा मिला। आप कितने ही व्यञ्जन लगा दे और उसमे एक स्वर छोड दे तो सबका उच्चारण बन जाता है। एक शब्द है "कर्ट्स्न्यर" इसमे कितने अक्षर आया। क आया, अ आया, आधा र, त, स, न य और र इतने अक्षर है अर्थात् र त स न ये चार आधे अक्षर लगे हुए है। इसका उच्चारण करनेमे य और अ का सहारा लिया है। स्वर बोलनेमे किसी सहारेकी जरूरत नही है, वह स्वय बोला जा सकता है, यह स्वर कहलाता है। श्रुतज्ञानके शब्दोमे व्यञ्जन शब्द भी आते है, पर स्वरोका भी वहाँ बडा महत्त्व है, जिनके बिना व्यञ्जन बोले नही जा सकते। दूसरा स्वर जैसे बिना किसी अपेक्षाके स्वय विराजमान रहा करता है इसी तरह हमारे लक्ष्यके पवित्र सिद्ध भगवत भी स्वयं पलटते है। उनको किसी कर्म आदिकके सहारेकी आवश्यकता नही होती। तो इन स्वरोका उस नाभि कमलके एक एक पत्रपर चिन्तन करे और उस कर्णिकामे हं मत्रका चिन्तन करे। उस मत्रका स्वरूप वतला रहे हैं जिसकी कर्णिकामे विराजमान किया। (पिण्डस्थ ध्यानवर्णन प्रकरण ३७)

रेफरुद्ध कलाविन्दुलाञ्छित शून्यमक्षरम्।
लसदिन्दुच्छटाकोटिकान्तिव्याप्तहरिन्मुखम्॥१८६६॥

कर्णिकामें रेफरुद्ध हं महामंत्रका चिन्तन—वह मंत्र अक्षर रेफसे रुद्ध है अर्थात् अन्तमे

रेफ है और कला बिन्दुसे चिह्नित है अर्थात् अर्द्ध चन्द्राकार उसके ऊपर है ऐसा हकार अक्षर है सो देदीप्यमान चन्द्रमाकी छटाकी तरह कान्तिसे व्याप्त और किया है दिशावोको स्वच्छ जिसने ऐसा महामत्र यह है उस नासिकामे स्थापित करके चिंतन करे। कितना ऊपर विराजे और वहाँ नाभिकमल पर सोलह पत्रोका एक कमल है, जिसकी कर्णिका ऊपर है और कमल-पत्र भी ऊपरसे उठा हुआ है। प्रत्येक पत्रपर स्वर लिखा है क्रमसे। जब कभी अक्षरोको गोल लाइनमे लिखा जाता है तो दाहिनी तरफसे वढाकर नही लिखा जाता। जैसे हम हिन्दी मे लाइन लगाते है तो वायेंसे दाहिनी तरफ वढते हुए लगाते हैं। पर जब गोलमे इन अक्षरो को लिखे तो वायेंसे दाहिनी तरफ वढकर न लगायेंगे किन्तु दाहिनेसे बाई ओरको चलाते हुए लिखेंगे। इसको लोग उल्टा लिखना कहेगे किन्तु यह सीधा है। उन वर्णोके लिखनेसे एक गोलकी प्रदक्षिणा दे देते हैं तो वह सोलह पत्रोपर स्वर बाई ओरसे वढता हुआ लिखा जायगा। ऐसे एक कमलका चिन्तन करता है यह योगी और उस कमलके मध्यमे कर्णिका का विचार करता है, जिस कर्णिकापर यह महामत्र लिखा हुआ है।

तस्य रेफाद्विनिर्यान्ती शनैर्धूमशिखां स्मरेत्।
स्फुलिङ्गसन्तर्ति पश्चाज्ज्वालाली तदनन्तरम् ॥१८६७॥
तेन ज्वालाकलापेन वर्द्धमानेन सततम्।
दहत्यविरत धीर- पुण्डरीक हृदि स्थितम् ॥१८६८॥

महामंत्रके रेफसे निर्गत विशुद्ध अग्निज्वालासे हृत्कमलपत्ररूप अष्टकर्मके दहनका चिन्तन—इस योगी ने चिन्तन किया है अपने आपके पद्मासन या सुखासन हैं पद्मासनको स्थिर करके नाभिपद्मका चिन्तन किया है। जिसका स्वरूप स्वरोंसे मण्डित और से शोभित है। अब इसके पश्चात् यह चिन्तन चल रहा है कि महामत्रमे जो रेफ ऊपरसे उठी हुई पडी है उस रेफसे मन्द मन्द निकलता हुआ धुवा और उसमे अग्निकी छोटी-सी शिखा है। यह चिन्तन कर रहा है और इस चिन्तनका प्रयोजन क्या है ? तो अभी आगेके श्लोकमे वतावेंगे कि हृदयपर एक औधा कमल भी बना है जो ८ पत्रोंसे सहित है और वे ८ पत्र हैं—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय आदि कर्मोका। इन ८ कर्मोंसे यह नाभिकमल ढका हुआ है। इसे प्रगट नही होने देते। तो उस स्थितिमे यह चिन्तन चल रहा है कि नाभिकमलके रेफसे मद मद धुवांकी शिखा उठ रही है। इस समय कोई सोचता भी होगा ऐसा कि ये सब कल्पनाएँ बनायी जा रही हैं। चीज तो कुछ है ही नही। कल्पनाएँ ही सही। भाव ही तो करता है जीव, पर इन कल्पनाओके दौरानमे इस जीवका उपयोग कितना विशुद्ध होता है ? यह एक विचार करके तो अनुभव कर लो। एक विशुद्धि बढती है और जब यह विपय तत्त्वरूपवती धारणा तक चलेगा, पाँचो धारणायें समाप्त

होगी तब इसका और प्रभाव विदित होगा कि ऐसी धारणा विचारनेसे आत्मामें कितनी विशुद्धि जगती है ? यह धारणा तो कुछ शुभ है ना। जब विषयकषायके व्यामोहमे यह जीव अनेक खोटी धारणायें कर रहा है, वासनायें बना रहा है, उनमे तो कुछ तथ्य है ही नही। इन धारणावोमे विषय कषाय शिथिल होते ही है और अपने आपको भाररहित अनुभव करता है यह जीव। इन सोलह दलो वाली नाभि कमलकी कर्णिकापर उल्लिखित कमलकी रेफमे। ....उसमे प्रवाह रूपसे निकलती हुई स्फुलिगा, स्फुलिगा कहते है जैसे अग्निकी ज्वालासे निकलकर थोडी थोडी अग्निकी बूँदें निकलती हैं इसी प्रकार वहाँसे स्फुलिगोकी पंक्ति उठने लगे और उसमे अब ज्वाला बहुत बढी, उससे लपटें भी निकली, तब योगी क्रमसे बढती हुई उस ज्वालामे कमलका जलता हुआ चिन्तन कर रहा है। उस महामत्रकी रेफसे ज्वाला शुरू हुई और उसमे ये अष्टकर्मोके पत्र जल गए, ऐसा जलता हुआ चिन्तन करता है। कभी कोई ऐसा सोचे कि यह कल्पनाकी बात है तो चलो कल्पना ही सही। अभी तक यह जीव अपनेको कायरकी कल्पना कर रहा था, अपनेको पतित नीच, तुच्छ कल्पनाएँ कर रहा था, उन कल्पनाओकी अपेक्षा ये कितनी अच्छी कल्पनाएँ है। तो ऐसा चिन्तन करे कि मेरु पर्वतके समान बडे सहस्र दल कमलपर सिंहासनपर विराजमान आत्माने एक नाभिकमलसे निकली हुई शिखायें अष्टदल कमलको जलता हुआ चिन्तन किया। वह अष्टदल कमल कैसा है ?

तदष्टकर्मनिर्माणमष्टपत्रमधोमुखम् ।
दहत्येव महामन्त्रध्यानोत्थप्रबलोऽनलः ॥१८६९॥

कर्मरूप पत्रके दहनका अवलोकन—जो हृदयमे स्थित कमल अधोमुख है, नीचेको पखुडिया लटक रही हैं आठ पंखुडिया, उन ८ पत्रोपर ८ कर्म स्थित है, ऐसे कमलको नाभिस्थ कमलपर ठहरे हुए महामत्रकी रेफसे निकलती हुई ज्वालाका चिन्तन कर रहा है। यह अग्नि फक फक होकर ऊपरको उठ रही है और ये अष्टकर्म जले जा रहे है ऐसा चिन्तन कर रहा है। इसमे परमार्थकी बात यह भी है कि जब जीव अपने आपमे विराजमान उस ज्ञायकस्वरूपके अनुभवन चैतन्य प्रतपनके तपानेसे जो एक बलवती ज्वाला उत्पन्न होती है ध्यान ज्वाला, उसके द्वारा ये रागादिक विभाव भस्म हो जाते हैं और अष्टकर्म भी भस्म हो जाते है, यह चैतन्य परिणामोकी सामर्थ्य है।

ततो बहिः शरीरस्य त्रिकोणं वह्नि मण्डलम् ।
स्मरेज्ज्वालाकलापेन ज्वलन्तमिव वाडवम् ॥१८७०॥

आग्नेयी धारणामें अग्निविस्तार विधिका अवलोकन—इसके पश्चात् अर्थात् कमल दग्ध हो गया, वे अष्ट कर्म जल गए, ऐसा निरखनेके बाद उस शरीरके बाहर त्रिकोणरूपसे अग्निका विस्तार हुआ। अग्नि फैली तो किस तरह ? त्रिकोणरूपसे। इस त्रिकोणके विचार

मे भी कुछ मर्म है। एक तो अग्निका स्वरूप ही कोण-कोण वाला है। चौखूटी अग्नि, जलती हुई अग्नि, बराबर ठीव आकारमें, चौकोर या गोल रूपमें, किसी भी सुन्दर आकारसे अग्नि जलती हो सो बात नही है। अग्नि जलती है तो कोणोको पैदा करके जलती है, और नीचेसे ऐसी दिखती भी है कि नीचे फैली हुई है और ऊपर चलकर दोनोका एक कोना बन गया। दूसरी बात यह है कि जिस शरीरमे विराजा हुआ यह योगी ध्यान कर रहा है, उस शरीरका आकार भी त्रिकोण बन गया है, नीचे पद्मासनके कारण चौडाई विशेष है, और ऊपर सिर तक ले जाय तो वह एक त्रिकोण बन जाता है, उस ज्वालासे कर्म भस्म हुए और कर्मोको भस्म करके यह अग्नि त्रिकोणरूपमे चारो तरफ विस्तृत हो गई, जिस ज्वालाका ऐसा भयानक रूप है कि जो बडवानलके समान तीव्र ज्वाला है। बडवानलकी आगपर किसीका वश नही चल सकता। जलमे आग लगी हो तो उसे फिर किस तरह बुझाया जाय ? बाहरमे आग लगी हो तो उसे जलसे बुझा लें, पर समुद्र जलका समूह है और समुद्रमे ही बड़वानल उठता है, पानीसे ही आग निकलती है तो उसपर वश किसीका नही चलता है। वह स्वच्छन्द होकर बेरोकटोक बडी प्रभुताके साथ फैल जाती है। इसी तरह यह महामत्रकी रेफ ज्वालासे निकली हुई, बढी हुई यह आग जो त्रिकोण हो गई है वह बेरोकटोक विचर रही है, ऐसा ध्यान करें।

वह्निबीजसमाक्रान्त पर्यन्ते स्वस्तिकाङ्कितम्।
ऊर्ध्ववायुपुरोद्भूत निर्धूम काञ्चनप्रभम् ॥१८७१॥

आग्नेयी धारणामे काञ्चनप्रभ सबीज अग्निका अवलोकन—अब यह अग्नि किस प्रकार अपना स्वरूप रख रही है, जो बीजाक्षर 'र' से व्याप्त है। अग्निका बीजाक्षर 'र' है। रमरमरम उच्चारण करिये। कुछ इसकी ध्वनिमे कुछ अग्निकी सदृश्यता किन्ही अशोमे है, इसलिए यह अग्निका बीजाक्षर माना जाता है। तो यह अग्नि र से व्याप्त है और अन्तमे साथियाके चिन्हसे चिह्नित है और ऊपरसे जो वायुमण्डल चल रहा है उससे उत्पन्न हुई चद्र की प्रभा वाली यह अग्नि शिखा है, इस प्रकार चिन्तन करे। एक अपने उपयोगको अपने आपमे तपाया जा रहा है।

अन्तर्दहति मन्त्रार्चिर्बहिर्वह्निपुर पुरम्।
धगद्धमितिविस्फूर्जज्ज्वालाप्रचयभासुरम् ॥१८७२॥

मन्त्रार्चि द्वारा अन्त. कर्मदहन—यह अग्निकी ज्वाला धगधगायमान फैलती हुई लपटोसे कान्तिमान बाहरके अग्निमडल बाहरके पुरसे यह चल रही है अर्थात् यह मत्रसे उत्पन्न हुई अग्नि एकदम फैलकर अब उस अग्निको ही जला रही है। अग्निका काम ही ऐसा होता है कि दूसरेको जलाकर खुद जल जाती है। एक क्रोधकी अग्नि तो विलक्षण इतनी है कि दूसरेको तो जला देती है पर खुदको नही जला पाती अर्थात् यह क्रोध क्रोधके द्वारा नष्ट नही हो पाता।

यह क्रोधकी ज्वाला अग्निकी ज्वालासे भी भयानक है। अग्नि तो जल जलकर स्वय भी शात हो जाती है, पर यह क्रोध जल जलकर स्वय नही जल पाता है। यह मत्राक्षरसे निकली हुई ज्वाला अष्टकर्मोको जलाकर अन्तमे बेरोकटोक चारो ओर त्रिकोणरूपसे फैलकर धूमरहित स्वर्णकी तरह कान्तिवाली अग्नि बनकर अब यह उस अग्निको भी शान्त कर रही है। जब स्वच्छता आती है तब शान्ति होती है। अग्निमे जब तक धुवा साथ दे रहा हो तब तक अग्नि शात नही होती। अग्निके शान्त होनेका समय तब है जब धुवां बिल्कुल नही रहता और एक स्वर्णकी तरह चमकती हुई आग रह जाती है तब आग शान्त होती है। तो यह अग्नि ज्वाला फैलकर (अग्निमण्डल) अन्तरङ्गकी मत्राग्निको दग्ध करती है।

भस्मभावमसौ नीत्वा शरीर तच्च पङ्कजम्।
दाह्याभावात्स्वय शान्ति याति वह्नि· शनै शनै ॥१८७३॥

देह, पङ्कज, कर्मका भस्म करके वह्निका शनैः शनै. उपशम होनेका अवलोकन—क्या हो रहा है अब कि यह अग्निमण्डल नाभिस्थ कमलकी कर्णिकापर लिखे हुए महामत्रकी लेपसे निकली हुई ज्वाला अष्टकर्मोको जलाकर अब नाभिस्थ कमल और शरीरको भी भस्मभूत करके चूकि अब जलाने योग्य पत्र कुछ रहा नही तो धीरे-धीरे यह अग्नि अपने आप शात हो जाती है। आग्नेयी धारणामे इस प्रकारका यह योगी चिन्तन कर रहा है। पार्थिवी धारणामे अपने आपको अशुद्ध वातावरणसे बहुत ऊँचा उठाकर विराजमान किया गया है, फिर आग्नेयी धारणामे उस एक महामत्रके ध्यानसे एक चैतन्य प्रतपनकी ज्वाला उठी और उस ज्वालाने अष्टकर्मोको जलाया। देखिये यह जो महामत्र है इसमे अनेक देवतावोका स्थान गर्भित है। इसमे व्यञ्जन दो हैं र और ह। र का सकेत होता है दो और ह का संकेत होता है चार। तो दो और चार मिलकर हुए २४। ये हुए चौबीस तीर्थंकर। उनका इसमे मुख्यता से स्मरण है, और फिर तीर्थंकर कहकर उपलक्षणसे सब अरहत आये। सो समस्त परमेष्ठियो का इस महामत्रमे स्मरण है। करणानुयोगके गणित शास्त्रमे जहाँ सख्यावोका वर्णन किया जाता है वहाँ क से लेकर झ तक अर्थात् ९ अकोकी कल्पना है। ट से लेकर न तक, फिर ९ अकोकी कल्पना है। इन कल्पनाओके सहारे अक्षर बोलकर गिनती बनायी जाती है। य र ल व इनमे १, २, ३, ४ श ष स ह इनमे १, २, ३, ४। तो इस महामत्रमे र और ह के सन्निवेशसे सभी अरहत परमेष्ठियोका स्मरण किया गया है। जैसे जिनेन्द्र भगवानके स्वरूपमें चैतन्यका प्रतपन है उस ही भाति यहाँका एक प्रताप पुञ्ज निकला शिखाके रूपमे, उसने इन अष्टकर्मोको जलाया। अन्तमे यह अग्नि चारो ओर बेरोकटोक फैलकर धूमरहित हो गई, स्वच्छ हो गई। तो यह अग्निमण्डलने अपने आधारभूत नाभिमण्डलको भी जलाया, और यहाँ सारा मल जल चुका, केवल आत्मा ही आत्मा रहा। इस प्रकारका चिन्तन इस आग्नेयी

धारणामे यह ध्यानी योगी कर रहा है ।

विमानपथमापूर्य सञ्चरन्त समीरणम् ।
स्मरत्यविरत योगी महावेग महावलम् ॥१८७४॥

वायव्यी धारणामे महावेग समीरणका स्मरण—योगीने सर्वप्रथम पार्थिवी धारणामे अपने आपको वहुत बडे विस्तारसे कल्पना करके वहुत ऊँचे सहस्र दलपर, सिंहासनपर विराजा हुआ चिन्तन किया था, पश्चात् नाभिकमलसे जो कर्णिकामे महामन्त्रकी रेणुसे निकली शिखा थी उसको अष्टकर्मोंने जलाया, इस प्रकार चिन्तन किया, और वह अग्नि ऐसी चारो ओर बढी कि त्रिकोण आकारमे शरीरके चारो ओर फैल गयी और वह अग्नि इस शरीरको, कर्मको सबको भस्मसा करके स्वय शान्त हो गयी । इस प्रकार आग्नेयी धारणाके पश्चात् अब मारुती धारणामे आ रहा है । अव इस ध्यानीने यह चिन्तन किया कि आकाशमे पूर्ण होकर विचरती हुई यह हवा जो महावेग वाली है, महा बलवान है, ऐसा वायुमण्डल विचर रहा है ।

चालयन्त सुरानीक ध्वनन्त त्रिदशालयम् ।
दारयन्त घनव्रात क्षोभयन्त महार्णवम् ॥१८७५॥
व्रजन्त भुवनाभोगे सचरन्त हरिन्मुखे ।
विसर्पन्त जगन्नीडे निविशन्त धरातले ॥१८७६॥
उद्धूय तद्रजः शीघ्र तेन प्रवलवायुना ।
ततः स्थिरीकृताभ्यासः समीर शान्तिमानयेत् ॥१८७७॥

वायुमहावेगकी विशेषता व भस्मपरिहार—इतने महावेग वाली वह वायुमण्डल है कि जिस हवाने देवोकी सेनाको भी चलायमान कर दिया । देवोकी सेना वडी बलवान ऋद्धि सम्पन्न है, पर उस समय ऐसा वायुमण्डल चिन्तनमे आया कि उसने देवसेनाको भी चलित कर दिया । मेरु पर्वत भी कँप गया, जिस वायुमडलके निपातसे प्रबल वायुमडलका चिन्तन किया जा रहा है, यह वायुमडल क्या करेगी कि जो सारी भस्म पडी है आग्नेयी धारणामे शरीर और कर्मकी जो भस्म है उसको उडायेगी । यह ध्यानी अपनेको केवल चैतन्यस्वरूपमे उपयोग लेना चाहता है और उसके लिए ये धारणायें बनायी है । वह वायुमडल इतनी प्रबल है कि समूहोको बखेर रही है । जब तीव्र वायु चलती है तो कितने ही घने मेघ हो उनको तितर बितर करके शिथिल कर देती है । यह वायुमडल समुद्रमे भी बडा क्षोभ पैदा करता रहता है । कहो ऐसा वायुमडल आये कि सर्व दिशावोंमे समुद्रमे सर्वत्र कँप जाय, ऐसा वायु मडल अब उत्पन्न हुआ है । वह वायुमडल लोकके मध्यमे गमन कर रहा है । इस आकाशमे वायुमडल है तो अब यह मध्यसे आया और दसो दिशावोमे फैलता हुआ, इस सारे जगतमे

फैलते हुए अब पृथ्वीतलमे प्रवेश करता हुआ। यह वायुमंडल है ऐसा चिन्तन करें। कहाँसे वायुमडल चला ? आकाशसे चला। बडे वेग वाला चलते-चलते अब सकुचित होकर बडे वेगको उत्पन्न करके अब पृथ्वीतलमे प्रवेश करने लगा, फिर ऐसा चितन करे वह, वायुमडल आया और शरीरका जो भस्म, कर्मोका जो भस्म था उस सबको इस वायुमडलने उडा दिया। अपने आपको केवल विचारनेके लिए, अकिञ्चन देखनेके लिए यह चिन्तन चल रहा है। लो अब यहाँ कुछ नही रहा। अब यह आत्मा ही आत्मा रहेगा, वही दृष्टिमे रहेगा। ये सब बोझ तो हट गये, जल गये, उड गए। उस वायुमडलने इन समस्त भस्मोको उडाया और अन्तमे यह स्वय स्थिर हो गया। वायुमडल अब शात हो गया। जब कभी भी तीव्र आँधी चलती है, तो आँधी आयी और सारे उपद्रव करके, विघटन करके अतमे वह शात हो जाती है। तो यह वायुमडल भी शरीर और कर्मकी भस्मको उडाकर अब यह स्वय स्थिर शात हो गया, ऐसा मारुती धारणामे यह योगी चितन कर रहा है।

ध्यानमें सर्वत्र ज्ञानधारणाकी झांकी—देखिये समस्त व्यवस्था सुख दु ख, शांति अशाति सब कुछ अपनी ज्ञानधारापर निर्भर हैं। बाहरमे कुछ भी पडा हो, कुछ भी चल रहा हो, यदि भीतरमे ज्ञान सावधान है तो उसे कोई क्लेश नही और बाहरमे बडा मौज हो, वैभव हो, ठाठ हो लेकिन ज्ञान विचलित हो गया है तो उसको तो अशाति ही है। इसमे दृष्टात की क्या जरूरत ? जगतमे ऐसा साक्षात् देखनेको मिलेगा कि जिसके घरमे सारा ठाठ है, आजीविकाकी चिंता नही, सब कुछ होकर भी दिमाग बुद्धूसा है, पगलासा है, कुछ ज्ञान काम ही नहो करता, दु.खी है, अथवा घरमे कलह हो गया, लडाई हो गई, लो दु खी हो गए, और अनेक गरीब भी ऐसे मिलेंगे जो गरीबीमे गुजारा कर रहे हैं, कोई घबडाहट नही है, कर्मोपर विश्वास है। जो स्थिति होती हो वह हो, आज जो है सो ठीक है, जो होगा सो ठीक है। उस गरीबोको परिस्थितिमे भी परस्पर प्रेमसे रहकर एक दूसरेको धर्ममे सावधान करते हुए प्रसन्न नजर आते है। तो जिसकी ज्ञानधारा सावधान है, अविचलित है वह शान्त और सुखी है, और जिसका ज्ञान बिगड गया वह अशात और दुःखी है। तो यहाँ ध्यानके प्रकरणमे इस ही ज्ञानकलाकी बात चल रही है। जैसा अपनेको कोई निरखे उस योग्य अपनेमे बात उत्पन्न होती है। यहाँ तो एक विशुद्ध तत्त्वकी प्राप्तिके लक्ष्यसे कल्पना चल रही है। एक बच्चेको कोई अगर इस तरहसे समझा दे—अरे तू तो राजा है, राजा भी कही इस तरह ऊधम किया करते, तो वह तुरन्त शान्त होकर बैठ जायगा।

ज्ञानका महाप्रताप—कोई पुरुष अपनेको पतित अनुभव करे, मैं तो बहुत पापी हू, मैं अपना क्या उद्धार कर सकता हूं, मेरा जीवन तो अब सारा बेकार हो चुका है। लो ऐसा जिसने अपने आपमे अनुभव किया वह उठ नही सकता, और कोई यह अनुभव करे कि क्या

है पतन, यह तो अनादिकालसे होता चला आया है, अनादिकालमे डूबे चले आ रहे हैं, व्यसनो मे, पापोमे, मोहमे, जिसके फलमे यह ससार भ्रमण चल रहा है। सो पतन माना गया है। अपना भाव विकृत होना, अपने आत्माकी सुधि खो बैठना, अपने आपकी दृष्टि न रह सके यही तो पतन है। कितना भी यह पतन हो चुका हो, किन्तु जब भी आत्मा अपने आपकी सुध लेता है तो आखिर पर्यायमे तो एक ही पर्याय रहेगी। लो जब तक वे खोटे भाव चलते थे, चले। अब आज यदि आत्मदृष्टिका भाव जगा है तो अब क्षणमात्रनो भी न रहेगे। कहाँ गया वह पतन ? सारा पतन समाप्त हो गया। अब तो ऊपर ऊपर की ही बात है। जिसने अपने आपको इस तरहसे सम्हाल लिया उसको उद्धार हो गया, सुख शान्तिके लिए बाहरी धन वैभव इज्जत आशा प्रतीक्षा स्नेह इनमे दौडनेकी जरूरत नही है। इनमे परिश्रम करनेसे, व्यापार करनेसे शातिकी सिद्धि नही है। यह है होता है पर शातिकी सिद्धि तो एक अपने आपके स्वरूपकी सम्हालसे है। आज सारा जगत शात है। यहाँकी दुनिया सब परेशान है। देशमे बडी हैरानी है। तो वह हैरानी पर आशाकी है। धन आशा, जीवन आशा, नामवरीकी चाह, अपनी कुर्सी मिलना, अपना पद बना रहना, ये सारी बाते चित्तमे आती हैं तो अशाति रहती है। जो कुछ भी नही चाहता, कुछ भी वासना चित्तमे न रखे, लो वह अभी शान्त है। तो शाति अशातिका सम्बध अपने ज्ञानपर निर्भर है। यहाँ मारुती धारणामे इस योगी पुरुषने यह चिन्तन किया। आग्नेयी धारणामे यह अग्नि ज्वाला चारो ओर बढकर कर्मोको, शरीर को, सबको भस्म किया और खुद उज्ज्वल बनकर निर्धूम होकर स्वय शात हुआ, इसके पश्चात् तीव्र वायुमण्डल चला और यह उसी जलमे प्रवेश करता हुआ समस्त भस्मको उडा ले गया। अब भस्मसे रहित केवल यह मैं आत्या चिदानन्दघन रह गया। ऐसी धारणा मारुती धारणा मे योगीने की।

वारुण्या स हि पुण्यात्मा घनजालचित नभ ।
इन्द्रायुधतडिद्गर्जच्चमत्काराकुल स्मरेत् ॥१८७८॥

वारुणी धारणामे सविभव मेघमालाका चिन्तन—इसके बाद वारुणी धारणाका आश्रय लेता है। ऐसा मेघमंडल चला जो आकाशमे सर्वत्र व्याप गया। कभी-कभी देखा होगा कि कुछ भी नही है और एकदक चारो ओरसे मेघ उमडे और बडे घनीभूत होकर चारो ओर छा गए और वर्षा होने लगी। ये सब बातें अन्तर्मुहूर्तमे ही होकर खतम हो जाती हैं। ऐसा तो यहाँ भी दिखता है, यह मेघमण्डल बडे वेगके साथ, आकाशभरमे व्याप कर फैला हुआ है, जहाँ इन्द्रधनुप बिजलीकी गर्जना ये सारे चमत्कार हो रहे हैं ऐसे मेघमण्डलका विचार हुआ।

सुधाम्बुप्रभवैः सान्द्रैर्विन्दुभिमौक्तिकोज्ज्वलै ।
वर्षन्त त स्मरेद्धीरः स्थूलस्थूलैर्निरन्तरम् ।।१८७९।।

वारुणीधारणामें सुधाम्बुवर्षणका चिन्तन—यह सारा चितन इसलिए चल रहा है कि लो इस तरह था, यह घटना हुई, सभी कर्म जले, भस्म भी उड गयी और रही सही जो कुछ भी है वह भी उड गयी। थोडा बहुत लवलेश तो रह ही जाता है तो उसको धोनेके लिए बहुत मोटी वर्षा भी होने लगी। उन मेघोसे मोतीके समान उज्ज्वल बडे बडे बिन्दुवोसे बडी मोटी धारामे बरषते हुए ये मेघ है। ऐसे मेघोसे व्याप्त आकाशसे जब मोटी मोटी बूँदे गिरती है तो मेघोसे धारा बनकर नही गिरती, अलग-अलग मोती-सी गिरती हुई दीखती है और उन मोटी बूँदोंसे बहुत ही जल्दी सफाई हो जाती है। मेघ वर्षा बडे-बडे बिन्दुवोसे इसने अपनी धार बनाया और उन बिन्दुधारावोंसे जो कुछ भी भस्म था, मल था उस सबको धो डालेगा। चिंतन करना है अपने आपको द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्मसे रहित शुद्ध चिदानद स्वरूप आत्मतत्त्वका ध्यान करना है। उसपर जो आवरण लगे हैं उन समस्त आवरणोंसे रहित अपने आपका कैसा उपयोग बनाये उसके लिये ये धारणाये चल रही है।

ततोऽर्द्धेन्दुसम कान्त पुर वारुणलाञ्छितम् ।
ध्यायेत्सुधापयःपूरै प्लावयन्त नभस्तलम् ।।१८८०।।

वारुणी धारणामे सर्वत्र जलमयताका अवलोकन—इतना बडा ऐसा वायुमडल चिंतन करें (वरुणमडल) मेघका देवता है वरुण। देवोमे जो व्यतर देव है उन देवोको कुछ अपना-अपना अलग-अलग कौतूहल प्यारा रहता है। कुछ देव ऐसे हैं जो मेघ छटावोसे ही प्यार रखते है, ऐसे मेघ छटावोसे प्यार रखने वाले उसमे कुछ कौतूहल करने वाले वरुण देव होते है, तो उसे वरुणमडल कहो, या वायुमडल कहो, एक ही बात है। तो वह कैसा वरुणमडल है ? अर्द्धचद्राकार। मेघ कभी चौकोर सुडौल नही हुआ करते। वे अटपटे अर्द्ध चद्राकार कोन निकले हुए नाना प्रकारके आकारमे रहा करते हैं। तो मेघकी मुद्रा अर्द्धचद्राकार बताया है। साहित्यमे और जो मेघप्रिय देवोको भी रुचे ऐसी मुद्रासे यह वायुमडल अर्द्ध चद्राकार मनको हरने वाला है, अमृतमय जलकी प्रभाको आकाशसे बहाते हुए अर्थात् जलधाराको बरषाते हुए वायुमण्डलका चितन यह योगी करता है।

तेनाचिन्त्यप्रभावेण दिव्यध्यानोत्थिताम्बुना ।
प्रक्षालयति निःशेष तद्रजः कायसम्भवम् ।।१८८१।।

वारुणी धारणामे अवशिष्ट कलिप्रक्षालनका अवलोकन—उस जलके द्वारा जिसका विचिन्त्य प्रभाव है जो दिव्यध्यानसे उठा हुआ है, बाहर जल नही है, मेघ नही आये, यह तो दिव्यध्यानसे उत्पन्न हुआ सारा एक चिनन है। उस दिव्यध्यानसे उत्पन्न हुआ अमृतमय जल

से समस्त उस रजको जो भस्मगात हुई थी प्रक्षालन कर देता है, धो डालता है। तो इतना काम हो चुकनेके बाद पार्थिवी धारणा, आग्नेयी धारणासे भस्मको उडाना और वरुण धारणासे जो कुछ पहिले शेष रह गया था उस समस्त रजका धुल जाना, इतना हो चुकनेके बाद अब तत्वरूपवती धारणाका वर्णन चलेगा। तत्त्वरूपवती पाचवी धारणा है और इसके लिए ही ये चारो धारणाये थी। तत्त्वरूप जो वास्तविक आत्माका स्वरूप है उस स्वरूपका चिंतन चलेगा तत्त्वरूपवती धारणामे। जब कोई विषय कषाय परिणाम दुर्गति आदिक सब सुलभ से हो जाते है, प्रकृतिमे आ जाते है और इसमे जब कुछ विकार बढते हैं तो उस विकारको धोनेके लिए कितनी विशेष डाट चाहिए, आत्मसयम चाहिए तब ये विकार धुला करते हैं। उनपर सयम करनेके लिए ये चार प्रकारकी धारणायें कही गयी हैं।

ध्यानकी अन्य विधियोपर भी योगीका अधिकार—इन धारणाओंके साथ जो ध्यानकी विधिया हैं और जो कुछ, साधु योगी उनको भी प्रयोगमे लाते रहे, जैसे स्थिर आसनसे बैठना। वहाँ कमर झुकाकर बूढा बुढियोंकी तरह नही बैठना है। यदि कमर झुक जाये तो वहाँ निसर्ग हालत रहती है। उसमे ध्यानका इतना विच्छेद नही होता लेकिन स्वय समर्थ हैं, अच्छी प्रकार बैठ सकते है और कमर झुकाकर पडे रहे तो उसमे एक तो जो श्वास नली है उसपर जोर पडता है और दूसरे और और नसाजालोपर भी ऐसा कुछ जोर रहता है कि जिसमे फिर चित्तकी एकाग्रता नही हो पाती है। तो यो मेरु पर्वतको सामने स्थिर करके अपनी श्वासोको जान जानकर नहीं चलाते, किन्तु अपने आप प्रकृतिसे जैसे श्वास चलती हो, श्वास भरती हो, श्वास निकलती हो स्वभावत स्थित रहती है। चित्तको एकाग्र करनेके लिए कुछ ऐसा भी योग बताया है कि और विशेष कार्य नही बनता है तो हम अपनी श्वासको ही देखें। लो यह श्वास भीतर लो। अगर उस श्वासपर दृष्टि डाले तो बिल्कुल यो समझमे आयगा कि जैसे हम उसे बिल्कुल प्रत्यक्ष कर रहे हैं और प्रत्यक्ष भी है। चक्षु इन्द्रियसे जो वस्तु नजर आये उसका नाम प्रत्यक्ष है, पर इसके अलावा जो शेष चार इद्रिया है उनसे भी जो जाना जाय उसे भी तो प्रत्यक्ष कहते है, सान्व्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते है। जब श्वास भीतरको ली जाती है तब उस श्वासका स्पर्श होता है, ओठोपर हो, नाकपर हो, और वह मालूम भी हो रही हो, जब श्वास बाहरको फेंकी जाती है तब भी स्पर्श होता है तो वह भी तो कुछ विशद प्रतीत होता है और कुछ नही बनता, चित्त स्थिर नहीं हो पाता तो हम अपनी श्वास जब फेंकें तो उसे समझते रहे और श्वासको भीतर लें तो उसे भी समझते रहे। पहिले यह काम करें। कुछ देर तक यो काम करनेके बाद उस आवाजको सुने। श्वास निकालनेमे और श्वास लेनेमे आवाज आया करती है। श्वासको जब भीतरकी ओर खीचते हैं तो सो की जैसी आवाज निकलती है और जब श्वासको बाहरकी ओर फेंकते है, निकालते हैं तो

आवाज ह की जैसी आती है। तो श्वास खीचने और बाहर निकालनेमें सोहंकी जैसी आवाज आती रहती है। जितनी देर श्वासको भीतरकी ओर खीच रहे है उतनी देर सो का विचार करे और जितनी देर श्वासको बाहर निकाल रहे हैं उतनी देर ह का विचार करे। श्वास लेने और निकालनेमें सोह, सोह की आवाज आया करती है। सोहका अर्थ है जो प्रभु है सो मैं हू। ऐसा ध्यान करनेके बाद जो प्रभु वीतराग सर्वज्ञ है उस परमात्मतत्वका ध्यान करने लगिये। उस श्वासके शब्दोका भी ध्यान छोड दीजिये और उस प्रभुके स्वरूपवत् अपने आपको चिदानदस्वरूप चितवन करने लगिये। इस योगसे तत्त्व दीखेगा, मन स्थिर होगा। इस योगको भी योगी पुरुष अपनाता है, करता है और साथ ही जो प्राणायामकी प्रवृत्ति है वह शुरू हो जाती है। आप निश्चिन्त बैठे हो बडी शातिमे, आराममे तो आपकी श्वास चल रही है, निकल रही है, प्रवेश कर गयी है, पर आपको कुछ भान नही हो रहा, और थोडा श्रम करके यह भी चितनमे रहे कि मैने बडा श्रम किया, मैं बडा थक गया तो बादमे श्वास बहुत ज्यादा मालूम पडेगी कि यह चल रही है, यह निकल रही है। तो इन योगोसे भी अपने आपके कलकोको दूर करे। इन धारणावोसे इन समस्त कलकोको बहा दे। इसके पश्चात् अब रह क्या गया? केवल एक ज्ञानप्रकाश, उज्ज्वल, एक प्रतिभास। सो उस प्रतिभास स्वरूप अपने आपके निरखा गया यह तत्त्व रूपवती धारणामे बात चलेगी और इस तत्त्वरूपवती धारणाके पश्चात् पिण्डस्थ ध्यानमे जो कुछ करना चाहिए वह सब परिपूर्ण हो जायगा, समाप्त हो जायगा। समाप्तके मायने विनाश नही। समाप्तका अर्थ है सम् आप्त। जो पूरी तरहसे पा लिया जाय उसे समाप्त कहते है। वहाँ यह अपने शुद्ध चिदानदस्वरूपका अनुभव करे।

सप्तधातुविनिर्मुक्त पूर्णचन्द्रामलत्विषम्।
सर्वज्ञकल्पमात्मान तत स्मरति सयमी ॥१८८२॥

पार्थिवी आदि चार धारणावोके पश्चात् योगीका तत्त्वरूपवती धारणामे चिन्तन—इस योगी ध्यानी पुरुषने प्रथम तो पार्थिवी धारणामे एक तिर्यक् लोकमें क्षीर समुद्रके बीच मेरुपर्वतकी भाँति उत्तग सहस्र दलकमलपर सिहासनपर अपने आपको विराजा हुआ चिन्तवन करके मनको थामा था। तत्पश्चात् आग्नेयी धारणामे नाभिकमलके बीच कर्णिका लगी हुई सोलह स्वरकी रेखासे निकली हुई शिखा ज्वालासे ऊपर अधोमुख कर्ममलको जलाया और भस्म करके यह अग्नि ऐसी बढी कि शरीरको भी भस्म कर चारो ओर त्रिकोणरूपसे उज्ज्वल ठहर कर शान्त हो गयी, इस तरह चिन्तन कर विषय कषायोसे वृत्ति हटाकर अपने आप उन मन को थामा। पश्चात् मारुती धारणामे एक बडे वायुमण्डलका चिन्तन करके उस वायुमण्डल के द्वारा रही सही भस्म सब उडा दी गई। इस तरह अपने आपका चिन्तन किया। फिर

वारुणी धारणामे मेघमण्डल इतने जोर से वर्षा कर गया कि वहाँ भस्मके शेष रहे समस्त कण भी धुल गए। वहाँ क्या रह गया ? केवल आत्मा ही आत्मा। इस तरह केवल आत्मा ही रह जाय इस चिंतनमे आया। अब इसके बाद वह तत्वरूपवती धारणाको करने लगा। इस धारणामे यह सयमी पुरुष अपने आपको सप्तधातुरहित पूर्ण चद्रके समान निर्मल प्रभा वाले स्वच्छ ज्ञानानद प्रकाशमय सर्वज्ञ समान अपने आत्माका ध्यान कर रहा है। जिस पुरुष की दृष्टिमे केवल यह आत्मा आत्मा ही रहता है, यह ज्ञानानद स्वरूप अमृत जैसा इसके गुण पर्यायरूप समूह है एतावन् मात्र जिसकी दृष्टिमे रहता है उसे समस्त विषयकषायोंके विकल्प छूटनेसे एक समताभावका अवसर आता है और उस समय जो एक अद्भुत आनद प्रगट होता है उस आनदके अनुभवसे यह अपनेको तृप्त करता है। ये धारणाये चल रही हैं, चिंतन मे आ रही है कि द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मसे रहित यह मैं आत्मा हू, यद्यपि बधनमे बद्ध है, पर जिस समय ऐसा उपयोग किया जा रहा था उस समय यह आत्मा अबद्ध निर्लेप अनुभव मे आता है।

मृगेन्द्रविष्टरारूढ दिव्यातिशयसयुतम् ।
कल्याणमहिमोपेत देवदैत्योरगार्चितम् ॥१८८३॥
विलीनाशेषकर्माणं स्फुरन्तमतिनिर्मलम् ।
स्व तत पुरुषाकार स्वाङ्गगर्भगत स्मरेत् ॥१८८४॥

तत्त्वरूपवती धारणामे आर्हतवैभवोपेत आत्मतत्त्वका अवलोकन—अब योगी ऐसा चिंतन कर रहा है—अपने आत्माके अतिशयसे युक्त यह आत्मतत्त्व है। इसका ज्ञान विकास बढे तो ऐसे वेगसे अमर्याद बढता है कि इस ज्ञानविकास गुण फैलाव हो जानेमे समस्त लोकालोक को तो जानता ही है, त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थोंको तो जानता ही है, किन्तु ऐसे अनेक लोकालोक होते तो उन्हे भी यह ज्ञान जानता। यह तो एक ज्ञानभाव है। यहाँ कोई स्थानमे तो लोकालोक नही आता कि आत्माका प्रदेश भर गया है, लोकालोक समा गया है, अब दूसरा कहाँसे जाननेमे आये ? यह तो भावात्मक तत्त्व है, इसी कारण इसकी कोई सीमा नही है कि यह कितनेको जाने, जो कुछ भी सत् है समस्त विश्व है, वह सब इस ज्ञानके एक कोनेमे पडा हुआ है। इस तरह यह असीम ज्ञान होता है। यह आत्माका है अतिशय। ऐसा अतिशयकर युक्त यह आत्मा चिंतनमे आ रहा है। सिंहासनपर आरूढ अनेक कल्याणक महिमा सहित देव धरणेन्द्र आदिकसे पूजित अपने आत्मतत्त्वका चिंतन कर रहा है, यह एक आत्मस्वरूपके विकासके मार्गमे आने वाली बात है। कुछ अहकार इसमे नही आता कि दानव आदिक पूज रहे हैं बल्कि एक वैराग्य बढ रहा है। देव आदिक आते हैं तो उनका कुछ भगवानसे रिश्ता नही है। भगवान और देव ये दो तो बिल्कुल अलग जातिके देव है। वे देव गतिके हैं, यह

मनुष्य गतिके हैं, फिर कौनसा आकर्षण है कि स्वर्गोंके देव आकर्षित होकर मध्यलोकमें आते हैं और देव भक्तिमें निरत होते हैं। वह आकर्षण है वीतरागताका। तो वीतरागताकी ही पुष्टि होती है, ऐसा दृश्य निरखनेमें कि चारों ओरसे देव गान तानके साथ आ रहे हैं, बड़े विभोर होते हुए इस मनको प्रसन्न कर रहे हैं, ऐसा सोचनेमें अहंकार नहीं बनता किन्तु वीतरागताकी पुष्टि होती है। फिर सोच रहा है ज्ञानी योगी कि अष्टकर्म जहाँ विलीन हो गए हैं ऐसा अति निर्मल पुरुषाकार अपने शरीरमें ही यह आत्मा है, परमात्मतत्त्व है, तब शरीरका भी भान छूटकर केवल अपने आपके ज्ञानस्वरूपमें उपयोग रहता है तो पुरुषाकार प्रमाण जो आत्मा फैला है सर्वप्रदेशोंमें एक विशुद्ध आत्मीय आनंद जगता है, सारभूत शरणभूत बात तो यही है, बाकी सब असार है। अपना उपयोग अपने आत्मस्वरूपमें रम जाय, वही दृष्टिगत रहे यह काम कोई कर सके तो उससे बढ़िया स्थिति और क्या है? चाहे गरीब हो, दीन हो, बाह्यस्थितिमें चाहे इज्जत रहित हो, कोई चाहे जानता भी न हो, असाता वेदनीयके उदयसे चाहे अनेक उपसर्ग आदिक वेदनाएँ भी आ रही हो, किसी भी स्थितिमें हो, जिसने उपयोगसे अपने आत्मस्वरूपको दृष्टिमें लिया है वह तो सर्वोत्कृष्ट आत्मा है, अमीर आत्मा है। उसके समान आत्मीय आनंद पानेकी होड संसारमें और कौन प्राणी लगा सकता है? समस्त तीनों कालोंके इन्द्रोंका व समस्त पुण्यवान जीवोंका सुख सब इकट्ठा कर लो तो वह सारका सारा सुख भगवानके आनंदके अनंतवे भाग है। कुछ भी नहीं है वह समस्त सुख। यह भी एक कह दिया है, परंतु जाति ही अलग अलग है। आत्मीय आनंदकी जाति और कुछ है और वैषयिक सुखोंकी जाति और कुछ है। उस आत्मीय आनंदकी उपमा इन वैषयिक सुखोंसे क्या दी जा सकती है? वह अनुपम आनंद है, ऐसे आनंदामृतका पान करते हुए यह योगी तत्त्ववती धारणामें लीन है।

इत्यविरतं स योगी पिण्डस्थे जातनिश्चलाभ्यासः।
शिवसुखमनन्यसाध्यं प्राप्नोत्यचिरेण कालेन ॥१८८५॥

पिण्डस्थध्यानाभ्यासी मुनिकी मुक्तिभाजनता—इस प्रकार पिण्डस्थ ध्यानमें जिसका अभ्यास निश्चल बन गया है वह ध्यानी मुनि ऐसे मुक्तिसुखको शीघ्र प्राप्त कर लेता है जो मुक्ति सुख अन्य किसी भी उपायसे साधनामें नहीं आ सकते। मुक्ति पानेका केवल एक ही उपाय है। लोग तो मोटे रूपमें यह कह बैठते हैं कि कोईसा भी धर्म हो, कोईसा भी मत हो, कोईसा भी शासन हो, मोक्षके सब मार्ग हैं, और दृष्टान्त भी देते हैं कि देखो और कहीं किसी शहरके चारों कोनेसे चारों रास्तोंसे लोग शहरमें आते हैं और पहुंचते हैं इसी तरह, इसी तरह कुछ भी धर्म हो, कुछ भी सम्प्रदाय हो, कोई भी शासन हो सबमें सब पहुंचते हैं मोक्ष में, सो [illegible] सबका सब मार्ग नहीं है। मुक्तिका मार्ग तो एक ही है [illegible]—अपने

आत्माके ऐसे स्वभावका आश्रय लें, उस आत्मस्वभावका अनुभव करें कि जो स्वभाव स्वभावतः सबसे मुक्त अनादिकालसे चला आ रहा है, ऐसे ज्ञानस्वभावका आलंबन लें, उसकी स्थिरता रखें, उसमे उपयोगको स्थिर बनाये तो ऐसी जो एक आत्मस्थिति है वही मोक्षका मार्ग है। यह बात जो पा सके सो मुक्ति पायगा। अब इसे कुछ युक्तियोसे और आगमके कथन से निर्णयमे लायें कि ऐसा मुक्तिका मार्ग किस स्थानमे बताया गया है? देखिये आत्माका सत्यस्वरूप जाने बिना यह मार्ग नही मिल सकता, इसमे धर्म और मजहबकी कुछ बात नही, जो मार्ग है यथार्थ वह जैन शासनमे बताया गया है उसे यदि कोई धर्म, मत, मजहब कहकर अलग कर दे, एक सबकी भांति उसे भी मान ले तो यह उसकी निजी कल्पना है, पर जो यथार्थ बात है वह कोई न कोई तो बतायेगा ही। आत्माका श्रद्धान करें, आत्माका ज्ञान करें और अपने आत्मामे ही रमकर तृप्त होनेका अभ्यास रखें। अगर यह बन सकता है तो मुक्ति अवश्य मिलेगी। यही मुक्तिका मार्ग है, यह बात आत्माके यथार्थ श्रद्धानसे ही हो सकती है। रत्नत्रयका पालन कहो, ब्रह्मचर्य कहो—दोनो एक ही बात है। ब्रह्म मायने आत्मा उसमे चर्य मायने लग जाना, रम जाना, इसका नाम है ब्रह्मचर्य। इस ब्रह्मचर्यकी साधनाके लिए व्यावहारिक ब्रह्मचर्य भी पालन करना चाहिए। कारण यह है कि जो शरीरमे रुचि रखता है पर शरीरमे रुचि रखता है, ऐसा जिसने अपने उपयोगको बाहरमे लगाया है और आसक्तिपूर्वक बाहरमे रम रहा है उस उपयोगसे आत्माकी सुध कैसे प्राप्त होगी? वह इस परम ब्रह्मचर्यके मार्गसे बिल्कुल विपरीत चल रहा है, इस कारण जो लोग ब्रह्मचर्यका पालन करते है उनमे ऐसी पात्रता है कि वे इस परमार्थ ब्रह्मचर्यको भी धारण कर सकते हैं।

ध्यानार्थ आत्मस्वरूपपरिचय—श्रेयस्कर बातोके लिए आत्मज्ञानकी आवश्यकता है। कैसा है यह आत्मा? कुछ लोग तो इस आत्माको क्षणिक मानते है अर्थात् क्षण-क्षणमे नवीन नवीन आत्मा होते है। कोई लोग आत्माको एक अपरिणामी मानते हैं और कुछ लोग मानते कि आत्मा सर्वव्यापक है और केवल एक है। उसमे कभी अदल-बदल नही होता। तो देखिये इनमे परस्परमे कितना विरोध है? अब कल्पना करिये कि किसी भी एक मतव्यपर डटकर यदि क्षणिक ही आत्मा माना जाय तो जिसने पाप किया वह आत्मा तो नष्ट हो गया, कर्म जिसने बाँधा वह आत्मा दूसरा है और फल जो भोगेगा वह आत्मा दूसरा है। यह एक विडम्बना है कि कोई कर्म करे और कोई फल भोगे। और फिर धर्म ही क्यो करना, जिस आत्माने धर्म किया, तपश्चरण किया वह आत्मा तो मिट ही गया, अब उसका फल पायगा दूसरा आत्मा। जब क्षण-क्षणमे नये-नये आत्मा होते हैं तो फिर मुक्तिका उद्यम क्यों करना? तो यह क्षणिकवादियोका आत्मा कुछ चित्तमे जमता नही है। दूसरे मतव्यमे कहा गया कि आत्मा एक है, सर्वव्यापक है और उसमे कभी अदल-बदल नही होता। तो भला लोकमे कोई

भी पदार्थ ऐसा हो सकता है कि जो है और उसका परिणमन कुछ भी न हो ? रूपक अवस्था दशा प्रगटरूप कुछ भी न हो ऐसा कोई सत् नही है, यह भी बात जमती नही है, और जैन शासनने यह बताया है कि आत्मा द्रव्यदृष्टिसे नित्य है और पर्यायदृष्टिसे अनित्य है। प्रत्येक सत् का यह स्वरूप है कि वह सदा रहे और नये नये रूप धारण करता रहे। समय समयपर मुझ आत्मामे नवीन नवीन भाव उत्पन्न होते है, वे भाव वे परिणमन सदा नही रहते, जिस क्षण हुए उसी क्षण समाप्त हो जायेंगे। अगले क्षण दूसरे भाव होगे। तो इस पर्यायदृष्टिसे आत्मा की क्षणिकता नजर आयी, पर द्रव्यदृष्टिसे आत्मा वही एक है। अपरिणामी है आत्मा, वह शाश्वत रहता है द्रव्य समाप्त नही होता। द्रव्यदृष्टिसे इसका अदलबदल नही है, पर्याय दृष्टिसे इसमे परिवर्तन है। इस प्रकार आत्माके बारेमे और भी बात सोचियेगा। कैसा एक गुण वाला है, शक्तियुक्त है, इसके सभी पहलुवोपर विचार करे तो जैन शासनने अनुभव करके महर्षियोने एक आत्मस्वरूपका उपदेश प्रधान किया है, वह है हम आप लोगोको उनकी परम भेट। इसको हम आदरसे स्वीकार करें, मस्तिष्क पर रखकर इसे अगीकार करें। इस पथपर यदि हम आप चल सके तो हितका मार्ग मिल सकेगा। शेष तो लोकमे जो कुछ मिलता है वे सब असार बातें है। कोई जीव कहीसे आकर आपके घरमे उत्पन्न हो गया तो उससे क्या पूरा पडता है ? आपकी आत्माका उसकी आत्मासे क्या सम्बध है ? सभी जीव अपने आपमे परिणमते है, यह मै भी अपने आपमे परिणम रहा हू, इससे मेरा क्या सम्बध है, इस तरह चिंतन करके निर्णय कर लीजिए, प्रत्येक पदार्थ स्वतत्र है, किसीका कोई कुछ लगता नही हैं। जब यथार्थ आत्मतत्व ध्यानमे आता है तो वह मुक्तिका मार्ग जो कि एक प्रकारका बताया है—अपने आत्मस्वरूपका दर्शन होना, ज्ञान होना और उस ही मे रमण होना, यह प्राप्त होता है सम्यग्ज्ञानके सहारेसे। तत्त्वरूपवती धारणामे यह योगी चिंतन कर रहा है अपने आपके उस विशुद्ध स्वच्छ ज्ञानप्रकाशको, तन्मात्र अपना अनुभव बना रहा है, और जिसने अपना अभ्यास बनाया वह योगी मुनि मोक्ष सुखको अल्प समयमे ही प्राप्त कर लेता है।

इत्थ यत्रानवद्य स्मरति नवसुधासान्द्रचन्द्रागुगौरम्।
श्रीमत्सर्वज्ञकल्प कनकगिरितटे वीतविश्वप्रपञ्चम् ॥
आत्मान विश्वरूपं त्रिदशगुरुगणैरप्यचिन्त्यप्रभावम्।
तत्पिण्डस्थ प्रणीत जिनसमयमहाम्भोधिपार प्रयातैः ॥१८८६॥

पिण्डस्थध्यानवर्णनकी प्रशस्ति—पिण्डस्थ ध्यानसे लेकर तत्त्वरूपवती धारणा तक इस ज्ञानीने अपने आपका जो चिंतवन किया उस चितवनसे उसके विपयकपायोका भार कम हुआ। अन्य प्रकारके विकल्प जाल उसके शात हुए। रह गया केवल आत्मा सम्बधी विकल्प। सो यह विकल्प इस आत्मा सम्बधी विकल्पके मार्गसे ही दूर होता है। इस मार्गसे ही चलकर

निर्विकल्प अनुभव करता है। इस कारण इस प्रकरणमे इन धारणावोका वर्णन किया, जिसका चित्त सीधा सहज ज्ञानस्वरूपके अनुभवमे नही चलता है, उस विशुद्ध ज्ञायकस्वरूपका सीधा ध्यान जो नही कर पाता ऐसा पुरुष इन धारणावोका सहारा लेता है और विकल्पजालोंसे छुटकारा पाकर अपने निर्विकल्प स्वरूपका ध्यान करता है। इसे पिण्डस्थ ध्यान क्यो कहा गया है ? पिण्डस्थ ध्यानमे निर्दोष अमृतसे भीगी हुई चन्द्रमाकी किरणोंके समान वर्ण वाले सर्वज्ञ भगवान समान तथा मेरू गिरिके शिखरपर बैठे ऐसा इसने चिंतवन किया था जहा समस्त प्रपच दूर होते है, समस्त ज्ञेय पदार्थोंके आकार जहाँ प्रतिबिम्बित हो रहे हैं, जहाँ देवेन्द्रोका समूह भी पुज रहा है, जहाँ अतिशयका अधिक प्रभाव बन रहा है ऐसे आत्माका चिन्तवन किया जाय उसे जिनसिद्धान्तरूपी महासमुद्रके पार पहुचाने वाले मुनीश्वरोंने पिण्डस्थध्यान कहा है। जिसका मन शान्त नही है, यत्र तत्र भटकता है उस मनको विषय कषायोंसे रोक लें और अपने यथार्थस्वरूपमे लगा लें इसका उपाय इस पिण्डस्थ ध्यानसे किया जा रहा है। मन कुछ न कुछ विचलित रहता है। मनको एक बन्दरकी तरह चचल कहा गया है। जैसे बन्दर किसी जगह बैठे तो कभी हाथ फैलाता, कभी पैर, कभी गर्दन हिलाता, कभी सर खुजलाता, कभी इधर उधर देखता यो वह स्थिर नही बैठता, उसके अग-अग चलते रहते है, ऐसे ही यह मन चचल है। कभी कुछ विचारता कभी कुछ। तो इस चचल मनको किसी अच्छे काममे लगा दें तो इसकी चचलता दूर हो। एक कथानक है कि एक राजाको देवता सिद्ध हो गया। वह देव आकर बोला—राजन्! तुम हमे काम बतावो ? जो आज्ञा दोगे वह काम तैयार करके देंगे। अगर काम न बतावोगे तो हम तुम्हे मार डालेंगे। तो राजाने झट बताना शुरू किया महल बनावो। महल बनाकर झट तैयार कर दिया। राजन् काम बतावो ?…तालाब बनावो। तालाब बनाकर झट तैयार कर दिया। राजन् काम बतावो।' एक सुन्दर बगीचा लगावो। लगाकर तैयार कर दिया। राजन् काम बतावो ? यो अनेक काम बतानेपर राजा सोचने लगा कि यदि मैंने काम न बताया तो यह मार डालेगा, सो वह घबडाने लगा। अतमे एक उपाय सूझा। राजाने कहा अच्छा एक ५० हाथका लम्बा लोहेका डडा जमीनमे गाड दो। झट ५० हाथका लोहेका डडा जमीनमे गाड दिया। राजन् काम बतावो ? एक ६० हाथकी लम्बी लोहेकी जजीर लावो। झट जजीर आ गयी। राजन् काम बतावो ? अच्छा—इस जजीरका एक कोना इस डडेमे बाँधो और एक कोना अपनी कमरमे बाँधो। बाध लिया।' राजन्! काम बतावो ?' अच्छा जब तक हम मना न करे तब तक इसमे तुम चढो उतरो। लो चढने उतरने लगा। अब तो वह जब थक गया तो राजासे कहता है—महाराज! अब हमे क्षमा करो। हमको छोड दो, हम तुम्हे न खायेंगे। तुम जब भी हमारा स्मरण करोगे तो हम झट तुम्हारे पास हाजिर होंगे

और तुम्हारी मदद करेंगे। तो यह मन अति चचल है, इसको अच्छे कामोंमे लगा दो—सामायिक पूजन, स्वाध्याय, सत्सगति आदिकमे, तो फिर इस मनकी चचलता दूर हो जायगी। उस उपायमे पिण्डस्थ ध्यानमे इसे शाति आयगी और स्थिरता आयगी।

विद्यामण्डलमन्त्रयन्त्रकुहुकक्रूराभिचारा· क्रिया·।
सिहाशीविपदैत्यदन्तिशरभा यान्त्येव निःसारताम् ॥
शाकिन्यो ग्रहराक्षसप्रभृतयो मुञ्चन्त्यसद्वासनाम्।
एतद्धचानधनस्य सन्निधिवशाद्भानोर्यथा कौशिक· ॥१८८७॥

पिण्डस्थध्यानके प्रतापसे अनेक आपदाओंका परिहार—जैसे सूर्यका उदय होनेपर उलूक (घू घू) भाग जाते है इसी प्रकार पिण्डस्थध्यान रूपी धनके समीप होनेसे ये सभी आपत्तिया बिसर जाती है। एक विद्यामडल आपदा है। कोई किसीपर विद्या सिद्ध करके मत्र डालकर उसे हैरान भी कर सकता है, पर पिण्डस्थ ध्यानीको दूसरेके द्वारा इस डाले गये मत्र का कुछ असर नही होता। गृह राक्षस आदिक भी उसे नही सता पाते, सर्प सिह दैत्य आदिक भी उसपर कुछ असर नही डाल पाते। एक णमोकार मत्रमे ही इतना असर है कि दैत्य, गृहराक्षस आदिक पास नही आ पाते, फिर इस निर्वाध पिण्डस्थ ध्यानको ध्यानेसे ये सब आपत्तिया तो आ ही कहाँ सकती है? अनेक धारणावोके पश्चात् अतमे तत्त्वरूपवती धारणासे अपने आपको निर्मल विशुद्ध ज्ञानमात्र अनुभव करना है। इस ज्ञानानुभवमे ही यह सामर्थ्य है कि हमे कलकसे छुटा देगा और आत्मीय आनदका अनुभव करायेगा।

(पदस्थ ध्यानवर्णन प्रकरण ३८)

पदान्यालम्ब्य पुण्यानि योगिभिर्यद्विधीयते।
तत्पदस्थ मत ध्यानं विचित्रनयपारगैः ॥१८८८॥

पदस्थ ध्यानका निर्देश—ध्यानोमे ध्यान तो उत्तम ध्यान आत्माके सहज स्वरूपका ध्यान है, जो एक विशुद्ध ज्ञानानद स्वरूप है, निराकुल है, ऐसा शाश्वत ज्ञानस्वरूपका ध्यान सर्वोत्तम ध्यान है, किन्तु इस ध्यानमे जिसका अभ्यास नही बना, मनकी चंचलताके कारण यत्र तत्र मन भटकता है ऐसा पुरुष मनको वश करनेके लिए पिण्डस्थ पदस्थ ध्यान भी किया करता है। जिसमे पिण्डस्थ ध्यानका तो वर्णन हो चुका, अब पदस्थ ध्यानका वर्णन करते है। पदके सहारे ध्यान बनाना। कोई मत्र अक्षरोका समूह उनके सहारे ध्यान बनाना, स्वरूप ध्यान करना, एकाग्र चितन करना—ये सब पदस्थ ध्यान है। पदोमे अनेक वाक्य होते हैं, उनमे पदका स्वरूप बसा हुआ होता है। इन पदोका ध्यान करते समय ध्यानी एक तो पदोके विन्यास मुद्रापर भी ध्यान रखता है, दूसरे उन शब्दोंने पदोका जो कुछ तत्व बताया है उस स्वरूपका ध्यान करता है, तो तत्त्वस्वरूपका ध्यान करते हुए पदोके सहारे अपने

चित्तको एकाग्र करे यह पदस्थ ध्यान है। ऐसा उन ऋषि संतोंने बताया है जिन्होंने नाना प्रकारके नयोंके परिज्ञानमें कुशलता प्राप्त की है। ये ध्यान प्रारम्भमें उपकारी बहुत हैं, पर अंतमें जब परिपक्वता होती है ध्यानकी, शुक्ल ध्यानकी पात्रता जगती है वहाँ शुक्ल ध्यान बनता है तब इन सहायक ध्यानोंकी आवश्यकता नहीं रहती। सीधे ही उस परमात्मस्वरूपका ध्यान कर लिया जाता है, लेकिन जब तक वह उत्तम पात्रता नहीं जगी तब तक उन पदोंके सहारे, इन मन्त्रोंके सहारे इस स्वरूपका ध्यान करें और चित्तको एकाग्र बनायें।

(पदस्थ ध्यानवर्णन प्रकरण ३८)

ध्यायेदनादिसिद्धान्तप्रसिद्धां वर्णमातृकाम्।
निःशेषशब्दविन्यासजन्मभूमिं जगन्नुताम्॥१८८६॥

पदस्थ ध्यानमें वर्णमातृकाका ध्यान—अनादिकालमें परम्परामें चले आये हुए जो वर्णोंका समूह है, जिसको विवेकी जगत नमस्कार करता है, जो समस्त शब्दोंके विन्यासके बतानेमें वाक्योंकी जन्मभूमि है ऐसे प्रत्येक वर्णोंका ध्यान करें। वर्ण उसे कहते हैं जो पदोंकी रचना करनेमें अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे। वर्णोंके समूहको पद कहते हैं और पदोंके समूहको वाक्य कहते हैं। जितने जो कुछ भी आगम हैं उनका लोगोंसे लोकव्यवहार है। जो कुछ भी परिज्ञान चला है, जितने प्रतिपादन हैं उन सबका मूल आधार वर्ण है, यह वर्ण अनादि कालसे सिद्ध है, किन्हींने बनाया नहीं। जो बोला जाय वह अक्षर उनकी मुद्रा और लय चाहे कोई कुछ बना ले, गुजरातीमें कुछ बंगाली, मद्रासी तथा कन्नडी आदिमें कुछ, पर जो उच्चारण चला आया है उसे तो कोई नहीं बदलता। वह तो बराबर उसी परम्परासे चला आ रहा है। चाहे कोई एक ऐसी विचित्र भाषाका भी बोलने वाला हो कि जिसकी लिपि है कुछ और बोला जाता है कुछ। सीधा सही सही ढंवाईका वर्ण नहीं होता। जैसे एक अंग्रेजी भाषा है ऐसी कि जो कुछ बोला जाता है वैसा सीधा लिखा नहीं जाता है। लिखा जायगा कुछ शब्दोंको मिला करके, अथवा जो लिपि बनायी गयी हैं उनमें उच्चारण स्वयका कुछ और है, सभी अक्षर करीब करीब ऐसे है। एक भी अंग्रेजीमें अक्षर ऐसा नहीं है कि जैसा बोलो वैसा ही उस अक्षरका उच्चारण है। किन्हींका तो बहुत ही विचित्र उच्चारण है जैसे डब्लू लिखना है व बोलेंगे कुछ ऐसा विचित्र कि जो मेल ही नहीं खाता। सभी अक्षर उच्चारणके विरुद्ध हैं, पर जिसने लिपि बनायी होगी उसने कुछ तो सोचा ही होगा सुविधाकी बात। जो ए बी सी डी इस तरह बोलते होंगे उनको सुविधा अधिकसे अधिक यह हो सकती है कि किसी भी मनुष्यका या किसी भी पदार्थका संक्षिप्तमें अगर वर्ण बोला जाय तो वह कुछ न्यारापनसा लिए हुए बना रहे और बोलनेमें आसानी रहे। जैसे सुरेश चन्द्र नाम है तो एस सी बोल दिया, और हिन्दी वाले क्या बोलें? (सु० च०) तो कुछ सुविधा भी मिली, जिससे वर्णोंका

ऐसा उच्चारण किया है, पर ऐसी क्या विशेष सुविधा है, सो इसके विशेषज्ञ जो हो वे जानते होगे। तो लय कुछ भी बनाया हो, मुखसे कुछ भी बोला जाय, पर जो वर्ण-विन्यास होगा वह सबका एक प्रकार होगा। जो कि हिन्दीमे अ से लेकर ह तक स्वर व्यञ्जनोकी रचना है और उनमे जो उच्चारण है वह सभी मनुष्य बोलते है। चाहे कोई किसी भी भाषाका प्रेमी हो लेकिन उच्चारण वही निकलेगा क्योकि जिह्वा, कठ, तालू सबका एक तरह है और उनके दबावसे, स्पर्शसे जो शब्द निकलेंगे वे सबके समान निकलेगे। जैसे हारमोनियमके जो भी बजाये जाने वाले स्वर है उनको कोई भी दाबे, चाहे जानकार हो अथवा न हो, स्वर एकसा निकलेगा, आवाजमे अंतर न होगा, अतर क्रमका ही होगा, ऐसे ही ये वर्ण अनादि सिद्ध है, उनको किसी भी भाषामे बोला जाय पर उच्चारण वही सबमे होगा। तो उन अनादिसिद्ध वर्णोंको प्रथम धारण करें क्योकि जितनी पद मात्रा है, जितने शास्त्र आगम है वे सब एक इन्ही वर्णोंपर आधारित है।

द्विगुणाष्टदलाम्भोजे नाभिमण्डलवर्तिनि।
भ्रमन्ती चिन्तयेद्ध्यानी प्रतिपत्र स्वरावलीम ॥१८९०॥

नाभिमण्डलवर्ती अम्भोजमें स्वरावलीका चिन्तन—अपने शरीरके मध्य तीन स्थानो पर कमलकी कल्पना की गई है। एक नाभिकमल, दूसरा हृदय कमल और तीसरा मुख कमल। नाभिकमलमे सोलह पत्र (दल) हृदय कमलमे २४ दल और एक बीचमे कर्णिका और मुख कमलमे ८ दल, इस प्रकार तीन कमलोकी कल्पना की गयी है। तो प्रथम नाभि-कमलमे नाभिकमलपर स्थित सोलह दल वाला कमल है, उसके प्रत्येक दलपर एक स्वरका चिंतन करें। स्वर सोलह होते है, अ आ (ह्रस्व दीर्घके भेदसे) यहाँ दो भेदोमे अ को बताया है, ये स्वर हैं अर्थात् अपने आप ये बोले जा सकते है। क ख की तरह स्वरका सहारा लेकर जैसे क ख बोला जाता है इस तरह किसी अन्य वर्णका सहारा लेकर ये स्वर नही बोले जाते। इनका स्थान कठ है, अ आ बोलते हुए कठपर जोर होता है और कठसे यह ध्वनि निकलती है, पश्चात् इ ई, इनका तालू स्थान है। इ ई बोलते हुए कठमे तो इतना बल नही देना पडता किन्तु तालूका स्पर्श होता है। तालूको छुवे बिना इ ई शब्द नही बोले जा सकते है। पश्चात् उ ऊ का ध्यान करें। इनका ओष्ठ स्थान है। ओठोको मिलाये बिना उ ऊ शब्द नही बोले जा सकते। इसके बाद ऋ ॠ स्वर आते हैं, इनका मूर्धा स्थान है। तालू स्थान होता है। ऊपरके तालूसे टसा हुआ मूर्धस्थान होता है, उससे और ऊपर जहाँ जीभ लगाये बिना ऋ ॠ शब्द नही बोले जा सकते। जैसे ट ठ ड ढ ण ये शब्द भी मूर्धा हैं, तो ये मूर्धज हैं। इसके बाद ऌ ॡ इनका दत स्थान है। दतोमे जीभका स्पर्श हुए बिना ये शब्द नही बोले जा सकते। इसके पश्चात् ए ऐ—ये दो स्वर आये। कठ और तालू इन दो से इनकी उत्पत्ति होती है। कठमे

बोले और तालूमे स्पर्श हो तो ये शब्द बोले जा सकते है। इसके पश्चात् ओ औ ये दो स्वर हैं, इनका कठ स्थान है। कठमे बोले और ओठोका स्पर्श ये दो बातें एक साथ हो तो ओ औ शब्द बोले जाते है। इसके पश्चात् है अं अ। अ अनुनासिक है, और यह अनुनासिक शब्द क्या है उसकी कोई मुद्रा नही बनायी जा सकती। कोई एक बिन्दी रखी जाय, वह उसकी मुद्रा है पर उसको किसी स्वरका सहारा लेकर बोला जा सकता है, इसलिए चाहे अ कहो चाहे ह। तो किसी शब्दके साथ यह अनुनासिक चलता हे। अः यह विसर्ग है। अ का स्थान भी कठ है। इसमे अ के सामने दो बिन्दुवे ऊपर नीचे है। जैसे कि अ के आगे विसर्ग लगा दिया जाता है। यह स्वरका सहारा लेकर बोला जाता है। यो सोलह स्वरोको उन सोलह दलोपर चितन करें। ये सब शब्द जिनवाणीके आधारभूत है, इनसे आगमकी रचना होती है। जैसे आगम नमस्कारके योग्य है, शिरपर चढाते है शास्त्रोको, उपदेशोको तो वे सब बातें और उपदेश वे सब शास्त्र इन ही वर्णोंसे बने हुए है। अत ये सब वर्ण आगमके मूल है। इनको विवेकी पुरुप आदरसे नमस्कार करते है।

(पदस्थध्यानवर्णन प्रकरण ३८)

चतुर्विंशतिपत्राढ्य हृदि कञ्ज सकर्णिकम्।
तत्र वर्णानिमान्ध्यायेत्सयमी पञ्चविंशतिम् ॥१८९१॥

हृत्कमलपत्रमे व्यञ्जनावलिका चिन्तन—इसके पश्चात् ध्यानी पुरुप अपने हृदय स्थान पर कर्णिका सहित २४ पत्रोका ध्यान करे अर्थात् हृदयपर एक २४ दलका कमल है और बीचमे एक कर्णिका है। ये २५ स्थान हो गए, और २५ हैं व्यञ्जन। तो उन २५ व्यजनोको उन २५ स्थानोपर चितवन करें। व्यञ्जन उन्हे कहते है कि जो स्वतत्र रूपसे नही बोले जा सकते, किन्तु पूर्वापर कही भी स्वरका सहारा लेकर ही बोले जाते है। जैसे क कहा तो जैसे क लिखा करते हैं और बोला करते हैं वह क, क रूप नही है किन्तु जैसे क्व शब्द बोला तो क्वमे जो क लिखा हुआ है वह क्या क शब्दरूप हैं, उसे तो आधा क (क्) कहो, क्योकि उस क के नीचे हलत है। तो कोई भी आधा अक्षर बोला नही जा सकता है। उसके आगे अथवा पीछे कोई स्वर लगा हो उसके सहारे बोला जाता है। ऐसे उन २५ स्थानोपर इन वर्णोका चितवन करे। ये २५ वर्ण ५ वर्गोमे पाये गए है—क ख ग घ ङ, इसे कवर्ग बोलते है। ये सबके सब कठस्थानसे उत्पन्न होते है। च छ ज झ ञ, इन्हे चवर्ग बोलते हैं। यह च का समूह है। जैसे दूकानपर नाम लिखकर एण्ड कम्पनी लिख देते हैं। एण्ड कम्पनी मायने वर्ग। वह और उसका समूह। यो ही ये सब वर्ग है। ट ठ ड ढ ण, इसे टवर्ग बोलते है, ये मूर्धा स्थानसे उत्पन्न होते हैं। त थ द ध न, इन्हे तवर्ग कहते हैं, ये दत स्थानसे उत्पन्न होते हैं। दाँतमे जीभ लगाये बिना इन शब्दोको नही बोला जा सकता। प फ ब भ म, ये ५ पवर्ग हैं,

इनकी उत्पत्ति ओष्ठ स्थानसे है। ओठसे ओठ छुवे बिना ये शब्द नही बोले जा सकते है। इस तरह इन २५ अक्षरोका हृदय कमलमे २५ स्थानोपर ध्यान करें।

ततो वदनराजीवे पत्राष्टकविभूषिते।
पर वर्णाष्टक ध्यायेत्सञ्चरन्त प्रदक्षिणम् ॥१८६२॥

मुखकमलपत्रपर शेष वर्णाष्टकका चिन्तन—इसके पश्चात् मुखके स्थानपर आठ पंखुडियोके कमलका चिंतवन किया है। इन ८ पत्रोपर य र ल व श ष स ह—इन ८ वर्णोका ध्यान करे। देखिये हिन्दी लिपिमे जो बोला जाता है वही लिखा जाता है। मुद्रा और उच्चारण दोनोको एक प्रकारमे लिया गया है। य र ल व इन शब्दोको अतस्थ कहते है। ये शब्द न केवल स्वर रूप हैं, न केवल व्यञ्जन रूप हैं, किन्तु दो स्वरोके मिलनेसे इनका उच्चारण बना है। जैसे य ई और अ मिलकर य उच्चारण बना है, तभी सधिमे इ के आगे अ अक्षर आये तो दोनो मिलकर य बन जाते है। ऋ और अ ये दो स्वर मिलकर र बन गया, ऌ और अ मिलकर ल बन गए। इनकी सधि होती है। उ और अ शब्द मिलकर व शब्द बने है। ये अतस्थ कहलाते है। मध्यमे स्थित है, श ष स ह इन्हे ऊष्मा कहते है। इन चार अक्षरोको बोलते हुए कुछ गर्म हवा निकलती है, और शब्दोके बोलनेकी अपेक्षा इन चार शब्दो के बोलनेमे कुछ वायुकी विशेषता और कुछ गर्मीकी विशेषता रहती है। इसलिए इन अक्षरो को ऊष्मा कहते है। इस प्रकार मुखकमलपर अन्तस्थ और ऊष्मा—इन ८ अक्षरोका ध्यान करे। अपने देहके खास ध्यानके मुख्य स्थानको वर्णोसे भर दिया है इस ज्ञानी योगीने।

इत्यजस्रं स्मरन्योगी प्रसिद्धा वर्णमातृकाम्।
श्रुतज्ञानाम्बुधेः पार प्रयाति विगतभ्रम ॥१८६३॥

पदस्थध्यानमे वर्णमातृकाके सहारे परमात्मतत्त्वका ध्यान—इस प्रकरणमे पदस्थ ध्यानका वर्णन किया जायगा। जैसे णमोकार मत्र है, ओ३म ह्री है, और भी अनेक प्रकारके मत्र है उनके सहारे ध्यान करना यह है पदस्थ ध्यान। तो चूंकि पद सब वर्णोसे ही बने हुए है इसलिए भक्तिपूर्वक उन वर्णोका ध्यान इस स्थानपर किया जा रहा है। जो पुरुष इस प्रसिद्ध वर्णमालिकाका निरतर ध्यान करता है वह योगी भ्रमरहित होकर श्रुतज्ञानरूपी समुद्रके पारको प्राप्त हो जाता है, अर्थात् इन वर्ण मत्रिकाओका ध्यान करने वाले मुनि श्रुतकेवली हो जाते हैं, विद्वान् हो जाते है, आगमकी पूजा करते है, शास्त्रोका पूजन करते है। शास्त्रोमे लिखे है वाक्य। वाक्योसे बने हैं पद, पदोमे गर्भित है वर्ण। तो प्रत्येक वर्ण ही तो पूज्य हुआ। पहिले समयमे लिखा हुआ कागज कोई नीचे नही डालता था, उसका अविनय मानते थे, चाहे कुछ भी लिखा हुआ हो। फिर कुछ समय बाद जिनमे कुछ धर्मकी बातें लिखी हो उनका विशेष आदर करते थे, धर्मकी बातोके अतिरिक्त और कुछ लिखा हो तो उसे नीचे पडा रहने देते थे,

उसकी परवाह नही करते थे। अब थोडा-सा इतना रह गया है कि किसीका उपदेश हुआ, प्रवचन हुआ तो उसका तो उतना अधिक विनयभाव नही रहा, पर जिसमें भक्तामर स्तोत्र है, कोई पूजा पाठ है या अन्य कोई ऋषि प्रणीत शब्द है उनके विनयकी बात रह गयी है। ऐसे शब्द स्तोत्र नीचे नही पडे रहना चाहिए और फिर अब तो उनकी भी अधिक कोई कदर नही रह गयी है। खैर जो करें सो ठीक है, पर यह शब्द विनयभाव और पूर्व परम्परा यह सूचित करती है कि प्रत्येक वर्ण पूजनेके योग्य है, क्योकि वर्णोंसे ही ये समस्त शास्त्र रचे गए है, एक बात। दूसरी बात यह है कि एक एक वर्ण परमात्मतत्त्वको सूचित करता है, उन विशेषणोकी याद दिलाता है, एक एक वर्ण समझिये कि वह ऐसा शब्द है कि जो परमात्मा भगवान अरहत परमेष्ठी जैसे इन मिले हुए वर्णोंको बोलकर हम उन शब्दोसे कुछ पूज्य तत्त्व का ध्यान करते है तो ऐसे ही प्रत्येक वर्णसे कथित तत्त्वका ज्ञान होता है।

कमलदलोदरमध्ये ध्यायन्वर्णाननादिससिद्धान्।
नष्टादिविषयबोध ध्याता सम्पद्यते कालात् ॥१८६४॥

पदस्थध्यानके प्रतापसे नष्टादिविषयबोधका अभ्युदय—इन वर्णोका ध्यान करने वाला पुरुष कमलके पत्र और कर्णिकाके मध्यमे अनादि सिद्ध इन ३६ अक्षरोका ध्यान करता है, सोलह स्वर और २५ व्यञ्जन और ८ अन्तस्थ और ऊष्णाके वर्ण। इनका ध्यान करता हुआ योगी कितने ही कालके वस्तु सम्बधी ज्ञानको प्राप्त करता है। इन वर्णोका ध्यान करनेसे योगी ऐसा विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कर लेता है कि जिसके बलसे यह अतीतकी बात, कोई चीज नष्ट हो गयी हो, गुम गयी हो ऐसी भी बातोका ज्ञान कर लेता है। देखिये समस्त स्थानोमे भावना की प्रधानता है, जितना जो कुछ मगल है, कल्याण है, उद्धार है वह सब भावनाओपर आधारित है। इसकी भावनामे एक एक वर्ण पूज्य है और उस आदर दृष्टिसे उन वर्णोको अपने शरीरके उत्कृष्ट स्थानपर धारण करता है तो उससे चित्तकी एकाग्रता हुई, भीतरमे नम्रता हुई, कषायोकी मदता हुई। उसके ज्ञानका विकास होने लगता है। तो योगी पुरुष इन वर्णों का ध्यान करके ऐसा विकास प्राप्त कर लेता है कि जिससे कितने ही कालमे नष्टादि वस्तु सम्बधी ज्ञानको प्राप्त कर लेता है।

जाप्याज्जयेत् क्षयमरोचकमग्निमान्द्य,
कुष्ठोदरात्मकसनश्वसनादिरोगान्।
प्राप्नोति चाप्रतिमवाड्महती महद्भ्य,
पूजा परत्र च गति पुरुषोत्तमाप्ताम् ॥१८६५॥

मंत्रजाप्यसे रोगजय व उत्कृष्टावस्थालाभ—किसे वर्ण माला कहते हैं। जो मनुष्यकी रक्षा करनेमे माताकी तरह हो उसका नाम मातृका है। यह वर्ण इस प्रकार है। मनुष्यको

जो उन्नति मिलती है, शान्ति मिलती है अथवा कुछ उत्कृष्टता जगती है तो उस समस्त उन्नति मे कारण परिज्ञान है, और ज्ञान जितना भी होता है वह हम आप लोगोका शब्दोको लिए हुए होता है। जब कभी अकेले भी बैठे हो और ध्यान कर रहे हो तो भीतर ही भीतर अन्तर्जल्प उठ जाता है, हम ज्ञान कर जाते है। यद्यपि ज्ञानका और वचनोके साथ कुछ सम्बध नही है कि जितने भी ज्ञान हो वे सब शब्दोको बोलकर ही उठा करते है। ऐसा नही है जैसे अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान—इन शब्दोको उठाये बिना आत्मशक्तिसे जैसा पदार्थ है वैसा ज्ञान कर लेता है, पर हम आप मति श्रुत ज्ञानियोका कुछ ऐसी अवस्था है कि हम ज्ञान करे तो उसके साथ शब्द भी उठते चले जाते है, और उतनी सी बातको ही लेकर किसी सिद्धातने केवल एक शब्दको ही तत्त्व माना है, और कुछ तत्त्व ही नही है। सर्व जगत शब्दात्मक है। यहाँ भी हम आप सब लोगोका ज्ञान उन्ही शब्दोको लिए हुए होता है, इसलिए शब्दात्मक इस जगतको माना है। कुछ ज्ञानोमे ऐसी बात पायी जाती है कि वह ज्ञान जानता है तो कुछ शब्दोको उठाकर जानता है, इसीलिए जब ज्ञान पूज्य है तो वे शब्द भी पूज्य है। तो उन वर्ण मात्रावोका जाप करनेसे योगीने बडे बडे रोगोको दूर कर लिया है। क्षयरोग, अरुचिपना, अग्निमदता, कुष्ठ, उदर रोग, श्वास रोग आदिक अनेक रोगोको एक वर्ण मात्रा के जापसे जीत लेता है। प्रयोग करे कोई तो उसको इसका अदाज हो सकता है कि ध्यानका कैसा प्रताप है कि अनेक रोग ध्यानसे ही शात हो जाते है। इन वर्ण मात्रावोके जापसे और भी सिद्धिया होती हैं—जैसे वचनसिद्धता, महान पुरुषोसे पूजाकी प्राप्ति, परलोकमे श्रेष्ठ गति ये सब इस योगी ध्यानीको प्राप्त होते है। तो वर्णमातृकाका ध्यान ऐसे दो तीन स्थानोपर किया जाना बताया गया है, और दो तीन स्थानोपर ही क्या, फिर तो यह समझिये कि इस देहको वर्णात्मक बना लिया है, जो जो देहके उत्कृष्ट स्थान है वे सब वर्णात्मक हो गए। देखिये इन वर्णोकी कल्पना किसी भी स्थानपर नही की गई है। नाभिसे ऊपरका यह स्थान एक भक्ति दृष्टिमे उच्च माना गया है तो उन स्थानोपर वर्णका ध्यान करे, जिसके अभ्याससे योगीका मन स्थिर हो और फिर वह पिण्डस्थ ध्यानमे अपनी प्रगति करे। वर्णोके ध्यानका उपदेश करके अब मन्त्रराजके ध्यानकी बात बतावेंगे, जहाँ अनेक प्रकारके मत्र है, उनमे क्या प्रभाव है, और उनकी क्या विधि है, इन समस्त वर्णोके साथ इस अधिकारमे मन्त्रोके ध्यानकी बात कहेगे।

अथ मन्त्रपदाधीश सर्वतत्त्वैकनायकम्।
आदिमध्यान्तभेदेन स्वरव्यञ्जनसभवम् ॥१८६॥
ऊर्ध्वाधोरेफसरुद्ध सपर विन्दुलाञ्छितम्।
अनाहतयुत तत्त्व मन्त्रराज प्रचक्षते ॥१८७॥

र्हं मंत्रराजका निर्देश—पदोंके सहारे तत्त्वका ध्यान करनेका प्रकरण चल रहा है। सर्वप्रथम एक मत्रराजका वर्णन है। जिसका आकार केवल एक ह अक्षर और उसमे नीचे र मिला हुआ और ऊपर भी रेफ चढा हुआ चन्द्राकारसे सहित यह मत्रराज वताया जा रहा है जिसकी मुद्रा र्हं है। जिसका उच्चारण करना कुछ कठिन है और नही भी कठिन है। जो ऋषिजन वचन बल ऋद्धिके अधिकारी हैं वे तो इसे और इससे भी कठिन अनेक बीजाक्षरो को स्पष्ट बोल लेंगे और यथायोग्य इसको विद्या विशारद लोग बोल ही सकते हैं। यह समस्त पदोका स्वामी है। इस मत्रराजमे सिद्ध अरहत आदिक सभी परमतत्त्वोका स्वरूप गर्भित है। इन सबके वाचक अक्षरोकी इसमे ध्वनि पायी जाती है। ध्यान तो एक आत्माके परम स्वभावका है। आत्माका परमस्वभाव ज्ञायक भाव परमतत्त्वके ध्यानमे आये उससे बढकर उत्कृष्ट और कोई ध्यान नही होता और इस ध्यानका ध्यान कराने वाला अरहत सिद्धका स्वरूप है। अतएव अरहत और सिद्ध परमेष्ठीका ध्यान भी एक अपूर्व ध्यान है। सो परमात्मतत्त्वका आत्मस्वभावका यह मत्र सकेत करने वाला है इसलिए इसे महामत्र कहते है। यह सब तत्त्वो का वाचक है, आदि मध्य और अन्तके भेदसे स्वर तथा व्यजनोंसे उत्पन्न ऊपर और नीचे रेफ लगा हुआ तथा बिन्दुसे चिन्हित ह से सहित यह मत्र है, इसे अनाहत मत्र भी कहते हैं। जो किसी दूसरे मत्रके द्वारा आहत (नष्ट) नही किया जा सकता उसे अनाहत कहा करते है। मत्र शास्त्रमे और सभी मतव्य वालोंके मत्रमे ये जैन शासनके जो बीजाक्षर है, मत्र हैं वे अद्भुत चमत्कार और प्रभाव रखते हैं। र और ह केवल इन दो अक्षरोसे २४ तीर्थंकरोका बोध होता है। र्हं यह शब्द चौवीस तीर्थंकरोका सकेत करता है। र का अर्थ है २, और ह का अर्थ है ४। यह अक्षरकी गणनाके हिसाबसे इसका हिसाब बोलते है, तो ये मिलकर २४ अक्षर अकोको बताते हैं, चौबीस तीर्थंकरोका स्वरूप इस र्हं मे शामिल है। अर्द्धचद्राकार इस बातका सकेत करता है कि यह आत्मा जब कर्ममलरहित होता है तो ऊर्द्ध गमन करके अर्द्धचद्राकार जो शिल्प है उसमे यह रागादिक दोषोंसे मुक्त होकर अनंतकाल तक विराजमान रहता है। अनेक सकेत अनेक वाक्य बीजाक्षरोमे हुआ करते है। अनादिकालसे प्रत्येक चतुर्थ कालमे भरत और ऐरावत क्षेत्रमे चौबीस तीर्थंकर होते चले आये हैं, और उन सब तीर्थंकर परम देवोंने जैन शासनका उपदेश अथवा वस्तुस्वरूपका किया है। जो पदार्थमे है, जो आत्मा का स्वरूप हे उसका उपदेश ये चौबीसो तीर्थंकर अपनी दिव्यध्वनिमे करते आये हैं। तीर्थंकर २४ ही होते है, कम या अधिक नही होते हैं, यह भी एक प्राकृतिक बात है। इतने कालके अदर कुछ कम एक कोडाकोडी सागर कालके अदर ऐसे २४ समय होते है कि जिनमे (चतुर्विंशति) चौबीस तीर्थंकर देवोका जन्म होता है और उनके ज्ञान कल्याणकके वाद उनसे धर्म परम्परा और उपदेश शासन चलने लगता है। परमात्मा केवल २४ होते है इस बातकी

सूचना परमात्मा शब्दकी मुद्रासे भी मिलती है। आप लकीर खींचे बिना परमात्मा शब्द लिख दे हिन्दीमें जैसे "परमात्मा" तो उनकी मुद्रा देखिये कैसी है? इसमें जो प लिखा है वह ५ की तरह मिलेगा, फिर जो र है वह २ की तरह है, आगे बडा मा (मा) लग जाता है वह ४।। की तरह बन जाता है। फिर आधा त (त्) ८ की तरह है और फिर बडा मा (मा) यह ४।। की शकल रखता है। तो जोड लो ५ + २ + ४।। + ८ + ४।। = २४ हुए। तो परमात्मा शब्दमे यह २४ की संख्या ही पडी हुई है। यह एक केवल कलासे निकालनेकी बात है। कोई कानून या युक्ति न बन जायगी, पर परमात्मा शब्द ही यह बतला रहा है कि तीर्थंकर २४ ही होते है, उनके जिन मंत्रराजका समावेश है वह एक बीजाक्षर रूपमें और एक बडी उपासनाके रूपमें स्मरण किया जाता है।

देवासुरनतं भीमदुर्बोधध्वान्तभास्करम्।
ध्यायेन्मूर्द्धस्थचन्द्रांशुकलापाक्रान्तदिङ्मुखम्॥१९८॥

देवासुरनत - मंत्रराजके ध्यानका विधान—देव और असुर जिसे नमस्कार करते हैं और अज्ञानरूपी अंधकारके दूर करनेके लिए जो सूर्यके समान है ऐसे इस मंत्रराजका आत्महितैषी योगीजन ध्यान करते हैं। मोटे रूपमे तो यह सोच लीजिये कि मनुष्योका ध्यान प्रायः करके वाहर बना रहा करता है? यह जगत मोही है, और इसकी ध्यान धन वैभव स्त्री पुत्र मित्र आदिकमें अधिकतर रहा करता है। बाहरमे चलकर देख लो, सडकोपर निरख लो, किसी के घर बैठकर देख लो, सर्वत्र यही दृश्य मिलेगा कि उनके चित्तमें धन ऐश्वर्य और परिवार जनोंकी महत्ता है, उनका ही ध्यान करते है। तो कोई इस मंत्रराजका ध्यान कर रहा हो तो इतना प्रभाव तो तत्काल ही है कि वह उसके ऐसे गदे ध्यान विषय कषाय मोहसे मलिन ध्यान तो रहे नहीं, और जो मंत्रराजकी कुछ विशेषता समझते हों और उसके सहारे उस परमात्मतत्त्वका ध्यान कर रहा हो तो उसका ध्यान तो हितके लिए बहुत समर्थ होता ही है। यह मंत्रराज बडे सुर असुरो करके वंदनीय है। अज्ञान अंधकारको हटानेके लिए सूर्यके समान है। आप शंका करेंगे कि न उसने कभी पढा लिखा, न कभी किसी पाठशालामें गया, सम्भव है कि गया हो पहिले। पर कुछ समझा तो है ही, मगर एक मंत्रराजका ध्यान कर रहा है। इस स्वरव्यजनयुक्त मंत्रराजका ध्यान कर रहा हो तो अज्ञान अंधकार कैसे हट जायगा? जब कुछ पढेगे, सीखेंगे, रटेगे तभी तो अज्ञान मिटेगा। एक इस मंत्रराजका ध्यान करनेसे कैसे ज्ञान मिटेगा? तो समाधानमे मूल बात इतनी समझ लीजिये कि सीखनेसे रटनेसे यदि कुछ ज्ञानविकास भी होता है तो वह सर्प कबूतर की चाल जैसा विकास है और एक विशुद्ध आत्मस्वभावका ध्यान, परमात्मस्वरूपका ध्यान, वीतराग स्वरूपकी भक्तिपूर्वक होने वाला जो परिणमन है, जो ध्यान है, स्थिरता है, आनन्दका स्पर्श है, अनुभव है—इन विधियोसे जो ज्ञान

विकास होता है वह बडे वेगसे अनुपम विकास होता है । तो इसमे विशुद्ध भाव बना, ध्यान भी एक तत्त्वका हुआ तो यह ध्यान अज्ञान अधकारको दूर करनेमे सूर्यके समान है । ध्यान करते समय उच्चारणकी कोई जरूरत भी नही रहती । जिन मत्रराजका हम उच्चारण नही कर सकते न सही, उसकी मुद्राका अवलोकन आँखोसे तो पहिले अवलोकन किया, फिर आँखें बद करके मनसे विचारनेसे भी वह पूरी मुद्रा नजर आती है । बस उस मुद्राको निरखकर उसका ही ध्यान कर रहे है तो वह ध्यान है । ध्यानमे उच्चारणकी विशेषता नही है कि उसे उच्चारण करके ही बोलें, बल्कि उच्चारण करके मत्रोका जाप करनेसे उसमे कुछ बल कम हो जाता है, और बिना कुछ उच्चारण किये अपने आपमे स्थित होकर मनसे ही केवल ध्यान बनाया और उनके स्वरूप तक दृष्टि बनाया तो उस ध्यानमे बल विशेष होता है ।

कनककमलगर्भे कर्णिकाया निषण्ण, विगतमलकलङ्क सान्द्रचन्द्राशगौरम् ।
गगनमनुसरन्त सञ्चरन्त हरित्सु स्मर जिनवरकल्प मन्त्रराज यतीन्द्र ।।१८६६।।

मन्त्रराजकी महिमा व उसके ध्यानका अनुरोध—हे मुनीन्द्र ! इस मत्रराजका स्मरण करो । इस प्रकरणको सुनते हुए यही ही आप बीच बीच उस मत्रराजको सामने रखकर अपने चित्तसे विचार कर ध्यान करते जाइये तो यह एक उपदेशसे आज्ञा मान मानकर सुनने जैसी बात बनेगी । जब जो कुछ बात कही जा रही है और ध्यानके सम्बधमे उस प्रकारका ध्यान बनाकर सुननेसे उस ध्यानके मतलबकी बात ज्यादा चित्तमे बैठती है । इस मत्रराजकी मुद्रा है र्हं । यह मत्रराज स्वर्णमय कमलके मध्यमे कर्णिकापर विराजमान है ऐसा चिंतन करिये । ध्यान करना है अपने आपके चित्तमे । तो जिसका ध्यान किया जाय, जिस चित्तके आसनपर विराजमान किया जाय तो उस मत्रराजका या स्वरूपका या परमात्माका जब जिसका ध्यान करें हम उसे किसी आसनपर विराजमान करे । वह आसन होना चाहिए कमलके ऊपर कमलासन—बहुत प्रसिद्ध आसन है, और उसका कारण यह है कि समवशरणकी रचना होती है तो, विहारके समय रचना होती है तो, किन्ही भी भौगोलिक प्रसगोमे समारोह चलता है तो कमलकी रचना अधिकतर होती है और यह कमल कुछ गुणोके कारण बहुत महिनीय दृष्टिसे देखा जाता है । कमलमे क्या क्या गुण है ? प्रथम तो उसका रूप अत्यन्त साधारण कम गुलाबी रगको लेकर सफेदपर चलता है, जिसे पद्मलेश्या कह लीजिए । कोई कमल श्वेत भी होते है, पर प्राय करके कमल पद्मलेश्यासे रजित होता है, यह एक बहुत अच्छी लेश्या है । इसका आकार प्रकार और इसके मध्यमे कर्णिका है, एक बहुत सुन्दर आसनसे बनाई हुई इसकी मुद्रा रहती है, और सबसे बडी विशेषता कमलमे है तो यह है कि जिससे हमे शिक्षा मिलती है कि जगतके अन्दर भी रहकर तुम जगतसे अलिप्त रहो । जैसे कि यह कमल पानीके अदर पानीसे अलिप्त रहता है, पानीसे ही उत्पन्न होता, पानीमे ही रह रहा है और इस कमल

के पत्रमे पानी भी डाल दो तो भी वह लिप्त नही होता है। जैसे और पत्तोमे पानी डाल दो तो वे पत्ते गीले हो जाते, चिपक जाते है, पर कमलके पत्तोमे पानी डाल दो तो वे गीले नही होते, वैसेके वैसे ही सूखे रहते है, तो कमल-पत्रमें यह गुण वैसर्गिक बहुत महत्त्वकारी है कि जलके अन्दर रहकर भी कमल जलसे अलिप्त है। इसी प्रकार ज्ञानी पुरुषकी स्थिति होती है। कोई ज्ञानी गृहस्थीमे भी रहता हो तो वहाँ रहकर भी अलिप्त है। कोई ज्ञानी बहुतसे साधुवो सन्यासियोंके सगके बीच भी रहता हो तो वह वहाँसे भी अलिप्त रहता है। आसक्त नही रहता, उसके परद्रव्योमे मोह नही है, क्योकि उसके पूर्ण विवेक जग चुका है कि दुनियामे मोह किये जाने लायक वस्तु है क्या ? कौनसा पदार्थ ऐसा है जिससे मोह करे, राग करे तो मेरे आत्माको कौन लाभ हो जायगा ? कोई पदार्थ जगतमे ऐसा नही है।

संगकी कष्टकारिताका दिग्दर्शन—लोग नामवरीके लिए बहुत-बहुत दौडते भागते फिरते है, पर उससे भी क्या लाभ ? लोग धनिक बनना चाहते है तो नामवरीके लिए, सतान वाला लोग क्यो बनना चाहते ? नामके लिए। हालाकि इन सब बातोमे कष्ट ही कष्ट है, धनिक बननेके लिए लोगोको कितने-कितने श्रम करने पडते है, कितनी ही आकुलताएँ मचानी पडती है, कितनी ही व्यवस्थाये करनी पडती है, और सतान होनेमे भी खुदको क्या लाभ है ? धनगार धर्मामृतमे बताया है कि सतानसे इसे कितना कष्ट उठाना पडता है ? प्रथम तो जब बालक गर्भमे आता है तो वह उस स्त्रीके रूपको बिगाड देता है, पहिला आक्रमण तो यह हुआ उस सतानका। इसके बाद जब उस स्त्रीका गर्भ बढा, ८—९ माहका वह बच्चा हो गया तो उस समय कितनी चिन्ता हो जाती है कि कैसे क्या होगा, बच्चा ठीक-ठीक उत्पन्न होगा या नही। तो यह दूसरा आक्रमण किया उस पुत्रने। गर्भसे निकलनेके बाद उसके मलमूत्रादिककी सफाई करनेका भी काम आ जाता है, उसकी बडी बडी चिन्ताएँ रखती है वह स्त्री। जब सतान और बडा होती जाती है तो उसकी सेवाके लिए, पढाने लिखानेके लिए, उसे सुखी रखनेके लिए मा बाप कितनी चिन्ताएँ करते है ? जब और बडे हो गए, शादी भी कर दी तो अनेक प्रकारके झगडे भी वह मचाता रहता है, अपनी पत्नीके स्नेहमे वह अपने मा बाप को भी छोड देता है, कुछ भी उनकी परवाह नही रखता। तो कहाँ उस सतानसे सुख हुआ ? वह सतान तो मा बापके लिए एक दुःखका ही कारण बन गया। पर इस जीवको मोह करनेकी प्रकृति पडी हुई है। इस कारण मोहमे वे सारे कष्ट भी इसे कष्ट नही मालूम पडते। अगर पुत्र कुपूत हो गया तब तो उसके पीछे क्लेश ही है। अगर पुत्र सपूत है तो उससे भी अधिक अशान्ति हो गयी, क्योकि उसको प्रसन्न रखनेके लिए, राजी रखनेके लिए अनेक श्रम करने पडेंगे। तो जिस दृष्टिसे जो बात कही जा रही है उस दृष्टिसे ही सुनियेगा। जगतमे कौनसा पदार्थ ऐसा है जो मोह किए जाने लायक हो और जिससे आत्माकी भलाई हो जाय ? लोग

कष्टसे बहुत घबडाते है और प्रत्येक मनुष्यको चाहे वह कितना ही सुखकी स्थितिमे हो, कितना ही उसे आराम मिल रहा हो पर उसकी दृष्टि वहाँ ही जाती है जहाँ दुःख है। सुखपर दृष्टि नही जाती। जैसे किसी पुरुषके पास ९९ हजारका धन है तो उसकी दृष्टि इस धनपर न रहेगी कि चलो हमारे पास खूब धन है, अब और धन न चाहिए, बल्कि दृष्टि रहती है उस एक हजार पर। अभी तो हमारे पास १ हजार कम है, यह चिन्ता करके वह उस रखे हुए धनसे भी सुख न प्राप्त कर सकेगा। जो लोग और भी गरीब स्थितिमे हैं उनकी ओर ध्यान ही नही जाता कि ये भी तो अपने जीवनको गुजार रहे है, हम भी इनकी ही तरह जीवन गुजार लें। दृष्टि उसकी उससे अधिक धनिकोपर रहा करती है कि हम क्यो न हुए ऐसे धनिक? यो धनिक बननेकी चिन्तामे वह वर्तमान धनसे भी सुख नही भोग पाता है।

ज्ञान ध्यानकी सम्हालमें आत्मसर्वस्वताका लाभ—यहाँ जगतमे कोई भी वस्तु मोह करने लायक नही है। अपने ज्ञानको सम्हालें, इसीमे अपना कल्याण है। यहाँका सारा वैभव तो यही नष्ट हो जायगा, पर आत्माका जो वैभव है सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र यह यदि प्राप्त कर लिया जाय तो अपना सच्चा साथी यह धर्म ही होगा। वैभव साथी नही हो सकता, परिवारके लोग साथी नही हो सकते। तव ध्यान किए जाने लायक बाहरमे कुछ भी पदार्थ नहीं है। अपने आपके स्वरूपका ध्यान जिस प्रकार बने वह यत्न कीजिए। अभी पिण्डस्थ ध्यान बताया था। अब यहाँ पदस्थ ध्यान बताया जा रहा है, तो यह भी आत्मध्यान की साधनाके लिए बताया जा रहा है। यह मन्त्रराज मल और कलकोसे रहित है। मंत्रमें जिस तत्त्वका अतर्भाव है परमात्मस्वरूप शुद्ध ज्ञानमात्र अरहत सिद्ध स्वरूपका इसमें अंतर्भाव है। वह मल और कलकोसे रहित है, यह मंत्र भी मल और कलकोसे रहित है। शुद्ध स्वच्छ चन्द्रमाकी किरणोंके समान उज्ज्वल और आकाशमे गमन करते हुए जिनेन्द्र देव होते हैं उनकी तरह यह भी सब दिशावोमे व्याप्त है, ऐसे जिनेन्द्र देवके सदृश इस मन्त्रराजका भी स्मरण हे योगीजनो! करो। जो कुछ स्मरण करने योग्य है वह है परमात्मस्वरूप। दूसरी कुछ भी ध्यानमे देने योग्य बात नही है। गुरुवोकी उपासना गुरुवोंकी सेवा वे भी इसी कारण है कि चूंकि गुरुका उपयोग परमात्मस्वरूपके ध्यानमे बसा रहता है तो यह भी उस ही से सम्बद्ध है। अतएव गुरुसेवा बताया है शास्त्रकी सेवा। पूज्य और ध्येय तो एक शुद्ध ज्ञानस्वरूप है वह परमात्माके सहारे विचारियेगा और कभी साक्षात् अपने आपमे विराजमान परमात्मस्वरूप का विचार करियेगा।

बुद्ध. कैश्चिद्धरिः कैश्चिदजः कैश्चिन्महेश्वरः।
शिवाः सार्वस्तथेशानः सोऽयं वर्णो प्रकीर्तित ॥१९०॥

अनेक पुरुषो द्वारा बुद्ध हरि अज आदिके रूपमें परमात्मस्वरूपबोधक इस मंत्रराज

का प्रकीर्तन—जो मत्र, जो अक्षर जैनशासनमे बताये गए है वे मत्र अन्यत्र भी प्रचलित है। परमात्मस्वरूपमे और लक्ष्यमे अन्तर हो जाता है, किन्तु जो बात उपादेय है, ध्येय है, धर्मके अवतारमे जिसकी साधना करना उत्तम कहा गया है उसका प्रचार सर्व जगह है, पर स्वरूप बदल गया है तो यह जो अनाहत मत्र बताया जा रहा है ह्रँ, इसको कितने ही लोग बुद्ध कहते हैं और शव्दार्थसे देखो तो बुद्ध मायने ज्ञानी, जो ज्ञानस्वरूप हो। कितने ही लोग इसे हरि कहते हैं। हरिका अर्थ है जो पापोको दूर कर दे, सो जहाँका ध्यान इस मत्रमे किया गया वह परमात्मस्वरूप ऐसा ही है, हरि ही है, सब कुछ बोलते जावो, कोई दोषकी बात नही है, गुणकी ही बात है। कितने ही शव्द बोलो, सबका यथार्थ स्वरूप ध्यानमे रखा जाय तो वे सब शब्द एक उत्तम ध्यानकी बात वाले हैं। इस ही महामंत्रको कितने ही लोग ब्रह्मा कहते है। ब्रह्माका अर्थ है जो अपने गुणोमे बढे, जो अपने गुणोकी सृष्टि उत्तम विधिसे करे उसे ब्रह्मा कहते हैं। प्रत्येक जीव अपने आपकी सृष्टिको ही करते चले जा रहे है, निरन्तर करते हैं, और उस सृष्टिका निरन्तर प्रलय भी करते है। नई अवस्था बनी, पुरानी अवस्था विलीन हो गई, इतनेपर भी स्वय बराबर वना रहता है। तो यह जीव स्वय शिव, ब्रह्मा और हरि इन तीनो रूप है। हरिका काम रक्षा करनेका है, शिवका काम प्रलय करना है और ब्रह्माका काम उत्पन्न करना है, इस तरह देखो तो यह जीव स्वय अपने आपमे अपनी अवस्थाको उत्पन्न करता है, अवस्थाका ही विलय करता है और स्वय बराबर बना रहता है। तो यह तत्त्व प्रत्येक पदार्थमे मौजूद है। उसको लोग भूल गए और उस तत्त्वकी मूर्ति इन देवतावोके रूपमे मानने लगे। इस मत्रराजको कितने ही लोग महेश्वर कहते हैं, महान ईश्वर, परम पवित्र आत्मा। कितने ही लोग इसे ईशान स्वरूप कहते है, मालिक, स्वामी। मत्रराजमे ध्यान किया जाता है विशुद्ध परमात्मस्वरूपका, उसको भूल जाये तो केवल एक अक्षरके ध्यानमात्रसे ही सिद्धि नही बनती है, श्रद्धासहित परमात्मस्वरूपके लक्ष्यसे उसको ध्यानमे लेकर फिर मत्रराज का अवलोकन करते हुए ध्यान करे तो यह ध्यान करनेकी एक विशिष्ट पद्धति है। जीवका उद्धार जीवध्यानसे ही सम्भव है, अत· खोटे ध्यानोको छोडना और अच्छे ध्यानोमे आना यह बात यदि बन सकी तो इस मनुष्यजीवनकी शोभा है और इसीसे मनुष्यजीवनकी सफलता है। ये सब बातें ज्ञानसाध्य है। अपना ज्ञानाभ्यास इसीके लिए चलें तो यह बहुत उत्तम और ऊँचा प्रोग्राम है। जिससे दुर्लभ समागम जो कुछ पाया है इसका हम सदुपयोग कर सके।

मन्त्रमूर्ति समादाय देवदेव स्वय जिन ।
सर्वज्ञ सर्वग· शान्त सोऽय साक्षाद्व्यवस्थिता ॥१६०१॥

मंत्रराजकी मुद्रामे जिनेन्द्रप्रभुके दर्शन—यह मत्रराज ह्रँ अक्षरमे निबद्ध ऐसा परम पवित्र भाववाचक है कि मानो यह ही स्वयं साक्षात् मत्र मुद्राको धारण करके जिनेन्द्रदेव

ही विराजमान है। स्थापना साकार वस्तुमे भी होती और निराकार वस्तुमे भी होती, जिसकी स्थापना की जानी है उस जैसा ही आकार हो उसमे भी स्थापना होती है। जैसे जिनेन्द्र-भगवानकी स्थापना जिनेन्द्र मूर्तिमे है, जैसा उनका आकार प्रकार, जैसी उनकी नासा दृष्टि, जो मुद्रा वैसा ही आकार बनाकर उनकी स्थापना की गई है। तो कदाचित् जिस जगह न हो जिनेन्द्रमूर्ति तो पूजक लोग चावलोमे ही जिनेन्द्रकी स्थापना कर लेते हैं। जो अवगम तिष्ठ आदिक बोलकर सर्वप्रथम चावल चढाये जाते है वह स्थापना ही तो है। तो यह मत्रराज ह्रीँ ऐसा प्रतीक है कि कुछ साकारसा भी लगता, कुछ निराकारसा भी लगता ऐसी विलक्षण मूर्ति है जिसमे जिनेन्द्र भगवानका अवगम यह योगी कर रहा है। जो जिनेन्द्र सर्वज्ञ है, सर्वव्यापी है, शान्तमूर्तिके धारक है, प्रभु परमात्मा सकल लोकालोकके जाननहार होते हैं, सर्वज्ञ हैं। परमात्मा सर्वव्यापी है, तो उनका ज्ञान समस्त पदार्थोमे व्याप कर रहता है। इसलिए वह सर्वव्यापी हैं और शान्तमूर्तिके धारक है। सो मानो जिनेन्द्र भगवान ही मत्रमूर्तिको धारण करके साक्षात् विराजमान हैं, इस प्रकार प्रतीत भावो सहित इस मत्रराजका चिन्तन करें। ध्यान तो एक ज्ञानस्वरूपका ही परमध्यान कहलाता है। ध्यान करना है, किसका ध्यान करना है ? उसका उत्तर केवल एक ही है, ज्ञानस्वरूपका ध्यान करना है। अब उस ज्ञानस्वरूपका ध्यान चाहे हमे साक्षात्रूप भावसे बन जाय और चाहे परमात्माके चारित्रको, परमात्मा के स्वरूपको उनकी मुद्राको निहारकर वहाँ निरखकर बने। किया जाना है ज्ञानस्वरूपका ध्यान। जिसने प्रभुको ज्ञानस्वरूप नही समझ पाया वह प्रभुको ही नही समझ पाया। प्रभु क्या है ? एक ऐसा स्वच्छ ज्ञानपुञ्ज जिसमे रागद्वेष मोह रच भी नही है, उस ही का नाम प्रभु है।

(पदस्थध्यानवर्णन प्रकरण ३८)

आत्मदर्शनके नाते प्रभुदर्शनकी अधिकारिता—प्रभुके दर्शन करनेके हम अधिकारी हैं क्योकि मेरा स्वरूप एक ज्ञानमात्र है, एक मात्र औपाधिक जो विकारभाव है, जो मेरे स्वरूप के साथ सगत नही बैठता, असगत है, जैसे जो निखारनेकी वस्तु हो, गेहू चावल आदिक उनमे उनसे विरुद्ध ककड आदिक मिले हो तो उनकी सगति नही बैठती है, मानो इसी प्रकार मेरे आत्मामे जो रागादिक भाव उत्पन्न होते है उनकी सगति मेरे आत्मामे नही बैठती है। यद्यपि यहाँ एक क्षेत्रमे एक प्रदेशमे ही यह विकार भाव चल रहा है, कोई यह स्वतत्र द्रव्य नही है। आत्माका ही एक अशुद्ध परिणमन है, किन्तु स्वरूप दृष्टिसे जब निहारते है तो आत्माके स्वरूपमे रागादिक विकार सगत नही बैठ पाते। मैं भी ज्ञानपुञ्ज हू। ज्ञानपुञ्ज प्रभुके स्वरूपमे निहारकर अपनी ज्ञानपुञ्जताका स्मरण होना ध्यानमे यह किया जाता है। जगतमे हम सब आत्मा स्वतन्त्र है, अकेले है, सद्भूत हैं। हम आप अपना कैसे उद्धार कर ले, यही मात्र तो

एक समस्या है अपनी। यहाँ धर्म मजहब जाति कुल आदिनका क्या प्रयोजन है? सबसे मुख्य समस्या है मेरे आत्माका हित कैसे हो? बस आत्माके नाते आत्माकी भलाईकी खोज की जा रही है। इसमे अन्य बाह्य साधनोका प्रवेश नही है, अपने ही नातेसे अपना कर्तव्य निखारा जा रहा है। मेरा कौन साथी है? कोई मददगार नही। केवल साथी है तो मेरा वह निर्विकल्प विशुद्ध ज्ञायकस्वरूप वह है शरण। उसका हम अनुभव कैसे करें? उसके अनुभवके लिए हमे विकल्पजालोका त्याग करना होगा। यह है बडा ऊँचा त्याग। मैं अमुक चन्द हूं, अमुक प्रसाद हू, ऐसी पोजीशनका हू, इस नगरका वासी हू, अमुक जातिका हू, अमुक कुलका हू, अमुक मजहबका हू, ये सारे विकल्प छोड देने होगे तब निर्विकल्प स्वरूपका दर्शन प्राप्त किया जा सकता है, और उस आत्माके विशुद्ध स्वरूपका दर्शन यदि न प्राप्त किया जा सका तो धर्म और ढोगोसे क्या सिद्धि होगी? हालाकि यह भी एक मार्ग है, आज न सिद्धि हो, कल होगी, पर साक्षात् फल और धर्मपालनकी बात तो यही है, इतना ही विकल्प नही बल्कि एक बार यह भी विकल्प छोड दो, जो हम उपदेश सुनते, जो हम शास्त्र सुनते, जो हम अपने गुरुवोकी सेवामे रहकर उनका हमने कुछ असर पाया वे सब विकल्प भी छोड दो, यह आत्मा ज्ञान-स्वरूप है, स्वय अपने आप अपनेमे अपना प्रभाव बता देगा, और और अनुभव करा देगा कि धर्म क्या है, आनन्द क्या है, शान्तिका मार्ग क्या है? तो ज्ञानस्वरूपका ध्यान होना ही वास्तविक ध्यान है। अब उस ज्ञानस्वरूपका ध्यान हम कर सकें उसके लिए कुछ अन्य भी ढग बनाते हैं जिससे ऐसी पात्रता तो रहे कि हम धर्मके मार्गमे बने रहे। तो ऐसे प्रसगमे यहाँ पदस्थ ध्यानका वर्णन चल रहा है और उस पदस्थ ध्यानसे सर्वप्रथम इस मत्रराजके ध्यानकी चर्चा की गई है।

ज्ञानबीज जगद्वन्द्य जन्मज्वलनवार्मुचम्।
पवित्र मतिमान्ध्यायेदिम मन्त्रमहेश्वरम् ॥१९०२॥

ज्ञानबीज मन्त्रमहेश्वरके ध्यानका विधान—यहाँ इस मत्रराजकी महिमा गायी जा रही है, उस महिमाको सुनकर यह अवधारण करना चाहिए कि ज्ञानस्वरूप प्रभुकी ही महिमा गायी जा रही है, उसे छोडकर और कुछ भी गान करते रहे तो उसमे कोई तत्त्व नही रहता। ज्ञानस्वरूप अथवा प्रभुस्वभावको छोडकर किसी भी अन्यका ध्यान न रहे, कुछ भी खटपट करके रहना उसमे लाभ नही मिलता, ज्ञानस्वरूपके ही ये सब प्रतीक बनाये गए है। इन अक्षरोसे हमे ज्ञानस्वरूपका ही सकेत मिले तो ये सब मंत्रराज ध्यान फल प्रदान करते है, यह मत्रराज ज्ञानका बीज है, जगतसे वदनीय है, ससाररूपी अग्निके लिए अर्थात् जन्म सताप दूर करनेके लिए मेघके समान है। इस तरह ध्यान करें। विषय कषायोसे जब ध्यान हटता है सो उस खोटे ध्यान हटनेका भी कोई प्रभाव होता है। तो मत्रराजके ध्यानमे खोटे ध्यान तो

हुटे ही हुए है, वह प्रभाव तो स्वत यह ही है, पर उसमे ज्ञानस्वरूपका सकेत बसाकर ज्ञान-स्वरूपकी भावना बनाये तो उसमे ध्यानका और अतिशय बढ जाता है । जब परखमे आया कि ओह इतना भी ध्यान जन्म सतापको दूर करनेके लिए, सासारिक क्लेशोको दूर करनेके लिए ये सब मेघके समान है ।

सकृदुच्चारित येन हृदि येन स्थिरीकृतम् ।
तत्त्व तेनापवर्गाय पाथेय प्रगुणीकृतम् ।।१९०३।।

मंत्रराजकी अपवर्गपाथेयरूपता—इस मत्रराज महातत्त्वको जिस पुरुषने एक बार भी उच्चारण किया, भक्ति और श्रद्धासे जिसका इसने जाप किया, जिसके हृदयमे स्थित किया उसने मोक्षके लिए मानो सम्बल प्राप्त कर लिया । एक सहायक कलेवा मानो प्राप्त कर लिया, आवश्यक वस्तुवोका संचय उसने प्राप्त कर लिया । देखिये ध्यानमे ज्ञानपुञ्जकी बात न भूलिये । उसे भूल कर तो सब भूल है । यदि उसे स्मरणमे रखे तो सब रखा । प्रभुपूजा भी तब समझे जब ज्ञानपुञ्ज अर्थात् मात्र जाननस्वरूपका नक्शा अपने हृदयमे उतर आये । दर्शन सामायिक भी वही है कि मात्र जानन स्वरूप रहे, तो वह क्या स्थिति होती है, उस स्थितिका अनुभव बन जायगा । जैसे किसी दूसरेके दु ख दर्दको देखकर बहुत पीडित हो कोई, कोई जीव मारा ही जा रहा हो तो ऐसी घटनाको देखकर अपने आपमे एक ऐसी अनुभूति जगती है कि रोमाच कर देती है, रोगटे खडे हो जाते हैं । वह एक अनुभूतिकी बात कही जा रही है । जब ज्ञानपुञ्जकी अनुभूति होती है तो आत्मामे एक अद्भुत आह्लाद उत्पन्न होता है और एक मात्र लगन बन जाती है । तो ऐसे ज्ञानस्वरूपका ध्यान बने जिस कार्यमे वे सब कार्य आपके बहुत विशिष्ट धर्मपालनके कार्य हैं ।

यदैवेद महातत्त्व मुनेर्धत्ते हृदि स्थितिम् ।
तदैव जन्मसन्तानप्ररोह प्रविशीर्यते ।।१९०४।।

मंत्रराजके हृदयस्थ होनेपर ससार प्रविशीकरण—जिस समय यह महातत्त्व मनुष्यो के हृदयमे ठहरता है उस ही काल ससारके सतानका अकुर गल जाता है, अर्थात् यह मोह भाव सब टूट जाता है । सब सघनकी महिमा है । उस पुरुषको तो व्यवहारी जन एक अवि-वेकी जैसा देखेंगे कि जो धर्ममे चित्त बसाये, अन्य समागमोसे, सासारिक रग ढगोसे विरक्ति किए हुए है, वैभवसे भी अनुराग नहीं रखता है, ऐसे पुरुषको देखकर व्यवहारी जन उसे अविवेकीसा महसूस करेंगे । लेकिन जो वैभवमे अनुरक्त है, उसे बहुत मेहनतसे सचित करता है वह कौनसा लाभ प्राप्त कर लेता है, जरा विश्लेषण करके सोचिये तो सही । इस सम्पदाके सचयमे पहिले भी सक्लेश सचित हो जाय तब भी सक्लेश, और यह मिटेगा तो जरूर । चाहे यह सम्पदा यही धरी रहे, हम चले जायें और चाहे हम ऐसे ही बने रहे जीवित और सम्पदा

चली जाय। तो जब उस सम्पदाका वियोग होगा तब इसे क्लेश ही प्राप्त होगा। तो इस सम्पदाके सम्पर्कसे इसे कौनसा हित मिला? जो मूर्छाभाव रखते हैं वे हैं अटपटे जीव, और जो अपने धर्ममार्गका निर्णय करके इस ही मार्गमे लगते हैं वे हैं विवेकी सत् पुरुष। तो यह ज्ञानपुंज अथवा ज्ञानपुंजका प्रतीक यह मंत्रराज जिस मनुष्यके हृदयमे स्थिर रहता है? उसके जन्मसंतानका अंकुर सब गल जाता है अर्थात् वह अब आगे जन्मधारण न करेगा। मोह ममतामे मत बढो। कुछ इसमे तत्त्व नही निकलनेका। जिन्दगी व्यतीत हो जाती है अर्थात् बरबादी हो जाती है और अन्तमे बड़ा रिक्त होकर संक्लिष्ट होकर इस देहको छोडना पड़ता है, और जिसने ज्ञानकी आराधना की, ज्ञानस्वरूप जिसकी वासना धारणामे बन चुका है ऐसा जीव अपने आपको धीर वीर गौरवशाली अनुभव करता है और देह छूटनेके समय वह अपने आत्माको निहारकर वहाँ ही तृप्त रहकर प्रसन्नतापूर्वक आत्मनिर्मलतापूर्वक इस देहका परित्याग कर देता है।

स्फुरन्तं भ्रूलतामध्ये विशन्तं वदनाम्बुजे।
तालुरन्ध्रेण गच्छन्तं स्रवन्तममृताम्बुभिः ॥१९०५॥
स्फुरन्तं नेत्रपत्रेषु कुर्वन्तमलके स्थितिम्।
भ्रमन्तं ज्योतिषां चक्रे स्पर्द्धमानं शिताशुना ॥१९०६॥
सञ्चरन्तं दिशामास्ये प्रोच्छलन्तं नभस्तले।
छेदयन्तं कलङ्कौघं स्फोटयन्तं भवभ्रमम् ॥१९०७॥
नयन्तं परमस्थानं योजयन्तं शिवश्रियम्।
इति मन्त्राधिपं धीरः कुम्भकेन विचिन्तयेत् ॥१९०८॥

विविध स्वदेहोत्तमाङ्गोंमे—इस मंत्रराजका ध्यान किस विधिसे, किस तैयारीके साथ करें, इसका वर्णन इन चार श्लोकोंमे किया गया है। प्रथम तो ध्याता पुरुषको धीर होना चाहिए। जो अधीर है अस्थिर चित्त है वह ध्यानका पात्र ही नही है। धैर्यका धारक योगी पुरुष कुम्भक प्राणायामसे इस मंत्रराजको भौंहकी लतावोंमे स्फुरायमान होता हुआ ध्यान करे। जैसे जो खेल दिखाने वाले अपने किसी मनके वश करनेका अधिकार प्राप्त करते हैं तो वे नाना प्रकारके कौतूहल एक लीला मात्रसे दिखाते चले जाते हैं, ऐसे ही देखिये जिस योगीने अपने ध्यानके द्वारा मनको वश किया है और जहाँ चाहे वहाँ मनको लगावे, जहाँ न चाहे वहाँसे मनको हटा ले, इसपर जिसका एकाधिकार हो गया है समझिये वह कितना महान् आत्मा है? जीव तो मनके वश ऐसा विवश पड़ा हुआ है कि विवेक छोड देता है और यह मन जिस ओर ले जाना चाहता है उस ओर यह आत्मा भागता है। उस मनको जिसने वश किया और जिस ओर ध्यान लगाया जाता है, जहाँ ध्यान लगाया, जिस जगह उपयोगको लगाना चाहता

है, यह जिसके लिए सुगम हो गया है ऐसे योगीकी बात कही जा रही है कि वह योगी किस किस प्रकारसे इस मन्त्रराजका ध्यान करता है। जैसे साइंस वाले अपने यहाँ ऐसी मशीन तैयार करते है कि किस मशीनके भीतरका हृदय किस किस तरहसे वह मशीन कार्य कर रही है वह सब एक उस मन्त्रपर जो एक बडी लाइटकी तरह है उसके मुखपर उसको नचाता हुआ उन किरणोको बताता हुआ दिखता रहता है, यों ही जिसने अपने आपपर अधिकार पाया, इस मन्त्रराजको जहाँ रखकर ध्यान करना चाहता है वहाँ ध्यान करता है तो इस ह्रँ अक्षरमे ज्ञान-स्वरूप जिनेन्द्र देव ऊर्ध्वगमन, शिलान्यास आदिक अनेक सकेतोसे परिपूर्ण इस मन्त्रराजमे कुम्भक वायुसे अपने उदरमे वायुको थामकर इस मन्त्रराजको भौहकी लतामे स्फुरायमान करता रहता है, भौहे आँखोके ऊपर दो होती है उन भौहोपर मन्त्रराजका ध्यान कर रहा है फिर मुखकमलमे निरख रहा है, फिर तालुवोके छिद्रसे गमन करते हुए तथा अमृतमय जलसे झरते हुए यह ध्यान कर रहा है।

जिनबिम्बके दर्शन अवधारणकी एक दृष्टिप्रयोगविधि—कभी कभी आप मूर्तिको जिसकी मुद्रा बडी प्रसन्न है और शान्तरूप है, उस मूर्तिको आप टकटकी लगाकर कुछ समय तक ध्यानसे देखते रहे, और जब बहुत देखकर मनसा भरे अथवा कुछ अधिक देर हो जाय, पलक झेंपने जैसा अवसर आने लगे उससे कुछ पहिले आप उस मूर्तिको अपनी आँखोमे पूरा पकडकर (यह सब कल्पना की बात है) वहाँ विराजमान मूर्तिको आँखोसे देखें और देखकर उस मूर्तिको पूरा आँखमे पकड ले और उसको अन्दर लाकर हृदय स्थानमे चूंकि अभी तो उस मूर्तिका मुख हमारी पीठकी ओर है जिसे हमने आँखोमे पकडा और हृदयमे ले गए, अब वहाँ उनका मुख बदल दें, (यह सब क्रियाकी बात चल रही है) मुख बदलकर अपने आपकी तरफ हृदयमे विराजमान कर लें और उस मूर्तिको फिर भावोसे इतनी बडी बना दें कि जो स्वय है तो स्वयके आकारमे फैला करके उस ज्ञानपुञ्जके सकेतका ध्यान करें और ध्यान करके जब मन खूब भर चुके, और मान लो ध्यान कर लिया तो अभी फिर उसे सकोच करके फिर उस मूर्तिका मुख पलट करके आँखोमे ले जा करके धीरेसे उसको निकाल करके बेदीमे धरा दें, यह भी एक ध्यानकी क्रिया है। हालाकि वह मूर्ति कही आयी गयी नही है, मूर्तिकी जगह मूर्ति है, ध्यानीकी जगह ध्यानी बैठा है, पर यह एक ध्यानकी क्रिया है।

देहके विविध उत्तमासनोपर मंत्रराजका स्थापनमे सुधास्वादन—जिस योगीका अपने आपके मनपर एकाधिकार हो जाता है उसकी क्रियाकी बात कही जा रही है। भौहोमे मन्त्र-राजको स्फुरायमान करके उस पतली मुद्राकी तरफ यहाँसे इस भौंहसे इस भौहपर, उस भौंह से इसपर उठा उठाकर उसे मुखके अन्दर प्रवेश करायें उसी जगहसे और तालूके छिद्रोसे प्रवेश कर रहे हैं वह मत्र वहाँ अमृतको झरा रहा है क्योकि यह सन्तोष कराने वाली बूंद इसी तालू

से झरा करती है। आप कभी बडे प्रसन्न बैंठे हो तो आप एक गुटका लेंगे, कुछ गलेके नीचे अपने मुखकी चीज उतारेंगे। उसका स्वाद ऐसा अद्भुत होता है कि वह स्वाद आपको अच्छे भोजनमे नही मिलती। वर्णन चलता है कि देवतावोके कटसे अमृत झर जाता है। वहाँ जो झरता हो सो झरे, मगर आपका उपयोग विशुद्ध हो, हृदय निर्मल हो तो आपके मुखसे एक घूट ऐसा स्वय उतर आयगा कि उसमे आपको वह आनन्द मिलेगा जो अन्यत्र न मिलेगा। तो वह मत्रराज तालू कठसे अमृत झराता हुआ अब आया। अब उसे नेत्रोकी पलकोपर फिर स्फुरायमान करके केशोंमे स्थित करते हुए और अब गगनपर उसका विलास कीजिए तो ज्योतिषियोंके बीच भ्रमता हुआ, चन्द्रमाके साथ स्पर्धा करता हुआ, दशो दिशावोंमे भ्रमण करता हुआ, आकाशमे उछलता हुआ, कलक समूहको छेदता हुआ, संसारके परिभ्रमणको दूर करता हुआ, उसको मोक्षस्थानमे प्राप्त करता हुआ, उस मोक्षलक्ष्मीसे उस ज्ञानलक्ष्मीसे मिलाप करता हुआ यह मत्रराज है। इस तरह इतनी बातोका उसमे ध्यान करें। देखो यह मत्र भी है, तत्र भी है। जिसको हिचकी आती हो उसको कुछ ऐसी बात कह दो कि वह कुछ आश्चर्यमे पड जाय तो वह हिचकी बद हो जाती है। यह क्या है? यह एक तत्र है। तो यह मत्र ध्यान कभी तत्रका रूप भी रखता है कभी मत्रका रूप रखता है। जब एक बाहरी प्रभावसे युक्त होता है तब तो यह तत्र है और जब ज्ञानस्वरूपका ध्यान करता हुआ रहता है तब यह मत्र है। तो ऐसे इस ह्र्ँ मत्रराजको यह योगी अपनी इच्छानुकूल उत्तम उत्तम स्थानोमे इसे रख करके इसका ध्यान करता है। यह स्थिरता उसे उस ज्ञानपुञ्जके स्मरणसे आयी जिसका कि इस मत्रराजमे प्रतीकपना समझा। है ध्यान सबमे मुख्य उस ज्ञानस्वरूपका ही। स्वय आत्मा ज्ञानस्वरूप है और केवल जाननहारके रूपमे मात्र एक ज्ञानप्रकाश है, तन्मात्र मैं हू, इस रूपमे अपने आपको निरखे तो यह ज्ञानस्वरूपका अनुभव करता है। ऐसे ज्ञानका जो अनुभव है उस ही को आत्मानुभव कहते है। उसकी शरणमें आयें। बाहरमे कुछ भी सारभूत शरण चीज नही है, यही है वैभवकी बात। यह वैभव सभीको पुण्योदयके अनुसार प्राप्त हो जाता है, प्राप्त हो जाय पर उससे लाभ नही है, हानि कुछ भी हो। तो बाहरी विकल्पजाल हटाकर एक इस ज्ञानपुञ्जका और ज्ञानपुञ्जके प्रति इस मत्रराजका ध्यान योगी जन करते है।

अनन्यशरणः साक्षात्तत्सलीनैकमानस।
तथा स्मरत्यसौध्यानी यथा स्वप्नेपि न स्खलेत् ॥१९०९॥

मंत्रराजके दृढ़ ध्यानकी योगसाधना—धर्मध्यानमे सस्थानविचय नामक भेदके ४ अग है—पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत, जिसमे पदस्थ धर्मध्यानका वर्णन चल रहा है। मत्र पदके सहारे अथवा मत्राक्षरके सहारे तत्त्वका ध्यान करना पदस्थध्यान है। इसमे सर्वप्रथम ह्र्ँ मत्रराजका वर्णन किया जा रहा है। इस मत्राक्षरसे कुम्भककी साधनाके साथ-

साथ अर्थात् श्वासको हृदयमे नाभिमे रोकनेके अभ्यासके साथ-साथ इस मत्रराजका ध्यान करें, इसे प्रथम भौहोंपर फिर मुखमे प्रवेश करते हुए फिर तालूसे अमृत भराते हुए, फिर भू-लतावो पर, फिर केशोपर, फिर आकाशमे, फिर दशो दिशावोमे इस तरहसे सर्वत्र विचरते हुए इस अक्षर मत्रराजका ध्यान करे और अन्तमे सकुचित होकर मोक्ष स्थानमे विराजा है इस प्रकार ध्यान करें। मत्राक्षरोमे कोई बीजभूत रहस्य होता है जिन रहस्योका परिचय बडे ऋद्धिधारी ऋषीश्वरोको होता है, पर साधारण रूपसे जितना कि उचित ग्रन्थोमे लिखा जाता है उतना उस अक्षरका अर्थ समझें और उस अर्थके लक्ष्यसे परमतत्त्व जो ज्ञानस्वरूप है, उसका ध्यान बनायें।

ज्ञानस्वरूप अन्तस्तत्त्वके ध्यानकी प्रशस्तता—ध्यान तो सीधा एक आत्माके ज्ञानस्वरूपका ही प्रशस्त है। यह ध्यान आये तो सब मत्र आ गये, यह ध्यान न आया तो मत्रोंके विवादमे फसे रहनेसे भी लाभ कुछ नही उठा पाया। जीवनमे हमारे करने योग्य काम है क्या ? कौनसा वह एक काम है जो हमे अपने जीवनमें कर लेना चाहिए ? इसका उत्तर तो आत्मानुभव आता है, अर्थात् मेरेको करनेका वास्तविक काम तो आत्मानुभव है, वह जिस किसी भी स्थितिमे मिले वह सब मजूर है। गरीबी आये, अपमान हो, कोई भी मत पूछे, कुछ भी नाम मत आये, कैसी भी स्थिति आये, पर आत्मानुभव करना यही सर्वोपरि आत्मा का सारभूत काम है। किसी भी अवसरपर आवश्यक कामोमे कुछ भी फुरसत पायी जाय उस अवकाशमे लाभ उठायें आत्मानुभवके उद्यमका, और प्रथम तो बात यह है कि सर्व कामो के करते हुए भी ज्ञानी पुरुषको बीच बीच जब चाहे आत्मानुभवकी बात भी जग सकती है। सही एक मात्र कार्य अपनको करनेको पडा हुआ है। यह ऐसा कार्य है कि जिसमे मनुष्यको तृप्ति होती है, परम आनन्द झरता है और इससे ऊब नही आती। उत्साह यही होता है कि यह आत्मानुभवकी स्थिति मुझसे छूटे नही, बराबर बनी रहे, यह बात अगर पा सके तो समझो सब कुछ पा लिया। इस असार ससारमे अभी तक रुलते चले आ रहे हैं, कोई शरण नही है, किन्तु आत्मानुभव मिले तो समझिये कि हमको सर्वस्व मिल गया। मैं हू, यह हू, सर्वस्व यही हूँ, यहाँ कोई कमी नही, परिपूर्ण हूँ। यह अपनेमे अपने रूप परिणमता रहता है, इसको कही बाहर कुछ काम ही नही है, खेदका नाम भी नही है, यह निराकुल है, आनन्दमय है, ज्ञानमात्र है ऐसा अनुभव जगे तो हमने सब कुछ पाया। तो उस ही अनुभवके लिए ये सब एक साधन बनाये गए हैं, चित्त नही इस परमार्थ ज्ञानस्वरूपमे लगता है और बाहर बाहर भ्रमण करता है तो उस बाहर भ्रमण करते हुए चित्तको थामनेसे लिए ये सब और-और आकारके ध्यान बताये गये हैं।

र्ह्ँ मंत्रराजके दृढ़ ध्यानकी प्रेरणा—र्ह्ँ मत्रराजका वर्णन चल रहा है। इस मत्रका

ध्यान अनन्य शरण होकर साक्षात् उसमे ही एक मनको मिलान कर ऐसा स्मरण करता है यह योगी ध्यानी कि फिर स्वप्नमे भी उस ध्यानसे विचलित नही होता है। जिसको विशुद्ध तत्त्वकी धुन होती है उसका सस्कार पवित्र होता है। उसे स्वप्न भी आयगा तो देव, शास्त्र, गुरुसे सम्बध रखता हुआ आयगा। कही तीर्थपर जा रहा है, कही मूर्तिके दर्शन कर रहा है, कही मानो तीर्थंकर भगवान ही चलते हुए मिल रहे है, ऐसे ऐसे धर्म सम्बधी स्वप्न आयेंगे। जिसका हृदय विशुद्ध है, विषय कषायोमे आसक्ति नही हैं, चिन्ता और शोकसे दूर है, जो सदा अपने आपको एकाकी जानकर प्रसन्न रहता है, गृहस्थ भी हो और उसपर घरके लोगोका भार भी हो, उनकी सेवा भी करता हो किन्तु जब उसके चित्तमे यह निर्णय है कि जितने भी जीव है सबके साथ कर्म लगे हुए है, उनका भाग्य उनके साथ है, वे स्वय परिपूर्ण है एव स्वरक्षित है, ससारमे वे अपने कर्मानुसार ही साधन प्राप्त कर सकेंगे। उनका उदय अच्छा है तो क्या मै उनका पालन करता हूँ, मै क्या धन कमाता हूँ, उनका पुण्योदय है तो यहाँ यह सब बात बन रही है। यदि उनके पापका उदय है तो कोई क्या कर सकेगा? जैसा उनका उदय है वैसा उनको होता है। वे स्वय कर्मबन्धनसे लिप्त है। सासारिक बातें उनके उदयके अनुसार है, मुझपर भार क्या? मै क्यो भार मानूँ? उसका एक यह निर्णय पहुचता है तो वह अपने को निर्भार अनुभव करता है, प्रसन्न देखता है। अपने आपमे एक अद्भुत आनन्दका अनुभव कर सकता है तो ऐसा ध्यान करे कि फिर स्वप्नमे भी उस तत्त्वसे स्खलित न हो।

इति मत्वा स्थिरीभूत सर्वावस्थासु सर्वथा।
नासाग्रे निश्चल धत्ते यदि वा भ्रूलतान्तरे ॥१९१०॥

मंत्रराजका नासाग्रपर निश्चल धारणा—ऐसे महामत्रके ध्यानका विधान जानकर योगीके सर्व अवस्थावोमे स्थिर स्वरूप इस मत्रराजको नासिकाके अग्रभागमे अथवा भौह लता के मध्यमे इस निश्चल रूपको धारण करें। एक तो यह बीजाक्षर है, दूसरे इसको किसी स्थानपर निश्चल ठहराये है अर्थात् मन एक ही जगह उसे दिख रहा है तो इसमे मनकी स्थिरता होती है। विषयकषायोके उपयोग हटते है तो उस वीतरागताकी स्थितिमे इसे स्वय अपने आपमें बसे हुए ज्ञानानन्द स्वरूपका अनुभव जग लेता है। चित्तको एकाग्र बनानेका महान फल है। अस्थिरता इस जीवनमे भी दिखा देती है और इससे परलोक भी ठीक नही बनता है। गम्भीर रहना, धीर रहना, स्थिर रहना, वचन कम बोलना; बहुत आवश्यक समझा जाय, और यह भी आवश्यक समझ लीजिए कि इस समय मै न बोलूँ तो कुछ यह काम बिगड जायगा। काम क्या? धर्मपालन और आजीविका इनके सिवाय और काम क्या है? जब हम ऐसा जान जाये कि इस समय मेरे न बोलनेसे एक बहुत अनर्थ हो सकता है तो कुछ बोले? मगर जहाँ तक सम्भव हो वहाँ तक मौन रहे, कम बोलें। अपनेमे धीरता

बढ़ायें, गम्भीरता बढ़ायें तो आत्माके तत्त्वका अनुभव करनेका पात्र बन सकते हैं। जो हर बातमे अस्थिरसा रहता है, व्यर्थ बकवाद करता रहता है, लडाई झगडेकी बात करता रहता है, जरा जरासी बातमे गुस्सा आ जाता है, अरे ऐसी दृष्टि कही धर्मपालनमे सहायक हो सकती है ? यहाँ पड़े हुए है, जन्म मरणके दुःख भोग रहे है, अहकारके लायक यहाँ कुछ भी स्थिति नही है। यही तो क्षोभ है, कही बडी क्षोभ है, कही जरा हल्की क्षोभ रह गयी, किन्तु इस हल्के क्षोभका विश्वास तो नही कि यह क्षोभ आगे कम हो जायगा। अरे आज इस मनुष्यभव मे हैं, कुछ विपदायें कम हो गयी है, मनुष्य भवके बाद कुछ भी तो बन सकता है यह जीव। अहकारके लायक क्या बात है ? ऐसा जानकर अपने वचनोको वश करना चाहिए और दूसरो से बोले कुछ तो ऐसे हित मित प्रिय वचन बोले कि जिससे खुदको भी शान्ति रहे और दूसरे को शान्ति प्राप्त हो। अशान्ति और क्षोभका वातावरण न बन जाय। एक बात। दूसरी बात—कदाचित् कोई क्षुब्ध हो रहा है, आपेसे दूर हो रहा है तो यह जानकर कि यह अज्ञानी है, इसको अपने धर्मकी कुछ सुध नही है, अपनी कोई चेष्टा कर रहा है, उसे देखकर खुद क्षोभ नही करने लगता। यह भी एक बडी तपस्या है कि ऐसा क्षुब्ध वातावरण भी निरखकर अपने आपमे समता और शान्ति बनाये रहे। तो धीरता गम्भीरता जीवनमे आये तब तो इन ध्यानोकी पात्रता रहेगी अन्यथा बातें तो करेंगे बडी और पल्ले नही है कुछ, यह स्थिति रहेगी। जैसे अनेक अज्ञानी लोग धर्मकी कुछ ऊपरी बातें सी करके (प्रथम तो वह भी विधि पूर्वक नही) अपने आपको एक धर्म कर लिया और मै धर्मात्मा हू, यो अपने आपमे मद और अहकार उत्पन्न कर लेते हैं। तो बडी गम्भीर समस्या है इस मानवजीवनमे। इसे यो ही अधीरतामे न व्यतीत कर देना चाहिए। धीर रहे। तो महामत्रके ध्यानका महत्त्व जानकर यह योगी सब अवस्थाओमे बडी स्थिरतासे इस मत्राक्षरको स्थिर रूपसे अपनी नासाके अग्र भागपर धारण करें अथवा भौह-लतावोंके बीचमे नासिका मूलके अग्र भागपर चिन्तवन करे।

तत्र कैश्चिन्न वर्णादिभेदैस्तत्कल्पित पुनः।
मन्त्रमण्डलमुद्रादिसाधनैरिष्टसिद्धिदम् ॥१६११॥

मन्त्रमण्डलमुद्रादिसाधनसाधित मंत्रराजकी इष्टसिद्धिदता—यह मत्रराज एक है, पर इसे भिन्न-भिन्न आसनसे रहकर भिन्न-भिन्न मुद्रायें धारण करके भिन्न-भिन्न प्रकारोमे रहकर इसका जाप किया जाय तो यह विभिन्न इष्टसिद्धि फलोको देने वाला होता है। सबसे महान अभीष्ट फल तो शान्ति है। क्लेशोंसे मुक्ति पाना है। इससे बढकर जगतमे और अभीष्ट क्या हो सकता है ? धनी हो गये तो क्या हो गया ? वह कोई अभीष्ट चीज नही है। इस जीवको उन्नत बनाने वाली अथवा आगे अब दुःख न आये ऐसी अधिकार दिलाने वाली बात तो नही है। दुनियाके मोही जीवोने, ससारमे भटकने वाले इन मनुष्योने यदि इस मायामयी देहका

नाम जान लिया और मेरे नामका जस बखान दिया तो इस जीवनका क्या हुआ ? बाहरमे कुछ भी अभीष्ट चीज नही है, परम अभीष्ट वस्तु तो एक आत्माकी शान्ति क्लेशोसे मुक्ति, विशुद्ध भावोका वर्तना, ज्ञानस्वरूपमे मग्न रहना, आत्मीय विशुद्ध आनन्दका अनुभव करना यह है परम अभीष्ट। इसके अलावा अन्य कुछ इस जीवको अभीष्ट नही है, हितकारी नही है। मोहमे चाहे किसीको भी इष्ट मान ले। कोई लोग स्त्रीको बडी इष्ट मानते है। उसके गुण ही चित्तमे समाये रहते है और ऐसे समाये रहते है कि उनकी निगाहमें प्रभुमे भी गुण नही है। प्रभु कैसा है, क्या है उसकी सुधि भी नही है ऐसे स्त्री पुत्र आदिकके गुण उसके हृदयमे समाये रहते है। वे सब एक मलिन भाव है, धोखा भरी बाते है। परम अभीष्ट तो आत्माका एक विशुद्ध आत्मीय आनन्दका अनुभव है, उसकी सिद्धि तो बिना कुछ चाहे, बिना विकल्पके केवल परमतत्त्वके ध्यानके लक्ष्यकी ही होती है। पर ये मन्त्रराजकी विशेषताएँ हैं कि इसके ध्यानके कारण अनेक सासारिक इष्ट सिद्धियोंकी सिद्धि भी प्राप्त होती है।

अकारादि हकारान्त रेफमध्य सविन्दुकम्।
तदेव परम तत्त्व यो जानाति स तत्त्ववित् ॥१९१२॥

मन्त्रस्थ परमतत्त्वके ज्ञाताकी तत्त्ववेदिता—अब एक दूसरे अनाहत मन्त्रकी बात कह रहे है। उसकी मूर्ति है अर्हं, अकार जिसकी आदिमे है, हकार जिसके अन्तके है, रेफ जिसके बीचमे है और बिन्दु सहित है। वह है यह अनाहत मन्त्र, जो परमतत्त्वका वाचक है। अर्ह मायने योग्य और अर्हंमे अर्हन्तका स्वरूप गर्भित है ऐसे इस अर्हं परमतत्त्वका जो जानकार है, इसके मर्मको जो जानता है, वही तत्त्ववेदी है, तत्त्व क्या है ? तत्त्व तो सभी है। जितने पदार्थ है उन पदार्थोंका जो जो स्वरूप है वे सब तत्त्व है। लेकिन मेरे लिए धर्मभूत शरणभूत परमार्थ तत्त्व क्या है जिसका सहारा ले कि ससारसे पार हो जाये ? वह तत्त्व है बस यही सहज ज्ञानस्वरूप। वही अर्हं पद है, यही परमतत्त्व है। जो कोई इसका स्वरूप जानता है वह तत्त्ववेदी है। परमतत्त्व तो वह ज्ञानस्वरूप है, जो समस्त तरगोसे रहित है जिसमे न राग है, न द्वेष है, न मोह है, न कर्तृत्व है, न भोक्तृत्व है, और यहाँ तक कि राग और वैराग्य का भी विकल्प नही है, ऐसा जो एक सहज ज्ञानस्वरूप है वह है परमतत्त्व। जो उसे जानता है वह है वास्तविक ज्ञानी। पर प्राग पदवीमे जिनका किंचित् वश नही होता, अपने चित्तके वश करनेके लिए जो पदस्थ-ध्यानका सहारा ले रहा है उस प्रसगमे कहा जा रहा है कि अर्हं यह शब्द ब्रह्मका वाचक है ना, इसमे परमेष्ठीका स्वरूप है ना, और इसे बताया है कि यह सिद्ध चक्रका उत्तम बीज है पूजामे, पूजकपर प्रस्तावनामे रुचि बढती है, ऐसे उस अनाहत मन्त्रको यह योगी ध्याता है और उसमे अपना चित्त लीन करता है।

सर्वावयवसम्पूर्णं ततोऽवयवविच्युतम् ।
क्रमेण चिन्तयेद्ध्यानी वर्णमात्रं शशिप्रभम् ॥१९१३॥

सर्वावयवसम्पूर्ण व अवयववर्जितरूपसे मंत्रराजका चिन्तन—इस मन्त्रको अपने उपयोग के समक्ष रखकर सर्व अवयव सहित ध्यान करें और फिर कभी एक एक अवयव रहित ध्यान करें। कभी निरवयव ध्यान करें, कभी केवल अ का ध्यान, कभी केवल ह का ध्यान, कभी वर्णोंको छोडकर केवल एक बिन्दुका ध्यान, फिर पूरे मन्त्रका ध्यान। कुछ भी ध्यान करें, सभी का ही ध्यान करें पर स्थिरतासे ध्यान करें और उस ध्यानको जल्दी-जल्दी न बदलें। किसी अवयवका ध्यान करे तो वह भी बहुत देर तक। जब उस ध्यानमे ऊब आ जाय तब अन्य हिस्सेका ध्यान करने लगें, पर जानकर जल्दी जल्दी छोड छोडकर इसका ध्यान करें यह विधि नही है। जैसे धर्मकी बात हम मदिरमे सीखते हैं। धर्म करनेकी बात तो मकान और दूकान पर है, मदिरमे आकर प्रभुके गुणोका स्मरण करके, स्तुतियां पढकर, अपने लिए शिक्षाकी भावनाकी बात पढकर यहाँ हम शिक्षा लेते हैं, विषय कषायोमे मेरा चित्त न जाय। विषय-कषायोंके जहाँ मौके मिलते है वहाँ अपने चित्तको थामें तो धर्मपालन तो वहाँ किया। जो बात मदिरमे बोल गए थे उसके पालनका मौका तो घरमे, दूकानमे मिला। लेकिन इतनेसे ही धर्मपालन न समझ लेना कि मदिरमे आये, खूब पूजा की, खूब गुण गाया, खूब भजन बोला, और मदिरसे बाहर निकले तो फिर वैसेके वैसे ही हो गए, वैसी ही कषायें, वैसी ही क्रूरता, वैसा ही कपट बना हुआ है, तो यह बतावो कि वहाँ धर्म किया कहाँ? वहाँ तो एक अपने आपको धोखा ही दिया। इसी तरह ध्यानकी बात सुनिये। जो बात ध्यान करना है तो प्रथम तो ध्यानार्थीको धीरता और गम्भीरता रखना चाहिए तब उसका ध्यान जम सकता है। अपने चित्तमे उठने वाली अधीरताको तिलाञ्जलि दे दें।

ध्यानसाधनार्थ आत्मप्रतिबोधन—आत्मकी दया तो विशुद्ध ज्ञान और आनन्दकी वर्तनामे है। अपने आपको जैसा कि यह एकाकी है, केवल है ऐसा प्रतीतिमे लिए रहे। किसी की बात सुनकर जो चित्तमे क्षोभ जगता है उसका कारण क्या है कि हममे ज्ञान नही समाया हुआ है, हममे अभी कर्तृत्व बुद्धि जगी हुई है। इसको यो कह लो। क्षोभ जो आया है वह अज्ञानभावमे आया है, ऐसा ज्ञानबल बनावें कि दूसरेकी बात सुनकर अथवा दूसरेकी परिणति देखकर अपने आपमे क्षोभ न जगे। ससार है, अनेक पुरुष है, अज्ञानी जन है ऐसे ऐसे अज्ञानी जन है कि उन्हे बार-बार समझाया जानेपर भी चित्तमे बात नही बैठती। अपनी प्रकृति वे नही छोडते। ऐसे विकट भी अज्ञानी है, जिनके प्रति आचार्यने यह उपदेश दिया है कि ऐसो को तो समझाना भी न चाहिए, उसमें अपना समय बरबाद करना है और अपना उपयोग बिगाडना है। जैसे ये बिना समझाये समझ नही सकते ऐसे ही ये समझाये जानेपर भी समझ

नही सकते। फिर उनके लिए प्रतिबोधनका उद्यम करना व्यर्थ है। इसलिए उस उद्यमसे दूर होकर मै अपने आपमे बर्तता हूँ। यह वर्णन किया है अध्यात्मयोगियोने। धीरता किस प्रकार आये वह अभ्यास करिये। ये सब बातें सत्सगति और जैन ग्रन्थोका स्वाध्याय किए बिना नही जग सकती। विशुद्ध परिणतिकी बात है, उनमे उद्यम करिये। केवल धन ही धन तो सब कुछ नही है, और धनको कमाता कौन है? उदय अनुकूल है तो आता है, नही अनुकूल है तो रहा सहा भी चला जाता है। जो हमारे आधीन बात नही, जो मेरे लिए सारभूत बात नही उसमे तो हमारा उद्यम हो और जो मेरे लिए सर्व कुछ हितरूप है, सारभूत है उसके लिए कुछ भी अपना यत्न नही होता। सारभूत बात, करने योग्य काम तो केवल आत्मतत्त्व का अनुभव है, उसका जिसके निर्णय हो चुका वह इस पदस्थ ध्यानको करता हुआ अपनी अनुभूति लेता रहता है। तो यह योगी इस अनाहत मन्त्रको पूर्णरूपसे अथवा उसके एक एक अवयवके रूपसे ध्यान करता हुआ अन्तमे केवल उसे बिन्दु मात्र ध्यानमे रह जाय ऐसा अपना ध्यान बनाये। जैसे कोई बालक अपने पिताकी गोदमे खेलता है तो सर्व तरह खेलता है। कभी पडकर, कभी खडा होकर, कभी बैठकर उसमे वह बालक अपना अधिकार समझता है। उसको ऐसा प्रेम मिला है, उसको ऐसी स्वाधीनता मिली है, तो यो ही समझिये कि जो मन्त्राक्षरोंके ध्यानमे कुशल है वह पुरुष इस मन्त्रराजका भी ध्यान नाना लीलावोंसे करता है, अपने शरीरके किसी उत्तम स्थानपर धारण करके करता है, कभी विश्वकी सभी दिशावोमे यहाँ वहाँ सर्वत्र चलाता हुआ, ठहराता हुआ ध्यान करता है, कभी पूर्ण अक्षरो सहित ध्यान करता है तो उसी मन्त्रका कभी एक एक अक्षर एक एक भागसे ध्यान करता हुआ रखता है। तो यह इस अर्हं मन्त्रको क्रमसे एक एक अवयवका चिन्तन करते हुए चूंकि सबसे अन्तमे बिन्दु है न तो सर्व अवयव छूटकर केवल बिंदु मात्रका ध्यान रह जाता है इस लीलामे इस योगीके।

विन्दुहीन कलाहीन रेफद्वितयवर्जितम्।
अनक्षरत्वमापन्नमनुच्चार्यं च चिन्तयेत् ॥१९१४॥

विन्दुरहित, कलारहित व रेफद्वितयवर्जितरूपसे अनक्षरताको प्राप्त मंत्रराजका बिना उच्चारण किये ध्यानका अनुरोध--फिर इस मन्त्रराजका बिन्दुरहित भी ध्यान करे। जैसे एक एक भागका ध्यान छोडकर केवल बिन्दुपर ध्यान रह गया था अब बिंदुरहित और अर्द्ध चद्राकार रहित, दोनो रेफोसे रहित, जहाँ अक्षर न हो, उच्चारण भी न किया जाय ऐसा कुछ चिन्तन करें। यह ध्यान करने वालेकी लीला है। सर्व अवयवोको छोडकर एक भी अवयव चित्तमे न रहे, इस तरह उस मन्त्रराजका ध्यान करें। जिसने अपना चित्त वश किया है, ये सब बातें सुलभ होती हैं। जिसका चित्त कही विषय कपायोमे पडा है, वैसा ही सस्कार बना है उसको तो ये सब बाते अटपटीसी लगती है। योगी पुरुष अपने चित्तको एकाग्र करके

अनाहत मन्त्रके सहारे इस मन्त्रराजके सहारे अपना ध्यान एक जगह लगाते हैं और उस ही स्वरूपमे उस परमतत्त्वका लक्ष्य और स्मरण करते है और उस उस ही ज्ञानस्वरूपको उपयोगमे लेकर अपनेको तृप्त करते हैं।

चन्द्रलेखासम सूक्ष्म स्फुरन्त भानुभास्वरम् ।
अनाहताभिध देव दिव्यरूप विचिन्तयेत् ॥१९-१५॥

दिव्यरूप अनाहत देवका विचिन्तन—अर्हं इस मन्त्रमे, ज्ञानस्वरूप परमात्मतत्त्वकी स्थापना की है। व्यवहारमे इस मन्त्रमे समस्त तीर्थंकर और समस्त अरहत गर्भित हैं और सिद्धस्वरूप गर्भित है। इस मन्त्रराजमे और इसमे स्थापित होनेमे ज्ञानस्वरूप परमदेवका ध्यान करते हुए मे इतने सूक्ष्मसे सूक्ष्म रूपसे ध्यान करें कि चन्द्रमाकी रेखाके समान कान्तिमान किन्तु सूक्ष्म इस तत्त्वका दर्शन हो। अक्षरोकी मे इस अनाहत मन्त्रका अति सूक्ष्म रेखा और कान्तिका दर्शन हुआ, और उस विशुद्ध ज्ञानस्वरूपको एक शीतल कान्तिमान चन्द्रकी अत्यन्त पतली रेखाके तुल्य साधारण प्रकाशमय वह आत्मस्वरूप दृष्टिमे आया। यह अनाहत देव कैसा है कि सूर्यके समान देदीप्यमान है। जैसे सूर्य बडे स्पष्ट रूपसे पदार्थोके प्रकाशमे कारण होता है और उस प्रकाशमे पदार्थ स्पष्ट दिखते है इसी प्रकार इस मन्त्रके सहारे अनाहत देवके ध्यान मे अपने आपमे ही एक सूर्यके समान अत्यन्त तेजस्वी ज्ञायक स्वरूप दिखता है। जिसने आत्मस्वरूपका परिचय किया है वह किसी भी कौतूहलसे, किसी भी ध्यान पद्धतिसे अपने आपके स्वरूपकी ओर आता है। ज्ञानी जनोको आत्मस्वरूप इतना स्पष्ट है कि जब वे आत्मा को जानते है तो यह है आत्मा। यह के रूपमे साक्षात् अनुभव पूर्व दर्शन होता है। यह अनाहत देव स्फुरायमान दिव्यरूपका धारक है। उस अनाहत देवका जो किसी से आहत नही हो सकता, किसीसे नष्ट नही हो सकता, ऐसा ही जो विशुद्ध ज्ञायकस्वरूप है उसका चिन्तवन योगीजन किया करते है।

अस्मिन्स्थिरीकृताभ्यासा सन्त शान्ति समाश्रिता ।
अनेन दिव्यपोतेन तीर्त्वा जन्मोग्रसागरम् ॥१९१६॥

अनाहत देवके अभ्यासकी स्थिरतासे इसी दिव्यपोत द्वारा संसारसे तरण—इस अनाहत नाम देवके स्वरूपमे जिन्होंने अपना अभ्यास किया है ऐसे सत्पुरुष इस दिव्य जहाजके द्वारा, इस अनुपम ज्ञान प्रयोगके द्वारा इस जन्मरूपी घोर समुद्रसे तिरकर शान्तिको प्राप्त हो गए है। शान्तिका उपाय ज्ञानस्वरूपका अनुभव है, अन्य और कुछ उपाय नही है। बाहरी पदार्थोंका सचय करके इस जीवको शान्ति प्राप्त हो ही नही सकती। जब तक परपदार्थोंका विकल्प है तब तक उसे अशान्ति ही है। एक तो अशान्ति प्राकृतिक यो है कि अपने आधार को छोड़कर यह उपयोग बाहर गया है, और फिर दूसरी बात यह है कि जिस बाह्य वस्तुमें

उपयोग गया है वह बाह्य वस्तु क्षणिक है, नष्ट होगी। तब यह उपयोग वहाँ स्थिर न रहकर फिर अन्यत्र चला जाता है। अर्हं मंत्रमे आत्मतत्त्वकी स्थापना है और परमात्मदेवकी स्थापना है। जैसे निराकार अथवा साकार रूपमे अन्य वस्तुवोकी स्थापना होती है इसी प्रकार इस मंत्रमे एक वाचकताके भी नाते उनमे वे शब्द भरे है जो शब्द परमात्मस्वरूपके वाचक है। अतएव यह मंत्र परमात्मस्वरूपको बताने वाला है। तो मंत्रका ध्यान और परमात्मस्वरूपका ध्यान—इन दोनोको योगी पुरुष आधार आधेय बनाकर कर रहे हैं। मंत्र तो द्रव्यसे शब्दरूप है और भावसे ज्ञानरूप है। योगी जन ज्ञानरूपकी उपासना परमार्थसे करते है और उस ज्ञान रूपको बताने वाला जो वाचक शब्द है उसकी उपासना वह व्यवहारसे करता है। तो मंत्रके सहारे आत्मतत्त्वका ध्यान और आत्मतत्त्वकी स्थापना इसमे है, इसमे मेरी ही बात कही गयी है ऐसा जानकर इस मंत्रराजकी मुद्राका भी ध्यान यह चित्तकी एकाग्रताके लिए कारण है, इसलिए मंत्रका ध्यान करे और इस तत्त्वका ध्यान करे। इस अनाहत देवमे जिसने अपना अभ्यास बनाया है वह सत्पुरुष इस ही ध्यानबलसे यह ज्ञानदर्शन सामान्यात्मक आत्मा मैं हू, इस प्रकारकी प्रतीतिके बलसे अपने आपमे विशुद्ध आनन्दका अनुभव करते हुए योगी पुरुषोने इस जन्मरूपी संसारसागरसे तैरकर शान्ति प्राप्त की है।

तदेव च पुन सूक्ष्म क्रमाद्वालाग्रसन्निभम्।
ध्यायेदेकाग्रता प्राप्य कर्तुं चेत सुनिश्चलम् ॥१६१७॥

मंत्रराजका अति सूक्ष्म तत्त्वके रूपमे एकाग्रतासे ध्यानका आदेश—फिर बडी एकाग्रताको प्राप्त होकर चित्तको निश्चल करनेके लिए उस ही अनाहतको क्रमसे सूक्ष्म सूक्ष्म ध्याता हुआ बालके अग्र भागके समान सूक्ष्म रूपसे उस मंत्रका ध्यान करे। मंत्रकी जो मुद्रा है लिपिमे, उस मुद्राको सूक्ष्म सूक्ष्म करते हुए जैसे कि अक्षर कोई मोटे होते है ना, कोई अक्षर उससे पतले होते है, कोई और भी पतले होते है, तो यहाँ उस ही एक अर्हं मंत्रको जो कि स्पष्ट और मोटी मुद्रामे बना हुआ है उसको सूक्ष्म सूक्ष्म ध्याता हुआ इतना सूक्ष्म ध्यावे कि उसकी रेखा एक बालके अग्र भाग समान अत्यन्त पतली हो। इस प्रकार अत्यन्त सूक्ष्म रूपमे उस अनाहत मंत्रको ध्याता हुआ यह अपने उपयोगसे अति सूक्ष्मताग्राही बनावे। चित्तकी एकाग्रताके लिए यह सब प्रयोग है। यो तो चित्तकी एकाग्रताके लिए अन्य भी प्रयोग होते है, जैसे अनेक पुरुष किया करते है। किसी आकारका चिन्तवन किया। एक पशुका आकार ही सामने रखकर ध्या रहे हैं अथवा कोई मोटा गोल बिन्दु सामने रखकर ध्या रहे है, उसको एक दृष्टिसे निरख रहे है और उतने काल तक निरखते है और एकाग्रतासे निरखते है कि वह शून्य यद्यपि काले रंगमे है फिर भी बहुत चिरकाल तक देखते रहनेसे उसका रंग अपने ध्यानमे पलटकर श्वेत भी हो जाय, ऐसे अनेक उपाय हैं चित्तको एकाग्र करनेके लिए, परन्तु यहाँ

वह उपाय बताया जा रहा है कि जिससे चित्तकी एकाग्रता भी हो और वहाँ शरणभूत सारतत्त्व जो परमात्मस्वरूप है उससे सम्बधित भी हो।

अध्यात्मलक्ष्यसे बहिर्गत पुरुषोके ध्यानकी निष्फलता—केवल चित्त ही एकाग्र करना है, इतना ही लक्ष्य जिन योगियोका होता है वे चित्तको एकाग्र तो कर सकते है, प्राणायामकी साधना बहुत काल तक बना सकते है, किन्तु लक्ष्य उनका परमात्मतत्त्वका न होनेसे वासना सस्कार उनका सासारिक लिप्सावोसे भरा बना रहता है। एक इसी तरहकी घटना है कि एक योगी प्राणायामके बलपर श्वासस्थानके आधारपर वह समाधि लगाया करता था। समाधिका अर्थ है कि नाक और मुह बन्द करके बहुत समय तक बैठा रहना। तो राजाके सामने उस योगीने अपनी समाधि लगायी। लक्ष्यको वह भूला हुआ था। एक तो राजाके सामने समाधि लगायी। इसकी क्या जरूरत थी, पर लक्ष्य उसका आत्मस्वरूपके परिचयका न हो सका था। तो समाधि लगाया, घटो तक समाधि लगानेका उसके अभ्यास था। तो समाधि लगानेसे पहिले ही उसने सोच रखा था कि इस समाधिमे हम उत्तीर्ण हो जायेंगे तो फिर हम राजासे क्या इनाम मागेगे ? जो उसे इनाम मागना था, वह पहिले ही विचार लिया। अब राजाके आगे समाधि लगाया तो समाधि लग चुकनेके बाद एकदम वह बोला कि लावो राजन् काला घोडा। उस राजाका एक काला घोडा ही विचार लिया था कि इस परीक्षाकी उत्तीर्णताके फलमे हम राजासे यह घोडा लेंगे सवारीके लिए। तो लक्ष्य जिसका भटका हुआ रहता है, आत्मतत्त्वका नही बन पाता है तो उनकी समाधि और ये तपश्चरणके कार्य ये सब मुक्ति फलको प्रदान नही कर सकते है, इसी कारण यहाँ चित्तकी एकाग्रताका उपाय बतानेके साथ साथ यह भी देखिये कि उपाय भी कौनसा दीखा कि जिससे परमात्मस्वरूपका सम्बध है और उसके ध्यानकी पात्रता रहे।

मंत्रराजके स्थूल मुद्राके ध्यानसे हटकर सूक्ष्म ध्यानमे आनेका आदेश—अनाहत मत्र मे चित्तको एकाग्र करनेके लिए चित्तकी एकाग्रताको प्राप्त होकर चित्तको निश्चल बनानेके लिए इस मत्रराजका इस अनाहतका इतना सूक्ष्म चिन्तन करे कि बालके अग्र भागके समान सूक्ष्म हो, यह तो एक मत्राक्षरकी बात कही। आत्माके सम्बधमे भी जो मनुष्य अपने आत्माके निकट आना चाहता है उसकी यह पद्धति होती है कि स्थूलका आलम्बन छोडे और सूक्ष्मका आशय बनाये। इस एक सामान्य युक्तिको सर्वत्र घटा लीजिए। पहिले तो इस देहसे अपनेको न्यारा बनावें, देह है सूक्ष्म, आत्मा है सूक्ष्म। तो इस सूक्ष्म तत्त्वको छोडकर इस सूक्ष्म आत्मतत्त्वमे आयें, और उस आत्मामे भी रागद्वेष आदिक जो विकार उठ रहे हैं वे भाव तो है बडे स्थूल, जो जाननेमे आये, उपदेशमे आयें, व्यवहारमे आयें—वे सब भाव हैं स्थूल, और उन भावोको पतला करके अर्थात् उन विकार भावोकी दृष्टि हटाकर एक अपनेको ज्ञानरूपमे चिंतन

करे तो यह अपनेको सूक्ष्म कर दिया। अब उस वर्तमान ज्ञानको भी यह ज्ञान स्थूल तक रहा है। ये भाव भी स्थूल है, मोटे है, बताये जा सकते है, कभी किए जा सकते है। तो उन रागादिक विकारोंसे भी हटकर और सूक्ष्म ज्ञान भाव तक आया था। अब उस परोक्ष ज्ञानसे भी हटकर, इस वर्तमान जानकारीसे भी हटकर एक ज्ञानस्वभावपर दृष्टि दें, सहज स्वभाव पर दृष्टि दे। यह सहज स्वभाव, यह ध्रुव ज्ञानतत्त्व तो परोक्ष ज्ञानोने इन वस्तुवोके ज्ञानोसे सूक्ष्म है क्योकि इन ज्ञानोमे तो यह पदार्थ झलकता है। ये ज्ञान मोटे है बजाय उस ज्ञानके जिस ज्ञानमे आत्माका त्रैकालिक सहज ज्ञानस्वरूप झलकता है। यों ध्यानार्थी स्थूलसे हटकर सूक्ष्ममे आता है, और अपने आपको अति सूक्ष्म रूपमे ध्यान करता है, और साधन उपाय जो मत्रका जाप है सो मत्र मुद्रासे भी करके अति सूक्ष्म कर लेता है और उस सूक्ष्मरूपमे इस अनाहत मत्रका ध्यान करता है।

ततोऽपि गलिताशेषविपयीकृतमानस· ।
अध्यक्षमीक्षते साक्षाज्जगज्ज्योतिर्मय क्षणे ॥१६१८॥

शुद्ध तत्त्वके ध्यानके प्रतापसे ज्योतिर्मय परम अध्यक्षत्वकी प्राप्ति—इसके पश्चात् गल गए है समस्त विषय जिनमे, ऐसे मन वाले होते हुए मनको स्थिर करने वाले योगी उसी क्षणमे ज्योतिस्वरूप साक्षात् जगतका प्रत्यक्ष अवलोकन कर लेता है। साक्षात्की विशालता गम्भीरता और व्यापकता होती है। स्थूल तत्त्व चाहे पुद्गलमे देख लीजिए और चाहे आत्मा मे निरख लीजिए। आत्मामे स्थूल तत्त्व है रागद्वेष क्रोध कषाय आदिक भाव। ये स्थूल यो लगते है कि दूसरोको मालूम पडता है, अपने आपको भी बोझ-सा लगता है और झट ज्ञानमे आ जाता है यह है स्थूल। और सूक्ष्म तत्त्व पुद्गलमें है आयु अथवा उसकी रूप आदिक शक्तिया। जिनपर दृष्टि जानेसे भाररहित एक अनुपम आनन्दको उत्पन्न करता हुआ ज्ञान बनता है। तो जैसे आत्मामे सूक्ष्मसे सूक्ष्म तत्त्वका ग्रहण होनेसे आत्माका उपयोग स्वच्छ बन जाता है और उस स्वच्छताके प्रतापसे इस ज्ञानस्वरूपमे इतनी शक्ति बढ जाती है कि फिर सारे विश्वको यह साक्षात् जानने लगता है।

सिद्ध्यन्ति सिद्धय· सर्वा अणिमाद्या न सशय· ।
सेवा कुर्वन्ति दैत्याद्या आज्ञश्वर्यं च जायते ॥१६१६॥

ध्यानसे ऋद्धिसिद्धि—इस अनाहत मत्रके ध्यानसे ध्यानी पुरुषको अणिमा आदिक सर्व सिद्धिया प्राप्त होती है। देखिये शक्तिका विकास सयमसे होता है। जो उपयोग हमारे चारो ओर फैल रहा है, जिस किसी भी पदार्थमे बस कर, जिस किसी भी पदार्थको इष्ट मान-कर उस ही के सुधारमे, बढ़ावमे उपयोग लग रहा है उस उपयोगको सयत कर देवे। बाहरी पदार्थोंसे हटाकर अपने आपके स्वरूपमे लीन कर देवें तो इस सयमनसे ज्ञानमे वह शक्ति प्रगट होती है कि फिर प्रत्यक्ष केवलज्ञान द्वारा समस्त विश्वको स्पष्ट जानने लगता है। ऐसे उपयोग

से यदि अरिणमा आदिक सिद्धि प्राप्त हो जाय, दैत्य आदिक सेवा करने लगे, उनकी आज्ञा सर्वोपरि बने, ऐश्वर्य वैभव भी एक आदर्श बने तो इस फलकी प्राप्ति होनेमे क्या सन्देह ? अर्थात् कोई सन्देह नही है । इस मत्रके ध्यानके प्रतापसे सर्व सिद्धिया इस योगीको प्राप्त होती है ।

क्रमात्प्रच्याव्य लक्ष्येभ्यस्ततोऽलक्ष्ये स्थिर मन ।
दधतोऽस्य स्फुरत्यन्तर्ज्योतिरत्यक्षमक्षजम् ॥१६२०॥

अलख निरञ्जन परमात्मतत्त्वके ध्यानसे अनुपमलाभ—अब यह योगी क्रमसे लक्ष्यसे अपने आपको छुडाकर अलक्ष्यमे लगाता है, मनको लक्ष्यसे हटाकर अलक्ष्यमे लगाता है । लक्ष्य मायने जो कुछ दिखनेमे आ सकता है, जो अपनी दृष्टिमे आ सकता है, लक्ष्यमे आया है, लगाने योग्य पदार्थ है, उन पदार्थोसे अपने उपयोगको छुडाकर लक्ष्यमे पहुचता है अलखनिरञ्जन । जैसे लोकव्यवहारमे लोग कहते है और किसी मित्रसे मिलनेके समय इन शब्दोसे उसका स्वागत करते है । उस अलक्ष्यमे चित्त पहुचता है । प्रथम तो योगी अपने लक्ष्यको स्थिर बनाता है, यह मन, यह उपयोग यत्र तत्र विचरता था, उस मनको स्थिर करनेके लिए इस योगीने निज स्वरूपका जो कि ध्रुव है, लक्ष्य बनाया । लक्ष्य बनाकर उस लक्ष्यकी स्थिरताके सहारे अपने फैलते हुए मनको अपने आत्मस्वरूपमे परमात्मतत्त्वमे लगाता है, और इसमे सिद्धि प्राप्त होने के पश्चात् मनकी एकाग्रता बनायी । अब यह योगी सर्व लक्ष्योसे भी मनको हटाकर उस अलक्ष्यमे पहुचता है जो अलक्ष्य है, इन्द्रिय द्वारा लगाया नही जा सकता । केवल अनुभवगम्य उस अलक्ष्यसे मनको स्थिर बनाना है, तब उस ध्यानीके अन्तरङ्गमे ऐसी ज्ञानज्योति प्रगट होती है जो इन्द्रियके अगोचर है । यो अब लक्ष्यसे भी परे करके अपने आपको वह योगी अलक्ष्यस्वरूपमे पहुचा रहा है ।

इति लक्ष्यानुसारेण लक्ष्याभाव प्रकीर्तित ।
तस्मिन्स्थितस्य मन्येऽह मुने सिद्ध समीहितम् ॥१६२१॥

लक्ष्यके अनुसार चलकर अलक्ष्यमे स्थित होने वाले मुनिकी समीहत सिद्धि—जैसे नय विभागमे बताया गया है कि प्रथम तो व्यवहारनयका अवलम्बन करें और व्यवहारनयके अवलम्बनसे आश्रयसे एक निश्चयनयके विपयका बोध बनाये, फिर निश्चयनयका परिचय होने पर व्यवहारकी प्रवृत्तियोसे, व्यवहारनयकी तरगोसे अपने आपको छुडाकर निश्चयनयमे ले जाय और फिर निश्चयनय व्यवहारनयसे परे नयपक्षसे अतिक्रान्त एक ज्ञानस्वरूपमे अपनेको ले जाये, अनुभवमे अपनेको पहुचायें, निश्चयका भी परिहार कर दें तो जैसे पहिले विषय कषायोंके अनेक स्थलोसे हटनेके लिए व्यवहारनयका आलम्बन किया था, पश्चात् व्यवहारनय की तरगोसे भी मुक्त होनेके लिए अब निश्चयनयका आलम्बन किया, पर आत्मानुभव इन

निश्चयनयसे भी परे है, सूक्ष्म है तो उस अनुभवके लिए अब इस निश्चयनयका भी परिहार कर देते हैं। इसी प्रकार योगी पुरुषोको पहिले तो अपना लक्ष्य बनाना चाहिए। मुझे करना क्या है, प्रत्येक मनुष्य अपने आपमे यह भाव लादे हुए है कि मुझे यह करना है। मुझे करना क्या है? इसका उत्तर यह आने लगे कि आत्मानुभव करना है, और करनेके लिए अन्य क्या काम सारभूत है? अन्य किसी कामसे मेरा पूरा न पड सकेगा। हाँ निर्णय करके दुर्लक्ष्योसे हटकर एक लक्ष्यमे आना है, मुझे इस आत्माकी साधना करना है। रागद्वेषसे हटकर केवल ज्ञानज्योति मात्र अपनेको अनुभवना है, तो दुर्लक्ष्यसे हटकर पहिले यह लक्ष्यमे आये, अब उस लक्ष्यसे भी हटकर याने लक्ष्यके अनुसार प्रवृत्तिके माध्यमसे लक्ष्यका भी अभाव करके उस अलक्ष्यमे जो स्थिर रहा करते है ऐसे मनुष्योसे वाञ्छित कार्योंकी सिद्धि होती है। आचार्यदेव कहते है कि जिनका उपयोग लक्ष्यसे भी हटकर अलक्ष्य ज्ञानस्वरूपमे पहुंच गया है उनको समस्त इष्ट कार्योंकी सिद्धि हो गयी, ऐसा मैं मानता हूँ, क्योकि मनुष्योको चाहिए क्या? निराकुलता। यदि यह निराकुलता विषयोके भोगोसे प्राप्त होती तो यह भी सम्भावना कर ली जाती कि विषयोका सेवन करना धर्म है और मोक्षका मार्ग है, लेकिन विषयोके साधनोमे निराकुलता किसे हुई है? कभी हो ही नही सकती। तो जब बाह्य पदार्थ बाह्य है, भिन्न है, अध्रुव है तो उनके सहारे आत्माको कुछ लाभकी बात नही मिलती है। तो वहाँसे हटकर एक लक्ष्यमे आये और लक्ष्यके अनुसार लक्ष्यकी पूर्ति कर रहे हैं, तो इस ही प्रसगमे अनायास ही ऐसा अन्त प्रयास बनेगा कि अलख निरञ्जन निज ज्ञायक स्वरूपमे यह आत्मतत्त्व स्थिर रह सकेगा।

एतत्तत्त्व शिवाख्य वा समालम्ब्य मनीषिण।
उत्तीर्णा जन्मकान्तारमनन्त क्लेशसकुलम् ॥१९२२॥

कल्याणमय परमात्मतत्त्वके आलम्बन द्वारा जन्मकान्तारकी उत्तीर्णता—यह अनाहत तत्त्वके रूपमे कहा गया है इस ही का नाम शिव तत्त्व है, कल्याणस्वरूप तत्त्व है। इस अनाहत तत्त्वका अवलम्बन करके बुद्धिमान लोग अनन्त क्लेशोसे युक्त ससारसे पार हो गए है। अपना ध्यान बनानेके अनेक उपाय है, जिस किसी भी बातसे आत्माकी विशुद्धि बढे, सहज ज्ञानस्वरूपका अवलोकन बने वे सब उपाय प्रशसनीय हैं। उन्ही उपायोमे इस प्रसंगसे पदस्थ ध्यानका उपाय कहा जा रहा है। पद होना चाहिए। वह अनेक अक्षरोसे भरपूर पद हो या प्रयोजनभूत कुछ वर्णोसे वह पद बना हो, उसका वाच्यभूत अर्थ कुछ थोडासा अपनी बुद्धिके अनुसार सब समझ लेना चाहिए। तो वह तत्त्व जो आत्मामे सारभूत हे एक मत्र मुद्राके रूप मे ध्यान किया जानेके लिए ज्ञानीका कदम बढ रहा है। तो उस मत्रका भी ध्यान करे और मत्रमे जिसकी बात कही गई है उस परमतत्त्वका भी ध्यान करें। यह परमतत्त्व शिवस्वरूप

है और शिवको उत्पन्न करने वाला है। शिव मायने सुख आनन्द। छहढालामे मगलाचरणमे पडित दौलतराम जी ने उस ही शिव तत्त्वका ध्यान किया है कल्याणस्वरूप तत्त्वका, जिसका आश्रय लेनेसे यह जीव ससारके दु खोसे मुक्त हो जाता है। क्या है वह तत्त्व ? रागद्वेषरहित ज्ञानस्वभाव। प्रत्येक आत्मामे ज्ञान स्वभाव है और वह स्वभाव रागद्वेषरहित है, वीतराग स्वरूप है, वह स्वय आनन्दरूप है और आनन्दकी प्राप्तिका कारणभूत है, ऐसे शिवस्वरूप उस वीतराग विज्ञान भावको नमस्कार किया गया है। अपने आपका वह स्वरूप जो अन्य पदार्थोंसे न रोका जाय, ऐसे स्वरूपका ध्यान ही सर्वोपरि ध्यान है। तो उस स्वरूपका ध्यान करके यह जीव, ससारसमुद्रसे पार हो जाता है। यहाँ तक यह मत्रराज और अनाहत मत्रके ध्यानकी विधि बतायी है, अब आगे ॐ प्रथम मत्रके ध्यानकी विधि बतायेंगे।

स्मरदु खानलज्वालाप्रशान्तेर्नवनीरदम् ।
प्रणव वाङ्मयज्ञानप्रदीप पुण्यशासनम् ॥१९२३॥

पुण्यशासनरूप प्रणवमंत्रके स्मरणका आदेश—हे मुनि ! तू प्रणव नाम अक्षरका स्मरण कर, क्योकि यह प्रणव नामका अक्षर दु खरूपी अग्निकी ज्वालाको शान्त करनेके लिए घनके समान है, जैसे कितनी ही बडी ज्वाला हो, मेघ बरस जाये तो अग्नि शान्त हो जाती है, इसी प्रकार कोईसा भी क्लेश हो प्रणव मत्रका श्रद्धा सहित भावपूर्वक ध्यान किया जाय तो क्लेश मिट जाते है। प्रणव मत्र है ॐ। यह ॐ मत्र समस्त प्रतिपादनोका प्रकाश करनेके लिए दीपकके समान है। ॐ मे कितनी बातें गर्भित होती हैं, जो जो भी पूज्य है, देव हैं, गुरु हैं, शास्त्र है, और जो जो भी प्रतिपादन है सब ॐ मे गर्भित है। ॐ मत्र मत्रराज है, यह पुण्यका शासन है, पवित्र शासन है, ॐ मत्रमे पचपरमेष्ठी गर्भित है। समस्त श्रुत गर्भित हैं। जितने भी ज्ञान है व शब्दोवा ज्ञान होता है उन समस्त शब्दोका प्रतिनिधि ॐ है। ॐ मत्र का ध्यान करके मुनिराज समस्त ससारकी ज्वालाको शान्त कर देते है। इस ॐ का यदि बडी गम्भीर ध्वनिमे उच्चारण किया जाय तो यह ॐ उच्चारण किए जानेकी स्थितिमे आत्मासे एक विचित्र आल्हाद उत्पन्न करता है, रोमाच हो जाता है। विपयकपायोकी वासनासे यह हटकर अपने आत्मतत्त्वमे लग जाता है, ऐसा ॐ मत्र प्रणव मत्र है और इस सब मत्रका प्रतिनिधि है। जितने मत्र वोले जाते है सब मत्रोंमे सर्वप्रथम ॐ लगा होता है। ऋद्धिवल, मत्रबलमे सबसे पहिले ॐ लगा होता है। तो ॐ सब मत्रोका प्रतिनिधि है, सर्व ज्ञानोका प्रतिनिधि है, और जितने भी पूज्य आत्मा है देव, गुरु, शास्त्र सवका प्रतिनिधि यह ॐ अक्षर है।

यस्माच्छब्दात्मक ज्योति. प्रसूतमतिनिर्मलम् ।
वाच्यवाचकसम्वधस्तेनैव परमेष्ठिन ॥१९२४॥

प्रणव मंत्रसे ज्योतिका प्रसव व पमेष्ठिवाच्यवाचक सम्बन्ध—इस प्रणव मत्रसे ३ नि

निर्मल शब्दरूप ज्योति उत्पन्न होती है अर्थात् ज्ञान उत्पन्न होता है। और परमेष्ठीका वाच्य वाचक सम्बन्ध भी इसी प्रणवसे होता है। याने प्रणवमत्र तो वाचक है और पचपरमेष्ठी वाच्य है। ॐ की मुद्रा भी अनेक मर्मोको बताती है। ॐ अक्षरमे समस्त पूज्य आत्मावोके पदोके प्रथम प्रथम अक्षर उसमे गर्भित है और कभी ॐ शब्दको यदि कोई काठका बनाये और छोटे-छोटे भाग बनावे। जितनी पहिले टेढ लगती उतना एक हिस्सा काठका बना लिया फिर ऊपर उठाया, जो जहाँ बनाया वे सब हिस्से थोडे-थोडे करके यदि काठका ॐ बन जाय तो उन टुकडोसे समस्त अक्षर लिख जाते है। ॐ की ऐसी मुद्रा है कि ॐ अक्षरमे जो बनावट है उसके छोटे छोटे काठके भागाश हो तो उनसे किसी भी अक्षरको बनाया जा सकता है, ऐसी ॐ की मुद्रा है। तो इस प्रकार भी ॐ शब्द समस्त शास्त्रोका प्रतिनिधि हुआ। जितने शब्द है वे सब ॐ की, मुद्रामे गर्भित है और ॐ शब्दमे पाँचो परमेष्ठियोके नाम आ जाते है। इसके अतिरिक्त ॐ मे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र भी आते है। ॐ मे ७ तत्त्व ९ पदार्थ भी आते है। भावनाएँ, सयम, साधन, तपश्चरण, सब कुछ इस ॐ मे गर्भित है, सबका प्रतीक यह ॐ है। ॐ शब्दका अर्थ हाँ भी होता है, स्वीकार करना भी होता है। प्रकृतिसे देखो प्राय करके पुरुष जब भोजन करके तृप्त होता है तो डकार आती है तो ॐ के उच्चारण की आती है। शरीरमे जितने ये अश बने हुए है ये सब ॐ की मुद्रापर बने हुए है। नाक पर देखो, आँखमे देखो, कानमे देखो तो छोटे-छोटे भाग ये सब ॐ की मुद्रापर है। यह सारा शरीर ॐ रूप दिखता है। तो ॐ मे इतना ही क्या, समस्त लोक भी बसा हुआ है। ऊर्ध्व लोक अधो लोक और मध्यलोक इस ॐ शब्दमे बसे हुए है और वैसे अक्षरोको मिलाकर भी देखलो अधोलोकका अ लिखा, ऊर्ध्व लोकका ओ लिखा और मध्य लोकका म लिखा। ओम बन गया। तो ॐ शब्दमे तीनो लोक गर्भित है, ॐ शब्दमे पाचो परमेष्ठियोके नाम भी गर्भित है। अरहतका अ, सिद्धका दूसरा नाम है अशरीर। तो सिद्धका अ, आचार्य का आ, उपाध्यायका उ और मुनिका म, इन सबको मिला दीजिए तो इसका ओम बन जाय इस प्रकार यह प्रणव मत्र परमेश्वरका वाचक है और ॐ के उच्चारणमे पचपरमेष्ठियोके स्वरूपका दर्शन होता है।

दत्कञ्जकर्णिकासीन स्वरव्यञ्जनवेष्टितम् ।
स्फीतमत्यन्तदुर्धर्षं देवदैत्येन्द्रपूजितम् ॥१९२५॥
प्रक्षरन्मूर्द्ध्न सक्रान्तचन्द्रलेखामृतप्लुतम् ।
महाप्रभावसम्पन्न कर्मकक्षहुताशनम् ॥१९२६॥
महातत्त्व महाबीज महामन्त्र महत्पदम् ।
शरच्चन्द्रनिभ ध्यानी कुम्भकेन विचिन्तयेत् ॥१९२७॥

महाबीज ॐ महामन्त्रकी विशेषतायें ध्यानविधि—ध्यानोमे जब विशेष ध्यानकी धुन बनती है तो वह कुम्भक प्राणायाम भी प्रायः बनता है। ध्यान निश्चल और अत्यन्त एकाग्र रूपसे कुम्भक हुआ करता है। वैसे रेचक अथवा पूरक ये भी ध्यानमे बाधक नही हैं। अभ्यास करनेसे ये भी अपनी मदगति लिए हुए होते है, फिर भी इन तीनमे कुम्भककी विशेषता है, पूरक नाम है जब श्वास लेते है, श्वासको भीतर लेना इसका नाम पूरक है, और श्वासको भीतर रोक लेना इसका नाम कुम्भक है और फिर धीरे-धीरे स्वरको फेंकना इसका नाम रेचक है। कुम्भक वायुके समय अर्थात् न श्वास ली जा रही हो, न श्वास फेंकी जा रही हो, किन्तु स्थिरतासे वायुको रोककर बैठे हुए हो तो उस समय ध्यानकी विशेषता होती है। ध्यान करने वाला सयमी पुरुष हृदय कमलकी कर्णिकामे स्थिर और स्वर व्यञ्जन अक्षरोंसे बेढा हुआ यो इस मत्रराजका ध्यान करे। किसी पहले हृदयकमलकी कर्णिकापर ॐ शब्दका ध्यान कर रहा है योगी और वह स्वर व्यञ्जन अक्षरोसे वेढा हुआ है, उसके चारो ओर हृदयकमलकी पत्रिकाओपर स्वर व्यञ्जन चल रहे है, क्योकि समस्त स्वर व्यञ्जन मुद्रा इस ॐ मे आ गयी है। यह ॐ मत्र उज्ज्वल है। मुद्राको भी देखो—लिखा हुआ देखो तो इस ॐ मे स्वच्छ रूपमे एक साथ कुम्भक वर्णके रूपमे इसे निरखें, और इस ॐ का ध्यान करें, जो ॐ अत्यन्त दुर्धर है, जिसका ध्यान बडे अभ्यास द्वारा साध्य है, देव और दैत्य द्वारा पूजित है, देव भी पूजा करते हैं, मनुष्य भी पूजा करते हैं, योगिराज भी पूजा करते हैं। इस ॐ मत्रको बडे महायोगी भी चावसे, आत्महितकी अभिलाषासे ध्यान किया करते है। यह ॐ मत्र छोडते हुए मस्तिष्क पर स्थित चन्द्रमाकी रेखाके अमृतसे गीला है यो ध्यान करें। यह ॐ मस्तिष्कपर लिखा हुआ है। ध्यानी पुरुष अपने आपके शरीरके अगोमे विचार कर रहा है। अभी हृदय कमलकी कर्णिकापर ॐ की मात्रा निरखकर ध्यान कर रहा था, अब यह मस्तिष्कके ऊपर चन्द्रमाकी कलाकी तरह यह रेखावत् लिखा हुआ ध्यानमे आ रहा है, जो दिखते हुए चन्द्रमाके अमृतके समान गीला है, आद्रित है, जिसमेसे अमृत झर रहा है इस तरहका चितवन करें। महाप्रभाव सम्पन्न, कर्मरूपी वनको दग्ध करनेके लिए अग्नि समान ऐसे इस महातत्त्व, महाबीज, महामत्र, महापदस्वरूप तथा शरदके चन्द्रमाके समान गौर वर्णके धारक ॐ को कुम्भक प्राणायामसे चिन्तवन करें।

ॐ के नादमे महाप्रभाव—ॐ को अगर एक ध्वनिसे कोई लगाकर उच्चारण करे, ॐ की धुनि बनाकर बढता रहे तो इस ॐ के उच्चारणके समय ही आत्मामे एक नवीन भाव उत्पन्न होता है। मदिरमे दर्शनके समय अथवा जाप, सामायिकके समय इस ॐ शब्दको एक ही ॐ को धीरेसे बहुत देर तक गम्भीर मद आवाजसे बोलियेगा तो इस ॐ शब्दके उच्चारण मे ही बहुत बडा प्रभाव भरा हुआ है। यह ॐ मत्र कर्मसमूहको जलानेके लिए अग्निकी तरह

बताया है। जैसे अग्नि ईंधनको जलाकर खाक कर देती है इसी प्रकार यह प्रणव मन्त्रका ध्यान कर्मसमूहको जलाकर नष्ट कर देता है। यह महामन्त्रका प्रतिनिधि ॐ प्रणव मन्त्र महातत्त्व है। इन शब्दोमे मूल स्तुति गायी गई जिसका अर्थ आ गया। जो वाच्य बनता है उसपर दृष्टि जानेसे अक्षरकी महिमा जानी जाती है, कौन शब्द कैसा अर्थ बतला रहा है उसका स्वरूप जाननेसे उस अक्षरकी महिमा बढती है। जैसे कोई परमात्माका स्वरूप जानता हो और जब वह परमात्मा शब्द बोलता है अथवा सुनता है तो उसके चित्तमे इस परमात्मा शब्दका भी आदर होता है। जिस ध्वनिको सुनकर परमात्मस्वरूप पहिचान गया है वह ध्वनि भी पूजित होती है। यह प्रणव मन्त्र महातत्त्व है और महाबीज है। सभी मन्त्रोमे यह पूजा मन्त्रके रूपमे आदिमें रहता है। कभी मध्यमे भी ॐ बोला जा सकता है। प्राय करके ॐ आदिमे आया करता है। यह महाबीज है, समस्त स्थितियोका कारण है और समस्त ज्ञानोका बीज है। इसके ध्यानसे ज्ञानका विकास भी होता है, शान्तिका भी विकास होता है। यह महामन्त्र है। इस ॐ मन्त्रको प्रायः सभी सिद्धान्त वाले मानते है। जैन भी मानते है और सनातनी भी मानते हैं और अन्य-अन्य लोग भी मानते हैं। यह ॐ इतना प्रसिद्ध और पूज्य मन्त्र था कभी कि सभी इस एकके भक्त थे। इस ॐ से जो अर्थ निकलता है, जिस पदार्थका सकेत होता है उस पदार्थका ज्ञान रहा नही, किन्तु यह चित्तमे बना रहा कि ॐ महामन्त्र है, इसके ध्यानसे सकल सिद्धियोकी प्राप्ति होती है, तो लोग इस ॐ के भक्त हो गए, और प्राय. सभी सिद्धान्त इस ॐ शब्दको बडी पूज्यदृष्टिसे देखते है। यह ॐ महान मन्त्र है, ॐ महान पद है।

ॐ महामंत्रमें पञ्चपरमेष्ठियोंकी प्रतिष्ठा—इस ॐ शब्दमे और क्या-क्या गर्भित है ? अरहतके स्वरूपको बताया। अरहंतका स्वरूप महान पद तो है ही, जिस पदको प्राप्त करके जीव उत्कृष्ट शान्तिका अनुभव करता है। समस्त मलिनताएँ जहाँसे हट गयी, किसी भी परकी ओर दृष्टि नही रही, किसी भी जीवको हितरूप नही माना, किसी भी जीव अथवा अजीवसे मेरा कल्याण होगा ऐसी ज्ञानीकी श्रद्धा नही रहती। ऐसा जानकर जिन महापुरुषोने परद्रव्योंसे उपेक्षा की और अपने आत्मस्वरूपका ध्यान किया वे जीव इस अरहत पदको प्राप्त करते है। तो अरहत महापद है, सिद्ध परमेष्ठीका भी महापद है। जहाँ अष्ट कर्म नही है और केवल आत्मस्वरूप ही जहाँ प्रकाशमान है, ज्ञानानन्दका जो एक पुञ्ज है वह सिद्ध परमेष्ठी है। यह सिद्ध पद सर्वपदोसे उत्कृष्ट और उच्च पद है। यह ॐ मन्त्र आचार्य, उपाध्याय और मुनियोका भी वाचक है। यह भी महान पद है। संसारकी वस्तुवोसे उपेक्षा हो जाना, और अपने आपके ज्ञानस्वरूपके ज्ञानकी धुनि बन जाना यह जिस स्थितिमें होता है वह स्थिति महान पद है। मुनियोके और काम क्या हैं ? एक आत्मानुभवका ही काम उनके बना रहता है, दूसरी कोई बात नही, कोई सग नही, कोई परिग्रह नही, वस्तुमात्र भी नही जो इतना भी

विकल्प करना पडे कि कैसी है वह वस्तु । अव पहिचाना है इतना तक भी विकल्प न उत्पन्न हो, इसके लिए एक निर्ग्रन्थ पद धारण किया जाता है । जहाँ समस्त सासारिक वस्तुवोसे उपेक्षा हो जाय और अपने आपके आत्मस्वरूपकी दृष्टि बन जाय तो वह महान पद है ही । तो आचार्य और उपाध्याय मुनिका भी महान पद है । उन सब पदोका वाचक यह ॐ मत्र है, इसलिए ॐ भी महान पद है, यह ॐ शरदकालीन चन्द्रमाकी तरह वर्णका धारक है । इस प्रकार ॐ मत्रको कुभक प्राणायामसे ध्यान करें । मद चालसे पहिले श्वासको लिया गया था श्वास लेना, श्वास रोकना और श्वास वाहर फेंकना, ये तीन अवस्थाएँ होती है । तो कुभक प्राणायामके द्वारा इस ॐ का चिन्तवन करें ।

सान्द्रसिन्दूरवर्णाभ यदि वा विद्रुमप्रभम् ।
चिन्त्यमान जगत्सर्वं क्षोभयत्यभिसगतम् ॥१६२८॥
जाम्बूनदनिभ स्तम्भे विद्वेषे कज्जवलत्विपम् ।
ध्येय वश्यादिके रक्त चन्द्राभ कर्मशातने ॥१६२६॥

प्रयोजनवश ॐ महामंत्रकी विविध ध्यानविधि—यह प्रणव अक्षर यदि गहरे सिन्दूर के वर्णके समान चिन्तनमे लाया जाय अथवा लाल मूँगेके समान चिन्तवनमे लाया जाय तो यह जगतको क्षोभित करता है । इस ॐ शब्दको ही भिन्न-भिन्न रगोंमे ध्यान करनेसे भिन्न-भिन्न फल होते है । कितना बडा यह आश्चर्य है । तो जब कोई सिन्दूर वर्णके समान लाल रगका इस ॐ का चिन्तवन करता है तो यह जगतको क्षोभित करता है, खुदको भी क्षोभित करता है । इस प्रणवको स्वर्णके समान पीला चिन्तवन किया जाना है । किसी कार्यको थामना, किसी कार्यको निभाना ऐसे उद्देश्यमे ॐ को पीले रगमे चिन्तवन किया जाता है और जब द्वेषका प्रयोग हो तो उसमे कज्जलके समान काला ठथा वश्यादि प्रयोगमे लाल रगका चिन्तवन करे और कर्मोंके नाश करनेमे चन्द्रमाके समान श्वेत वर्ण चिन्तवन करे । इससे ज्ञानीका प्रयोजन कुछ नही रहता । पर मत्रके ध्यानमे ऐसी-ऐसी विवियोसे ध्यान करनेसे ऐसे-ऐसे कार्य सिद्ध होते हैं या कार्य बनता है उसका इसमे वर्णन किया जा रहा है । इसका कारण यह नही है कि कोई द्वेषका प्रयोग करे और काले रगमे ॐ का चिन्तवन करने लगे । ऐसा करनेकी बात नही कही जा रही है किन्तु ऐसा माहात्य बसा हुआ है इस मत्रके ध्यानमे कि इस इस रूप रगका ध्यान किया जाय तो ऐसे-ऐसे विभिन्न फल प्राप्त होते है । इसका प्रतिपादन यहाँ किया जा रहा है तो जिस ॐ मे भिन्न-भिन्न प्रकारके रूप रगका ध्यान करनेसे विभिन्न फल प्राप्त होते हैं तो उस मत्रराजका प्रभाव समझ लीजिए कि कितना अचिन्त्य प्रभाव है ? यदि कोई उज्ज्वल ज्ञानज्योतिके रूपमे इस ॐ का चिन्तन करता है तो वह मोक्षमार्गमे निर्विघ्न बढता हुआ मोक्षको प्राप्त कर लेता है । इस प्रकार ॐ मत्रका वर्णन किया जा रहा है ।

ॐ की मुद्रामें मोक्षमार्गका शिक्षण—एक बात, और ॐ की मुद्रामे देखो कि ॐ मे अलग-अलग दो आकार है। पहिला आकार तो है अ की तरह, ३ की तरह, अनेक गुडेरी लग करके पहिला आकार बनता है, उसके बाद आकार है शून्यका। तो ये दो आकार किसके प्रतीक है ? ३ का आकार बहुतोका प्रतिपादक है, नाना दृष्टि और आश्रयोका प्रतिपादक है। ३ का हिस्सा व्यवहारनयका सकेत करता है, जैसे कि व्यवहारनयमे अनेक बातें होती है इसी प्रकार इस ॐ के भागोमे भी ३ का भाग तो व्यवहारनयका समर्थन करता है और उसके आगेका भाग जो केवल शून्यके रूपमे है वह निश्चयका समर्थन करता है। जिस शून्यमे कही भी आदि अन्त नही है, गोल है तो वहाँ किसी जगह आदि है और किसी जगह अन्त है। तो यह गोल बिन्दु निश्चयका प्रतिपादक है। एक ओर रहा व्यवहार और सामने रहा निश्चय और बीचमे जो डडा है वह इन व्यवहार और निश्चय दोनोको अलग-अलग कर रहा है। कोई व्यवहारको ही माने, कोई मात्र निश्चयको ही माने तो इससे उसे सिद्धि न होगी। प्रमाण एक साधक है। तो व्यवहारनय, निश्चयनय और बीचमे आया प्रमाण। अब इसके ऊपर है गोल चन्द्रमाकी तरह। तो वह गोल चन्द्र अनुभूतिका द्योतक है। अनुभवका कोई आकार अगर बनाना चाहे कुछ सोच समझकर तो वह दोजके चन्द्रकी तरह एक कला बनेगी, यह अनुभूतिका प्रतीक है और उस कलाके ऊपर जो शून्य रखा हुआ है वह सिद्ध भगवानका प्रतीक है। जैसे इसमे ये आदि मध्य और अत नही है इसी प्रकार सिद्धके ज्ञानमे भी आदि मध्य और अत नही है। यहाँ ॐ के पहिचाननेकी विधि बता रहे है कि भाई व्यवहारनयका आलम्बन लो, फिर निश्चयनयका आलम्बन लो, फिर एक अनुभूति उत्पन्न होगी, उस अनुभव के बीच यह परमतत्त्व जो ध्यानमे है उसकी सिद्धि होती है। इस तरह ॐ की मुद्रामे उपदेश भी भरा हुआ है। इस ॐ की मुद्रामे समस्त श्रुत द्वादशागकी वाणी भी भरी पडी हुई है, क्योकि सभी शब्द इस ॐ शब्दसे उत्पन्न होते है, इसकी मुद्रासे निकले हुए और सभी अक्षरो का यह प्रतिनिधि है। इस प्रकार इस ॐ शब्दको योगी पुरुष इस आत्महितके अभिप्रायसे श्वेत वर्णमे कान्तिमय स्वरूपमे इसका ध्यान करते है। यह ॐ शब्द मोक्षका सौख्य है, यो प्रणव मत्रका आदर करे और जैसे णमोकार मत्रका जाप करते है या ॐ मत्रका जाप करते है इस प्रकार केवल ॐ ॐ शब्दका भी जाप चलता है और वह जाप पचपरमेष्ठियोके स्वरूप को ध्यानमे लगाता हुआ चला करता है। इस ॐ शब्दमे आत्माके स्वरूपका सकेत होता है यह सर्वके द्वारा पूजनीय है। इस प्रकार यह प्रणव मत्र सर्व मत्रोमे प्रधान है, सर्व मत्रोमे पूज्य है। इसका ध्यान करके विषयकषायोसे दूर हो और अपने आपमें सनातन बसे हुए इस ज्ञायकस्वरूपका अनुभव करें।

गुरुपञ्चनमस्कारलक्षरण मन्त्रमूर्जितम् ।
विचिन्तयेज्जगज्जन्तुपवित्रीकरणक्षमम् ॥१६३०॥

पञ्चगुरुनमस्कारमंत्रके विचिन्तनका आदेश—अब तक दो मन्त्रोका ध्यान करना बताया है—एक अनाहत मत्र जिसकी मुद्रा है ह्रँ, और दूसरा प्रणवमत्र जिसकी मुद्रा है ॐ। इन दो अक्षरो वाले मत्रका ध्यान उनके महत्त्वको उनके विषयको बताते हुए कहा है। अब इसके पश्चात् पचपरमेष्ठियोके नमस्कार मत्रका ध्यान करना बताते है। पचगुरुवोका नमस्कार जिसमे आ गया है ऐसा यह महामत्र जगतके जतुवोंके पवित्र करनेमे समर्थ है, इस प्रकार ध्यान करें। यह जीव विषयकषायोसे पतित है और दुःखी है। जब इसके उपयोगमे किसी परवस्तुके प्रति प्रेम जगता है तो उसे वही वस्तु सर्वस्व मालूम होती है, यही हितरूप है ऐसा प्रतीत होता है। यह जीवपर कितनी बडी विपदा छायी है कि जो भिन्न वस्तु है, अहित रूप है, जिनका ससर्ग इस जीवको अनेक कर्मोके बध करानेका कारण है, वह असार चीज इसे बहुत प्रिय लगी, यह कितना बडा भारी उत्पात है इस जीवपर ? कहाँ तो इसका पवित्र ज्ञान और आनन्दमय स्वरूप है और कहाँ आत्मा अज्ञान रागद्वेष लगे चले जा रहे हैं, ऐसी स्थिति वाले ऐसे इस दयनीय जीवको रक्षा करनेमे समर्थ है तो पचगुरुका स्मरण समर्थ है, इसी कारण पचगुरुके नमस्कार मत्रका बडा महत्त्व बताया है। कठिनसे कठिन विपदाएँ भी हो तो इस णमोकार मत्र का श्रद्धापूर्वक ध्यान करनेके प्रतापसे उन विपदाओमे शिथिलता आ जाती है। जगतमे किसकी शरण गहे कि जीवको सच्चा रास्ता मिले और शान्ति मिले ? पचगुरुके सिवाय अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और मुनि, इनके सिवाय कोई जीव ऐसा नही है कि जिसकी शरण गहे तो शान्ति प्राप्त हो सके। जिसे अपनी खुद सुधि नही है, शरीरको ही यह मै आत्मा हू ऐसा माना करते है। ऐसे स्त्री पुत्र कुटुम्ब मित्र जनोंसे प्रीति रखने मे क्या हित है ? वे स्वय अरक्षित है, वे स्वय कर्मोके प्रेरे है, आज मनुष्य-भवमे आये, आगे कहाँ जायेंगे, वे स्वय कर्मोंके सताये हुए है, उनकी शरण गहनेमें इसे लाभ कुछ न मिलेगा।

पञ्चगुरुकी पतितपावनता व शरण्यता—पच परमेष्ठियोंके स्वरूपकी ओर देखिये, साधु पुरुष अपने ज्ञानस्वभावके ध्यान करने की धुनिमे रहा करते हैं और इसी कारण पर-वस्तुवोसे उनका वैराग्य बना रहता है, ऐसे पवित्र आत्माके निकट बैठनेसे, उनकी सेवा करनेसे, उनके गुणोका परिचय करनेसे आत्मामे शान्ति प्राप्त होती है। साधुवोसे ऊपर है पद अर-हतका। अरहत भी गुरु कहलाते है। जो शिक्षा दे सो गुरु है, और इस प्रसगमे तो साधुको भी गुरु कहा है जिसके स्मरणसे हमे सत्पथ मिलता है। वे साधु भी हमारे परम गुरु हैं, अथवा गुरुके मायने है बडा। मेरे हितके लिए साधकतम ये पचपरमेष्ठी है। अरहतदेव

सशरीर परमात्मा है, उनका परमोदारिक शरीर है। वह शरीर सहित होकर भी सर्वज्ञ वीत-राग है, जिनके चरणोमे जिनकी वैराग्यतासे आकर्षित होकर स्वर्गके देव अपने स्थानको खाली करके यहाँ आते है। उनका जो असली देह है वह नही आता है, देवोका वैक्रियक शरीर यहाँ आता है। तो शरणभूत है पचगुरु, और उनका ध्यान करने वाले पवित्र हो जाते है। विषय कषायोसे रहित केवलज्ञानकी धुनि रखने वाले ये आत्मा है ऐसी उनकी ओर दृष्टि जाय तो अपने आपमे भी पवित्रता बढती है। तो यो पचगुरु जगतके जीवोको पवित्र करनेमे समर्थ है, तो उनका वाचक जो णमोकार मत्र है इस मत्रका भी यदि श्रद्धापूर्वक ध्यान किया जाय तो यह पवित्र करनेमे समर्थ है। ऐसे इस पचगुरु नमस्कार मत्रका ध्यान करे।

स्फुरद्विमलचन्द्राभे रत्नाष्टकविभूषिते।
वञ्जे तत्कर्णिकासीन मन्त्र सप्ताक्षर स्मरेत् ॥१६३१॥
दिग्दलेषु ततोऽन्येषु विदिक्पत्रेष्वनुक्रमात्।
सिद्धादिक चतुष्क च दृष्टिबोधादिक तथा ॥१६३२॥

णमोकार मंत्रके ध्यानके विधानमें अरहंतका ध्यान—एकाग्रताके लिए णमो-कार मत्रका ध्यान करनेकी पद्धति यह है कि अपने हृदय-कमलमे ८ पाखुडीका कमल चितवन किया जाय और उसके बीच कर्णिका है, तव ये ९ स्थान हो गए। उस कमलको एक देदीप्यमान, कान्तिमान स्वरूपमे चिन्तवन करे, मुर्झाया हुआ नही, और उस कर्णिकापर णमो अरहताण इस मत्रकी स्थापना करे, यह सप्ताक्षरी मत्र है, इसमे ७ अक्षर है। देखिये—णमो अरहताणमे जो वाच्य होता है अरहत, उनके स्वरूपका यदि यथार्थ परिचय करे तो ऐसा लगेगा कि सभी परमतत्त्व अरहतसे लगे हुए है। न अरहत होते तो सिद्धकी बात कैसे मालूम होती ? जितना उपदेश है सारा उपदेश अरहतकी मूल परम्परासे चला आया है। तो सिद्धाण का महत्त्व हमे अरहतसे होता है। अरहत सशरीर परमात्मा हैं, आजके समयमे तो नही, पर उन अरहतदेवका दर्शन यहाँपर भी हो सकता है। उनका शरीर परमोदारिक है। विदेह क्षेत्र मे तो अरहत सदा रहते है। तो वितना बडा सौभाग्य है कि साक्षात् अरहतके दर्शन हो, भगवतके दर्शन हो। जिनको श्रद्धा है उनका चित्त कहता है कि अरहतका दर्शन करके मैने सब कुछ पा लिया। अब क्या पानेको रहा, इसके आगे अन्य कोई भी सारभूत चीज है। तो उस हृदय-कमलके बीचमे कर्णिकामें णमो अरहताणका चिन्तवन करे। णमो अरहताण शब्द भी है और णमो अरिहताण शब्द भी है और अलग-अलग विषयमे इनका महत्त्व भी अलग-अलग है। अरहताणका अर्थ है पूज्य, योग्य और अरिहताणका अर्थ है—कर्म शत्रुवोका हनन करने वाला। जो किसी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष बैरीके द्वारा सताया हुआ हो और वह इस सप्ता-क्षरी मत्रका उच्चारण करे तो उससे उच्चारण होगा णमो अरिहताण। इन्होने घातिया कर्म

रूपी अरिको नष्ट किया और यह ध्यानी सताने वाले इस अरिसे हटना चाहता है और जब कोई मुक्तिका अभिलाषी अपनेको सातारूप शान्तरूप बनाये रखनेके लिये जब सप्ताक्षरी मंत्रका उच्चारण करता है तो उसका उच्चारण होता है णमो अरहंताण । तो उस कर्णिकाके बीचमे णमो अरहताण मत्रकी स्थापना करें ।

कर्णिकाके बाहर आठ पत्रोका अष्ट मंत्र—कर्णिकासे बाहर जो ८ पत्र हैं, वे ८ पत्र ८ दिशावोमे फैले है ऐसा ध्यानमे लायें । ४ दिशायें और ४ विदिशायें । तो चार दिशावोमे जो ४ पत्र हैं उनपर णमो सिद्धाण, णमो आइरियाण, णमो उवज्झायाण, णमो लोयेसव्वसाहूण इस मत्रका स्थापन करें । इसके बाद बीचोबीचमे एक-एक पत्र जो अभी रीते है इनपर क्रम से—सम्यग्दर्शनाय नम , सम्यग्ज्ञानाय नम , सम्यक्चारित्राय नम और सम्यक्तप नम', इन चारका ध्यान करें । चार दिशावोमे जो मत्र हैं वे तो साधक और सिद्ध है । किसकी साधना करना है और किसकी साधना करके वे सिद्ध हुए हैं । ये चार मत्र दिये गए हैं बीच-बीचमे । जो भव्य जीव आत्मा और अनात्मतत्त्वका यथार्थ दर्शन करते है, विश्वास रखते हैं, परद्रव्यो से भिन्न निज आत्माकी प्रतीति रखते है उनका यह सम्यग्दर्शन रूप परिणमन उनकी शान्ति की वृद्धिमे कारण है । कोई पुरुष किसी वैभव आदिकमे विघ्न आनेपर उस विघ्नकर्तापर तीव्र रोष लाता है और कोई उस विघ्नकर्तापर रोष नही लाता, उपेक्षा कर जाता, ज्ञाता हो जाता, ऐसा होना था सो हो गया, इसमे मेरा क्या बिगाड ? तो ये दो तरहके पुरुष हैं जिनमे एकको तो ममता है, मूर्छा है बाह्य वस्तुसे, अतएव उसका जो विघ्न करता है उसे शत्रु दिखता है, वह अनिष्ट लगता है और जो यथार्थ ज्ञानी है, जिसने यह निर्णय किया है कि यह वैभव समस्त पर है, यह किसी भी हालतमे रहे, रहे, इससे मेरा कोई सुधार बिगाड नहीं है । तो ऐसे परद्रव्योके प्रति जो उपेक्षाभाव रखते है वे धीर रहते है, शान्त रहते हैं । जिन्होंने आत्मा के सम्यक् स्वरूपको अपने उपयोगमे लिया है वे यह हू मैं आत्मा, यही जो ज्ञानमात्र है, विलक्षण है, सबसे निराला है, सर्वोत्कृष्ट है, ऐसा यह ज्ञानस्वरूप आत्मा 'यह मैं हू' इस प्रकार आत्मस्वरूपमे ही आत्मीयताकी प्रतीति लेकर जो इस निज तत्त्वका ध्यान करते हैं वे पुरुष इस शान्ति पथके पथिक हैं । जो अपने इस विशुद्ध उपयोगको चिरकाल तक बनाये रखनेके लिए उद्यम करते हैं, अपने आपमे अपनेको लीन करते है उनका यह परिणमन है सम्यक्चारित्र, और अन्तरङ्गमे चैतन्यस्वरूपकी दृष्टि बनाकर अपने चैतन्यभावमे स्थापना और व्यवहारमे जो आत्मसाधनाके साधक है ऐसे तपश्चरणसे तपना यह है सम्यक् तप । ऐसे तपमे जो प्रवृत्ति रखते है वे ज्ञानी सत पवित्र है । तो इस प्रकार हृदय-कमलमे इस नमस्कार मत्रका विस्तार बनायें । इसमे ९ पर्यायें है णमो अरिहताण, णमो सिद्धाण, सम्यग्दर्शनाय नम , णमो आइरियाण, सम्यग्ज्ञानाय नम , णमो उवज्झायाण, सम्यक्चारित्राय नम', णमो लोयेसव्वसाहूण,

सम्यक्तपसे नमः। इस प्रकार ९ मंत्र स्थापित है। यहाँ जिस अर्थको बताना है— उस अर्थकी धुनसे यह अब योगी अपने आपको पवित्र उन्नत और वीतराग बनाता है जिसके प्रतापसे सर्वज्ञता प्रगट होती है।

श्रियमात्यन्तिकी प्राप्ता योगिनो येऽत्र केचन।
अमुमेव महामन्त्र ते समाराध्य केवलम् ॥१९३३॥

णमोकार महामंत्रके ध्यानका फल आत्यन्तिकी श्री का लाभ—इस लोकमे जितने योगियोंने मोक्ष लक्ष्मीको प्राप्त किया है उन सबने एक इस महामत्रकी आराधना करके ही प्राप्त किया। सभी इस णमोकार मत्रके आराधक हैं, एक तो कुछ विस्तारपूर्वक है सो मुद्रामे भी महान है और फिर इस मत्रका जापकर पचपरमेष्ठियोके विशुद्ध स्वरूपमे ध्यान करनेका इसमे अवकाश मिलता है, और मत्र तो बीजाक्षर है। जैसे ॐ ॐ ॐ जप रहे है, जो जानकार है वे भले ही समझ तो रहे है कि ॐ मे पचपरमेष्ठी गर्भित है, पर ॐ बोलनेके साथ पचपरमेष्ठियोका स्वरूप विशद रूपसे ध्यानमे आ जाय तो यह वहाँ ज्ञान होता है और णमोकार मत्र के स्मरणमे चूंकि एक-एक पद स्पष्ट रूपसे ध्याया जा रहा है तो जितनी देरमे यह एक पद बोला उतनी देरमे उस पद वाले पवित्र आत्माका चित्रण अपने उपयोगमे बराबर मिल सकता है। जब णमो आइरियाण बोला तो आकाशमे समवशरणके बीच विराजमान, चतुर्मुख रूपसे विराजमान, जिसके चारो ओर देव देवागनाएँ नृत्यगान करते हुए भागतेसे आ रहे है, जिस समवशरणमे मनुष्योका समूह और पशुपक्षियोका भी समूह पहुच रहा है ऐसा समवशरण, उसके बीच विराजमान अरहतदेव यह सब एक निमित्त मात्रमे सारा चित्रण हो सकता है। णमो आइरियाण इतना स्मरण किया कि वह सब समवशरण विभूति सहित मध्यमे विराजमान अरहतदेवका चित्रण हो जाता है। णमो सिद्धाण बोला तो उतनेमे ही जितना समय इस मत्रमे लगा यह पचाक्षरी मत्र है। उतनी देरमे लोकाकाशके अन्तमे तनुवातवलयमे अनन्तानन्त सिद्ध विराजे है ऐसा सर्व सिद्धिका चित्रण अपने उपयोगमे लिया जा सकता है, तो इस प्रकार यह णमो सिद्धाण बोलनेमे सिद्धका स्वरूप शरीररहित केवल ज्ञानपुञ्ज निर्विकार—जो स्वरूप है वह ध्यानमे लिया जा सकता है। इसी प्रकार जब णमो आइरियाण बोलें तो आचार्य देव कोई कही विराजमान है, उनके समीप कुछ मुनिजन बैठे है, उनको दीक्षा प्रायश्चित्त आदिकका भी आदेश किया जा रहा है, ऐसी घटनाका चित्रण णमो आइरियाण शब्द बोलकर तुरत किया जा सकता है। जब णमो उवज्झायाण कहा तो ११ अग १४ पूर्वके पाठी अथवा कुछ कम भी पाठी, किन्तु आचार्यके द्वारा जिन्हे उपाध्याय पद दिया है उन उपाध्यायोका चित्रण तुरन्त हो सकता है। किसी जगह एक उपाध्याय विराजे है और सर्व साधुवो को पढा रहे हैं, उनको मर्मकी बात बता रहे है, ऐसा चित्रण णमो आइरियाण शब्द बोलते

ही किया जा सकता है, और णमो लोएस वसाहूण इतना यह दीर्घ मत्र जिन क्षणोमे बोला जाता है उन क्षणोमे अनेक जगहोके तपस्वी साधुवोका चिंतन किया जा सकता है। कोई नदी के तीरपर शीतकालमे विराजा है और आत्मध्यानमे यत्न कर रहा है। कोई ग्रीष्मकालमे पर्वतकी शिखरपर विराजा है, कोई गुफामे बैठा है, कोई कितने ही दिन और महीनोका उपवास किए हुए है। कुछ मुनि जन लम्बे उपवासके वाद चर्याको भी निकले तो उस समय उन्हे भोजन आदिकका अलाभ हो जाय, न मिले भोजन, तिसपर भी बडी समता रखे हुए अपने आवश्यक कार्यमे सावधान रह रहे है आदिक अनेक प्रकारके मुनियोका चित्रण णमो लोएसव्वसाहूण पद बोलनेके बीचमे किया जा सकता है। इसी कारण इस मत्रको महामत्र कहते है, जिसका विषय महान है, जिसकी विधि महान है, जिसकी मुद्रा महान है ऐसे णमोकार मत्रका योगी पुरुष ध्यान करते है।

प्रभावमस्य नि शेष योगिनामप्यगोचरम ।
अनभिज्ञो जनो ब्रूते य स मन्येऽनिलार्दित ॥१६३४॥

णमोकार महामंत्रके ध्यानका अतुल प्रभाव—इस महामत्रका पूर्ण प्रभाव योगी मुनीश्वरोंके भी अगोचर है। परमेष्ठियोके स्वरूपके विचार सहित जिस कालमे यह मत्र बोला जाता है तो आल्हाद आनन्दके कारण इसके अन्दर एक अद्भुत प्रसन्नता जगती है और वह प्रसन्नता रोमाचकारीके रूपमे बाहर प्रगट होती है। स्वरूपका चिन्तन हो साथमे तो इस मत्र के चिन्तवनका प्रभाव बहुत अधिक बढ जाता है, और इन अक्षरोमे ऐसी ही पूज्यता है कि न भी हो किसीको विशेष स्वरूप परिचय, पर श्रद्धा जबरदस्त हो तो इन मत्राक्षरोंके ध्यानसे ही बहुतसे सकट दूर हो जाते है। अजन चोरने एकदम ही तो कोई उपाय न जानकर कि हम बच न सकेंगे तो एक इस ही आराधनामे लग गया। १०८ डोरीके भूलेपर बैठा हुआ था, नीचे तलवार आदिक हथियार छेदन भेदनके लिए खडे कर दिए गए थे, उस स्थितिमे उस अजन चोरको लरी काटनेकी हिम्मत न आयी। उसने यह भी समझ लिया कि हम अब किसी भी स्थितिमे बच नही सकते, आगे पीछे पुलिस है पकड लेगी, नीचे गिरे तो शस्त्रोंसे भिद जायेंगे। सो तुरन्त ही वहाँ ध्यान करने बैठ गया। उच्चारण भी सही-सही न आता था—बस ताण ताण ताण, सेठ बचन परमाण, ऐसा जाप वह जपने लगा। तो श्रद्धा उसकी दृढ थी, उस श्रद्धामे उसका दिल मजबूत था तो उस समय वह लरीको काटता गया और उसको आकाशगामी विद्या सिद्ध हो गयी। आकाशमे ही अधर बना रहा, शस्त्रोपर नही गिरा। फिर उसने चैत्यालयोकी वदना की, भाव और बढे, निर्ग्रन्थ मुनि बना, पार हो गया। अधिकसे अधिक पाप करने वाले पुरुष भी करते क्या है आखिर ? एक भावोंमे विकार ही तो किया, और क्या किया, वही पाप है, और जिस कालमे भाव विशुद्ध हो जाय, आत्माका सहज ज्ञान-

स्वरूप उपयोगमे आ जाय तो पर्याय तो एक समयमे एक रहेगी । जिम समय इस ज्ञानीके उपयोगमे विशुद्ध ज्ञानतत्त्व समाया है उस समय पापकी बात एक भी नही है तो सारे पाप खतम हो गए या नही ? विशुद्ध भावोमे यह सामर्थ्य है कि समस्त पापोको कुछ ही क्षणोमे ध्वस्त कर देता है । अब कितने ही पाप किए अञ्जन चोरने, जो सभी व्यसनोमे लगा हुआ था ऐसा महाव्यसनी विकारो वाला अब इस समय निर्विकार स्वरूपका ध्यान कर रहा है । तो इस परमतत्वके ध्यानसे आत्मा निष्पाप होता है, और णमोकार मन्त्रमे उस ही परमतत्त्वकी छाया है, कही अल्पविकास है, कही पूर्ण । तो इन परमेष्ठियोके नमस्कार मन्त्रसे सर्व प्रकारके सकट दूर होते है । ऐसा इसका प्रभाव योग भी पूर्ण रूपमे बता नही सकते, और फिर जो इसके न जानने वाले है वे कहे कि मैं इसका प्रभाव बतानेमे समर्थ हू, तो आचार्यदेव कहते है कि मैं तो ऐसा समझता हू कि उसको वायुरोग तीव्र है इसलिए वह बकवाद करता है ।

अनेनैव विशुद्ध्यन्ति जन्तवः पापपङ्किता ।
अनेनैव विमुच्यन्ते भवक्लेशान्मनीषिण ॥१९३५॥

णमोकार महामंत्रके प्रभावसे प्राणियोका विशोधन— पच नमस्कार मत्रकी चर्चा चल रही है कि यह पच नमस्कार मत्र अथवा णमोकार मत्र गुरु पच नमस्कार मत्र है । इस मत्र के द्वारा ही ऐसे जीव विशुद्ध हो जाते है जो पापसे मलिन है जिसके चित्तमे विपय वासना क्रोधादिक कपायें जगती है और इन विषयकपायोके परिणामोसे जो मलिन हुए है ऐसे जीवो को भी इस मत्रका ध्यान विशुद्ध कर देता है । क्योकि इस मत्रमें ज्ञान और वैराग्यकी मूर्तिका स्मरण किया गया है । साधु है सो वे ज्ञान और वैराग्यकी मूर्ति है । साधु नाम किसका ? केवल शरीरका भेष देखकर साधुता नही जानी जाती, किन्तु यह आत्मा कैसा विशुद्ध ज्ञान-स्वरूपकी धुनि वाला है और परद्रव्योसे इसकी ममता हट चुकी है, उपेक्षा भाव आ गया है, सो वे ज्ञान और वैराग्यकी मूर्ति है । आत्माका नाम साधु है, और अरहतदेव तो ज्ञान और वैराग्यकी प्रगट मूर्ति है, परिपूर्ण ज्ञान और परिपूर्ण वीतरागता अरहत देवके है सो वे भी ज्ञान और वैराग्यकी मूर्ति कहलाते है, सिद्ध भगवान शरीररहित है, केवल आत्मा ही आत्मा रह गया है, वह ज्ञान वैराग्यकी परममूर्ति है, पच नमस्कार मत्रमें ज्ञान और वैराग्यको नम-स्कार किया गया है । जब कभी ज्ञान भाव हृदयमे आता है, वैराग्यभाव उपयोगमे समाता है तो उस समय विषय और कषायोके भाव दूर हो जाते हैं । यही विशुद्धि है । णमोकार मत्रसे विशुद्धि कैसी जगती है, बुराइया कैसे दूर होती है उसको एक शब्दमे यहाँ बताया है कि नम-स्कार मत्रमे जिसे नमस्कार किया गया है वह है ज्ञान और वैराग्यकी मूर्ति । तो ज्ञानमात्र और वीतराग आत्माके गुणोका जब स्मरण होता है, ज्ञानका और वैराग्यका जब स्मरण होता है तो उस कालमे इनकी विशुद्ध परिणति है और इनके विपयकषायोके आक्रमण विफल हो

जाते है। इस तरह यह णमोकार मत्र पापोसे लाञ्छित जीवोको भी विशुद्धता उत्पन्न करता है।

णमोकार महामंत्रके प्रतापसे प्राणियोका भवक्लेशसे छुटकारा— इस ही मत्रके प्रताप से बुद्धिमान जीव ससारके क्लेशोसे छूटते है। जैसे कि सर्व ओरसे पता है कि इस जगतमे अन्य कुछ भी शरण नही है। जिसकी शरण जावो वहीसे लात लगती है, मायने धोखा मिलता है। परिवार जनोके बीचमे मोह करके बसो तो वहाँ भी सारे जीवनभर दु ख ही दुःख भोगना पडता है। अन्तमे वे कोई साथी नही होते। जिनके पीछे अनेक पाप किए, जिनके पालन पोपणके लिए, जिनको खुश रखनेके लिए जीवन भर अथक परिश्रम किया वे मरनेपर कोई साथ नही जाते। वह मरकर नरकमे जाता है, और इसे ज्ञान हो जाय जैसे नरकोमे ज्ञान हो जाता है, अवधिज्ञान हो जाय तो वह विचार कर लेता है कि अहो! जिनके लिए मैंने इतने पापकर्म किए वे सब कोई यहाँ नही आये। वस्तुतः मनुष्य दूसरेके लिए पाप नही करता, यह खुदके लिए पाप करता है। यह तो एक कहने भरकी बात है कि हम आजीविका करते है, कमाई करते है तो हम दूसरोके लिए पाप करते है। हमारा इसमे क्या खर्च ? हमे तो सिर्फ दो रोटी चाहिएँ और तन ढाकनेके लिए दो कपडे चाहिएँ और तो हमारा कुछ भी खर्च नही है, हमने तो जो भी पाप किए वे परिवार जनोके लिए किये। तो यह कहना उसका ठीक नही। अरे उसने तो अपनी शातिका उपाय मोह करनेको समझा था, मोह करके जो भी पाप कमाये उनका फल खुदको ही भोगना पडेगा। ऐसे पापपकसे पकित जीव भी इस मत्रके ध्यानसे विशुद्ध हो जाते है और ससारके सकटोसे मुक्ति पा लेते है।

(पदस्थध्यान वर्णन प्रकरण ३८)

अमावेव जगत्यस्मिन् भव्यव्यसनवान्धव ।
अमु विहाय सत्त्वाना नान्य कश्चित्कृपापरः ॥१९३६॥

महामंत्रकी भव्यव्यसनबान्धवता—भव्य जीवोको आपत्तिके समय यही मत्र इस लोक मे मित्र है। सभीकी प्राय यह प्रकृति है कि जब कभी कोई आपत्ति आती है तो वह परमात्माका स्मरण करता है, राम राम, अरहत सिद्ध कहते है अथवा णमोकार मत्र पढते है, तो उस समय इस मत्रके स्मरणसे ज्ञान और वैराग्यके कारण चूंकि उनका उपयोग ढला है इस कारण उन्हे शान्ति प्राप्त होती है। इससे पुण्यरस बढता है और पापरस घटता है। नवीन पुण्य बँधता है और पुराने पाप नष्ट होते है। तो आपत्तिके समय यही मत्र बधुत्वका काम करता है। यही मत्र है, इसके अतिरिक्त अन्य भावोमे यह सामर्थ्य नही है। जो भी दु खी हैं वे अपने भावोसे दु खी हैं। उन दु खोको दूर करनेके लिए ऐसे अच्छे भाव बनाना है कि जिससे वे दुःख मिट जायें। खोटे भावोकी जगह शुद्ध भाव लायें, मोह भरे ज्ञानकी जगह

निर्मलताका ज्ञान लायें तो वे सारी आपत्तिया शान्त हो सकती है। सवका रक्षक एक यह महामत्र है। योगीजन भी सर्व कुछ वैभव छोडकर जंगलमे रहकर इस ही मत्रका ध्यान करते रहते है और इस मत्रमे जिनका स्वरूप वताया गया है उस स्वरूपका ही ध्यान करते हैं। वह स्वरूप अपने ही स्वरूपके समान है। सो उस स्वरूपके गुणस्मरणके द्वारा अपने आपके स्वरूप तक पहुचते है। यही काम करने योग्य भी है। गृहस्थ लोग तो अन्य पचासो प्रकारके काम करते है पर एक इस कामसे दूर रहते है। इतना जीवन गुजर गया, आप ही विचार कर लीजिए कि क्या कभी इस करने योग्य कार्य की ओर भी ध्यान दिया है ? अव अमुक काम करना है, अव अमुक काम करना है यही वात चित्तमे वसाये रहे। अनेक काम कर डाले इस जीवनमे, पर एक इस करने योग्य कार्यको नही किया। ज्ञानी ध्यानी योगी जनोका तो केवल एक यही कार्य करनेको रह गया है सो उनका लक्ष्य इसी कार्यका रहता है, वह कार्य है आत्मानुभवका कार्य। यही कार्य वे योगी जन किया करते है। यह मै ज्ञानमात्र आत्मा हू ऐसा दृष्टिमे लेकर उस आत्माको अपने उपयोगमे चिरकाल तक वनाये रहना, यही काम केवल है उनके सामने। यह आत्मानुभवका काम कोई तो साक्षात् कर लेते हैं। दृष्टि दी अपने मे अपना स्वरूप निरखा और सव कुछ प्रत्यक्ष जानते रहते है। कभी पचनमस्कार मत्रमे पचपरमेष्ठियोके स्वरूपका स्मरण किया और उस गुणस्मरणके माध्यमसे अपने आपके स्वरूप को दृष्टिमे लेते रहते है, यो केवल एक ही काम साधुवोको करनेको पडा हुआ है—आत्मानुभव करना। तो यह कोई काम नही पडा, एक ऐसी परिणति बनाये रहने की वात उनके पडी रहती है। तो यह महामत्र सब जीवोका रक्षक है, सर्वप्रकारकी आपत्तियोमे यह मत्र रक्षक है। साधुवोको तो एक विशुद्ध आत्मानुभव बनाये रहनेकी ही धुनि रहती है। केवल आत्मीय सहज आनन्द वना रहे यही उनकी धुनि रहती है। मेरे आत्मीय सहज आनन्द वना रहे उनकी केवल यही वाञ्छा रहती है। उनकी इस वाञ्छाकी पूर्ति होती है इस मत्रके ध्यानमे। तो इस मत्रके ध्यानमे जो जिस वातको चाहता है उसको उस ही बातकी सिद्धि होती है।

एतद्व्यसनपाताले भ्रमत्ससारसागरे।
अनेनैव जगत्सर्वमुद्धृत्य विधृत शिवे ॥१६३७॥

महामंत्रकी उद्धारकता—इस ही मत्रके प्रतापसे यह जीव, जो कि व्यसनोंके बनमे घूम रहा था, दुःख भोग रहा था, जो कि ससारसागरमे डूव रहा था उस जीवको वहाँके दुःखसे निकाल करके मोक्षमे धारण कराता है यही मत्र। इस मत्रके ही प्रतापमे लोग आपत्तियोंसे छूटकर शिवसुखमे पहुंच जाया करते है। जरा इतने वड़े समस्वरसे विशुद्ध परिणाम सहित और पचपरमेष्ठियोके स्वरूप स्मरण सहित णमोकारमत्रका कोई ध्यान करे या सम

स्वरसे उच्चारण करे तो उस उच्चारणके समय ही बडे-बडे पाप व्यसन दूर हो जाते हैं और अन्तरङ्गमे विशुद्धज्ञानकी जागृति होने लगती है, तो यह महामत्र जीवको ससारसे उद्धार करके मोक्ष सुखमे पहुचा देता है, इससे बढकर और कोई लाभकी बात नही है। सदाके लिए ससारके सकट छूट जायें, यह जन्म मरणका चक्र मिट जाय तो इससे भी बढकर कुछ और सारभूत बात हो सकती है क्या ? जिसको लोग बडा भला समझते है, समारोह मनाते हैं, बच्चा पैदा हो तो लोग बडी खुशी मनाते है पर यह नही जानते कि पैदा होना तो इस जीव के लिए कलक है। जो भी जीव पैदा हो वह कर्मोको बाँधता है और ससारमे रुलता है तो यह तो उस जीवके लिए एक कलककी बात है। जरा इस बातका भी तो स्मरण करो कि यदि यह मैं आत्मा केवल आत्मा ही आत्मा होता, शरीरसे बँधा हुआ न होता, रागादिक विभाव मेरे साथ न होते, अन्य किसी भी प्रकारका सम्बन्ध न होता तो फिर किसी भी प्रकार का कोई कष्ट न था, आनन्द ही आनन्द था। सम्यग्ज्ञानके जगने पर उस आनन्दकी बाट जोहता रहता है ज्ञानी, इस कारण वह प्रसन्न रहा करता है, दुःख नही मानता है। कुछ भी हो जाय बाहरमे, धनका घाटा अथवा किसी इष्टका वियोग व अनिष्टका सयोग, तो इन सभी स्थितियोमे वह ज्ञानी पुरुष उसका मात्र ज्ञाताद्रष्टा रहता है, यह जानता है कि ये सर्व चीजें मेरी नही है, मेरे स्वरूपसे बिल्कुल पृथक् बातें है। इनसे मेरे आत्माका कुछ भी नाता नही है। यह तो ससार है, जो था, सो है और सो ही रहेगा। इस ससारका सही स्वरूप अपने ज्ञानमे आ जाय, ज्ञानप्रकाश जग जाय, अपने आपके स्वरूपकी सभाल करले तो अपना उद्धार हो जायगा। तो इस मत्रके प्रतापसे जीव दुःखोंके आतापसे निकलकर ससारसागरमें जो यह डूब रहा था उससे निकलकर मोक्षमे पहुच जाता है, यह इस मत्रका प्रताप है। मत्र जपा, स्वरूप का स्मरण किया, ज्ञान और वैराग्यका भाव अपने चित्तमे समाया, सर्व पदार्थोंसे उपेक्षा हुई, अपने आपको ज्ञानमात्र अनुभव किया, केवल ज्ञानमात्र मैं हूँ यही अनुभव मेरे चिर काल तक रहे तो इसके प्रतापसे यह आत्मा केवल रह जाता है, ज्ञानमात्र रह जाता है। तो इस महान ससारके सकटोसे सदा मुक्त हो जानेकी बात इस णमोकार मत्रसे हुई। तो णमोकार मत्रके प्रतापसे बडे-बडे व्यसन और ससारके सकट नष्ट हो जाते है।

कृत्वा पापसहस्राणि हत्वा जन्तु शतानि च।
अमु मन्त्र समाराध्य तिर्यञ्चोऽपि दिव गता ॥१९३८॥

महामंत्रके प्रसादसे तिर्यञ्चोका भी स्वर्गमे उपपाद—पशु पक्षी भी जो कि हजारो पाप करते रहते है, सैंकडो जतुवोको मार डालते हैं, अर्थात् ऐसे हजारो पाप करके भी, सैंकडो जतुवोको मार करके भी अन्तमे जब उन्हे ज्ञान जगता है और इस णमोकार मत्रकी आराधना उन्हे मिलती है, जिस रूपमे भी हो आखिर पशु पक्षियोंके भी मन है और वे उतनी बात सोच

सकते है जितनी कि यह मनुष्य अपने स्वानुभवके लिए आवश्यक समझता है, सो वे पशु पक्षी भी इस मत्रकी आराधना करके स्वर्गमे जन्म लिया करते है। जीवन्धर कुमारने एक कुत्तेको मरते हुए देखा था। कुछ लोग यज्ञ कर रहे थे, कुत्ता आया और उन लोगोने उसे असगुन समझकर खूब पीटा, वह यज्ञ विधिवत् हो रही थी, तो उस मरते हुए कुत्तेको जीवन्धर कुमार ने णमोकार मत्र सुनाया था। उन शब्दोंके निमित्तसे उसका ऐसा कुछ शुभभाव हुआ कि वह मरण करके देव गतिमे गया। यही तो बतलाया है कि सम्यक्त्वके प्रतापसे, सदाचार सम्यग्ज्ञानके प्रतापसे पशु पक्षी भी देवगतिको प्राप्त कर लेते है और मिथ्यात्वके प्रतापसे, अन्याय दुराचारके प्रतापसे, खोटे भावोके कारण देव भी मरकर एकेन्द्रिय हो सकते है और पशु पक्षी भी हो सकते है। दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रियके जीवोमे जन्म नही होता देवोका। या एकेन्द्रिय बनेंगे या पञ्चइन्द्रिय बनेंगे। वे विकलत्रय नही होते। तो सम्यग्ज्ञानकी ऐसी अपूर्व महिमा है। इस जीवका शरण है तो केवल सम्यग्ज्ञान ही शरण है, अन्य कुछ भी तत्त्व शरण नही है इस जीवका। खूब निरख लो। जैन शासनमे सर्व विधिया बतायी गयी है। सर्वज्ञानो से परिपूर्ण है जैन श्रुत। ऐसा जिन आगम जो वीतराग ऋषियोको बडे अनुभवसे प्राप्त हुआ जो स्वरूप है उसका चित्रण है, दिग्दर्शन है, पर इन ग्रन्थराजोसे हम आप लाभ न उठायें तो यह कितनी भूलभरी बात है। इस ज्ञानस्वरूपकी भावनामे हम अधिक समय न लगायें, व्यर्थ की गप्प-सप्पमे ही अपना सारा समय लगाते रहे तो यह कितनी असगत बात होगी? समय तो गुजरता ही जा रहा है, जो भी समय गुजर चुका, आप अनुभव भी कर रहे होगे कि उस ४०–५० अथवा ६० वर्षका जीवन कैसे गुजर गया, यो ही शेष रहा समय भी गुजर जायगा, कुछ पता न पडेगा। गुजर जानेके बाद फिर यहाँकी कौनसी चीज अपने पास रहेगी सो तो विचार कीजिए। जिन परिजनोके पीछे इतना परेशान हो रहे है, जिस वैभवके पीछे रात दिन होड लगा रहे है, जिस नामवरीके पीछे रात दिन बेचैन रहा करते है वे कोई भी चीजे साथ न रहेगी। जीव तो मरकर अकेला ही किसी गतिमे चला जायगा। यहाँका कुछ भी साथ न ले जायगा। हाँ जो पुण्य व पापकर्म किए उनका ही फल साथमे ले जायगा। इस जीवका यहाँ कोई भी शरण नही है। हाँ अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु--इन पचपरमेष्ठियोका शरण ही इस जीवका वास्तविक शरण है। इस जीवको अपने उद्धारके लिए चाहिए क्या? इसे तो वह साधन मिले जिस साधनके द्वारा यह अपने कैवल्यकी प्राप्ति करे। तो वह सब मार्ग भरा हुआ है इस णमोकार मत्रमे। इसमे सभी ज्ञान गर्भित है, इस कारण णमोकार मत्रके प्रतापसे यह जीव यद्यपि बहुतसे पापोसे मलिन होता आया है फिर भी इस मत्रके ध्यान के प्रतापसे उन पापोसे व्यसनोसे छूटकर यह जीव उत्तम गतिमे जन्म लेता है अथवा मुक्त होता है।

शतमष्टोत्तर चास्य त्रिशुद्धया चिन्तयन्मुनिः ।
भुञ्जानोऽपि चतुर्थस्य प्राप्नोत्यविकल फलम् ॥१९३९॥

योगशुद्धिपूर्वक चिन्तन करने वाले मुनि आहार करते हुए भी उपवास जैसे तपकी सिद्धि—मन वचन कायको शुद्ध करके अर्थात् मनसे सर्व प्राणियोका हित सोचना, वचनोंसे हित मित प्रिय वचन बोलना, और अपने आपमे अपनी विशुद्धि बढे ऐसा मन, वचन, कायको प्रवर्ताना, इसका नाम है योगसिद्धि । तो इन तीन योगोको सिद्ध करके इस मत्रका १०८ बार चिन्तवन करे, तो वह मुनि आहार करता हुआ भी एक उपवासके पूर्ण फलको प्राप्त होता है । उसका मतलब यह है कि णमोकार मत्रका ध्यान बनाये रहे तो अपने ज्ञानके निकट है । एक व्यवहारदृष्टिसे लिखा है कि एक उपवासका फल है मत्र जापसे । पर उसका कोई इसी लक्ष्यको बनाकर १०८ बार जाप करे कि हमको तो इससे एक उपवासका फल मिल जायगा तो यह बात ठीक नही है । अपने मन, वचन, कायको शुद्ध करके स्वपर-हितका अभिप्राय रखने वाले योगीके जब पचपरमेष्ठीके गुणस्मरण पूर्वक मत्रका ध्यान होता है उससे एक उपवासका क्या, अनेक उपवासका फल मिलता है । १०८ बार जाप करनेकी बात इसलिए कही गयी है कि जीवको १०८ प्रकारके पाप लगते है—वे किस तरह ? समरम्भ, समारम्भ और प्रारम्भ । तीन पाप तो ये है । पाप कार्यका चिन्तवन करके मनमे सकल्प बनाना कि मैं इसे करूँगा, यह समरम्भ है, पापके साधनोको जुटा लेना, सचय कर लेना जिससे कि पाप लगे वह समारम्भ है, और पापके कार्यको करने लगना यह प्रारम्भ है । ये तीन पाप तो हुए, और य तीनो पाप मनसे भी किए जाते, वचनसे भी किए जाते, और कायसे भी किए जाते तो ये कुल ९ भेद हो गये । मनसे समरम्भ, मनसे समारम्भ और मनसे प्रारम्भ, वचनसे समरम्भ, वचनसे समारम्भ और वचनसे प्रारम्भ, कायसे ममरम्भ, कायसे समारम्भ और कायसे प्रारम्भ । यो ९ भेद हो गए । इनको करना, कराना और अनुमोदना करना इन तीन भेदोंसे ९ × ३ = २७ भेद हो गए । इन २७ प्रकारके पापोको कोई क्रोधवश करता है, कोई मान, माया अथवा लोभवश करता है तो ये २७ × ४ = १०८ भेद हो गए । तो ये १०८ प्रकारके पाप मेरे नष्ट हो ऐसा उद्‌देश्य बनाकर मत्रका १०८ बार जाप करते हैं, और बहुत, ही विशुद्ध भावोसे जाप करते है तो उससे एक उपवासके फलकी ही प्राप्ति नही होती है बल्कि मुक्तिपलकी प्राप्ति होती है । यो णमोकार मत्रकी महिमा और ध्यानके लिए प्रेरणाका उपदेश किया ।

स्मर पञ्चपदोद्भूता महाविद्या जगन्नुताम् ।
गुरुपञ्चकनामोत्था षोडशाक्षरराजिताम् ॥१९४०॥

षोडशाक्षर पञ्चनमस्कार मंत्रके विचिन्तनका आदेश—हे मुने ! पचपदोंसे उत्पन्न

हुई जगतके द्वारा वंदनीय पंच गुरुवोंके नामसे उत्पन्न हुई जो महाविद्या है, जिसमे सोलह अक्षर शोभनीय है उस महाविद्याका स्मरण कर अर्थात् सोलह अक्षर वाले मंत्रका ध्यान कर। वह मंत्र कौनसा है ? सोलह अक्षर वाला वह मंत्र है—अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्व साधुभ्यो नमः। इस मंत्रमे उन ५ गुरुवोंका नाम आया है। प्रथम अरहंत, जिसका संस्कृतमे अरहद् शब्द निकलता है, दूसरे गुरराज है सिद्ध, तीसरे है आचार्य, चौथे है उपाध्याय और ५ वें है सर्व साधु। इनका नाम लेकर इनको नमस्कार किया गया है। इस मंत्रका नाम है महाविद्या मंत्र। जो पहिले णमोकार मंत्र बताया था, जिसमे ५ पद थे, उन ५ पदोंसे यह मंत्र उत्पन्न हुआ है। णमोकार मंत्रमे भी ५ पदोके द्वारा अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधुवोंका स्मरण किया। इस मंत्रमे भी उन्ही ५ पदोका ही स्मरण है। तो यह सोलह अक्षरी वाली महाविद्या है। पहिला मंत्र बताया था ह्रँ। यह था अनाहत मंत्र। दूसरा मंत्र कहा था ॐ, इसका नाम है प्रणव मंत्र, इसके बाद आया णमोकारमंत्र और दर्शनज्ञानचारित्र तपका नमस्कार। वह था पंचगुरु नमस्कार मंत्र। अब इस मंत्रका नाम है महाविद्या।

अस्याः शतद्वयं ध्यानी जपन्नेकाग्रमानसः।
अनिच्छन्नप्यवाप्नोति चतुर्थतपसः फलम् ॥१६४१॥

षोडशाक्षरवाले महाविद्यामन्त्रके प्रसादका पावन फल—इस महाविद्या मंत्रमे पंच परमेष्ठियोको नमस्कार किया है। यदि इसके स्वरूपको ध्यानमे रखकर अर्थात् इसका वह स्वरूप आकार उसका चित्रण उपयोगमे करके इस मंत्रका जाप किया जाय तो यह महान फल को प्रदान करता है। प्रथम अरहंत नाम है। अरहंत नाम लेते ही आकाशमे ऊपर शोभायमान समवशरणमे विराजमान चतुर्मुख जिनेन्द्र भगवानका ध्यान हो, और सिद्ध कहते ही लोक के ऊपर शिखरके अन्तमे केवल आत्मा ही आत्मा अमूर्त ज्ञानदर्शन सम्पन्न निर्लेप नीराग सर्व विकारोसे रहित, शरीरसे भी रहित सिद्ध प्रभुका स्मरण हो, साथ ही सिद्ध शब्द बोलें। इसी तरह बनोमे यत्र तत्र कुछ साधुवोंके बीच उच्च आसनपर आचार्य देव विराजमान है और वे मुनिके हितकी दृष्टिसे उन्हे शिक्षा दीक्षा प्रायश्चित आदिकका संदेश देते है। इस प्रकारका चित्रण उपयोगमे करके आचार्य शब्द बोले, और बनोमे यत्र तत्र १०–५ मुनियोके बीच उपाध्याय महाराज विराजे है और उन्हे श्रुतका अध्ययन कराते है, इस प्रकारके चित्रण सहित उपाध्याय शब्द बोलें, और गुफावोमे, बनोमे, पर्वतोके शिखरपर, नदीके तीरपर विराजमान, उपसर्गोको सहते हुए, परीषहोपर विजय प्राप्त करते हुए, आत्मध्यानमे रत साधुवोंका स्मरण करे और तब फिर सर्व साधु बोलें। यो भावसहित इस मंत्रका जो २०० बार ध्यान करता है वह पुरुष न चाहता हुआ भी एक उपवासके फलको प्राप्त होता है। अर्थात् कोई साधु ऐसी चाह करके मंत्रकी आराधना नही करता कि इसका जाप करनेसे हमे एक उपवासका

लाभ होगा सो इसका जाप करें, किन्तु किसी भी फलकी चाह न करके, प्रभुके गुणोकी भक्ति से प्रेरित होकर अपने आपका जगतमे कही कुछ शरण नही है, एक मात्र ये पचगुरु ही शरण है और परमार्थसे अपने ज्ञानस्वरूप आत्मतत्त्वका आराधन ही शरण है ऐसा परिणाम करके पच गुरुवोका गुण स्मरण किया जाता है। इस प्रकार जो २०० बार मत्रका जाप करता है वह एक उपवासका फल प्राप्त करता है। प्रथम तो यह बात है कि विना हितकी ओर दृष्टि हुए मत्रकी ओर धुनि नही बनती है, तो जिसे आत्महितकी दृष्टि हुई, प्रथम तो उसने आत्महित की दृष्टि बनाते ही बहुतसा कल्याण प्राप्त कर लिया। ऐसा पुरुष अपने समयको व्यर्थ नही गवाता। सामायिक स्वाध्याय आदिक जो भी कर्तव्य है उनको करके जो भी समय वचता है वे प्रभुके गुण स्मरणमे अपना समय व्यतीत करते है।

पदस्थ ध्यानके सहारे प्रभुस्वरूप स्मरणका कर्तव्य—आजकलके समयमे जो लोग ऐसा अपनेको बेकार समय वाला सोचते है कि मेरा समय तो व्यर्थ बहुत जा रहा है, कोई काम ही नही है, व्यापार भी विशेष नही है, समय बहुतसा खाली है, तो वे अपने इस खाली समयका सदुपयोग क्यो नही कर लेते ? अपने खाली समयमे इस मत्रका ही ध्यान किया करे। उस मत्रके ध्यानसे उन्हे शान्ति भी प्राप्त होगी, समृद्धि भी प्राप्त होगी, पुण्यफल भी प्राप्त होगा। लेकिन जब चित्तमे ज्ञानकी, आत्महितकी धुनि नही है तो अन्य-अन्य प्रकारके सक्लेश करके अपना समय गुजारेगे। लोग तो आजीविकाके कार्योंमे ही इतना व्यस्त है कि कामके मारे खाने तककी भी फुरसत नही मिलती, धर्म कर्मकी बात तो जाने दो। लोग तो समझते है कि यह कमाई हमारे कमानेसे हो रही है पर इस बातको भूल जाते है कि यह कमाई हमारे हाथ पैरोके पटकनेसे नही हो रही है, बल्कि जो भी कमाई हो रही है वह धर्म कर्मका प्रताप है। अरे आपसे भी अधिक हृष्ट पुष्ट और अच्छी बुद्धि वाले लोग गरीब दीन हीन दशामे देखे जाते है। वे क्यो नही आपकी ही तरह धनिक बन जाते ? अरे उन्होने धर्म कर्मका ध्यान नही दिया। आप निश्चित समझें कि धर्मसे प्रतापमे यह वैभव प्राप्त होता है। अपना उपयोग धर्म कार्योंमे विशेष लगे तो पुण्यरस बढेगा और यदि धर्मकार्योंमे अपना उपयोग न लगा तो यह पुण्यरस सूख जायगा और जो पूर्व बद्ध पुण्य हे उसका फल भोगनेके बाद फिर क्या हाथ रहेगा ? हर स्थितियोंमे मनुष्योका कर्तव्य है कि वे प्रभुस्वरूपको न भूलें, अपने आत्मतत्त्वका यथार्थ ध्यान बनाये रहे।

विद्या षड्वर्णसम्भूतामजय्या पुण्यशालिनीम्।
जपन्प्रागुक्तमभ्येति फल ध्यानी शतत्रयम ॥१६४२॥

षड्वर्णमयी मंत्रके जपनका पावन फल—अब ६ अक्षरोका मत्र है। मत्र चाहे वाक्यो मे रचा गया हो, चाहे नाम मत्रमे रचा गया हो, उनके गुण स्मरणके लिए, जिस नामके लेने

से, जिन शब्दोके बोलनेसे आत्माका ध्यान प्रभुस्वरूपपर पहुचता हो वे सब मत्र कहलाते है। यह ६ अक्षरो वाला मत्र है अरहत सिद्ध। इसमे केवल नाम लिया गया है, कोई वाक्य नही है और न कोई पल्लव आदिक लगा है, तो ऐसी यह षट्वर्णोसे उत्पन्न हुई विद्या जो किसीसे जीती जानेमे समर्थ नही है ऐसी विद्याका ३०० बार जाप करने वाला पुरुष एक उपवासके फलको प्राप्त होता है। ६ अक्षरो वाली विद्या पुण्यको उत्पन्न करने वाली है, पुण्यसे शोभित है। बहुतसे लोग इसका जाप इस कारण जल्दी स्वीकार कर लेते है कि उसमे समय कम लगता है। और इसका इतना जल्दी-जल्दी जाप करते है कि फिर अ सि खाली रह जाता है, बीचके सभी अक्षर उड जाते है। लेकिन गुणस्मरणपूर्वक इनके स्वरूपका चित्रण करते हुए इस मत्रको जपा जाय तो यह धीरतापूर्वक जपा जायगा और बडी भावना सहित होगा। इस मत्रके ३०० बार जपनेसे एक उपवासका फल बताया है। यह सब एक व्यवहारिक कथन है। फल तो भावोके अनुसार मिलता है। इतना भी फल मिले अथवा इससे भी कम फल मिले। भावपूर्वक प्रभुका नाम स्मरण करनेसे, अपने आपके आत्माके सहजज्ञानस्वरूपका ध्यान रखनेसे एक क्या अनेक उपवासोका फल प्राप्त होता है। जो एक उपवासके फलकी बात है तो उसका अर्थ यह लगाना कि उपवास करनेमे जैसी कर्मनिर्जरा होती है वैसी ही कर्म-निर्जरा इस मत्रका ध्यान करनेसे होती है।

चतुर्वर्णमय मन्त्र चतुर्वर्गफलप्रदम्।
चतु शत जपन्योगी चतुर्थस्य फल लभेत् ॥१६४३॥

चतुर्वर्णमय "अरहंत" मंत्रके जापका पावन फल—अब ४ अक्षर वाला मत्र है अरहत, यह मत्र धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष रूप पर्यायफलको प्रदान करने वाला है, जो पुरुष इसका ४०० बार जाप करते है उनको एक उपवासका फल प्राप्त होता है। अरहत शब्दके दो उच्चारण है अरहत और अरिहत। अरहतका अर्थ है पूज्य पुरुष और अरिहत का अर्थ है जिसने कर्मरूप दुश्मनोको खतम कर डाला है ऐसा पुरुष। तो दोनो ही उच्चारण योग्य है, पर अरहत शब्द का प्रयोग अधिकतर होता है। तो इस अरहत मत्रका ४०० बार ध्यान करनेसे एक उपवास का फल प्राप्त होता है।

वर्णयुग्म श्रुतस्कन्धसारभूत शिवप्रदम्।
ध्यायेज्जन्मोद्भवाशेषक्लेशविध्वसनक्षमम् ॥१६४४॥

द्विवर्णी "सिद्ध" मंत्रके जापका फल सकलसंकटपरिहार—अब दो वर्ण वाला मत्र है—सिद्ध। यह मत्र श्रुत स्कधका सारभूत मत्र है, द्वादशागका सारभूत मत्र है। जीवकी सर्वोत्कृष्ट अवस्था है सिद्ध अवस्था। जहाँ सर्वप्रकारसे विशुद्धि प्राप्त हुई है, यद्यपि आत्मगुणो की विशुद्धि अरहत अवस्थामे ही प्रगट हो चुकी थी, किन्तु थोडासा जो ऊपरी लेप है, शरीर

से रहित और शरीरके कारणभूत कर्मसे रहित, अघातिया कर्मोके लेपसे भी रहित यह सिद्ध अवस्था है। तो यह सिद्धकी अवस्था इस जीवकी सर्वोत्कृष्ट अवस्था है, तो यही मंत्र द्वादशांग का सारभूत है अर्थात् समस्त द्वादशांगका निचोड यही है कि सिद्ध पदवी प्राप्त हो जाय। यह सिद्ध नामक मंत्र मोक्षका देने वाला है। इसका ध्यान रखनेसे अर्थात् सिद्ध प्रभुका जो वास्तविक स्वरूप है केवलज्ञान पुञ्ज शुद्ध ज्ञान ज्योति मात्र, उसका ध्यान करने से चूंकि वहाँ कोई ध्वनिका ख्याल नही है, एक सिद्ध स्वरूपका ख्याल है, सो वह स्वरूप व्यक्तिगत ख्यालसे परे होनेसे एक आत्माके स्वरूपके साथ समन्वित होता है, अर्थात् जैसा वह स्वरूप है वैसा ही आत्माका स्वरूप है। उस सिद्धस्वरूपका ध्यान करनेसे अपने आत्माके सहज स्वरूप का ध्यान बनता है और यह शुद्ध सहज स्वभावका आलम्बन मोक्षका देने वाला है। यह सिद्ध नामक मंत्र संसारसे उत्पन्न हुए समस्त क्लेशोंका नाश करनेमे समर्थ है। संसारके क्लेश क्या हैं? बाह्यपदार्थोंमे दृष्टि होना। सभी दुःखी हैं, उनकी आप कहानी सुनें तो अन्तमे आपको यही मिलेगा कि उन सबकी परमे दृष्टि है। तो जो सिद्ध स्वरूपका ध्यान करते हैं उनकी परमें दृष्टि नही रहती क्योकि वह सिद्धका स्वरूप अपने आत्माका ही तो स्वरूप है। तो इस सिद्ध स्वरूपका ध्यान करनेसे संसारके क्लेश मिटेंगे और इस विधिसे कर्मोंकी निर्जरा होती है सो निर्जरा होते होते जब समस्त कर्मोकी निर्जरा हो चुकती है, मोक्ष हो जाता है, छुटकारा मिल जाता है तो उस समय सारे क्लेश उसके समाप्त हो ही गए। इस कारण योगी पुरुष इस सिद्ध मंत्रका ध्यान करें।

अवर्णस्य सहस्रार्द्धं जपन्नानन्दसंभृतः।
प्राप्नोत्येकोपवासस्य निर्जरा निर्जिताशयः ॥१६४५॥

"अ" मंत्रके जापका पावन फल—जिस मुनिने अपने चित्तको वश किया है ऐसा मुनि बडे आनन्दसे निःशल्य होकर अ इस वर्ण मंत्रका ५०० बार जाप करता है वह एक उपवासका फल प्राप्त करता है। अ यह भी एक मंत्र है। इसमे एक तो अरहंतका नाम आ गया। किसी भी नामका जो आदि अक्षर है उसको ही बोल दें तो पूरा नाम समझा जाता है। दूसरे— अ का अर्थ है ब्रह्म। अ का अर्थ है सृष्टा। तो सृष्टा कौन है, रचना करने वाला कौन है? यह आत्मा। यह चेतन अपने चेतनकी सृष्टि कर रहा है। अ यह सब वर्णोंका आदि है। समस्त वर्णोंके आरम्भमे अ शब्द है। अ का सर्व स्वरोंसे भी अधिक प्रयोग होता है। शास्त्रोमें देख लीजिए समस्त श्रुतोमे सर्व मंत्रोकी अपेक्षा अ शब्दका प्रयोग अधिक होता है। जब कभी व्यञ्जन बोला जाता है तो उस व्यञ्जनके साथ अ बोला जाता है। जैसें कोई स्वर बोला जायगा तो वह अ अक्षरकी मदद लेकर बोला जायगा। अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अः ऋ ॠ ऌ ॡ। इनकी सहायतासे बोला जाता है। हाँ अ अ जरूर ऐसे शब्द हैं

जो किसी भी शब्दके साथ बोल सकते है । लेकिन वे भी अलग वर्ण नही है । ये वर्णके साथ बोले गए है । चाहे किसी भी शब्दके साथ अनुस्वर विकलर्ग लगे, किन्तु वहाँ दो स्वर नही माने जाते । क्योकि क ख ग घ आदिक समस्त व्यञ्जन ये स्वरकी सहायता बिना नही बोले जा सकते । तो जब इन व्यञ्जनोका कोई उच्चारण करता है और दूसरेको बताता है, ये है ३३, तो उनको जब बोलेगा तो क ख ग घ आदिक रूपसे बोलेगा । कोई की खी गी घी इस तरहसे तो नही बोलता । तो व्यञ्जनोका प्रयोग यद्यपि स्वरके लगाये बिना नही होता फिर भी व्यञ्जनोका कोई पुरुष दिग्दर्शन कराये तो अ शब्द लगा करके आया करता है, और भी अनेक ऐसे कारण है जिससे इस अ का बडा महत्त्व है । यह श्रुत शास्त्रोका प्रतिनिधि है, यह अर-हत शब्दका द्योतक है, यह शिवदृष्टिका सकेत करने वाला है । ऐसे केवल अ अक्षर वाले मत्र को जो ५०० बार जपता है उसके एक उपवासके कर्म निर्जराके बराबर फलकी प्राप्ति होती है ।

एतद्धि कथित शास्त्रे रुचिमात्रप्रसाधकम् ।
किन्त्वमीषा फल सम्यक् स्वर्गमोक्षैकलक्षणम् ।।१६४६।।

मंत्रोके ध्यानका अलौकिक फल—शास्त्रोमे जो इस मत्रका एक उपवास रूप फल कहा है सो केवल उस मत्रकी रुचि करानेके लिए है । मत्रकी रुचि जगे और कुछ थोडे रूपमे उसकी महिमा बतायी और फल भी प्राप्त होता है उसे बताया, इसके लिए कहा गया है, किंतु वास्तवमे तो इस मत्रका उत्तम फल स्वर्ग और मोक्ष ही है । मत्रका ध्यान करने वाला पुरुष आत्मस्वरूपके ध्यानपर पहुच जाता है, और मत्रका उद्देश्य भी यही बनाना चाहिए कि हमको आत्माकी उपलब्धि हो, निर्वाणकी प्राप्ति हो । ससारके भोग साधनोकी वाञ्छा रखकर मत्र जाप करनेसे आत्माकी सिद्धि नही होती है । ये समस्त भोगसाधन आत्माका अहित करने वाले हैं, परिग्रहोका सग कषायोकी वृद्धि कराता है । परिग्रहके पीछे क्रोध भी होता, मानकषाय भी बढती, मायाचार भी करना पडता, लोभ कषाय भी प्रबल होती । तो यह परिग्रह वास्तव मे जीवके लिए अहितकारी है । तो इन परिग्रहोकी भोगसाधनोकी मनमे आकाक्षा न रखकर जो इस मत्रका जाप करता है वह पुण्यके फलको प्राप्त करता है, बडी-बडी समृद्धिया उसे प्राप्त होती है । यह प्राकृतिक नियम है कि जो पुरुष धर्ममे चित्त लगायेगा उसके सासारिक कष्ट टलेंगे, पुण्योदय आयगा, सर्व समृद्धिया प्राप्त होगी । जैसे कोई पुरुष अपने किसी मित्रकी बडी सेवा करता है तो वह पुरुष भी उस मित्रके द्वारा कभी नाना प्रकारकी वैभव सम्पदायें प्राप्त करता है । हाँ यदि स्वार्थवश सेवा करता है तब तो उसको अच्छा फल न मिलेगा, पर नि स्वार्थ सेवाभावकी दृष्टिसे सेवा करता है तो अवश्य ही उस मित्रके द्वारा वह अच्छे-अच्छे सुखके साधन प्राप्त करता है । इसी प्रकार इस मत्रका जाप जो बिना किसी प्रकारकी चाहके

करता है तो उसे अवश्य ही अनेक प्रकारकी समृद्धिया, अनेक प्रकारके सुखके साधन प्राप्त होते है। किसी प्रकारके भोग साधनोकी चाह करके यदि कोई इस मन्त्रका जाप करता है तो उसे उन सुखसाधनोकी प्राप्ति नही होती। जो विशुद्ध मनसे इस मन्त्रका जाप करता है वह इस मन्त्रके ध्यानसे स्वर्ग और मोक्षके सुखको प्राप्त करता है।

पञ्चवर्णमयी विद्या पञ्चतत्त्वोपलक्षिताम्।
मुनिवीरैः श्रुतस्कन्धाद्बीजबुद्ध्या समुद्धृताम् ॥१९४७॥

"असिआउसा" पञ्चवर्णमय मंत्रके ध्यानका आदेश—अब ५ वर्ण वाली विद्याको बता रहे है। वे ५ अक्षर है अ सि आ उ सा। इसमे अरहतका अ, सिद्धका सि, आचार्यका आ, उपाध्यायका उ तथा साधुका सा। ये अक्षर है। असिआउसा नम । यो बोला जायगा, और इसके साथ ही साथ पच बीजाक्षर भी होते हैं ह्रा ह्री आदि। ये ५ बीजाक्षर अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु, इन पच बीजाक्षरोको और उन पच नाम अक्षरोको एक बार जपनेके लिए पूर्णरूप होगा—ॐ ह्रा ह्री । असि आ उ सा नम । इन भिन्न-भिन्न रूपोंमे उपासनाकी दृष्टि है। यह मत्र द्वादशाग मत्रमे सारभूत अनुभव कर निकाला गया है। इस पचाक्षरी मन्त्रका जो ध्यान करता है उसके आत्मामे विशुद्धि प्रगट होती है। जब तक वह ससारमे है तब तक नाना समृद्धियोको प्राप्त होता है।

अस्या निरन्तराभ्यासाद्वशीकृतनिजाशय ।
प्रोच्छिनत्त्याशु नि.शङ्को निर्गूढ जन्मबन्धनम ॥१९४८॥

पञ्चवर्णमय मत्रके अन्तर्ध्यानसे जन्मबन्धनका छेदन—यह पूर्वोक्त जो पचाक्षरमयी विद्या है उसमे निरन्तर अभ्यास रखनेके कारण जिस मुनिने योगसे अपने चित्तको वश कर लिया है ऐसा वह योगी नि शक होकर अति कठिन ससाररूपी बधनको शीघ्र ही काट लेता है। ससारका बन्धन है जन्म। ससारका अर्थ है ससरण, परिभ्रमण, इस ही का नाम ससार है। अरहत भगवानका आयुक्षय तो होता है उसे मरण कह लीजिए, भक्तिके समयमे निर्वाण कह लीजिए और स्वरूप दृष्टिसे पडितपडितमरण कह लीजिये। आखिर आयुका क्षय ही तो होता है, लेकिन मरणके बाद जन्म नही होना है, इसलिए उन्हे ससारी नही कहते है। जन्मका ही नाम ससार है। लोग जन्ममे बडा समारोह मनाते हैं तो किसमे समारोह मनाते ? ससार-बन्धनमे समारोह मनाते या इन शब्दोमे कह लीजिए कि अच्छा यह उल्लू फस गया। जन्म लिया तो बधन हुआ। यो समझ लो जैसे कोई किसी मनुष्यको किसी आपत्तिमे फसा हुआ देखकर खुशी मानते है इसी प्रकार उस पैदा होने वालेको आपत्तिमे फसा हुआ जानकर खुशी मानते है। तो इस मन्त्रका जो जाप करते हैं उन्हे अपने आपके आत्मस्वरूपका स्पर्श होनेके कारण एक उत्साह और बल प्रगट होता है कि जिससे अपनी शक्तिकी महिमाको जान जाते

हैं, और शक्तिकी महिमा जानकर अपने आपके परमार्थ तपश्चरणमे लगता है। मत्र जापका ध्यान भी एक महान अतिशय उत्पन्न करता है, सो हम आप सबको अपने हितकी दृष्टिसे इस मत्रका जाप करना चाहिए और विधिपूर्वक उनका कुछ थोडा बहुत अर्थ समझकर स्वरूप दृष्टि सहित मत्र ध्यान करना चाहिये।

मङ्गलशरणोत्तमपदनिकुरम्ब यस्तु सयमी स्मरति।
अविकलमेकाग्रधिया स चापवर्गश्रिय श्रयति ॥१९४६॥

संगलपदके स्मरणसे अपवर्गश्रीका मिलाप—जो सयमी पुरुष मगल शरण और उत्तम पदोंके समूहका स्मरण करते है, जो एकाग्रचित्त होकर इस समस्त चत्तारि दण्डकका ध्यान करते है वे इस अपवर्गकी श्रीको प्राप्त होते है। मगल, लोकोत्तम और शरण—इन ३ पदोंसे चत्तारिदण्डक बना हुआ है। चत्तारि मगल, अरहता मगल, सिद्धा मगल, साहू मगल, केवली पण्णत्तो धम्मो मगल। यह मगल पदोका समूह है। चार मगल है—अरहत प्रभु मगल है, साधु मगल है, केवल भगवानके द्वारा प्रणीत धर्म मगल है। मगल कहते उसे है जो सुखको लावे और पापोको गलावे। अरहत प्रभु एक ज्ञानके परिपूर्ण विकास है, रागद्वेषका उनमे सर्वथा अभाव है। ऐसे वीतराग और सर्वज्ञ परम आत्मा है, उनके इस स्वरूपका फिर ध्यान करने वाला पुरुष उस उपयोगके कारण अनेक पापकर्मोको दूर करता है, नष्ट करता है और अनेक सुखोको प्राप्त होता है। ये अरहत मगल है, अरहत अवस्थाके बाद अपने आप ही अघातिया कर्मोके नष्ट हो जानेसे और शरीरके सर्वथा दूर हो जानेसे एक सिद्ध अवस्था प्रगट होती है। सिद्ध प्रभु ही गुणोमे अरहत प्रभुकी तरह परिपूर्ण ज्ञान वाले है और रागद्वेष आदिक समस्त विकारोंसे रहित है और शरीरसे रहित और कर्मोसे रहित होनेके कारण ये अत्यन्त निर्लेप हैं, बाह्य लेपसे भी रहित है, उन सिद्ध प्रभुका ज्ञान आत्मीय आनन्दको प्रगट करता है और समस्त पापोको गला देता है, इसलिए सिद्ध मगल हैं। साधु परमेष्ठी ज्ञान और वैराग्य की मूर्ति है। साधु नाम उस आत्माका है जो आत्माके विशुद्ध स्वरूपकी साधना करे। विशुद्ध स्वरूप क्या है ? ज्ञानमात्र। जो अपने आपको ज्ञानमात्र अनुभव करता रहे और इस ही के फलका ज्ञाताद्रष्टा रहे ऐसी स्थिति वाले साधु परमेष्ठी कहलाते है। इन साधु पुरुषोकी सगति, साधु पुरुषोंकी सेवा, साधुके गुणोका ध्यान ऐसे विशुद्ध उपयोगको बनाता है कि जिसके प्रताप से यह उपासक समस्त पापकर्मोंको नष्ट करता है और आत्मीय आनन्दका अनुभव करता है। साधुवोकी उपासनासे उत्पन्न हुआ आनन्द भी एक अद्भुत आनन्द है। साधु पुरुष मगल है। यह सब अन्य आत्मावोकी बात है और ये व्यवहारसे मगल है, इनके ध्यानके प्रसगमे भी जो आत्माका उपयोग विशुद्ध बनता है वह परमार्थ मगल है और उस परमार्थ मगलका कारण होनेसे, विषय होनेसे ये अरहत, सिद्ध और साधु भी मगल कहे जाते है, परमार्थसे तो धर्म

मगल है। जिस धर्मको केवलीभगवानने दिव्यध्वनिमे दर्शाया है वह धर्म केवलीका धर्म नही किन्तु आत्माका धर्म है। पालन करने वाले पुरुषको धर्मी कहते हैं। ज्ञानमात्र अपने आत्माका अनुभव करना और ज्ञानस्वरूपमे अपने उपयोगको मग्न कर देना, यह धर्मका पालन है, यही धर्म मगल है, यही समस्त पापोको नाश करके विशुद्ध आत्मीय आनन्द उत्पन्न करता है।

लोकोत्तमपदस्मरणसे लोकोत्तमपदप्राप्ति—४ पद लोकमे उत्तम है—अरहत लोकमे उत्तम है, सिद्ध लोकमे उत्तम है साधु लोकमे उत्तम है, और केवली भगवान द्वारा कहा गया धर्म लोकमे उत्तम है। इसका मत्र है—चत्तारिलोगुत्तमा, अरहत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साधु लोगुत्तमा, केवली पण्णत्तोधम्मो लोगुत्तमो। यही चार लोकमे उत्तम है। ससारमे समस्त वस्तुवोपर दृष्टि डालो और निर्णय करके देख लो—किस पदार्थका सग हमारे हितमे कारण पडता है ? तो कुछ भी यहाँ नजर न आयगा। धन वैभव परिवार, बन्धु, मित्र जनोका सग तो एक क्षोभका ही कारण बनता है, सत्पथमे ले जानेका कारण नहीं बनता। बाहरमे यदि कोई हमारे सत्पथका कारण बनता है, हमारे हितका निमित्त होता है तो वे हैं अरहत, सिद्ध और साधु। इसी कारण ये लोकमे उत्तम हैं और वैसे भी विज्ञानदृष्टिसे ये लोकमे उत्तम हैं। यह तो व्यवहार कथनकी बात है। परमार्थसे तो केवली भगवानके द्वारा जो सिखाया गया धर्म है वह धर्म इस लोकमे उत्तम है। मेरे लिए क्या लोकमे उत्तम है ? अन्य वस्तु कैसी ही हो, कितनी ही पवित्र हो, कितनी ही आनन्दमय हो वह अपने लिए श्रेष्ठ है, मेरे लिए क्या उत्तम है ? यद्यपि वह उत्तम है, पवित्र है, परन्तु मेरे लिए तो उत्तम है मेरा धर्म। अपने ज्ञानस्वभावी आत्मतत्त्वकी श्रद्धा होना और इस ही ज्ञानस्वभावका परिज्ञान करना और इस ही ज्ञानस्वरूपमे अपने उपयोगको मग्न करना अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय धर्मका पालन मेरे लिए लोकमे उत्तम है।

शरणपदोके स्मरणसे परमार्थशरणकी प्राप्ति—इससे बाद ४ पद है शरणके। चत्तारि सरण पव्वज्जामि, अरहते सरण पव्वज्जामि, सिद्धे सरण पव्वज्जामि, साहू सरण पव्वज्जामि, केवली पण्णत्त धम्म सरण पव्वज्जामि। मै चारकी शरणको प्राप्त होता हू। लोकमे ऐसा कौन सा पदार्थ है कि जिसकी शरणमे पहुचें तो शान्ति मिले, अथवा जिसे मैं अपना सर्वस्व समर्पित कर दूं तो मेरा हित हो जाय ? ऐसा पदार्थ बाहरमे है तो वे हैं अरहत, सिद्ध और साधु। ये पवित्र आत्मा ही मेरे लिए शरण, मेरे लिए हितरूप है बाह्यमे। इनके अतिरिक्त अन्य कोई भी जीव चेतन अथवा अचेतन ऐसा कुछ भी नही है कि जिसे अपना सर्वस्व समर्पित कर दू तो मेरा हित हो जाय। तो मैं अरहतकी शरणको प्राप्त होता हू, इसमे भी जिस भक्तको अपने आपके आत्माके स्वरूपका परिचय है वही तो अरहतके स्वरूपका वास्तवमे परिचय कर सकता है। जो अपने स्वरूपसे अपरिचित है वह अरहतके स्वरूपसे अपरिचित है।

किसी भी परपदार्थमें कुछ भी परिचय बनायें तो उस कालमे अपना परिचय परमार्थसे होता है। किसी भी परवस्तुका जिसे हम ज्ञात करते है तो परवस्तुका ज्ञान उपचारसे कहलाता है। वस्तुवोंमे परवस्तुवोंके आकाररूप जो निजमे परिणमन होता है उस परिणमनके जानने वाले हैं तो उस तरह अरहतका स्वरूप परिचित हो रहा हो तो उस समय परमार्थसे तो आत्मा ही परिचित हो रहा है। व्यवहारमे अरहतस्वरूप परिचित होता है, अतएव यह बात कह देना संगत है कि जिन्होंने अपने आत्माके स्वरूपका परिचय प्राप्त किया है वे ही अरहतके स्वरूपका परिचय प्राप्त कर सकते है। जब अरहत स्वरूपके गुणस्मरणके समय, उनकी सर्वस्व समर्पणके समय यह भक्त अपनी सुधि नही भूलता बल्कि वह शरण गहना अपने स्वरूपकी स्मृतिका ही कारण बनता है तो में अरहतोकी शरणको प्राप्त होता हू। अरहतकी उत्कृष्ट अवस्थासे भी उत्कृष्ट अवस्था सिद्ध अवस्था है जो बाह्यसे भी अत्यन्त निर्लेप है। यद्यपि अरहत और सिद्ध अवस्थामे मूलमे आत्मगुणोंके विकासमे अन्तर नही है फिर भी चरम दशा तो जीवकी सिद्ध अवस्था है। पूर्ण पवित्र अवस्था है सिद्धकी जिसमे किसी अन्यका प्रवेश नही होता, ऐसे सिद्धके स्मरणमें आत्माके उस शुद्ध ज्ञायकस्वरूप शरीररहित, कर्मरहित अर्थात् शरीर और कर्मका जहाँ प्रवेश नही है ऐसे अपने आत्मस्वरूपका स्मरण होता है और यह आत्मस्मरण परमार्थसे शरण है।

आत्मस्वरूपस्मरणकी शरण्यता व कल्याणरूपता—इस जीवका यदि कुछ भला कर सकनेमे समर्थ है तो आत्मस्वरूपका स्मरण ही भला कर सकनेमे समर्थ है। अन्य सब जीव तो स्वयं मलिन है, कर्मोंके प्रेरे है, उनसे इस जीवका हित कुछ भी नही होता, चेतन अचेतन समस्त पदार्थ जो बाह्यमे दिखते है इस आत्माके लिए कोई भी हितरूप नहीं है। वे सभी जीव दयाके पात्र है, कर्मोंके प्रेरे है, उनसे इस आत्माका कल्याण नही हो पाता। आत्माका कल्याण तो अपने आपके स्वरूपके स्मरणसे ही हो सकता है। अब सोच लीजिए कि सब कुछ पाया धन वैभव, इज्जत प्रतिष्ठा, पर आत्मस्वरूपका स्मरण यदि नही बन सका तो ये सब व्यर्थ है। अपने आपकी शरण गहनेकी धुनि न हो सके तो ये बाह्य वैभव कुछ भी इस जीवकी मदद न कर देंगे। ये सब तो पापके ही कारण बनते है। बाह्यमे अपना कोई भी शरणभूत तत्त्व नही है। अपना शरणभूत तत्त्व तो अरहत सिद्ध और साधु परमेष्ठी ही बाहरमे है। आखिर इस विकल्प वाली अवस्थामे विकल्प विपदावोंसे बचनेके लिए बाहरमे किसी न किसीसे सम्बध बनानेकी आवश्यकता पडती है। वह सम्बध यदि साधु परमेष्ठीका मिलता है तो वह वास्तविक शरण वाला सम्बध है। वे साधुजन निष्पाप है, रागद्वेषसे रहित है, उनकी कोई प्रशंसा करे तो उनसे हर्ष नही मानते और कोई निन्दा करे तो उससे विषाद नही मानते। ऐसी समताके धारी साधु परमेष्ठी जो बिना ही स्वार्थके उपकारक जगतके बन्धु है, सब जीवोंपर जिनके समान

भाव है ऐसे गुणपुञ्ज साधु परमेष्ठीकी सेवा किसे प्राप्त होती है ? जिनका ससार निकट है उन्हे ऐसे साधुवोकी सेवा प्राप्त होती है । साधु शरण है । ये तीन व्यवहारसे शरण हैं, ये भी शरण कब है जब हम अपने आपका कुछ शरण प्राप्त करते है, तो परमार्थसे शरण धर्म ही है। जो धर्म केवली भगवानके द्वारा प्रणीत निर्दिष्ट है, धर्म है वह अपना ही । जो धर्म व्यवहारमे करना चाहिए वह मेरा ही धर्म है । वह धर्म है समता, निष्कषायता, विशुद्ध ज्ञानवृत्ति । इस धर्मकी शरणको मैं प्राप्त होता हू । यह इन मगल शरण और उत्तम पदोका अर्थ है। भावपूर्वक जो इन पदोका स्मरण करते है वे अपवर्गकी श्रीको प्राप्त कर लेते हैं अर्थात् मुक्तिसुख को प्राप्त कर लेते है।

सिद्धेः सौध समारोढुमिय सोपानमालिका ।
त्रयोदशाक्षरोत्पन्ना विद्या विश्वातिशायिनी ॥१६५०॥

त्रयोदशाक्षर मंत्रके ध्यानका फल सिद्धिसौधश्रेणिका आरोहण—अब एक तेरह अक्षरो वाला मत्र कहा जा रहा है । यह तेरह अक्षरोंसे उत्पन्न हुई विद्या विश्वमे अतिशयरूप है। वह मत्र है—"ॐ अर्हंत्सिद्धसयोगकेवली स्वाहा।" यह विद्या मोक्षके महलपर चढानेके लिए सीढियोकी भाति है । अरहत सिद्ध और सयोगकेवलीका नाम उल्लेख किया है । अरहत अवस्था १३ वें और १४ वे गुणस्थानमे कहलाती है, ये सकल परमात्मा है, शरीर सहित परमात्मा हैं । शरीर अभी है किन्तु ज्ञानका विकास परिपूर्ण हो गया है । रागद्वेष आदिक विकारोका सर्वथा अभाव हो गया है, ये अरहत परमात्मा कहलाते है । इसके पश्चात् जब शरीर और कर्म भी दूर हो जाते है तो सिद्ध प्रभु कहलाते है । यहाँ दो देव है । पचनमस्कार मत्रमे देव और गुरुवोका नाम है । जिनमे दो तो देव है अरहत और सिद्ध और ३ गुरु है—आचार्य, उपाध्याय और साधु । तो १३ अक्षर वाले मत्रमे अरहत और सिद्धका स्मरण है और सयोगकेवलीका । यद्यपि अरहत कहनेसे सयोगकेवली गर्भित हो जाते है फिर भी यह सम्बध समझनेके लिए कि हमारा जो उपकार हुआ है उस उपकारमे मूल कारण सयोगकेवली है । अरहत अवस्थामे जब उनकी सयोगदशा रहती है १३ वें गुणस्थानमे तो सयोग है और उसमे भी जब वचनयोगकी विशेषता होती है, दिव्यध्वनि खिरती है तो उस माध्यमसे जगतके जीवोका महान् उपकार होता है । तो सयोगकेवलीको इस कारण अलगसे स्मरण किया है । तो यह मत्र एक विश्वमे अतिशय पैदा करने वाला है और मोक्षमहलमे चढनेके लिए एक सीढीकी तरह है ।

प्रसादयितुमुद्युक्तैर्मुक्तिकान्ता यशस्विनीम ।
दूतिकेय मता मन्ये जगद्वन्द्यैर्मुनीश्वरैः ॥१६५१॥

त्रयोदशाक्षरी विद्याका सिद्धिसन्देशिकापन—इस १३ अक्षर वाली विद्याके सम्बन्धमे ही कहा जा रहा है कि इस मत्रके धारण करने वाले मुक्तिरूपी रमणीको प्रसन्न करनेके लिए

जो उद्यमी होते है ऐसे जगत पूज्य मुनीश्वरोने इस १३ अक्षर वाली विद्याको मुक्तिको प्रसन्न करनेके अर्थ दूती माना है ऐसा मैं मानता हू । एक अलकाररूपमे यह कथन है । जैसे पतिके पास पहुचानेके लिए बीचकी सखी अथवा एक दूती होती है इसी तरह मुक्ति तक पहुचानेके लिए इन मुनीश्वरोको जो कि मुक्तिको प्राप्त करना चाहते है उनके लिए यह १३ अक्षरो वाली विद्या सखी या दूतीके समान है अर्थात् मुक्तिका सम्बन्ध बनानेमे यह कारण है । किसी भी मत्रके आराधनमे एक तो श्रद्धा भरपूर होनी चाहिए । श्रद्धाके बिना मंत्रकी आराधनाका कोई फल नही है । श्रद्धा है तो कदाचित कुछ अशुद्ध भी मत्र जपा जा रहा हो अथवा कैसे ही जपा जा रहा हो तो उसका भी कुछ न कुछ फल प्राप्त होता है । श्रद्धा नही है तो चाहे कितने ही ढगसे बडे स्वरसे बहुत ही शुद्ध मत्र जपा जा रहा हो, पर श्रद्धा न होनेसे मत्र का कोई फल नही प्राप्त होता । मत्रजापमे श्रद्धाकी विशेष मुख्यता है और फिर मत्र शुद्ध जपा और उस मन्त्रका अर्थ भी ज्ञात हो, उस तत्त्वमे दृष्टि और श्रद्धा सहित किसी भी मत्रका जाप करे तो उसका एक अपूर्व फल प्राप्त होता है । इन तेरह अक्षरो वाली विद्यामे अरहत सिद्ध और सयोगकेवलीका स्मरण किया है । जो उपयोग ऐसे विशुद्ध ज्ञानपुञ्जका उपयोग करेगा उस उपयोगमे विषय कषायोकी गदी वृत्ति नही आ सकती है और इन विपयकषायोंके अभावसे आत्मामे उत्तरोत्तर विशुद्धता बढती है जिसके प्रतापसे यह मुक्तिके निकट पहुचता है । इसी कारण कहा गया है कि यह १३ अक्षरो वाली विद्या मुक्तिको प्राप्त करानेके लिए सखीकी तरह है ।

सकलज्ञानसाम्राज्यदानदक्ष विचिन्तय ।
मन्त्र जगत्त्रयीनाथचूडारत्न कृपास्पदम् ॥१९५२॥

'ॐ ह्री श्री अर्हं नमः' मंत्रकी सकलज्ञानसाम्राज्यदानदक्षता—एक मत्र है जिसे बताया है कि जगतमयी निधि चूडामत्र है । तीनो लोककी निधिको चूडारत्न माना है । यह सर्वोपरि है, उस मत्रकी मुद्रा है ॐ ह्री श्री अर्हं नमः । कितने विशुद्ध बीजाक्षर है इसमे भार भरे हुए हैं । ॐ शब्दसे पंचपरमेष्ठियोका ध्यान जमता है, ह्री शब्दमे चतुर्विंश तीर्थंकर गर्भित है और श्रीके कहनेसे वह समस्त अरहतकी शोभा है । समवशरणमे बिराजमान चौबीस तीर्थंकरकी अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग शोभा, वह हुई लक्ष्मी, ऐसी श्री का ध्यान पहुचता है । वास्तवमे लक्ष्मी कहो, श्री कहो, अरहत प्रभुका अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग वैभव है । यहाँ की श्री (स्त्री रूप) जिसे लोगोने मान रखा है कि यह लक्ष्मी है, वह न लक्ष्मी है और न श्री है किन्तु विडम्बना है इसने तो इस आत्माको मलिन किया है । शान्ति नही मिलती । एक मोहका स्वप्नजाल जैसा मौज मानते है पर इसके कारण दुख ही प्राप्त होता है । श्री नाम तो उसका है जो आत्मान श्रयते, जो आत्माका आश्रय करे उसे श्री कहते

है। आत्माका आश्रय श्री करेगी। श्रीका आश्रय करनेके लिए आत्माको भटकना न चाहिए श्री शब्दका जो अर्थ है उसके अनुसार लक्ष्मी हमारा आश्रय करती है, हम लक्ष्मीका आश्रय नही करते। वह श्री क्या है, वह लक्ष्मी क्या है जो आत्माका आश्रय करती है? वह श्री है ज्ञानलक्ष्मी। ज्ञान आत्माके आधारमे है और इस आत्मामे ज्ञानका पूर्ण विकास होता है। ज्ञान विकासके कारण अथवा रागद्वेषके सर्वथा अभाव होनेके कारण जो पवित्रता चरम सीमा पर पहुची है उसके कारण ३ लोकके इन्द्र भी आकर्षित होते है। जब तीन लोकके इन्द्र श्रीमान अरहत प्रभुकी भक्तिके लिए पहुचते है तो यो कहना चाहिए कि तीन लोकके जीव ही उनकी भक्तिके लिए पहुचते है। इसीलिए कहते हैं कि त्रिलोकाधिपति अरहतदेव हैं। जैसे लोकतत्र राज्योमे राष्ट्रपतिका चुनाव सभी मनुष्य नही करते किन्तु सर्वमनुष्यो द्वारा चुने गए सदस्य ही उस राष्ट्रपतिका चुनाव कर लेते हैं तो वह राष्ट्रपति सभीके द्वारा निर्वाचित कहलाता है। उनकी वोट एक एक करके नही मानी जाती किन्तु एक वोटका अर्थ ४००-५०० वोट लगाया जाता है। जितने आदमियोने जिसे चुनकर भेजा है उस अनुपात से उनकी वोट सख्या मानी जाती है। तो प्रयोजन यह है कि जैसे कुछ ही लोग राष्ट्रपतिका निर्वाचन करते है पर सर्व द्वारा निर्वाचित माना जाता है इसी तरह तीनो लोकके इन्द्रभगवान अरहतके चरणोमे आये है तो इसका अर्थ है कि वे तीनो लोकके जीवो द्वारा पूज्य है। तो ऐसी श्री अन्तरङ्ग लक्ष्मी ज्ञान है और बहिरङ्ग लक्ष्मी वह समस्त समवशरण आदिक शोभा है जो शोभा एक ज्ञान और वैराग्यके विकासको प्रेरणा देती है। देखो कितने आश्चर्यकी बात है कि सोना चाँदी, रत्न मणियोसे जडित शोभा राग उत्पन्न कराती है पर वह समवशरणकी उत्कृष्ट शोभा ज्ञान और वैराग्यको बढाती है। वह है भगवान अरहतदेवकी बहिरग श्री। तो श्री के कहते ही वह समस्त शोभा बहिरग और अन्तरग शोभा ध्यानमे आती है। इन सब को ध्यानमे रखकर यह मत्र जो जपता है वह मनुष्य समस्त ज्ञानके साम्राज्यके देखनेमे प्रवीण हो जाता है। हे मुनि! ऐसे कृपाके साधनभूत इस मन्त्रका तू चिन्तवन कर।

न चास्य भुवने कश्चित्प्रभाव गदितु क्षम ।
श्रीमत्सर्वज्ञदेवेन य साम्यमवलम्बते ॥१९५३॥

'ॐ ह्रीं श्रीं नमः' मन्त्रके प्रभावकी अद्भुतता—"ॐ ह्री श्री नम" इस मन्त्रके प्रभाव को कोई भी कह सकनेमे समर्थ नही है। यह मन्त्र अन्तरङ्ग बहिरङ्ग लक्ष्मीसे युक्त सर्वज्ञ देव के साथ समानताको धारण करता है। बुद्धि, शब्द, और अर्थ ये तीन सज्ञायें है। एक प्रसगमे अपने भावके भीतर तीनो की समानता है। शब्द तो वाचक अक्षरपुञ्ज हैं वे जिस अर्थ (पदार्थ) को बतलाते है उस पदार्थकी समता शब्दमे शब्दस्वरूपसे है और वहाँ जो उस पदार्थ का ज्ञान हुआ वह ज्ञान पदार्थके बराबर है। एक इस न्यायके अनुसार सभी शब्द अपने

वाच्यभूत पदार्थकी समानताको धारण करते है। फिर तो यह मत्र बीजाक्षरोसे निष्पन्न है और परम तत्त्व सर्वज्ञ देवके सर्वस्वका वाचक है, सो यह मत्र सर्वज्ञ देवकी समानताको धारण करता है। इसके प्रभावको कहनेमे कौन समर्थ है ? जो योगी इस मन्त्रका आराधन करता है वह आत्मीय अनुपम अनन्त समृद्धिको प्राप्त करता है।

स्मर कर्मकलङ्कौघध्वान्तविध्वसभास्करम् ।
पञ्चवर्णमय मन्त्र पवित्र पुण्यशासनम् ॥१९५४॥

'णमो सिद्धाणं' पञ्चवर्णमय मंत्रके ध्यानका आदेश—हे लोकराज ! तू पच अक्षर-मयी जो मत्र है णमोसिद्धाण, उस मन्त्रका चिन्तवन कर, क्योकि यह मत्र कलकोके समूह रूप अन्धकारका विनाश करनेमे सूर्यके समान है। जैसे सूर्यप्रकाश सूर्यसम्बन्धी अन्धकारको नष्ट कर देता है, सूर्यके सम्बन्धका जो प्रकाश होता है उस प्रकाशकी उत्पत्ति कोई पुरुष किसी भी कृत्रिम उपायसे नही कर सकता। यद्यपि बिजलीके डडे भी जला देते, जो कि बडा सफेद प्रकाश करते है और दिन जैसा मालूम पडता है, फिर भी वह प्रकाश दिनके प्रकाशकी होड नही लगा सकता। सूर्यके प्रकाशमे अत्यन्त सूक्ष्म चीज भी सुगमतासे दिख जाती है पर बिजलीके प्रकाशमे नही दिख पाती। तो जैसे अधकारको नष्ट करनेमे सूर्यका प्रकाश समर्थ है। इसी प्रकार कर्मकलकोकी मलीमसताको नष्ट करनेमे यह मत्र समर्थ है। मत्रके अक्षर कर्मकलकको नही मेट देते, लेकिन विशुद्ध भावोसे जो मत्राक्षरोका ध्यान करता है और इसमे कहा गया जो तत्त्व है, स्वरूप है उस स्वरूपका जो ध्यान करता है उस आत्मा मे ऐसी पवित्रता बढती है, ऐसी विषय कषायोसे उपेक्षाकी वृत्ति बनती है कि अपने सहज ज्ञानस्वरूपमे मग्न होनेकी ऐसी धुनि बनती है कि जिस धुनिके प्रतापसे यह आत्मा कर्म-कलकोका विध्वस कर देता है। यह मत्र पवित्र है और पुण्य शासन है। जिसका शासन पवित्र है, जिस मत्रके ध्यानसे आत्मा अपने आपमे केन्द्रित होता है, अपने आपके द्वारा यह धर्म शासित होता है, अपने स्वरूपपर मानो पूरी हुकूमत बना ली है, ऐसा यह मत्रराजका ध्यान है। जो मुनि इस पवित्र पचाक्षरमयी मत्रका ध्यान करता है, वह ससारके क्लेशोसे हटकर, इन विकल्पोकी विपदावोसे हटकर निर्विकल्प विशुद्ध आत्मीय सहज आनन्दसे भरपूर विशुद्ध ज्ञानके विकास पदको प्राप्त करता है। हे मुनि ! हे योगीश्वर ! इस पचाक्षरमयी मत्रका पवित्र मनसे तू ध्यान कर और अब इस ध्यानके माध्यमसे अपने आपके स्वरूपमें निर्विकल्प होकर मग्न हो।

सर्वसत्त्वाभयस्थान वर्णमालाविराजितम् ।
स्मर मन्त्र जगज्जन्तुक्लेशसततिघातकम् ॥१९५५॥

बहुवर्णमालाविराजित अभयप्रद मंत्रमे अर्हन्त केवलीको नमस्कार—अब एक यह बहुत अक्षरों वाला मत्र है जिसको मुद्रा है "ॐ नमोऽर्हन्ते केवलिने परमयोगिनेऽनत शुद्धि परिणाम विस्फुरदुरुशुक्लध्यानाग्निर्दग्धकर्मबीजाय प्राप्तानन्तचतुष्टयाय सौम्याय शान्ताय मङ्गलाय वरदाय अष्टदशदोषरहिताय स्वाहा" इतना बडा यह मत्र है। यह मत्र जगतके प्राणियोकी क्लेशपरम्पराको नष्ट करने वाला है। समस्त प्राणियोंके अभयका साधन है। ऐसे मत्रको हे मुनि! तू स्मरण कर। इस मत्रमे प्रथम तो प्रणवका बीजाक्षर दिया गया है ॐ, जिसके माहात्म्यका बहुत वर्णन लिया जा चुका है। फिर नमस्कार मत्र देकर परमात्माके स्वरूपका जिप-जिन शब्दोंमे स्मरण किया है उनका अर्थ क्रमशः सुनियेगा। अर्हते। इसका अर्थ अरहत से है। अरहंतका अर्थ है पूज्य, योग्य, समर्थ। चार घातिया कर्मोंसे रहित वीतराग सर्वज्ञदेव अरहत कहलाते है, फिर केवली शब्दसे स्मरण किया। वे अरहत केवली हैं। वे केवली केवलज्ञान सम्पन्न हैं। केवलज्ञान रह गया, उनके रागद्वेषादिक विकार अब कुछ भी नही रह गए, अतएव उनके केवलज्ञान प्रगट हुआ है। वे समस्त लोकालोकको एक साथ स्पष्ट जानते हैं। केवलज्ञान सम्पन्न अरहत भगवानको नमस्कार किया है।

शुक्लध्यानाग्निसे कर्मबीजका दहन करने वाले परमयोगीको नमस्कार--अर्हन्त प्रभु परमयोगी है, योग नाम हितमार्गमे जोडनेका है, परम ध्यानीको योगी कहते है। जिनके शुक्लध्यानके तपश्चरणके प्रतापसे निश्चल ज्ञान प्रगट हुआ है ऐसे परमयोगी केवली भगवान को नमस्कार हो। शुक्लध्यानकी अग्निसे कर्मबीजको जला दिया है इन अरहत प्रभुने। उन अरहत देवके प्रति समय अनन्त गुणोकी विशुद्धता बढती है तो अनन्त गुण निर्मलता जिन परिणामोमे बढ रही है उन परिणामोके कारण जिनके शुक्लध्यान और निर्मल प्रगट हुआ है, जिस ध्यान अग्निके प्रतापसे कर्मबीज जिसके नष्ट हुए है। चार घातिया कर्मबीज कहलाते हैं और उनमे मोहनीय कर्म कर्मबीज कहलाते है। समस्त कर्मोको उत्पन्न करानेमे यह मोहनीय कर्मबीजकी तरह है। यह मोहनीय कर्म समाप्त हुआ कि फिर सभी कर्मोंका विनाश प्रारम्भ होने लगता है। तो जिन अरहतदेवने शुक्लध्यानकी अग्निसे इस मोहनीय कर्मको जला दिया उन्हे नमस्कार हो।

अनन्तचतुष्टयसम्पन्न अर्हंत केवली परमयोगी जिनको नमस्कार—जिनके अनन्त चतुष्टय है—अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त शक्ति, वे समस्त लोकालोकको त्रिकालवर्ती पदार्थोंको जाननेमे समर्थ है, और ऐसे अनत ज्ञानवाले निज आत्मतत्त्वसे जो दर्शन करते है उसे अनन्त दर्शन कहते हैं। अनन्त आनन्द उनके मोहनीय कर्मोके क्षयके कारण प्रगट होता है। आनन्दमे घात करने वाला कर्म है मोहनीय कर्म। आत्मा सभी आनन्द स्वरूप है, आनन्द कही बाहरसे लाना नही है, आनन्दका पुतला ही है यह आत्मा। आनन्दका इसमे

स्वभाव ही पडा है, पर मोहनीय कर्मके कारण जो रागद्वेष मोहकी प्रवृत्ति बनी उससे पर-दृष्टि बनी, उससे आनन्दका घात होता रहता है। मोहनीय कर्मके नष्ट होते ही समस्त आनन्द प्रगट होता है जिनके अन्तराय कर्मका क्षय हो जानेके कारण अनन्त शक्ति प्रगट हुई है ऐसे अनन्त चतुष्टयसम्पन्नअरहत भगवानको मै नमस्कार करता हू।

सौम्य, शान्त, मंगल, वरद अर्हत्केवली भगवानको नमस्कार—उन अरहतदेवकी मुद्रा सौम्य है, सुन्दर है, उनकी दृष्टि कुछ खुली कुछ मुँदी सी है, जिससे दृष्टि नासापर है। जो अत्यन्त शान्त है, उनकी दृष्टि नासाके अग्रभाग पर है, समस्त कषायभाव उनके नष्ट हो गए, अशान्तिका कोई कारण ही नही रहा, स्वभावतः वे परमधाम है। मगलस्वरूप है। जो भी लोग उन प्रभुके स्वरूपका ध्यान करते है उन्हे नियमसे कल्याणकी प्राप्ति होती है। इसमे कोई अत्युक्तिकी बात नही है। ज्ञान और वैराग्यकी परममूर्ति अरहत स्वरूपका जो ध्यान करता है उस ध्याता पुरुषके सर्व मगल है। चाहे पूर्वकृत कर्मके कारण कुछ आपत्तियाँ आ रही हो, उपसर्ग आ रहे हो तिसपर भी जिस कालमे अरहतस्वरूपपर ध्यान है उस समय जिस उपयोगमे आत्माका कोई वेदन नही है, दुःख है ही क्या उसे ? बाहरी पदार्थोकी परिणतिसे हम दुःखरूप अनुभव करें तो हमारे दुःख बन जाते है और हम अपनी परिणतिको अपने कैवल्य स्वभावको निरखकर तृप्त हो जायें। मै सबसे निराला हू, ज्ञानानन्दस्वरूप हू, यह मैं अपनेमे परिणमता रहता हू, मेरेसे बाहर कही मेरा कोई काम नही बनता है, ऐसी अपने आपपर कोई दृष्टि रखे तो उसका फिर अमगल कहाँ, अकल्याण कहाँ ? जैसे आत्मानुशासनमे बताया है कि जो लोग जीनेकी आशा रखते है, धन वैभवकी आशा रखते है उनके लिए तो कर्म कर्म है। आशा बनी है और वह चीज प्राप्त होती है नही तो वह जीव दुःखी होगा ही। जिसने आशा कर रखी है उसके लिए कर्म कर्म है, कर्म उसके दुःखके कारण है लेकिन जिन्होने निराशामे ही आशा रखी है, अर्थात् न जीनेकी आशा रखता है, न धनकी आशा करता है किन्तु नैराश्यभाव उसके हो, किसी भी वस्तुकी आशा मुझमे न रहे, इस प्रकार नैराश्य अमृतका ही जो ध्यान रखते है उनके लिए कर्म क्या कर्म हो सकते है ? कर्म जो कुछ असाता उत्पन्न कर सकते है उसे स्वीकार करे तो कर्म कर्म है, और स्वीकार न करें तो फिर कर्म क्या है ? जैसे कोई किसीको खूब गालिया दे और जिसे खूब गालिया दी वह उन गालियो को स्वीकार ही न करे तो फिर उसके लिए वे गालिया गालिया कहाँ रही ? उस गाली देने वालेपर न वह क्रोध करेगा, न उससे द्वेष करेगा, न उसके प्रति कोई विकल्प करेगा। तो यह जीव जब विशुद्ध स्वरूपपर दृष्टि रखता है तो अरहतके उस पवित्र परिणमनपर और गुणोपर दृष्टि देता है तो उसके लिए सर्वत्र मगल है, उसके लिए कही अमगल नही है। यह अरहत परमेष्ठी वरद है अर्थात् वरदान देने वाले है अर्थात् मनोवाञ्छित फलके देने वाले है। जो भक्त

श्रद्धापूर्वक इन अरहत देवका स्मरण करता है उसके पुण्यकर्मका बध होता है।

जन्म जरा तृषा क्षुधा विस्मय रहित परमयोगी जिनका स्मरण—वह अरहत प्रभु १८ दोषोंसे रहित हैं। कौनसे हैं वे १८ दोष ? एक दोष है जन्म—उत्पन्न होना यह जीवके लिए एक कलक है, दोष है। प्रभु अरहत अब जन्मके दोषसे रहित हो गए, उनका अब कभी जन्म न होगा। प्रभुमे और ससारी जनोमे किन-किन बातोका अन्तर है, यह भी विदित हो जायगा। तो प्रभु जन्मदोषसे रहित हैं। दूसरा दोष है बुढापा। इस बुढापेकी वेदनाको वालक लोग तो समझ नही पाते। वे तो उन बूढोकी नकल करते हैं, हँसी करते हैं। उन्हे बुढापेकी वेदनाका क्या पता ? बुढापेकी वेदना तो बूढे ही जानें। तो यह बुढापेका दोष भी एक बहुत बडा दोष है, अरहत प्रभुके यह बुढापेका दोष भी नही है। जिस ध्यानके प्रसादसे घातिया कर्मो को विनष्ट किया है, अरहत बने हैं, तो अरहत अवस्थाके प्रारम्भमे ही उनका शरीर बुढापे से रहित होकर समर्थ शक्तिशाली युवा जैसा बन जाता है। यह केवलज्ञानका एक अतिशय है कि अरहत होनेपर फिर उनका शरीर बूढा नही हो सकता। तो यह बुढापेका दोष भी अरहत भगवानके दूर हो गया है। तीसरा दोष है प्यास। प्यासकी वेदनामे यह मनुष्य विह्वल हो जाता है, भूखकी वेदनासे प्यासकी वेदना कठिन हो जाती है। भूखकी दो डिग्रिया है—तीव्र और मद। जब कुछ भूख लग गई हो तब अनुभव नही होता है कि हमको भूख लगी, जब बहुत तेज भूख लगती है तब अनुभव होता है कि हमको भूख लगी। प्यासकी वेदनाकी ४ डिग्रियाँ है—तीव्र, तीव्रतर और मन्द, मन्दतर। जब तीव्र प्यास लगी हो तब देख लो कितना दु ख महसूस होता है। अगर कुछ भूख लगी हो तो उसमे कुछ भी वेदना नही महसूस होती। अभी अभी खा पीकर निपटे और आधा घटा बीता नही कि फिर प्यास लगने लगती है, पर भोजन करने वाला तो ६-७ घटेके बादमे भूख महसूस कर पायगा। तो भूखसे प्यासकी वेदना कठिन है, और तीव्रतर भी प्यास होती है जो कि सही नही जाती है। प्यासके कारण तो प्राण भी नष्ट हो जाते हैं। तो प्यास एक महान दोष है। अरहत प्रभुके प्यासका दोष नही है। भूखका भी दोष अरहत प्रभुके नही है, वे कवलाहार नही करते, ग्रास वाला आहार नही लेते, किन्तु स्वत ही उनके शरीरमे वे वर्गणाये आती जाती रहती हैं जो कि पवित्र हैं, जिनके कारण शरीर समर्थ बना रहता है। भगवान अरहतको आश्चर्य भी नही होता। आश्चर्य कंसे हो ? जिनके कम ज्ञान हो और एकदमसे कोई ज्ञानकी बात सामने आ जाय तो आश्चर्य होता है। जिसके पहिलेसे ही ज्ञान है तो कुछ भी बात घटे, उसपर उसे आश्चर्य क्या ?

रति अरति खेद रोग शोक मद मोह भय निद्रा चिन्ता खेद मरण रहित परम योगी जिनको नमस्कार—प्रभुके प्रेम या अप्रेम भी नही होता, प्रभुके खेद भी नही होता। जैसे कोई पुरुष कार्य करके थक जाय तो उसे खेदसा होने लगता है, प्रभुके खेद नही है। प्रभुके ऐसी

अनन्त शक्ति है कि कभी खेदका अनुभव होता ही नही। प्रभुके रोगका भी कोई दोष नही है। यहाँ तो मनुष्योके अनेक प्रकारके रोग हो जाया करते है जिसके कारण मनुष्य बडे बेचैन रहा करते है, बडे क्लेश इस रोगके कारण सहन करने पडते है, ऐसे कोई भी शरीर सम्बधी रोग अब उन अरहत भगवानके नही रहे। जब उनके शरीरमे कोई धातु ही नही मिलती तो रोग कहाँसे हो, उनका शरीर पारमोदारिक हो जाता है। रोग दोपसे वे अरहत प्रभु अति दूर है। उनके कभी शोक भी नही होता। जैसे मनुष्योको इष्टवियोग अथवा अनिष्टसयोग होने पर शोक हुआ करता है वैसे अरहत देवके शोक नही होता। उनके जब कोई इष्ट अनिष्ट है ही नही तो शोक कहाँसे हो? उनके विशुद्ध ज्ञान और आनन्द जगा है तब शोकका उनके कोई अवसर ही नही है। घमड भी उन पुरुपोके होता है जिनके ज्ञानकी पूर्णता नही है और कुछ ज्ञान बन गया, कोई कला मिल गयी तो वे अपनी कलापर, अपनी चतुराईपर मद किया करते है, पर प्रभुका ज्ञान परिपूर्ण है, ज्ञानमे मदका अवकाश ही नही होता है। प्रभुके मोह नही है। मोह नाम है अज्ञानका। परवस्तुमे और अपनेमे एकताकी बुद्धि रखना उसे मोह कहते है। जैसे अनेक मोही जन ऐसा अभिप्राय रखते है कि जो कुछ यह परिवार है, यह मेरा है, ये मेरे हितकारी है, यही मेरे सर्वस्व है, तो दूसरेमे और अपनेमे एकता लाना इसका नाम मोह है। अथवा इस शरीरको आत्मा मानना इसका नाम मोह है। प्रभुके मोह नही है, न उनके निद्रा है, नीद भी प्रभुमे नही है, वे सदा सावधान है, सदा शक्तिमान है, जागरूक है, ज्ञान उनके सदा एकसा बना रहता है। चिन्ता भी उनके नही है, कोई अप्रिय घटना घट जाय, कोई उपद्रव वाली बात आ जाय तो मनुष्योको चिन्ता होने लगती है, पर प्रभुके चिन्ता का अवकाश ही नही है। प्रभुके शरीरमे स्वेद (पसीना) भी नही है। उन अरहत प्रभुके मरण का भी दोष नही है। यद्यपि अरहत भगवान अभी शरीरसहित है, और आयुकर्मके उदयके कारण इस शरीरमे रोग होता है, आयुकर्मका कभी अन्त भी होगा, शरीर भी दूर हो जायगा तो आयुके अन्त होनेका नाम मरण है, लेकिन जिस मरणके बाद जन्म नही होना है उसे मरण नही कहा करते, वह तो निर्वाण है। ऐसे १८ प्रकारके दोष जिनप्रभुमे नही है उन प्रभुको नमस्कार किया है। इतना भाव इस मत्रमे है जिस मत्रके जपनेसे एक परिणामोमे बडी विशुद्धि बढती है और जिन-जिन बातोसे वे प्रभु अरहत देव प्रभु हुए है वे वे सब अभ्युदय भी इस ध्यानी पुरुपको प्राप्त हुआ करते है।

स्मरेन्दुमण्डलाकार पुण्डरीक मुखोदरे।
दलाष्टकसमासीन वर्णाष्टकविराजितम् ॥१९५६॥

अष्टाक्षरी मत्रके स्मरणका आदेश—अब एक विधिसे अष्टाक्षर वाले मत्रका ध्यान बताया जा रहा है जिसमे मध्य वर्ण अर्थात् ह्री वा भी सम्बन्ध है, उसके लिए हे मुनि! तू

मुखमें चन्द्रकमलके आकारमे अष्टपत्रोसे शोभायमान एक कमलका विचार कर। अपने मुख स्थानपर एक अष्टपत्रका कमल चिन्तन कर। कमलोंके चिन्तन करनेके स्थान तीन बताये जाते है, एक नाभिपर, जिसे नाभिकमल कहते हैं, एक हृदयपर, जिसे हृदय कमल कहते हैं और एक मुखस्थानपर जिसे मुखकमल कहते है। तो हे मुनि! तू अपने मुखस्थान पर एक ऐसे कमलका चिन्तन कर जो चन्द्रकमलके आकारका है। जैसे पूर्णमासीका पूर्णचन्द्र अपने तेजसे अति शोभायमान है वैसा ही एक परिपूर्ण कमलका तू विचार कर, जो ८ अक्षरोंसे शोभायमान है। वे ८ अक्षर कौनसे है, उसका वर्णन करते है।

ॐ णमो अरहंताणमिति वर्णानपि क्रमात्।
एकशः प्रतिपत्र तु तस्मिन्नेव निवेशयेत् ॥१६५७॥

ॐ णमो अरहंताणं मंत्रके ध्यानका विधान—जो कमल मुख स्थानपर चिन्तवन किया गया है उस कमलके ८ पत्रोपर क्रमसे इन ८ अक्षरोकी स्थापना करें। "ॐ णमो अरहंताण। उस कमलके ८ पत्रोपर क्रमशः एक एक इन अक्षरोकी स्थापना करके उनका ध्यान करना चाहिए। देखिये मनको एकाग्र करनेकी विधि भी इसमे है और परमात्मस्वरूपसे सम्बन्ध रखने वाली घटना भी बतायी गयी है, इस कारण इन सब ध्यानोका महत्त्व बहुत बढ़ गया है। जो विधि बतायी जा रही है—इस तरहसे ध्यान करो, ऐसा कमल विचारो, ऐसे पत्र सोचो, उन पत्रोपर इन वर्णोंको देखो तो इन कार्योंके करनेसे मनमे एकाग्रता रहती है, बाहरी विषय कषायोंसे मन हट जाता है, तो एकाग्रताका भी एक अपूर्व साधन बना है और परमात्मस्वरूपके चिन्तनका भी इसमें योग मिला है। इसके बाद उस ही कमलके सम्बन्धमे और इस ही मत्रके सम्बन्धमे आगे क्या प्रगतिकी जाय, उसके लिए कहते है।

स्वर्णगौरी स्वरोद्भूता केशराली तत स्मरेत्।
कर्णिका च सुधास्यन्दबिन्दुव्रजविभूषिताम् ॥१६५८॥

सर्वसिद्धिप्रद अष्टाक्षरी मंत्रका आसन—तत्पश्चात् अमृतके झरनोके बिन्दुवोंसे सुशोभित कर्णिकाका चिन्तवन करें। कमलके बीचमे जो कर्णिका होती है उसके चारो तरफ जो सूतके माफिक पतले खडे हुए उस बनस्पतिके धागोकी पक्ति लगी रहती है उनपर बूंद बूंदकी तरह रूप रखे हुए होती है, सभी कमलोमे आप पायेंगे, गुलाबके फूलोमे भी आप यह चीज पायेंगे। तो इस हृदयकमलमे एक कर्णिकाका विचार करे जिसके चारो ओर अमृत बिन्दु कोई उत्तम सुशोभित बिन्दुवे है उनसे सुशोभित कर्णिकाका चिन्तन करें और उसमे स्वरोंसे उत्पन्न हुई तथा स्वर्णके समान गौरवर्ण वाली केशरोकी पक्तिका ध्यान करे। उस कमलमे पहिले बताया था कि ८ अक्षरोको स्थापना करें। साथ ही इसमे व्यक्त रूपसे यह भी वहाँ विचित्रता देखिये कि स्वरपत्रोपर स्वरोकी भी रचना है। तो उन स्वरोंसे उत्पन्न हुई एक

गौरवर्ण वाली स्वर्णके समान केशरोकी पक्ति वहाँसे चली और उस पंक्तिका भी ध्यान करे। अपने मुखकमलपर एक ऐसा ध्यान जमाया जा रहा है जिसपर ॐ णमो अरहताण इस मंत्र का ध्यान किया जा रहा है।

प्रोद्यत्सपूर्णचन्द्राभं चन्द्रबिम्बाच्छनैं शनैः।
समागच्छत्सुधाबीज मायावर्णं तु चिन्तयेत् ॥१६५६॥

अष्टाक्षरी मंत्रके चिन्तनकी विधि—अब तक इस प्रसगमे क्या-क्या सोचा गया ? स्थिर आसनसे बैठा हुआ योगी अपने मुख स्थानपर एक कमलका चितवन कर रहा है, जिसमे ८ पत्र है, जिन पत्रोमे अव्यक्त रूपसे स्वरमाला है, और व्यक्त रूपमे भी एक-एक पत्रपर एक-एक अक्षर लिखा हुआ है। ॐ णमो अरहताण ये आठो अक्षर एक-एक पत्रपर लिखे हुए है, और उसके निकट कर्णिकाके चारो तरफ ततुवो जैसी लाइन लगी हुई है, जिसपर अमृतकी बिन्दुवें रखी है, और उन स्वरोसे एक केशरोकी पक्ति उत्पन्न होती है अर्थात् उनमे स्वर्ण समान वर्ण बिखर गये है। अब उसपर माया मत्रका विचार करे, ह्री। जैसे पूर्णमासीको जो चन्द्र उदित होता है वह पूर्ण कान्तिमय होता है, अत्यन्त शोभनीय होता है, ऐसे ही पूर्ण कान्तिमय अत्यत शोभनीय यह मायावर्ण है। कोई अक्षर लिखा होता है ना तो जैसे आजकलके लोग कोई उसे स्वर्णाक्षर बोलते है, कोई लोग रत्नाक्षर बोलते है ऐसे ही यहाँ इस मायावर्णका विचार किया जा रहा है। उसे कोई पूर्णमासीके चन्द्रकी तरह कान्ति वाला बोलते, कोई उज्ज्वल बोलते, कोई सफेद बोलते। ऐसे रगमे इस ह्री मत्रका चिन्तवन करे जो चन्द्रबिम्बसे मन्द मन्द अमृत बीजको प्राप्त हो रहा है। जिसके ध्यानसे परम तृप्ति होती है, मन एकाग्र होता है और दिव्य प्रकाश प्रगट होता है, तो मानो यह चन्द्रबिम्बसे अमृतबोज मिल रहा है। यह स्वय अमृतबीज है। बीज उसे कहते है जो अकुरको उत्पन्न करे। यह मत्र अमृतबीज है तो अमृत आनन्दको उत्पन्न करता है, ऐसा उस कर्णिकापर मायावर्ण ह्री का चिन्तवन करे। इन सभी बीजाक्षरो मे अपना-अपना अद्भुत प्रताप भरा हुआ है। यह बीजाक्षर कैसे बना ? तो कोई इसके बारेमे कुछ सोच भी ले, उसका कुछ ठीक अर्थ भी कोई बैठा ले, तो बैठा सकता है। न जाने कितने गुण इस ह्री मायावर्णमे भरे पडे हुए है। इसी ह्री मत्रमे चतुर्विंश तीर्थकरकी भी स्थापना की हुई है जो वर्ण और अकोसे जानी जाती है। र का अर्थ है २ और ह का अर्थ है ४। यो २ और ४ = २४ हुए। यो २४ तीर्थंकरोकी स्थापना हो गई। यह एक स्थूल बात है, पर उस ह्री मत्रमे और क्या-क्या मर्म भरे पडे है वह ऐसा है कि जिससे सारे श्रुतज्ञानका प्रतीक सिद्ध हो, सर्व ज्ञानोका प्रतिनिधित्व करे ऐसा अपूर्व माहात्म्य हो। सो उस कमलपर जो मत्रसे वेष्टित है उनके बीच कर्णिकापर ह्रीका चिन्तन करे। उस ह्रीका किस किस विधिसे चिन्तन करे, उसका वर्णन अब आगेके श्लोकोमे बताया जायगा।

विस्फुरन्तमतिस्फीत प्रभामण्डलमध्यगम् ।
सचरन्त मुखाम्भोजे तिष्ठन्त कर्णिकोपरि ॥१९६०॥
भ्रमन्त प्रतिपत्रेषु चरन्त वियति क्षणे ।
छेदयन्त मनोध्वान्त स्रवन्तममृताम्बुभि ॥१९६१॥
व्रजन्त तालुरन्ध्रेण स्फुरन्त भ्रूलतान्तरे ।
ज्योतिर्मयमिवाचिन्त्यप्रभाव भावयेन्मुनि ॥१९६२॥

ध्यानोका संक्षिप्त विवरण—ससारी जीवोंके सबको निरन्तर कुछ न कुछ ध्यान बना रहता है । ध्यान सज्ञी जीवोंके तो विशेषतासे होता है और असज्ञी जीवोंके एकेन्द्रिय आदिक तकके भी ध्यान तो होता है किन्तु मनके न होनेसे कोई विशेषता वाला तो नही है, है वह आर्त और रौद्रध्यान रूप । ध्यान मूलमे ४ प्रकारके है—आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान । इनमेसे धर्मध्यान और शुक्लध्यान तो मोक्षके कारण है और आर्त व रौद्रध्यान ससारमे परिभ्रमण करानेके कारण है । धर्मध्यानमे ४ ध्यान बताये गए थे—आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और सस्थानविचय । भगवानकी आज्ञाको प्रधान करके चिन्तवन करना आज्ञाविचय है, और ये रागादिक कैसे दूर हो उनका चिन्तवन करना अपायविचय है, कर्मोंका चितवन करना विपाकविचय है और लोकका आकार, कर्मकी रचना, कालकी रचना, इन सबका ध्यान आता है तो यह है सस्थानविचय । इसके अतिरिक्त सस्थानविचयके ४ और भेद किए गए—पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत । पदस्थ ध्यानको पार्थिवी, आग्नेयी, मारुती और तत्त्वरूपवती धारणाके सहारे ध्यान बताया है । अब यह पदस्थ ध्यानका प्रकरण है । इसमे पदोंके सहारे ध्यान बताया जा रहा है । अनेक मत्रोका वर्णन करनेके बाद इस समय अष्टाक्षरी मत्रका जो कि मायावर्ण सहित है, वर्णन चल रहा है । इस ध्यानमे दो लाभ हैं—एक तो चित्तकी स्थिरता होती है, दूसरे कुछ तत्त्वसे सबध रखने वाले ये मत्र हैं तो तत्त्व-स्वरूपपर भी दृष्टि जाती है और जिसके प्रतापसे निर्विकल्प ध्यानका आत्मानुभवका अवसर आता है । चित्तको एकाग्र करनेके लिए अन्य भी अनेक उपाय हैं जिन्हे प्राणायाम वाले किया करते है, किसी स्थानपर सामने कोई शून्य बना लेते हैं और उस शून्यको एकटकी लगाकर देखते है । यद्यपि वह काला बिन्दु है फिर भी बहुत देर तक निगाह करनेके बाद उसे सफेद रूपमे ध्यान करें और दिखने भी लगे सफेद । ऐसी अनेक विधिया अन्य-अन्य प्रकारकी की जाती हैं किन्तु उनमे फिर भी सम्बध नही है । एक चित्तको एकाग्र किया गया है, किया गया है अटपटा लक्ष्य । इस मत्रके ध्यानमे चित्तकी एकाग्रता भी रही और तत्त्वस्वरूपका चिन्तन भी बने, इस प्रकार वर्णन है ।

प्रभामण्डलमध्यग कर्णिकोपरि ह्रीं मायावर्णका चिन्तन—इस योगीने अपने आपके

देहमे मुखके स्थानपर एक ८ पत्रोका कमल चिन्तन किया, और वह कमल भी कान्तिवान स्वच्छ है। उन पत्रोपर ये ८ अक्षर भी लिखे हुए दिखे—ॐ णमो अरहंताणं, और उस कमल के बीचमे कर्णिका है, जो कर्णिका अपने चारो ओर फैले हुए केशरपक्तिके बिखरनेसे सर्वत्र स्वर्णवत् कान्तिमान पीतरंगका हो गया है, ऐसी उस कर्णिकामे मायावर्ण अर्थात् ह्रींका चिंतन करें। उस ह्रीं का वर्णन किस किस प्रकारसे करे उसका वर्णन इन तीन श्लोकोमे किया जा रहा है। यह ह्रीं अक्षर स्फुरायमान हुआ होता है ऐसा चिन्तन करें, जैसे कुछ पेन्टर लोग इस प्रकारसे अक्षरोको लिखते है कि देखनेमे ऐसा आता है कि ये अक्षर लिखे नही गए किंतु रंग बिरंगे काटके बनाये गए और वे ऊँचे-ऊँचे अक्षर है, वे अक्षर चिपके हुए है, वे अक्षर पोते हुएसे नही लगते, किन्तु मालूम होते है कि ये करीब एक या आध इंचके मोटे अक्षर है। ऐसे मानो एक या आध इंचके अक्षर बनाकर काटकर चिपकाये जायें तो वे अक्षर स्फुरायमान प्रतीत होते है। स्फुरायमानके अर्थमे बताया जा रहा है कि जैसे पोते हुए अक्षर न लगें किन्तु उठे हुए उन्नतिशील अक्षर मालूम पड़ें, इसी प्रकार ये योगी उस ह्रीं अक्षरको भी लेपे पोते हुए की तरह नही निरखते किन्तु वे स्वयं अपना कुछ रूप रखे है, अपना एक पिण्ड बनाये हुए है और वे स्फुरायमान है, इस प्रकार उस ह्रीं वर्णका चिन्तन करें। इसके पश्चात् उस ही ह्रीं को देख रहे है कि अत्यन्त अनुपम प्रभामण्डलके साथ यह विकसित होता है जिसके चारो ओर जैसे चन्द्रमण्डल रहता है इसी प्रकार इस मंत्रके चारो ओर एक प्रभामण्डल फैला हुआ है।

प्रतिपत्रपर संचरण करते हुए ह्रीं का चिन्तन—फिर यह योगी देखता है कि इस मुखकमलमे विचरते हुए उस ह्रीं को ही देख रहा है कि यह ह्रीं अक्षर वहाँ गया यहाँ गया, यहाँ रहा। जैसे-जैसे उपयोग बनाता है वैसे-वैसे ये अक्षर चल रहे है, यह उपयोगकी बात है। मंत्र साधना वाले लोग जो कही बैठे ही बैठे किसी जगहके रथका चका तोड देते है या कील निकाल देते है, ऐसा उन मंत्रवादियोको करते हुए देखा भी होगा अथवा सुना भी होगा। इस मंत्रवादीने अपने उपयोगमे वह रथ पूरा लिया है, एकाग्र चित्त होकर उसमे कुछ अपनी शक्ति बढायी है और उस समय अपना उपयोग जिस पुर्जेको तोडनेका बनाता है वहाँ वह पुर्जा टूट जाता है। तो वहाँपर उस मंत्रवादी द्वारा ऐसा हो जाय तो यह बात असम्भव नही हैं। लेकिन इसमे यह शंका की जा सकती है कि फिर अध्यात्मतत्त्व क्या रहा? क्या कोई द्रव्य किसी दूसरे द्रव्यका कुछ सुधार बिगाड कर सकता है? उस मंत्रवादीने सोचा और वह चका उसके सोचनेसे ही टूट गया, तो ऐसा भी हो सकता है क्या? तो इसे अध्यात्मपद्धतिसे देखो तो उस समय भी इस मंत्रवादीके विचारनेसे वह चका नही टूटा, किन्तु वहाँ ऐसा विचित्र निमित्तनैमित्तिक सम्बध है कि उस मंत्रवादीने जिस समय अपना उस प्रकारका चिंतन बनाया

उसी समय उस रथमे चका टूटनेका काम होना था सो टूट गया। यह एक निमित्तनैमित्तिक सम्बधकी बात दर्शायी गयी है। दूसरी बात देखो—सर्प विच्छू आदिकका विष उतारने वाले लोग मंत्र पढते जाते है और उधर विष उतरता जाता है तो वहाँ क्या बात है ? वहाँ भी एक ऐसा निमित्तनैमित्तिक सम्बध है कि वह मत्रवादी अपने आपमे उस प्रकारका चिन्तन कर रहा है और उधर विष उतर रहा है। तो ये सब बातें होकर भी वस्तुस्वरूपकी बात सर्वत्र वही रहती है।

मन्त्रसाधनमे भी योगीका लक्ष्य अन्तस्तत्त्व—कोई भी वस्तु अपने प्रदेशोसे निकलकर अन्य वस्तुमे तन्मय होकर परिणमन करती हो, यह त्रिकाल भी नही हो सकता। पर मत्र-साधनाका सम्बध निमित्तनैमित्तिक योगसे है। तो ऐसे निमित्तनैमित्तिक प्रसगमे कार्य होते है और उन कार्योंको कोई केवल इस दृष्टिसे देखे कि जितना जो कुछ होगा वह किसी अवधि-ज्ञानीने तो जाना ही है। केवलज्ञानीकी बात अभी जाने दो, अवधिज्ञानीकी जानी हुई बात भी सत्य तो नही होती। उसने जाना कि अमुक दिन अमुक क्षरण यह होगा, लेकिन यह उसने अपने आप ही नही जाना ऐसी कल्पना करके, किन्तु पदार्थमे जब जिस विधिसे जो बात होने को होती है वह उस विधिसे बनती है, उसको समझ लिया है। कोईसा भी विभावपरिणमन उस पदार्थमे अपने आपके सत्त्व मात्रके कारण किसी परउपाधिका सम्पर्क पाये बिना सम्भव ही नही है। यदि परउपाधिके बिना कोई विभावपरिणमन सम्भव हो जाय तो वह विभाव क्यो रहेगा, वह तो स्वभाव कहलायेगा। तो सब ओरकी दृष्टियोसे सभी नयोकी बातका निर्णय करने वाले ज्ञानी पुरुष फिर अपने आपमे तत्त्व कौतूहली बनकर परका कुछ भी चिन्तन करके अपने ही लक्ष्यपर पहुचता है। इस मंत्रसाधनमे योगी केवल एक हो अपना लक्ष्य बनाये हुए है, मेरेको आत्मानुभव हो यह उसका मुख्य लक्ष्य बना है। जो आत्मानुभवी पुरुष होगा उसे ये सासारिक प्रक्रियायें नही रुचती है। हाँ ज्ञानका परिचय होनेपर भी उपयोग उस प्रकारका अनुभव करनेमे किसी वजहसे असमर्थ हो रहा है, चित्त स्थिर नही है, चित्तमे यत्र तत्र विकल्प दौड रहे है तो उस चित्तको वश करनेके लिए ये प्रक्रियाये बतायी जा रही है। इन प्रक्रियावो को करते हुए भी ज्ञानी पुरुष किसी सासारिक मामलेमे फिसल नही जाता, कुछ अपना लक्ष्य अन्य नही बना लेता, यह ध्यान भी तो योगीको केवल आत्मानुभवके लिए है।

विचिन्तित ह्रीं मंत्रका प्रभाव—इस समय इस मुख-कमलमे उस मत्रके बीच कर्णिकामे ह्री वर्णका चिन्तन अपने उपयोगसे एक टकटकी लगाकर कर रहा है। यह ह्री स्फुरायमान है। मुख-कमलमे लो अब यहाँ उठा, अब बैठा, अब सचार किया, इस तरह उस ह्री वर्णका जैसे जैसे यह उपयोग करता है वैसे ही वैसे यह ह्री अक्षर चल रहा है और यह चलते हुए कभी-कभी उन कमलके ८ दलोपर फिर रहा है, स्पर्श कर रहा है और कभी क्षणभरमे आकाशमे अति

दूर पहुच गया है, फिर उसे लाकर अपने स्थानपर बैठाया है। एक उस ह्री का ही वह ध्यान कर रहा है, चिन्तन उसका इस एक मायावर्णमे ही है। कभी यह अज्ञान अधकारको दूर करता हुआ और एक तृप्ति अमृत जलसे पूर्ण होकर तालुवोके छिद्रसे गमन करता हुआ यह दिख रहा है। जब अधिक समय इस मत्रके ध्यानमे लगे, चित्त एकाग्र हो तो उस योगीके स्वय ही अपने आप तृप्ति होती है, सतोष बनता है, तो वह तृप्ति मानो एक अमृत है और उस ह्री अक्षरसे मोक्ष मिलता है, वह अमृतवत् गीला होता है और यह तालूके छिद्रसे जो मस्तिष्क के बीच अत्यन्त पतला स्थान होता है, जैसे कि छोटे बच्चोके सिरके बीच वह कुछ लोकता हुआसा स्थान रहता है जिस बीच तेल डालकर कुछ ठढाईका अनुभव करता है तो उस स्थान से वह चल रहा है और वहाँ फिर प्रवेश कर रहा है और उस ही रध्र स्थानसे चलकर भौहो मे स्थिर रहता है, अपने इस ह्री मत्रको मुखके समस्त स्थानोमे विचारता हुआ निरखता है और फिर देख रहा है कि यह शाश्वत ज्योतिके समान अचिन्त्य जिसका प्रमाण है, बहुत बडे विस्तार वाली ऐसी लम्बाईमे चित्त लगा रहा है।

"**ह्री मंत्रसे अमृतस्रवण**—यहाँ ध्यानकी प्रक्रिया की जा रही है। इसमे एक समझने की बात यह है कि ह्री एक ऐसा बीजाक्षर है कि इसमे क्या-क्या तत्त्व बसे है इसको हम आप बता नही सकते है, पर थोडा-थोडा कुछ जो समझा है यह ह्री चतुर्विशक तीर्थंकरोका बोधक है जो कि उन अक्षरोमे, अकोमे जो सकेत है उनसे मालूम होता है। यह ह्री ॐ की ही भाति समस्त श्रुतका प्रतिनिधिरूप अक्षर है और इसमे जो जो कुछ पूज्य तत्त्व है उन सब तत्त्वोका समारोह है, इनका प्रभाव और इनका अर्थ, इनका सकेत प्रतिपादन किया जानेसे परे है, ऐसा यह माया वर्ण ह्री का चिन्तन यह योगी पुरुष कर रहा है। उसने अपने इस मुख-कमलमे इतना विराटरूप सोचा है कि कमल है, ८ पत्र है, उनपर यह मुख्य मत्र बसा हुआ है—ॐ णमो अरहताण और उसकी कर्णिकामे ह्री मायावर्ण स्थिर है, इस मत्रको जेसा चलावो चल रहा है, इस तरह बहुत देर तक ध्यान करनेके प्रसादसे सन्तोष होता है, सो मानो यह अमृत को झराता हुआ ही ह्री वर्ण विराजा है।

वाक्पथातीतमाहात्म्य देवदैत्योरगार्चितम् ।
विद्यार्णवमहापोत विश्वतत्त्वप्रदीकम् ॥१९६३॥

अष्टाक्षरी मंत्रकी महामहिमताके प्रकरणमे ध्यानके दृढ़ संकल्पकी प्रेरणा—इस मत्र का माहात्म्य वचनातीत है, इसको देव, दैत्य, नरेन्द्र पूजते है। यह मत्र विद्यारूपी महासमुद्रके तिरनेके लिए महान जहाजके समान है और यह जगतके समस्त पदार्थोंको दिखानेके लिए एक प्रदीप है। जिसने अपने आपमे अपने आपका मर्म पहिचाना वह योगी पुरुष अपनी साधनाके बीच जिस किसी भी प्रकार यत्र तत्र मत्रका आराधन करता है। उसके उन समस्त प्रक्रियावो

मे वह ज्ञानज्योति प्रगट हुई है, क्योकि मूल कार्य था अपने आपके स्वरूपका सही परिचय पा लेना, वह पा चुका है यह ज्ञानी। अब चित्तकी स्थिरताके लिए ध्यानकी प्रक्रियामे अपना उपयोग बनाया है। मुख्य बात यह है कि हित चाहने वाले पुरुषको अपना लक्ष्य दृढ और निर्णीत कर लेना चाहिए। यद्यपि कर्मोका उदय कुछ ऐसा ही विचित्र है कि हम अपने लक्ष्य पर टिक नही पाते, जम नही सकते, यत्र तत्र चलना पडता है, निरखना पडता है तिसपर भी जब कोई समय आता है कुछ समस्यायें सुलझानेका, एक निर्णय बनानेका तो उस समय वह लक्ष्य ही दृष्टिमे रहे, इतनी श्रद्धा होनी चाहिए। कितनी ही दूर पहुच जाय, कितने ही झझटो मे आ जाय लेकिन भीतरमे यह धारणा वासना बनी ही रहनी चाहिए कि मेरेको मेरे करनेके लिए एक आत्मानुभवका ही काम पडा है जो कि अनिवार्य है और सच्चा है। जैसे कोई पुरुष मकान बनवाता है तो उसका लक्ष्य एक है—मकान बनवानेका, लेकिन उस बीच उस ही प्रसगमे पचासो काम और भी तो करने पडते है। नक्शा बनवाना, पास कराना, ईंट, रोडी आदिका प्रबध कराना, लोहा, सीमेन्ट आदिका प्रबध करना, मजदूरोका प्रबन्ध करना, उनका हिसाब-किताब रखना, यो अनेक काम करने पडते हैं, पर लक्ष्य उसका ये सब करनेका नही रहता। लक्ष्य तो एक है—मकान बनवानेका। चाहे वह किसी दिन केवल ईंटोके प्रबधमे ही रहे अथवा सीमेन्टके लिए ही बडी-बडी दौड धूप दिन भर करता रहे फिर भी उसका लक्ष्य वे कार्य करनेका नही है। उसका लक्ष्य तो है मकानके बनवानेका। तो जैसे लक्ष्य तो एक हुआ और अलक्ष्य पचासो हुए, इसी प्रकार जो ज्ञानी विवेकी पुरुष होते है उनका लक्ष्य एक ही रहता है, वह क्या ? ज्ञानानुभव करना, आत्मस्वभावका दर्शन करना, उसमे ही मग्न होना।

ज्ञानीका सुलक्ष्यपूर्तिका सम्बन्ध—अब निरखिये जो जो कुछ भी वह ज्ञानी काम कर रहा है वे सब काम किसी न किसी अशमे इस लक्ष्यकी पूर्तिका सम्बध बना रहे है। एक गृहस्थ विवाह करके पत्नी सहित रह रहा है तो उसका मुख्य लक्ष्य क्या है ? उसका लक्ष्य है कि यह मेरा उपयोग यत्र तत्र अन्य अनेक स्त्रियोमे न भटके और अन्य समस्त परस्त्रियोसे मेरी निवृत्ति हो जाय, ऐसा उसका लक्ष्य है। बहुतसे झझटोसे हटकर केवल एक ही यह झझट रह गया, इससे भी कभी परिणामोने पलटा खाया तो दूर हो लेंगे और अपने आपके ब्रह्मस्वरूपमे लीन हो सकेंगे। ऐसा जिसने भी लक्ष्य बनाया है वह गृहस्थी के अनेक झझटो के बीचमे रहता हुआ भी सक्लिष्ट नही होता। उसका तो लक्ष्य ही दूसरा बना हुआ है। वह विवेकी गृहस्थ मुख्य रूपसे चाहता तो यह था कि नि सग होकर सर्वसे निराला रहकर अपने आपकेआत्मतत्त्वमे अपने उपयोगको बसाये रहू और निरन्तर आत्मीय आनन्दसे तृप्त होता रहू, किन्तु उदयवश ऐसा न हो सका, और मैं इस मार्गसे मैं कही विचलित न हो जाऊँ, इसके लिए श्रावक धर्मको अगीकार किया। अब इस श्रावक अवस्थामे रहकर ये आजी-

विकादिके कर्तव्य पडे है, नही तो काम कैसे चलेगा, तो आजीविकाका कार्य भी करना पडता है, पर भावोमे अन्यायकी बात नही आ पाती, क्योकि अन्यायसे धन कमाकर लोगोको सता कर वैभव जोडे, इसके मुकाबले तो यह ठीक समझ रहा है कि मै इस गृहस्थीके झझटका ही परित्याग कर दूँ। सभी जीवोके साथ उनके कर्म लगे हुए है—उनके तो उनके अनुसार बात होगी। क्या प्रयोजन पडा है, इतनी तैयारी वह अपने आपमे बनाये हुए है, इस कारण वह अन्यायकी प्रवृत्ति नहीं करता है। तो किन्ही न किन्ही अशोमे आजीविका करनी पडती है, पर उस श्रावकका सम्बन्ध अपने लक्ष्यसे बना हुआ है। जैसे कोई बालक पतग उडाता है तो सारी डोर तो उसके हाथमे है, पतग आकाशमे बहुत दूर पर है, जब वह उस डोरको ढीला करता है तो पतग और भी ऊँचे चढ जाती है, पर उसके चित्तमे यह बराबर बना हुआ है कि यह सब काम तो मेरे हाथमे है, तो इसी प्रकार यह श्रावक भी तत्त्वाभ्यासमे इतना कुशल बन गया है कि गृहस्थीके इन सब कार्योंको करते हुए भी एक यह साहस बनाये है कि मेरी बात तो मेरे हाथमे ही है सब। जब चाहू तब अपने आपका हित मै पूर्णरूपसे कर सकता हू। तो यह योगी पुरुष अपने आपके उस महान लक्ष्यको बनाये हुए है, उस ज्ञानस्वरूप का परिचय पाये हुए है तो इन मत्रोके ध्यानमे भी वह अपना ही विकास निरख रहा है।

अमुमेव महामन्त्र भावयन्नस्तसशय ।
अविद्याव्यालसभूत विपवेग निरस्यति ॥१९६४॥

अष्टाक्षरी महामंत्रके ध्यानसे अविद्या सर्पविषका निरसन—इस महामत्रको सशयरहित होकर ध्यान करने वाला मुनि अविद्या व्यालसे उत्पन्न हुए विषवेगको दूर करता है। ज्ञानका विकास होता है तो रटनेसे या जो जो भी विधिया आजकल प्रचलित है उन विधियोसे ज्ञान विकास नही होता। हो तो रहा नोकर्मसे, नोकर्म बन रहे है, पर मूल बात तो विशुद्धिकी है। यदि कोई पुरुप अपने चित्तको एकाग्र बनाये, समस्त परवस्तुवोके जाननेकी हठको छोड दे, किसीको भी नही जानना है, सबका जानना छोडकर बडे विश्रामसे अपने आपमे अपने उपयोगको स्थिर कर लें तो ऐसे विश्रामके समयमे स्वय अपने आपमे ऐसी शक्ति विकसित होती है कि वही ही एक अद्भुत ज्ञानप्रकाश होता है और उसमे ऐसा बल भी आ जाता है कि चारो ओरके अनेक परपदार्थोको बिना ही चाहे, बिना ही जिज्ञासा किए जान ले। ज्ञान विकासका अमोघ साधन अपने आपके स्वरूपमे केन्द्रित होकर विश्राम करना है, न कि अन्य अनेक परिश्रमोसे यह ज्ञान कमाया जा सकता है। तो इस मत्रध्यानमे वह योगी यही तो कर रहा है। सर्व ओरसे चित्त विकल्प हटाकर अपने आपमे लीन हो रहा है तो फिर ऐसा बल प्रगट होता है कि समस्त अज्ञान अंधकार इसके दूर होते है और उस ज्ञानप्रकाशमे विशुद्ध आत्मीय आनन्दकी तृप्तिसे तृप्त रहता है। सारा दुःख तो परद्रव्योसे राग करनेमे है, वह

बात मिटी कि सारे कष्ट एकदम शान्त हो जाते हैं, उसी उपायमे यह मत्र प्रक्रियाकी बात बतायी जा रही है।

इति ध्यायन्नसौ ध्यानी तत्सलीनैकमानस ।
वाड्मनोमलमुत्सृज्य श्रुताम्भोधि विगाहते ॥१९६५॥

इस योगीने अपने मुखके स्थानपर कान्तिमान कमलकी स्थापना की है और उसके ८ पत्रोपर ॐ णमो अरहंताण ये ८ शब्द लिखे है। यह अष्टाक्षरी मत्र बडे महान आशयको प्रगट करता हुआ है। इसमे अरहतप्रभुको नमस्कार किया है। ससारमे सर्वोच्च पद है तो यह अरहत पद है। यद्यपि इससे उत्कृष्ट सिद्ध अवस्था होती है किन्तु गुणोकी दृष्टिसे अरहत और सिद्ध अवस्थामे कोई अन्तर नही है और फिर दूसरी बात यह है कि अरहत परमात्मा का दर्शन हो सकता है और यहाँ मनुष्यलोकमे बिहार करते हैं। उनके शरीरका आकार मनुष्योका ही है ऐसी अनेक बातोसे व्यवहारीजनोसे निकटता होनेके कारण अरहतपदकी उत्कृष्टतासे ज्यादा सम्बधित है। तो अरहत प्रभुके गुणस्मरणके साथ जहाँ वीतरागता उत्कृष्ट प्रगट है और सर्वज्ञता भी प्रगट हैं ऐसे उस परमपावन परमात्माके गुण स्मरणके साथ यदि अरहतका जाप हो, इन शब्दोका उच्चारण हो तो भक्त पुरुषके अनेक पाप इस भक्तिमे, इस वीतरागताके अनुरागमे ध्वस्त हो जाते है और फिर यह प्रणव मत्र उस पल्लव सहित मत्र है। इसकी कर्णिकामे ही मायावर्णकी स्थापना की है और वहाँ उस ह्री को अपनी एक सहज लीलाके अनुसार कभी मुखमे, कभी भौहमे, कभी आकाशमे अत्यन्त दूर, कभी तालूके द्वारसे प्रवेश करता हुआ, कभी अमृत झराता हुआ उस ह्री का यह योगी चिन्तवन कर रहा है। योगी उस मत्रके ध्यानमे सल्लीन होता हुआ, चित्तसे ध्यान करता हुआ वचन और मनके दोषोको दूर करके शास्त्ररूपी समुद्रमे अवगाहन करता है। इस मत्रध्यानसे वचनोंके दोप सब नष्ट होते है और मनके सब दोष नष्ट होते है। वचनोंके दोप और मनके दोप—ये ज्ञानके विकासमे भी बाधक हैं। जैसे अनेक लोग यहाँ पूछते हैं कि हमारा प्रभुभक्तिमे चित्त नही लगता, बहुत-बहुत अध्ययन करते हैं पर शास्त्रोकी बातें समझमे नहीं आती। हमारे ज्ञान नही बढता। तो ज्ञान न बढनेका यह भी कारण है कि हमारा व्यवहार वचन दोप और मन के दोषसे सहित रहता है। मन सरल रहे, किसीके अहितका चिंतन न रहे, किसी भी गुणीके प्रति द्वेपभाव न रहे, सर्व जीवोमे एक समताका भाव रहे, किसीको विरोधी न माने, जैसा यथार्थस्वरूप है वैसा जानकर समाधानरूप रहे और इसी बलसे वचनव्यवहार भी सबके प्रति हित मित प्रिय निकलें। यो वचन और मनके वैभवके कारण ज्ञानका भी विकास होता है, ज्ञानावरणका क्षयोपशम बनता है, तो यह योगी इस मत्र ध्यानसे वचन और मनके दोषो को दूर करके शास्त्रोमे अवगाहन करता है।

ततो निरन्तराभ्यासान्मासैः षड्भि स्थिराशयः ।
मुखरन्ध्राद्विनिर्यान्ती धूमवर्तिं प्रपश्यति ॥१९६६॥

ध्यानसाधनाके ६ माह निरन्तर अभ्यासीके अतिशय—इसके पश्चात् निरन्तर अभ्यास करके यह योगी पुरुष ६ माहमे अपने मुखसे निकली हुई धूमवर्तीको देखता है । ध्यानसाधनाके निरन्तर अभ्यासमे लगे हुए योगीके क्या-क्या अतिशय बनते है और उससे क्या प्रभाव बनता है उसकी बात कुछ श्लोकोमे की जायगी । यहाँ यह बतला रहे है कि ऐसे आन्तरिक ध्यानके प्रतापसे इस मायावर्णके ऐसे अद्भुत ध्यानसे ६ माह पश्चात् इतना निरन्तर अभ्यास होनेके बाद उसके मुखसे एक धूमवर्ती निकलती है ऐसा उसे कुछ दीखता है । इसका सम्बध चूंकि पापके विध्वससे है तो पापकर्मोका ध्वस जिन परिणामोसे होता है उन परिणामोके होनेपर एक अलकारिक एक अतिशय इस प्रकारका होता है कि जो व्यवहारसे भी मेल खाता है, किसी पापके ईंधनके कुत्सित पदार्थोके ध्वस करनेसे, तो ऐसे अभ्यासके बाद यह योगी ६ माहमे धूम की एक छोटीसी पक्तिको देखता है ।

ततः सवत्सर यावत्तथैवाभ्यस्यते यदि ।
प्रपश्यति महाज्वाला नि सरन्ती मुखोदरात् ॥१९६७॥

ध्यानसाधनाके वर्ष पर्यन्त निरन्तर अभ्यासीके अतिशय—तत्पश्चात् यदि एक वर्ष पर्यन्त और अभ्यास चले तो उस अभ्यार्थीके मुखसे एक स्वच्छ मनोरम स्वर्णवत् प्रकाशमय गुणोकी ज्वालोको देखता है, उसके प्रतापकी महिमा दिखाई जा रही है । अन्तरङ्गमे उसने ऐसा प्रतपन किया कि जिसके प्रतापसे उसे इस १॥ वर्षके अभ्यासके पश्चात् यो दिखता है कि बहुत सुन्दर एक सूक्ष्मरूपसे एक छोटीसी पक्ति जैसे कि भगवानकी आरती करते है तो आरतीमे दीप शिखायें होती है उसकी तरह मुखसे एक अग्निकी ज्वाला दिखती है ।

(पदस्थध्यान वर्णन प्रकरण ३८)

ततोऽतिजातसवेगो निर्वेदालम्बितो वशी ।
ध्यायन्पश्यत्यविश्रान्त सर्वज्ञमुखपङ्कजम् ॥१९६८॥

परिनिष्ठित ध्यानीके सर्वज्ञका दर्शन—मायावर्णके चितनके १॥ वर्ष अभ्यासके पश्चात् जो मुखमध्यसे निकलती हुई निर्धूम कान्तिमान महाज्वालाका आभास होने लगा था, यह चिह्न है पापकलकोको ध्वस्त किए जानेका । इस मायावर्ण "ह्रीं" ध्यानके प्रतापसे चित्तको वश किया है योगीने, और अपने आत्माके स्वरूपका लक्ष्य तो था ही, तब यह सब एकाग्रता, यह सब आत्मविश्राम, ये सब उपचरित तपश्चरण—इन पापकर्मोको ध्वस्त करता है और मोहके नष्ट हो जानेपर और अपने आपमे अपने आपके स्वरूपका सुसवेदन प्रत्यक्ष होते रहनेके कारण इस योगीने जिसे कि महान अनुराग उत्पन्न हुआ है । इस ध्यानी मुनिको सर्वज्ञका मुखकमल

दिखता है अर्थात् इतनी धुनि वाला बन गया है कि इसे साक्षात् सर्वज्ञदेव विराजमान हैं इस प्रकार दर्शन होता है। जब किसी ओर ध्यान अधिक हो जाता है तो उसका आकार अपनेको स्पष्ट दिखने लगता है। यह तो एक पवित्र आत्माके ध्यानकी बात चल रही है लेकिन किसी भी पुरुषको जो जिसका बहुत अधिक ध्यान रखता है तो उसे स्वप्नमें भी वह दिखता है और जगती हुई हालतमें भी वह दिखतासा मालूम होता है। यहाँ योगी पुरुषको और काम ही क्या है ? इस मन्त्रमें भी ध्यान सर्वज्ञदेवका ही किया गया है। तो इस अमोघ कलाके अभ्यासके बाद उसका चित्त इतना स्वच्छ और समाधानरूप बना है कि उसे सर्वज्ञदेवकी मुखमुद्रा दीखा करती है।

कितने ही पुरुष तो ऐसा कहते हुए पाये जाते है कि हमको तो यहाँ सर्प ही सर्प दिखते हैं। है कुछ नही, सुनने वाले हैरान हो जाते है। एक भाई अपने कमरेमे ही बना रहता है चुप-चाप। हम अनुरागवश उससे मिलने गए, उसने बहुत अच्छी तरहसे बातचीत की और बताने लगा कि हमको तो हर जगह सर्प ही सर्प दिखते हैं। खानेमे सर्प, पानी पीवें तो गिलासमे सर्प, बैठें तो आसनपर सर्प दिखते हैं, तो यह क्या है ? अरे किसी चिन्ताके कारण अथवा कोई ऐसी धुनि बन गयी, कोई ऐसी कठिन स्थिति आ गई कि कुछ बता भी नही सके, सह भी नही सके, ऐसी कठिन स्थितिके समयमे चित्तमे ऐसा भ्रम हो जाता है कि उसे ऐसा ही दिखता रहता है। तो यह तो भ्रान्त पुरुषकी बात कह रहे है और यहाँ निर्भ्रान्त समाधानरूप सयमी पुरुष जो उसके लिए आदर्श बना है, श्रेय है, कल्याणरूप ही है और जिसे चाहा भी जा रहा है, जिससे हित भी बन रहा है, ऐसी जो अरहत देवकी मूर्ति है, मगलमय तत्त्व है उसका वह दर्शन करता है। कोई स्वप्नमे भगवतकी मूर्तिका दर्शन करता और हर्षित होता है तो समझिये कि वह सब दर्शन एक शुभ बातको प्रगट करता है। समृद्धिरूप है, जिससे कि यह सतोप होता है ऐसा स्वप्नद्रष्टाको कि मेरा भविष्य अब बहुत अच्छा है आदिक अनेक कारणोसे स्वप्नमे भी यदि सर्वज्ञकी मुद्राका दर्शन हो तो कितना आनन्द होता है। इस योगी को इतना अधिक अनुराग था प्रभुसे कि उस साधनामे उसे सर्वत्र वही सर्वज्ञदेवकी मूर्ति दिखती है।

अथाप्रतिहतानन्दप्रीणितात्मा जितश्रम ।
श्रीमत्सर्वज्ञदेवेश प्रत्यक्षमिव वीक्षते ॥१९६९॥

परिनिष्ठित ध्यानीके प्रत्यक्षकी तरह प्रभुका अवलोकन—अब इसके बाद वही ध्यानी जिसे अप्रतिहत आनन्द हो रहा है, जो एकाकी अपने आपसे ही बाते करता हो, अपने आपके गुणोंके ध्यानके प्रतापसे आनन्द पाता हुआ जो तृप्त रहा करता है, ऐसा यह योगी इसने सारे दुःखोको जीत लिया है। दुःख होते है परदृष्टिसे। परदृष्टि जिसके नही रही, निरन्तर स्वकी

दृष्टि बनी है, निरन्तर प्रभुके दर्शनकी ही जिसके धुन रहा करती है अब उसे और क्या दु ख है ? उसके न कोई महल है, न कोई परिवार है, न कोई निंदक है, न कोई प्रशसक है, उसका तो केवल वही एक अतस्तत्त्व है, ऐसा जो अपने इस एकाकी परमात्मस्वरूप तक पहुचा है उस योगीको दु.ख क्या है ? दु ख तो तब होता है जब कि परमे दृष्टि है। कही धन नष्ट न हो जाय, धन और मिलेगा या न मिलेगा, इस विचारमे दुःख है। दूसरा दुःख यह है कि लोग जीनेकी इच्छा करते है, मैं जी भी सकूंगा या नही, कही मेरा मरण तो न हो जायगा, ऐसा चित्तमे भाव उटता है। तो दु.ख तो ये दो ही प्रकारके है। धनमे सभी धन आ गए। उस योगीने तो किसी भी चीजकी आशा ही नही रखी है। वह तो जानता है कि बाह्यमे जो हो सो हो। मेरा जीना क्या और मेरा मरना क्या ? मैं तो अपने आपकी दृष्टिमे जैसा मै परिपूर्ण सत् हू वह बना रहता हू, यहाँ न रहा तो किसी और जगह चल दिया। तो जिसके लिए एक आत्मा ही आत्मा है उसका मरण क्या ? मरण है मोही पुरुषोका। मरणमे दु.ख हुआ करता है मोहका। अब यह घर छूट गया, इसको कितनी कठिनाईसे बनाया था, अब ये परिजन छूट रहे, इनमे हमारा कितना अनुराग था, इनका हमपर कितना अनुराग था, पर ये भाई, यह स्त्री, ये पुत्र आज कोई भी मेरे साथ नही जा रहे है, मुझको यहाँसे सदाके लिए अकेला ही जाना पड रहा है, यह विकल्प है उस मोहीको, इस बातका दु ख है, मरणमे यह दुःख है, और कोई मरते समय अपना ध्यान ऐसा रखे कि यह मै ज्ञानदर्शनस्वरूप आत्मा यह प्रत्यक्षमे जो आ रहा है वह तो कभी मरता ही नही है, उसका जीवन मरण क्या, वह तो सदा सर्व परसे भिन्न है, उसमे तो कोई क्लेश ही नही है, ऐसा चिन्तन करने वाला योगी अपनी विशुद्धिके अतिशयसे सर्व दु.खोको जीत चुका है, उसे अब सर्वत्र सर्वज्ञदेवका ही साक्षात् दर्शन हो रहा है।

आत्मद्रष्टाकी सर्वज्ञदर्शनपात्रता—जो अपने आत्माको अधिकाधिक स्पष्ट निरख सकता है वह पुरुष भी प्रभुका साक्षात् दर्शन कर सकता है। समवशरणमे भी क्या किसीको परमात्माके दर्शन होते है ? जाते इतने लोग है, लाखो पुरुष पहुचते है, उस समवशरणमे पहुचकर भी उस गन्धकुटीमे विराजमान चारो ओर जिसका मुख दिखता है ऐसे उस शरीरको निरखकर भी परमात्माका दर्शन क्या सबने कर लिया ? किसी बिरले ही पुरुषने परमात्माका दर्शन किया। आत्मदर्शनमे जिसका अभ्यास बढ़ा हुआ है ऐसा ही पुरुष वहाँ परमात्माका दर्शन करता है। तो इस योगीने सुसम्वेदन प्रत्यक्षसे अपने आत्माका बहुत-बहुत प्रतिभास किया, अभ्यास किया, जिसके कारण अब इसे सर्वज्ञदेवका प्रत्यक्ष अवलोकन होता है। लो कोई प्रतिमूर्ति देखा तो दूसरेका कैसा स्पष्ट स्मरण होता है ? तो भगवानकी प्रतिमूर्ति है यह मैं स्वय आत्मा। वह योगी इतना अभ्यासी बना है कि भगवानके स्वरूपकी प्रतिमूर्ति रूप अपने आत्मा

का दर्शन पुनः पुनः कर रहा है। अपने आत्माका भी स्पष्ट अवलोकन करता है वह योगी और प्रभुका भी स्पष्ट अवलोकन कर रहा है। जिसका मन ऐसा बन गया है, जिसका उपयोग ऐसा बन गया है अब उसे ससारमे क्या चाहिए ?

सर्वातिशयसम्पूर्णं दिव्यरूपोपलक्षितम ।
कल्याणमहिमोपेत सर्वसत्त्वाभयप्रदम् ॥१६७०॥

परिनिष्ठित ध्यानी द्वारा सर्वातिशयसम्पूर्ण दिव्यरूपोपलक्षित प्रभुका अवलोकन— यह योगी सर्वज्ञका किस रूपमे ध्यान कर रहा है, किस रूपमे प्रत्यक्ष निरख रहा है ? यह सर्वज्ञ देव सर्व अतिशय परिपूर्ण है, स्वयमे जिसके अतिशय प्रगट हुआ है वह प्रभु अतिशयका भी परिज्ञान करते है। जिनमे कुछ अतिशय हो वे महान अतिशय वालेका भी अदाजा लगा सकते हैं, पर जो स्वय विपयकषायोंमे लीन है, आत्माकी धुनसे रहित है वे प्रभुके अतिशयको क्या समझें ? तो इस योगीके विशुद्ध आत्मामे स्वय ऋद्धि सिद्धि और अतिशय उत्पन्न हुआ है, वह योगी प्रभुको भी सातिशय सम्पूर्ण निरख रहा है। कैसे सर्वज्ञदेवका अवलोकन वह योगी करता है जो दिव्यरूपसे उपवासित है, अन्तरङ्गमे भी दिव्यरूप है, प्रकाशमय एक सम्यग्ज्ञान ज्योति है, वही अपना देव है और अन्तरङ्गमे भी परमोदारिक शरीर अतिशयको दिव्यज्योति प्रगट करता है। बाहर भी देदीप्यमान और अन्तरङ्गमे भी अतिशय देदीप्यमान ऐसे सर्वज्ञदेव का यह योगी अवलोकन करता है।

परितिष्ठित ध्यानी द्वारा पञ्चकल्याणकमहिमोपेत प्रभुका दर्शन—कैसे है वे प्रभु ? जो पचकल्याणक की महिमा सहित है। भगवानके अतरङ्ग स्वरूपका भी यह बारबार अवलोकन करता है। तो जो पुरुष उत्कृष्ट अन्तरङ्ग ध्यानको करता है वह बहिरग अतिशयके ध्यान भी करता है और इस प्रकार अदल बदलकर ध्यान करनेमे अन्तरग ध्यानके प्रसादसे परम अमृततत्त्वकी प्राप्ति करता है। ये प्रभु पचकल्याणककी महिमासहित है, गर्भकल्याणक मे ६ महीना पहिलेसे ही जहाँ रत्नवृष्टि हुई थी, जन्मकल्याणकके समय—जैसे बच्चेके जन्म के समय तो दाइया बच्चेको नहला देती है, पर प्रभुके जन्मकालमे स्वर्गोसे इन्द्र आते हैं और वे बडी महिमासहित ले जाकर मेरु जैसे उच्च स्थानपर स्थापित कर वे स्वय नहान करते हैं। कितना जन्मकल्याणक उत्सव मनाया गया। दीक्षाकल्याणकका तो दृश्य ही अपूर्व होता है। दर्शकोका चित्त वैराग्यसे पूर्ण होता है। वे प्रभु कैसे इस समस्त वैभवको, इस समस्त आकर्षण को, जिन प्रभुके प्रति माता पिता, बन्धु, मित्र, परिवारके लोग पुरवासी सभी लोग, देवता तक भी जिनकी मुखमुद्राको प्रसन्न रूपमे निरखना चाहते थे, लो अब ये सबका परिहार करके, सबका विकल्प तोडकर, किसीको भी कुछ न निरखकर अपने आपके अतस्तत्त्वमे मग्न होनेकी धुनि बनाये हुए है, यही वे परमविश्राम पा रहे हैं। दीक्षाकल्याणककी इन घटनाओंको

निरखकर दर्शक भी ज्ञान-और वैराग्यसे प्रेरित होकर अमृततत्त्वका पान करता है। ज्ञान-कल्याणककी महिमाको कौन कहे, जिसे ज्ञानका साम्राज्य मिल गया, जिसके ज्ञानमे समस्त लोकालोक स्पष्ट झलक रहा है वह तो अद्भुत साम्राज्य समझियेगा। ज्ञानकी सम्पूर्ण सम्पदा उनके ज्ञानसाम्राज्यमे आ गयी है। अरे तीनो लोककी सपदा, समस्त पदार्थोका अस्तित्त्व जिनके ज्ञानमे झलकता है वे सर्वसम्पन्न है। जिसके थोडा ज्ञान होता है उसीके परवस्तुवोमे राग रहता है, पर जिन प्रभुके पूर्ण ज्ञान प्रगट हुआ है उनके तो किसी भी परपदार्थमे राग करने का अवकाश ही नही रह गया है। ज्ञानके उत्पन्न होते ही सम्पूर्ण राग नष्ट हो गया था। ऐसी मोक्षकल्याणककी भी महिमाका ध्यान करता हुआ यह योगी सर्वज्ञदेवका साक्षात् दर्शन कर रहा है। यह प्रभु समस्त जीवोको अभयदान देने वाले है। करते कुछ भी नही, पर देखो कितना बडा अभयदान है कि सिह, गाय, सर्प, नेवला, बिल्ली चूहा ये सब एक जगह बैठे हुए हैं। मनुष्य मनुष्य भी किसीसे आपसमे वहाँ बैर विरोध नही रखा करते। कितना अभय बर्षाया है सर्वज्ञदेवने। उनके समवशरणसे ये सब आश्चर्य प्रगट हुए है। बडी महिमा सहित सर्वज्ञदेवका यह योगी अवलोकन करता है।

प्रभावलयमध्यस्थ भव्यराजीवरञ्जकम्।
ज्ञानलीलाधर वीर देवदेव स्वयभुवम् ॥१९७१॥

परिनिष्ठित ध्यानी द्वारा प्रभावलयमध्यस्थ ज्ञानलीलाधर प्रभुका अवलोकन—जो सर्वज्ञदेव इसकी दृष्टिमे आ रहे है वे किस रूपमे है? प्रभावलयके बीचमे चारो ओर प्रभाकाति है, उस मण्डलके बीचमे स्थित है, भव्यरूपी कमलोको जाज्वल्यमान कर रहे हैं, जिसके सगसे भव्यजन प्रसन्न हो रहे है। उन सर्वज्ञ देवके सर्वविश्वको जानने वाला ज्ञान उत्पन्न हुआ है सो वह विशिष्ट लक्ष्मी वाले है। आत्मामे जो कुछ विभूति है वह सर्व कुछ जिसके विकसित हो गयी है ऐसा स्वयभू अर्थात् अपने आपके स्वभावमेसे ही स्वय परिपूर्ण प्रगट हुआ ऐसे देवाधिदेव सर्वज्ञदेवका अवलोकन कर रहा है यह योगी। वह जान रहा है कि यह प्रभु यहाँ वहाँकी चीजोंके सचयसे नही बने है। कुछ चीजोको मिला-जुलाकर भगवान गढे गए हो ऐसी बात नही है किन्तु वह आत्मा अनादिसे ही अपने ही सत्त्वके कारण ऐसा ही था, जरा विभावो से, कर्म नोकर्मके मेलसे छुपा हुआ था। जब अपने आपके ज्ञानस्वरूपको सम्हाला तो ये सब मल दूर हो गए, और अब ये नाथ स्वय अपने आप जैसे थे वैसे प्रगट हुए है, इस प्रकार सर्वज्ञ देवके दर्शन कर रहा है यह योगी।

ततो विधूततन्द्रोऽसौ तस्मिन् सजातनिश्चयः।
भवभ्रममपाकृत्य लोकाग्रमधिरोहति ॥१९७२॥

परिनिष्ठित योगीका परिनिर्वाणलाभ—अब इस साधक अवस्थामे ही तत्पश्चात् ऐसे

इस यत्र मत्रका ध्यान करने वाला योगी समस्त परिणतियोको नष्ट करके तथा जो कुछ सर्वज्ञका स्वरूप इस ध्यानमे ध्याया है उसका पूर्ण निश्चय करके, समस्त भ्रमको दूर करके, ससारके भ्रमणको नष्ट करके अब यह स्वय सर्व कर्मोसे रहित होकर लोकके अग्र भाग पर अवस्थित हो जाता है। सदाके लिए ससारके समस्त सकटोसे छुटकारा पा जाता है। एक इस मत्रके ध्यानके माध्यमसे परमार्थ तो अपने स्वरूपके ही प्रवल ध्यानसे यह योगी मुक्त हुआ है और ऐसे इस ध्यानके सम्बन्धको लेकर वर्णन किया है। यो इस योगीने मुखकमल मे अष्टदल कमल बिचारा। इन ८ अक्षरोकी स्थापना की। कर्णिकामे सोलह पदोकी स्थापना की। ह्नी वर्णका ध्यान किया, चित्तको एकाग्र किया, आत्मविश्राम किया, सर्वज्ञके दर्शन किया और स्वय ही स्वयमे ध्यानस्थ होकर कर्मोका नाश करके निर्वाणपद प्राप्त किया।

स्मर सकलसिद्धविद्या प्रधानभूता प्रसन्नगम्भीराम्।
विधुबिम्बनिर्गतामिव क्षरत्सुधार्द्रां महाविद्याम् ॥१९७३॥

'क्ष्वी' सकलविद्याके स्मरणका आदेश—हे मुने! समस्त सिद्धि विद्याका भी तू चिन्तवन कर। वह विद्या प्रधान है, प्रसन्न है, गम्भीर है, अनुबिम्बसे निकली हुई के समान जो झरती हुई सुधा है उससे आर्द्रित है, ऐसी वह महाविद्या 'क्ष्वी' ऐसा अक्षर है। यह बीजाक्षर है। इस बीजाक्षर मात्राके उच्चारणसे भी कितनी ही सिद्धियोका सम्बघ है। और उन अक्षरो मे जिन तत्त्वोका सकेत है उन तत्त्वोकी पूज्यता होनेसे भी इन बीजाक्षरोमे बल है। इसे सकल सिद्धविद्या कहते है।

अविचलमनसा ध्यायल्ललाटदेशे स्थितामिमा देवी।
प्राप्नोति मुनिरजस्र समस्तकल्याणनिकुरम्बम् ॥१९७४॥

ललाटदेशमे स्थित 'क्ष्वीं' विद्याके ध्यानका फल समस्त कल्याणलाभ—अविचलमन होकर ललाट देशमे इस विद्या देवीका ध्यान करता हुआ पुरुष समस्त कल्याणके समूहको प्राप्त होता है। प्रथम तो जितने भी अक्षर हैं वे समस्त श्रुतदेवताके प्रतिनिधि हैं और इसीलिए मत्रोमे अक्षरोकी भी पूज्यता है। श्रद्धालु पुरुष अब भी प्रत्येक अक्षरोका महत्व मानते हैं और किसी भी लिखे हुए अक्षरपर पैर धरकर नही चलते। अब तो कुछ यह बात कठिन-सी बन गयी है। नीचे जमीनपर फर्श पर नाम लिखे रहते है, कोई जाने वाला कहाँसे बचकर जाय? और लिखा भी ऐसी जगह जाता है कि जहाँसे लोगोंके पैर निकलें तो दृष्टिमे तो आये लेकिन जिन श्रद्धालु पुरुषोको एक एक अक्षरका भी महत्त्व चित्तमे है ऐसे पुरुष अब भी यत्र तत्र मिलते है जो अक्षरोपर पैर रखकर नही निकला करते है। उनकी दृष्टिमे प्रत्येक अक्षर परम तत्त्वका, परमात्मस्वरूपका, श्रद्धेयतत्त्वका वाचक है। तो वास्तवमे जो एक ऐसा अक्षर है जिसका उच्चारण भी सकेतको सूचित कर देता है ऐसे बीजाक्षरोकी

साधनामे अनेक पृथक्-पृथक् देवी देवतावोका उसमे हाथ है अर्थात् सिद्धि होती है । उसका मतलब क्या है कि जैसे किसी पुरुषके मनुष्य सहायक होते है, वे उसपर प्रसन्न होते है, प्रीति वर्षाते है तो कही देवता भी उसपर प्रसन्न होते है और प्रीति रखते है ? यद्यपि किसी भी योगीका यह ध्यान नही होता कि देवता कोई प्रसन्न हो और हमपर प्रीति रखे, मेरे अनेक कार्योमे साधक हो, फिर भी जैसे किसान अन्नकी उपजके लिए ही खेती करता है पर उसे भुस साथमे प्राप्त होता ही है, इसी प्रकार योगी पुरुष एक अपने शुद्धभावसे मोक्षमार्गकी दृष्टिसे चित्त हमारा स्थिर हो और हम वहाँ एक सत्य विश्राम पाये जिससे आत्मानुभवकी स्फूर्ति हो, इस भावसे इन नाना मत्रोका भी ध्यान करता है, पर इसकी साधनामे यह बात एक भुसकी तरह बीचमे आ ही पडती है कि उनके देवी देवता भी रक्षक होते है और उनके कार्योमे साधक होते हैं और विनम्र होकर उनकी प्रार्थना भी करते है ।

अमृतजलधिगर्भान्नि.सरन्ती सुदीप्ता-मलकतलनिषण्णा चन्द्रलेखा स्मर त्वम् ।
अमृतकणविकीर्णा प्लावयन्ती सुधाभिः परमपदधरित्र्या धारयन्ती प्रभावम् ॥१९७५॥

चन्द्रलेखा मन्त्रविद्याके स्मरणका आदेश—हे मुनि ! तू अमृत समुद्रसे निकलती हुई भली प्रकार देदीप्यमान ललाट देशमे स्थित अमृतकणोको भी बिखेरती हुई और अमृतसे आर्द्रित करती हुई इस चन्द्रलेखाका स्मरण कर, क्योकि यह विद्या मोक्षरूपी पृथ्वीमे अपने प्रभावको धारण करती है । मत्रके रूपमे इनकी मुद्रा अक्षरोकी भाति सीधे प्रकार न होकर इस प्रकार होती है कि वह मुद्रा ही अनेक बातोका ध्यान करानेका कारण है । जैसे ॐ शब्द ही लीजिए तो सीधा तो उ स्वर लिखा जाय, उसके आगे रेखा, फिर शून्य, फिर अर्ध अनुस्वार । इस ॐ को एक ऐसी मुद्रामे लिखा जाता है कि जिसकी मुद्रासे ही अन्य-अन्य प्रयोजनीभूत तत्त्व प्रत्यक्ष मे आते है । जैसे ॐ का वह ३ जैसा वर्ण एक व्यवहारका सकेत करता है और उसके आगे बिल्कुल सीधमे जो एक बडा बिदु लगा रहता है वह आदि मध्य अतरहित निश्चयनयको प्रगट करता है और इस ३ अक्षरके अगमे और उस शून्यके बडे बिदुके बीचमे जो एक डडा है वह प्रमाणताको सूचित करता है । यह व्यवहार अलग पडा रहे तो बेकाम और यह निश्चयनय अलग पडा रहे तो बेकाम । दोनोको जोडने वाला वह प्रमाण है और फिर इस नय और पमाणका भली प्रकार ज्ञान करनेके बाद इन सबको छोडकर जो अनुभव कलामे आता है, जो ॐ से भी ऊपर एक अर्द्धचद्रकी तरह लगा है उस अनुभव कलामे आता है तो उसको फिर सिद्ध अवस्था प्राप्त होनी है । जो शून्यके रूपमे रखा हुआ है तो इसकी मुद्रा भी अनेक तत्वो को प्रगट करती है । तो इस मत्रमे भी एक चद्र लेख है जिसके ऊपर बीजाक्षर लिखा होता है, इस प्रकार वह विशिष्ट देशमे उसका चिंतन कर रहा है । शरीरके उत्तम स्थानमे बीजाक्षरो को उत्पन्न कर ध्यानकी विशुद्धि प्रवृत्या होती है । यो जो मुनि इस चन्द्रलेखका स्मरण कर

इस महाविद्या मोक्षमत्रका ध्यान करता है, वहाँ ही अपनी आतरिक दृष्टि बनाये रहता है ऐसा पुरुष समस्त कल्याणकी सिद्धिको प्राप्त होता है । ये सब प्रयोग चित्तकी स्थिरताके लिए हैं और साथ ही ऐसा प्रयोग है कि जो आत्मानुभवके पथसे विपरीत नही रहता है, वहाँ ऐसी पात्रता रहती है कि झट सर्व विकल्प टूट जाते हैं और वहाँ आत्मानुभवका अवकाश मिलता है ।

एता विचिन्तयन्नेव स्तिमितेनान्तरात्मना ।
जन्मज्वरक्षय कृत्वा याति योगी शिवास्पदम् ॥१९७६॥

आत्मविद्याके परिनिष्ठित ध्यानी अन्तरात्माके जन्मज्वरका क्षय—इस परम आत्मविद्याको जो समस्त अन्य पदार्थोंसे निराला एक इस ज्ञानप्रकाशका सकेत करता है उस परम तत्त्वका जो एक चित्त होकर ध्यान करता है वह जन्म ज्वरका क्षय करके मोक्षतत्त्वको प्राप्त होता है । जन्म है सो ही ससार है । कवियोने प्रभुसे प्रार्थना करते हुए यह भी कहा है कि हे प्रभो ! मेरा अब पुनः जन्म न हो । सीधे निर्वाण नही मागा है । शायद निर्वाण कोई बडी चीज हो तो उसके देनेकी बात स्वीकार करनेमे देर न लग जाय, इससे यही कह दिया है कि हे प्रभो ! अब मुझे पुन. जन्म न लेना पडे—यह मै आपसे मागता हू । यदि जन्म होगा तो मरण भी होगा । जन्म तो एक महारोग है, यही ससरण है । उपाय वह करना चाहिए कि पुन: जन्म न हो अर्थात् पुन शरीर न मिले । शरीर न चाहिए न तो शरीरसे निराला अभी आप अपनेको सोच सकते हो । यदि यह स्थिति मिल सकी तो फिर शरीर न मिलेंगे और यदि आपको शरीर मिलते रहने की चाह है तो ठीक है, खूब शरीरसे प्रीति रखो, शरीर मे बहुत बहुत आसक्ति रखो, शरीर मिलते रहेंगे । शरीर न मिले, मेरा निर्वाण हो, यह कैसे सम्भव है ? इस शरीरको आत्मासे भिन्न निरखने लगो, यह सबसे सुगम औषधि है । और शरीर मिलते रहे यह कैसे सम्भव है ? तो शरीर मिलते रहनेकी सबसे सुगम औषधि यह है कि इस शरीरमे आत्मीयताकी बुद्धि बनाये रहो । जो भी इस शरीरसे छुटकारा प्राप्त करना चाहता है उसका सर्वप्रथम कर्तव्य यही है कि इस शरीरसे निराला ज्ञानमात्र अपनेको अनुभव करे । जब शरीरसे भिन्न अपनेको समझ लेगा तो इसके प्रतापसे वह शरीरोंसे भिन्न हो सकेगा । इस जन्मज्वरका विनाश करनेके प्रयत्नमे योगी जन अपने आपको समस्त परभावोंसे न्यारा केवल ज्ञानज्योतिर्मय निरखा करते है ।

यदि साक्षात्समुद्विग्नो जन्मदावोग्रसक्रमात् ।
तदा स्मरादिमन्त्रस्य प्राचीन वर्णसप्तकम् ॥१९७७॥

'णमो अरहंताणं' सप्ताक्षरी मंत्रके ध्यानका आदेश—हे योगी ! यदि तू ससारके दु:खोसे, सयोगसे उद्वेगरूप हुआ है, दु खी हुआ है तो तू आदिमत्र जो पचनमस्कार मत्रमे

प्रथम पद है, सप्ताक्षरी मत्र है उसका ध्यान कर। णमो अरहंताण—इन शब्दोंके उच्चारणके साथ जो अपने अन्तरके इतने अधिकारी है कि वह समवशरण सब सामने नजर आता हो और वहाँ वीतराग सर्वज्ञदेवकी मुद्रा भी दृष्टिमे आती हो, जहाँ चारो ओरसे देवी देवता गान तान नृत्य करते हुए सेवामें भक्तिमे आ रहे हो, जो स्थान इस पृथ्वीसे ऊपर है और जिनकी वीतरागताके कारण अनन्तचतुष्टय प्रगट हुआ है उन गुणोका स्वरूप भी चित्तमे आये, ऐसी तैयारीके साथ यदि कोई णमोअरहताण शब्दका एक बार भी उच्चारण करता है तो उसके अन्दरमे बहुतसे मल दूर होते हैं, प्रसन्नता प्रगट होती है, शरीर रोमाञ्च हो जाता है, एक विचित्र अनुपम विशुद्ध आनन्दका अनुभव करता है। ध्यानमे भावोकी प्रधानता है और श्रद्धा की प्रधानता है। तो हे मुने! यदि तू ससारकी पीडासे उस प्रकार उद्विग्न हुआ है तो तू अब इस आत्माका ध्यान कर, अरहतदेवका स्मरण कर, उसकी शरण गह, उसके स्वरूपका ध्यान कर।

यदत्र प्रणव शून्यमनाहतमिति त्रयम्।
एतदेव विदु प्राज्ञास्त्रैलोक्यतिलकोत्तमम् ॥१९७८॥

प्रणव, शून्य व अनाहतकी त्रैलोक्यतिलकोत्तमता—इस प्रकरणमे जो प्रणव है शून्य और अनाहत ये ३ अक्षर है। इन ३ अक्षरोको ही विद्वान पुरुषोंने तीनो लोकके तिलकके समान कहा है। ॐ ह्रीं इक शब्दोमे यह मत्र बसा है, पर इनकी मुद्रा इन दो अक्षरोके बीच मे एक शून्य बना हुआ है उस प्रकारकी है। एक है पचपरमेष्ठीका वाचक मुख्यतासे और एक बीजाक्षर है चौबीस तीर्थकरका वाचक। इस मत्रके सहारे ध्यान करने वाले पुरुषका चित्त प्रभुभक्तिमे पहुचता है और उस प्रभुभक्तिका यह प्रताप है। चित्त जब विशुद्ध होता है, प्रभुके स्वरूपकी भक्ति होती है, रुचि होती है तो उस समय उसके अन्य कुछ वाञ्छा न होनेके कारण वे सब कार्य सिद्ध हो गए समझिये, और फिर व्यवहारमे इस चित्त विशुद्धिके सम्बवसे जो पुण्यरस बढता, पापका क्षय होता उसके निमित्तसे भी इसके अनेक विघ्न संकट दूर हो जाते है। जो पुरुष बाहरी पदार्थोंमे सुधार बिगाडका आशय रखकर उनके सचय और विग्रहका यत्न करता है वह पुरुष सकटोंसे दूर नही हो पाता। जैसे कि प्राय सभी लोग अनुभव करते है कि एक सकट तो दूर नही हो पाता और दूसरा सकट सामने आ जाता है। वह सकट क्या है? केवल एक मनकी कल्पना। आप विचार करते है कि हम तो अब कुछ ही वर्षोंमे निवृत्त हो जायेंगे, लडके समर्थ हो जायेंगे, लडकीकी शादी भी हो जायगी, फिर तो हमारे पास कोई भी झझट न रहेगा, धर्ममे ही अपना चित्त लगावेंगे, पर होता क्या है कि उन कार्योंसे छुट्टी पानेके बाद लडकोंके जो सतान हो जाती है उनकी सम्हाल करनेकी बात आ जाती है, यो दसो सकट फिर सामने आ जाते है, और आप यह अनुभव करते है, कि यह ससार दुःखोका

घर है। एक दु खसे छुटकारा पाया कि अनेक दु.ख सामने आ खडे हुए। तो यह जीव रागवश स्वय उनमे प्रवृत्ति करता है और रागप्रवृत्तिका फल यह है कि वे सकट सामने आते हैं। यह रागप्रवृत्ति इस प्रभुभक्तिमे, मत्रध्यानमे चित्त विशुद्धिके कारण दूर होती है और इसके संकट भी नष्ट हो जाते है।

नासाग्रदेशसलीन कुर्वन्नित्यतनिर्मलम्।
ध्याता ज्ञानमवाप्नोति प्राप्य पूर्वं गुणाष्टकम् ॥१९७९॥

ध्येयतत्त्वके नासाग्रदेशसंलीनतया ध्यानीके पूर्णज्ञानावाप्ति—ध्येय तत्त्वका इस प्रकार ध्यान करें जिससे नासिकाके अग्रभागमे, इसकी दृष्टि लीन हो जायं। ध्यानी पुरुषको कही नाक के अग्रभागको देखना नही पडता। जैसे वर्णन किया है कि नासग्रदृष्टि ध्यानमे लायें अर्थात् आँखें नाकके अग्रभागको देखे, इस प्रकार ध्यान बनायें तो कही उसे देखना नही पडता कि नासिकाके अग्रभागको खूब ध्यानपूर्वक देखते रहे। यो सिद्धि नही होती, पर जिसका ध्यान तत्त्वमे लग जाता है उसकी यह मुद्रा सहज बन जाती है। तो इस प्रकार दृष्टिसे जो अत्यत निर्मल तत्त्वका ध्यान करता है वह पुरुष अष्टगुणोको प्राप्त करता हुआ, अणिमा, महिमा आदिक अष्ट ऋद्धियोको प्राप्त करता हुआ उत्तम ज्ञानसे केवलज्ञान भी प्राप्त करता है।

परमविश्राम—सर्व ओरसे अपने उपयोगको हटाकर अपने आपके तत्त्वमे सीधा यदि लग जाय तो उत्तम ही है। जैसा सहज ज्ञानस्वरूप है अपना, उसमे उपयोग लीन हो जाय तो यह तो सब ध्यानोमे महाध्यान है। इसमे कोई मुद्रा नही बनाना, कोई चितन नही करना, किसी प्रकारके अन्य अवयवोसे साधना नही करनी, यह भी होता है योगियोके कभी-कभी, पर जब इसकी बात अधिक देर नही जमती है तो अनेक बीजाक्षरोके मत्रके ध्यानके माध्यमसे यह योगी अपने चित्तको स्थिर करता है और उस स्थिरताके प्रसगमे आत्मा विश्राम करता है। वह आत्मविश्राम महत्त्वकी चीज है। लोग जब थक जाते है तो आराम किया करते हैं, लेकिन यह मन कितना थका हुआ है, न जाने कहाँ-कहाँ दौड लगाते-लगाते थक गया है, फिर भी इसे लोग विश्राम नही लेने देते। मनका विश्राम यही है कि मनसे किसी भी बातका चितन न हो, कोई भी वस्तु मनमे न आये, ज्ञानमे न आये, ऐसा विश्राम मनको मिले, ज्ञान को भी मिले तो इसे जो ससारके सतापकी थकावट हुई है उससे छुटकारा मिल सकता है, ऐसे विश्रामका कोई प्रोग्राम भी नही बनाना चाहता, सोचता भी नही चित्तमे। जैसे सुख शान्तिके अन्य दशो उपाय सोचे जाते है इस तरहसे सुख शान्तिके लिए कोई यह उपाय नही सोचता कि मुझे तो ऐसी स्थिति चाहिए जहाँ किसी भी परपदार्थका ख्याल भी न हो, चितन न हो, विकल्प भी मिट जायें। कोई ऐसा यदि प्रोग्राम बनाता है तो इसपर उसका अमल भी हो सकता है। जिसके मनमे जो बात बहुत-बहुत आती है उसका वह काम सफल भी जरूर होता

है। तो जो अपने आपका ऐसा परमविश्रामका प्रोग्राम बनाये तो उसे ऐसा अवसर प्राप्त होगा ही जिसके चित्तमे विश्राति प्राप्त हो। थक गये, दु खी हो रहे है, विकल्प मच रहे है, बडे ख्याल आ रहे है, बडे सकट आ रहे है, शोकमग्न हो रहे है, इतनी तो थकान कर रहे है और उस थकानको मेटनेका उपाय दिलकी थकान बढ़ाना ही सोच रक्खा है, और विकल्प करना, और समागम जोडना, अन्य सुख साधन जुटाना आदि। तो जिससे दिलमे थकान हुई है उसी को उस थकानके मेटनेका उपाय समझ रखा है। पर इनसे वह थकान नही मिटती, वह दुःख दूर नही होता। इस मनकी थकानको मिटानेके लिए तो तत्त्वज्ञान चाहिए। अपने इस शून्य स्वरूपमे जहाँपर कोई भी रागद्वेषादिक दूसरी बातें नही है उसको सकेत करके कहा जा रहा है कि जहाँ कुछ भी नही है ऐसे उस शून्य तत्त्वका ध्यान करे। तो इन ३ अक्षर वाले इस मत्रमे ३ की तरफ तो ध्यानके विषय प्रभु है और बीचमे वह शून्य है कि जहाँ उपयोगको टिकाये तो मनमे कुछ भी बात न आये, शून्य हो जाय। ऐसे रागादिक शून्य अतस्तत्त्वके ध्यानके प्रसादसे आत्माके समस्त विघ्न सकट दूर हो जाते है।

शङ्खेन्दुकुन्दधवला ध्याता देवास्त्रयो विधानेन।
जनयन्ति सर्वविषय बोध कालेन तद्ध्यानात् ॥१९८०॥

देखिये इन तीन देवोमे एक शून्यको भी देव माना गया है, शून्यका भी महत्त्व है। अक्षर क्या करना चाहता है ? किसी तत्त्वका बोध कराना चाहता है। अक्षरका यही तो प्रयोजन है और शून्यका भी यही प्रयोजन है। शून्यका अक्षर यह सकेत करता है कि जो रागादिक समस्त विकारोंसे रहित है, जिस सहज तत्त्वका न आदि है, न मध्य है, न अत है। शून्य बना हो तो क्या आप उसमे यह बता सकेंगे कि इसका बनना किस जगहसे शुरू हुआ है ? नही बता सकते। तो इसी प्रकार यह जो अपना शाश्वत चैतन्य ज्योति है उसका न आदि है, न मध्य है और न अत है। यह शून्य उस शाश्वत अतस्तत्त्वका बोध कराता है। तो शून्य भी देवता है। एक वह भी बीजाक्षरोकी तरह तत्त्वका ध्यान कराने वाला है। यह शून्य गोल बनाया गया है। अग्रेजीमे गोल ध्येयको कहते है। इसका आकार गोल है और यह भी गोल है। एक ध्येय है, एक लक्ष्य है, और फिर ध्यान साधनाके बीच इस शून्यका ध्यान करनेसे, इसपर दृष्टि रखनेसे चित्तकी एकाग्रता भी होती है। यो रागादिक दोषोंसे भी शून्य विशुद्ध ज्ञानस्वरूप अतस्तत्त्वका जो ध्यान है उस ध्यानसे कितने ही कालके सचित विषयोके समूहको खिराने वाला केवलज्ञान उत्पन्न होता है। केवलज्ञान सुनकर इसकी महिमा जानकर कि इसका इतना प्रताप है कि तीन लोक और तीनो कालके समस्त पदार्थ स्पष्ट ज्ञात होते है, यह बात सुनकर जी भर आता है। ज्ञान है तो यही है और ऐसा ही ज्ञान मुझे प्राप्त हो। लेकिन ऐसी जो वाछा करता है उसके वीतरागतामे रुचि घट गयी, किन्तु एक धन वैभवकी तरह एक ज्ञानवैभवपर

उसकी रुचि हो गई है । योगी पुरुष सर्वज्ञताकी चाह नही करते, किन्तु रागरहित अवस्थाकी चाह करते है, और भी आगे चलकर सोचिये । रागरहित अवस्थाकी भी चाह नही करते, किंतु अपने आपमे जो सहज स्वरूप है, यथार्थ तत्त्व है उस तत्त्वका ज्ञान बनाये रहनेकी ही चाह करते है, अथवा वे कोई चाह ही नही करते है किन्तु ज्ञान किसी न किसीको तो जानेगा ही ना, तो अन्यके जाननेका प्रयोजन रहा नही, सो एक इस विशुद्ध ज्ञानस्वरूपको ही जानता रहता है । इस सहज ज्ञानस्वभावके जाननेके प्रसादसे वह सहज अनत ज्ञान प्रगट होता है । प्रणव, शून्य व अनाहत मत्रमे परमात्मतत्त्वकी अनुस्यूति है, अत. ये तीन देवता है । इनकी विधानपूर्वक आराधना करनेसे सर्वविषयक बोध प्रकट होता है ।

प्रणवयुगलस्य युग्म पार्श्वे मायायुग विचिन्तयति ।
मूर्द्धस्थ हसपद कृत्वा व्यस्त वितद्रात्मा ।।१६८१।।

"ह्रीं ॐ ॐ ह्रीं हंसः" मंत्रके व्यस्तरूपसे ध्यानकी विशेषता--अब एक मंत्र है जिसमे बीचमे तो दो प्रणव अक्षर है और उनके दोनो तरफ मायावर्ण मत्र है और अतमे हसपद है जिसकी मुद्रा है "ह्री ॐ ॐ ह्री हस ।" इन्ही बीजाक्षरोको किसी क्रमसे रखा जाय, उस क्रम मे भी मर्म है और उस क्रमके भेदमे इसकी साधना और सिद्धिमे भी अतर होता है । प्रारम्भ मे चतुर्विंशति तीर्थंकरका वाचक और मायावर्णसे प्रसिद्ध ह्री बीजाक्षर है । इसके ध्यानके पश्चात् फिर प्रणव मत्रका दो बार चितन होता है और इस क्रमसे चितन करनेमे प्रयोग करके भी अनुभव किया जा सकता है कि कुछ विशेष पद्धति बनती है । श्रद्धेय तत्त्वोका किस क्रमसे चिंतवन है और किस प्रकार आत्मामे एक वीतरागताका उत्साह होता है, यह एक वर्णाक्षरोंमे बताये गए तत्त्वके स्वरूपका चिंतवन करनेसे विदित हो जाता है । हे मुने ! इस मत्रको प्रमादरहित होकर भिन्न-भिन्न चितन कर । एक एक वर्णका चिरकाल तक ध्यान कर और कभी दो वर्ण मिलाकर कभी ३ करके कभी समस्त पदोसे इन मत्रोका ध्यान करें ।

ततोध्यायेन्महाबीज स्त्रीकार छिन्नमस्तकम् ।
अनाहतयुतं दिव्य विस्फुरत्तं मुखोदरे ।।१६८२।।

अनाहतयुत स्त्रीकार महाबीजका ध्यान—इसके पश्चात् महाबीज जो 'स्त्री' ऐसा बीजाक्षर है जिसमे ऊपर अर्द्ध चद्र नही लगा है जिसे छिन्नमस्तक कहते है ऐसा एक अनाहत सहित दिव्य मुखपर यह स्फुरायमान हो रहा है, इस प्रकार निरखते हुए चितवन करें । मत्र की साधनासे श्रद्धाका बडा स्थान है । श्रद्धा नही है तो मत्रसाधनामे कोई प्रगति नही होती । तो श्रद्धा भी साथ है और यह बीजाक्षर भी श्रुतज्ञानका परमात्मतत्त्वका वाचक है, इस तरह इससे दोनो ही प्रकारकी अभीष्टतायें है ।

श्रीवीरवदनोद्गीर्णां विद्या चाचिन्त्यविक्रमाम् ।
कल्पवल्लीमिवचिंत्यफलसंपादनक्षमाम् ॥१९८३॥

अचिन्त्यविक्रमाविद्यारूप मंत्रका जपन—श्री महावीर भगवानके मुखकमलमे विनिर्गत, जिसका अचित्य पराक्रम है, कल्पवेलके समान जो अचित्य फल देनेमे समर्थ है ऐसा विद्यारूप एक मत्र है, जिसकी मुद्रा है—"ॐ जोग्गे मग्गे तच्चे भूदे भव्वे भविस्से अक्खे पक्खे जिरण पारिस्से स्वाहा" । इसके पश्चात् ऐसा मत्र है "ॐ ह्री स्वर्हं नमो नमोऽर्हंताण ह्री नमः ।" मत्र शास्त्रके विशारद इस मत्रको क्रमसे देखकर बीजाक्षरोको देखकर और उनके पढनेके स्वरो को देखकर इसके प्रभावको बता सकते है । इतना तो आप भी अनुभव कर लेंगे कि णमोकार मत्रसे ही भिन्न-भिन्न स्वरोमे भिन्न धारणावोको रखते हुए कहाँ कितना ठहरना है, ऐसी स्थितिमे जब उच्चारण करेंगे तो भिन्न-भिन्न प्रकारसे अपनेपर उनका प्रभाव होता है । यो मत्र जल्दी पढ लिया तो उससे वह लाभ नही होता है किंतु उसके स्वरूप स्मरण सहित और एक गीतरूपमे उतार चढाव सहित गम्भीर ध्वनिका उच्चारण किया जानेपर स्वयमे तुरत प्रभाव होता है और वह अपने आपका स्पर्श एक ऐसे विशिष्ट परिणामकी रचना करता है कि जिससे पुण्यबध होता है, साथ ही वैराग्यताके अनुसार कर्मनिर्जरा भी होती है । तो मत्रके ध्यानमे उस परमतत्त्वका ध्यान और साथ होना चाहिए, जिससे इस मत्रका प्रभाव बढ़ जाता है । जो योग्य है, पूज्य है, सम्यक्रूप है, तत्त्वभूत है ऐसी आत्मनिकटता, ज्ञानस्वरूप जो ऐसा विकसित हुआ है, हो रहा है, होगा, उन सबका इसमे ध्यान है । जैसा वस्तुका ध्यान करते है उस ही प्रकारका अपने आपपर असर होता है । केवल एक ज्ञानज्योतिका ध्यान बने, जिस उपायसे वह एक सर्वोच्च उपाय माना जाता है ।

अन्तस्तत्त्वकी अलौकिक उत्तमध्यानरूपता—इस जीवने अनेक पदार्थोका ध्यान किया, अनेक जगह इसने अपने आपको सौपा, मानो आत्मसमर्पण ही किए रहा, किंतु वे सब परद्रव्य होनेके कारण इसे शरण न दे सके, सो उस भ्रमके कारण यह धोखेमे ही रहा । अपने ज्ञान-स्वरूपका स्मरण होवे, मै ज्ञानमात्र हूं—ऐसी अपनेमे अनुभूति जगे तो यही तो सर्व मत्रोका लक्ष्य है । यही अपना उपयोग पहुंचे और यहीं स्थिरतासे रहे तो इससे बढकर और क्या प्राप्त करने योग्य होग्य है ? एक बहुत बडा तपश्चरण है यह अपने आपको अपने आपमे सम्हाले रहना, अपनी दृष्टिमे अपना ज्ञानस्वरूप बनाये रखकर इसमे तृप्त रहना, यह बहुत बडा आंत-रिक तपश्चरण है और इसमे बाधाये बहुत है । जैसे ही इन चर्मचक्षुवोसे कुछ देख लिया तो उनका बर्ताव रखकर आकाछायें बढने लगती है, यह ध्यानमे महाविघ्नकी बात है । अभी आधा घटा मंदिरमे रहकर भगवानके गुण स्मरण करते हुए कुछ आत्मीय आनद उमड रहा था, इसके बाद जैसे ही बाहर निकले कि फिर वैसी ही प्रवृत्तिया होने लगती हैं जो अभी तक

चली आ रही है। यह क्या है ? ये बडी बाधाये हैं। तो आत्मध्यानमे, आत्मानुभवकी सिद्धि मे यह लोगोका, सगम, लोगोका दिखावा ये सब एक विघ्नरूप हैं। कोई तो जानकर उपसर्ग करता है, बैरी बनकर उपसर्ग करता है और यह मोही पुरुष स्वय इन उपसर्गोको अपनाता है और अपने ध्यान परम तपश्चरणसे विचलित होता है। अत- आत्मानुभवकी भावना रखने वाले पुरुषोको बाहरके सम्मान अपमान अथवा अन्य प्रकारके लोगोका बर्ताव इन सबमे अपनी दृष्टि नही फसानी चाहिए, और चाहे लोग इसे कैसा ही कहे, उनमे कहनेसे यहाँ कुछ सृष्टि नही बनती है। अपने आपके परिणमनसे अपने आपकी दृष्टि बनती है, इतना जो दृढचित्त होते है वे आत्मसाधनामे सफल होते है।

गत मनुजजीवनके विषय परिचयके संस्कारके त्यागकी विशेषता—मुनिव्रत लेने वाले को द्विज कहा करते है। मुनि ही द्विज है, वैसे द्विज नाम प्रसिद्ध है ब्राह्मणोका, लेकिन यह तो उपचारसे व्यवहार बन गया है। चूकि ब्राह्मण जन पूर्वकालमे बडे त्यागी थे, आदर्श थे, लोगो के गुरु थे, तब वे बडे उच्च समझे जाते थे, तभीका विशेषण था वह द्विज, जो कि अभी तक चला आ रहा है, किन्तु वास्तवमे द्विज कहते है मुनिको। द्विजका अर्थ है जिसका दूसरी बार जन्म हो। जैसे कोई मरकर दूसरी जगह कही जन्म ले तो उसको पूर्वभवका फिर क्या सम्बध रहता है ? न मकानसे कुछ सम्बध है, न परिजनोसे सम्बध है, न अन्य किसीसे कुछ सम्बध है। आप ही बतलावो कि पूर्वभवमे आपका कहाँ मकान था, कौन परिजन थे, कौनसा आपका वैभव था, कुछ भी याद है क्या ? तो पूर्वभवकी किसी भी चीजसे आपका अब कुछ भी सबध तो नही है, इसी प्रकार सन्यासी लोगोका सन्यास धारण कर लेनेपर दूसरा जन्म माना जाता है। केवल सारा वैभव, सारे परिजन, सर्व कुछ उसने त्याग दिए हैं, किसी भी चीजसे उसने अपना कुछ भी सम्बध नही रखा हैं। तो वास्तवमे उनका वह दूसरा जन्म है, सो वे मुनिराज वास्तवमे द्विज हैं। उन मुनिराजका सम्बध अब केवल ज्ञान और वैराग्यसे रह गया है, अन्य सर्वसे उसने अपना कुछ भी सम्बध नही रखा है। ऐसे योगिराज द्विज अबसे पहिले जिनसे परिचय था वे लोग अब इनके लिए कुछ नही रहे, इनका तो जन्म ही दूसरा हो गया। परि-जन लोग हैरान हो जाते है कि यह ही तो है हमारे गावके, हमारी बिरादरीके, हममे ही बसने वाले, आज क्या हो गया, हमारी तरफ देखते भी नही है, हमसे बोलनेकी इच्छा भी नही करते, कुछ स्नेह ही नही जगाते। पहिले तो कैसा हमसे स्नेह करते थे, वैसे रमा करते थे, हम इनके परममित्र ही तो थे, और ऐसे मित्र कि मेरे विना यह नही रह सकते थे, इनके बिना मैं नही रह सकता था, मगर आज यह निगाह उठाकर भी नही निरख रहे है। न जाने कहाँ जा रहे है, हैरान हो जाते है परिचित जन उन योगिराजकी चर्याको निरखकर। हो हैरान, वे तो द्विज हो गए है, उनका तो दूसरा जन्म हुआ है, इससे पहिलेकी वातोका तो कुछ

सम्बध भी नही है। अब आप समझिये कि मुनियोका कितना ऊँचा पद होता है और वे क्यो परमेष्ठी कहलाते है। हम आप लोगोकी तरह रचे पचे रहा करें तो क्या वे परमेष्ठी कहला सकते है ? तो अपने अंतरङ्गकी धुन रखने वाले पुरुष इन मन्त्रोके सहारेसे ज्ञायकस्वरूपका ध्यान करके अपनी आत्मसिद्धि किया करते है।

विद्या जपति य इमा निरतरां शातविश्वविस्पन्द ।
अणिमादिगुणाल्लब्ध्वा ध्यानी शास्त्रार्णव तरति ॥१९८४॥

उक्त विद्यामंत्रके ध्यानका प्रताप अनेक ऋद्धिलाभ—जो योगी ध्यानी निर्दोष चित्त होकर समस्त हलन-चलन क्रियावोको, परीषहोको दूर करके इस विद्याको निरतर जपता है वह अणिमा आदिक गुणोको प्राप्त होकर शास्त्रसमुद्रको तिरता है। साधनाओके बीच अनेक ऋद्धि प्रगट हो जाती है, पर योगीका जब लक्ष्य ही कुछ और है, उस अनुपम परमतत्त्वकी ओर दृष्टि है तब उसे इन ऋद्धियोका तो पता भी नही होता। अनेक ऋद्धिया इस तरह प्रगट हो जाती है, ऐसे ही बहुतसो ऋद्धिया देवोमे जन्मसे ही होती है देवगतिमे, लेकिन उन ऋद्धियो से उनके आत्मापर कुछ असर नही होता। वह एक जन्मजात सिद्धि है, उनके और जो एक गुणोके बलपर, आतरिक तपश्चरणके बलपर ऋद्धियोको प्राप्त होते है उनके चित्तमे पूज्यता है और उत्तरोत्तर इसे उन्नतिके पथपर ले जानेका सहायक भी है। जैसे अणिमा ऋद्धिसे शरीर को बहुत छोटा बना लेना, यह बात देव भी कर सकते है। यहाँ योगियोने साधनाके बलपर ऋद्धि प्राप्त की है, पर उनकी जन्मजात इस विद्याका विषय कषायोमे ऐसी लीलावोमे ऐसे कौतूहलोमे प्रयोग होता है तव ये योगिराज उन सिद्धियोका प्रयोग भी नही करना चाहते और परिचय तक भी नही है। एक महिमा ऋद्धि होती है, शरीरको कितना ही बडा बना लो। गरिमा ऋद्धिसे शरीर चाहे परिमाणमे छोटा ही क्यो न हो, पर वह इतना वजनदार होता है कि उसे उठा सकना तो उनके भी वश की बात नही है। लघिमा ऋद्धिमे शरीरका परिमाण चाहे बहुत बडा लग रहा हो पर वह अत्यन्त हल्का होता है। कहो अपने शरीर को अन्तर्ध्यान करले तो किसीको वह शरीर दिखे ही नही। शरीर है, बैठे है योगिराज, पर किसीको नजर ही नही आ रहे, ऐसी अनेक ऋद्धियोको प्राप्त कर लेते है। पर वे योगिराज उनके प्रयोगमे नही फसते, वे तो अपने ही ध्येय ज्ञानस्वरूपका लक्ष्य रखकर अतस्तत्वमे मग्न होते है।

उक्त विद्यामंत्रके ध्यानका प्रताप श्रुतावगाहन व शास्त्रार्णवतरण—उक्त विद्यामन्त्रके प्रबल ध्याता समस्त श्रुतके पारगामी हो जाते है। एक सूत्र जो लिखा है ना "शुक्ले चाद्य-पूर्वविद." दो शुक्लध्यान पूर्वधारी साधुके होते हे, जिन्हे ११ अग १४ पूर्वका ज्ञान है ऐसे साधुवोके २ शुक्लध्यान होते है—पृथक्त्ववितर्कविचार, एकत्ववितर्कविचार। प्रश्न यहाँ यह

उपस्थित होता है कि कोई श्रुतकेवली हो, वह भी आत्मसाधना करके निर्वाण प्राप्त करता है और नही भी श्रुतकेवली है और यहाँ तक बताया कि मात्र अष्टप्रवचनमात्रिकाका ही ज्ञान है ऐसे भी योगीको निर्वाणकी प्राप्ति होती है, लेकिन यह बीचका रास्ता जहाँसे सबको गुजरना है श्रुतकेवली भी गुणस्थानोसे गुजरते है तव निर्वाण पाते है। ८ वे, ९ वे, १० वें, १२ वें गुणस्थान इनसे गुजर कर ही तो निर्वाणकी प्राप्ति होगी और इस गुणसाधनामे जो शुक्ल-ध्यान होता है उसका नियम बता दिया है कि आदिके दो शुक्लध्यान पूर्वपदोके होते है। तव इस समस्याका समाधान क्या? इस समाधानमे यह खोज आती है कि चूंकि व्यवहारकाल लम्बा काल सारा यह जिस ज्ञानमे बीता, श्रुतकेवली होकर बीता तो उसकी प्रसिद्धि हुई और साधारण ज्ञानमे बीता तो उसकी प्रसिद्धि हुई। जव वे दोनो श्रेणीमे पहुचते हैं तो श्रेणीमे होने वाला परिणाम इतना निर्मल होता है कि उनका निमित्त पाकर श्रुतज्ञानावरणका विशिष्ट क्षयोपशम हो ही जाता है और यह कुछ युक्तिमे आता है कि जब ज्ञानावरणका सम्बध होता भी है तो केवलज्ञानसे पहिले उसकी ज्योति कुछ भी नही जगती होगी। श्रुतज्ञानावरण भी तो सारा नष्ट होता है, उस कालमे श्रुतज्ञानका कुछ भी विकास न होता होगा। युक्ति भी यह कहती है कि श्रुतज्ञानका वहाँ विकास होना चाहिए, किन्तु ८वें, ९वें, १०वें, १२वें गुणस्थान का काल है कितना? इस अल्प कालमे जो परिणामोकी विशिष्टता हुई और उससे जो श्रुत-ज्ञानका विकास हुआ उस विकल्पसे न हमने कुछ फायदा उठा पाया और न अन्य लोगोने कुछ फायदा उठा पाया। तो चूंकि उस योगीका काल अति सूक्ष्म है और वहाँसे गुजरकर कुछ प्रयोग रूपसे उसका लाभ नही उठाया जा पा रहा है, इस कारण उसके प्रतिपादनमे लोप ही बताया गया और यह कहना पडा कि श्रुतकेवली हो वह भी निर्वाण प्राप्त करता है, अल्पज्ञानी हो वह भी निर्वाण प्राप्त करता है। फिर दूसरी बात यह भी देखिये कि आखिर अल्पज्ञानीने ही तो निर्वाण प्राप्त किया, जैसे कि श्रुतकेवलीने भी किया। अब उसके मार्गमे केवलज्ञानके निकट पहुचते ही अगर कुछ सेकेण्डोंको श्रुतज्ञानका विकास हो गया तो वह तो मार्गकी बात है। प्राप्त तो किया इस अल्पज्ञानीने ही निर्वाण। इस कारण यह भी कथन विरुद्ध नही जचता कि श्रुतकेवली भी निर्वाण प्राप्त करते हैं और अल्पज्ञानी भी निर्वाण प्राप्त करते है, पर चाहे वह मार्गमे ही सही। समस्त श्रुतका अवगाहन, इन सब आराधकोको होता ही है।

त्रिकालविषय साक्षाज्ज्ञानमस्योपजायते ।
विश्वतत्त्वप्रबोधश्च सतताभ्यासयोगतः ॥१९८५॥

विद्यामंत्रके ध्यानके प्रतापसे विश्वतत्त्वप्रबोध—इस विद्याका ध्यान करने वाले पुरुष के निरंतर अभ्यासके प्रसादसे तत्त्वोका ज्ञान होता है और त्रिकालविषयक साक्षात् ज्ञान भी उत्पन्न होता है। वह है केवलज्ञान। ज्ञानके बडे वेग चल रहे हैं। कितनी ही जगह उपयोग

गया हो, पर किसी भी क्षण अपने उपयोगको एक शून्यरूप बना लिया जाय, कुछ भी उपयोग मे न रहे तो सर्वोत्कृष्ट डिग्रियोसे अविभागप्रतिच्छेदोमे वह ज्ञान विकसित हो जाता है। जितना ही उपयोगको सर्व ओरसे सकुचित करके एक शून्यरूप बना लिया जाता है तो उसमे शक्ति कई गुनी बढ जाती है और एक समय उसमे ऐसी शक्ति हो जाती है कि वह एक समय मे चौदह राजू गमन कर सकता है बेरोकटोक। उस ज्ञानको अगर हम अभेद बनाकर उन सबसे हटाकर अपने केन्द्रमे उपयोगको लाये अर्थात् शून्य तक उपयोग लायें। जैसे गर्मीकी डिग्रिया होती है। जब गर्मी बिल्कुल नही रहती तो कहते है कि अब शून्यपर आ गया और यदि शून्यके नीचे भी आ जाय वह वातावरण तो उनकी फिर डिग्रिया बन जाती है, और फिर वे डिग्री शीतकी बन जाती है, शून्य तक आनेपर और शून्यसे भी उतरनेपर फिर महत्त्व बढने लगता है इस वातावरणका। तो इस ही उपयोगको जो चारो ओर फैला हुआ था उसे जब केन्द्रपर लाये, शून्यपर लाये, कुछ भी नही जाना जा रहा, कुछ भी विकल्प नही किए जा रहे, एक शून्यसा बन गया, कुछ भी विकल्प नही रहा, तो इस स्थितिके बादमे ज्ञानमे इतनी सामर्थ्य आती है कि अविनाभाव प्रतिच्छेदोके विकासपूर्वक यह ज्ञान उत्पन्न होता है, और इसे भी केवलज्ञान कहते है। केवलज्ञान पहिले था, अब तो सकल ज्ञान है, मात्र ज्ञान ज्ञानका स्वरूप ही ज्ञानमे था, वह तो केवलज्ञानके प्रगट करनेके उपायके समय था। अब तो यह सकल ज्ञान बन गया। समस्त विश्वका ज्ञान हो गया। तो यो एक रागादिकशून्य विकल्पशून्य ज्ञानभावपर उपयोग रहे तो उस ज्ञानमे यह सामर्थ्य हो जाती है। इस मत्रके प्रयोगमे यही उपाय रचा गया है जिसके निरतर अभ्याससे समस्त तत्त्वोका ज्ञान होता और सकलज्ञान भी उत्पन्न हो जाता है।

शाम्यन्ति जतवः क्रूरास्तथान्ये व्यतरादयः।
ध्यानविध्वसकर्तारो येन तद्धि प्रपञ्च्यते ॥१६८६॥

ध्यानविघ्नोपशामक ध्यानके वर्णनका संकल्प—ध्यानमग्न पुरषोंके उपसर्ग करने वाले क्रूर जतु शात हो जाते है। ध्यानमे विघ्न डालने वाले व्यतर आदिक भी उपशमताको प्रा। हो जाते है। जिस ध्यानके प्रतापसे यह महिमा प्रगट होती है उस ध्यानका अब कुछ विस्तार से वर्णन करेंगे। परमतत्त्वके उपयोगमे उसमे एकाग्र होनेकी स्थितिमे ये सब प्रभाव बढते हैं। कदाचित यह भी हो जाय कि तीव्र असाताका उदय हो और ऐसा ही बध किया हो तो ध्यान-साधनाके प्रसगमे भी उपद्रव उपसर्ग विपत्तिया आये पर यह बहुत बिरली बात है। ध्यानी पुरुपके ध्यानके प्रतापसे ये विघ्न सब शात हो जाते है और भले ही उपसर्ग आयें, उपसर्ग आनेपर भी ध्यानकी जब विशेषता बनती है तो वहाँ फिर उपसर्ग नही रहते।

दिग्दलाष्टक सम्पूर्णे राजीवे सुप्रतिष्ठितम ।
स्मरत्वात्मानमत्यन्तस्फुरद्ग्रीष्मार्क भास्करम् ॥१९८७॥

दिग्दलाष्टकसंपूर्ण कमलमे सुप्रतिष्ठित निर्मल आत्माका स्मरण—सर्व मत्रोमे इस समय प्रकरणवश महत्त्वके साथ ॐ णमो अरहताण मत्रकी बात कह रहे है। कोई मत्र या शब्द विशेष प्रचलित हो जाय, सबकी जबानपर आ जाय तो उसकी श्रद्धा प्राय लोग कम कर लेते हैं। किन्तु इस मत्रमे बडा प्रताप पडा हुआ है। अरहतका जो स्वरूप है वह स्वरूप समस्त जब उपयोगमे आता है तब उपयोगको मलिन करनेकी कौन शक्ति रख सकता है ? अरहतका स्वरूप उपयोगमे रहे तो उसके विषय कषाय विकार ये सारे उपद्रव शात हो जाते हैं, और ऐसी महिमा सम्पन्न समृद्धि ऋद्धि सम्पन्न अरहत प्रभुका स्वरूप है कि जिसके ध्यानके प्रताप से ऋद्धि समृद्धि भी प्रगट होती है। जहाँ ६४ ऋद्धियोका वर्णन है वहाँ एक केवलज्ञान ऋद्धि भी बतायी गयी। तो केवलज्ञान तो ज्ञान है पर अरहत प्रभुका लक्ष्य करके चूंकि उनका स्वरूप समस्त ऋद्धिसम्पन्न है। सर्व ऋद्धियोको प्राप्त करके उनकी यह अवस्था प्रगट होती है। उन ऋद्धियोके प्रतापसे जो उनका अतिशय विकास है वह भी ऋद्धिमे गिना है। अरहत प्रभु के ध्यानके समान प्रभावक अन्य ध्यान कुछ है नही। या फिर इसके पश्चात् एक आत्मस्वरूप का ध्यान है। सिद्ध प्रभुकी बात भी अरहत स्वरूपमे समायी हुई है ऐसा समझना चाहिए, क्योकि गुणोकी दृष्टिसे कुछ अतर नही है और अतिशय चमत्कार त्रिलोकपूज्यता ये सब होनेके कारण अरहत प्रभुके ध्यानमे ऋद्धि मत्र इन सबमे एक विशेषता होती है। ये प्रभु १०० इद्रोका बदनीक हैं। यहाँ प्रायोगिक बात चलती है कि केवलज्ञान हुआ, अरहत प्रभु हुये और १०० इन्द्र आकर उनका नमस्कार करते है। बडी सम्पदा वैभव सहित देव देवागनाओका समूह तो अनगिनते आते है। जिनकी दिव्यध्वनि मधुर है। तीन लोकके जीवोका हित करने वाली है, स्पष्ट है, लो तत्काल लाभ भी जीवोको मिल रहा है। गुण तो अनत असीम है ही, और अब ये प्रभु हमको मिलते तो है, आज नही मिल रहे पर मनुष्योको मिला तो करते हैं। यहाँ दर्शन भी होते है प्रभुके, और वे भवोसे अतीत है, ससारमे उनके दर्शन भी हो रहे है और ससारसे वे अतीत है। ऐसी महिमा सम्पन्न अरहत प्रभुके। ध्यानका वाचक है यह मत्र विशेष महत्त्व रखता है।

ज्ञानपुञ्जके रूपमे परमात्मतत्त्वका ध्यान—अभी एक अष्टदलका कमल चिंतन किया गया था। ८ दिशावोमे ८ पत्रोमे कमल भली प्रकार है और वे देदीप्यमान कातिमान ग्रीष्म ऋतुके सूर्य समान स्वर्ग समान ऐसे देदीप्यमान कमलका भी स्मरण करे और समग्र आत्मा ऐसे सूर्य समान स्फुरायमान तेजस्वी है इसका भी ध्यान करें। मैं आत्मा हू, तेजवत् हू, ज्ञानमात्र हू, ज्ञानज्योतिका ऐसा प्रकाश है, प्रभाव है कि दशो दिशावोमे यह व्याप्त हो गया है।

एक ज्ञानमात्र अपने आपका अनुभवन करना यह सर्वोपरि पुरुषार्थ है। बड़ा तपश्चरण भी कर ले कोई और शास्त्रोका पारगामी भी बन जाय और इतना विशेष ज्ञान प्राप्त कर ले कि सारी बाते यो बता दे, जैसे हाथ पर रखी हुई चीजकी बात बता दे। इतना बडा ज्ञान करले, तपश्चरण करले और कुछ अन्दरमे भावना भी हो ऐसी कि हम धर्मसाधना कर रहे है, हमे तो मुक्ति ही चाहिए, निर्वाणके समय अन्य किसीकी वाञ्छा नही, मैं स्वर्ग नही चाहता ऐसा मनमे आशय भी कुछ पवित्र बना रहा हो, लेकिन एक ज्ञानात्मक मै आत्मा हू ऐसा अनुभव न कर पाता हो तो वह कर्मोको नष्ट करनेमे समर्थ नही है। तो अपने आपको ज्ञानात्मक अनुभव करना यह जब बनता है तो उसकी स्थिति एक निर्विकल्प होती है और क्या सोचना ? कुछ नही सोचना, और ज्ञानमात्र परिणमन रहता है, ज्ञान ही ज्ञानमे बना हुआ है, एक अद्भुत अलौकिक आत्मीय आनन्दको उपजाता हुआ यह ज्ञानका अनुभव प्रगट हुआ है। ज्ञानानुभव हो जाय और आनन्दका अनुभव न आये, यह बात कभी नही होती। ज्ञानानुभव आनन्दको प्रगट करता हुआ ही हुआ करता है। तो ध्यानी पुरुष अपने आपके आत्माको ऐसे ज्ञानपुञ्जके रूपमे स्फुरायमान देदीप्यमान चिन्तन करें।

प्रणवाद्यस्य मन्त्रस्य पूर्वादिषुप्रदक्षिणम् ।
विचिन्तयति पत्रेषु वर्णैकैकमनुक्रमात् ॥१९८८॥

प्रणवसहित आद्यमन्त्रका अष्टदलकमलमे पूर्वादिदिशाओमे एक एक वर्णका क्रमसे ध्यान—जिसके आदिमे प्रणव मत्र भी लगा हो, ॐ णमो अरहताण प्रणवमत्र सहित यह आदि पद है जिसमे ऐसे मत्रको पूर्वादिक दिशावोमे प्रदक्षिणारूप एक एक पत्र पर अनुक्रमसे एक एक अक्षरका चिन्तवन करे। जैसे पूर्वदिशाकी ओर मुह करके योगी पद्मासनसे विराजमान है तब अपने मुखकमलमे अष्टदलका चिन्तन करे और सामने ॐ फिर पूर्व और दक्षिणके बीचमे "ण" दक्षिणमे 'मो' इस प्रकार स्थापना करे। कोई कल्पना करके बैठ तो जाय अपने आपके उत्तमागमे कमलका विचार करें, उन पत्रोपर इन वर्णोकी रचना करके सोचे तो उपयोग विशुद्ध होता है, विषय कषायोसे उपयोग हटता है, यही आत्मा की रक्षा है। विषयकषायोसे चित्त हटा रहे, यह आत्माकी बडी दया है। ये सब ध्यान की बातें है।

अधिकृत्य छद पूर्व सर्वाशासम्मुख. परम् ।
स्मरत्यष्टाक्षर मन्त्र सहस्रैक शताधिकम् ॥१९८९॥

प्रथम रात्रिमें सर्वदिशासम्मुख होकर ११०० बार प्रणवयुत आद्यमंत्रका ध्यान—इन पत्रोमे से पूर्वदिशामे स्थित प्रथम पत्र को मुख्य करके फिर सर्वदिशावोमे अपने उपयोगको सम्मुख करते हुए इन मत्रोका ११०० बार चिन्तन करे। चिन्तन करनेकी विधिमे प्रत्येक अक्षर जहाँ विराजमान है वहा उपयोग चला चलाकर उनको निरखकर बहुत ही धीरे धीरे

इस मत्रका जाप करें और ११०० बार चिन्तन करे। मन नही लगता है मत्रके ध्यानमे, आत्माके ध्यानमे, इसका कारण यह नही है कि समय नही है। समय न होनेसे जाप मन्त्रकी बात नही बनती, यह बात नही है। समय सभीके पास बहुत-२ है पर उस समयको विकल्पो मे बिता देते हैं। अब रोजिगार तो करते है करीब ६ घटा, पर उसकी आसक्तिके कारण तत्सम्बन्धी विकल्प बनाये रहते है बहुत देर तक। खाते पीते, चलते फिरते, उठते बैठते, सभी स्थितियोमे वही विकल्प बने रहा करते है, तो जो शेष समय है वह विकल्पोमे गवा देते है। समय खाली नही रहता। सभी लोग अपनी-अपनी बात जान ले कि गप्पोमे, विकल्पोमे, व्यर्थमे कितना समय व्यतीत होता है ? प्रभुध्यानको चित्त नही चाहता। अरे ससारमे कुछ भी तो समागम ऐसा नही है जो हमारी मदद करदे। कुछ भी सहायता नही पहुचा सकते। जैसा भाव बनता है, जैसा सस्कार बनता है उसके अनुकूल बध होता और उसके उदयके अनुसार उदय सामने आ जाता है। इस ओर कुछ चित्त जाय स्वाध्यायमे तो ठीक ही है, उसमे समय ज्यादा लगाना भी चाहिए, पर यह ध्यानकी बात भी चित्तसे हटानेकी नही है। इसमे भी कुछ विशेष उद्यम हो और ध्यानमे हम किसी भी मत्रका सहारा ले और जो विधि मुद्रा बताया है उस ढगसे इसका ध्यान करें, विषय कषायोसे उपयोग हटेगा, यह तो तत्काल ही फल मिल जाता है।

प्रत्यह प्रतिपत्रेषु महेन्द्राशाद्यनुक्रमात्।
अष्टरात्र जपेद्योगी प्रसन्नामलमानस ॥१६६०॥
तस्याचिंत्यप्रभावेण क्रूराशयकलङ्किताः।
त्यजति जतवो दर्प सिहत्र ता इव द्विपा ॥१६६१॥

प्रतिदिन पूर्व दिशादिकके अनुक्रमसे आठ रात्रि तक प्रणवसहित आद्यमत्रका ११०० बार ध्यान व उसका फल—इस प्रकार प्रतिदिन प्रत्येक कमलपत्रमे पूर्व दिशाके क्रमसे जाप करें और अर्द्धरात्रि पर्यंत बडे प्रसन्न और निर्मल मनसे जाप करें। एक विशेष साधनाके प्रसगमे बात चल रही है, यही एक ध्यान बनायें। मुखके मध्य ऊपर ललाट स्थानमे किसी भी उत्तम अगमे एक अष्टदल कमलका इस प्रकार चिंतन करें और उसके प्रतिपत्रपर वर्णोंके क्रमसे ध्यान करें, अर्द्धरात्रि पर्यंत ११०० बार प्रति बार इसका जाप करे, फिर उसके अचित्य प्रभावसे जो क्रूर चित्त वाले जीव है वे भी अपना गर्व छोड देते है। वे भी नम्र होकर निकट बैठा करते हैं। श्रद्धाकी बडी विशेषता होती है। जैसे आजकल ज्ञान निकट पूर्वकी अपेक्षा बहुत बढा चढा है। कितने फिलास्फर बन रहे, कितने वैज्ञानिक बन रहे, लौकिक विद्यामे भी इञ्जीनियर या अन्य अन्य प्रकारके विद्या पारगामी कितने बनते जा रहे, धर्मकी दिशामे भी बडे ग्रन्थोका ऊँचा से ऊँचा स्वाध्याय करने वाले, ज्ञान करने वाले पडित जन अब भी मिल रहे है। बहुत ज्ञान

की वृद्धि है, और एक छोटेसे छोटा भी बालक आज पहिलेके बालकोकी अपेक्षा बडी चतुराई रख रहा है । इतनी जानकारीकी बातें पहिले बडी उम्रके बच्चे भी न जानते थे । आजकल तो ३-४ वर्षका बच्चा भी बडी चतुराईसे बातें करता है, और क्या प्रयोजन है, क्या स्वार्थ है, क्या सिद्ध करना है, वे सब अपने आप अपनी चतुराईसे लगा लेते है, लेकिन श्रद्धाकी कमी बहुत बनी रहती है । ज्ञान जहाँ इतना बढ रहा है श्रद्धाकी उतनी ही घटती हो रही है, और श्रद्धाके घटनेसे उस ज्ञानका अपने आपपर प्रभाव नही बन पाता । ध्यान और मन्त्रकी साधना तो श्रद्धा पर ही चलती है । श्रद्धा हो तो वही भी किसी भी स्थितिमे हो, मनचाही बात प्राप्त की जा सकती है ।

श्रद्धाका फल—दो भाई थे, नौकरीके लिए चले । तो रास्तेमे छोटे भाईको एक जगल मे एक साँड (बैल) मिल गया । सो बडे भाईसे बोला कि हमारा तो मालिक मिल गया, हम इसीकी सेवा करेंगे, यही हमे सब कुछ देगा, और बडा भाई चला गया । वह किसी शहरमे जाकर किसी फर्मपर नौकरी करने लगा । तो बडे भाईको तो हर म्हीने वेतन मिल जाया करता था सो उससे काम चलता था, छोटे भाईने भी पासके गावके एक बनियासे मिल लिया था और उससे कह दिया था कि हमको एक बडा मालिक मिल गया है, उसका काम करेंगे, हमे खाने पीनेके लिए सामान देते रहना, ८-१० माहके बादमे हम आपका सारा हिसाब चुका देंगे । इस तरहसे चलते-चलते जब १ वर्ष बीत गया तो बडा भाई छोटे भाईके पास आया, बोला कि तुमने तो यहाँ रहकर बेकारमे समय बरबाद किया, चलो अब घर चले । छोटा भाई बोला—अच्छा एक दिन ठहरो, कल हम जवाब देंगे । तो वह उस साँडसे कहता है कि अब तो हमारा १ वर्ष पूरा हो गया, अब हम घर जाना चाहते है सो हमारा वेतन दे दो । तो साँड अपने आप उत्तर देता है कि तुम एक दिन और ठहर जावो, कल मिलेगा । तो वह छोटा भाई बडे भाईसे कहता है कि आप आज जावो, हम तो एक दिनके बाद आवेंगे । बडा भाई तो चल गया । अब वहाँ क्या बीता कि बजारे लोग अपने बैलोपर अशर्फिया लादे चले जा रहे थे । जब बैलोको प्यास लगी तो नदीमे पानी पीने लगे । उस साँडने सभी बैलोकी गोंदीमे एक-एक सीग मार दी, बहुतसी अशर्फी उसी जगह गिर गई । बजारे तो चले गए और उस छोटे भाईने वे सारी अशर्फिया पा ली और उन्हे लेकर अपने घर चला आया । तो यहाँ तात्पर्य कहनेका यह है कि यह श्रद्धा जहाँ जम गयी वहीसे जो कुछ होना है वह सब हो जाता है । साधनावोंके प्रसगमे श्रद्धा बिना तो कोई साधना ही नही बनती है, मूर्ति तो पाषाण है, धातु है, पर श्रद्धा है तो उस मूर्तिमे ही हम प्रभुताके दर्शन कर लेते है, और श्रद्धालु पुरुषोको उस निर्दोष मूर्तिको निरखकर तुरत ख्याल आ जाता है उन प्रभुका जिनकी कि उस मूर्तिमे स्थापना हुई है । बडी श्रद्धापूर्वक अरहतके स्वरूपका स्मरण करे कोई और उस स्मरणके साथ

इन मन्त्रोका जाप करे तो उसके प्रभावसे क्रूर चित्त वाले पशु भी अपना गर्व त्याग देते है, नम्रतासे वे योगिराजोके निकट बैठे रहते है।

अष्टरात्रे व्यतिक्राते कमलस्यास्यवर्तिन ।
निरूपयति पत्रेषु वर्णानितानुक्रमात् ॥१९९२॥

दशम दिन रात्रिमे विश्रामपूर्वक प्रतिपत्रमे मंत्रवर्णोका निरूपण—तत्पश्चात् जब ८ रात्रि व्यतीत हो चुके, इस कमलके पत्रोपर जो विराट अक्षर हैं उन अक्षरोको बारी-बारीसे जिस प्रकार वे अवस्थित हैं उनका यह निरूपण करता है, अवलोकन करता है। बहुत-बहुत जाप जपनेके बाद कुछ विश्रामके साथ एक सिहावलोकनकी तरह इन वर्णोको निरखते हैं। उस जापके समयमे जो वर्णोका निरखना था और स्मरण करते हुए ध्यान करते करते वह एक जापकी अवधिमे हदमे था। अब जाप पूर्ण होनेके पश्चात् जो एक निरूपण हो रहा है, सर्व अक्षरोका अवलोकन हो रहा है इसमे एक विश्राम और जैसे कार्यसिद्धि होनेके बाद एक सिंहावलोकन किया जाता है उस प्रकारकी एक गौरवताके साथ, सभ्यताके साथ इन पदोका निरूपण किया जा रहा है। निरूपणका अर्थ लोग कहनेमे लेते है, पर निरूपणका अर्थ है चारो ओरसे भली प्रकार देखना। तो यह अब अपनी साधनाके पश्चात् जिनका सहारा लेकर साधना की, उनका निरूपण कर रहा है।

आलम्ब्य प्रक्रियामेना पूर्व विघ्नौघशातये।
पश्चात् सप्ताक्षर मत्र ध्यायेत् प्रणववर्जितम् ॥१९९३॥

विघ्नोपशामक प्रक्रियाके अनन्तर प्रणववर्जित सप्ताक्षर मत्रका ध्यान—इस प्रकार इस प्रक्रियाको प्रथम विघ्नके समूहकी शातिके लिए आलम्बन किया, पश्चात् अब प्रणव मत्र न बोलकर केवल इन ७ अक्षरोका ध्यान करे—णमो अरहताण। ध्यानकी प्रक्रियामे जो पुरुष चलते हैं और स्वरूपका जिन्हे ज्ञान है, अतरतत्त्वका भी जिन्हे परिचय है वे सब इस प्रभावको समझते है कि पहिले प्रणव मत्र सहित जाप करनेमे क्या प्रभाव था, क्या परिणति बन रही थी और अब एक साधनाके पश्चात् मात्र णमोकार मत्रका ध्यान करते हुएमे कितना हल्काव ओर विश्राम अतिनिकटता, मनोवाछिता ये सब कितनी विशुद्धिको प्राप्त हुए है उसका अनुभव करते है। तो इन समस्त साधनोके पश्चात् अब वह प्रणव मंत्रसे रहित केवल सप्ताक्षरी मत्रके प्रथम पदका ध्यान करता है।

मत्र प्रणवपूर्वोऽय नि शेषाभीष्टसिद्धिद ।
ऐहिकानेककामार्थं मुक्त्यर्थं प्रणवच्युत ॥१९९४॥

इस मत्रका प्रणवपूर्वक ध्यान करें तो समस्त मनोवाछित कार्योकी सिद्धि होती है। प्रणव सहित इस मत्रके ध्यानमे समस्त विघ्न दूर होते है। जिसे ससारकी सम्पदाकी कोई

कामना ही नहीं है वह केवल आत्माके विशुद्ध स्वरूपका विकास ही चाहता है। वह पुरुष भी पहिले प्रणव मंत्र सहित इस प्रथम पदका ध्यान करता है। उसका प्रयोजन है विघ्न शांत हों। विषय कषायोंके जो महाविघ्न हैं वे भी न आयें और अन्य विघ्न भी न आयें, यह उस समयका आशय है, पश्चात् मुक्तिकी उसे वांछा है तो जो मुक्तिका कारणभूत है णमो अरहं-ताणं मंत्र, उसका ध्यान करे। यह सब एक बार विस्तारके साथ इस मंत्रके ध्यानकी बात बतायी गयी है। तो सुन करके कुछ चित्तमें भी बात लाना चाहिए। इस लोकमें हम आपको सहारा देने वाला कोई नहीं है बाहरमें। कोई कैसे दे सके ? पापका उदय हो तो मां भी सहारा नहीं दे सकती। पुण्यका उदय हो तो मां भी छोड दे तो भी उसकी रक्षा करने वाले मनुष्य तो क्या देव भी हो जाते हैं। अकृत पुण्यकी कथा सुनी होगी। वह राजपुत्र था, उसे प्रजावादियोंने देश निकाला करवा दिया, क्योंकि जबसे वह उत्पन्न हुआ तबसे देशमें विध्वंस ही शुरू हुआ। जब वह देशसे बाहर जाने लगा तो मां ने उसके साथ बडी सम्पदा भी रख दी पर सम्पदा कोयला बन गयी। सारी मोहरें कोयला बन गयी। अन्नकी जो गठरिया थी उनमें छिद्र हो जानेसे सारा अन्न खत्म हो गया। तो पापका जब उदय होता है तो मां भी सहायता नहीं कर सकती। गोदमें बैठा हो बालक तो उसे भी उसकी मां बचा सकती है क्या ? जब पुण्यका उदय हो तो मां चाहे बच्चेको मरघटमें छोड दे फिर भी उसके अनेक लोग रक्षक हो जाते हैं। आपने जीवन्धरका चरित्र सुना होगा। उसकी मां उसे श्मशानमें छोड आयी थी, फिर भी उसकी रक्षा एक सेठने की थी। तो बाहरमें इस जीवका साथी एक धर्म ही है। इस-लिए अपने धर्मकी रक्षा करनेमें इन ध्यान साधनाओंकी एकाग्रता तत्त्वके चिंतनमें अपना उप-योग लगाना चाहिए और कुछ अपनी सुधि रखना चाहिए। अपने आपकी सुधि रखे बिना, अपने आपका निर्मल परिणाम बनाये बिना अपना भला नहीं हो सकता है इस कारण कुछ इस ध्यान साधनाकी ओर अपना प्रयत्न होना चाहिए।

स्मर मंत्रपदं चान्यज्जन्मसंघातघातकम् ।
रागाद्युग्रतमस्तोमप्रध्वंसरविमण्डलम् ॥१९९५॥

जन्मसंघातघातक **मंत्रपदका** ध्यान—हे मुने ! तू अब ऐसे अन्य एक मंत्रका स्मरण कर, जो जन्मसन्ततिका नाश करने वाला है, अर्थात् फिर संसारमें जन्म न लेना पड़े ऐसे विशुद्ध निर्मल पदका प्रदान करने वाला है। जो रागादिक रूप तीव्र अन्धकारको नाश करनेके लिए सूर्यमण्डलके समान है। वह मंत्र है—श्रीमद्वृषभादिवर्द्धमानान्तेभ्यो नमः। मंत्र कोई भी हो, पर सभी मंत्रोंके आधारसे परमतत्त्वका स्मरण किया जा सकता है और जो शुद्ध तत्त्व है ज्ञानस्वरूप है उस ज्ञानस्वरूपके स्मरणसे ही सर्व संकटोंकी सिद्धि है। संसार सारा दुःखमय है, और यहाँ मनुष्यभवमें और दुःख है सो नहीं है ही। पशु पक्षी आदिक पर्यायोंमें भी है,

कीट पतिंगे वृक्ष आदिकमे भी है। ये सभी क्लेश तो है ही। किन्तु इस मनुष्यभवमे व्यर्थका एक नये ढगका क्लेश और भी है—लोकमे नामवरीकी चाह। उसमे बाधा आये तो उसमे क्लेश माना। कही सम्मान न हो सके, कही अपमान हो जाय, कही अपनी प्रतिष्ठा गिरते मालूम पडने लगे तो उसका क्लेश और व्यर्थका होने लगता है। यो यह ससार सर्व ओरसे दु खरूप है। दु खरूप है ससार—इसमे कोई आश्चर्यकी बात नही है, यह स्वरूप ही है। ससार सुखस्वरूप तो न बन जायगा। यदि ससार ही सुखस्वरूप बने तो फिर निर्वाणकी आवश्यकता क्या ? और जो मुक्त हुए है, क्या वे ठलुवा ही मुक्त हो गए ? जब ससार सुखस्वरूप था तो मुक्त क्यो हो गए ? यह ससार दु खरूप है और चूकि यह सम्बन्धरूप ससार है, शरीरका आत्माका सम्बध है, और विकल्पोसे इसका परिवारका मित्रोका सम्बध है। उन सबधोके कारण इसका यह ससार और क्लेशरूप हो गया है। यदि दु खोमे मुक्ति चाहिए तो मुख्य उपदेश यह है कि सर्वविकल्पोको छोडकर सबकी उपेक्षा करके ज्ञानमात्र जो निज अतस्तत्त्व है उसमे ही रमकर तृप्त रहे, सतुष्ट रहे।

निर्विकल्पकताके उपायमे अन्तस्तत्त्वके आलबनका विधान—निर्विकल्पकताका उपाय तो उन मनुष्योसे बन सकता है, जिन्होने सर्वपरिग्रहोका त्याग किया। चिता शोकका कोई प्रकरण नही रहा ऐसे मुनि जन ही इस लक्ष्यकी पूर्ति कर सकते है, पर जो श्रावक जन है उनका क्या कर्तव्य है ? तो जितना ज्ञान और श्रद्धानका प्रकरण है, विषय है वह तो मुनियो समान ही श्रावकके होता है। श्रद्धा और प्रयोजनभूत ज्ञानसे श्रावक और मुनिमे अतर नही होता। अतर है तो एक सयम और चारित्रका, तपश्चरणका। तो श्रद्धा और ज्ञानमे तो परिपूर्ण कुशल होना ही चाहिए। अब रही चारित्रकी बात। तो लक्ष्यको सही बनाये रहना यह भी एक चारित्रका अश ही है और जिसे कहते स्वरूपाचरण। स्वरूपका मुख्यरूप आचरण है। स्वरूपाचरणका बहुत बडा विस्तार है, और अनेक पदवियोमे अनेक विभागरूप इसके अर्थ है। कही स्वरूपका आचरण प्रतीतिरूप है, कही स्वरूपका आचरण स्वरूपमे स्थिरतारूप है, कही आत्मस्वरूपका आचरण स्वरूपमे विशेष स्थिरता रूप है और कही आत्यतिक स्थिरता है। सदाके लिए आत्मामे लीन हो गया, निर्विकल्प हो गया, तो श्रद्धा और ज्ञानमे श्रावककी मुनि के साथ समानता है। अब चारित्रके प्रकरणमे गृहस्थका क्या कर्तव्य है, उसे अपनी रात दिन की चर्या कैसी बनानी चाहिए उससे विशेष सबध है। जो गृहस्थ अपने आपको ७ व्यसनोसे दूर रखता है—जुवा, मास, मदिरा, हिंसा, चोरी, व्यसन, सम्बध आदि। उस पुरुषके यह पात्रता रहती है कि समय-समयपर वह जब कभी ज्ञानका अनुभव कर सके। जो मनुष्य इन व्यसनोके आधीन है उसकी वासनामे निरतर इनका ही ख्याल है। पापमे और व्यसनमे इतना अन्तर है कि पाप तो हो गया, पर उसकी वासना और उसका ताता उस ही रूप पाप करनेकी

प्रकृति नही है, उदयवश पाप बन गया है और व्यसनमे यह बात है कि उसका ताता लग जाता है, परम्परा बढती तो वासना बनी रहती है। तो जो व्यसनोमे प्रवृत्ति करता है उस पुरुषका धर्ममे अधिकार नही है। तो व्यसनोसे दूर रहे। दूसरी बात—अपने समयपर आजीविकाका साधन करें और अपनेको ऐसे तपश्चरणमे लगायें जो गृहस्थोके योग्य है। जो भी अपनी आय हो, पुण्यके अनुसार जितना जो कुछ प्राप्त हो उसके अदर ही अपना गुजारा करना और प्रसन्न रहकर उतनेमे ही गुजार रखकर प्रसन्न रहकर अपना बहुत समय ज्ञानाभ्यासमे धर्मपालनके प्रसगमे रहना, यह कर्तव्य है।

निर्दोष जीवन वालोको ध्यानविधानमे अलौकिक लाभ—निर्दोषविधिसे जो अपना जीवन चलाते है वे धर्मध्यानके प्रकरणमे जिस किसी भी मत्र पदका ध्यान करते हुए उस परमतत्त्वकी ही सुधि लेते है। इस कारण सभी मत्र पदमे करीब-करीब यह बात बतायी गयी है कि इस ध्यानसे जीव ससारसे पार हो सकते है। तो कोई यो शका करने लगे कि किसी मत्रसे तो ससारसे पार होता और किसी मत्रसे यह ससारमे ही मौज करता। तो भाई जिसका लक्ष्य विशुद्ध है उसके लिए सभी मत्र सहारे है निर्वाण प्राप्तिके लिए और निर्वाण मार्गमे पहुचनेसे पूर्व उस मत्रका ही क्या, किसी भी चर्चाका विकल्प नही रहता है। एक मात्र ज्ञानात्मक अपने आपका अनुभव रहा करता है। इस मत्रमे वृषभ से आदि लेकर वर्द्धमान पर्यंत २४ तीर्थंकरको नमस्कार किया गया है। इनका नाम भी भक्तिपूर्वक लेनेसे बहुतसे पापो का क्षय होता है। नामके साथ ही साथ उनकी मुद्रा, उनकी चर्या, उनकी गम्भीरता, किस प्रकार उन्होंने दीक्षा ली, किस तरह तपश्चरण किया, कैसे दिव्यध्वनि खिरी, यह सब चित्रण भक्तके सामने आ जाता है तो इसी कारण उनका नाम लेनेसे भी अनेक पाप दूर होते है।

नाभिज चतुर्मुख आदि ब्रह्मके स्तवनसे नामस्मरणकी महिमाका चित्रण—भक्तामर स्तोत्रमे एक काव्यमे बताया है ना कि हे भगवन ! स्तवन करनेकी बात तो दूर रही, तुम्हारा नाम मात्र लेनेसे भी अनेक पापोका क्षय होता है। जब अपने भाव भीगे, अपने परिणामोमे विशुद्धता जगे तभी तो पापका क्षय होता है। नाम मात्र लेनेसे क्षय होता, पर नाम लेने वाले के ऐसी श्रद्धा है, ऐसा ज्ञान है कि उस समय तत्त्वस्वरूपका भी उपयोग रखता है। ऋषभदेव जो इस चतुर्थकालके भी पहिले उत्पन्न हुए और इस चतुर्थकालकी सर्व व्यवस्था बनानेके वे कारण हुए, इसी कारण लोकमे यह प्रसिद्धि हुई कि ब्रह्माने सृष्टि रची। वे ब्रह्मा यही आदि पुरुष है। ब्रह्माके अनेक नाम भी इस बातकी पुष्टि करते है। प्रथम तो यह प्रसिद्धि है कि ब्रह्मा नाभिसे कमल निकला उसके उत्पन्न हुए। तो ये ही आदिनाथ नाभिराजासे उत्पन्न हुए। ब्रह्माको चतुर्मुख बताया है। इन आदिनाथ भगवानके समवशरणमे चारो ओरसे लोगो को मुख दिखता था, यह एक उनके अतिशयकी बात है। कही उनके चार मुख लग गए हो

भगवतपनेकी महिमा बढानेके लिए, ऐसी बात नही है । यहाँ तो कोई दो मुख वाला बच्चा पैदा हो जाय, जैसा कि कभी-कभी अखबारोमें सुनते है, तो वह भी शायद दो चार मिनट ही जीवित रहता होगा । तो ये सब बाते अव्यावहारिक है कि चार मुह हो जाये, कहाँ-कहाँसे हो जायें, किस जगहसे कैसे चार मुख बन गए, अरे चारो ओरसे मुख दिखता था ऐसा अतिशय था, इस कारण आदिनाथ भी चतुर्मुख कहलाये । यदि भगवानका मुख चारो ओर बैठे हुए सभी लोगोको न दिखता तो सभामे शाति न रह सकती थी । वहाँ बारह सभायें चारो ओर भरती है । हर एक कोई यही चाहेगा कि जिस ओर भगवानका मुख है वही जाकर बैठें । यदि चारो ओरसे मुख न दिखता तो देवोमे, मनुष्योमे सभीमे परस्परमे बडी-बडी लडाइया हो जाती । तो इसी व्यवस्थाके कारण उनमे एक ऐसा अतिशय था कि चारो ओरसे उनका मुख दीखता था । उस अतिशयका सम्बध है एक परमौदारिक शरीरसे । जो शरीर ऐसा कातिमान हो गया, स्फटिक मणिकी तरह स्वच्छ हो गया, ऐसे चमकते हुए कातिमान निर्मल पारदर्शी शरीर मे मुख आगे भी है लेकिन पीछे भी नजर आता है । जैसे स्फटिक मणिकी प्रतिमामे पीछेसे भी दर्शन करें तो मुख वही दिखता है, आगेसे दर्शन करें तो भी वही दिखता है, ऐसे ही भगवानके मुखमे भी एक ऐसा अतिशय है कि चारो ओर मुख दीखता है, और फिर जैसे मनुष्योमे भी कोई यात्रिक तात्रिक, कोई मदारी वगैरह खेल दिखाता है तो वह भी एकसे एक अपना अतिशय बनाकर पैदा करता है कि लोग आश्चर्यमे पड जाते है, ऐसे ही वहा भी अतिशय है । वहाँ तो रचनामे देवोकी प्रधानता है । उनकी रचनामे तो अतिशयका कहना ही क्या है । एक तो भगवानके केवलज्ञानका अतिशय और दूसरे देवोकी विशिष्ट रचना जो मनुष्योकी कृतिसे परे है । तो वहाँ ऐसा ही अतिशय है कि मुख चारो ओर दिखता है । तो जिस ब्रह्मा को लोगोने चतुर्मुख बताया वे आदिनाथ थे । लोगोने सृष्टिकर्ता ब्रह्माको बताया, तो ऐसे समय मे जब कि लोग हैरान थे, किंकर्तव्यविमूढ थे, भोगभूमि समाप्त हो रही थी, क्या खायें, कैसे रहे, एक बडी विकट समस्याके कालमे उन्होने सही व्यवस्था बनायी । अपने ज्ञानसे जानकर प्रजाजनोको उपदेश दिया, और प्रजाके लोग उनके उपदेशानुसार पुरुषार्थ करके ढगसे जीवित रहने लगे । तो यह सृष्टिका रूप नही है क्या ? इस प्रकारसे ये आदिनाथ सृष्टिके कर्ता थे । कोई असत् पदार्थ एकदमसे बना देवे इस प्रकारकी सृष्टिकी बात नही कह रहे है । तो ब्रह्माका नाम लेनेसे ऋषभदेवका नाम तो अपनी कल्पनामे स्पष्ट होना चाहिए ।

परमगुरुभक्तिका अनुपम प्रसाद--भावभीनी भावनासे भावित समस्त तीर्थंकरोका जब जब नाम लिया जाय तब तब जैसा कुछ भी कल्पनामे बन सके उस तरह उनके गुणोका स्मरण होवे । जैसा कुछ उनके चारित्रके बारेमे अध्ययन हो तो यो गुणस्मरणपूर्वक चौबीस तीर्थंकर परमदेवोका नाम लेनेसे अनेक पापोका क्षय वही हो जाता है । सकटोसे निपटनेका उपाय तो

एक भगवद्भक्ति, अपने अंतःस्वरूपकी भक्ति, ऐसा ही धर्मपालन है जिसके पसादसे ही पुण्य बढता है और पुण्यसामग्री प्राप्त होती है। धर्मको कभी न भूले। जब कभी दुःख आये तो उस समय भी यह साहस रखना चाहिए कि देखो घबडाकर अपनेको विह्वल बना लेनेसे दुःख छूट न जायेंगे किन्तु उन दुःखकी स्थितियोमे और विशेषरूपसे धर्म और ज्ञानकी उपासनामे लगे। तो इन चौबीस तीर्थंकर परमदेवोका नाम लेकर नमस्कार करते हुएके प्रसगमे उनके गुण स्मरणकी भी बात होनी चाहिए। तो इन मन्त्रोसे रागादिक अन्धकार दूर होता है, अपने स्वरूपका परिचय होता है जिससे विशुद्धि बढती है और उस विशुद्धिसे अनेक पापोका क्षय होता है, पुण्यरस बढता है। धर्मभावके निकट पहुचा करते हैं।

मनः कृत्वा सुनिष्कम्प ता विद्या पापभक्षिणीम्।
स्मर सत्त्वोपकाराय या जिनेन्द्र प्रकीर्तिता ॥१९९६॥

पापभक्षिणी विद्याके स्मरणका आदेश—अब हे मुने! मनको निष्कम्प बनाकर अब पापभक्षणी विद्याका स्मरण कर। ऐसी पापोको नष्ट करने वाली विद्या जो समस्त जीवोके उपकारके लिए जिनेन्द्र भगवानने बतायी है वह विद्या यही है जिसमे अनेक अक्षर है। ॐ अर्हंमुखकमलवासिनि पापात्मक्षयकरि श्रुतज्ञानज्वालासहस्रप्रज्वलिते सरस्वति मत्पाप हन हन दह दह क्षा क्षी क्षू क्षौः क्षः क्षीरवरधवले अमृतसभवे व व हू हू स्वाहा। श्रद्धापूर्वक इस ओर उपयोग लगानेसे जो चित्तमे एकाग्रता होती है उस एकाग्रतामे ही अनेक प्रभाव पडे हुए है, उसमे धर्मतत्त्वका सम्बध रखने वाले मन्त्रपदोका सम्पर्क होता है, इससे पापक्षयमे और विशेपता आती है। इस मन्त्रमे सरस्वती ज्ञान देवताको, ज्ञानस्वरूपको, आत्माके असाधारण स्वरूपको नमस्कार किया है, सावधान किया है और उस ही सरस्वतीसे अर्थात् आत्मस्वरूपसे आशा लगायी है। सरस्वती कहो अथवा ज्ञानप्रकाश कहो, अलकारमे उसे सरस्वती देवी कहते है सरस्वती शब्दका अर्थ है फैलाव वाली। जिसका बहुत बडा फैलाव है उसे सरस्वती कहते है। अब खोज करके बतावो कि सबसे अधिक फैलाव किसका है? कोई कहे कि आकाशमे है सबसे बडा फैलाव, तो ठीक है उसका कहना, पर ऐसे बडे फैलाव वाले आकाशको जिस ज्ञानने जाना उस ज्ञानका फैलाव क्या आकाशसे कम है? ऐसे समग्र आकाशको, समस्त पदार्थोके समूहको, जीव पुद्गल आदिक अन्य समस्त पदार्थोके समूहको जिस ज्ञानीने जाना उस ज्ञानमे अभी इतनी सामर्थ्य और है कि ऐसे लोकालोक, ऐसे समस्त वैभव यदि इससे असख्यातगुने भी और होते तो वे भी सबके सब इस ज्ञानमे प्रगट होते। तब ज्ञानका फैलाव इस आकाशके फैलावसे भी बहुत बडा है। इससे सरस्वती नाम है ज्ञानविकासका। अब चूकि ज्ञानविकासमे साधनशास्त्र है, मन्त्र जाप है, ध्यान भी है तो इन सबका प्रतीक उस सरस्वतीके हाथमे दिखाया है।

सरस्वतीका अलंकारिक चित्रण—सरस्वतीके एक हाथमे पुस्तक है जो ज्ञानका सकेत

करती है, वीणा है जो सगीतका संकेत करती है। सगीत एक ऐसा निर्मल और मनको पवित्र रखने वाला तत्त्व है कि जिससे पापकी वासना दूर होती है। भले ही आजकलके जो थोडा गदे गायन चले है वे पापवासनाकी ओर प्रेरित करे, पर सगीत वास्तवमे पापवासनाको दूर करनेमे कारण है। उस सगीतके सुनने वाले लोग भले ही कुछ सोच लें पर गाने वालेके चित्त मे उतनी अपवित्रता नही आती, चाहे वह किसी भी प्रकारका गाना गाता हो। कमी वेसी ज़रूर रहती है, कारण यह है कि सगीतकी ओर उसका उपयोग अधिक है, विषयोके लिए उपयोग नही है, । फिर जो बहुत विशुद्ध भजन है जिसमे वीतरागताकी, सर्वज्ञताकी, आत्म-स्वरूपकी बात है उसके गानेसे तो चित्तमे एक विशुद्धि बढती है। तो सरस्वतीके हाथमे वीणा भी बताई गयी है जिससे लोग सगीतके उपायसे भी ज्ञानके विकासमे लगें। एक हाथमे माला दिखाया कि जाप और ध्यानके प्रतापसे अपने चित्तको निर्मल बनायें। पुस्तक दिखायी गयी ताकि स्वाध्यायसे पवित्र बनें। शख दिखाया—प्रणव मत्रका, ॐ मत्रका, एक गम्भीर ध्वनिका उच्चारण करके अपने आपके अगोको पवित्र बना लें और उपयोगको भी पवित्र बनायें। तो जो साधन है उनका सकेत बनाकर एक सरस्वतीकी मूर्ति लोगोने बना ली, पर सरस्वती वास्तवमे नाम है विद्याका, ज्ञानविकासका। तो यह सरस्वती अरहत भगवानके मुख-कमलमे निवास करती है। सरस्वतीको कमलवासिनी बताया है लोगोने, मगर वह कौनसा कमल है ? वह कमल है अरहतदेवका मुखकमल। जिससे दिव्यध्वनि निकली, जो समस्त पापोका क्षय करती है। जिसके श्रवणसे, चितनसे, उच्चारणसे विषयकषाय पाप दूर भाग जाते हैं। तो ऐसी उस ज्ञानविद्याका स्मरण करके उससे आशा की है कि मेरे पापोको नष्ट करे, जलावे और बीजाक्षर मत्रमे जो इस विद्याका प्रतीक सकेत रखता है उन बीज अक्षरोको बोलकर इस मत्रको स्वाहाके साथ भक्तिपूर्वक बोला जाता है। सभी मत्रोका लक्ष्य है आत्मस्वरूपका। जो विशुद्ध है, अविकारी है, ज्ञानमात्र है उसके ध्यानसे पुण्यरस बढता है, पापोका क्षय होता है, धर्ममे प्रगति होती है। तो यह योगी ध्यानी पुरुष इन उपायोसे अपने आत्माको सम्हाले रहता है।

चेत प्रसत्तिमाधत्ते पापपङ्क प्रलीयते।
आविर्भवति विज्ञान मुनेरस्या प्रभावत ॥१९९७॥

पापभक्षिणी विद्याकी आराधनाका प्रताप चित्तप्रसाद पापप्रलय व विज्ञानाविर्भाव— जो ऊपरके श्लोकोमे पापभक्षणी विद्याकी आराधना बतायी है उस विद्याके प्रभावसे, मत्रके ध्यानसे मुनिका चित्त प्रसन्नता धारण करता है और पाप नष्ट होते हैं, विशिष्ट ज्ञान उत्पन्न होता है। इसमे सरस्वतीकी आराधना है और अरहतके स्मरण सहित और श्रुतज्ञानकी प्रभा-वना सहित सरस्वतीकी आराधनामे पापोको नष्ट करनेकी और अमृत तत्त्वका पान करनेकी

इसमे आराधना की गई है। सो चित्त विशुद्ध होता है। चित्तमे जिस प्रकारका ध्यान करता है उस प्रकारकी चित्तमे उद्भूति होती है। आत्माके प्रसादके फलसे पाप दूर होते है और विशिष्ट ज्ञान उत्पन्न होता है।

पदस्थध्यान वर्णन प्रकरण (३८)

मुनिभिः सजयन्ताद्यैर्विद्यावादात्समुद्धृतम्।
भुक्तिमुक्तेः पर धाम सिद्धचक्राभिध स्मरेत् ॥१६६८॥

भुक्तिमुक्तिके परमधाम सिद्धचक्र नामक मंत्रके स्मरणका विधान—तत्पश्चात् सिद्ध चक्र नामा मत्रको सजयन्तादिक महामुनियोने विद्यानुवाद नामा दशम पूर्वसे उद्धृत किया है—सो यह मत्र भोग और मोक्षका उत्कृष्ट धाम है, मुनिजन इसका स्मरण करें। संजयन्तने किसी कालमे मंत्रोकी आराधनामे और मत्रोके ध्येयमे प्रसिद्ध मुनिराज हुए, उनका उदाहरण देकर कहा कि यह सिद्धचक्र नामक मत्र जो अभी आगे कहा जायगा यह मोक्षका और भोगका उत्कृष्ट धाम है। मत्र शास्त्र जितने निकले हैं वे विद्यानुवाद नामक १०वें पूर्वसे निकले है। श्रुत ११ अग और १४ पूर्वमे है, सो यो समझिये कि ११ अग मिलकर भी उतने प्रमाणके नही हो पाते जितना कि १२वें अगका प्रमाण है। १२वे अगमे न्यायशास्त्र दृष्टिवाद और अनेक प्रकारके जो १४ पूर्व है उनमे बहुत-बहुत विद्या और विज्ञानका प्रवेश है। तो पूर्व है, चूलिका है, ये सब १२वें अगके भेद है। तो दशम जो विद्यानुवाद नामक पूर्व है उससे इस मत्रका उदाहरण है। यह मंत्र भोग और मोक्षका उत्कृष्ट धाम है। उसकी आराधनाके लिए मुनीश्वरोने कहा है। आराधनाका प्रयोजन तो एक निज सहज ज्ञानस्वरूपका लक्ष्य पहिचानना है। जिसका लक्ष्य सीधा ज्ञानभावसे ही पहिचाना जाता है, वह पुरुष तो स्वय मत्र है, पर जिस सहज ज्ञानस्वभावपर सहज दृष्टि नही पहुचती है, विलम्ब रहता है तब ऐसी स्थितिमे कोई विषय कषाय आदिकके उपद्रव आक्रमण न कर सकें उसके लिए कुछ धार्मिक चर्या होनी आवश्यक है। उसकी ही पूर्तिके लिए यह मत्र आराधना है। तो जो मुक्तिके इच्छुक है उनके मत्र आराधनाका यही प्रयोजन है और इसका तत्काल प्रभाव भी पडता है। किसी भी मत्रका जैसी उसमे विधि बतायी गई है उस विधिसे मत्रका आराधन करें तो उपयोग एक जगह टिका, चित्तकी एकाग्रता हुई, अनेक विषय कषायोंके विकल्प दूर हुए और ऐसी स्थितिमे उसे अवसर है कि ज्ञानमूर्तिमे अतस्तत्त्वका अवलोकन करें। तो इसमे सिद्धचक्र नामक मत्रके लिए स्मरणकी प्रेरणा की है।

तस्य प्रयोजक शास्त्र तदाश्रित्योपदेशत।
ध्येय मुनीश्वरैर्जन्ममहाव्यसनशातये ॥१६६६॥

सिद्धचक्रमंत्रकी जन्मव्यसनशान्तिके लिये ध्येयता—इस सिद्धचक्र मत्रके प्रयोजक

अर्थात् जिन शास्त्रोमे मत्रका वर्णन है उन शास्त्रोका आश्रय लेकर उनके उपदेशसे मुनीश्वरो को जन्मरूपी महासकटकी शान्तिके लिए ध्यान करना चाहिए। सिद्धचक्रमे ध्यान तो तत्त्व है सिद्धका समूह अथवा सिद्धस्वरूप। सिद्ध भगवानके नमस्कार करनेकी आम जनतामे धारणा थी, प्रवृत्ति थी, और एक मत्र जिसको बिगाडकर लोग यो कहने लगे—ओनामासीध। बहुत पहिले समयमे पाठशालावोमे जो ब्राह्मण लोग पाठ पढाते थे वे इस ही शब्दसे पढाना शुरू करते थे। ओनामासीध—इसका अर्थ न तो पढाने वालोको मालूम रहता था और न पढने वालोको, किन्तु यह एक रिवाज था। पढने वाले लोग समझ लेते थे कि हमने एक पाटी पढ ली, हमने दो पाटी पढ ली, हमने तीन पाटी पढ ली। सो वह पाटी क्या थी ? वह पाटी थी कातत्र व्याकरण। जो जैन आचार्योका बनाया हुआ है उसका सूत्र है। यह बहुत प्राचीन व्याकरण है। इसका शुद्ध शब्द है ॐ नम. सिद्ध। दूसरा मत्र है ॐ नम सिद्धेभ्य। लेकिन ॐ नमः सिद्धेभ्य की अपेक्षा ॐ नम सिद्धमे मर्म बहुत है। ॐ नम सिद्धेभ्य. का अर्थ है सिद्धोको नमस्कार हो और ॐ नम सिद्धका अर्थ है जिसमे नमस्कार किया जा रहा हो, जिसमे जो गुण हो वे मुझमे प्रगट हो। ॐ नम सिद्धका प्रयोग प्रारम्भमे पाटियोमे था, और जो गलत सूत्र पढा था—और उस गलत सूत्रका गलत अर्थ भी लगाने लगे। पहिले पढाने वालेको १५ दिनमे एक दिन आटा, दाल, चावल वगैरह सूखा भोजन, जिसे सीधा कहते है, उन पढने वालोकी तरफसे दिया जाता था। तो लोगोंने उस सिद्धका अर्थ सीधा जान लिया। अर्थ उसका यह है, शुद्ध शब्द यह है सिद्धोवर्णसमानाय, अक्षरोकी परम्परा बिना बनाये अनादिकालसे स्वय चली आयी हुई है, जिसको अजैन व्याकरण कहता है कि महादेवने डमरू बजाया और उसमे से ये अक्षर निकले, और जैन आचार्य यह कहते है कि अक्षरोकी परम्परा अनादिकालसे स्वय सिद्ध है, इस आध्यात्मिक ढगसे वैज्ञानिक ढगसे सुगमतासे इस व्याकरणकी रचना हुई थी। तो सिद्धचक्रमे अनेक सिद्धोका समूह स्मरणमे लेना। सिद्ध स्वरूपको स्मरणमे लेनेका प्रयोजन सिद्धस्वरूप का स्मरण करना ही है अनेक सिद्धोंके स्मरण मे भी। उस सिद्धचक्रका मत्र जो अभी बतावेंगे उसकी आराधना जन्मरूप महाकष्टकी शान्ति के लिए होती है। यह विशुद्ध मत्र है और विधान है, सिद्धचक्र विधान, और मत्रोका लक्ष्य तो यह है कि हमारा यह ससार जन्म मरण शरीर मिलनेकी परम्परा नष्ट हो और सिद्धके समान ही मैं अपने आपके स्वरूपका अनुभव करूँ। तो उस जन्मरूप महाकष्टकी शान्तिके लिए इन मत्रोका ध्यान करना चाहिए।

स्मर मन्त्रपदाधीश मुक्तिमार्गप्रदीपकम्।
नाभिपङ्कजसलीनमवर्णं विश्वतोमुखम् ॥२०००॥

सिवर्ण मस्तकाम्भोजे साकार मुखपङ्कजे ।
आकार कण्ठकञ्जस्थ स्मरोपकार हृदि स्थितम् ॥२००१॥

"अ सि आ उ सा" मंत्रके अक्षरो, विविध उत्तम देहस्थानोमें स्थापित करके ध्यान करने का विधान—हे मुने ! तू मत्र पदोका स्वामी और मुक्तिके मार्गको प्रकाश करने वाले अकार अक्षरको नाभिकमलमे चिन्तवन कर। पचपरमेष्ठियोमे उनके वाचक अक्षरोमे जो प्रथम अक्षर है उनको उच्चारणमे लेकर यह मत्र बना है। अ सि आ उ सा। इस अ शब्द को नाभिकमलमे चिन्तवन करें। यह अक्षर सर्वव्याप्ति है। चारो ओर इसका मुख है। अ अक्षरमे विशेषता वह बतायी जायगी जो अ के वाच्यभूत अरहंतमे विशेषता है। शब्दोका माहात्म्य शब्दोके वाच्यभूत पदार्थोकी महिमाके साथ जुड जाता है, क्योकि उस शब्दमे ही अर्थको बता रहे है। अरहत शब्दका अगर माहात्म्य बताते है तो अरहतस्वरूपका जो माहात्म्य है उस ही प्रकार वर्णन करके अरहत शब्दकी महिमा बतायी जायगी। अरहतके स्वरूप का स्मरण करनेसे पाप नाश होते है तो अरहत शब्दमे महिमामे भी यह बताया जायगा। यह अ अक्षर मत्रपदोका स्वामी है और मुक्तिमार्गका प्रकाश करने वाला है। अरहत मुक्तिमार्ग का प्रकाश करते है ना, तो उनकी यह मूर्ति बनाया, मुद्रा बनाया। जैसे मूर्तिको देखकर, फोटो को देखकर हम झट बोल उठते है कि यह अमुकचन्द है, इसी प्रकार इन अक्षरोको देखकर इन पदोको देखकर हम भी झट बोल देते है कि यह अमुक है। तो ये अक्षर सब आधारभूत पदार्थकी मूर्तिया है तो जैसे हम अरहत भगवानकी मूर्तिमे वही विशेषता बोला करते है कि धन्य है, ये मोक्षमार्गको प्रगट करने वाले है, चारघातियाकर्म नाश कर दिया है। मूर्तिसे व्यवहारभेद है। उनमे जो विशेषता है उसी विशेषताको हम मूर्तिमे कहा करते है, इसी प्रकार यह साकार मूर्ति है और अक्षर जो है वह एक निराकार मूर्ति है। अ मत्रसे अरहतका बोध हो गया तो अब यह अ अरहतकी मूर्ति हो गयी। तो जो विशेषता अरहतमे कही जाती है, वह विशेषता इस अ मत्रमे भी रही। जो श्रुतविद्याका श्रद्धालु पुरुष है वह इन प्रत्येक अक्षरोका विनय करता है। तो अ अक्षरको नाभिकमलमे विचारो और सि अक्षरको मस्तक कमलमे विचारो। आ अक्षर जो आचार्य परमेष्ठीका वाचक है उसको कठस्थ कमलमे विचारें। कठकी जगह कमल रचना सोचे और वहाँ आ अक्षर है ऐसी स्थापना करे। उ अक्षरको हृदय कमलमे और सा अक्षरको मुखस्थ कमलपर विचारें। उ अक्षर उपाध्यायका वाचक है और सा अक्षर साधुका वाचक है। इन ५ अक्षरोको ५ स्थानोपर चिन्तवन करें। असिआउसा। सिद्धचक्रका विधान करते समय भी इसी मत्रका जाप बोलते है, जो लक्ष मत्र जपे, सवा लक्ष जपे असिआउसा, इसमे थोडी और विशेषता कर देना, प्रथम ॐ ह्री लगाकर अतमे नम. बोल देना—ॐ ह्रीं असिआउसा नमः। असिआउसा यह निपात शब्द है, इसलिए उसमे य शब्द

जोडनेकी जरूरत नही है। जैसे लोग बोल देते है असिआउसाय नम । तो यह न बोलना चाहिए। असिआउसा ये शब्द सब विभक्तिमे लगते है।

सर्वकल्याणबीजानि बीजान्यन्यानपि स्मरेत्।
यानाराध्य शिव प्राप्ता योगिन शीलसागरा ॥२००२॥

सर्वकल्याणबीजभूत अन्य बीजमन्त्रोके ध्यानका आदेश—सर्व कल्याणके बीज अन्यान्य भी मत्र है जिनकी आराधनासे योगीजन मोक्षको प्राप्त हुए। उन सभी अक्षरोका मुनि ध्यान करें। जैसे एक मत्र है—'नम सर्वसिद्धेभ्यः' इस मत्रमे जिसका स्मरण किया गया है उसका स्वरूप समा जाय हृदयमे तो मत्रका प्रभाव अत्यन्त अधिक बढ जाता है। जब सिद्धोको नमस्कार किया जा रहा हो, कोई गुफामे विराजमान आत्मतत्त्वका एकाग्र होकर ध्यान कर रहे हैं, कोई पर्वत शिखापर विराजमान होकर आत्मचिन्तन कर रहे है, कोई नदीके तटपर, कोई जगलोमे, ऐसे विचित्र नाना एकात स्थानोमे चिन्तवन करते हुए बहुतसे मुनिराजोके स्वरूपको हृदयमे सोचें और इस चिन्तनके साथ फिर सिद्धोको नमस्कार करें। 'नमः सर्वसिद्धेभ्य' इन शब्दोको बोलकर सब चित्रणमे आये हुए मुनिजनोको नमस्कार करें तो इस भाति पूर्ण ध्यान से आत्मामे विशुद्धि बढती है, प्रसन्नता होती है, तृप्ति जगती है, आत्मीय विशुद्ध आनन्द प्रगट होता है, कर्मकलक भी नष्ट होते हैं।

श्रुतसिन्धुसमुद्भूतमन्यद्वा पदमक्षरम्।
तत्सर्व मुनिभिर्ध्येय स्यात्पदस्थप्रसिद्धये ॥२००३॥

आधारभूत परमतत्त्वकी प्रसिद्धिके लिये अन्य अक्षर पदोके भी ध्यानका उपदेश—अन्य भी पद तथा अनेक अन्य अक्षर जो श्रुतसमुद्रसे अर्थात् द्वादशाग शास्त्रसे उत्पन्न होते हैं वे सभी पदस्थ ध्यानकी प्रसिद्धताके लिए हैं, उन्हे भी मुनि जन अपने ध्यानमे लायें, ध्यानगोचर उन्हे भी बनाये। एक एक अक्षरका ध्यान भी अद्भुत महिमाको बढाता है, इस बातपर इस आधारपर कि उस अक्षरका आधारभूत जो परमतत्त्व है वह स्मरणमे रहे। सब ध्यानोमे विशुद्ध ध्यान है अपने आत्माके विशुद्ध स्वरूपका ध्यान। यह बहुत ऊँची दया है अपनी जो अपनेमे ऐसा भाव जगे, ऐसी प्रेरणा मिले कि यह मैं इस स्वरूपमे मग्न होऊँ, बस यही मेरे लिए वास्तविक काम है। अन्य सब तो एक विषयकषायोसे निपटनेके लिए आधार है, आश्रय मात्र है, करनेका मुख्य काम तो एक आत्ममग्नता है और ज्ञानी पुरुषोको यह आत्मज्ञानके रूपमे ज्ञानके ही नेत्र द्वारा स्पष्ट प्रतीत होता है। प्रदेश दिखते हो यह बात नही कह रहे, किन्तु जैसे अधेरेमे किसी चीजको टटोलकर जाना जाय तो न दिखनेपर भी वह चीज तो प्रत्यक्ष हो जाती है ना, आँखोसे दीखे तब वह प्रत्यक्ष कहलाये सो बात नही। अधेरेमे टटोलकर भी किसी चीजको ग्रहण कर सके तो वह स्पष्ट भी तो मालूम पड रहा है, इसी प्रकार प्रदेश भी

नजर आते । आत्मा अमूर्त है, पर ज्ञाननेत्र द्वारा ज्ञानका स्वरूप जब ध्यानगोचर हो रहा है तो यह आत्मा उस ज्ञानीको अपने आपमे स्पष्ट प्रतीत होता है । तभी उसका यह विचार हुआ कि बस इस ही मे मे मग्न होऊँ । प्रत्यक्षभूत हुआ यह आत्मा, जब इस प्रकार चितन हुआ बस इस ही मे मग्न होता है, यहाँ ही रत रहता है, रत होनेका उत्साह जगता है । तब बहुत निकट पहुचता है और निकट पहुचते-पहुचते भी विघ्न हो जाता है, कुछ ऐसी ही उदय प्रकृतिया है कि उसमें सफलता नही मिल पाती है, लेकिन उसके निकट पहुचनेका भी जो एक विशिष्ट आनद होता है वह आनन्द जगतमे किन्ही भी भोगोमे किसी भी स्थितियोमे नही है, और ऐसा बार-बार अपने आत्मस्वरूपके निकट पहुचने वाले भव्य जन किसी क्षण उसका अनुभव भी कर लिया करते हैं ।

ध्याता योगिजनोकी अलौकिक वृत्ति—जिन पुरुषोको बाहरमे बहुत ख्याल लगते है, विकल्प मचते है, लौकिकता प्रवर्तती है, लोक लिहाज, लोक शर्म, सम्मानकी इच्छा, अपमान का भय, इन बातोमे जिनका उपयोग अधिक उलझा होता है वे पुरुष इस आतरिक तपश्चरण करनेके पात्र नही होते है । ध्यानसिद्धि वाले योगी, आत्मानुभव करने वाले ज्ञानी अलौकिक वृत्ति वाले होते है, लौकिक जनोसे उनका मेल नही खाता । उनकी वृत्ति अलग ही है, ससार की परिपाटी बढानेके सम्बधको लिए हुए है, और ये ज्ञानी योगी अपनी एक ऐसी अलौकिक वृत्तिको लिए है जिनमे स्वय आत्महित लगा है, आत्मीय आनन्दका अनुभव होता है उसकी धुनिमे रहते है । लोग क्या कहते हैं इस ओर उनका उपयोग नही उलझता है । स्वयने क्या निर्णय किया है और अपना ही लक्ष्य जो मुक्तिमार्गका बीज है उसका अनुभव किया है, जाना है, उस लक्ष्यको वे छोडते नहीं है । तो उस लक्ष्यको न छोडने वाले लोग कदाचित् जैसे रामचद्र जी का बहुत बडा उदाहरण देते है कि लक्ष्मणके गुजरनेके बाद कुछ समय ६ माह तक वे कैसा विह्वल रहे अथवा सीताके हरणके बाद उनमे कैसी विह्वलता रही, उतनी विह्वलता होनेपर भी जैसा कि प्रसिद्ध है कि उनके क्षपक सम्यक्त्व था तो आत्मप्रतीति न थी क्या ? कितना अद्भुत उदाहरण है ? ऐसी गम्भीर स्थितिमे भी आत्मप्रतीतिका काम वहाँ भी चल रहा था, विह्वलता होनेपर भी ज्ञानी पुरुषोकी अन्तःवृत्ति एक अलग हुआ करती है ।

आत्महितके लिये अन्तस्तत्त्वका पूर्ण लक्ष्य बना लेनेकी आवश्यकता—लक्ष्य पूर्ण सम्यक्रूपसे एक बार बना तो लीजिए । एक बार रुचि और ध्यान अपने आपके स्वरूपका बन तो जाय फिर समझ लीजिए कि बेडा पार है । ससारका आवागमन छूटेगा । ससाररहित केवल अपने आपके सत्त्वसे ही जैसा मेरा ज्ञानस्वरूप है, सहजभाव है, शुद्ध चैतन्य रागद्वेषसे रहितकी बात नही कह रहे, रागद्वेषरहित कहे ही क्यो ? इस स्वरूपमे रागद्वेष थे ही कहाँ जो रहित बताया जाय । ऐसे शुद्ध नयकी दृष्टिसे उस सहजस्वरूपका निरखना हो रहा है । यह

अनादिसे ही अपने स्वरूपरूप है, ज्ञानमात्र है, उसका स्वभाव आनन्दमग्न है। स्वभावमे कोई परतत्त्व नहीं प्रविष्ट होता है। भले ही परिणमन कितना ही उल्टा चल रहा हो तिसपर भी स्वभावमे कोई विरुद्ध तत्त्व नही घुसा हुआ है, कितना विचित्र निर्णय है ? पदार्थ एक ही है और वह पदार्थ मलिन पर्यायमे है, इतनेपर भी स्वभाव कभी भी मलिन नही होता। ऐसी निरख कितनी विशिष्ट प्रज्ञाका फल है। यो समझिये कि जैसे ऐक्सरा लेने वाला यत्र होता है, आदमीको लिटा देते है और उसका फोटो लेते है तो वह यत्र न कपडेको छूता है, न चमडेको, न मांस मज्जा आदिको। इन किसीको भी न छूकर केवल हड्डीका फोटो ले लेता है। कितना भीतरमे हड्डी है, पर उन सब आवरणोंको पार करके जैसे एक्सरा यत्र मनुष्यके शरीरका फोटो ले लेता है ऐसे ही ये ज्ञानी पुरुष इतने आवरण होनेपर भी शरीर है, कर्म है, विभाव है, विचार है, परिणतिया है, पर्याये है इन सबको पार करके एक सहज ज्ञानस्वरूपको ग्रहण कर लेते है, ऐसी उनकी प्रज्ञाकी विशेषता है। जिस पुरुषने ऐसे निज अतस्तत्त्वका लक्ष्य बनाया है वह पुरुष उदयवश किन्ही भी परिस्थितियोसे उसे निपटना पड रहा हो, फिर भी जैसे पतग उडाने वाले बालकके हाथमे डोर है तो वह पतग कही नही गयी, उसके हाथमे है, और वह बालक भी ऐसा विश्वास बनाये हुए है कि मेरी पतग कही गई नही है, मेरे ही हाथमे है। यद्यपि हाथसे बहुत दूर है लेकिन उस बालकको यह पक्का विश्वास है कि पतग मेरे हाथमे ही है क्योकि हाथमे डोर है। तो ऐसे ही प्रतीति वाले पुरुषके हाथमे उसका कल्याण ही है। कहाँ जायगा कल्याण ? भले ही अनेक परिस्थितियोवश वह कुछ मजबूर हो लेकिन दृष्टि ले जाता उस ही तत्त्वकी ओर है। तो ध्यान उससे ही बनता है जिसको अपने लक्ष्यके पकडनेकी धुनि बन जाय, और धुनि बन गयी इसकी पहिचान यह है कि उसे और कुछ न सुहाये, अन्य बातोमे कोई महत्त्व न समझे, किसी भी इतर बातको कोई महत्त्व वाला ही समझे। एक तो लक्ष्यके ध्यानका ही निरन्तर प्रयास करे, दृष्टि दे, अभिमुख हो, ऐसा ध्यान करने वाला पुरुष इस मत्रपदका सहारा लेकर भी उस ही परमलक्ष्यका ध्यान करता है। वह निज ज्ञायकस्वभाव है। जिस स्वरूपको लिए हुए है उस ही स्वरूपमे उपयोग विराजे तो उसके सर्व पाप तुरन्त ध्वस्त हो जाते है। रह गयी वासना तो वह भी अल्पकालमे ध्वस्त हो जाती है। जिस समय ज्ञानानुभवका परिणमन है उस समय पापका परिणमन नही है। इस कारण सब पाप ध्वस्त हो गए। पहिले पाप किया था उनकी वासना रह गयी, वह भी अल्पकालमे ही ध्वस्त हो जायगी। सो जो उत्कृष्ट ध्यान है निज अतस्तत्त्व है उसका परिचय पायें, उसके ध्यानमे ही सन्तोष माने तो इसमे ही अपने कल्याणकी सफलता है।

एव समस्तवर्णेषु मन्त्रविद्यापदेषु च।
कार्यं क्रमेण विश्लेषो लक्ष्यभावप्रसिद्धये ॥२००४॥

समस्त मंत्रविद्यापदोमे, वर्णोंमें विश्लेषके अवबोधनका कर्तव्य—इस प्रकार समस्त वर्णोमे, मन्त्रपदोमे तथा विद्यापदोमे कार्यक्रमोके अनुसार अपने लक्ष्यकी सिद्धिके लिये विश्लेष अर्थात् भिन्न-भिन्न चिन्तवन करना चाहिये। सस्कृतकोष ग्रन्थोमे एक एक अक्षरका भी वाच्य बताया गया है। जैसे अ का अर्थ ब्रह्म, परमेश्वर कहा गया है। इ का अर्थ लक्ष्मी, अन्तरङ्ग लक्ष्मी कहा गया है इत्यादि अनेक अर्थसे भरे हुए समस्त अक्षरोमे लक्ष्यके अनुसार तत्त्वका चिन्तवन करना चाहिये। इसी प्रकार समस्त मन्त्रपदोमे बीजाक्षरोमें भी अनेक परम-तत्त्वोका समावेश है तथा नाना ज्ञानोसे समन्वित विद्यापदोमें भी तत्त्व समाविष्ट है। विवेकी पुरुष जो कि ससार शरीरभोगोसे अत्यन्त विरक्त है वे आत्मशान्तिके लक्ष्यकी सिद्धिके लिये इनका आराधन करते है, जो लोकधर्मप्रभावनाका विशिष्ट भाव रखते है वे अपने इस लक्ष्यकी सिद्धिके लिये आराधना करते है। जो सासारिक समृद्धिका लक्ष्य बनाये है वे अपने लक्ष्यकी सिद्धिके लिये आराधना करते हैं, किन्तु इस प्रसंगमें किसी रूपमे किसी अशमे मन्द कषाय होनेपर तथा देव गुरुके प्रति श्रद्धा होनेके कारण हुए पुण्यके कारण इस छोटे लक्ष्यकी सिद्धि होती है।

अन्यद्यद्यच्छ्रुतस्कन्धबीज निर्वेदकारणम्।
तत्तद्धयायन्नसौ ध्यानी नापवर्गपथि स्खलेत् ॥२००५॥

निर्वेदकारणभूत श्रुतस्कन्धबीजरूप अन्य पदोके ध्यानका विधान—अन्य भी जो जो श्रुतस्कन्धके बीजाक्षर है उनमे समाविष्ट तत्त्व है जो कि वैराग्यके कारण है उन उनका ध्यान करता हुआ यह योगी मोक्षपथमे बढता है, शिवपथसे स्खलित नही होता है। मुक्तिपथसे गिरानेके कारणभूत है विषय कषायके परिणाम। इन परिणामोका सवर होता है शुद्ध तत्त्वसे सम्बधित पद्धतिसे ध्यान करनेके कारण। अत इन ध्यानोके प्रसगमे आत्मा मुक्तिपथमे अपनी प्रगति करनेका पात्र होता है। सर्व ध्यायोका सार निज अनादि अनन्त विशुद्ध ज्ञायक भावको लक्ष्यमे लेना है। बीजाक्षरोमे किन्हीमे तो साक्षात् इस अनाहत अन्तस्तत्त्वका सकेत है, किन्ही बीजाक्षरोमे इस अन्तस्तत्त्वकी उपासनाका फल प्राप्त करने वाले प्रभुके स्वरूपका सकेत है। यो कार्यसमयसार व कारणसमयसारकी उपासना श्रुत स्कधके बीज अक्षरोमे मत्रोंमे की गई है। जो विवेकी पुरुष भक्तिपूर्वक इन मत्रोका ध्यान करते है वे आत्मप्रसन्नता तो प्राप्त करते ही है और अनेक बार विकल्पोका सवर होनेपर सहज आत्मीय आनन्दका भी अनुभव करते है जिसके प्रसादसे मोक्षपद प्राप्त होता है।

ध्येय स्याद्वीतरागस्य विश्ववर्त्यर्थसचयम्।
तद्धर्मव्यत्ययाभावान्माध्यस्थ्यमधितिष्ठत ॥२००६॥

वीतराग संतके विश्ववर्ती अर्थसंचयकी ध्येयमात्रता—वीतराग सत योगियोके विश्व-

वर्ती सभी पदार्थ ध्येय बन जाते है । इसका कारण यह है कि आत्मतत्त्वकी धुन रखने वाला और अतएव रागद्वेषकी कलुषतासे परे रहनेवाला योगी कुछ भी जाने उसमे इष्ट अनिष्ट बुद्धि नही करता है । साथ ही यह भी बात है कि ज्ञानी विरक्त पुरुष उपयोग लगा लगाकर बाह्य अर्थोको जाननेका परिश्रम नही करता है, किन्तु ज्ञप्ति परिवर्तन होनेकी स्थितिमे बाह्यपदार्थ उसके ज्ञानमे आते है । सो कुछ भी पदार्थ ज्ञानसे आयें उनका यथार्थस्वरूप जाननेके कारण वीतराग सतोंके इष्ट अनिष्ट बुद्धि नही जगती है । पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपास्तित्वका उनके यथार्थ निर्णय है । प्रत्येक पदार्थ परिपूर्ण स्वास्तित्व सम्पन्न है । मै भी परिपूर्ण निजस्वरूपमय हू । इस कारण मुझे अन्य कुछ भी न हित हो सकता है और न अहित हो सकता है । इस विशुद्ध स्वरूपके परिचयके कारण योगीके सदैव माध्यस्थ भाव रहता है ।

वीतरागो भवेद्योगी यत्किञ्चिदपि चिन्तयेत् ।
तदेव ध्यानमाम्नातयतोऽन्यद्ग्रथविस्तर ॥२००७॥

कुछ भी चिन्तन करते हुए वीतराग रहने वाले संतके योगित्व—योगी पुरुष तिस किसी भी पदार्थका चिन्तवन करे वह वीतराग ही रहता है और वह जो कुछ भी चितन करे वही ध्यान कहलाता है । द्रव्य गुण पर्यायोका चिंतन वीतरागताके पोषणमे सहायक होता है। योगी जब आत्माके द्रव्य गुण पर्यायोका चिन्तन करता है तब भी वह विपय कषायसे परे रहनेके कारण ध्यानी कहलाता है और जब पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल पदार्थके द्रव्य गुण पर्यायोका चिन्तन करता है तब भी विपय कपायसे परे होनेके कारण ध्यानी कहलाता है । तात्पर्य यह है कि कुछ भी तत्त्वचिन्तनमे आये वीतराग योगी पुरुपके वही ध्यान कहलाने लगता है । विशुद्ध ध्यानके प्रसगमे मुख्यता रागद्वेष, इष्टबुद्धि, अनिष्टबुद्धि आदि विषमताओंसे परे रहनेकी है । वीतरागतासे ही आत्मा अपने विशुद्ध विकासको प्राप्त होता है । एतदर्थ वस्तुस्वरूपके यथार्थ निर्णयका होना आवश्यक है ।

वीतरागस्य विज्ञेया ध्यानसिद्धिर्ध्रुव मुने ।
क्लेश एव तदर्थं स्याद्रागार्तस्नेह देहिनः ॥२००८॥

वीतराग मुनिके ध्यानसिद्धिकी ध्रुवता---वीतराग मुनिके ध्यानकी सिद्धि अवश्य होती है, किन्तु जो पुरुष रागसे पीडित है, किसी भी बाह्य परिवारका स्नेह जिसके जगा है उस प्राणी का ध्यानसिद्धिके लिये जो जो भी व्यवसाय होता है वह सब क्लेश ही है । ध्यानके इन प्रसगो मे जो ध्यानसिद्धिका पात्र जो वीतरागको कहा जा रहा है सो यहाँ क्षीणकषाय नामक गुणस्थान वाले वीतरागकी बात नही कह रहे है अथवा वीतराग अर्हंतदेवकी बात नही कह रहे हैं, वे तो ध्यानका फल भी प्राप्त कर चुके और उनके ध्यानसाधनाकी आकाक्षा ही नही है, वे लक्ष्य भी नही बनाते, इससे इन वीतराग प्रभुके वीतराग शब्दसे यहाँ नही कह रहे हैं, किन्तु

जो पुरुष ससार शरीर और भोगोसे विरक्त है उन वीतराग मुनियोको वीतराग शब्दसे कहकर उनके ध्यानकी बात कही जा रही है। ऐसे पुरुष ध्यानसे अनुराग भी करते है, अपनी आत्म-सिद्धिका लक्ष्य भी करते है, किन्तु यह राग रागके अभाव करनेके लक्ष्यसे हो रहा है, इस कारण इस स्थितिमे राग रहनेपर भी वे वीतराग कहे जाते है। वीतराग मुनिके ध्यानकी सिद्धि अवश्य होती है। रागपीडित पुरुषके ध्यानकी सिद्धि नही होती है, बल्कि वह सब व्यवसाय क्लेशरूप ही रहता है।

निर्मथ्य श्रुतसिन्धुमुन्नतधिय. श्री वीरचन्द्रोदये,
तत्त्वान्येव समुद्धरन्ति मुनयो यत्नेन रत्नान्यतः।
तान्येतानि हृदि स्फुरन्ति सुभगव्यासानि भव्यात्मना,
ये वाञ्छन्त्यनिश विमुक्तिललनासम्भोगसभावनाम् ॥२००९॥

श्री वीरप्रभुके तीर्थमे धर्मप्रकाशका संकेत—अन्तिम तीर्थंकर जो इस चतुर्थकालमे हुए उन वर्द्धमान स्वामीरूप चन्द्रमाके उदय होनेपर उत्कृष्ट बुद्धिशाली मुनि जनोने शास्त्ररूपी समुद्र को मथ करके ऐसे मत्र तत्त्व रत्नोको निकाला है जिनके ध्यानके प्रसादसे भव्य जीवोने मुक्ति प्राप्त की है। अब भी जो मुक्तिके अभिलाषी है उनके हृदयमे इन मत्रपदोका ध्यान चलता है। आजका यह तीर्थ श्री वर्द्धमान स्वामीका तीर्थ है। उनके उपदेशकी परम्पराका यह सब तीर्थपवर्तन है। इस कारण वीर चन्द्रमाके उदयकी बात कही गई है। सार सारतत्त्व व प्रति-पादनोका निकालना शास्त्रोके अभ्यास बिना नही हो सकता है। इस कारण शास्त्रसमुद्रके मथनकी बात कही गई है। ये बीजाक्षर समन्वित मत्रराज अनाहत अतस्तत्त्वकी ओर साक्षात् व परम्परया सकेत करते है। इस कारण ये मत्रपद परमेश्वररूप है। इनके ध्यानके प्रसादसे पारमैश्वर्य प्रकट होता है।

विलीनाशेषकर्माणं स्फुरन्तमतिनिर्मलम्।
स्व तत पुरुषाकार स्वाङ्गगर्भगत स्मरेत् ॥२०१०॥

धर्मध्यानके प्रकरणमें अन्तिम शिक्षण—धर्मध्यानके चार भेद है—आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय, सस्थानविचय। इस प्रकरणमे सस्थानविचय धर्मध्यानका वर्णन चला है। सस्थानविचय धर्मध्यानमे विशेषता उत्पन्न करने वाले ये चार ध्यान है—पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत ध्यान। जिनमेसे यह पदस्थ ध्यानका प्रकरण है। पदस्थ ध्यान मे नाना मत्रपदोके अवलम्बनसे अनाहत अन्तस्तत्त्वकी साक्षात्, परम्परया व फलरूपमे उपा-सना की गई है। इन मत्रपदोके अभ्याससे विशुद्धि वृद्धिगत होती है। जिससे चित्त एकाग्र होनेसे तथा उत्तम लक्ष्यका ग्रहण होनेसे शुद्ध स्वरूपका प्रतिभास होता है, अनुभव होता है। इस शुद्ध तत्त्वके अनुभवके प्रतापसे कर्मोका सवर होता है तथा कर्मोकी निर्जरा होती है तथा

सर्व कर्मसे मुक्ति होने पर शाश्वत अनन्तज्ञानानन्द सम्पन्न हो जाता है।

पदस्थ ध्यानमे बताये हुए इन मन्त्रपदोंके अभ्यासके पश्चात् उपासकको अपने देहगत पुरुषाकार निज आत्माका चिन्तन करना चाहिये। निज आत्माका चिन्तन निज शाश्वत ज्ञान-स्वभावके ध्यान द्वारा किया जाता है। यह आत्मा केवल अपने स्वरूपास्तित्वमय है जिसमे कर्म नोकर्म आदि किसी परतत्त्वका समवाय नही है। यह अपने आपमे अत्यन्त निर्मलरूप प्रकाशमान है। सर्वविशुद्ध ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वका ध्यान करनेमे विशुद्ध आत्मीय आनन्दका अनुभव होता है। इस आनन्दानुभवके प्रसादसे समस्त सकट निर्मूल नष्ट हो जाते है, आर्हन्त्य पद प्रकट होता है जिसका कि वर्णन अब आगेके प्रकरणमे रूपस्थ ध्यानके विश्लेषणमे किया जायगा।

इन मत्र पदोंका ध्यान मुक्तिलाभका एक विशिष्ट उपाय है। इनके ध्यानसे लौकिक प्रयोजन भी नाना सिद्ध होते है, अणिमा महिमा आदि अनेक ऋद्धिया भी सिद्ध होती है, किन्तु जिन्होंने ससारके यथार्थस्वरूपको जाना है, आत्माके विशुद्धस्वरूपका परिचय किया है, आत्मीय आनन्दका अनुभव किया है उन योगीजनोको सासारिक सिद्धियोंसे कोई प्रयोजन नही होता। ज्ञानी योगीश्वरोंके केवल ज्ञानमात्र आनन्दघन निज अन्तस्तत्व ही उपादेय है। गृहस्थ जन भी यथाशक्ति इन पदोका ध्यान करते है। उनको भी मोक्षमार्गके प्रयोजनसे ही ध्यान करनेको कल्याणकारी कहा गया है। जो महापुरुष इन मन्त्रपदोका, बीजाक्षरोका, अक्षरपदोका अर्थ, रहस्य ध्यानमे रखकर एकचित्त होकर श्रद्धापूर्वक ध्यान करते है वे उत्तम पदस्थ-ध्याती है और वे आत्मकार्यकी सिद्धि प्राप्त करते हैं।

॥ ज्ञानार्णव प्रवचन एकोनविंश भाग समाप्त ॥

ज्ञानार्णव प्रवचन विश भाग

रूपस्थधर्म्मध्यानवर्णन प्रकरण ३९

ज्ञानलक्ष्मीघनाश्लेषप्रभवानन्दनन्दितम् ।
निष्ठितार्थमज नौमि परमात्मानमव्ययम् ॥

संसारी जीवोके ध्यानकी स्थितियां—हम आप सब जीवोके कुछ न कुछ ध्यान निरतर बना रहता है, चाहे वह बहुत ही थोडे समयमे बदलकर रहता हो, पर रहता है ध्यान सबके, और हम आप तो सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव है, जो असञ्ज्ञी जीव है उनके भी किसी न किसी रूपमे चित्तके बिना भी ध्यान बना रहता है, हाँ उसको एक प्रमुखता नही दी है, किन्तु सञ्ज्ञावोके बलपर जैसे कि सिद्धातमे बताया है कि आर्त रौद्रध्यान तो ससारके मिथ्यादृष्टि जीवो मे सभीमे पाया जाता है । विशेषतया चित्त वालोके, मन वालोके ध्यानकी बात कही जाती है, और मनुष्योंके तो इस ध्यानकी विशेषता है ही । हम आप करते है विचार, और वे सब विचार ध्यानोंके रूपमे बन जाते है । भाव ही हम आप कर पाते है, इसके अतिरिक्त और हम आप कर ही क्या सकते है ? जरा अपने आपका जितना स्वरूप है उतने पर दृष्टि देकर निर्णय करिये । सभी पदार्थ अपने गुणपर्यायात्मक है, अपने प्रदेशोसे बाहर कोई भी पदार्थ कुछ नही करता ।

वस्तुके निज क्षेत्रमें वस्तुत्वका प्रभाव—लोकमे निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध तो है ही विकारपरिणमनके प्रसगमे । इस कारण लोगोको ऐसा ख्याल हो जाया करता है कि देखो अमुक पदार्थने अमुक दूसरे पदार्थकी यह क्रिया की, क्योकि वहा ऐसा कुछ अन्वयव्यतिरेक देखा गया, निमित्तके सद्भावमे उपादानमे कार्य देखा गया और ऐसे निमित्तोके असद्भावमे उपादानमे यो कार्य नही देखा जाता है, इस तरह कार्य होनेके कारण एक यह ख्याल लोगोको बन गया है कि कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थका कुछ कर देता है । यही कारण है कि एक पदार्थमे किसी दूसरे पदार्थका कर्तापन लाद दिया जाता है । जैसे मै अमुकको सुखी करता हू, अमुकको दुःखी करता हू—इसमे तो कुछ निमित्तनैमित्तिक भावोकी स्थिति नही बन रही है तिस पर भी यह प्रतीत है । वस्तुत· सर्वपरिस्थितियोमे प्रत्येक पदार्थ अपने गुणपर्यायमे तन्मय रहा करता है । अतएव किसी भी पदार्थका गुण या पर्याय उसके अपने क्षेत्रसे बाहर नही होता ।

अशुद्ध परिणमनमे भी वस्तुस्वातन्त्र्यकी झलक— वस्तुस्वातन्त्र्यके निर्णयमे कुछ दृष्टात ले लो। दीपक पदार्थको प्रकाशित करता है। इसमे दो बातें कही गई है—दीपक और पदार्थ। आप यह बतलावो कि दीपक कितना बडा है, कोई तो उस लालटेन या दीपकको देखकर झट बता देंगे कि दीपक तो कमरेके बराबर बडा है। पर दीपक उतना बडा नही है। दीपक तो उतना बडा है जितनेमे उसकी लौ है। यदि कहो कि नही बहुत बडा है दीपक, कमरे बराबर है, तो कमरेके जिस कोनेमे हाथ उठा दे तो वह सारा दीपक बुझ जाना चाहिए, पर ऐसा तो नही है। दीपक उतना बडा है नही। दीपक तो उतना ही बडा है जितना कि उसकी लौ है। दीपकके प्रदेशोंसे बाहर दीपकका कुछ नही है। ये पदार्थ दीपकसे बहुत दूर है, किन्तु निमित्त-नैमित्तिक सम्बध न मेटा जा सकेगा। प्रकट दिख रहा है कि दीपकका निमित्त पाकर ये पदार्थ अपनी अधकार अवस्थाको त्यागकर प्रकाश अवस्थामे आये हैं। लेकिन इतना सम्बध होनेसे कही यह बात न बन जायगी कि दीपकने अपना स्थान छोड छोडकर पदार्थोमे आ आकर इन्हे प्रकाशित किया है। अब जरा एक दृष्टात और लीजिये। यहाँ प्रकाशके मध्यमे जो यह छाया रूप परिणमन है यह किसका छायारूप परिणमन है ? इस बाबत तो निमित्तनैमित्तिक सम्बध देखकर लोग कह देते है कि यह हाथकी छाया है, किन्तु यह बतलावो कि हाथ कितना है ? जितनेमे ये अगुलिया है, हथेलिया है उतना ही तो हाथ है। तो हाथके प्रदेशोमे हाथका ही सब कुछ है। हाथसे बाहर हाथकी कोई चीज नही है। पर यह छायारूप परिणमन कैसे हुआ ? यह पुस्तक है, यह चौकी, यह पृथ्वी जो भी वहा कुछ चीज प्रकाशके अवरोधरूप हो रही है छायारूप परिणम रही है, वह परिणमन पदार्थका है।

निजमे स्वातन्त्र्यका अनुभव—यहाँ दृष्टात केवल इसलिए दिया है कि अपने आपमे यह निर्णय कर लीजिए कि मै सबसे निराला शरीरसे भी जुदा केवल ज्ञानानन्दस्वरूपको लिए हुए चेतन पदार्थ हू। यह मैं पदार्थ अपनेमे अपना ही सब कुछ करता रहता हू, मैं किसी दूसरे पदार्थका कुछ भी कर सकनेमे समर्थ नही हू। मै तो केवल एक भाव बनाता हू, और वे सब भाव ध्यानरूपमे हो जाया करते है। तो हम आप सबके ध्यान ये निरन्तर रहते है। अब उन्ही ध्यानोसे हम अपनी बरबादी कर लेते है और ध्यानोसे ही हम अपनेको उन्नतिके पथपर ले जा सकते है।

सोलह ध्यानोमे आठ अशुभ ध्यान—ध्यान १६ बताये गए है—४ आर्तध्यान, ४ रौद्रध्यान, ४ धर्म्यध्यान और ४ शुक्लध्यान। आर्तध्यान इष्टवियोगज, अनिष्टसयोगज, वेदनाप्रभव और निदान—ये चार है। इष्टका वियोग होनेसे उसके सयोगके लिए जो चिन्तन चलता है वह इष्टवियोगज आर्तध्यान है। किसी अनिष्टका सयोग होनेपर उसके वियोगके

लिए जो कल्पना होती है वह अनिष्टसयोगज आर्तध्यान है। शरीरमे पीडा होनेपर जो चिन्तन चलता है वह वेदनाप्रभव आर्तध्यान है। अन्य वस्तुवोकी प्राप्तिके लिए जो आशा चलती है वह निदान नामक ध्यान है। ये ४ आर्तध्यान इसलिए कहलाते है कि इन ध्यानोमे पीडा उत्पन्न होती है। पीडाके कारण इन ध्यानोको आर्तध्यान कहते है। जैसे कि खोटे ध्यान, ये चार बताये है ऐसे ही खोटे चार रौद्रध्यान है—हिसानन्द, मृषानन्द, चौर्यानन्द और विषयसरक्षणानन्द। हिसामे आनन्द मानना, हिसा करनेमे, करानेमे, करते हुएको देखकर किसी भी प्रकार हिसाके प्रसगमे आनन्द मानना हिसानन्द रौद्रध्यान है। भूठ बोलनेमे, बुरा माननेमे, भूठी गवाही देने मे, हँसी मजाकमे आनन्द मानना मृषानन्द रौद्रध्यान है। चोरीमे आनन्द मानना चौर्यानन्द है और पञ्चेन्द्रियसे विषयोके सरक्षणमे आनन्द मानना सो विषयसरक्षणानन्द रौद्रध्यान है। इसे रौद्रध्यान क्यो कहते है? यह रुद्र भावको लिए हुए होता है, क्रूरताको लिए हुए होता है और आनन्द इसके साथ यो लगा है कि वह उसमे मौज मानता है। ये ८ छोटे ध्यान हैं, इनसे तो आत्माकी बरबादी है, पर धर्मध्यान और शुक्लध्यान—ये ससारके सकटोसे छुटकारा करानेके साधन है।

धर्म्यध्यान—४ धर्मध्यान है—आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और सस्थान-विचय। भगवानकी आज्ञा मानकर जो धर्मध्यान बना हो वह आज्ञाविचय धर्मध्यान है। इसमे मात्र आज्ञा मानकर श्रद्धानी बना हो इतनी ही बात नही है, श्रद्धान तो उसके श्रद्धानके ढगसे है, विवेकपूर्वक है वह आत्मदर्शी है, पर जिस किसी भी समय भगवानकी आज्ञाकी प्रमुखतासे विचार होता है वह आज्ञाविचय धर्मध्यान है। ये रागादिक विकार कैसे दूर हो, ये ही जीवकी बरबादीके हेतुभूत है। इस प्रकार रागादिकके अपायका चिन्तन करना सो अपायविचय धर्म-ध्यान है। कर्मोके फलका चिन्तन करनेको विपाकविचय कहते है। सस्थानविचय धर्मध्यान इन ध्यानोमे विशेष महत्त्वका ध्यान है, और इसके सम्बधमे यह भी कथन चलता है कि मुख्यतासे सस्थानविचय धर्मध्यान निर्ग्रन्थ साधुवोके हुआ करता है। वैसे तो सम्यग्दृष्टियोके चार ध्यान है पर मुख्यताकी अपेक्षा देखा जाय तो सस्थानविचय साधु जनोके हो पाता है। इसका एक मुख्य रूपक यह समझ लीजिए कि तीन काल तीन लोककी रचना उपयोगके सामने चित्रितसी रहे, ऐसी स्थिति होनेको सस्थानविचय धर्मध्यान कहते है। लोक कितना बडा है? ३४३ घनराजू प्रमाण है, इसमे यह जीव सर्वत्र जन्मा है। इतने बडे लोककी सुधि बने। सस्थानविचय धर्मध्यान साधु जनोके चिरन्तन रहा करता है। फिर सस्थानविचय धर्मध्यानमे उनके जो भेद किए गए है उनके भेदसे उनका महत्त्व और अधिक ज्ञात होता है। सस्थान-विचयके इन चार प्रकारोको देखिये—पिण्डस्थ, पदस्थ, रूपस्थ और रूपातीत। पिण्डस्थध्यानमे

अपने आपके सम्बन्धमे जो चिन्तन चलता है वह पार्थिवी, आग्नेयी, मारुती, वारुणी व तत्त्वरूपवती धारणामे है और वह यद्यपि एक कल्पनाके आधारपर चलता है, परन्तु उसमे क्रियागौरवका अभाव होनेसे आत्मनिर्भर अपनेको अनुभव करता है और उस स्थितिमे निष्कलक आत्माको ध्यानमे लेता है। पदस्थध्यानमे मत्रोके सहारे अपना ध्यान जमाना है। रूपस्थध्यान मे क्या होता है ? उसके सम्बधमे आचार्यदेव कहते है।

आर्हन्त्यमहिमोपेत सर्वज्ञ परमेश्वरम्।
ध्यायेद्देवेन्द्रचन्द्रार्कसभातस्थ स्वयम्भुवम् ॥२०११॥

रूपस्थध्यानमे ध्येय—जो प्रभु आर्हन्त्यकी महिमासे सहित हैं, रूपस्थध्यानमे उस सकलपरमात्माका ध्यान किया जाता हैं। ये परमात्मा चार घातिया कर्मोंसे रहित हैं, किन्तु अभी शरीरसे रहित नही हो सके, ऐसे सकलपरमात्माका ध्यान होता है। यो समझ लीजिए कि जिस पुरुषने ज्ञान और वैराग्य किया है, ज्ञान और वैराग्यकी जब सीमा बढती है तो वह परिग्रहको नही लपेट सकता, सबसे छुटकारा पाता है, निर्ग्रन्थ अवस्थाको धारण करता है। केवल एक आत्माकी धुनि ही उसके बनी रहती है। आत्मदर्शनके अनेक अवसरोको आत्मानुभवके रससे तृप्त होकर उस महान आनन्दके प्रतापसे वह चार घातिया कर्मोंको नष्ट कर देता है। ज्ञानावरण—जो ज्ञानको रोके, दर्शनावरण—जो दर्शनको न प्रगट होने दे, मोहनीय—जो दर्शन और चारित्रको बिगाड दे, अन्तराय—जो विघ्नका कारण हो, ऐसे चार घातिया कर्मोंका उसके विनाश होता है। रागद्वेषादिकका वहाँ अभाव है और तीन लोक तीन कालके समस्त पदार्थोंके जाननेकी शक्ति वहाँ प्रगट होती है, ऐसी आर्हन्त्यकी महिमा करके सहित है ये सकलपरमात्मा।

दिव्यसभास्थ प्रभुका ध्यान—रूपस्थध्यानमे वह सब दृश्य भी विचारना है जो समवशरणमे हुआ करता है। पृथ्वीसे कुछ कम ५ हजार धनुष ऊपर समवशरणकी रचना शुरू होती है। जमीनपर इस समवशरणको कहाँ बनायें ? १०-१२ कोशका ऐसा मैदान, जहाँ लोग जा सकें, कही पर्वत है, कही नदी है। तो यह रचना देख लो, ऊपर रचना होती है, सीढियोसे मनुष्य तिर्यञ्च आदि पहुचते हैं। अनेक रचनायें जो मनको हरने वाली है उनको निरखते हुए जहाँ भगवान विराजे है, उनके निकट बारह सभायें होती है, उनमे मनुष्य तिर्यंच देव आदिक सभी विराजमान होते है। तीनो लोकोके इन्द्र देवेन्द्र राजा महाराजा चक्रवर्ती सभीके सभी उस वीतराग प्रभुकी प्रभुताको निरखकर वहाँ खिंचे चले आते है। अरे उन देव देवेन्द्रोको, बडे-बडे चक्रवर्तियोको कौनसे सासारिक वैभवकी कमी है, क्यो वे प्रभुके समक्ष जाते है ? अरे वे सभी आत्महितके अभिलाषी है, और आत्महित है वीतरागतामे। तो उस वीतरागतासे अपने परिणामोको निरखकर, अपने ज्ञानबलको देखकर वह वीतरागता प्राप्त की

जाती है। उस वीतरागताकी ऐसी महिमा है कि तीन लोकके इन्द्र खिचे हुए चले आते है। रूपस्थ ध्यानमे उस परमात्माका स्मरण करना है जो आत्मविश्वास, आत्मज्ञान और आत्म-रमणके प्रकाशसे अनेक भव्य साधु वीतराग और सर्वज्ञ बन गए है, वीतराग सर्वज्ञ होनेपर अब उनसे मनुष्य इस तरह बाते नही कर सकते। वे परमात्मा है, यो उनसे शका समाधान नही हो सकता, कोई उनसे घरकी चर्चा नही कर सकता। वह तो एक दर्शनीय मुद्रा है, वे अपने अनन्त आनन्दमे विराजमान है, ऐसे परम ज्ञानानन्दस्वरूपमे विराजमान सर्वज्ञ, परमेश्वरको जो देवरचित सभाके मध्यमे विराजमान है उनका ध्यान रूपस्थध्यानमे होता है।

प्रभुध्यानके समय आत्मप्रभुताका स्मरण—प्रभुके ध्यानके समय अपना भी ध्यान चलता रहता है तब आनन्द मिलता है। जैसे ये प्रभु है वैसी ही शक्ति मुझमे है, इस प्रकार का विश्वास हो तब ध्यान चलता है, नही तो जैसे यहाँ किसी बडे महाराजके समक्ष पेशीमे आया हुआ कोई गरीब एक दीन और स्वामीका नाता अनुभव करके दुखी रहता है, उसमे किसी न किसी प्रकारकी दीनता ही बनी रहेगी, ऐसे ही प्रभुका ध्यान करने वाले लोग मै दीन हू, ये मालिक है यो विचारे तो दुख ही रहता है। तत्त्ववेदी भक्तजन अपने स्वरूपके साथ भी जोर लगाया करते है, वही शक्ति मुझमे है जो प्रभुमे है, तभी तो अपनी शक्तिका विचार करके हर्ष होता है और वर्तमान जो क्रिया है, परिणमन है उन्हे देखकर विषाद होता है तो आनन्द और पश्चाताप दोनो जब एक जीवके बनते है उस स्थितिमे कुछ ठडे आँसू, कुछ गर्म आँसू इस तरह और गद्गद् वाणीमे मानो कुछ बोल रहा है, प्रभुसे तो कुछ बोला नही जाता है, मगर गद्गद् वाणीमे भीतरी भक्तिका पराग निखरता है। जैसे ४-५ वर्षके तोतले बालककी जो आवाज होनी है उससे भी अधिक तोतली बोलीमे मानो वह कुछ प्रभुसे कहना चाहता है, वह एक प्रभुके ध्यानकी स्थिति है।

रूपस्थध्यानमें प्रभुशरण ग्रहण—इस शुभध्यानके प्रसगमे उत्तरोत्तर विशुद्धि बढाते हुए इन ध्यानोका क्रम रखा गया है। पूर्वमे जो ध्यान बताये गए है उनसे अधिक प्रभुकी निकटता इस रूपस्थध्यानमे चल रही है। यह उपासक जगतमे किसीको अपना शरण नही समझता। कैसे समझे शरण? सब कुछ देख लिया, भोग लिया। जहाँ यह जीव गया, जिसके निकट पहुचा, जिसको इसने शरण माना वहा ही इसे धोखा मिला, ठोकर ही मिली। जैसे बालक लोग जब फुटबाल खेलते है तो जिस बालकके पास वह फुटबाल पहुची उसी बालकने पैरकी ठोकर मारकर उसे वहांसे भगा दिया। वह बेचारी फुटबाल एक जगह स्थित नही रह पाती। इधर उधर जहाँ कही भी पहुची वहाँ ही ठोकर लगी, ऐसे ही यह जीव जिसे अपना शरण समझकर जिसके पास पहुचता है वही इसे ठोकर मिलती है, शातिसे स्थिर बैठ नही पाता। सर्वत्र इसे धोखा ही धोखा मिलता है। तब फिर किसको शरण मानें, किससे अपने

हितकी आशा करे ? सबसे विमुख होकर एक उस वीतराग सर्वज्ञदेवकी शरण गहे, उन्हीके दर्शन, गुणस्मरणमे अपना समय लगायें। रूपस्थध्यानमे उस समवशरणका ध्यान करें, जहाँ पर वीतराग प्रभु विराजे है, जिनकी वीतरागताको निरखकर देव देवेन्द्र, मनुष्य, तिर्यञ्च सभी पहुच रहे है। सभी वीतराग प्रभुके चरणोमे झुक रहे है। यो रूपस्थध्यानमे अनेक विधियोसे अनेक बाते बतावेंगे। उससे हम आप अपना रूपस्थध्यान बनानेका प्रयत्न करेंगे तो उस रूपस्थ ध्यानके मर्मको हम आप पहिचान सकेंगे।

रूपस्थध्यानमे स्वयभू परमात्माका ध्यान—अर्हंत परमात्माको स्वयभू कहते है, स्वय मे स्वयके द्वारा जो होता है उसका नाम स्वयभू है। वह प्रभुता बाहरकी बातोको जोड जाड-कर नही उत्पन्न की जाती है, किन्तु बाहरकी बाते जो कुछ आ गई है उनको घटानेसे वह प्रभुता व्यक्त होती है। जैसे किसी पत्थरमे से कोई कारीगर मूर्ति निकाल रहा है, उसे बता दीजिये कि ऐसी मूर्ति इस पत्थरमे बनानी है, तो वह कारीगर कुछ चीज यहाँ वहाँसे ला करके जोड जाडकर मूर्ति नहीं बनाता, किन्तु कारीगरने ऐसी विकृत दशामे जहाँ मूर्ति नही प्रकट है ऐसे पत्थरमे उस मूर्तिके दर्शन कर लिये, अन्यथा उसके हाथ नही चल सकते हैं उस ढगसे कि जिस ढगसे हाथ चलाकर पत्थरको निकालकर मूर्तिको प्रकट कर सके। कारीगर करता क्या है, उन छेनियोसे मूर्तिका आवरण करने वाले उन पाषाणखण्डोको अलग करता है। मगर करनेकी भी पद्धति देखिये। पहिले बडे-बडे खण्डोको वह बडी छेनी हथौडेसे अलग करता है, लेकिन सावधानी वहा भी है, उसके बाद उससे सूक्ष्म छेनी हथौडीसे उससे अधिक सूक्ष्म आवरणोको वह हटाता है, फिर अत्यन्त सूक्ष्म छेनी हथौडीसे अत्यन्त सूक्ष्म आवरण करने वाले पत्थरोको वह हटाता है। देखने वाले लोग तो यही कहेगे कि व्यर्थमे यह खर्चा ले रहा है, काम कुछ नही हो रहा है मगर वह कारीगर उन समस्त स्थितियोंमे बाह्यतत्त्वोको दूर कर रहा है, जोड कुछ नहो रहा है। वे सब बाह्य खण्ड जब दूर हो जाते है तो वह मूर्ति प्रकट होती है। इसी प्रकार कुशल कारीगर सम्यग्दृष्टि जीव इस स्थितिमे भी जहाँ कि ये बाते गुजर रही हैं, शरीरमे बँधा है, कर्मोंसे दबा है, रागादिक विकार भी चल रहे है, ऐसी स्थिति मे भी सम्यग्दृष्टि जीव परमात्मतत्त्वके दर्शन कर लेता है और उस परमात्मतत्त्वकी उपासनाके प्रसगमे प्रज्ञाछेनीसे, भेदविज्ञानसे, विशुद्ध ज्ञानोपयोगसे इन रागादिक विकारोको बाह्य तत्त्वो को हटाता है, किन्तु बाह्य तत्त्वोके परभावोके हट जानेसे वहाँ क्या प्रकट होता है, जो था वही प्रकट होता है, इसी कारण इस स्थितिको स्वयभू कहते हैं।

अन्तरङ्गमे स्वयंभुत्व शक्तिका ध्यान—रूपस्थ ध्यानमे किन-किन विशेषणोसे ध्यान किया जा रहा है, वे विशेषण विशेषता भी बताते है और शिक्षा भी देते चले जा रहे हैं। हमे उस अद्भुत आनन्दकी प्राप्तिके लिए क्या करना है, हमे बाह्यमे किसपर दृष्टि कराना है ?

अन्तर्दृष्टि करना है, अन्त अनुभव करना है, ज्ञानमात्र निजस्वरूप जब ज्ञानमे ज्ञात होता है तो ज्ञानानुभूतिका रूप रखकर एक अद्भुत आनन्दको प्रकट करता है, उस आनन्दके प्रतापसे यह स्वयभू अवस्था प्रकट होती है, ऐसे स्वयभू परमेश्वर परमात्माको रूपस्थध्यानमे निरखा जा रहा है। देखिये जिन-जिनकी शरणमे हम अपना उपयोग लगाये रहते है वे हमे शरण-भूत न होंगे। वे आकुलताके ही हेतुभूत है। शरण ढूंढो ऐसोका, जिनकी शरण गहनेसे अद्भुत आनन्दकी प्राप्ति हो, यही आत्माकी उत्कृष्ट स्थिति है। ससारके सकट न चाहने वाले लोगोको ऐसे प्रभुके दर्शन, गुणस्मरण करना चाहिए। यो रूपस्थ ध्यानमे यह सम्यग्दृष्टि पुरुष अरहतको स्वयभूके रूपमे निरख रहा है। अपने आपमे भी उस स्वयभुत्वका प्रत्यय कर रहा है। यह बात इस मार्गमे बराबर है जिस मार्गमे प्रभुने प्रभुत्व प्रकट किया है। यह ज्ञानानन्दके विकासका पद अवश्य ही प्रकट होता है। यो एक परिचयके साथ भक्त प्रभुके ध्यानमे लीन हो रहा है। यह रूपस्थ ध्यानकी एक झलक है।

सर्वातिशयसम्पूर्णं सर्वलक्षणलक्षितम्।
सर्वभूतहित देव शीलशैलेन्द्रशेखरम् ॥२०१२॥

प्रभुध्यानकी साधना—अपने जीवनकी उन्नतिकी दिशामे मनुष्योका कर्तव्य है कि वे निर्दोष सर्वगुणसम्पन्न पूर्ण विकासमय शुद्ध परमात्मप्रभुका ध्यान करें। विषय कषायोसे कलकित यह आत्मा है। प्रारम्भमे ये कैसे शुद्ध मार्गमे लगे और इन्हे कैसे अपने आपके स्व-रूपसे मग्न होनेकी रुचि जगे, धुनि बने, उसके लिए उनको एक प्रभुभजन विशिष्ट सहायक है। जो मोही जन है उनको सभी प्रकारकी आकुलताये प्राप्त होती है। इन मोही जनोके चित्तमे निर्दोष प्रभुकी उपासनाकी बात कहाँ घर कर सकती है?

मोहकी विकट बाधा—यहाँ जीवोपर सबसे बडी आपदा मोहकी है, दृष्टिविभ्रम की है। इस लोकमे है क्या? कुछ विचार भी इस प्रकारका करते है ये मोही जन, निर्णय भी मानते है, पर भीतरमे वैसी बात माननेको चित्त नही चाहता। बाते तो सब करके जाते है परन्तु दिलसे वैसी प्रतीति मान लें यह कठिन है। कठिन तो है, पर असभव नही है। सोचिये क्या है हमारा यहाँ? ऐसा सोचना कोई कठिन नही है, यह तो एक बहुत मोटी बात है। क्या यह वैभव, ये परिजन, ये मित्रजन अपने हैं? अरे ये कोई अपने नही है, यह शरीर भी अपना नही है। यहाँ किसका ध्यान करे? कौन है लोकमे ध्यान किये जाने योग्य? बस एक प्रभु ही है उपासनाके योग्य, और उस प्रभुके दर्शन कब होंगे? जैसे प्रभु है वैसा अपने आपमे उपयोग बनायें तो प्रभुके दर्शन होंगे। इन चर्मचक्षुवोसे प्रभुके दर्शन नही हो सकते। प्रभुके दर्शन होंगे ज्ञाननेत्रसे। जब ज्ञानको उस रूपमे ठहरायेंगे जैसे कि प्रभुमे गुण है, वैसा ही अपना उपयोग बनायेंगे तो प्रभुके दर्शन होंगे। सीधीसी बात यो भी कह सकते है कि जो अपने

आपने प्रभुता प्राप्त करता है वह ही प्रभुके दर्शन कर सकता है।

प्रभुकी सर्वातिशयसम्पूर्णता—प्रभुके गुणोको जानकर अब भक्तिमे उनके स्वरूपका वर्णन करिये। प्रभु सर्व अतिशयोसे सम्पूर्ण है। अन्तरङ्ग अतिशय एव बहिरङ्ग अतिशय—इन दोनो अतिशयोंसे परिपूर्ण परमात्मा है। निर्दोष ज्ञान, उत्कृष्ट ज्ञान और उत्कृष्ट आनन्दमे वे परिपूर्ण हैं। इससे बड़ा अतिशय और क्या है? समन्तभद्र स्वामीने पहिले देवागम स्तोत्र करके प्रभुकी परीक्षा की कि मेरा माथा झुकने लायक प्रभु है, किस प्रकारका है? हे प्रभो! आपके चरणोमे बडे-बडे देव आते है, आप आकाशमे गमन करते है, आपके ऊपर चमर ढलते है इससे कही आप प्रभु नही है, क्योकि इस प्रकारकी बाते तो मायावी पुरुष भी करते हैं। हे प्रभो! आपके शरीरमे पसीना नही है, अन्य भी दोष नहीं हैं, ऐसी बातें तो देवोमे भी पायी जाती है, इनके कारण आप प्रभु नही है। तो क्या आपने धर्म चला दिया इस कारण आप प्रभु हुए? अरे नही—धर्म चलाने वाले भी बहुत हैं। तब फिर किस बातसे प्रभु प्रभु हैं—जिसमे दोष एक भी न हो और गुण सब हो, बस ऐसी बात हो तो नमनेके योग्य प्रभु वही है।

अरहंत प्रभुकी निर्दोषता व गुणसम्पन्नता—जिसमे दोष एक भी न हो और समस्त गुणोंसे परिपूर्ण हो ऐसा कौन है प्रभु? हे अरहत प्रभु! तुम ही हो ऐसे, जो निर्दोष हो और उत्कृष्ट गुणयुक्त हो। कैसे जाना हमने? आपकी वाणीसे। आदिसे अन्त तक आपकी वाणी सुनकर आपके गुणोको जाना। किसीके अन्तरङ्ग निर्दोषताकी परीक्षा करनी हो तो उसकी वाणी सुनकर परीक्षा की जाती है। किसी व्यक्तिके जुकाम हो अथवा बुखार हो तो उसके वचनोको सुनकर यह पहिचान की जाती है कि हाँ इसके जुकाम है अथवा बुखार है, ऐसा ही कोई रोग दोष है, तो ऐसे ही हे प्रभो! आपकी वाणी आदिसे अत तक सुनकर जाना कि आप निर्दोष है। आपने अपनी वाणीमें कही कुछ कह दिया हो, वही कुछ विरुद्ध, ऐसी बात नही है। आपकी वाणीमे कही विरोध नही आता। आपने अहिंसाको धर्म बताया तो कही भी आदिसे अत तक हिंसाको धर्म नही कहा। आपने गृहस्थ धर्मके विषयमे बताया कि गृहस्थ तीन हिंसावोके (आरम्भी, उद्यमी और विरोधी) के त्यागी नही हैं। कही यह नहीं कहा कि गृहस्थोके इन तीन हिंसावोको करे। आपने शुरूसे अत तक निर्विरोध बात बताई, इसलिए हमने जाना कि आप निर्दोष हैं, सर्व गुण सम्पन्न है। कही भी आपकी वाणीमे विरोधकी बात नही आयी।

प्रभुमाहात्म्यका परिचय—समन्तभद्रस्वामी जब भगवानकी स्तुति करने चले तब यह प्रस्तावना की कि हे प्रभो! अब हम आपका स्तवन करते हैं। अरे भाई अभी तो देवागम स्तोत्रमे आपने प्रभुको बहुत कुछ कहा था। तो कहते हैं कि नहीं, अभी तो हम यह परीक्षा

कर रहे थे कि मेरे नमन करने योग्य प्रभु कैसा होना चाहिए ? देखिये आत्महितके प्रसगमे जिसे हम आत्मसमर्पण करे, जिसका हम पूर्ण विश्वास रखे उसकी परीक्षा करनेमे कोई दोष नहीं है। तो कर ले प्रभुकी स्तुति। स्तुति प्रारम्भ करनेमे सर्वप्रथम यह कहा कि हे प्रभो ! आप ज्ञान और आनन्दसे परिपूर्ण हो, अनन्त असीम ज्ञान और आनन्दका विकास आपमे है। हे प्रभो ! इतना कहनेके सिवाय और कुछ कहनेके लिए हमारे पास शब्द नही है। आपकी अचिन्त्य महिमा है। उस ज्ञान और आनन्दके विकासके समझनेमे ही प्रभुकी सारी महिमा जानी जाती है। प्रभु कैसे है, इस बातको समझनेका और कोई उपाय नही है। विशुद्ध ज्ञान, विशुद्ध आनन्द इनकी ही बात अनुभवमे लायी जाय तो प्रभुके दर्शन हो सकते है। अन्यथा देख देखकर आखें फोडकर भी किसी जगह कैसा ही श्रम करके भी प्रभुके दर्शन करना चाहे तो प्रभुके दर्शन नही हो सकते है।

प्रभुशासनके एकाधिपत्य न होनेका कारण—इसी प्रसगमे जब यह पूछा गया कि आपकी जब अचिन्त्य महिमा है, आपका निर्वाध स्वरूप है, आपका शासन पवित्र है, भव्य जीवोंके ससारसमुद्रसे पार होनेका हेतुभूत है, आपके वचनोमे निर्विरोधता टपक रही है, आपके स्वरूपमे शुद्ध ज्ञानानन्दका विकास है, आपमे कोई ऐब नही है, आपका उपदेश सर्वके लिए हितकर है, आपके द्वारा चलाये गए धर्मसे ही सर्व जीवोका कल्याण हो सकता है, इतनी सब बाते है, फिर भी इस प्रकारके निर्दोप शासनका एकाधिपतित्व क्यो नही है ? इस प्रश्नके उत्तरमे समन्तभद्राचार्य कहते है—काल· कलिर्वा कलुषाशयो वा, श्रोतु प्रवक्तुर्वचनानयो वा। त्वच्छासनैकाधिपतित्वलक्ष्मीप्रभुत्वशक्तेरपवादहेतु ॥ तीन बाते है जिनके कारण हे नाथ ! तुम्हारे शासनका एक अधिपतित्व नही हो सका। वे तीन बाते क्या है ? प्रथम तो है कलि-काल। समय भी ऐसा है कि जहाँ जीवोका रुख पापकी ओर, पतनकी ओर जाता है। दूसरा कारण है श्रोतावोका मलीन आशय है, तीसरा कारण है वक्तावोको नयोका परिज्ञान नही और वे नयवाद बताकर सुनाते है।

कलिकालकी अवस्थाका संकेत—कलिकालके सम्बधमे एक किम्बदन्ती है कि जैसे मानो कल तो लगेगा कलिकाल और आज है सतयुग, अच्छा युग। तो सतयुगके दिनमे किसी ने अपना टूटा फूटा पुराना मकान बेचा, खरीददारने उसी जगह नया मकान बनवानेके लिए गहरी नीव खोदी। नीव खोदते समय उसे एक अशर्फियोका हडा मिला, तो वह पुराने मकान का खरीददार अशर्फियोके उस हडेको लेकर बेचने वालेके पास गया और कहा कि देखो तुम्हारे पुराने मकानकी खुदाईमे यह अशर्फियोका हडा निकला है, इसे ले लो, यह तुम्हारा है, मैंने तो केवल नया मकान बनवानेके लिए जमीन खरीदी है ये अशर्फिया नही खरीदी है। तो बेचने वाला कहता है कि नही ये हमारी नही है, हमने तो वह जगह बेच दी, अब उससे निकलने

वाली सभी चीजें तुम्हारी है। यो वे आपसमे भगडने लगे। भगडा इतना बढ गया कि राजा से निवेदन करना पडा। पेशी हुई। राजा भी बडा परेशान। राजाने भी बहुत मनाया, पर दोनोंने उन अशर्फियोको लेना स्वीकार न किया। तो राजाने कहा अच्छा कल पेशी होगी। कल कलिकालका प्रारम्भ होगा। रातके समय बेचने वाला सोचता है कि मैं कितना बेवकूफ हू, मैने व्यर्थ ही अशर्फिया लेनेसे मना कर दिया, अरे देता ही तो है, अब जब देनेकी बात आयेगी तो ले लूँगा। उधर खरीददार सोचता है कि मै कितना बेवकूफ निकला, अरे मेरी ही जमीनमे तो वह अशर्फियोका हडा निकला, वह तो मेरा है, मैं कैसे उसे दे दूँ ? राजाने विचार किया कि वे व्यर्थ ही भगडते हे, न वह अशर्फियोका हडा उसका है, न उसका, वह तो जमीन से निकला है सो मैं ही ले लूँगा। जब हुकुम सुनानेका समय आया तो वैसा ही हुकुम राजा ने सुना दिया।

पञ्चमकालका प्रभाव—कलिकालसे सम्बधित एक बात यहाँ बतलानी है कि आजके समयमे धर्मकी रुचि होना, आत्माकी ओर ख्याल होना, निष्कषायका परिणाम होना, अपने ही हितसे अपना प्रयोजन होना, दूसरोको क्षमा कर देना—ये सब बातें कितनी कठिन लग रही हैं ? अरे है यहाँ किसीका कुछ नही, सारा स्वप्न जैसा खेल दिखता है। शीघ्र ही एक दिन वह आयगा कि यहाँसे विदा होना पडेगा, लेकिन वासना ऐसी पडी है कि वह निकल नही पाती। सदाके लिए ससारके सकटोसे छूटनेकी बात मनमे नही समाती। इस जीवनके ये ऐश आराम मौजके साधन कुछ भी काम न देंगे, इस बातको वही समभ सकता है जिसे आत्मीय आनन्दका कुछ अनुभव हुआ है। एक सेठानीने नई नौकरानी रखी। स्कूलमें सेठानीका बच्चा पढने गया और वह कुछ खाना न ले गया। सेठानी नौकरानीसे कहती है कि तू उस स्कूलमे चली जा और मेरे बच्चेको यह मिठाई दे आ। तो नौकरानी कहती है कि अभी तो मैं तुम्हारे बच्चेको पहिचानती ही नही। तो सेठानी गर्वके साथ कहती है कि मेरे बच्चेका क्या पहिचानना, स्कूलमे जो सबसे अच्छा मनमोहक बच्चा दिखे वही मेरा बच्चा है। सेठानीको अपने बच्चेके सौन्दर्यपर गर्व था। चली नौकरानी स्कूल, तो उसे स्कूलके सभी बच्चोमे सबसे सुदर मनमोहक अपना ही बच्चा दिखा, जो कि उसी स्कूलमे पढता था। उसीको मिठाई खिलाकर वह चली आयी। शामको जब सेठानीका बच्चा घर आया तो अपनी मा से कहने लगा—मा आज तुमने हमे कुछ भी खानेको नही भेजा था। तो सेठानी बोली कि भेजा तो था नौकरानी के हाथ। नौकरानीको बुलाकर पूछा तो उसने बताया कि मुझे तो स्कूलमे सबसे सुदर मन-मोहक मेरा ही बच्चा दिखा था सो उसीको मिठाई खिलाकर मैं चली आयी थी। तो जिसमे जो बात बसी है वह तो उसके अनुकूल ही अपना उपयोग निकालेगा। जिसे आत्मानुभव हुआ है, उस निष्पक्ष आत्मीय आनदका जिसने कुछ भी अनुभव किया है वह तो समभेगा कि सब

असार है। तो लोगोकी इस ओर रुचि कम होती है, यह सब एक कलिकालकी भी बात कही जा सकती है।

प्रभुशासनका एकाधिपत्य न होनेके द्वितीय और तृतीय कारण—दूसरा ऐब क्या है कि श्रोतावोका अभिप्राय कलुषित है। कोई मद्य मांस खाता हो, उसका निषेध करते हुए बोला जाय तो उसे वे बातें न रुचेंगी। एक राजा अपने पुरोहितसे रोज शास्त्र सुना करता था। एक दिन पुरोहित कहीं बाहर चला गया, उसके लडकेने शास्त्र पढा, राजाने सुना शास्त्र। उसमे मद्य, मांसके निषेधका प्रकरण था। प्रकरण यह था कि जो रंच मात्र भी मद्य, मांसका सेवन करता है वह नरक जाता है। राजाको यह बात सुनकर बडी बुरी लगी। दूसरे दिन जब पुरोहित आया तो कहा कि कलके दिन तुम्हारे लडकेने इस तरहसे शास्त्र पढा था। तो पुरोहित बोला कि ठीक ही वह कह रहा था। जो रंचमात्र मद्य मांसका सेवन करता है वह नरक जाता है, जो किलो दो किलो मद्य मांसका सेवन करे उसके लिए नहीं कहा था (हँसी)। तो बताया है कि श्रोताजनोका अभिप्राय कलुषित है। यह भी कारण है कि प्रभो! आपके शासनका एक आधिपत्य नहीं हो सका है। तीसरी बात बतायी है कि वक्तावोको नयका विवेक नहीं है, किस नयसे क्या कथन है, किस नयकी क्या दृष्टि है? उस दृष्टिको न जाननेके कारण भी एक यह शासनके विस्तारकी रुकावट हो सकती है।

प्रभुका उत्कृष्ट अतिशय—समंतभद्रस्वामीने प्रभुस्तवनमे यह बात बतायी है कि उत्कृष्ट ज्ञान और उत्कृष्ट आनन्द आपका है। इतनी ही बात हम आपके स्तवनमे कह सकते हैं, इससे अधिक हम और क्या कहे? तो प्रभु सर्वज्ञ अतिशय कर सम्पूर्ण है। प्रभुका ध्यान बना रहे, प्रभुके गुण हमारे उपयोगमे समाये रहे तो इससे बढकर और क्या कहा जाय? जिस उपयोगमे विषय कषायरहित परमतत्त्व समाया रहे वह उपयोग तो धन्य है। उस समय तो यह जीव एक अद्भुत आनन्दका अनुभव करता है। प्रभु सर्व अतिशयकर सम्पूर्ण है और समस्त लक्षणोसे युक्त है। देखिये लक्षण कहो, लक्ष्मी कहो, लक्ष्य कहो सबका एक ही अर्थ है। लोग कहते हैं कि लक्ष्मीकी प्राप्ति हो। वह लक्ष्मी क्या? जो सर्वहितकर सर्वरूपमे उपादेय लक्ष्मी होती है वह लक्ष्मी क्या? जो आत्माका लक्षण हो, आत्माका गुण हो उस ही का नाम लक्ष्मी है। आत्माका असाधारण गुण ज्ञान है। ज्ञानका नाम लक्ष्मी है, पर जो सर्व प्रकार उपादेय है, हितकारी है ऐसे ज्ञानको लक्ष्मी तो पहिले कहेंगे, पर लक्ष्मीकी तो ख्याल याद रही और ज्ञानकी याद भूल गई। फिर जिसमे भलाई समझा, जिसमे आनन्द समझा, जिसे विषयोके साधन समझा, ऐसी द्रव विभूतिको लोग लक्ष्मी कहने लगे। तो सर्व लक्षणोसे प्रभु लक्षित है।

प्रभुकी सम्यक् उपासना—प्रभुके स्वरूपके अनुरूप अपने उपयोगको जो बनाते हैं और उस उपयोगमे प्रभुको विराजमान करते हैं प्रभुकी पूजा करते हैं वे बादमे अपने ही भावोंसे

अपनेको प्रभुरूप अनुभवने लगते है। यद्यपि उनका परिणमन उस समय प्रभुरूप नही होता फिर भी जिस प्रकारका वे चिन्तन करना चाहे करें, उसमे रुकावट कुछ नही है। देखिये सम्यग्दृष्टि जीव हो, जिसके कि रागद्वेष नही समाप्त हुए। निरन्तर रागपरिणमन, द्वेषपरिणमन, किसी भी प्रकारका कषायपरिणमन चल रहा है, जिस सम्यग्दृष्टिके अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण अथवा सज्वलन किसी भी प्रकारका रागद्वेष चल रहा है, परिणमन निरन्तर चल रहा है, वह हटा नही है लेकिन यह उपयोग जब आत्माका अनुभव करनेके लिए उद्यत होता है तो यह उपयोग न तो शरीरसे अटक खाता है, न कर्मोसे और न उन रागपरिणामो से। सबको भेदकर अत मे ज्ञायकस्वरूपको लक्ष्यमे ले लेता है। तो हम इस उपयोगके द्वारा प्रभुके स्वरूपको जो निर्दोष है उसको उपयोगमे ले और उस रूप अपनेमे अनुभव करे तो इसमे कोई अटक नही है।

प्रभुभक्तिसे आत्मपावनता—प्रभुताके गुणोको हम उपयोगमे ले लेते हैं और उसरूप अपना अनुभवन बनाया करते है। जब उस प्रकार हम प्रभुमे एक अभेदरूपसे मग्न हो जाते है तो यहाँ एक अद्भुत आनन्द प्रकट करता है। बस उस ही विशुद्ध आनन्दकी प्राप्तिके लिए हम आपको अपने जीवनका लक्ष्य बनाना चाहिए। घरके लोग है, उन्हे भी यह सिखायें तो आपको कोई लौकिक बाधायें न आयेंगी। सभीके सभी सतुष्ट रहेगे। जो स्थिति प्राप्त है आजीविका सम्बधी उसीमे वह सब परिवार तृप्त रहेगा और उस सन्तोषके वातावरणमें आत्महित की बातमे अपना कदम बढा लीजिये। तो सर्व सार यही है। शेष जो कुछ भी गृहस्थ धर्ममे करना पड रहा है उसे इस गृहस्थ धर्ममे करना पडता है। जैसे कि कहा गया कि जिस गृहस्थ के पास कौडी नही वह बेकौडीका और जिस त्यागीके पास कौडी है वह बेकौडीका। तो जो व्यक्ति गृहस्थधर्ममे रहकर न्यायनीतिसे कमाई करके गृहस्थधर्मका पालन करे वह भी पवित्र आत्मा है। गृहस्थधर्मको न्यायनीतिसे पालते हुए तन, मन, धन, वचनसे धर्म उत्थानमे, धर्म प्रभावनामे भी अपना समय लगाये। कभी कोई उपसर्ग आता है धर्म समारोह आदिके समय भी अनेक उपद्रवोका सामना करना पडता है, उस स्थितिको समतापरिणामसे झेल जाय तो क्या ऐसे आत्माको पवित्र आत्मा न कहेगे ? गृहस्थधर्म भी बहुत महत्त्व रख रहा है। आखिर है बात ऐसी ही कि साधुता बिना मुक्ति नही मिलती, पर आजके समयमे जैसा कि प्रभुने श्रावकधर्ममें बताया है कि जो गृहस्थ धर्मको निर्दोष रूपसे पालन करे वह भी पवित्र आत्मा है। सो निर्दोष प्रभुके ध्यानसे अपने आपके हृदयको पवित्र करना चाहिए और अपना आत्मबल बढाना चाहिए।

परमात्मतत्त्वका निर्मल आशयके आसनपर अवस्थान—अपने आपको सर्व सकटोसे रहित परमशातिपदमें ले जानेका इच्छुक पुरुष जगतमे सर्व ओर दृष्टि डालकर निहारता है कि

मेरा हितरूप कौन है, सर्वत्र देखा इसने, पर अन्य कोई पुरुष इसे अपने हितरूप नजर नही आया। देखते-देखते चिन्तन करते-करते अब यह समझमे आया कि जो स्वय निष्कलक है, अपने आपके विशुद्ध ज्ञानानन्दरसमे लीन है ऐसे प्रभु सर्वज्ञ परमात्माका स्मरण ही शरण है, अतएव यही परम आत्मा मेरे ही क्या, समस्त प्राणियोके हितरूप है। जब तक अपने आपके हृदयमे स्वच्छता नही प्रकट होती, किसी भी प्राणीमे द्वेष विरोध मोहकी दृष्टि नही रहती, एक इस अशरण ससारमे अपने आपके आत्माकी जिसे वाञ्छा है ऐसे पुरुपके हृदयमे प्रभुस्वरूप विराजमान होता है। जैसे कभी कोई बडा नेता या कोई अधिकारी किसीके घर आया हो तो कैसा वह अपने घरको सुसज्जित करता है, घरका सारा कूडा कचरा निकालकर घरको साफ स्वच्छ करता है। तो जिस हृदयमे हम उस प्रभुस्वरूपको विराजमान करना चाहते है जो समस्त प्राणियोके हितरूप है, जिनकी उपासनामे तीनो लोकके इन्द्र बडे उत्साहपूर्वक पहुचते है, बडे बडे मुनीश्वर जिनके ध्यानमे अपने आपका जीवन सफल समझते है, ऐसे प्रभुस्वरूपको हम अपने चित्तमे विराजमान करना चाहे तो हमे सबसे पहिले अपनी स्वच्छता कायम करनी होगी।

चित्तको मलिन बनानेकी निरर्थकता—किसके लिए हम अपने चित्तको मलिन बनायें। अधिकसे अधिक विकल्प होते है नामवरीके, पर सबसे बडा विष है नामवरीका। अरे किनमे अपनी नामवरीकी चाह करते ? इन मोही मलिन जीवोमे ही ना। इनमे विरले ही लोग ज्ञानी है। इन मोही मलिन लोगोमें अपनें नामवरीकी चाह करनेसे क्या लाभ ? लोग मुझे समझें कि यह भी विद्यावान है, कलावान है, कुछ और और भी प्रशसायें कर दे। अरे इन्ही बातो के लिए यह मनुष्यभव पाया है क्या ? यह तो वैसा समझो जैसे कि बर्तन मलनेके लिए चदन का बन जलाकर राख बनायी जाय। अरे यहाँ किसको प्रसन्न करना ? प्रसन्न करो एक अपने आपको, अपने उपयोगको, अपने इस विशुद्ध सहज ज्ञानस्वरूपमे रखकर उसके निकट बसकर सारे इन विकल्पजालोको तोडकर सच्ची प्रसन्नता प्राप्त करे। यह प्रभु सर्वभाति हितरूप है और परमशील शैलेन्द्र (पर्वत) का शिखर है। शुद्ध स्वभाव उनमे विकसित हुआ है। ऐसे प्रभु सकलपरमात्माका ध्यान करना रूपस्थध्यान है।

सप्तधातुविनिर्मुक्त मोक्षलक्ष्मीकटाक्षितम् ।
अनन्तमहिमाधार सयोगिपरमेश्वरम् ॥२०१३॥

दिव्यदेहस्थ परमात्मा— कोई ऋषि अपने आपके अतरतत्त्वकी उपासनाके बलसे, उस निर्विकल्प निस्तरग ज्ञानस्वभावके अभेद उपासनाके बलसे जब वीतराग हो जाता है, उसके घातिया कर्मोंका क्षय हो जाता है तब यद्यपि शरीर अभी है लेकिन उस परमात्मदशामे यह शरीर सप्तधातुवोंसे रहित हो जाता है। हड्डी, मास, मज्जा, खून आदिक अपवित्र सभी चीजें

कलावर परमौदारिक शरीर बन जाता है। आत्माके निर्मल होनेपर निर्दोष आत्मा जैसे शरीरमें विराजमान रहे, उनका वह शरीर किस प्रकार परिवर्तित हो जाता है ? ऐसी ही आशा रखी जा सकती है कि वह परमपवित्र परमौदारिक शरीर बन जाता है, उसमे सकलपरमात्मा अभी विराजमान रहता है। तीर्थंकरदेव अनेक अतिशयकर सम्पन्न हैं। इन अतिशयोमे एक अतिशय यह भी बताया गया है कि उनका रुधिर दुग्धके समान श्वेत होता है। हम आप लोगोंके भी खूनमात्र लाल नहीं होता है। लाल और श्वेत दोनो प्रकारका होता है। लाल खूनका काम कोई कीटाणु उत्पन्न करनेका है और श्वेत खूनका काम उन कीटाणुवोंसे रक्षा करनेका है अर्थात् अलग करनेका है, जैसा कि कुछ डाक्टर लोग भी कहते हैं। जब सफेद खूनकी कमी हो जाती है तब उसके रक्तमे विकार होता है। श्वेत खून होना शरीरकी वृद्धिमे सहायक है। और फिर एक और कल्पना करिये जैसी कि कविकी कल्पना है। एक माँ अपने बच्चे पर ऐसा निष्कपट प्यार करती है कि उस बच्चेपर स्नेह भावके कारण उसके शरीरमे दुग्ध झरने लगता है, तो जो महापुरुष तीर्थंकर समस्त जीवोपर इस प्रकार बच्चेकी भाँति एक अनोखा प्यार रखते है, सबके कल्याणकी भावना रखते हैं ऐसे विशुद्ध पुरुषका खून श्वेत हो जाय तो इसमे क्या आश्चर्य है ? यो अनेक अतिशय उन तीर्थंकर देवके होते है।

परमात्माकी परमेश्वरता—जिनका मुक्ति स्वय वरण करना चाहती है अर्थात् ससार से छूटकर अब मुक्ति पधारने वाले हैं ऐसे सकलपरमात्माको एक रूपस्थध्यानस्थ यह सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष अपने ध्यानमे ले रहा है। वे प्रभु अनन्त महिमाके आधार है, परम ईश्वर है। ईश्वर उसे कहते हैं जो अपने आपके स्वाधीन ऐश्वर्यका अधिपतित्व रखता है। ऐश्वर्य नाम उसका है जहाँ अपना काम करनेके लिए पराधीनता न भोगनी पडे, सभी काम स्वाधीन हो। ऐसे वैभवको कहते हैं ऐश्वर्य। जैसे एक भूमिपति अपनी भूमिसे सब कुछ अपने लिए उपयोगमे आने वाली चीजोको निकाल सकता है, उसे भी ग्रामपति या ग्रामेश्वर कहो। नमक चाहिए तो वह भी अपने खेतसे निकाल सकता है, कपडा, अन्न आदि चाहिए तो वह भी निकाल सकता है। उसको बडी स्वाधीनता है। यह एक दृष्टान्तमे बताया है। तो प्रभुके ऐश्वर्यमे स्वाधीनता है। उनका ऐश्वर्य है उत्कृष्ट ज्ञान और आनन्दका अनुभव करना। क्या वे प्रभु किसी की अपेक्षा किया करते है ? स्वय स्वयसे स्वयके लिए स्वयमे स्वयके प्रदेशोंमे वे उत्कृष्ट ज्ञान और आनन्दका अनुभवन करते है। ऐसे परमेश्वर सकलपरमात्माका ध्यान करें उसे रूपस्थध्यान कहते है। रूपका अर्थ है परमात्माका स्वरूप। परमात्माके स्वरूपमे जो अपना उपयोग लगाता है ऐसे ज्ञानीको रूपस्थ ध्यानी बताया है।

अचिन्त्यचरित चारुचरित्रैः समुपासितम्।
विचित्रनयनिर्णीत विश्व विश्वैकबाधवम् ॥२०१४॥

प्रभुकी अचिन्त्यचरितता—जिनका चारित्र अचिन्त्य है ऐसे परमात्माका ध्यान करो। जिनके ज्ञानज्योति प्रकट होती है उसका विचार, उसका चारित्र, उसकी वृत्ति अचिन्त्य होती है अर्थात् लौकिक जनोंसे विलक्षण होती है। वे क्षमा व नम्रताकी प्रतिमूर्ति होते है। जहाँ कषायोकी मुद्रा नही होती है, माया लोभसे वे दूर रहते है, सर्व जीवोमे जिनके हितकी बुद्धि होती है उनको यह मेरा है, यह पर है, ऐसी लघु वृत्ति नही आती है। ऐसे महापुरुषोका चरित्र अचिन्त्य होता है, और फिर जो योगीश्वर है, जो कर्मोका क्षय करके परमात्मा हुए है उन सकलपरमात्माका चारित्र तो अचिन्त्य है। क्या करते है वे निरन्तर ? इस बातको लौकिक जन चिन्तनमे नही ला सकते है, ऐसा अचिन्त्य चारित्र है। सो निर्दोष चारित्र वाले पुरुषोके द्वारा उनकी उपासना की गई है।

कार्यसिद्धिमें देव शास्त्र गुरुका स्थान—भैया ! किसी भी कामके लिए हमे देव, शास्त्र, गुरु चाहिए। लौकिक काम हो तो उनमे भी लौकिक देव, शास्त्र, गुरुका आश्रय चाहिए। किसीको सगीत सीखना है तो उस सगीत सीखने वालेके चित्तमे कोई ऐसा प्रसिद्ध सगीतज्ञ रहेगा जो दुनियामे अतिशय कर प्रसिद्ध हो, चाहे उसे कभी देखा न हो, उससे चाहे कभी बात भी न हुई हो, पर उसके प्रति एक आदर्श भाव रहता है कि मुझे ऐसा बनना है। वह सगीत सीखने वालेका देव है, सगीत सीखने वाला उस देवको पा नहीं सकता, उससे बोलचाल नही है तो अपने ही गाँवमे किसी उस्तादकी खोज करता है और उससे सीखता है तो वह सगीतका गुरु हुआ। साथ ही साथ सगीतकी पुस्तकका आश्रय लेता है जिसमे सा रे ग म आदिक स्वरोका, आरोह अवरोहोका, मात्रावोका, ध्वनियोका अच्छा उल्लेख रहता है, जिसमे अनेक राग रागनिया सब ढगसे लिखी होती है, तो वह पुस्तक उस सीखने वालेके लिए शास्त्र हुई। इसी प्रकारसे व्यापार, रसोई आदिक सभी कामोमे कोई एक आदर्श रहेगा उपयोगमे जो कि उसके लिए देव हुआ, जो उन कामोको सिखाये वह गुरु हुआ और जिन पुस्तकोका व वचनोका सहारा लेकर सीखे वह शास्त्र हुआ। यो प्रत्येक कार्यमे देव, शास्त्र, गुरुका आश्रय चाहिए। कोई धर्मका काम करना चाहे, ससारके दुःखोसे छूटनेका उपाय बनाना चाहे तो उसे धर्मके देव, शास्त्र, गुरुका आश्रय चाहिए। उस ज्ञानी ध्यानी मुमुक्षुके चित्तमे कोई आदर्श रहना चाहिए। जो निर्दोष है, विशुद्ध ज्ञानस्वरूप है, हमको वैसा ही बनना है, यह तो उसका आदर्श है, यही उसका देव है, परन्तु ऐसे देवसे हमारी भेंट नही हो रही, बोलचाल नहीं बन रही तो पास उपलभ्य किसी धर्मात्माका शरण गहे जो कि स्वय धर्ममार्गमे लगा है और जो हमे भी धर्ममार्गमे लगनेकी प्रेरणा दे, जिसका एक आत्मतत्त्वकी उपासनामे ही मन है, जो आरम्भ परिग्रहसे दूर है, वही धर्मका गुरु है, और धर्मके शास्त्र जिनमे वीतराग बननेकी विधि लिखी है, जिनमे सम्यग्ज्ञानका निरूपण है वे शास्त्र है। सो धर्ममार्गमे भी तो चाहिये कोई आदर्श,

वह आदर्श है सकलपरमात्मा, निर्दोष परमात्मा, जो योगी जनो द्वारा उपास्य है, योगी जन उस परमात्माकी उपासना किया करते हैं।

परमात्मस्वरूपकी विचित्र नयनिर्णीतता—परमात्मस्वरूप नाना नयोंसे निर्णीत है। प्रभुका स्वरूप हम व्यवहारनयसे भी निरखते हैं, निश्चयनयसे भी निरखते है और उन सब नयोसे हम किसी निर्णयपर पहुचते हैं। जैसे निश्चयनयसे क्या है प्रभु ? एक विशुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप, निरन्तर समीचीन ज्ञान और आनन्दका परिणमन करते रहने वाले ऐसे विशुद्ध आत्मस्वरूप परमात्मा हैं और व्यवहारनयसे जो जिस पर्यायमे, जिस मनुष्यभवमे, जिस नामसे हुए हैं—कहते हैं कि ये आदिनाथ जी हैं, ये रामचन्द्र जी है, ये महावीर स्वामी हैं, यो जिस नामसे प्रसिद्ध वे महापुरुष सकलपरमात्मा हुए हैं उस नामसे उनके गुणोका वर्णन करते हैं, उनकी वर्तमान ऋद्धिका वर्णन करते है। समवशरणमे विराजमान है, चतुर्मुख जिनका दर्शन होता है ऐसे अनेक विशेषणो करके हम प्रभुकी उपासना करते है, विचित्र नयोंसे वे निर्णीत हैं।

प्रभुभक्तिमें स्वय सुखसम्पन्नता—सकलपरमात्मा समस्त विश्वके एकमात्र बधु हैं। आत्माका निरपेक्ष बधु कहा है परमात्माको। इतनी अपेक्षा तो रखते ही हैं ससारके लोग कि जैसे मेरी कषाय है, जैसा मेरा विचार है, जैसा मेरा निर्णय है उसके अनुरूप ही तो परिणति होगी। न हो तो उससे फिर लगाव नही रहता है, किन्तु भगवान परमात्मा वे विश्वके एक निरपेक्ष बधु है। जो भक्त पुरुष प्रभुके सम्मुख होकर रहते है उनको सर्वप्रसन्नता अपने आप प्राप्त होती है और जो प्रभुसे विमुख होकर रहते हैं उनको कष्ट अपने आप प्राप्त होते हैं। प्रभु न किसीको सुखके देने वाले है, न दुख देने वाले है, किन्तु यह स्वय भव्य जनोंके उपादान की बात है। जैसे जो कोई दर्पणके सामने अपना मुख करेगा उसको अपनी मुखमुद्राके दर्शन अवश्य होंगे और जो दर्पणसे विमुख हो जायगा उसको अपनी मुखमुद्राके दर्शन नही हो सकते है। ज्ञानी पुरुष प्रभुसे किसी भी बातकी अपेक्षा नही रखता, वह तो मात्र यह चाहता है कि जो मै सहज हू, जैसा मेरा अपने आप स्वरूप है, अपने आपके सत्त्वके कारण जो कुछ मैं हू वह मात्र प्रकट हो, केवल यही अभिलाषा है ज्ञानी पुरुषके, वह अन्य कुछ नही चाहता है। यही निर्णय अपना होना चाहिए। वस्तुका स्वरूप क्या है ? यह बात विदित होगी तो सब कुछ बात बन सकेगी, और जब तक वस्तुस्वरूपका परिचय नही है तब तक हम धर्मके नाम पर कुछसे कुछ करते रहेगे, श्रम भी करेगे, विशुद्ध भाव भी करेंगे, पुण्य परिणाम भी करेंगे, किन्तु वह सार बात न मिल सकेगी। कोई गली मिलनेपर जैसे एक भवरमे फसा हुआ जहाज भवरसे निकलकर स्वतत्र बन जाता है वैसे ही विकल्पोमे फसा हुआ आत्मा सहज जाननकी गली मिलनेपर विकल्पोसे निकलकर स्वतत्र बन जाता है और अपने आपमे कृतकृत्यताका

अनुभवन करने लगता है ।

इच्छाके अभावमें सुखका उद्भव—देखिये हम आप सबको जितना सुख मिल रहा है वह सब सुख किसी परके समागमके कारण नही मिल रहा है किन्तु उस समय किसी न किसी विषयमे यह भावना बन जाती है, निर्णय हो जाता है कि अब मुझको यह काम करनेके लिए नही है । बस इस अवधारणका वह सुख हुआ करता है । आप बडी सूक्ष्मतासे परीक्षण कर लीजिए । जैसे कोई मकान आपको बनवाना है तो मकान बन चुकनेपर जो एक सुखका अनुभव होता है तो कहते लोग ऐसा ही हैं, और वह भी ऐसा ही कहता है कि मकान बन चुका, अब मुझे बडा सुख हुआ, पर वहाँ सूक्ष्मतासे विचारें तो मकान बन चुकनेपर जो उसके यह भाव बना कि मकान बनवानेका काम मुझे करनेको नही रहा, इस अवधारणका वह सुख है । प्रत्येक सुखमे आप यही बात लगाते जाइये कि जिस चीजकी इच्छा है उस चीजकी प्राप्ति होने पर जो सुख होता है वह उस चीजकी प्राप्ति होनेसे सुख नही होता है, किन्तु उस चीजकी जो अब इच्छा नही रही, चाह नही रही, इच्छाका अभाव रहा, उसके करनेका अब काम नही है, इस अवधारणका वह सुख है ।

इच्छाके अभावसे सुखके उद्भवपर एक दृष्टान्त—इच्छाके अभावसे ही सुख है इसपर एक दृष्टात लें—आपके किसी मित्रका पत्र आया कि मै कलके दिनकी तारीखमे करीव १२ बजे इस स्टेशनसे आ रहा हू, तो आप आकुलित होने लगे कि मुझे १२ बजे वहाँ पहुचकर मित्रसे मिलना है । तो और अनेक काम जो अभी तक आप देरसे करते थे उनको जल्दी-जल्दी निपटाने लगे । झट सारे काम निपटाकर आप स्टेशनपर पहुचे, वहाँ जाकर आप पूछते है कि गाडी लेट तो नही है ? पता लगा कि १० मिनट लेट है, लो और आकुलता बढी । जब गाडी प्लेटफार्मपर आ गई तो आप झट इधर उधर दौडकर डिब्बे डिब्बेमे देखने लगे । देख लिया कि हमारा वह मित्र अमुक डिब्बेमे बैठा है, वहाँ पहुचकर मित्रसे मिलकर सुखका अनुभव किया । अब आप विचार करो कि क्या वह सुख मित्रके मिल जानेसे मिला है ? अरे मित्रके मिलनेका वह सुख नही है, मित्रके मिलनेका अब काम नही रहा इसको चित्तमे अवधारण किया इस बातका वह सुख है । आप प्रश्न कर सकते हैं कि हम कैसे समझें कि मित्रके मिलनेका वह सुख नही है ? तो देखिये—दो तीन मिनट मिलनेके बाद ही आप खिडकीसे बाहर झाकने लगे । कही गार्ड सीटी तो नही दे रहा, अथवा कही हरी झडी तो नही दिखा रहा । अरे भाई जब मित्रके मिलनेका वह सुख है तो खूब मिलते रहो उस मित्रसे और सुखी होते रहो, पर आप ऐसा न करेंगे । अरे वह सुख मित्रके मिलनेका नही है । वह सुख इस बातका है कि चित्तमे ऐसा अवधारण कर लिया है कि अब मित्रसे मिलनेका काम बाकी नही

रहा। यदि घरपर बैठे ही आप यह बात सोच लेते कि अरे क्या है मित्रसे मिलने जानेसे, हटावो अब नही जाना है, तो इतना आकुलित न होना पड़ता। जो सुख अब मित्रके मिल जाने पर प्राप्त हुआ है तो वह सुख पहिलेसे ही प्राप्त हो जाता।

इच्छाके विनाशमे पूर्तिका व्यवहार—साधु जनोमे और गृहस्थ जनोमे अन्तर क्या है ? घरमे बसने वाले गृहस्थ जन जिन चीजोकी इच्छा करते है और उस इच्छाकी पूर्ति करके सुखका अनुभव करते है तो साधु जन उन इच्छावोका पहिलेसे ही निरोध करके सुखका अनुभव करते है। लोग कहते है कि मेरी इच्छाकी पूर्ति हो गई, उसका अर्थ यह है कि इच्छा नष्ट हो गई। इच्छाके नष्ट होनेका ही नाम इच्छाकी पूर्ति है। कही इच्छा उस तरहसे पूर्ण नही की जाती जैसे बोरोमे गेहू भरकर बोरा पूर्ण किया जाता है। इच्छाकी पूर्ति होती है इच्छा के नष्ट होनेपर। तो साधु जन पहिलेसे ही इच्छाको नष्ट कर देते हैं जिससे वे परम सुखी रहते है।

प्रभुस्वरूपसे शिक्षण—हमे यहाँ बात यह लेनी है कि वे प्रभु उत्कृष्ट क्यो है ? उत्कृष्ट इसीलिए है कि उनके कोई प्रकारकी अभिलाषा नही रही। उनमे कोई वाञ्छा न होनेसे कोई दोष नही रहे, इसी कारण उनके ज्ञानादिक गुण सर्व अतिशयकर पूर्ण हो गए है। यह सब उनका एक माहात्म्य है। उस निर्दोषताको निरखकर अपने आपमे भी यह चिन्तन करें कि मैं भी निर्दोष होऊँ। देखिये कौनसा वह क्षण होगा जिस क्षण, इन विकल्पजालोका भार मुझपर न रहे और उस ही सहज परमात्मतत्त्वका आश्रय करूँ, अपने कैवल्य स्वरूपका अनुभवन करूँ। ये सर्व समागम दुःखके ही कारण है। जीवोको दुःख समूहके भोगनेका क्यो पात्र बनना पड रहा है ? योकि इन पदार्थोसे सयोग है। इष्ट सयोग मिलता है तो भी क्षोभका विकल्पजालका दुःख मिल रहा है और इष्टवियोग होगा तो भी दुःख मिलेगा। जिसके अध्यात्मतत्त्वमे बुद्धि न रहकर परपदार्थोंमे हितकी बुद्धि लगी है वह अपने आपको शान्तिमे नही बैठा सकता, क्योकि परपदार्थका स्वभाव ही यही है। भेदविज्ञानसे यथार्थ निर्णय करके, बाह्य पदार्थोका आश्रय करके केवल एक स्वदृष्टिमे लें, उससे ही मग्न होनेका यत्न करें तो यह उपाय मेरी शान्तिके लिए होगा।

निरर्थक चिन्तासे निवृत्त होकर स्वरूपलीनताका कर्तव्य—भैया ! परिवार जनोका जो अपने ऊपर बोझ रखा है उसे हटानेकी जरूरत है। क्या उन परिजनोंके साथ कर्म नही लगे है, क्या उनके साथ उनका उदय नही चल रहा है ? जितने भी परिवारके लोग हैं सभी अपने-अपने कर्मोसे पल पुप रहे है। बडी कमाई भी होती है तो क्या यह सही बात नही है कि घर के जितने लोग है बच्चोंसे लेकर बूढो तक, जिनके कि यह कमाई हुई सारी सम्पदा भोगनेमे आ रही है, उन सबके पुण्योदयके कारण आप निमित्त बन रहे है और यह कार्य हो रहा है।

जब सब जीवोके उदयकी करतूत है तो इतनी चिन्ता क्यो करना ? इन चिन्तावोंसे निवृत्त होकर एक यह मुख्य ध्यान बनाना है कि मुझे तो सत्य ज्ञानार्जन करके वस्तुस्वरूपकी महिमा जानकर अपने आपमें तृप्त होना है, सतुष्ट होना है । यह बात हम परमात्माके ध्यानसे सीखते है और इसीलिए बडे-बडे पुरुष भी, योगीश्वर भी, ज्ञानी भी परमात्मतत्त्वका ध्यान किया करते है । हमारे मुख्य कर्तव्य ये दो है—परमात्मस्वरूपका ध्यान करके अपने हृदयको पवित्र बनाये और अपने आपमे बसे हुए सहज शुद्ध ज्ञानस्वरूपका ध्यान करके उसके निकट बसकर निर्विकल्प होनेका प्रयत्न करें, बस ये दो बाते ही हम आपको वास्तविक शरण है ।

निरुद्धकरणग्राम निषिद्धविषयद्विषम् ।
ध्वस्तरागादिसतान भवज्वलनवार्मुचम् ॥२०१५॥

निरुद्धकरण परमात्माका स्मरण—लोकमे शरणके स्थान केवल दो ही है । बाह्यमे तो समझिये परमात्मतत्वका स्मरण और अतरङ्गमे निज ज्ञायकस्वभावकी उपासना । रूपस्थ-ध्यानमे स्थित ज्ञानी पुरुष परमात्माका ध्यान कर रहा है । कैसे है वे प्रभु परमात्मा, जिन्होने इन्द्रियोके समूहोका निषेध किया है । प्रभु जब पहिले साधु अवस्थामे थे उस अवस्थामे इन्होने इन्द्रियके समूहोका निरोध किया अर्थात् इन्द्रिया जो चाहती है—जैसे स्पर्शनइन्द्रिय स्पर्श चाहती है, रसना इन्द्रिय रस चखती है, घ्राण इन्द्रियसे गन्ध जाना जाता है, चक्षुसे रूप देखा जाता है, कर्णोसे शब्द सुने जाते है । तो प्रभुने साधु अवस्थामे इन इन्द्रियोका विषय बाधा न पहुचा सके इस प्रकार इन्द्रियोको नियत्रित कर दिया था । प्रभुकी उपासनामे हम उन विशेषणोसे उपासना करते है जिससे यथार्थ शिक्षा भी मिलती है । हे प्रभो ! जगतके ये जीव इन्द्रियकी आधीनतासे परेशान है और उस परेशानीका मूल कारण तो यह भी है कि जितना भी ससारी जीवोका ज्ञान हो रहा है वह इन्द्रियोके द्वारसे हो रहा है । तब इन्द्रियोमे प्रेम होना प्राकृतिक ही बात है । जब इन्द्रियोमे प्रेम हुआ तो उन इन्द्रियोके पोषनेके लिए विषय और अनेक प्रकारके साधन जुटाना आवश्यक हो गया है और अब तो यह मन अनिन्द्रिय इन समस्त इन्द्रियोका सिरताज है । जिसका विषय सारे लोकभरमे फैल रहा है । मै इस सारे विश्वमे एकछत्र राज्य करूँ, मैं सारे विश्वके जीवोमे नामवरी उत्पन्न करूँ, इस प्रकार नाना प्रकारकी कल्पनाएँ, शेखचिल्लीपनेकी बातें मोही जनोमे उत्पन्न होती है, इसीसे मोही जन परेशान होते है । हे प्रभो ! आपने इन इन्द्रिय और मन छहोको अपने वशमे कर डाला है, इनको पीडित कर दिया है । ऐसे परमात्मतत्त्वका यह ध्यानी पुरुष अपने उपयोगमे ध्यान कर रहा है ।

निरुद्धविषय परमात्माका स्मरण—देखिये प्रभुका शासन यदि प्राप्त किया है तो कुछ अपना उपयोग इस प्रकारका बनायें कि जिससे पाये हुए शासनका, समागमका लाभ प्राप्त कर

ले । लोग तो बहुत-बहुत चितायें करते हैं, दुःखी रहते हैं । अपने विवेकके द्वारा इन्हे दूर किया जा सकता है । ये सासारिक लाभ विशेष न मिलें, न सही, इनका क्या भरोसा ? आज हैं कल नही, लेकिन अतरङ्गमे श्रद्धा करे, आत्माके ज्ञानकी दृष्टि करें, सत्पुरुषोके समागममे रहे, ज्ञानार्जनका यत्न करें तो वह अनूठा लाभ उठा लिया जाय, इस ओरसे क्यो विमुख हुआ जाय ? इस ही ज्ञानकी परखसे ये इन्द्रिया और मन जो उद्दण्ड हो रहे हैं, इनका नियन्त्रण हो जाता है । हे प्रभो ! जो ज्ञानी पुरुषोंके ध्यानके विषयभूत होते हैं ऐसे तुमने विषय बैरीको ध्वस्त कर दिया है, आतमके अहित विषय कषाय । हम आपका अहित करने वाले विषय और कषाय है, अनुभव करके भी देख लो, जब किसी जीवपर राग उठता है, जब किसी बात मे प्रीति पहुचती है तो चूकि प्रीति किसी न किसी परपदार्थमे हुआ करती है, उसकी आशा लग जाती है, उसमे विरोधतायें बनती हैं, अपनी चाहके अनुसार दूसरा जीव माने अथवा न माने, परपदार्थका परिणमन हो या न हो, तब कितनी व्यथा होती है, और जब इतना बडा दृढ संकल्प कर लिया जाय, साहस बना लिया जाय, जो कि वडे आज्ञाकारी पुत्र, मित्र, स्त्री भी हो, तव यह जान लीजिये कि ये जीव भी सब उतने ही जुदे हैं जितने जगतके अन्य अनत जीव हैं । प्रदेश उनके न्यारे, आत्मक्षेत्र उनके जुदे, कर्म उनके उनके साथ, मेरे मेरे साथ हैं । जब कुछ भी सम्बध नही है, ऐसा ज्ञान होगा तो आत्मा अपने ज्ञानस्वरूपके निकट बस सकेगा, ऐसी उससे पात्रता होगी ।

विषयनिषेधसे ही आनन्दलाभ—भैया ! क्या होगा इन सासारिक चीजोंके लाभसे ? लाभ तो अलौकिक लूटना चाहिए, अलौकिक लाभ तो अपने आपमे ही लिया जा सकता है, इस पारमार्थिक आनन्दके लाभसे किसीको वञ्चित न होना चाहिए । जिनके पुण्यके उदय चले जा रहे है उनके भी आत्मलाभसे वञ्चित होनेमे आपदा है, विडम्बना है, क्लेशका सामना ही करना पडेगा, और जिनके पुण्योदय विशेष नही अथवा पापका उदय होनेपर कुछ सासारिक आपत्ति भी सता रही है उनको भी इन दोनो दृष्टियोंमे इस आत्मनिर्णयमे महान लाभ मिलेगा, इस लाभकी तुलना सासारिक पराश्रित समागमोसे नही की जा सकती है । इन बाह्य समागमो को क्या तरसना ? जितने पौद्गलिक ठाठ है, बाह्यविभूति है इनकी क्या चित्तमे तृष्णा करना, इनसे कुछ फायदा है क्या ? ये जहाँ जाते है वहाँ ही चित्तमे कुछ मलिनता उत्पन्न करते हैं । जब उदय होता है तो किस तरह समृद्धि आती है, आती है आने दो, फिर भी उसमे इस पुरुष का कुछ सम्बध नही है । केवल कल्पनासे सुखी होनेकी बात है । चार लोगोमे कुछ अपनी शान शौकत समझ लेनेभरकी बात है । वस्तुत आत्माका इन ठाठोंसे क्या सबध है और वहाँ भी आवश्यकतावोको भी समझा जाय तो कितनी आवश्यकता है ? एक क्षुधा तृषा निवारणके लिए दो चार रोटिया और शीत वेदनाके निवारणके लिए दो चार वस्त्र, इनके अतिरिक्त

जीवनको चलानेके लिए क्या आवश्यकता है लेकिन तृष्णावश बडे-बडे भोगसाधनोका सग्रह लोग करते है, बडे बडे मकान महल बनवाते है, इतनी सुकुमालता दिखाते है कि जरा भी पैदल नही चल सकते। भला बतलावो ऐसी चर्या करने वालेके हृदयमे ये ज्ञान वैराग्यकी बाते क्या समायेगी जो कि उन भोगसाधनोके शौकीन बन रहे है। वैसे तो बहुत-बहुत सम्पदामे रहकर भी भरत जैसे वैरागी भी रह सकते है, पर जो उस वैभवसे शौकीन बन रहे है और शरीरके आराममे अपना सर्वस्व हित समझ रहे है उनकी बात कही जा रही है कि वे क्या इसके पात्र बन सकेंगे ?

ध्वस्तरागादिसन्तान परमात्माका ध्यान—प्रभुने इन विषयोका पूर्ण परिहार किया है और रागादिकके सतानको ध्वस्त कर दिया है, राग ही तो सता रहा है सब जीवोको। दूसरे पुरुषोको मालूम पडती है दूसरेकी बेवकूफीकी बात, खुद नही समझ पाता। जैसे एक कहावत है कि वैद्य खुद अपना इलाज नही कर पाता, वह दूसरोसे इलाज करवाता है, ऐसे ही ये मोही मलिन मूढ जीव दूसरेकी बेवकूफी तो झट समझ लेते है पर खुदकी बेवकूफी खुद नही समझ पाते। किसीके घर कोई गुजर गया, घर वाले लोग बहुत दु.खी हो रहे है तो दूसरे लोग समझाते है—अरे क्या है, मर गया तो क्या हुआ, उसके आत्मासे तुम्हारे आत्माका कुछ भी तो रिश्ता नही है, तुम लोग खेद क्यो करते, आत्मा तो अमूर्त है। यो दूसरेकी बेवकूफी तो झट समझमे आ जाती है, पर जब अपने ऊपर वही बात आ जाती है तो खुद बडे दु खी रहते है, तब अपनी बेवकूफी अपनी समझमे नही आ पाती। इन मोही जीवोकी ऐसी हालत हो जाती है। जैसे खूब जगल जल रहा है, इसके बीच एक पेडपर एक आदमी बेवकूफ (मूढ) चढा हुआ है। तो जगलको जलता हुआ निरख रहा है और हँस रहा है—देखो वह आग लगी, देखो वह खरगोश जल गया, देखो वह हिरण जान बचाकर भाग गया, यो देखता है और खुश होता है, पर उसे यह पता नही कि यह जलती हुई आग यहाँ भी आयगी, यह वृक्ष भी जल जायगा और मैं भी जलकर मर जाऊँगा। ऐसे ही समझो—ये ससारी मोही प्राणी ऐसे है कि उन्हे दूसरोकी बेवकूफी तो झट समझमे आ जाती है, पर खुदकी बेवकूफी खुदकी समझमे नही आती। दूसरोकी विडम्बनाको तो झट निरख लेते है और उसपर हँसने लगते है, पर खुदपर अनेक प्रकारकी विडम्बनाएँ है पर उन्हे विडम्बना नही समझ पाते। यह सब क्या है ? यह सब राग अंधकारका प्रभाव है। प्रभुने इन रागादि सतानोको ध्वस्त कर दिया है ऐसे वीतराग प्रभुका ज्ञानी भक्त ध्यान करते हैं।

प्रभुकी उपासना करनेका कारण—वे प्रभु क्यो बने, हमे परमात्माकी उपासना क्यो करनी चाहिए, इसका निर्णय तो करिये। कोई यह कहे कि परमात्मा हमे पैदा करता है, मारता है, सुखी दु खी करता है, इसलिए परमात्माकी हमे उपासना करनी चाहिए तो उसकी

यह बात मिथ्या है। कुछ न हो और कुछ बना लिया जाय ऐसी बात यदि हो सकती हो तो कुछ उसपर विचार भी किया जा सकता है, किन्तु ऐसा तो है ही नही। जब कोई कुछ उपादान हो, कुछ चीज हो, पहिले उसीका ही तो रूपान्तर किया जा सकता है। तो जो चीज है वह स्वय सत् है। उसमे यह स्वभाव पडा हुआ है कि उत्पाद व्यय करे और बना रहे, इसीको सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणके रूपसे कहा गया है, सत् रहे वह सत्त्वगुण है, बने वह रजोगुण है और पदार्थ मिट जाय वह तमोगुण है। इसीको ब्रह्मा, विष्णु, महेशके रूपमे माना गया है। लोग मानते है कि पदार्थकी उत्पत्तिका कारण है ब्रह्मा, पदार्थकी रक्षा करनेमे कारण है विष्णु, और पदार्थके विनाश कारक, सहारक है महेश। पदार्थमे प्रति समय पर्यायोका उत्पाद व्यय होता रहता है, फिर भी सदैव उस पदार्थका सत्त्व रहता है, इस ही तत्त्वसे पदार्थ त्रिगुणात्मक है, पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है, पदार्थोकी रचना प्रभुने की नही, बताई है। प्रभु तो परमज्ञानानन्दस्वरूप है, उनके उत्कृष्ट स्वरूपका, आदर्शका ध्यान करनेसे अपने ज्ञानानन्दस्वरूपका शुद्ध विकास होता है। इस कारण हम प्रभुकी उपासना करते है।

राष्ट्रीय ध्वजका वस्तुस्वरूपकी ओर संकेत—पदार्थकी त्रिगुणात्मकताको बताने वाला आज भारतका राष्ट्रीय झडा है। उसमे तीन रग हैं, ऊपर है लाल रग अथवा कुछ केसरिया रग जो लालका ही प्रकार है, बीचमे सफेद रग है और सबसे नीचे हरा रग है। ये तीनो रग भी वस्तुके स्वरूपकी बराबर घोषणा कर रहे हैं। किस शासनकी ? चौबीसवे तीर्थंकरके शासनकी जिस झडेमे बीचमे २४ आरेका चक्र भी है। वह चक्र २४वें तीर्थंकरके शासनकी घोषणा करता है, और वह सारा तिरगा झडा इस बातका सूचक है कि प्रत्येक द्रव्य उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है। साहित्यमे लाल रगको व्ययका सकेत कहा है। जब कभी युद्धका वर्णन होता है, उसमे नरसहारकी बात आती है तो रक्त रुधिर लालिमा आदिक रगका वर्णन किया जाता है। तो वह लाल रग व्ययका सूचक है। साहित्यमे किसीकी वृद्धिको बतानेके लिए हरे रगकी बात कही जाती है, सो यह हरा रग उत्पादका सूचक है तो यो व्यय और उत्पाद ओर छोर पर हैं, जैसे कि ध्वजमे इन दोनोमे समानतासे रहने वाला जो श्वेत रग है वह ध्रौव्यका सूचक है। जहाँ लाल रग भी चढता, हरा रग भी चढता, जिस ध्रुवके कारण उत्पाद भी होता और व्यय भी होता, प्रत्येक पदार्थ स्वय अपने स्वभावसे उत्पन्न होता है, व्यय होता है और सदा बना रहता है।

वस्तुस्वरूपके निर्णयमे शान्तिके मार्गका लाभ—देखिये इस उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकताके निर्णयमे शान्तिका मार्ग बना है। मै सत् हू। मैं प्रतिसमय नवीन पर्यायसे उत्पन्न होता हू और वर्तमान पर्यायका व्यय कर डालता हू, तिसपर भी मैं सदा बना रहता हू, ऐसी बात प्रत्येक पदार्थमे है। जब प्रत्येक पदार्थ स्वय अपनेमे उत्पादव्ययध्रौव्य करते हैं, उनकी क्रिया

उनके ही अर्थ चलती है तो किस पदार्थका किसके साथ तात्विक सम्बध रहा ? जब कभी पर-पदार्थका निमित्त पाकर कोई पदार्थ विकृत बनता है, विकारी बनता है तो वहाँ यह भी तो तथ्य है कि विकाररूप परिणमनकी योग्यता रखने वाला पदार्थ निमित्तको पाकर अपनी परिणतिसे अपनेमे ही प्रभाव उत्पन्न करके विकृत बन गया है, क्या वहाँ निमित्तभूत पदार्थने अपनी द्रव्य गुण अथवा पर्याय कुछ भी उस दूसरे पदार्थमे लगायी है, क्या ठोकर दी है, क्या मार की है ? अपने-अपने प्रदेशोमे प्रत्येक पदार्थ अवस्थित है।

परमात्माकी उपासनाका प्रयोजन—यहाँ एक आशका हो सकती है जब यह स्वरूप है तो फिर परमात्मा मुझे न सुख देता, न दुःख देता, न पाप कराता, न पुण्य कराता, तब फिर मै परमात्माको किसलिए पूजूँ ? इसका समाधान स्वय अन्तर्दृष्टि करके भी पा लिया जा सकता है। परमात्माको पूजनेका कारण यह है कि हम जिन कारणोंसे, जिन करतूतोसे दुःखी है, रागादिक भावोसे हम दुःखी है, सो दुःख दूर करनेका मार्ग प्रभुके गुणस्मरणसे मिलता है। कोई पुरुष दुःखी हो उसका दुःख दूर होनेका उपाय तो उपदेष्टा बता देगे, पर करना उसका काम है। हम भी जब दुःखी होगे तो उसका उपाय तो ऋषियोने बता दिया, पर करनेका हमारा काम है। जितने भी दुःख होते है वे किसी न किसी पदार्थमे राग करनेके कारण होते है। आप समस्त दुःखोकी परीक्षा कर लें। जितने भी दुःख होगे वे किसी न किसी परपदार्थमे राग है तब दुःख होगे, राग बिना दुःख न होगे। तो इन दुःखोके मेटनेका उपाय क्या है ? राग दूर कर लिया दुःख मिट जायगा। बात तो बिल्कुल सही है, पर सुननेमे यो भद्दा लग रहा होगा—तो क्या यह घर छोडकर चले जाये, क्या बच्चोको यो ही छोडकर चल दें, ऐसी जो नाना आशकाये भर गई है उनके कारण यह उपाय कुछ फीकासा जंच रहा होगा। लेकिन वीतराग ऋषि संतोंने बहुत अनुभव करके यह बात बतायी है कि जितने भी क्लेश होते है वे रागके कारण होते है। वीतराग प्रभुकी उपासनासे अपने उपादानमे सामर्थ्य प्रकट होता है जिससे रागभावका विरण होता है।

अपने-अपने सुखमें अपने-अपने पुण्योदयकी कारणता—कदाचित् कोई घरबार छोडकर भी चल दे तो बच्चोका पुण्योदय है तो बिगाड नही हो सकता। कही कोई बच्चोंको छोडकर चला जाय तो बच्चोका उदय उससे भी अधिक विकसित हो जाय। एक जोसी गावमे रोज आटा मागकर लाता था, १० बजे घरमे आटा देता था तब रोटिया बनती थी, और घरके ८-१० लोग छोटे बडे बच्चे तब अपना पेट भर पाते थे। रोज-रोजका उसका यही काम था। एक दिन नगरमे वह भिक्षा माग रहा था, वहाँसे एक सन्यासी निकला—कहा जोसी जी क्या कर रहे हो ? जो मुहूर्त वगैरह बताते है वे पहिले जोसी ज्यादा रहते थे। जोसीने कहा कि हम भिक्षा माग रहे है ताकि हम घर ले जाये और घरके लोगोका गुजारा चले। तो वह सन्यासी बोला—क्या तुम घरके सभी लोगोका गुजारा चला रहे हो ? हाँ-हा, हम रोज

देखते है, जब आटा माँगकर घर ले जाते हैं तब रोटिया बनती है। सन्यासी बोला—जोसी जी यह बात तुम्हारी मिथ्या है। तुम किसीको नही पालते हो, तुम मेरे साथ चलो, तुम भी आनन्दमे रहोगे और तुम्हारे घरके सभी लोग आनन्दमे रहेगे। जोसी सरल पुरुष था, झोला वगैरह डालकर सन्यासीके साथ चला गया। जब ११-१२ बजे नक जोसी न आया तो गाँवके एक मस्खराने कह दिया कि उसको तो एक सिंह पकडकर ले गया, खा डाला होगा। लो उसके मरनेकी बात सुनकर घरके व पडौसके सभी लोग दुःखी। पडौसके लोगोंने सलाह की कि इसके घरमे कमाने वाला वह एक ही पुरुष था, अब इनका गुजारा कौन चलायेगा ? अपन लोग ऐसा करें कि इनकी सहायता करें ताकि ये भूखे तो न मरें। सो जो अनाज वाले थे उन्होने दो-दो चार-चार बोरा अनाज दे दिया, घी वालोने एक आध घीके कनस्तर दे दिये, कपडा वालोने कुछ थान कपडे दे दिये, शक्कर वालोने शक्कर दे दी, तेल वालोंने तेल दे दिया। अब क्या था, वे बडे मौजमे रहने लगे, रोज पूडी कचौडी पकौडी आदि बनें, खूब अच्छे नये-नये कपडे पहिनें। जब १५ दिन बीत गए तो जोसी बोला सन्यासीसे कि अब महा-राज जी हमे घर जानेकी इजाजत दो, जाकर देखें तो सही कि कौन बच्चा जिन्दा है और कौन मर गया है ? सन्यासीने जानेकी आज्ञा दे दी, पर जाते समय कह दिया कि देखो उन्हे छिपकर देखना, सीधे यो ही घर न चले जाना। तो वह पहुचा घर। घरके पीछेकी छतसे ऊपर चढ गया। घरमे झाकने लगा, तो क्या देखता है कि घरमे सभी बच्चे नये-नये कपडे पहिने हैं, बडे खुश है, हृष्टपुष्ट हैं, पूडी कचौडी पक रही है। वह सोचता है कि अरे यह क्या हो गया ? मारे खुशीके वह घरमे उछलकर कूद गया अपने बच्चोसे गले मिलनेके लिए। घरके लोगोंने जब उसे देखा तो समझा कि अरे यह तो भूत आ गया, वह तो मर गया था, सो घरके सभी लोग आगके ढेलोंसे, लूगरोसे मार मारकर भगाने लगे। बेचारा जोसी अपनी जान बचाकर भाग गया। सन्यासीके पास पहुचा, बोला—महाराज वहाँ ऐसी ऐसी हालत थी और मैं किसी तरहसे जान बचाकर आपके पास भाग आया हू। तो सन्यासी बोला कि अरे जब वे सब सुखमे है तो तुझे कौन पूछे ? तू उनका विकल्प छोड। तो एक ही बात नही। अनेक ऐसे उदाहरण मिलेंगे कि जिस घरमे पुण्य बरसनेकी बात चली आ रही है कदाचित् कोई छोडकर चला गया अथवा गुजर गया तो उसका घर ज्योका त्यो है और उससे भी अधिक सम्हला हुआ है। तो चिन्ता किस बातकी ?

प्रभुकी उपासनासे भवज्वलनके सतापकी शान्ति—भैया ! अन्य पयोजनसे प्रभुकी उपासना नही की जाती है। प्रभुकी उपासना तो केवल इस कारण की जाती है कि जो दु खका कारण मुझमे है वह कारण प्रभुमे नही है। तब उनका स्वरूप निरखकर मुझे पथ मिलेगा, शान्ति मिलेगी, उपयोग निर्मल होगा, ये रागादिकके सतान क्लेशके ही कारण है। ये रागा-

दिक भाव प्रभुके रंच भी नही है। यदि वीतराग ज्ञानस्वरूप प्रभुमे उपयोग बसे, लगे, तो यह उपयोग भी बहुत विशुद्ध होता है, शान्ति प्राप्ति होती है और पाप झड जाते है, पुण्यरस बढता है, धर्मका पथ दिखता है, कल्याण ही कल्याण है, और उस प्रभुको छोडकर जिस किसीमे भी चित्त लगायें तो क्या कल्याण होगा ? किसमे चित्त लगायेंगे, किसपर विश्वास करेंगे कि यह मेरा उद्धार कर देगा ? इन प्रभुने तो रागादिक सतानको ध्वस्त कर डाला और यह प्रभु ससाररूप सतापके लिए मेघके समान है। जैसे बहुत बडी आग लगी हुई हो जंगलमे तो उसके बुझानेका क्या उपाय है ? क्या कुवोसे तालाबोसे पानी भर भरकर बुझानेसे जगलकी आग बुझ जायगी ? अरे आजकलकी ये आग बुझाने वाली मशीनें भी जगलमे लगी हुई आगको बुझानेमे समर्थ नही है। हाँ मेघ बरस जाये तो जगलमे लगी हुई आग शीघ्र ही बुझ जायगी। इसी प्रकार यह ससारकी ज्वलन बहुत तीव्र ज्वलन है, किसी पदार्थसे कुछ लेन-देन नही, कोई सम्बध नही, कोई प्रयोजन नही, मगर ये मोही जीव जडसे भी जड बन रहे है, ये सर्व पदार्थ यद्यपि हैं इससे भिन्न, फिर भी ये मेरे है, ये गैर है, ये मुझे सुखी दुखी करते है, ये मेरे विरोधी है इस प्रकारकी कल्पनायें किए हुए बैठे हैं ये मोही जीव। अरे यहा कौन अपना कौन विरोधी ? विचार न मिला, जिसकी जैसी कषाय है उसके अनुरूप दूसरेका परिणमन न मिला तो उसे अपना बैरी समझ लिया और जिससे कषायसे कषाय मिल गयी उसे अपना मान लिया। तो इस ससारकी दोस्तीमे रखा क्या है ? इतनी ही तो बात है कि कषायसे कषाय मिल गई तो वह दोस्त बन जाता है, इससे अधिक और नाता क्या है ? इस दुनियामे जो एक दूसरेके दोस्त बन रहे है उनमे और बात ही क्या है सिवाय इसके कि जैसी कषाय एक की है वैसी ही कषाय दूसरेकी है। किसीको सनीमा देखने जाना है और दूसरा कोई मिल जाय सनीमा देखने जाने वाला तो वे आपसमे मित्र बन गए, वे दोनो एक दूसरेके गलेमे हाथ डालकर बडे आनन्दसे जाते है जैसे मानो वे दोनो परस्परमे एक दूसरेके बडे मित्र बन गए है। क्या दम है इस ससारकी दोस्तीमे ? इसी प्रकार विरोधकी भी बात है। विरोध भी किस बातका ? कषायसे कषाय न मिली तो बस विरोध बन गया। यह सब क्या है ? यह सब ससारकी तीव्र ज्वलन है, रागमे जल रहे है ये प्राणी। उस तीव्र आतापको बुझानेमे समर्थ एक ज्ञानमेघकी वृष्टि है। प्रभुने अपने उस ज्ञानके द्वारा जिसने ज्ञानस्वभावको जाना, उस ज्ञान-परिणमनके द्वारा जिस ज्ञानमें ज्ञानका विशुद्ध स्वरूप बसा हुआ है उस ज्ञानके बलसे उन्होंने रागद्वेष आदिककी ज्वलनको शान्त कर दिया है। हममे जो ज्वलन है, जो दुख है वह किसके पास जायें कि मिट जाय ? जिसके रागद्वेषकी ज्वलन न हो, जो परमशान्त हो उसके निकट पहुचे, उसके स्वरूपको उपयोगमे लें तो हमें शान्ति मिल सकती है, इसी कारण हम परमात्म-स्वरूपका ध्यान किया करते है।

दिव्यरूपधरं धीरं विशुद्धज्ञानलोचनम् ।
अपि त्रिदशयोगीन्द्रैः कल्पनातीतवैभवम् ॥२०१६॥

प्रभुकी दिव्यरूपधरता व धीरता—आत्महितका अभिलाषी पुरुष जिन्हे परमहित प्राप्त हो गया है ऐसे प्रभुका ध्यान कर रहा है । परमात्मा दिव्यरूपका धारण करने वाला है । जिस देहमे स्थित वीतराग सर्वज्ञ प्रभु हुए, जिनके क्षुधा, तृषा, जन्म, मरण, अरति, खेद, रोग, शोक, डर, निन्दा, क्षोभ आदिक कोई दोष नही रहे, ऐसे प्रभु जिस देहमे विराजमान हुए वह देह भी साधारण नही रहता, दिव्य हो जाता है, तो प्रभु दिव्यरूपके धारण करने वाले हैं । कोई साधु वृद्ध हो और हड्डिया निकल आयी हो, अत्यन्त दुर्बल हो गया हो वह भी जब आत्माका विशुद्ध ध्यान रखता है और शुक्लध्यान उत्पन्न होता है तो वह भी परमात्मस्वरूप बन जाता है और परमात्मस्वरूप बनते ही उसका वह शरीर जो वृद्ध था, हड्डियाँ निकली थी वह शरीर दिव्यरूप वाला हो जाता है स्वय ही ? यह उनका एक अतिशय है । साधुजन तो कैसे ही शरीर वाले होते है, किसीके खाज हो, फोडा फुसी हो और और भी अनेक प्रकार के चर्मरोग हो, पर वे प्रभु उत्कृष्ट ध्यानके प्रतापसे उन रोगोको नष्ट कर देते हैं, वीतराग पदको प्राप्त करते है और सर्वज्ञ होते है, परमात्मा बनते है तो उनका शरीर अब उस प्रकारका नही रहता, दिव्य हो जाता है, एक रूप हो जाता है । ऐसे दिव्यरूपके धारण करने वाले परमात्माका ध्यान करना चाहिए । वे प्रभु धीर है—धीम् बुद्धिम् राति ददाति इति धीरः, जो बुद्धि को दे अर्थात् बुद्धि ठिकाने करे उसे धीर कहते है । तो धीर शब्दका अर्थ अथवा धैर्यका अर्थ क्या है ? आशयमे रागद्वेषरहित होकर अथवा पक्षमे न पडकर निष्पक्ष हृदयकी वृत्ति रखनेको धैर्य कहते है । वे प्रभु जो चारघातिया कर्मोसे रहित हो गए हैं सो वे परमधीर हैं ।

प्रभुकी विशुद्धज्ञाननेत्रता—परमात्माके विशुद्ध ज्ञानरूपी नेत्र हैं । कुछ पहिले समयमे अलकारोंके रूपमे बात चलती थी और लोग समझते थे कि इस अलकारका यह भाव है । पश्चात् लोग अलकारके भावको तो छोडने लगे और अलकारको ही सीधा यथार्थरूप मानने लगे । हाँ तो पहिले एक अलकारमे उस प्रभुको त्रिनेत्र कहा जाता था, महादेव कहा जाता था । महादेव त्रिलोकी है, तीन नेत्र वाले हैं, और तीन नेत्र वाले भी नही, एक नेत्र वाले हैं । दो नेत्र वाले हैं इस वर्णनमे कुछ अतिशय नही है । या तो एक नेत्र वाला कहो या तीन नेत्र वाला कहो । प्रभुके दिव्य देहमे दो नेत्र तो अब भी लगे हुए है । यद्यपि उन नेत्रोसे वे ज्ञान नही करते, उनके क्षायिक ज्ञान है, पर शरीर है ना साथ तो शरीरके सब अग भी लगे हैं, पर प्रभुके तीसरा नेत्र प्रकट हुआ है, महादेवके अर्थात् अरहत परमात्माके तीसरा नेत्र प्रकट हुआ है, वह तीसरा नेत्र है केवलज्ञान अर्थात् विशुद्ध ज्ञान । इन चर्मचक्षुवोसे तो सामने की चीज होगी वह जान जायेंगे और वह भी पूरे रूपसे नही जानेंगे । जो भाग दिख रहा है वही

तो ज्ञात है, भीतर क्या है, पीछे क्या है, इसको ये आँखे क्या जानें ? और जो सामने भी दिख रहा है वह भी कल्पनामे जितना आ पाता है, जितना यह समझमे ला पाता है उतना ही दिखता है, किन्तु केवलज्ञानमे कोई प्रतिबध नही है । वह तो समन्तात् सर्वको जानता है । जो आत्मा निरावरण हो गया है उसके लिए तो सब समान है । अभिमुखताके कारण यह केवल ज्ञान नही जानता किन्तु कुछ भी सत् हो पदार्थ तो उसे जानता है । तो केवलज्ञान इतना विशाल ज्ञान है कि सत् था पर्यायरूपमे, सत् है, सत् होगा उस सबको जानता है, ऐसा विज्ञान, ज्ञानलोचन जिनसे प्रकट हुआ है ऐसे प्रभुका ध्यान रूपस्थध्यानी ज्ञानी पुरुष कर रहा है ।

प्रभुकी कल्पनातीतवैभवता—वे ध्येय प्रभु कैसे है कि देवेन्द्रोके द्वारा, योगीन्द्रोके भी द्वारा इनका वैभव कल्पनामे भी नही आता । अहो ! कितना अनुपम वैभव है प्रभुका । जो वैभव कभी विघट नही सकता, ज्ञान और आनदका वैभव । बाहरी वैभवको लोग अपने आनदके लिए जोडते है, पर वहाँ एक निकृष्ट कल्पित मौज भी होता है, कल्पनाका आश्रय करके । केवल हुए जो महापुराण पुरुष है, अरहंत देव है उनके उस ज्ञान और आनन्दके वैभवको कौन कल्पनामे ला सकता है ? यदि कल्पनामे लाये तो इसका अर्थ है कि उस ज्ञान और आनदकी बात हमसे भीआ गई । आप किस चीजकी कल्पना करते है ? जो बात आपमे समाई हुई हो वही कल्पना मे आ सकती है । तो त्रिदशेन्द्र और योगीश्वरोके द्वारा भगवानका वैभव कल्पनासे नही आता, लेकिन यह भी नही है कि उनके ज्ञानानद वैभवका हम कुछ भी ज्ञान न कर सके । यदि हम कुछ किसी भी अशमे उनके ज्ञानानद वैभवका ज्ञान नही कर सकते तो भक्ति नही उमड सकती है । प्रभुमे भक्ति उमडनेका कारण यह है कि प्रभुका जो ज्ञानानद वैभव है उसका हम आपको किसी न किसी अशमे ज्ञान हो रहा है, अनुभव हो रहा है तभी तो यह गद्गद् होकर उनके गुणो का अनुरागी होकर अपनी बाहरी सुधको भी भूल जाता है और प्रभुके गुणोमे अनुरक्त होता है । केवल ऊपरी बात हो भक्तिकी तो उससे प्रभुभक्तिकी लीनता नही बन सकती है । जिस अनत ज्ञान और अनत आनन्दको वे भोग रहे है, उस ज्ञान और आनन्दको लक्ष्यमे लिये बिना उस ज्ञानानन्दकी जातिका परिचय हुए बिना महत्ता कौन जानेगा, और प्रभुके उस वैभवका महत्त्व जाने बिना प्रभुमे भक्ति उत्कृष्ट हम क्या कर सकेंगे ? ज्ञानी पुरुषोको उनके ज्ञानानन्दके परम वैभवकी जातिका बोध रहता है । वह समस्त कितना वैभव है, यह योगीश्वरोके भी और देवेन्द्रोकी भी कल्पनामे नही आ सकता । ऐसे कल्पनातीत वैभव वाले प्रभुका ध्यान करना चाहिए ।

स्याद्वादपविनिघतिभिन्नान्यमतभूधरम् ।
ज्ञानामृतपयःपूरैः पवित्रितजगत्त्रयम् ॥२०१७॥

प्रभुकी देन—प्रभुकी दिव्यध्वनिसे उत्पन्न उपदेश परम्परासे प्राप्त सबमे बडा भारी

वैभव क्या हो सकता है ? सबसे उत्कृष्ट देन मुझे प्रभुसे क्या मिली है ? वस्तुतत्त्वके निर्णय करनेका उपाय मिल गया है । वह उपाय है स्याद्वाद । स्याद्वादका जो सही तरीकेसे आदर रखेगा उसको किसीका विरोध नही जच सकता । अहो जब बडे-बडे एकान्त मतोका ब्रह्म ही अद्वैत है, ज्ञान ही एक अद्वैत मात्र तत्त्व है, केवल विज्ञप्ति मात्र है, जिसमे कुछ आकार नही आता, चित्रप्रतिभासस्वरूपमात्र एक अद्वैत है अर्थात् ज्ञान ही ज्ञान तो है दुनियामे, परन्तु वह ज्ञान नाना आकारोको लिए हुए है, पदार्थ कुछ नही है आदिक अनेक मतव्य भी जब स्याद्वाद के द्वारा उन्हे समझा सकते है, उनको सान्त्वना दे सकते हैं कि तुम्हारा कहना ठीक है, पर इस दृष्टिसे ठीक है । बडे-बडे विरोधियोके मतव्योको कोई दृष्टि लगाकर उनको शान्त कर सकते है, सान्त्वना दे सकते हैं तो फिर हम आप साधर्मी जनोंके बीच कदाचित् कोई विचारभेद आये और उसकी समाई हम न कर सके तो सिवाय दोषके और कौनसी बात कही जा सकती है ? स्याद्वाद एक ऐसा उपाय है कि जिस उपायके द्वारा एकान्त मतोको ध्वस्त कर दिया जाता है । देखिये—ध्वस्त करनेके दो उपाय है—एक एकात मतका खण्डन करते हुए, दूसरे—जो बात एकान्तमतका मण्डन किए हुए है उसकी दृष्टि लगाकर । इस दृष्टिसे ऐसा है और इस दृष्टिसे ऐसा है, उसका अगर मतव्य इस अनेकान्तरूप हो गया तो उनका एकान्त ध्वस्त हो गया ना, दोनो प्रकारसे उसको ध्वस्त समझ लीजिए । तो प्रभुकी देन सबसे बडी है स्याद्वाद । स्याद्वादरूपी वज्रके द्वारा ऐसे एकान्त पर्वतोको जिसने ध्वस्त कर दिया है ऐसे है ये प्रभु । उनका ध्यान ज्ञानी पुरुष करते है । देखिये किसीके प्रति अधिक रुचि जगती है तो क्यो जगती है ? कोई हितकी बात मिलती है उसके कारण जगती है । हमे प्रभुसे हितकी बात एक स्याद्वाद पद्धति मिली है, एक मूल बात मिली है । स्याद्वादके द्वारा हम वस्तुतत्त्वका निर्णय करते है और वस्तुका विशुद्ध निर्णय करनेके बाद उपाय क्या है, हेय क्या है ? इसका हम विवेक करते है और विवेकके बाद उपादेयको ग्रहण करते है और हेयकी उपेक्षा करते है तब हमे वास्तविक परमार्थ तत्त्वकी प्राप्ति होती है । तो प्रभुकी यह उत्कृष्ट देन है स्याद्वाद । ऐसे स्याद्वादके अनुशासक प्रभुका यह ज्ञानी पुरुष ध्यान कर रहा है ।

पावन प्रभुका ध्यान—कैसे हैं ये प्रभु ? जिन्होंने ज्ञानामृतके जलपूरसे तीनो लोकोको पवित्र कर दिया है । मूल तो वे सर्वज्ञदेव है, जिनकी दिव्यध्वनिके वातावरणमे गणेशोने (गणधरोने) अपने ज्ञानको निर्मल किया है और उनके फिर उस द्वादशाग ज्ञानसे जो प्रवाह चला है, उपदेशपरम्परासे अनेक आचार्योंने अपना हृदय पवित्र किया है और उपदेश पाकर भव्य जीवोने अपना हृदय पवित्र किया है । तो तीनो लोकोको पवित्र किए जानेके मूल ये सर्वज्ञदेव है, ज्ञानरूपी अमृतजलके प्रवाहसे समस्त जगत पवित्र हो गया है । महावीराष्टकमे कहते है—यदीया वाग्गगा विविधनयकल्लोलविमला, वृहज्ज्ञानाम्भोभिर्जगति जनता य

स्नपपसि । जिसकी वचनरूपी गगा, जो नाना नयरूपी कल्लोलोंसे निर्मल है, जिसकी वाणीमे, जिसके उपदेशमे सभी नयोकी दृष्टिसे जहाँ निर्णय किया गया है, बताया गया है ऐसी वह वचनरूपी गगा बडे ज्ञानरूपी जलके द्वारा इस जगतमें जनताको स्नपन कराती है । 'श्री जिनकी धुनि दीपशिखासम जो नहिं होत प्रकाशनहारी । तो किस भाति पदारथ पाति कहाँ लहते रहते अविचारी ।।' यदि यह वचनगगा न होती, प्रभुकी यह उपदेशपरपरा न मिलती तो कैसे पदार्थ का स्वरूप प्राप्त करते ?

महादातारके महालाभसे महालाभ लेनेका अनुरोध—लोग बहुत बडे दातारके प्रति नम्रताका व्यवहार रखते है, तो इनसे बडा दातार कौन मिलेगा जो ससारके सकटोको सदाके लिए नष्ट कर देनेकी कुञ्जी दे रहे है, बता रहे है । जिनका आश्रय करनेसे, जिनकी आज्ञा मानने से हम ससारके सकटोको समाप्त कर सकनेमे समर्थ हो सकते है । उनसे बढकर दातार और कौन होगा ? जब भगवान ऋषभदेव सभी पुत्रोको, और औरको भी सब राज्य बाटकर उसके बाद विरक्त होकर ध्यानमे लीन थे तो नमि बिनमि ये दो सम्बधी जब प्रभुके सामने आये और उनको उलाहना देने लगे कि वाह आपने सबको सब कुछ दिया, पर हमे क्या दिया ? बहुत-बहुल बातें कहने लगे तो एक देव आता है और कहता है कि चलो हम तुम्हे राज्य देते है, तो नमि विनमि कहते है कि हमे तुमसे कुछ न चाहिए, ये प्रभु जो देंगे सो लेंगे । पर उनके कहनेसे होता क्या, प्रभु अब क्या दे दें, वे तो अपने दूसरे जन्ममे आ गए, द्विज हो गए, वे क्या देंगे, लेकिन उसका उत्तर तो सुनिये—कितनी दृढताका उत्तर था, "हमको बहुत बडे दातार मिले हैं प्रभु । यदि उनकी छत्रछायामे रहकर भ्रान्तिकी दीनता न मिटा पाये तो जीवन बेकार है ।"

अलौकिक द्विजताका अलौकिक प्रभाव—साधु अवस्था प्राप्त होनेपर इसे द्विज कहा करते हैं अर्थात् यह दूसरी बार जन्मा है । जैसे कोई मनुष्य मर जाय और दूसरे जन्ममे पहुचे तो दूसरे जन्ममे पहुचनेके बाद इस पहिले जन्मकी भी कोई रट लगाता है क्या ? इस पहिले जन्मका भी कोई व्यवहार रखता है क्या ? इसकी कोई सुध नही रखता, राग नही रखता । कभी ऐसी भी घटनायें सुननेमे आयी है कि किसी बालकको जातिस्मरण हो गया और बालक बतला रहा कि यह मेरा घर था, यह मेरी मा थी, यह मेरा बाप था, वे मा बाप जान भी जाते हैं लेकिन जब शरीर बदल गया, जन्म वदल गया तो वह प्रीति जाननेके बाद भी नही रहती, और फिर जहाँ कुछ जाना नही जा रहा, दूसरा जन्म हुआ तो पहिले जन्मका क्या सम्बध, क्या राग ? तो इसी प्रकार साधु होनेसे पहिले जो गृहस्थका जीवन था वह एक जन्म था, अव साधु होनेपर वह जन्म मिट गया । जैसे कि कोई मर जाता है तो उसका वह जन्म मिट गया, इसी प्रकार वह जीवन मिट चुका । अब दूसरा जन्म है । तो उस दूसरे जन्ममे

आया हुआ महापुरुष गृहस्थीकी बातोका, रागोका कुछ ध्यान रखता है क्या ? उनकी तो कुछ चिता ही नही होती, उनका कुछ ख्याल ही नही होता, चाहे वह बडे गद्दोपर सोने वाला व्यक्ति हो, पर साधु होनेके बाद ककरीली जमीनपर सोता है, फिर भी उसके ध्यानमे यह नही पहुचता कि मै यो यो था, क्योकि उसका जन्म ही दूसरा हो गया। पहिले जन्मसे अब उसका क्या सम्बध रहा ? तो ऐसे साधु सत और उनसे महान ये परमात्मा प्रभु ये बहुत बडे दातार हैं। लोग कहते है कि प्रभुकी कृपासे सब सुख मिलेंगे, इसका अर्थ यह लगावो कि उनके किसी सम्बधसे, उनकी उपदेश परपरासे जो हमे उपदेश प्राप्त हुआ है हम उनका बडा आभार मानते है, उनकी कृपा समझते है। भले ही उनमे अब दयाका भाव उदयमे नही है, पर गुणानुरागी पुरुष आभारको भूल नही सकता। तो ज्ञानरूपी अमृतके दयापूर द्वारा जिसने तीनो लोकको पवित्र किया है ऐसे प्रभु परमात्माको यह ज्ञानी पुरुष अपने उपयोगमे बसाये हुए है।

इत्यादिगणनातीतगुणरत्नमहार्णवम् ।
देवदेव स्वयबुद्ध स्मराद्य जिनभास्करम् ॥२०१८॥

प्रभुकी गुणरत्नमहार्णवता—प्रभुमे असख्य गुण है, जैसे समुद्रमे अनगिनते रत्न भरे पडे हुए है, इसी प्रकार इस ज्ञानपुञ्जमे जो वीतराग सर्वज्ञ है उनमे अनत गुण पडे हुए हैं। उन अनते गुणोका कौन बखान करे ? भले ही कोई उन अनते गुणोका निरीक्षण अनुभव कर ले, स्वय वैसा बनकर उस रूप प्राप्ति कर ले, पर कोई चाहे यह कि हम उन अनतगुणोका नाम पूरा बताये, उनका वर्णन करें, उनका मिलान बताये, यह हम आप लोगोंके शक्य नही है। सो गणनातीत गुणरत्नोके जो महान समुद्र है ऐसे प्रभुको यह ज्ञानी अपने उपयोगमे बसा रहा है, ऐसे देवदेव स्वयबुद्ध आद्य जिनसूर्यका स्मरण करो, स्वय बुद्ध है प्रभु। आखिर ज्ञान रूप ही तो है यह आत्मा। ज्ञानस्वरूप आत्मा स्वय अपने आप अपने ही ज्ञानके द्वारा ज्ञात हो जाय और फिर उस ही ज्ञानकी स्थिरता बनाये, यह कोई स्वय करे अर्थात् किसी गुरु आदिक के उपदेश बिना भी करे तो इसमे आश्चर्य क्या है ? तीर्थंकरोको स्वय बुद्ध कहा ही है, ऐसे ये आदिम तीर्थंकर है। लोग कहते आदम बाबा। तो आदिम शब्द बिगडकर आदम रह गया। वह आदिम कौन हुए ? ऋषभदेव, कैलाशपति। ऋषभदेवका कैलाश पर्वत पर निवास था, कैलाशसे ही निर्वाण प्राप्त किया। तो कैलाश पर्वतपर कुछ बसनेके कारण वे कैलाशपति है। वे ऋषभदेव ब्रह्मा ही तो थे। जब भोगभूमि नष्ट हुई, कर्मभूमि प्रारम्भ हुई उस समय तो सब नया युग था, नया ससार था, लोगोको कुछ पता न था। कैसे रहना, कैसे खाना, कैसे जीना, अनेक भय भी सता रहे थे तो उस समय ऋषभदेवने सबको मार्ग बताया, इस कारण भी वे विधाता है और फिर सकल सन्यास करके मोक्षमार्गकी विधि बतायी है इसलिये वे विधता है। ऐसे आदिनाथ जिनसूर्यको हे आत्मन् ! स्मरण करो।

स्वयंकी प्रभुताकी आंशिक झांकी होनेपर प्रभुकी प्रभुताका अंदाजा—भैया ! ये सब यत्न हैं अपने आपको निष्कपाय और विशुद्ध बनानेके लिए । जहाँ भ्रमका कोई आवरण न रहे, भ्रमरहित अपने आपके स्वरूपका दर्शन करनेके लिए यह सब प्रभुस्तवन चल रहा है । प्रभुकी प्रभुता भी तभी जानी जा सकती है जब अपने अन्तरङ्गमे उस प्रभुताका कुछ प्रयोग करें । प्रभुता मुझमे है, उस प्रभुताका आशिकरूपसे अनुभवन हो तो प्रभुकी प्रभुता जानी जा सकती है कि क्या वैभव है प्रभुका ? विषयोमे रत रहने वाले लोग उस निर्विषय निर्विकल्प ज्ञानानद प्रभुके वैभवको क्या जान सकते है ? नही जान सकते ।

रूपस्थधर्म्यध्यानवर्णन प्रकरण ३६

विषयवासित चित्तमें प्रभुताकी परखकी अपात्रतापर एक दृष्टान्त—एक छोटी सी कथा है कि एक मालिनकी लडकी और एक ढीमरकी लडकी, वे दोनो सहेलिया थी । मालिन की लडकीका काम था फूलोका हार बनाना और ढीमरकी लडकीका काम था मछली पकड-कर बेचना । ढीमरकी लडकी तो एक गॉवमे व्याही गई और मालिनकी लडकी एक शहरमे । एक दिन ढीमरकी लडकी उसी शहरमे मछली बेचने ले गई जहॉपर कि उसकी सहेली रहती थी । मछलिया बेचते-बेचते शाम हो गई । सोचा कि आज अपनी सहेलीके घर रह जायेगी जो कि यहीपर रहती है । सो मछलियोका टोकना लेकर चली गई अपनी सहेलीके घर । सहेलीने खिलाया पिलाया । सोनेके लिए बडा अच्छा बिस्तर बिछाया, कुछ फूलोकी पखुडिया भी डाल दीं । वह ढीमरकी लडकी लेटी तो उस बिस्तरपर, पर उसे उसपर नीद न आये, करवटे बदले । तो मालिनकी लडकी पूछती है—क्यो सहेली क्या बात है ? नीद क्यो नही आ रही है ? तो ढीमरकी लडकी कहती है कि यह तुमने क्या कर रखा है कि इस बिस्तरपर फूलोकी पखुडिया डाल दी है, इनकी गधके मारे नीद नही आ रही है । तो मालिनकी लडकी बोली—अरे ये पखुडिया तो बडे-बडे राजा महाराजावोके बिस्तरमे पडती है । ढीमरकी लडकी कहती है—नही नही इन्हे हटावो । वह बेचारी उन पखुडियोको हटा लेती है । इतनेपर भी उसे नीद नही आती है । फिर मालिनकी लडकी पूछती है—सहेली अब क्यो नीद नही आ रही है ? तो ढीमरकी लडकी कहती है—अरे नीद कहॉसे आये । वह जो हमारा मछलियो का टोकना रखा है ना, उसे उठाकर लावो, उसमे पानीके कुछ छीटे मारकर इस बिस्तरके सिरहाने धरो तब नीद आयगी । उसने वैसा ही किया तब बेचारी ढीमरकी लडकीको नीद आयी । तो मछलियोकी गधमे रहने वाली ढीमरनीको जैसे पुष्पोकी सेजपर नीद नही आती इसी प्रकार विषयोके दुर्गन्धमे बसने वाले ससारी जीवोको प्रभुके ज्ञानानदका क्या परिचय ? पहिले अपना उपयोग कुछ उस रूप ढालना होगा तब हम प्रभुके गुणोका परिज्ञान कर सकेंगे । तो यो प्रयोग करें और प्रभुका परिचय करें और प्रभुको अपने चित्तमे बसायें जिससे पवित्रता

बढेगी और हमारा जन्म सफल होगा।

जन्ममृत्युजराक्रान्त रागादिविषमूर्च्छितम् ।
सर्वसाधारणैर्दोषैरष्टादशभिरावृतम् ॥२०१९॥
अनेकव्यसनोच्छिष्ट सयमज्ञानविच्युतम् ।
सज्ञामात्रेण केचिच्च सर्वज्ञ प्रतिपेदिरे ॥२०२०॥

निर्दोष प्रभुकी उपासनामे कल्याण—प्रभु जन्म ,जरा मरणसे रहित होते हैं, किन्तु कोई मोहीजन जिनके चारित्रमे जन्मकी बात वतायी हो, मरण और बुढापेकी बात वतायी हो, फिर भी उन्हे देव अथवा भगवानके रूपमे पूजा करते है। भला जन्म जरा मरण ही तो सवसे बडा दोष है। इन तीनो बातोको ज्ञानीजन उपादेय नही समझते है। मोही जन जन्ममे खुशी मानते है, बुढापा और मरणको वे भी अच्छा नही समझते, लेकिन ये दोनो दोष महादोष है। हम आप आत्मा हैं, ज्ञानानदस्वरूपमय है, सबसे निराले है, कोई कष्ट है क्या ? किसीको भी कष्ट नही है। सभी कष्टसे बरी है, लेकिन कष्ट पसद करते है और सहते रहते है। रागद्वेष आदिक परिणाम करना, उनको अपनाना इसकी आवश्यकता है क्या जीवोको ? और कदाचित् किसी प्रसगमे रहना भी पड रहा है ससर्गमे, पर भीतर तो ऐसी श्रद्धा बना लें कि मैं सवसे निराला हू, लो यह मैं ज्ञानानदमात्र हू तो इसमे कोई जबरदस्ती करता है क्या कि तुम ऐसा विश्वास न रखो। ये खुद ही अपने सही विश्वाससे गिर गये और व्यर्थके इन बाह्यपदार्थोंमे लग गये, इनमे आसक्त हो गये। लो अब जन्ममरण कर रहे है, दु.खी हो रहे है। तो जिन बातोसे हम विडम्बनायें पाते है अथवा जन्म जरा मरणसे दबे हुए है उन्ही बातोमे दबे हुए पुरुषोको कोई भगवान मानें, प्रभु मानें तो क्या उनके सकट दूर होंगे ? न दूर होंगे।

प्रभुभक्तिका प्रयोजन—अहो, उन मोही जनोंने यह निर्णय ही नही किया कि प्रभु-भक्ति करके हमे चाहिए क्या ? सही निर्णय नही किया। बस धन, वैभव, स्त्री पुत्रादिककी बात चाही, मुकदमाकी जीत चाही, जिन सासारिक कार्योको इष्ट मान रखा है उनकी सिद्धि चाही। जो स्वय दु खी है उन्होंने अपने लिए दु ख मागा। जो जन्म जरा मरणसे दबे हुए हैं ऐसे पुरुषोको मोहियोंने अपना प्रभु माना, देव माना। उनसे दु.खकी चाह की है। तो सही है बात। उनके मनोरथ अवश्य सिद्ध होंगे। उन्होंने दु ख माँगा है तो दु.ख मिलते जायेंगे। वे अपनी कल्पनामे तो नही समझते दु ख, परन्तु वास्तवमे वे सासारिक समस्त समागम दु.खरूप है, सो जन्म जरा मरणसे व्याप्त प्रभुसे कुछ सिद्धि नही है। जन्ममें इस जीवके दु खको उस ही भातिसे कहा है जितना कि मरणमे कहा है। जैसे मरते समय इस जीवको वेदना होती है, शरीरसे कुछ खिचा हुआसा होता है, इसी प्रकार जन्मके समयमे भी किस प्रकारसे सकुचित होता है, किस ढगसे पेटके अन्दर रहता है ? वह कष्ट वहाँ भी है, और जन्म तो कहलाता है

तव जब शरीर धारण किया, गर्भमे आया। अब गर्भसे निकलते समयके कष्ट देखिये, गर्भमे रहनेके कष्ट देखिये, किस तरहसे गोल वनकर नीचे मुख रखकर और हाथ पैर सब सकुचित होकर लिपटा हुआ-सा रहता है। वहाँ बाहरकी हवा भी नही मिलती है। यो गर्भमे कितने कष्ट है ?

संकटमोचन उपाय—देखिये ससारके सकट सदाके लिए मिट जायें इसका उपाय बडा सुगम है। इतना स्वाधीन है कि आप अपने ही अंदर सच्चा प्रकाश पायें और मान जाये कि प्रत्येक पदार्थ स्वतत्र है, एक दूसरेसे अत्यत जुदे है। किसीका किसीसे सम्बध नही है, मैं स्वय ज्ञानानदरूप हू, अपने आपको ऐसा मान जायें तो इसमे क्या कष्ट हो रहा है ? कोई भी तो कष्ट नही है, आनद ही आनद है। यदि यह कहो कि हम तो गृहस्थीमे है, सारी बातें ख्यालमें रखनी पडती है, सब सम्हालना है, आजीविका है, समाजमे रहना है, देशमे रहना है, ये सब बातें है। अरे जो सत्य श्रद्धानसे उन सब बातोमे कुछ विरोध आता है क्या ? वे भी बाते रहेगी और कदाचित् विकल्प उनसे हट जाय और उनकी चिन्ता तनिक भी न रहे और आत्मस्वरूपमें मग्न होनेकी बात बन जाय तो यह तो सर्वोत्तम बात है। न भी आत्ममग्नता बन सके तो भी अपने आपकी सही श्रद्धामे निराकुलता तो अन्त रहती है।

निर्दोष प्रभुभक्तिमे स्वतः समृद्धिलाभ—प्रभु वह है जो जन्म जरा मरणसे परे है और जन्म जरा मरणसे परे होनेसे ही उनका कल्याण है। मेरा भी कल्याण जन्म जरा मरण से परे होनेमे है, यह श्रद्धा ज्ञानी उपासक सतके रहती है। विषयव्यामुग्ध जन मोहवश जन्म जरा मरणसे आक्रान्त पुरुषको भी प्रभु मानते है। किन्तु सोचिये तो सही जिसके रागादिक विषकी प्रीति है, जो स्त्री पुत्रोमे राग करे, भोगनेकी कामना करे और अनेक प्रकारकी घटनाओमे भी अपना दिल लगाये, ऐसे रागादिक विषसे मूर्छित स्वरूप क्या प्रभुका हो सकता है ? कदापि नही। प्रभु तो रागसे परे है। प्रभुकी जो भक्ति करता है वह स्वय अपने आप सम्पन्न बन जाता है। प्रभु उसे सम्पन्न बनाने नही आते जो प्रभुसे विमुख रहता है वह स्वय ही अपने आप क्लेश पाता है। प्रभु तो परम उपेक्षक है, अपने विशुद्ध ज्ञानानन्दरसमे लीन है। जीवोकी आदत कुछ स्नेह करनेकी पडी हुई है तो स्नेह करें प्रभुसे। मगर रागकी प्रकृति नही छूट रही है, तो हम रागका प्रयोग करें उस प्रभुस्वरूपपर, उसके अनुरागी बनें। जैसे यहाँ लोग बाह्य वचन बोलकर अनुराग दिखाते यो नही, पर प्रभुस्वरूपमे अन्त वचन बोलकर उसमे अनुराग बनाये वहाँ कुछ अपने आपको मिलेगा। तो प्रभु रागादिक विषमे अत्यन्त दूर हैं। मोही पुरुष तो ऐसे चारित्र वालोको जिनके रागकी प्रकट वेदना नजर आती है उन्हे भगवान मानते है, पर जो अपने आपको ससारसकटोंसे छूटनेका लक्ष्य बनाये है वे तो रागादिकसे रहित ही प्रभु है, ऐसी अपनी दृढ प्रतीति रखते है।

मोहियोकी उपासना विडम्बना—देख लो भैया ! ससारी जीव जन्म जरा मरण आदिक १८ दोपोंसे लिपटे हैं—क्षुधा, तृपा, विस्मय, अरति, खेद, रोग, शोक, अभिमान, मोह, चिता आदिक अनेक दोष है जिन दोषोंसे ये ससारी जीव आक्रान्त है । और कोई मोही जन ऐसे ही दोष वालेको अपना देव मानें, आदर्श माने तो वे अपना उत्थान कैसे कर सकते है ? अरे जो स्वय इन दोपोंसे व्याकुल है उसकी भक्तिसे सिद्धि क्या प्राप्त होगी ? जिन रागमय चितावोंसे हम परेशान है उन ही घटनाओमे, इन ही चर्याओमे जो चल रहा हो, बस रहा हो उसे देव मानकर, भगवान मानकर, उसकी भक्ति करनेसे क्या लाभ ? मोही अज्ञानी जीव ही इस प्रकारके कलुषित पुरुपकी भक्तिमे लग सकते है । मोहियोकी तो बात क्या करें—किसी पत्थरका, किसी पेडका, किसी भी बिरादरीके साधारण गृहस्थका अथवा कोई पागल भी फिर रहा हो तो उस तकका भी शरण मान लेते है । कितनी ही जगह लोग पागलका भी बडा सम्मान करते है और यह प्रतीक्षा करते है कि यह मुझे कुछ गाली दे दे, कुछ एक आध बात कह दे तो इससे हमारे कार्यकी सिद्धि होगी । कुछ लोग तो यहाँ तक अपना मतव्य बनाये रहते हैं । ये सब मोहियोकी चेष्टायें है ।

विशुद्ध मुमुक्षुका आदर्श—जिन्हे सासारिक समस्त सकटोंसे छूटनेकी अभिलाषा है वे पुरुष उस आदर्श प्रभुकी खोज करते है । उनके चित्तमे यह बात रहती है कि अपना यह मस्तिष्क नारियलकी तरह किसी भी जगह फोड दिया जाय अर्थात् मस्तिष्क झुका दिया जाय यह कोई विवेककी बात नही है । कौन मेरे लिए आदर्श है ? देव कहो, भगवान कहो या आदर्श कहो, एक ही बात है । मुझे क्या बनना है, मैं क्या होना चाहता हू, मैं क्या अनुभवना चाहता हू इस प्रश्नके उत्तरमे जिसपर अगुली उठ जाय कि मैं यह बनना चाहता हू, उसीका नाम देव है । तो प्रभु क्षुधा आदिक अठारह दोपोसे रहित है, अनेक विपदावोंसे दूर है, भले ही मोही जन ऐसे चारित्र वाले पुरुपोको अपना आदर्श मानकर उनके प्रति भक्ति प्रदर्शित करे पर ज्ञानी पुरुष ऐसे चारित्र वालोंके प्रति अपनी भक्ति नही प्रदर्शित करते हैं । वे तो ऐसे प्रभुके प्रति श्रद्धासे अपना शीश झुकाते है जो इन समस्त दोपोसे रहित है, जो सर्व आपदावो से रहित है, समतापरिणाममे धारी है, जो पूर्ण सयमरूप हैं, जिनमे अब कोई व्यसन आपत्ति आ ही नही सकती, ऐसे प्रभुके वे ज्ञानी ध्यानी भक्तजन परम उपासक है । प्रभुके तो अब परम सयम और परम ज्ञान है । सयम क्या है ? उनका आत्मा, उनका उपयोग उनमे ऐसा सयत हो गया है कि जो अब अनतकाल तक भी अपने आपके स्वरूपसे हट नही सकता है । वे सदाके लिए सुखी है ।

अशुद्ध दशाकी विपदा—अशुद्धता ही विपदा है और शुद्धता ही परमवैभव है । अपने आपके बारेमे विचार करें, हम किस बातपर इतरायें, किस बातपर घमड करें, किस बातपर

अपना बडप्पन माने। जब हम अशुद्ध बनते है तो हम अपने स्वरूपसे रम नही सकते और परपदार्थोंके प्रति हमारा आकर्षण होने लगता है। किसीसे भी स्नेह अथवा द्वेष करके हम आप अपने आपको गदा बना लेते है। ऐसी गदगीमे रहने वाले हम आप किस बातपर अपना बडप्पन मानें ? एक अपने आपके आनंदस्वरूपपर दृष्टि डालिये तो एक ऐसा साहस होता है कि नही, कायर बननेकी आवश्यकता नही। मैं स्वरूपत केवल ज्ञानानदमात्र हू। यह शरीर ऊपर लदा है, ये रागादिक विकार भी मेरे ज्ञानस्वभावके ऊपर आ आकर जुड जाया करते है। हम उस समयमे विचलित हो जाते है तो ससारमे परिभ्रमण करते है, और जब हम अपने स्वभावकी सुधि लेते है तो एक साहस जगता है और अन्दरमे आवाज उठती है—जो मैं हू वह है भगवान। कितना इन ज्ञानी पुरुषोका अपने विचारोमे हितकारी परिवर्तन चल रहा है ? पर्यायपर दृष्टि करते है तो इस अशुद्धतापर उन्हे विषाद होता है, कदाचित् पर-दृष्टि करते है तो उसपर भी वे पछतावा करते है। वे ज्ञानी ध्यानी पुरुष तो मुक्त होनेका सुगम उपाय जानकर, स्वय अपनेको आनन्दमय मानकर अपने आपमे प्रसन्नताका अनुभव करते है।

संसारपाराभिलाषीके संसारपारगकी अनुकरणीयता—ससारसे पार होनेकी अन्तर्वृत्ति रखने वाले ज्ञानी पुरुषोको प्रभुके सयम और ज्ञानकी पराकाष्ठा ईश्वर रूपमे दिखती है। जो किसी नदीको पार करके किनारे पहुच जाता है उसीको यह अधिकार है कि दूसरे किनारे खडे होनेपर दूसरोंसे कहे कि देखो इस रास्तेसे आवो, इसमे कोई खतरा नही है, और कोई किसी लहरोमे डूब रहे पुरुषको अपना हितू मानकर उसको ही आदर्श मानकर उसके निकट जाय तो वह तो डूबेगा। हमे सयत बनना है, अपने आपमे गुप्त बनना है, निर्विकल्प होना है, ज्ञाना-नुभव करना है तो हमको हो इस दिशामे प्रगति करना है, तो प्रभु भी तो इस प्रकारका ही निरखेंगे। तो प्रभु सयम और ज्ञानकी पराकाष्ठारूप है। मोही जन ज्ञानसे रहित, सर्व दोषोसे पूर्ण व्यक्तिको भी प्रभु मानकर उसकी भक्ति करते है। अरे जिसका जैसा उपादान है उसका वैसा ही परिणमन है। कही परमात्मा मान लेनेसे वे परमात्मा बन गये हो, यह बात नही है। तो प्रभु सर्व दोषोसे रहित और गुणोके उत्कृष्ट विकासरूप होते है।

इतरोऽपि नर षड्भि प्रमाणैर्वस्तुसचयम्।
परिच्छिन्दन्मतः कैश्चित्सर्वज्ञ सोऽपि नेष्यते ॥२०२१॥

अनेक प्रमाणो और युक्तियोसे ज्ञानसंग्रह करके सर्वज्ञताकी अनुत्पत्ति—कुछ लोग अनेक विद्यावोका माध्यम करके अपनी युक्तियोमे ही विश्वास रखते हुए सर्वज्ञके सम्बधमे ऐसी कल्पना करते है कि कही केवल अपने ज्ञानस्वभावसे ही बिना कोई विचार किये, बिना कोई तर्क उठाये समस्त विश्वको जान ले यह बात तो सभव नही है। उनका मन्तव्य है कि सर्वज्ञ यो नही जानता, किन्तु जितने प्रमाण हैं, जितने ज्ञानके उपाय है, जितने ज्ञानके प्रकार है—

प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, आगम, अर्थापत्ति आदिक सभी प्रमाणोंसे सभी युक्तियोंसे ज्ञानका अर्जन कर करके सर्वज्ञ बन जाते हैं। पर सोचिये तो सही कि विश्वके इतने पदार्थ उनको प्रत्यक्षसे, अनुमानसे या किसी भी प्रकारसे जान-जानकर कोई कब स्पष्ट समझ सकेगा ? तथ्य तो यह है कि ज्ञानको ज्ञानस्वरूपमे लेनेके परम निर्णय व पुरुषार्थसे परम प्रतपनमे ऐसा एक प्रभाव होता है कि उसका आवरण ध्वस्त होता है और सम्पूर्ण ज्ञान एक साथ प्रकट हो जाता है। ज्ञानका अर्जन कर करके कोई सर्वज्ञ बन जाय यह बात सम्भव नही है। लिख पढकर, याद करके, विद्या सीखकर अनेक तर्क बना करके सर्वज्ञ बनाना, यह बात बन ही नही सकती है। जो सर्व तर्क वितर्कोको छोडकर अपने आपके ज्ञानस्वरूपमे केन्द्रित हो जाय तो सबका ज्ञानार्जन छोडकर अपने आपके स्वरूपमे रत होनेसे वह सर्वज्ञ बनता है।

विकल्पप्रसार रोककर अपने कैवल्यस्वरूपमे उपयोगके नियन्त्रणसे सर्वज्ञताकी सिद्धि—सर्वज्ञ होनेका मार्ग यही है कि हम फैले हुए यहाँ वहाँके विज्ञानोको छोडकर अपने आपमे समा जायें। जैसे कोई पुरुष यहाँसे विलायत गया। बहुत दिन हो गए। जब वह अपने घर आना चाहता है तो जिस विदेशसे रवाना हुआ वहाँ कोई पूछता है कि भाई कहाँ जावोगे ? तो वह कहता है भारत देश जायेंगे, हिन्दुस्तान जायेंगे। जब हिन्दुस्तानके किसी बन्दरगाहपर आया मानो बम्बई आता है और कोई पूछता है कि भाई कहाँ जावोगे ? तो वह कहता है कि उत्तर प्रदेश जायेंगे। जब उत्तर प्रदेशकी सीमामे पहुचा और किसीने पूछा कि कहाँ जावोगे ? तो वह कहता है कि सहारनपुर जायेंगे। जब वह सहारनपुर स्टेशनपर आ गया तो रिक्शा वालो ने पूछा कि कहाँ जावोगे ? तो वह कहता है कि अमुक मुहल्ला जायेंगे। यो वह अपने घर पहुचकर अपने विश्रामके कमरेमे आकर विश्राम करता है। यो ही हम आपका यह उपयोग अपने निजी गृहको छोडकर बहुत दूर चला गया है पुद्गलोमे, मित्रोमे, जड पदार्थोमे, वहाँसे कहाँ गया ? अपने चेतन अचेतनमे, परिवारजनोमे। वहाँसे कहाँ जायगा ? अपने आपमे। अपने ही निकट जायगा। पर इसमे तो अभी बहुत पर भरे है रागद्वेष मोह आदिकके। अब कहाँ जायगा ? अपने आपके ध्रुव निजी गृहमे। वहाँ जाकर आरामका स्थान मिलेगा, वही रम जाय तो वह परमशान्ति पायगा।

बाह्य ज्ञानार्जनमे क्षोभकारणताकी संभवता—इन परपदार्थोका ज्ञानार्जन करते रहनेसे भी इसको क्या सिद्धि होगी ? कदाचित् कुछ परिचित लोग मान ले कि ये बडे वैज्ञानिक हैं, बडे चतुर हैं, समझदार है, तो इतना कहकर वे तो अपना कर्तव्य पूरा कर गए, पर इन बातो को सुनकर वह मोहमे जकडकर उनके लिए और कदम बढाता है। उन सबको खुश करनेके लिए वह रात दिन बेचैन रहता है। प्रशसा करने वाले तो अपनी चक्की चलाकर चले गए पर पिसना पडा खुद अकेलेको, और दोष कहने वाला क्या कूडा ले गया ? बल्कि वह तो बडा

उपकारी है, क्योकि हमे सतर्क कर गया। तो इन बाहरी बातोमे क्या फसना है ? एक अपने आपके ज्ञानाद्वैतमें सगत हो जाय तो सर्वज्ञता प्रकट होगी। प्रमाणोसे ज्ञान जोड-जोड करके सर्वज्ञ नही हुआ जा सकता।

अत सम्यक्त्व विज्ञेय परित्यज्यान्यशासनम्।
युक्त्यागमविभागेन ध्यातुकामैर्मनीषिभि.॥२०२२॥

विशुद्धध्यानार्थीको देव, शास्त्र, गुरु व तत्त्वके निर्णयकी प्रथम आवश्यकता—जो मुक्तिकी अभिलाषा रखता है, जो परमध्यानकी कामना रखता है, जो उत्कृष्ट तत्त्व है, शरणभूत है उसकी उपासनाकी इच्छा रखता है उस पुरुषको तो मोहियोके शासनको छोडकर, मोहियोकी उस रागवर्द्धक प्रणालीको तजकर वीतरागमार्ग अगीकार करके शुद्ध बनना चाहिए। वे वीतराग सर्वज्ञ प्रभु ही हम आपके आदर्श है। देव, शास्त्र, गुरु—इन तीनोका आलम्बन लिए बिना हमारी प्रगति नही हो सकती। हम अपना देव किसे मानें, यह तो निर्णय करे ? जो रागद्वेप जन्म मरण आदिक विडम्बनाओसे मुक्त हुए है वे हमारे देव है, स्वय ज्ञानानद हो, केवल रह जाय तो बस जो केवल हो, जो निरन्तर ज्ञानानदमे लीन हो वह हमारा आदर्श है। वही दृष्टि दें कि मुझे यह बनना है, वह तो है देव, और ऐसा बननेकी जो प्रेरणा देते है ऐसे सद्वचन, वे हैं शास्त्र। इस प्रकार बननेमे जो लग रहे है वीतराग होनेकी जो अपनी साधना बना रहे है ऐसे निर्ग्रन्थ तपस्वी ज्ञानध्यानरत महापुरुष वे हमारे गुरु है। तो सच्चे देव, शास्त्र गुरुका निर्णय करिये आत्माके नाते। अपने आपको किसी मजहब वाला मत मानो। आत्महितके नाते ही सारा निर्णय किया जाय तो उस पथका हमे दर्शन होगा और हम वहाँ अपना निभाव कर सकेंगे। इस आत्महितकी इच्छा रखने वाले भव्य जन अपने आदर्शका सही निर्णय करे कि हमे क्या बनना है ? वीतराग सर्वज्ञ सकलपरमात्मा जैसे हुए है उस मार्गसे चलें। उस ज्ञानानदस्वरूपका ध्यान करें तो हममे भी शुद्धि होगी, और यह शुद्धि बढ-बढकर उतनी ही वीतराग अवस्था बन सकेगी जो वीतराग सिद्ध प्रभुकी है। जैसे सर्व सकटोसे छुटकारा सिद्ध प्रभुका है वैसे ही सर्व सकटोसे छूटकारा हम आप भी प्राप्त कर सकेंगे।

युक्त्या वृषभसेनाद्यैर्निर्धूयासाधुवल्गितम्।
यस्य सिद्धिः सतां मध्ये लिखिता चन्द्रमण्डले॥२०२३॥

उच्च योगमे सर्वज्ञताका निरूपण—प्रभुमे वीतरागता और सर्वज्ञता मुख्य गुण है, जिनका महत्त्व आककर तीनो लोकोके इन्द्र और विद्वत् जन, योगी उन प्रभुके चरणोमे आकर परमतत्त्वकी उपासना किया करते हैं। ऐसे महत्त्वपूर्ण वीतरागताके सम्बधमे भी बहुत कहा गया और सर्वज्ञताके सम्बधमे भी कहा गया। किन्तु एक याद दिलायी गई है इस प्रसगमे कि उस सर्वज्ञकी सिद्धि वृषभसेन आदिक गणधरोने एक निर्मल चन्द्रमण्डलमे, शुद्ध वातावरणमे

लिखा है। जो कुनयके पक्षपाती है उनके द्वारा कहे गये विचारोंका खण्डन करके अथवा उन्हें समझा करके उन गणधरोंने सर्वज्ञकी सिद्धि लिखी है। यहाँ बताया है कि चद्रमण्डलमे लिखा है। इसका क्या अर्थ हो सकता है ? रात्रिमे लिखा है यह बात तो कुछ फबती नही है। ज्योतिषके हिसाबसे जिन दिनोमे कुछ चद्रकी महिमा आकी जाती हो उन दिनोंमे लिखा अथवा चद्र स्वरमे लिखा है। मनुष्यकी नासिकामे दोनो छिद्रोसे जो वायु निकलती है तो दाहिने छिद्रसे श्वास निकालनेको कहते है सूर्य स्वर और बाई ओरके छिद्रसे श्वास निकलनेको कहते है चद्रस्वर। यही चद्रमण्डल कहलाता है जो शान्तिका प्रतिपादन होता है। जो साम्य भावका वर्णन होता है, धीर और शान्त तत्त्वका दर्शन होता है ऐसी स्थितिको एक सौम्य शान्त स्थिति कहा जाता है। ऐसी सौम्य स्थिति चद्रस्वरमे हुआ करती है। तीव्र एव चर कार्य तो सूर्यस्वरमे करना चाहिए और शान्त एव स्थिर कार्य चद्रस्वरमे करना चाहिए। आचार्यदेव उस सर्वज्ञ सिद्धिकी निर्दोषताको जानकर यह कह रहे है कि उस पावन प्रतिपादन से मालूम होता है कि यह सब निरूपण चद्रमण्डलमे किया है जबकि एक सौम्य स्थिति थी। इससे यह जाहिर किया कि प्रभुको सर्वज्ञ मानना, यह कपोलकल्पित बात नही है। बडे अनुभवो और उन्च सासारिक वैभवोको भोगकर त्यागने वाले योगीश्वरोंने निर्मल तपश्चरणके वातावरणमे अनुभव करके लिखा है।

अनेकवस्तुसम्पूर्णं जगद्यस्य चराचरम्।
स्फुरत्यविकल बोधविशुद्धादर्शमण्डले ॥२०२४॥

सर्व चराचर पदार्थोका प्रभुके ज्ञानमे स्फुरण—वे प्रभु जो हमारे लिए उपासनीय हैं, जिनके निकट, जिस स्वरूपको हम अपने आत्माका समर्पण कर सकें जिससे हमारा प्रगतिशील भविष्य बने, वे प्रभु कैसे है ? उन्हे आदर्शरूप निर्मल ज्ञान प्राप्त हुआ है, उनके ज्ञान दर्पणमे यह चराचर जीवाजीव, सारा विश्व सम्पूर्ण स्फुरायमान होता है। देखिये अपने ज्ञानकी ओर दृष्टि करके इस ज्ञानमे स्वय ऐसी महिमा है कि ज्ञानस्वरूपके कारण, अपने स्वभावके कारण यह जानता है। यदि इन इन्द्रियोको भी बद कर दे, इनसे भी काम न लें और अपने आपको भीतरमे एक समाया हुआसा बनाये तो भी वहाँ कुछ ज्ञान होता ही रहता है बल्कि वह विशुद्ध ज्ञानका रूप लेगा। यदि एक शाति सौम्य स्थिति है तो स्वका अवलोकन होता है और इन्द्रियज ज्ञान है तो यहाँ वहाँके बाह्य पदार्थोको जानते रहते हैं। ज्ञानमे जाननेका स्वभाव है, कषायें आत्माका स्वभाव नही है क्योकि कषायें यदि आत्माकी होती तो चिरकाल तक रहती। उनमे अदल-बदल चलता रहता है। किसीसे कहा जाय कि तुम जरा १० मिनट तक लगातार क्रोध करते रहो, तो नही कर सकता। इन कषायोका अदल-बदल होता रहता है। चाहे कोई जीव कषाय कर रहा हो, चाहे कषाय दूर कर रहा हो, सर्वस्थितियोमे यह ज्ञान चलता रहता

है। जाननके बिना यह ज्ञान कभी भी नही रहता है।

ज्ञानस्वभावके कारण विकसित ज्ञानका असीम प्रकाश—यह ज्ञान एकस्वभावी है और स्वभावसे यह जाननहार है। लोग तो समझते है कि ये इन्द्रिया हमारे ज्ञानमे साधक है, पर एक दृष्टिसे देखो तो ये इन्द्रिया हमारे ज्ञानमे साधक नही है, किन्तु हमारे इस सम्पूर्ण विकासमे बाधक है। दृष्टातमे ले लो। जैसे एक कमरे मे ४-५ खिडकिया है, उस कमरेमे रहने वाले पुरुषको बाहरकी चीजे देखना है तो वह उन खिडकियोसे देखना चहता है, देख लेता है। लोग तो कहते है कि देखो इन खिडकियोसे जाना, और क्यो जी यदि वे खिडकिया न रहे, दीवार ही ढा दी जायें तो कहाँसे देखेगा? अरे फिर खिडकियोकी जरूरत न रहेगी। फिर तो वह चारो ओरकी चीजोको बराबर जानता रहेगा। इसी तरहसे ये ५ इन्द्रिया इस शरीर भीतकी ५ खिडकिया है—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र। यहाँ तो हम इन खिडकियोके द्वारसे जानते है, पर आत्मा क्या इन खिडकियोसे जानता है? इन्द्रियोसे क्या जानता है? अरे वह इन इन्द्रियखिडकियोसे नही जानता है, यदि यह शरीर भीत न रहे, ये इद्रिय खिडकिया न रहे तो यह आत्मा सर्व ओरका सर्व कुछ जानता रहता है। आत्मामे ऐसे महत्त्वका ज्ञान गुण है जिसकी मोहमे लोग कदर नही रख रहे है। लोग तो बाहरकी बातोसे स्नेह रख रहे है, अपने चित्तमे उन बाहरी बातोका भार लादे रहते है, पर इस जीव को यह सुध नही है कि मैं तो सम्पूर्ण ज्ञान कर लू, ऐसा ज्ञानमय पदार्थ हू और इस ही मे विशुद्ध आनद बसा हुआ है।

कारणपरमात्मतत्त्वके आलम्बनसे समृद्धिलाभ—अहो इस कारणपरमात्मतत्त्वकी सुधि न होनेसे कितनी दयनीय स्थितिमे पहुच गया है यह जीव? इस स्वप्नवत् ससारमे चार लोगो मे यह अपनी शान बगराता है और कदाचित् शानमे फर्क आ जाय तो उसमे बडा खेद अनुभव करता है। अरे क्यो इन चार जीवोमे सम्मानकी चाह करते? जीव तो अनतानत हैं। यदि तू इन अनतानत जीवोमे अपनी नामवरीकी चाहकी कोशिश करे तो हम तो तेरी प्रशसा करेंगे और कहेगे कि तू धन्य है जो तूने इन अनतानत जीवोमे अपनी नामवरीकी कोशिश कर ली। नही कर सकता ऐसा तो इन अनतानत जीवोके सामने ये हजार, लाख, करोड जीव कुछ गिनती भी रखते है क्या? अरे इस अटकने तो आत्माके सम्पूर्ण ज्ञानको रोक रखा है। तो वह प्रभु कैसा है? विशुद्ध ज्ञानानदपुञ्ज है। उनकी ज्ञानसाधनाके बलसे ये कषायें अब नजर भी उठा सकती, इन्द्रियविषय उन्हे कोई बाधा नही पहुचा सकते, इन्द्रियविषयका यहाँ उपादान ही नही रहा, उन प्रभुने ऐसी सर्वज्ञता प्राप्त की है कि जिनके उस ज्ञानरूप दर्पण-मण्डलमे यह सारा जगत सम्पूर्ण रूपसे प्रकाशित होता है, अर्थात् समस्त विश्वके जाननहार है वे प्रभु।

स्वभावजमसदिग्ध निर्दोष सर्वदोदितम् ।
यस्य विज्ञानमत्यक्ष लोकालोक विसर्पति ।।२०२५।।

प्रभुके ज्ञानकी स्वभावजता—प्रभुका ज्ञान स्वभावज है, स्वभावसे उत्पन्न होता है। यहाँ हम आप लोगोंके ज्ञान अनेक घटनाओमे कितने पराश्रयज है, लो प्रकाश चाहिए बिजली का तब देख सकें, चश्मा चाहिए तब देख सकें, अथवा चक्षुकी निर्दोषता चाहिए तब निरख सकें, सामर्थ्य चाहिए। कितनी आधीनतायें है यह तो देखनेके विषयकी बात है, और खाने पीने मे जो सुख होता और उन समयोमे जो ज्ञान विचलित होते उनकी कथा तो इनसे भी कठिन है। इनमे पराधीनता है, लेकिन थोडासा ज्ञान पाकर लोग तो यों समझते है कि मैं तो अब सबका सिरताज हू। अरे क्या ज्ञान पाया है ? प्रथम तो बात यह है कि यदि उस शुद्ध अतस्तत्त्वका अनुभव नही कर पाया है तो वह सारा बाहरी ज्ञान, वह सब पुस्तकोका बोध एक बोझ है, और उस बोझसे इतना यह दब गया है कि इतने विकल्प मचने लगते हैं कि अपने उस शुद्ध तत्त्वके दर्शनका वह पात्र नही रहता है। ऐसे ज्ञानको भगवती आराधना सारमे कहा है कि वह तो गधेपर चदन लदा है उस समान बोझ है। जैसे गधा चदनकी लकडी लादे हुए किसी बाजारसे निकल जाय तो दूकानदार लोग तो उसकी सुगधका आनद पा जाते हैं पर वह गधा उस सुगधका आनद नही पा सकता, यह है हमारे इन्द्रियज ज्ञानका नमूना, और किन्तु प्रभुका ज्ञान स्वभावज है, स्वभावसे उत्पन्न होता है।

प्रभुज्ञानकी आदर्श निर्दोषता—प्रभुका ज्ञान असदिग्ध है, जिसमे सदेहका कोई स्थान नही, सम्पूर्ण प्रकाशमान है, निर्दोष है। जहाँ किसी प्रकारका राग होगा, किसी प्रकारका स्वार्थ होगा, मायाचार होगा वहाँ ज्ञान सदोष होगा। उस ज्ञानसे धोखा भी मिल सकता है। उस ज्ञानसे दूसरे लोग विश्वासपूर्वक निर्बाध नही रह पाते है। पभुका ज्ञान निर्दोष है। देखिये ये सब चमत्कार किस बलपर प्रकट हुए है प्रभुके ? प्रभुने मोह रागद्वेष नष्ट कर दिया है उसके बलसे आत्मामे वे समस्त गुण प्रकट हुए है। यहाँ लोग मोहमे धन वैभव परिजन मित्रजन आदिकको अपना रहे है, अपना मान रहे है, पर इस थोडीसी विभूतिमे या पाये हुए टुकडोंमे जो विश्वास बन रहा है इसके कारण नुक्सान कितना हो रहा है ? नुक्सान कौनसा ? अनत आनदका घात हो गया, अनत ज्ञानका आवरण हो गया, आकुलता सवार हो गयी, अनाकुलता का दर्शन नही हो रहा। कितना बिगाड हो गया, और है व्यर्थका मोह। कितने दिन करोगे यह मोह ? आखिर मरण तो सभीका होगा। यदि सभी मनुष्य आज तक जीवित होते तो इस भूमिमे किसीको खडे होनेकी जगह ही न मिलती। तो यह भव अवश्य छोडना पडेगा। फिर यहाँकी कुछ खबर भी रहेगी कि कहाँसे आये, क्या थे ? अभी ही बतावो—अपने पूर्वभवकी बातें, कहाँसे आये थे, क्या थे, और उसका कुछ सुख भी ले रहे है क्या ? यही दशा

इस भवकी है। तो रहे सहे जीवनके इतनेसे थोडे दिनो भी यदि अपनेपर सयम कर लिया जाय, अपने मनको समझा लिया जाय, तत्त्वज्ञानसे प्रेम कर लिया जाय, अपने परमतत्त्वकी धुनि बना ली जाय, कितने दिनोके लिए ? इन १०-५ वर्षोके लिए, जितना कि शेष जीवन रह गया है, अरे इस अनंत कालके सामने यह थोडासा समय कुछ गिनती भी रखता है क्या ? इतने थोडेसे समयके लिए यदि अपना अत सयम बना लिया जाय तो ससारके सकट सदाके लिए छूट सकते है।

ज्ञानावगाहनके साहसका लाभ—जाडेके दिनोमे तालाबके किनारे खडे हुए बालक यह हिम्मत जाडेके मारे नही कर पाते हे कि शरीरसे पानीका स्पर्श करे, पर यदि कोई उन्हे धक्का दे दे अथवा वे स्वय साहस करके उस तालाबमे कूद पडे तो एकदम सारा जाडा दूर भाग जाता है। आप भी जब जाडेके दिनोमे बाल्टीभर पानी रखकर नहानेके लिए बैठते है तो उस समय जाडेके मारे एक गिलास पानी भी ऊपर नही डाला जाता है, और जरा हिम्मत बनाकर सारा बाल्टीभरका पानी अपने ऊपर डाल लेते है तो उसी समय सारी ठड दूर हो जाती है। इसी तरह हम आप ये ससारके प्राणी डरे हुए तो क्या, देखा भी नही है कि उस ज्ञानसमुद्रमे अवगाहन करनेका कितना आनद है ? कुछ डर भी रहे हो, यो समझ लीजिए कि परिजनोंके मोहवश वहाँ ही हम सुख मान रहे हो तो यहाँ पग नही रखना चाहते है। कुछ डर भी रहे हो तो एक बार हिम्मत बनाकर उस मोहके बधको काटकर एक ज्ञानदृष्टिके सकुचित गलीसे चलकर एक बार उस ज्ञानसमुद्रमे अवगाहन तो कर लें, लो सारी आकुलताये एकदम दूर भाग जायेंगी। इतना साहस करनेकी जरूरत है।

प्रभुज्ञानकी निर्दोषता और नित्योदितता—भैया ! यहाँ कोई साथी न रहेगे, कोई शरण न देगा, पर अपने आपमे साहस बन जाय, अपनी दृष्टि अपनी ओर लग जाय, यहाँ ही निरखने लगें तो परम आनद बढ़ेगा, तृप्ति होगी और ससारके सकटोसे सदाके लिए बच जायेंगे और ऐसा ही अपना परिणमन बना लेंगे। यह सब मार्ग प्रभुस्वरूपके परिचयसे स्पष्ट विदित हो गया है। देखो तभी तो प्रभुका ज्ञान निर्दोष है और सदाकाल उदित है। यहाँ तो हम आप लोगोकी बुद्धि किसी जगह बहुत अच्छी लग रही है और वह जगह छोड दें, दूसरी जगह पहुचे तो उसमे फर्क आ जाता है। पर प्रभुका ज्ञान जैसा उदित हुआ है, जैसा विकासमे है वैसा ही सदाकाल उदित रहता है। वहाँ किस वजहसे घटे ज्ञान ? राग नही, दोष नही, इन्हीके कारण ज्ञानपर आवरण रहा करता है। तो प्रभु भगवानका ज्ञान सदाकाल उदित है। जिसका ऐसा इन्द्रियरहित ज्ञान है, केवल अपने ज्ञानस्वभावसे ही विकसित हुआ वह ज्ञान समस्त लोकालोकमे फैल जाता है।

प्रभुके विशाल सूक्ष्म ज्ञानमें लोकालोककी समाई—अच्छा यही बतावो कि मोटी चीज

बारीक चीजमे समाती है या बारीक चीज मोटी चीजमे समाती है ? यह एक प्रश्न रखा है। देखो—प्रायः यह उत्तर आ रहा है कि बारीक चीज मोटीमे समा जाती है, किन्तु देखिये—आजका विज्ञान भी यह कह रहा है और मध्य लोकका जो वर्णन शास्त्रोमे है वे भी कहते हैं कि पृथ्वी मोटी चीज है, पानी पतला है, पर यह पृथ्वी इस पानीमे समायी हुई है। स्वयभूरमण समुद्र देखो कितना विस्तार रख रहा है। उससे कुछ कम अन्य समस्त समस्त द्वीप समुद्रो का विस्तार है। तो पानी पृथ्वीसे सूक्ष्म है, इस पानीके बीचमे पृथ्वी बनी हुई है, और पानी से बारीक है हवा, सो उसका विस्तार देख लो, पानीसे अधिक जगह हवा फैली हुई है, उस हवामे यह पानी समाया हुआ है, और हवासे भी बारीक क्या है ? आकाश। सो हवासे बडा है ना आकाश ? जहाँ हवा नही वहाँ भी आकाश है। तो इस आकाशके बीच हवा भी समायी हुई है, और इस आकाशसे भी पतला है ज्ञान। तो यह ज्ञान इतना फैला है कि जिसमे लोक और अलोक सारा समाया हुआ है। यह एक अलकारिक ज्ञान पद्धतिकी बात है, और वहाँ भी देखो—अन्तरङ्गमे तो ज्ञानका क्या स्वरूप मिलेगा ? बहुत सूक्ष्म चीज है ज्ञान, जाननमात्र। उस जाननमात्र ज्ञानमे सारा लोक समा जाता है, और वह भी ऐसा समा जाता है कि प्रभु सर्वज्ञके ज्ञानके एक कोनेमे समस्त लोक पडा है। ऐसे ऐसे और भी कितने ही लोक अलोक होते तो उन्हे भी जान लेता।

यस्य विज्ञानघर्माशुप्रभाप्रसरपीडिता· ।
क्षणादेव क्षय याति खद्योता इव दुर्नया ॥२०२६॥

प्रभुकी ज्ञानप्रभासे दुर्नयोका क्षय—एक सर्वज्ञके ज्ञानसे और सर्वज्ञके ज्ञानके होने हुए भव्य जीवोके भाग्योदयसे निकली दिव्यध्वनिसे जो ज्ञान प्रसृत हुआ है उससे भी समझ लीजिए। जिसका विज्ञानरूपी सूर्यकी प्रभाके प्रसारसे ताडित हुआ कुनय इस प्रकार क्षणभरमे क्षयको प्राप्त हो जाता है जैसे कि तेज धूपमे पटबीजनाओका प्रकाश क्षयको प्राप्त हो जाता है। रातमे तो पटबीजनायें चमकती हैं, पर दिनमे जब कि तेज घाम हो तब क्या किसीने पटबीजनाओको चमकते हुए देखा है ? इसी प्रकार उस विज्ञानमे जो स्याद्वाद कलासे पूरित है, यथार्थ वस्तुके स्वरूपका जिसमे प्रतिपादन है उस ज्ञानसे विपरीत होकर कोई खोटे आशय, ये एकान्तके अभिप्राय क्षयको प्राप्त हो जाते है।

ज्ञानीका कर्तव्य—क्या कर्तव्य होता है ज्ञानी जीवका ? पहिले तो इस जगतका व अपना यथार्थ निर्णय करे। यथार्थ निर्णय होता है एकान्तसे। मैं क्या हू ? द्रव्यदृष्टिसे नित्य हूं क्योकि मैं सदा रहता हू, परिणमन दृष्टिके अनित्य हू, क्योकि परिणमन क्षण-क्षणमे नष्ट होता रहता है। मैं क्या हूँ ? जब स्वरूपदृष्टि करता हू तब वह स्वरूप तो एक है, समस्त जीवोका एक है, समस्त पर्यायोका एक है। स्वरूपकी बात कही जा रही है, और जब हम

परिणमनकी दृष्टिसे देखते हैं तो जीव अनत है और यह मै भी प्रतिसमयके परिणमन जब जब जो जो होते है तब तब वे वे है। यो मैं भी अनेक हू। मैं किसीसे राग रख रहा होऊँ और बादमे विरोध करने लगू तो वह कहता है कि बस आप तो वह नही रहे, आप तो दूसरे हो गए। तो यो स्याद्वादके द्वारा, अनेकान्तके द्वारा वस्तुके तत्त्वका निर्णय होता है। यह बहुत महान है, इसके समझनेके लिए बहुत समय चाहिए, पर इतना ही यहाँ भी ध्यानमे लाइये कि अनेकांतसे हम वस्तुका निर्णय करते है तब हमे अनेकात सहायक हुआ। फिर निर्णय करके हम क्या करें ? सो सुनिये—

अनेकान्तसे परम अनेकान्तमे पहुंच—अनोखे अनेकातमे अब पहुचिये, पहिले अनेकांत तो था—अनेके धर्मा यस्मिन् स अनेकातः। जिसमें अनेक धर्म पाये जा रहे है वह अनेकात है। यह आत्मा नित्य है अनित्य है आदि निर्णय कर लिया और निर्णय करके जो हेय चीज है उसको उपयोगसे हटा लिया, जो उपादेय है उसमे उपयोगको लगा दिया। अब क्या करना ? अब उस अनेकातमे घुसिये जहाँ एक भी अत याने धर्म नही। धर्म मायने गुण ज्ञान, दर्शन आदिक, सो न एकः अपि अन्तः यस्मिन् स अनेकान्तः। जिसमे एक भी धर्म भेद प्रतीत नहीं होता। अनेकातसे वस्तुका निर्णय करके हमे उस अनुभवमे पहुचना है जहाँ हमे गुण पर्याय आदिक कोई विकल्प न आये, उसको ही बनाये। अस्ति नास्ति एक अनेकः नित्य, एक भी धर्म उपयोगमे न रहे, केवल एक विशुद्ध ज्ञानमात्रका अनुभव रहे, ऐसी साधना बतायी है प्रभुशासनमे।

पादपीठीकृताशेषत्रिदशेन्द्रसमाजिरम्।
योगिगम्य जगन्नाथ गुणरत्नमहार्णवम् ॥२०२७॥

प्रभुका त्रिलोकाधिपतित्व—ऐसे प्रभु जिसने समस्त त्रिदशेन्द्रोकी सभाको सिंहासन रूप कर दिया है अर्थात् सबके पूज्य, सबमे एक शिरोमणि जो योगियोंके द्वारा गम्य है, योगी ही जिसको स्पष्टरूपसे जानते है, हम भी जब योगियोकी तरह कुछ-कुछ योग अपनाते है ज्ञान योग विशुद्ध आशय रखकर उस सहज ज्ञानस्वभावकी दृष्टि अपनी शक्ति पद माफिक जब हम अपनाते है तो हमे भी उस परमात्मस्वरूपका कुछ प्रतिभास होता है, पर योगी जन तो अपने उस विशुद्ध आशयके कारण अभीष्ट परमात्मतत्त्वके दर्शन कर सकते हैं। यह प्रभु जगन्नाथ है, जगतके नाथ है। वे प्रभु नाथ जो वीतराग है, सर्वज्ञ हैं, और हम आप भी नाथ है। नाथ का मतलब = न अथ, जिसका आदि नही, हम आप सबका स्वरूप कैसा है ? आदि है, हम भी नाथ है। वे प्रभु जगन्नाथ है क्योकि वे वीतराग हुए है, सर्वज्ञ हुए है, उनकी कला स [illegible] शय प्राप्त है।

प्रभुकी [illegible]णरत्नमहार्णवता—प्रभु गुणरूपी रत्नोके महान समुद्र हैं। समुद्रमे [illegible]

रत्न पडे है, कितने रत्न पडे है ? इसी प्रकार इस ज्ञान महार्णवमे, जो मात्र ज्ञानपुञ्ज है, बडे रत्न पडे है, जहाँ परमशान्ति है, विशुद्ध आनन्द है वहाँ तो सब कुछ है । चाह तो केवल सबकी आनन्दकी ही है, चाहे वह किसी तरहका है । पर किसी तरह क्या, आनन्दके प्रकट होनेका रास्ता एक ही है, और वह है अपने आपको जानना और अपने आपमे रमना । यही एक रास्ता है उस विशुद्ध आनन्दके प्रकट करनेका । वह प्रभु ज्ञानानन्दके परमविकासके कारण गुणरत्न महार्णव है, ऐसे प्रभुकी ज्ञानी सम्यग्दृष्टि पुरुप रूपस्थ ध्यानमे उपासना कर रहा है ।

पवित्रितधरापृष्ठ समुद्धृतजगत्त्रयम् ।
मोक्षमार्गप्रणेतारमनता पुण्यशासनम् ॥२०२८॥

प्रभुकी पूतविश्वता—जब कि यहाँ ही किसी निष्पक्ष पुरुपका सन्निधान मिलता है, किसी ग्रामको ऐसा सौभाग्य मिलता है तो उस ग्रामके वासी उस उदारचेता गम्भीर नि.स्वार्थ पुरुपके प्रति महान आदर होता है और उसके प्रति वे ग्रामवासी अपनेको पवित्र मानते हैं, फिर तो जो इन पुरुपोंमे से आत्मज्ञानी होकर परम नैर्ग्रन्थ्य अवस्थाको अपने जीवनको धारकर आन्तरिक उस विशुद्धिसे पवित्र होकर जो वीतराग हुए है, सर्वज्ञ हुए हैं, परमात्मा हुए है, ऐसे परमात्मा जहाँ विराजे है वहाँके आसपासके सो सौ दो दो सौ योजनके चारो तरफके लोग अपनेको पवित्र मानते है । और इतना ही नही स्वर्गवासी, भवनेन्द्र आदि भी अपनेको पवित्र मानते है, सो ठीक ही विशेपण दिया है कि जिसने इस धरापृष्ठको पवित्र किया है । यह लोक, यह ससार, ये प्राणी मोहाधकारसे पीडित है । जो चित्तमे आता है उसकी ही कपाय बनाते है और उसके अनुरूप करनेको अध होकर तैयार हो जाते है । जिसके फलको इतिहासमे सुना, अब भी सुन रहे है । युद्धकी तैयारी होती रहती है, किसीने किसीपर चढाई कर दी, कितने ही प्रकारके लोगोको भय रहा करते है, पर है क्या उनका ? जिन्होंने इस लोकमे शासन किया, बडा चैन माना, न्याय अन्याय न गिना, ऐसे भी बादशाह हुए है, उनका भी अब कोई नाम लेता है क्या ? उनकी भी अब कोई बात पूछने वाला है क्या ? केवल उनके कुकर्मोंसे रगे हुए इतिहासके पृष्ठ मात्र शेप है । तो किनके लिए अन्याय किया जा रहा है ? लेकिन इन मोहियोको कुछ भी सुध नही है । ऐसे मोहाधसे पीडित इस लोकमे यदि कोई आत्मज्ञानी है, वीतराग सर्वज्ञ है तो समझिये कि वह धरापृष्ठ उनसे पवित्र हो जाता है ।

पतितोद्धारक प्रभुका स्मरण—ऐसे प्रभुका स्मरण करो जिसने तीनो लोकोका उद्धार कर दिया है । हम जिन परिवार जनोंमे बसते है, जिनसे रागभरी वाणी सुना करते है वे क्या हमारा उद्धार कर सकनेमे समर्थ हैं ? जो वास्तविक बधु है, परमार्थ मित्र है ऐसे साधु सतोसे मोहियोका अनुराग नही जगता । जिनका राग करनेसे नरक निगोदका पात्र बनना

पडता उनको ही अपना सर्वस्व समझते है, ये ही है मेरे सब कुछ। जिन साधु सत पुरुषोकी वाणी सुनकर अपने आपमे अपने आपका अवलोकन कर परमशान्ति प्राप्त होती है वे ही हम आपके निरपेक्ष बधु है किन्तु उन्हे ये मोही जन मित्र और हितकारी नही मानते है। वे तो जो राग बढानेके कारण हो रहे हो उन्हीमे प्रेम करते है। देखिये मनुष्योका राग होता है चेतन अचेतन पदार्थोसे। कोई अचेतन पदार्थ भी यदि सुन्दर है तो उसमे भी प्रेम जगता है, मगर इसमे यह गनीमत है कि ये अचेतन पदार्थ (कपडा घडी, आदिक) अपनी ओरसे राग नही दिखाते हैं, पर हम ही अपनी तरफसे इन अचेतन पदार्थोमे राग करके मूढ बन गए, बेवकूफ बन गए। अब चेतनके रागकी बात देखो, हम राग करते है तो वे रागभरे वचन बोलते है, ऐसे मूढ और बेवकूफ तो अपनी तरफसे हम थे ही, अब वे जीव भी रागकी बात सुनाते है—तुम ही मेरे सब कुछ हो, तुम्हारे बिना हमारा जीवन नही, मरण हो जायगा, यो अनेक बाते ऐसी राग और स्नेह ी करते है तो इसे यो समझिये कि यह जीवन दुहरा आक्रमण है। अब फिर उनसे तो वे अचेतन भले कि जहाँ हम अपनी ही ओरसे ख्याल बनाकर अपनेपर आक्रमण करे। वे बेचारे कुछ चेष्टा नही करते है हमको मूढ बनानेके लिए। तब देखिये कि यहाँ इस चराचर जगतमें मोह करनेसे इस जीवको फल क्या मिलता है, पर मोही इस ही मे राजी है। जो दुःखका हेतु है उस ही मे ये अपना सर्वस्व मानते है।

उदाहरणपूर्वक प्रीतिकी असारताका दिग्दर्शन—हुआ है एक देवरति राजा। पुरानी कथा है। वह अपनी रानीमे बडा मुग्ध था, दोनो ही एक दूसरेसे बडी प्रेमभरी बातें करते थे। रानी सदा यही कहा करती थी कि हे राजन्! जिस दिन आप नही होगे तो उस दिन मेरे लिए सारा ससार सूना हो जायगा। यो बडा प्यार जताती थी वह रानी। यो रानीमे आसक्त होने के कारण राज्यका काम ढीला पड गया, सो मत्री लोग आकर राजासे कहते है कि हे राजन्! या तो आप राज्यको ठीक-ठीक चलाइये या आप अपनी रानीको लेकर राज्यसे बाहर चले जाइये। हम मत्री लोग राज्यका काम सम्हाल लेगे। तो राजाने अपनी रानीको लेकर राज्यसे बाहर ही जाना स्वीकार कर लिया। राज्यसे बाहर जाकर किसी गावके निकट बसे। राजा तो चला गया भोजन सामग्री लेने, वहाँ क्या हुआ कि एक कुबडा जो कि एक खेतकी मेडपर पडा हुआ गीत गा रहा था, उसका स्वर मधुर था, रानी उसपर आसक्त हो गई। कुबडेके पास जाकर उससे कुछ कहती है तो कुबडा कहता है कि अरे यदि राजाको विदित हो गया तो वह हमे भी मार डालेगा और तुम्हे भी। तो रानी कहती है कि कुछ भी हो, आप हमे अपने सग रख लीजिए, इस कामको हम बना लेगी। अब वह राजा जब भोजन सामग्री लेकर आया तो उस रानीको उदास देखा अब वे राजा और रानी तो न रहे, अब तो भिखारी हो गए। खैर, वह राजा अपनी रानीसे उदासीका कारण पूछता है, तो उस रानीने बताया कि

पतिदेव आज आपका जन्म दिन है, यदि महलोमे होते तो मै बहुत बहुत आपका स्वागत करती। तो क्या करें अब ? बहुतसे फूल लावो, मैं माला गूथूंगी, हार बनाऊँगी और यही पर आपका स्वागत करूँगी। वह राजा बहुतसे फूल ला देता है। वह रानी बडा लम्बा एक हार बनाती है, उस राजाको एक बडी ऊँची पहाडीपर ले गई, वही पर उस हारसे उसे कसकर बाँध दिया, और बादमे एक ऐसा धक्का दिया कि वह राजा लुढकता-लुढकता उस पहाडीके किनारेकी नदीमे जा गिरा, बह गया। कुछ दूरपर जाकर किसी पेडकी डालेमे टकराकर रुक गया। बाहर निकला। पासके शहरमे गया। उन्ही दिनो उस शहरका राजा मर गया था, सो मन्त्रियोंने यह तय किया था कि यह हाथी जिस किसीके गलेमें यह माला डाल देगा और अपनी सूडसे उठाकर अपनी पीठपर बैठा लेगा उसे राजा बनाया जायगा। सो हाथी ने उसी राजाके गलेमे माला डालकर सूडसे उठाकर अपनी पीठपर बैठाल लिया जो कि नदी मे से निकलकर किनारे लगा था। लो वह पुन राजा हो गया। इधर क्या होता है कि वह रानी उस कुबडेके सग हो गई थी। उसे एक डलियामें बिठाकर अपने सिरपर वह डलिया रखकर सभी जगह जाती, वह कुबडा गाता, वह नाचती, और जो पैसे मिल जाते उससे पेट भरते। सभीमें यह भी कहती कि मैं पतिभक्ता हू, अपने पतिको अपने सिरपर बैठाकर चलती हू। खैर, इस तरह नाचते गाते, मागते खाते एक बार उस जगह भी पहुची जहाँ कि राजा देवरति राज्य करता था। पता लगा कि कोई नाचने गाने वाले आज इस नगरीमे आये हैं, सो राजदरबारमे बुलाया गया। वहाँपर उस राजाने जब उस स्त्रीको देखा तो पहिचान गया। उसे देखकर उसके ससारसे वैराग्य जगा। ओह ! यह हालत है इस ससारकी। कैसी अपनी वेदना, कैसा अपना मोह और कषाय। ओह ! इसने अपनी क्या हालत कर ली ? तो किसीसे कुछ न कहा, दूसरोको राज्य देकर वह राजा दीक्षित हो गया। अब आप देखिये कि कैसे कर्मोका प्रेरा यह जीवलोक है ? यहाँ किसकी शरण गहे, किसे अपना माने ? ये कोई भी हमारा हित न कर देंगे।

प्रभुका मोक्षमार्ग प्रणेतृत्व—हमारे निरपेक्षबधु परममित्र जो सच्चे देव शास्त्र गुरु हैं उनकी शरण गहे, अन्यसे अपना लगाव छोडें। सच्चे देव, शास्त्र, गुरु और धर्म ये चार ही हमारे शरण हैं। व्यवहारमे सच्चे देव, शास्त्र, गुरु और परमार्थसे धर्म ये ही हमारे शरण है। तो जिनकी वाणीने हमे इस प्रकारका ज्ञान प्रकाश दिया उन्होने तो तीनो लोकोका उद्धार कर दिया। सो ये मोक्षमार्गके प्रणेता है, नेता है, अर्थात् ले जाने वाले है। कहाँ मोक्षमे ? खुद मोक्ष जायेंगे और दूसरोको भी उसी मार्गका उपदेश करने वाले हैं। जो स्वय उत्कृष्ट हो और उसी उत्कृष्ट पथमे ले जाय उसे कहते है प्रणेता। तो ये प्रभु मोक्षमार्गके प्रणेता हैं अर्थात् ससारके सकटोसे छुटकारा कराने वाले है। जो उनके उपदेशको मानता हैं, उनके आदर्शको

सकता है और उसपर चलता है वह, क्योंकि सबसे छूट जाता है। ये प्रभु अनघ हैं, अवि-नाशी हैं, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त शक्ति ऐसे अनन्त चतुष्टयसे सम्पन्न हैं, जिनके कारण सर्व प्रकार वे अमीर ही कहे जाते हैं। देखिये अमीर हैं प्रभु और गरीब हैं मिथ्यादृष्टि। और जिनके तारतम्य पड़े जो कुछ मध्यम दर्जेके लोग हैं वे हैं बीचके गुणस्थान। चौथेसे १२ वें तकके ज्ञानियोंमें चारित्रका तारतम्य है, ये छोटे अमीर हैं, ये बड़े अमीर हैं ये और अधिक अमीर हैं और जो सबसे अधिक अमीर हैं वे प्रभु हैं, जिनमें तारतम्य नहीं है और गरीब हैं वे हैं मिथ्यादृष्टि। गरीब कौन? जिसको आशायें सताती हों। धर्मपालकी दृष्टिसे विचारो तो प्रभु अनन्त चतुष्टय सम्पन्न हैं। सर्वके अधिपति हैं, देवाधिदेव हैं, ऐसे उस परमा-नन्दमय प्रभुका स्मरण करें।

प्रभुकी पुण्यशासनता—प्रभु पुण्यशासन हैं, जिनका शासन पवित्र है। देखो कितना शान्तिका स्थान है? थोड़ेसे लोगोंका समूह हो तो उनको नहीं दूसरे चलाना कठिन हो जाता है, शान्तिके वातावरणमें रखना कठिन हो जाता है। लेकिन प्रभुके शासनका जिन्होंने आल-म्बन लिया है उनकी शान्ति तो देखिये। हजार मुनि आचार्यके संघमें रहा करते थे, लेकिन आचार्यको शासन करनेकी जरूरत न रहती थी, वे सब साधु अपने हितकी अभिलाषाके कारण स्वयं शान्त रहा करते थे। क्रोध न करना यह समस्त मुनियोंका संकल्प था क्योंकि क्रोधमें जरा भी आ गए तो हमारा आत्मा पतित हो जायगा, हम अपना उद्धार न कर सकेंगे। तो वहाँ कौन कहने वाला कि शान्त रहो, गुस्सा न करो? किसीको कुछ कहनेकी जरूरत न थी, सभीके सभी हजारों मुनि आत्महितके अभिलाषी थे स्वयं शान्त रहते थे नम्र रहते थे, किसी

परम ज्योति रागद्वेषकी कालिमासे सर्वथा रहित अपने दिव्यज्ञानसे लोकालोकको प्रकाशित करने वाला है ऐसे प्रभु जिस कायमे बसे है उस कायने भी बडा परिवर्तन कर लिया। दिव्य-काय हो गया, परमौदायिक शरीर हो गया, उनके शरीरसे प्रभा निकली, भामडल बना, उस भामण्डलके द्वारा निरुद्ध कर दिया है सूर्य चद्रकी प्रभा जिसने ऐसे वे प्रभु है। देखो कुछ तो यह बाह्य अतिशय है और अन्दरमे देखो तो एक वह प्रभा उत्पन्न है जो कि मध्यलोककी सभी ज्योतियाँ एकत्रित होकर भी उस प्रभाको नही उत्पन्न कर सकती। वह प्रभा प्रभुके पवित्र आत्मामे है, उस ज्ञानप्रकाशमे है। जिसके द्वारा समस्त लोकालोकको वे हस्त तलपर रखे हुए आँवलेकी तरह जानते हैं। जैसे आँवलेका अवलोकन बहुत अशोमे शीघ्र ही हो जाता है ऐसे ही प्रभुको लोकालोकका ज्ञान शीघ्र ही हो जाता है।

प्रभुकी शरणभूतताका संदेश——आचार्योंके वचन सुननेमे कोई बाते बडी सीधी लगती हैं, पर उनके अन्दर क्या क्या बातें छिपी है, चाहे वे आचार्य प्रयोग करते समय उतना विचार रख भी न रहे हो, किन्तु उनके सहज ही ऐसी कला है, उनका ऐसा पाडित्य है कि ऐसी शब्दरचना हो जाती है। एक बहुत सीधा शब्द है चत्तारिमगल। इसका अर्थ क्या है ? चार मगल हैं, पर चत्तारि शब्दके दो भाग करें——चत्ता (त्यक्ता) अरि। चत्ताका अर्थ है त्यागना व अरिका अर्थ है कर्म बैरी। तो अब चत्तारिके चार अर्थ करें। दूर हो गये है दुश्मन जिससे, दूर हो चुके है समस्त दुश्मन जिससे, दूर कर रहे है दुश्मनोको जो, त्यागे जाते दुश्मन जिसके द्वारा ऐसे वे मगल है। इसी प्रकार ये चार लोकोत्तम है और शरणभूत है। वे चार हैं—— अरहत, सिद्ध, साधु और धर्म। सो इससे विदित है कि प्रभुस्वरूपस्मरण हम आपको शरण-भूत है, तो जिनका वह दिव्य ज्ञान समस्त विश्वको स्पष्ट जानता है। ऐसे सर्वज्ञ परमात्माका स्मरण करो। जो शरण है, जिसका शरण ग्रहण करनेपर आत्माको शरण मिलता है, बिना राग किये, बिना भक्तोको पुकारे, बिना उन्हे अपनाये, जिनका दर्शनमात्र ही भक्तोको शरण हो जाता है।

बाह्यमे संग्रह विग्रह करके दु.खविनाश किये जानेकी असंभवता——भैया ! लोकमे क्या दुःख है, एक उस तरहकी दृष्टि बना लिया जिससे दुःखी हो रहे। किसीका धन गिर गया तो वह क्यो दुःखी हो रहा ? एक दृष्टि ही तो कर रहा जिससे दुःखी हो रहा। किसी महा-पुरुषका दर्शन हुआ, उसकी वैराग्य मुद्रा, शात मुद्राको निरखकर दृष्टि पलट जाय, लो सारे दुःख मिट गए। बतावो किसने दुःख मिटा दिया ? अरे उस पवित्र आत्माके दर्शनने ही दुःख मिटा दिया। हुआ क्या कि उस समय स्वय उसने अपनी दृष्टि बदल ली और वे सब दुःख विश्रान्त हो गए। कोई बडा दुःखी है, भला बतलावो उसका दुःख एक मिनटमे ही मिट सकता है या नही ? मिट सकता है। कैसे ? जिन कल्पनाओके आधारपर वह दुःखी हो रहा

था उन कल्पनाओंको अपनी दृष्टि बदलकर मेट दे, लो शीघ्र ही वह सारा दुःख मिट जायगा। नही तो यहाँ किस किसकी सम्हाल करके अपने दु ख मेटोगे ? एककी सम्हाल करोगे तो दूसरा बिगड जायगा, उसकी सम्हाल करोगे तो दूसरा बिगड जायगा, उसकी सम्हाल करोगे तो तीसरा बिगड जायगा। जैसे किसीसे कहा जाय कि जरा एक किलो जिन्दा मेढक तौलकर दिखा दो तो क्या वह दिखा सकता है ? नही दिखा सकता। क्योकि एक चढायेगा तराजूपर तो दूसरा उछल जायगा, ऐसे ही यहाँकी व्यवस्थायें बना बनाकर भी ये सारे सकट नही मेटे जा सकते हैं। कल्पनाओके अनुसार काम करके, श्रम करके, सकटोको मिटाना चाहे तो सारा जीवन लगा दिया जाय फिर भी सकट न मिट सकेंगे। अनेक धर्मात्मा लोगोके मुखसे सुना होगा कि हम तो केवल साल दो साल ही इन झझटोमे पडे है, फिर इन सब झझटोसे मुक्त होकर एक धर्मके कार्यमे ही लगेंगे। पर होता क्या है कि वह समय भी निकल जाता है, और भी बहुतसा समय बीत जाता है, पर जैसेके तैसे ही वे अपने आपको पाते है। तो बात क्या है ? वे अपने आत्मबलको बढाना नही चाहते, ज्ञानकी सुधि नही लेते, अपने आपके परमात्म तत्त्वकी शरण नही गहते, सो यह स्थिति हो जाती है। तो बाहरी समागमोमे रहकर उनका सग्रह विग्रह करके उससे सुखकी आशा करना यह तो जिन्दा मेढक तौलनेकी तरह है।

व्यापक शान्त दिव्यवाणीश्वर प्रभुकी शरण्यता—ऐसे प्रभु जो सर्वत्र व्यापक है, सब जगह है, ज्ञान सब जगह है ना, इनका सभक्तिस्मरण करो। ज्ञान यद्यपि सबका अपने आपके प्रदेशोमे है, पर ज्ञान जितने पदार्थोमे है उन समस्त पदार्थोमे व्यापक है। लोकाकाशके बाहर आकाश ही आकाश है किन्तु ये प्रभु अलोकाकाशमे भी जा धमके, प्रदेशोसे नही, किन्तु ज्ञान से। उनका ज्ञान अलोकको भी जानता है, उस दृष्टिसे प्रभु सर्वज्ञ है. शान्त है और दिव्यवाणी मे विशारद है। जिनकी दिव्यध्वनि कितने ही अर्थोसे भरी है, कितने ही मर्मोसे भरी है, जिसका विस्तार इतना महाशास्त्र है कि जब द्वादशागकी पूर्वोकी रचना विस्तारको सुनें तो अदाजा होता है कि यह कितना बडा अग है, यह कितना बडा पूर्व है, उनके पदोको देखें तो इतना विशाल जचता है कि जिसे कोई बोल नही सकता, पढ नही सकता। परन्तु सामर्थ्य है ऋद्धिके प्रतापसे उन ऋषिजनोमे कि इतने बडे भी द्वादशागोको अन्तर्मुहूर्तमे भी पढ़ लेते है, मनसे चिन्तन कर लेते हैं, ऐसे अलौकिक अर्थोसे भरे, दिव्यवाणीमे वे प्रभु विशारद है, ऐसे प्रभुका शरण प्राप्त हो, यही अपने आपके उद्धारकी बात है। हम आपका चित्त बस दो जगह ही तो लगना चाहिए—प्रभुके गुणोकी ओर और अपने आपमे बसे हुए उस विशुद्ध स्वरूपकी ओर। व्यवहारसे वे प्रभु शरण है, परमार्थसे अपने स्वभावका आलम्बन शरण है।

अक्षोरगगकुन्तेश सर्वाभ्युदयमन्दिरम्।
दु खार्णवपतत्सत्त्वदत्तहस्तावलम्बनम् ॥२०३०॥

संस्थानविचय धर्मध्यानकी पात्रता—प्रभुकी आज्ञानुसार तत्त्वोकी श्रद्धा करके ध्यान करता रहने वाला पुरुष, और रागादिक भाव मेरे कैसे नष्ट हो, कैसे मुझे उस आत्मतत्त्वका उपाय प्राप्त हो, ऐसे चिन्तवनसे अपने परिणामोको विशुद्ध करने वाले ज्ञानी पुरुष और कर्मोके उदयकी विचित्रताको निरखकर कर्मोदयवश होकर कैसे कैसे बडे बडे पुरुषोपर इतने उपसर्ग आये, इन सबको निरखकर अपने चित्तमे वैराग्यकी वृद्धि करने वाला पुरुष इस समस्त लोकके आकारका चिन्तन चिर-समय तक कर सकता है और तीन कालोका विचार चिर-समय तक कर सकता है; उस समय यह सस्थानविचय नामक धर्मध्यानका विशेष पात्र होता है।

पार्थिवी धारणासे संस्थानविचय ध्यानका अभ्यास—इसमे इस इस योगीने सर्वप्रथम अपने आपमे चिन्तन किया। यह मैं एक धरातलसे अछूता विराजमान हू, जम्बूद्वीपके बराबर कोई क्षीर समुद्र है, जिसके चारो ओर दुग्धवत् धवल समुद्र फैला हुआ है, उसके बीच मेरुवत् उच्च बहुत बडी कर्णिकाका एक कमल है, जो बहुत देदीप्यमान है। उसके ऊपर सिहासनके आधारपर मैं विराजमान हू, ऐसा ध्यानमे लायें कि अगल-बगल कही कुछ भी नही दिख रहा। सोचिये तो सही—ऐसी कोई कल्पना करके बैठे कि मैं ऐसे क्षीर समुद्रके बीच कमल पर विराजमान हू, बहुत ऊँचेपर विराजमान हू, ऐसा कल्पनामे आते ही कितना उसका भार दूर हो जाता है और अपनेमे हल्कापन अनुभव करने लगता है।

आग्नेयी मारुती वारुणी धारणासे रूपस्थ ध्यानका उद्यम—वहाँ पद्मासनसे विराजमान अपने आपके देहमे यो चिन्तन कर रहा है, नाभिकमल अर्थात् जहाँ नाभि है वहाँपर १६ पत्रिकाओका कमल है और हृदयपर औधा हुआ ८ पाखुडीका कमल है, ऐसे मानो हृदयपर ८ कर्मोका आवरण है सो ८ पखुडियोका कमल है जो नाभिकमलकी कातिको रोके हुए है। नाभिकमलके सोलह पत्रोपर सोलह स्वर चिन्तन करिये। स्वर तो हैं अ आ इ ई उ ऊ आदि और व्यञ्जन हैं क ख ग घ आदि। व्यञ्जन तो बिना स्वरकी सहायताके नही बोले जा सकते, और स्वरका उच्चारण बिना अन्य वर्णकी सहायताके किया ही जा सकता है। अर्द्ध व्यञ्जनका उच्चारण भी बिना स्वरकी सहायताके नही किया जा सकता। उसमे लगे हुए अन्य व्यञ्जनमे लगे हुए स्वरकी सहायता होती है, जिनका उच्चारण सीधे किया जा सकता है वे स्वर हैं। तो वे स्वर एक समस्त श्रुतज्ञानके प्रतीक है। उसके बीच कर्णिकापर एक हर्ँ शब्दका चिन्तन कर रहा है। ऐसा माना कि वहाँ तेज धुवाँ चला, फिर एक ज्वाला निकली, उसके बढनेसे ज्ञान प्रतीक वाले षोडषदल कमलपर जो अधोमुख कर्मवाला अष्टकमल आवरक था वह जल गया और वह ज्वाला सर्व ओर फैल गई। मानो यह देह भी भस्म हो गया। देहकी भी उसे सुधि न रही, और ऐसा उस समय वायुका जोर हुआ जो बडा भयकर तीव्र वेगमे हो सकता हो, वह वायु सारी भस्म उडा ले गई, ऐसे कि यह पता न पडे कि यहाँ भस्म भी है, ऐसी स्थितिमे

फिर बडी घनघोर जलवर्षा हुई। जो थोडी बहुत कालिमा बची थी वह सब साफ हो गई। अब तो रहा कुछ नही। केवल एक ज्ञानपुञ्ज रहा, ऐसी स्थितिमे यह रूपस्थ ध्यानका चिंतन चल रहा है जहाँ प्रभुका ध्यान हो रहा है।

विशुद्धहृदय हुए बिना प्रभुगुणका हृदयमें अनवतार—यहाँ यह समझने योग्य बात है कि उस प्रभुके गुणोको हृदयमे अवतरित करनेके लिए हमे अपने हृदयकी शुद्धिकी कितनी बडी तैयारी करना चाहिए? नही समझमे आता प्रभुका गुणगान, ध्यानमे मन नही लगता है उसका कारण यह है कि हमारा हृदय विशुद्ध नही है, यहाँ वहाँके राग समाये हुए है। यहाँ है किसीका कोई नही, पर राग लगाये हुए है नाता। है अत्यन्त भिन्न परिजनादिक स्त्री अथवा पुत्र अथवा कोई भी हो, पर राग बडा विकट लग बैठता है। यहाँ है किसीका कुछ नही, देखो यहाँ आये है आप लोग तो आपके साथ कुछ भी तो चिपटा हुआ नही आया। आप यहाँ भी अकेले ही हैं, पर रागका बोझ ऐसा लाद रखा है कि उतारा नही उतर पाता। बोझ भी किसीपर कुछ नही लदा है, पर कल्पनायें बनाकर अपने आपपर बहुत बडा बोझ बना लिया है। तो ये ससारी प्राणी इस बोझसे दबे चले जा रहे है जिसके कारण इनका उपयोग उठ ही नही पाता। प्रभुके गुणस्मरणकी उत्सुकता नही जगती। जरा भी यह बात चित्तमे नही आती कि यह सब है क्या? यह विषयकषायोकी गंदगी इन मोही अज्ञानी प्राणियोमे भरी है जिसके कारण ये अपने हृदयमे प्रभुको विराजमान नही कर सकते।

सस्थानविचयधर्मध्यानमे पार्थिवी, आग्नेयी, मारुती व वारुणी व तत्त्वरूपवती धारणायें है, उसके पश्चात् जब अपने आपको इतना विशुद्ध तक सकें कि वहाँ रूपस्थ ध्यान चल रहा है, तो जो अपने आपके सर्वविभावोसे सर्वसमागमोसे न्यारा केवल ज्ञानपुञ्ज निरखता है वह है प्रभुकी भक्तिका वास्तविक पात्र। तो ऐसा ज्ञानी यहाँ प्रभुके ध्यानमे गुणोका चिन्तन कर रहा है। प्रभु कैसे है कि इन्द्रियविषयरूपी सर्पके लिए गरुडकी तरह है। सर्प गरुडका बैरी होता है। जहाँ गरुड रहे वहाँ सर्प नही रह सकते है, वे सब अपने-अपने बिलोमे छिप जाया करते हैं, उन सर्पोका पता नही रहता। तो हे प्रभो! जहाँ आप हैं वहाँ इन्द्रियविषयो का कहाँ प्रवेश हो सकता है?

कविकी भाषामे एक बार कामदेव और स्त्री रति दोनो चले जा रहे थे। कामदेव कहते है कामके सस्कारको, विकारको। इस काममे देव क्यो लगा दिया? 'काम नाममे देव लगाया किसने? यह तो प्रधान उनमे हिसक है जितने।' जितने हिसक जगतमे है उन सबका प्रधान मुखिया हत्यारा यह काम विकार है। इसको लोग कामदेव कहते है। यह एक अलकार है, और उसीका, स्त्रीविषयक काम हो तो नाम रति है। तो ये रति और कामदेव दोनो घूमने चले जा रहे थे तो एक प्रभु जिनेन्द्रदेव ध्यानमे लीन विराजमान थे। तो प्रभुके बारेमे

रति और कामदेवकी बातचीत चलती है—कोऽयं नाथ जिनो भवेत्तव वशी, ऊं हूं प्रतापी प्रिये । ऊं हूं तर्हि विमुञ्च कातरमते, शौर्यावलेपक्रिया । मोहोऽनेन विनिर्जित: प्रभुरसौ तत्किंकरा के वयं, इत्येव रतिकामजल्पविषयो देवो जिनः पातु व. ॥ रति पूछती है—नाथ ! यह कौन है ? तो कामदेव कहता है कि ये जिन हैं, जिनेन्द्र हैं ।' अच्छा यह भी तुम्हारे वश है या नही ? ऊं हूं, नही हैं वशमे । ' ऊं हूं, तो हे कामदेव ! अब तू अपनी वीरताकी शानको छोड दे, अब मुझसे न कहा कर कि मैंने सारे जगतको वश कर लिया है । तो काम शिथिल होकर, अपनी गल्तीसी मानकर बहुत नम्र वचनोमे कहता है—क्या करूँ ? जिनेन्द्रने जब मोह को जीत लिया है तब हम किंकर लोग इनका क्या करें ? जब मोहभाव आता है तो कुरूप भी हो अपने घरका कोई तो भी उसके प्रति रागभाव होनेके कारण वह उसे सुन्दर जचता है, और जब उससे राग हटता है तो वह संकल्प करनेको तैयार हो जाता है कि अब तो इसका मुख देखना भी पाप है । तो इस मोहकी बडी विचित्र लीला है । हे प्रिये रति ! इन जिनेन्द्रने इस मोहको जीत लिया है फिर हम किंकर इनका क्या करे ? ऐसी बातचीत रति और काम जिसके विषयमे कर रहे हो ऐसे जिनेन्द्र प्रभु हम आप सबकी रक्षा करें । गुणियोंके गुणोका स्मरण हमारी रक्षा करता है । तो ये प्रभु विषयरूपी सर्पके लिए गरुडके समान है ।

ये प्रभुसमस्त अभ्युदयके मंदिर है, समस्त अभ्युदयके ये घर है । अरहंत प्रभुके अब कौनसा वैभव बाकी रहा ? आप कहेगे कि उनके पास मकान नही, मोटरकार नही । हाँ न हो, लेकिन ये तीनो लोकोके इन्द्र नोकरसे बनकर इनके चरणोमे जो गिर रहे हैं यह क्या उस वैभवसे कम वैभव है ? और उनके क्षुधा तृषा भी नही है तो उनके साधन क्या बनायें ? जिसके कोई फोडा फुंसी ही न हो वह मलहम पट्टी करता फिरे ऐसा भी कोई करता है क्या ? यदि कोई ऐसा करे तो उसे तो लोग बेवकूफ (पागल) कहेगे । तो जब प्रभुके क्षुधा तृषा आदिक रोग ही नही है तो उनको उनके साधन बनानेकी जरूरत ही क्या है ? तो प्रभुका कुछ कम वैभव है क्या ? अरे उनके पास बाह्य वैभव तो लोकोत्तम है ही, किन्तु अन्तरङ्ग भी असीम ज्ञानका वैभव है । यहाँ तो लोग थोडी दूर भी जायें तो कितनी ही चीजे लादकर ले जानी पडती हैं, कुछ छूट जाती है, कुछ चिन्ता उत्पन्न कर देती है, पर प्रभुका अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्दका वैभव सदा उनके साथ रहता है । तो वे प्रभु सर्व अभ्युदयोके मंदिर है ।

दु:खी प्राणियोंके लिए प्रभुका हस्तावलम्बन—प्रभु दु खरूपी समुद्रमे गिरने वाले प्राणियोको हस्तावलम्बन देने वाले है । अब भी बहुतसे समझदार लोग जब किसी बातसे दुःखी हो जाते है तो देवालयमे प्रभुके समक्ष बैठकर उनका स्तवन करनेमे रत हो जाते हैं, ऐसी श्रद्धा वाले लोग अब भी देखे जाते है । जिस समय उनके गुणोंके स्मरणमे उपयोग है उस समय तो उनको शान्ति है, निराकुलता है । जो पुरुष अनेक कल्पनाओंसे व्याप्त है, जिस

पर कुछ सकट छाये है ऐसे पुरुपको आप कहाँ बैठलवा देंगे कि उसको शान्ति मिले ? जहाँ बैठालोगे वही और कुछ न होगा अधिकसे अधिक कृपा होगी तो कोई उसको सहानुभूति प्रकट कर देगा—हाय बडा दु ख है, कैसा था अमुक और छोडकर चला गया। ये बेचारे यहाँ रह गए। बाहरी सहानुभूति, न भी कुछ ख्याल आता हो तो ख्याल कराकर लोग उसके दु खको कहो और भी बढ़ा दे, तो उस दु खी पुरुपको आप कहाँ बैठालोगे, जगह तो बतावो ? वह स्थान है प्रभुके चरणोका अथवा ज्ञानी गुरु सतोंके चरणोका स्थान है। इसके सिवाय अन्यत्र कहाँ बैठावोगे जो उसे शान्ति मिले ? ये प्रभु तो सर्वोत्कृष्ट हैं। दु:खसमुद्रमे गिरने वाले प्राणियोको हस्तावलवन देने वाले हैं। वे प्रभु हम आपसे कुछ भी नही बोलते, फिर भी उनका बडा सहारा है, उनके गुणस्मरण कर हम आप भी अपने आप ही गद्गद हो जाते है।

मृगेन्द्रविष्टरारूढ मारमातङ्गघातकम्।
इन्दुत्रयसमोद्दामच्छत्रत्रयविराजितम् ॥२०३१॥

प्रभुका मूलरूप—यह प्रभु सिहासनपर आरूढ है। प्रभुका ध्यान करनेके लिए कुछ आकार प्रकारकी कल्पनाएँ आ जाना स्वाभाविक बात है। प्रभुको रूपस्थध्यानमे लानेके लिये हम कहाँ चित्त ले जायें ? तो समवशरणमे चलिये, उसके बीच गधकुटी है, उसपर सिहासन है। उस सिहासनपर विराजमान है ये प्रभु। सिहासन नाम है श्रेष्ठ आसनका। यहाँ सिहका अर्थ उस हिंसक महापातवी सिंहसे नही लेना है, किन्तु सिहका अर्थ श्रेष्ठसे लेना है। अब वह श्रेष्ठ आसन कैसा है ? चमकती हुई मणिरत्नोसे खचित बडे सुन्दर आकारका वह श्रेष्ठ आसन है उसे सिहासन बोलते है, उसपर आरूढ है, यो निरखो प्रभुको। वे प्रभु कामहस्तीके घात करने वाले हैं। अथवा कामरूप चाण्डालके वे घातक हैं, पूर्ण निष्काम है, और जिनके ऊपर चद्रमा के समान तीन छत्र विराज रहे, जो दुनियामे यह भासित कर रहे है कि ये प्रभु तीन लोकके अधिपति है। यहाँ सोचा जा रहा है प्रभुका स्वरूप। कही धोती लगोटी पहिने हो, चद्दर लटकाये हुए यहाँ वहाँ आता जाता हो, घर घर फिरता हो, भक्तोसे कुछ पूछता हो, यह स्वरूप प्रभुका नही है। आकाशमे सिहासनपर आरूढ है, तीन छत्र जिनके सिरपर शोभायमान हो रहे है, जो सर्वसे विरक्त निष्काम हैं। फिर भी जो कोई लोग उन प्रभुकी भक्तिमे रहते हैं वे सब कुछ प्राप्त कर लेते हैं और जो उनकी भक्तिसे विमुख रहते हैं वे इन दु खोमे ही पडे रहते है। इस प्रकार प्रभुके स्वरूपका यह ध्यान कर रहा है।

हसालीपात लीलाढ्यचामरव्रजवीजितम्।
वीततृष्ण जगन्नाथ वरद विश्वरूपिणम् ॥२०३२॥

मूर्त कायमें विराजमान प्रभु के आन्तरिक गुणोका स्मरण—सिहासनपर आरूढ तीन छत्र जिसके सिरपर शोभायमान है और जिसके चारो ओर यक्ष चमर ढोल रहे है, ऐसे मुद्रा

मण्डलमे विराजमान प्रभुके गुणोका स्मरण करो। वे चमर बडे स्वच्छ है और वे दुनियाको यह बता रहे है कि देखो जैसे कि हम भगवानके चरणोमे गिरते है तो हम बहुत जल्दी उत्थान कर लेते है, चमर ढोले जाते है ना, इसी प्रकार तो वे चमर दुनियाको यह बताते है कि जो भगवानके चरणोमे आयगा उसका उद्धार होगा, वह ऊँचे बढेगा। इस प्रकार दुनियाको प्रभु शासनका उपदेश देते हुए ये शुद्ध चमर प्रभुके अगल-बगल ढोले जा रहे है। उन चमरोंके बीच वे प्रभु शोभायमान है जिनके कोई तृष्णा नही रही, जगतके जो स्वामी है, जो कुछ भी जो चाहता है उस सबके वे देनहार है। देते वे किसीको कुछ नही है पर उनकी जो भक्ति करता है उसके पुण्यरस बढता है और स्वय ही उसके समस्त रस सिद्ध होते है। वे प्रभु विश्वरूपी हैं और अपने आपके प्रदेशोंमे विराजमान हैं, लेकिन उनका ज्ञान देखिये तो कितने आकारोसे चित्रित है, जितना कि सारा विश्व है वह सब उनके ज्ञानमे ज्ञेयाकार है तो वे विश्वरूपी बन गए है। ऐसे प्रभुका यहाँ ज्ञानी भक्त रूपस्थध्यानमे ध्यान कर रहा है।

दिव्यपुष्पानकाशोकराजित रागवर्जितम्।
प्रातिहार्यमहालक्ष्मीलक्षित परमेश्वरम् ॥२०३३॥

प्रभुके निकट दिव्यपुष्पवर्षा व दुंदुभिनादका अभिचार—सर्व सकल्प विकल्परूपी सकटोसे मुक्त हुआ परमात्मा कहाँ विराजमान रहता है, किस प्रकार रहता है? उसका कुछ वर्णन इस प्रसगमे चल रहा है। ये भगवान कुछ ऊपर आकाशमे विराजमान रहते हैं, जहाँ देवेन्द्रोंके द्वारा बडी भारी शोभा बनायी जाती है और वहाँ दिव्य पुष्पोकी वर्षा देव लोग किया करते है। फूलोको जो लोग बरसाते है तो किस तरह बरसाते है? फूलके ऊपर जो बन्धन होता है जिसमे फूल लगता है, वह फूल बरसाते समय पहिले तो ऊपर रहता है, फूल नीचे रहता है, किन्तु ऊपरसे नीचे आने तक वह फूलका बन्धन नीचे हो जाता और फूलका विकास ऊपर हो जाता। तो यह फूल जब भगवानके चरणोंके निकट गिरा तो फूलके बन्धन नीचे हो गए। ये गिरते हुए फूल लोगोको यह शिक्षा दे रहे है कि जो भगवानके चरणोके निकट आयगा उसके बन्धन नीचे हो जायेंगे, शिथिल हो जायेंगे, टूट जायेंगे। ऐसी शिक्षा देते हुए फूल जहाँ बरस रहे है ऐसे प्रभुके स्थानपर समय-समयपर दुदुभिकी ध्वनि निकलती है। ढोल से भी बहुत बडी ध्वनि वाली वह दुदुभि है जिसमे बडी गम्भीर ध्वनि निकलती है। जैसे कि कही कही मदिरके दरवाजेपर नगाडे रखे होते है, उन नगाडोकी ध्वनिसे भी अधिक व्यापक व गम्भीर ध्वनि उन दुदुभियोकी होती है। तो वे दुदुभि बजकर लोगोको यह सम्बोध रही है कि अरे ससारके दु:खी प्राणियो! तुम कहाँ भटक रहे हो? समस्त क्लेश जहाँ दूर हो सकते हैं, जहाँ आत्माकी अनुपम लक्ष्मी प्रकट हो सकती है वे प्रभु जहाँ विराजे है, वहाँपर यहाँ आवो, यहाँ आवो—इस प्रकारका सम्बोधन करते हुए मानो वह दुदुभि बज रही है।

दिव्य अशोक तरुके निकट विराजमान वीतराग परमेश्वरका ध्यान—जहाँपर वे प्रभु विराजे है वहाँ बहुत सुन्दर अशोक वृक्ष होते है। यहाँ ही अशोक वृक्षोके निकट पहुचते ही उपयोग बदल जाता है, मन बहल जाता है तो फिर जिन अशोक वृक्षोके पास प्रभु विराजे है वहाँ की महिमाका तो कहना ही क्या है? जो प्रभु अशोक वृक्षोके निकट विराजे है उनके चरणोके निकट जो आयगा वह अशोक बन जायगा। वे प्रभु वीतराग है। जैसे बच्चे लोग कहानी सुनाते है तो दूसरे बच्चे हूका देते है। उसमे उन हूका देने वालोके राग सिद्ध होता है, पर वे प्रभु किसीकी भी बात नही सुनते, किसीसे बोलते भी नही, इससे उनमे राग नही है, वे तो अपने ज्ञानानदमे विराजमान होते है। हाँ जो कभी प्रश्न करता है प्रभुकी एक दिव्य-ध्वनि सुनकर अपने आप शकाका समाधान पा जाता है, अथवा वहा विराजे जो उच्च गणेश है, उन गणेशोसे वह अपनी शकाका समाधान कर लेता है। प्रभ वीतराग है ऐसे प्रतिहार्य महालक्ष्मीसे शोभानमान परमेश्वरका वन्दन कीजिए। वे परमेश्वर है। जिसे लोग अपना रक्षक समझते है उसे ही तो ईश्वर मानते हैं। ये प्रभु ससारके सर्वजीवोके रक्षक है। यह परमात्मा प्रभु अरहतदेव परमईश्वर है। परम कहते है—उत्कृष्टको। जहाँ उत्कृष्ट लक्ष्मी अर्थात् ज्ञान विराजमान हो उसे परम कहते हैं और जो परम अर्थात् उत्कृष्ट ज्ञान सम्पन्न आत्मा है उसे परमात्मा कहते है। ऐसे उन परमेश्वरका ध्यान करो। यह रूपस्थ ध्यानमे ध्यानी अपने लिए चिन्तन कर रहा है।

नवकेवललब्धिश्रीसभव स्वात्मसभवम्।
तुर्यध्यानमहावह्नौ हुतकर्मेन्धनोत्करम् ॥२०३४॥

स्वतःसिद्ध, परमश्रीशोभित निष्कलङ्क प्रभुका ध्यान—प्रभु केवल लब्धियोकी श्री की उत्पत्तिके स्रोत है। प्रभुका ज्ञान समस्त लोकालोकका जाननहार है और उस समस्त लोकालोकके जाननहार आत्माको जो झलकमे लिए रहते है ऐसे प्रभुके निर्मल सम्यक्त्व उत्पन्न हुआ है, उस सम्यक्त्वका कभी विनाश न होगा। वे प्रभु आत्मामे लीन हो चुके हैं, एक रस निष्काम हो चुके है ऐसे वे सदा काल रहेगे, तभी तो भक्तजनोके वे आदर्श कहलाते है। कितना महादान है प्रभुका। जो पुरुष उनका स्मरण करते है उनको सर्व सुख समृद्धिया प्राप्त होती है। लाभ भोग उपभोग समस्त उन्हे अपने आपमें उत्कृष्ट हैं, ऐसे अनन्त शक्तिमान प्रभु है और उन प्रभुसे इन सब गुणोकी उत्पत्ति हुई है। अच्छा बतावो—कहाँसे उत्पन्न हुए ये प्रभु? अच्छा, यह बतावो कि किसी पाषाणका टुकडा है और कारीगरको उसमेसे कोई प्रतिमा बनानी है तो कारीगरने उस प्रतिमाको कहाँसे बनाया है? कौनसी चीज लाकर जोडा? कारीगरने तो उस प्रतिबिम्बको ढाकने वाले जो अगल-बगलके पाषण थे उनको दूर किया। प्रतिबिम्ब जो वहाँ विराजमान था, प्रकट हो गया। प्रतिबिम्ब रूपमे तो न था विराजमान,

पर जो भगवान प्रतिमाके प्रकट हुए हैं वे सब वहाँ थे या नहीं। तो जैसे वह प्रतिबिम्ब अपने आपमें उत्पन्न है इसी प्रकार वह भगवान भी जो निर्दोष चैतन्यके परमविकास हैं, वे अपने आपमें उत्पन्न हुए हैं। किसी दूसरेसे कुछ आया नहीं है। शुक्लध्यान रूपी महान अग्निमें ये कर्मईंधन भस्म हो जाया करते हैं। एतदर्थ ध्यान क्या था उनके ? अपना जो एक विशुद्ध स्वरूप है उस स्वरूपका आश्रय किया था उन्होंने। यह ध्यान था उनका उत्कृष्ट। जहाँ पापकी तो बात क्या, पुण्यकी भी जहाँ प्रवृत्ति नहीं है ऐसे परमध्यानके द्वारा उन्होंने कर्मईंधनको जला डाला। ऐसे प्रभुका यह ज्ञानी सम्यग्दृष्टि पुरुष ध्यान करता है।

रत्नत्रयसुधास्यन्दमन्दीकृतभवश्रमम्।
वीतराग जितद्वैत शिव शान्त सनातनम् ॥२०३५॥

परम तीन रत्न—रत्नत्रयकी मूर्तिरूप अमृतके स्यदनसे, उस अमृतकी धाराके स्वादसे जिसने भवके श्रमको मद कर दिया है ऐसे वे प्रभु हैं। तो रत्नत्रय क्या चीज है ? आत्माकी सच्ची श्रद्धा एक रत्न, आत्माका शुद्ध ज्ञान दूसरा रत्न और आत्मामें रमण करना, मग्न होना यह तीसरा रत्न। रत्न नाम काहेका ? सारका। सारको भी रत्न कहते हैं। यहाँ रत्नत्रयका सारमय रत्न लेना, कहीं पत्थरके हीरा, जवाहरात रत्नकी बात न लेना। इनका नाम रत्न कैसे पडा ? तो रत्न तो यह ही कहलाता था, जो सारभूत हो उसे रत्नत्रय कहते हैं, यही रत्न कहा जाता रहा, पश्चात् इस श्रद्धान ज्ञान और चारित्र रत्नत्रयको तो लोग भूल गये पर रत्न शब्दको न भूले। तो जो उन्हें सार लगा ससारमें उसका नाम रख दिया रत्न। लेकिन यह रत्न सार है कहाँ ? जहाँ भी ये रत्न पाषाण जाते वहाँ ही मनुष्योंके चित्तको मलिन कर देते।

दो भाई थे। वे परदेश गये धन कमाने। खूब धन कमाया। और जब घर आने लगे तो करीब एक एक लाखके दो रत्न खरीद लिए। रत्न बडे भाईके हाथमें थे। समुद्रका रास्ता था। जब नौकामें बैठे तो बडा भाई सोचता है कि सारा परिश्रम तो मैंने किया, घर जाकर एक रत्न भाईको भी देना पडेगा, सो यहाँ एक धक्केका ही तो काम है, समुद्रमें गिर जायगा फिर तो ये दोनों रत्न हमीको मिल जायेंगे। फिर वह झट सम्हला, अरे क्या मैंने अनर्थका काम सोच डाला, उसने अपने छोटे भाईसे कहा कि हम तो ये रत्न अपने पास न रखेंगे, इन्हें तुम अपने पास रख लो। जब छोटे भाईने अपने पास रख लिया तो उसने भी वही बात सोची जो बडे भाईने सोचा था। उसने भी उन्हें अपने पास रखनेसे इन्कार कर दिया। खैर, किसी तरह घर पहुंचे तो मा को वे दोनों रत्न दे दिये। अब माँ सोचती है कि इन रत्नोंको तो ये लडके हमसे छुडा लेंगे, हैं ये बडे कीमती हैं, सो ऐसा करें कि भोजनके साथ जहर मिलाकर इन्हें खिला दे, ये मर जावेंगे तो ये दोनों रत्न हमें मिल जायेंगे। फिर वह मा सम्हलती है और

विचार कहती है—ओह ! मैने यह क्या सोच डाला, उसने भी अपने पास उन रत्नोका रखना स्वीकार नहीं किया। बादमे दोनो भाइयोंने उन रत्नोको बहिनके पास रखवा दिया। अब बहिनके मनमे भी वैसा ही खोटा विचार आया। बादमे वह बहिन भी सम्हली, उसने भी उन रत्नोको अपने पास रखना स्वीकार नही किया। चारोने अपने मनमे आयी हुई बात रखी, बादमे सबने यही सलाह की कि इन रत्नोको समुद्रमे फेंक दिया जाय, इस अमीरीसे तो वह गरीबी ही भली है। उन्होने वैसा ही किया तब शान्ति मिली। तो इन पाषाण रत्नोको लोग विपरीत बुद्धिके कारण रत्न कहने लगे, रत्न तो दर्शन ज्ञान और चारित्रको कहते है, जिसमे आत्माको बडा सन्तोष होता है, जहाँ आकुलताका लेश नही रहता ऐसे आत्मदर्शन, आत्मज्ञान और आत्मामे मग्न होना यही है सार। इस कर्तव्यके बलसे प्रभुने कर्मईंधन नष्ट किया और सारे ससारके खेदको दूर कर दिया।

ये प्रभु नि.सग है, वैसे हो किसी भी चीजका सग। दूसरी कोई वस्तु उनसे छुई हुई नही है। केवल ज्ञानपुञ्ज है, रागद्वेषका भी सग नही है, कर्मोका भी सग नही है, ऐसे प्रभु असग है। उनके कोई बाह्य परिग्रह तो है ही नही, और देखो तो कितना वैभव है प्रभुके निकट ? कैसा सिंहासन, कैसे चमर, कैसी शोभा, बडा वैभव। वे प्रभु उस वैभवके बीच सिंहासनसे ४ अगुल ऊपर विराजे है, वे प्रभु इस वैभवसे अछूते है। प्रभु तो उस वैभवको छूते भी नही है। वह वैभव मानो प्रभुको छूनेके लिए ऊपरसे गिर रहा है। तीन जो छत्र प्रभुपर ढोले जा रहे है वे मानो लक्ष्मी रूप है जो कि प्रभुको छूनेके लिए गिरे, पर ऊपर ही अटक गए, प्रभुको छू न सके, ऐसे नि सग है वे प्रभु। जिन्होने द्वैतके विकल्पोको जीत डाला है ऐसे शिव शान्त प्रभुका ध्यान भक्तजन करते है।

प्रभुचर्चाकी उमंग—आप सोचते होगे कि यह चर्चा बहुत दिनोसे चली आ रही है, अब तो इसमे रुचि नही रही। तो ठीक है, आप बडी अच्छी बात सोचते है। जो बात पुरानी हो जाय, बहुत दिनोकी हो जाय उसमे प्रीति न करना चाहिए, उसमे रुचि भी न जगना चाहिए। यदि पुरानी बात जानकर कोई रुचि हटा रहा हो तो हम तो उसकी तारीफ करेंगे, समर्थन करेंगे कि तुम बहुत अच्छा कर रहे हो। मगर जो बहुत पुरानी चीज है यह शरीर और उससे भी पुराना है यह कर्मजाल, कर्मफल परपरा, जो कार्माण रूपमे अनादिसे परम्परा से चल रहा है। उससे रुचि हट जाय, अच्छी बात होगी, वह तो वदनीय होगा। ऐसा भाव बनता है कि पुरानी बातमे प्रीति न करना चाहिए, यह तो उत्तम है, पर इस बातपर अमल आ जाय तो बहुत बढिया बात होगी। इस चर्चाके प्रसगमे यह भी तो ध्यानमे लायें कि हम रोज-रोज कितने अपराध करते है, कितना विषय कषायोमे रत रहते है, कितनी परिणामोमे मलिनता रखते है, तो उसकी औषधि तो ये प्रभु भगवान हैं। यदि रोज-रोज मलिनताके

परिणाम रखते है तो यह प्रभुभक्तिकी ही औषधि हमे रोज चाहिये या नही ? तो इसमे अरुचि करनेका कोई प्रसग नही है । हम जिस किसी भी प्रकार उस ज्ञानपुञ्ज प्रभुस्वरूपको निरखे या अपने आपमे बसे हुए उस विशुद्ध ज्ञानस्वरूपको निरखें, बस करनेके लिए, उद्धारके लिए काम तो यही पडा है । जिस प्रकारसे बन सके ये ही तो दो काम किए जाने है ।

अर्हन्तमजमव्यक्त कामद कामनाशकम् ।
पुराणपुरुष देव देवदेव जिनेश्वरम् ।।२०३६।।

प्रभुकी अजस्वरूपता—वे प्रभु अज हैं, किसीसे जन्मे नही है, स्वयभू है । अज तो हम आप भी है, किसीसे जन्मे नही है । जितने भी पदार्थ है वे सब पदार्थ अज हैं । लेकिन हमारी तो यहा गप्प ही गप्प है और प्रभुमे चूंकि वह विशुद्ध पर्याय प्रकट हो गई है, इसलिए वहाँ अजकी तारीफ की जा रही है । वे प्रभु धन्य है जो इस धर्मकी बातपर चलनेका, इसे अमलमे लानेका प्रयत्न करते हैं, और जिन्हे आत्मकल्याणकी भावना दृढतासे हो गई वे ऐसा करते ही हैं । घरमे रहकर भी वे उदासीन चित्तसे काम करते है । जरा-जरासी देरमे गुरुवोके सगमे रहना, गुरुके निकट पहुचना, पूजन आदिकमे लगना, यही बाते उसके चित्तमे रहती हैं । ज्ञानी पुरुषोके कार्योंको देखकर अज्ञानी अचरज करते है, सो ठीक ही है । उन्हे अपना बदला तो चुकाना ही चाहिए, क्योकि ज्ञानियोको भी तो अज्ञानियोंके कार्योंको देखकर अचरज होता है । वेदान्तकी टीकामे एक दृष्टान्त दिया है—एक पुरुष गुरुके पास पहुचा, बोला—महाराज ! मुझे आत्माका ज्ञान दे दीजिए । गुरुने कहा—जावो उस नदीके किनारेपर मगर रहता है, उससे आत्माका ज्ञान लेना, वह बहुत ज्ञानी है । पहुचा वह उस मगरके पास । तो कहा—हे मगरराज ! मुझे आत्मज्ञान दीजिए । तो मगर बोला—ठहरो ठहरो भाई, तुम्हे हम अभी ज्ञान देंगे । मैं बहुत प्यासा हू, तुम्हारे पास लोटा डोर है, तुम उस कुवेंसे जल भर लावो, मैं अपनी प्यास पहिले बुझा लू फिर तुम्हे आत्माका ज्ञान दूंगा । तो इस बातको सुनकर वह पुरुष बोला—अरे मुझे तो गुरुने आपको समझदार समझकर आपके पास भेजा था, पर आप तो बडे मूढ हो । अरे आप स्वय अथाह जलमे डूबे हुए है और फिर भी कहते हैं कि मुझे उस कुवेंसे एक लोटा जल भरकर ला दो, उसे पीकर हम अपनी प्यास बुझावें । तो मगर बोला—बस ऐसी ही मूढता तो तुम्हारी है । तुम स्वय ज्ञानस्वरूप हो, अथाह ज्ञानमे डूबे हुए हो, फिर भी ज्ञानकी भीख मागते हो ।

अपनेमे अजस्वरूपकी खोज—अहा कितना सुगम है निज आत्मतत्त्व, पर उसे ये मोही नही जान पा रहे । ये मोही जीव कैसे भ्रममे पडे हुए हैं कि ये अपने आपके स्वरूपको नही निरख पाते । तो अपना ही स्वरूप जब अपनी दृष्टिसे ओझल है तो हम कहा अज है ? कल्पना तो किए हुए हैं कि हमने जन्म लिया, अब हम मरण करेंगे । मरनेकी बात कुछ

समझमे आ जाय, शरीरके सुन्न-सा हो जाय तो दिल कापने लगता है, घबडाने लगते है—ओह कही मेरा मरण न हो जाय ? तो फिर कहाँ अज रहे ? वह तो इस देहमे दृष्टि रखकर इस बातसे घबडा जाता है कि कही मेरा मरण न हो जाय, जिसके चित्तमे ऐसी बात आ रही हो कि लो यह तो मै पूरा ज्ञानमय पुञ्ज ही हू । यहाँसे जहाँ जाऊँगा वही रहूगा, मेरा तो कुछ छूटता ही नही है । जो मेरा स्वरूप है, मेरा धन है वह सबका सब मेरे साथ जायगा । यहाँ दु:ख किस बातका ? ऐसी बात आती है तो समझो कि हम अज है ।

अव्यक्त, कामद, कामनाशक प्रभुका ध्यान—ये प्रभु अव्यक्त है, किसी अन्य पुरुषके लिए व्यक्त नही है । कामद है अर्थात् भक्ति करने वाले पुरुष जो कुछ चाहते है उन सबकी सिद्धि होती है । भक्तिमे पुण्यरस बढता है, पापरस घटता है, उससे सब चाही हुई बातें प्राप्त हो जाती है और शुद्ध भक्तिमे सर्व अभीष्ट शात हो जाते है, प्रभु वहाँ कुछ देते नही । यह सब अपने आपके ही प्रभुका झुकाव है । ये प्रभु कामनाशक है, कामविकारके ही विनाशक क्या, सभी विकारोंके विनाशक है । यह काम तो जितने हिसक है उन सबमे प्रधान हिंसक है । यह काम मुझे इस तत्त्वज्ञानरूपी समुद्रसे निकालकर बाहर फेक देता है । ढीमर लोग क्या करते है ? समुद्रसे मछली बाहर निकालकर फेंक देते है । तो यह काम ढीमरसे भी अधिक हिसक है । इसी प्रकारसे यह कामविकार हमे इस तत्त्वज्ञानरूपी समुद्रसे निकालकर बाहर फेंक देता है । और वे हिंसक मछलियोको भाडमे भून दें तो यहाँ यह काम सतापमय है जिससे तृप्त होकर इसे कुछ सुध बुध भी नही रहती । ऐसे सतापमे फेंक दे, ऐसे भी विकट कामविकारको ये नष्ट करने वाले हैं । जब सीताका चित्र नारदने भामण्डलके आगे डाल दिया, भामडल भाई था सीताका, पर उसे पता न था, जन्मसे ही वह बाहर गया था । यह तो विद्याधरोके यहाँ पले थे, पर चित्रको निरखकर भामण्डल इतना बेसुध हो गया कि भूख प्यास की भी परवाह नही, पागलसा फिरने लगा । आखिर अभिभावकोको विवश होकर इतना तक कहना पडा कि जावो तुम सीताके पास और उससे विवाह करो । वह जब चला इस लक्ष्यको लेकर और जब वह किसी पूर्वभवके स्थानपर पहुचा तो एकदम स्मरण हो गया, अहो वह तो पवित्र आत्मा मेरी बहिन है, सो ही विरक्त हो जाता है । पर एक बात यह तो देखो कि ऐसे ऐसे पवित्र आत्मावोको भी इस कामने विह्वल कर दिया । ऐसा यह प्रधान विकारी है । उस कामविकारके भी नष्ट करने वाले ये प्रभु है । किया नष्ट पहिले तब यह प्रभुता उन्होने पायी । ऐसे पुराणपुरुष देवाधिदेव रागद्वेष जीतने वाले उस सर्वप्रमुख ऐसे भगवानको, परमात्माको हमारा बदन हो । बारबार यह ज्ञानी उस शुद्ध आत्मापर दृष्टि देता है जो ससारके सकटोसे परे है । रूपस्थध्यानमे इस ही पवित्र रूपका, ज्ञानरूपका ध्यान किया जा रहा है ।

विश्वनेत्र जगद्वन्द्य योगिनाथ महेश्वरम् ।
ज्योतिर्मयमनाद्यनन्त त्रातार भुवनेश्वरम् ॥२०३७॥

विश्वनेत्र जगद्वन्द्य प्रभुकी उपासना—ससारके समस्त क्लेशोसे पार हो जाने वाले परमात्म प्रभु समस्त विश्वके नेत्र हैं अर्थात् यह जगत उनके स्वरूपके दर्शनसे अपनी शिवयात्रा को कर लेता है अर्थात् अशान्तिसे हटकर शान्तिके पदमे पहुच जाता है, अतएव वह प्रभु समस्त जगतकी आँख है। जैसे कोई अधा पुरुष किसी बालकके साथ पैदल चले तो वह कहता है कि मेरी आँख तो यह बालक है, स्वय इतना आसक्त है कि चल नही सकता। उसे जो दिशा बतलाने लगे वही उसका नेत्र है, इसी प्रकार यह विश्व जो अनेक सकटोसे फसा हुआ है इसकी इस असार बुद्धिको निखारनेमे कारण प्रभुकी वाणी है। यदि वस्तुस्वरूपका निर्णय न हो पाता जो कि प्रभुकी दिव्यध्वनिकी परम्पराकी देन है, तो निर्णय बिना ये प्राणी कहाँ अविनश्वर आनन्दमय आत्मस्वभावकी ओर लग पाते। तो प्रभु विश्वनेत्र हैं और समस्त जगतके द्वारा वदनीय हैं। तीनो लोकके प्राणी, वही हुआ जगत। उस समस्त जगतके द्वारा वदनीय है। जब देव लोकके देवेन्द्रोंने आकर प्रभुकी वदना की तो उसमे सारा देवलोक आ गया। जब मनुष्योंके इन्द्र चक्रवर्तियोने प्रभुकी वन्दना की तो उसमे सारा मनुष्यलोक आ गया, इसी प्रकार जब तिर्यञ्चोंके इन्द्रने प्रभुकी वन्दना की तो उसमे सारे तिर्यञ्च भी आ गए। जब अधोलोकके इन्द्र भवनेन्द्र व्यतरेन्द्रोंने वदना की तो पातालवासी आ गये। यो तीनो लोकोंके द्वारा ये प्रभु वदनीय हैं। जैसे किसी देशमे राष्ट्रपतिका चुनाव जनता द्वारा नही किया जाता, किन्तु जनता द्वारा भेजे गए जो सदस्य हैं वे राष्ट्रपतिका चुनाव करते है। तो उन सदस्यो द्वारा चुना हुआ राष्ट्रपति जनता द्वारा चुना हुआ माना जाता है, इसी प्रकार जब तीनो लोकके इन्द्रोने प्रभुकी वन्दना की तो उसमे तीनो लोकोंके समस्त प्राणी आ गए। तो ये प्रभु समस्त जगतके द्वारा वन्दनीय है।

योगिनाथ, महेश्वर प्रभुकी उपासना—ये प्रभु योगियोके नाथ हैं, आत्मकल्याणके चाहने वाले लोग योगसाधना करते हैं और इस योगके अधिकारी योगी जनोके ये प्रभु आदर्श हैं। उनका ही ध्यान करके उनके बताये हुए उस ज्ञानपथपर चलकर, उस ज्ञानदृष्टिका आनन्द पा पाकर ये योगी पुरुष आत्मकल्याण करते है। ये योगियोंके नाथ हैं। समस्त ऋषियोमे सबसे बडे ऋषिनाथ अप्रकम्प अद्भुत केवलज्ञानीको बताया गया है, सो उन ऋषियोंके भी ये नाथ हैं, और लोकमे ये महेश्वर है, महान ईश्वर हैं। जिसको अपने किसी कामके लिए दूसरे की अपेक्षा न करनी पडती हो वह ईश्वर कहलाता है। प्रभुका काम क्या ? निरन्तर विशुद्ध ज्ञानरूप परिणमन और निराकुलता रूप परम आनन्दका स्वाद लेते रहना। बस यही काम एक सर्वोत्कृष्ट काम है। तो उस कार्यके लिए प्रभुको किसी दूसरेकी अपेक्षा नही करनी पडती

है। सासारिक सुख तो कर्माधीन है, विनाशीक सत् है, इनके बीचमे तो अनेक दुःख भरे पडे हुए है और ये दुःखके मूल है, पापके कारण है। ऐसे इन सासारिक सुखोसे क्या बडप्पन है ? प्रभुका आनन्द कैसा है ? जिसमे कोई आकुलता नही, कोई क्षोभ नही, और परम आल्हादमय है, ऐसे आनन्दको प्रभुने अपने ही द्वारा अपनेमे, अपनेसे, अपने लिए और अपने ही उस अभिन्न परिणमनसे किया, उसमे किसी परकी अपेक्षा नही है, अतएव ये प्रभु महेश्वर है, ज्योतिर्मय है।

अनाद्यनन्तत्वकी प्रभु उपासना—देखिये हम प्रभुको किस शकलमे निरखें जो हमे प्रभुके दर्शन हो ? हम हाथ पैरके रूपमे देखते है तो प्रभुके दर्शन नही होते। समवशरणमे भी जो लोग प्रभुकी हाथ पैर मुद्राको देखते है वे प्रभुके दर्शनको नही पहुचते है। वहाँ पर जो ज्ञानज्योतिर्मय रूपसे उनका चिन्तन करता है वही प्रभुदर्शन करता है। वह प्रभु केवलज्ञानपुञ्ज है, विशुद्ध आत्मा है, ज्ञानज्योतिर्मय है। प्रभु अनादि है। न उन प्रभुकी कोई आदि है और न अन्त है। यहाँ पर तो जैसे किसीसे झगड़ा शुरू हो गया तो कहते कि देखो अभी झगडेकी आदि थी, अब झगडेका अन्त हो गया। ऐसे ही यहाँ की सभी बातोमे आदि बताते हैं और अन्त बताते है, पर प्रभुका जो परिणमन है उसकी हम आदि क्या बतावें और अन्त क्या बतावें ? यद्यपि हम आदि बता सकते है कि जबसे कर्मक्षय हुए है प्रभु मुक्त हुए है तबसे उनके आनन्दकी आदि है किन्तु यहाँ तो बहुत लम्बा बताया और जो अनन्तकाल पहिले सिद्ध हुए है अबसे उनकी आदिकी कल्पना कौन कर सकता है ? यो भी वे आदि अन्त रहित है और परम्परा दृष्टिसे देखो तो यह प्रभुता अनादिसे है और अनन्तकाल तक है। पर जो उनका वर्तमान विशुद्ध परिणमन है उस परिणमनपर दृष्टि दें तो वहाँ क्या आदि अन्तकी कल्पना है ? जो चीज एक समान है उसमे हम कहाँसे आदि और कहाँ अन्त खोजें ? जैसे एक गोल शून्य है ० उसमे कहाँ तो आदि है और कहाँ अन्त है ? इसी प्रकार जो वर्तमान परिणमन विशुद्ध चलता है प्रभुके, हम उसमे आदि क्या खोजें ? आदि तो नये कामका खोजा जाता है। ये प्रभु अनादि अनन्त है और परम्परासे अनादि अनन्त है।

विश्वरक्षक प्रभुकी उपासना—ये प्रभु सबके रक्षक हैं। जब किसी के कोई चिंता, शोक, सकट आदि होते है तो वह प्रभुके निकट पहुचता है और प्रभुकी विनती स्तवन करके वह अपने बोझको कम करता है और वहाँ शान्ति प्राप्त होती है, पापरस घटता है, पुण्यरस की वृद्धि होती है, रक्षा होती है। एक मनुष्य अपने घरमे प्रभुकी मूर्ति विराजमान कर रोज उपासना, आरती किया करता था। यो उसके बीस वर्ष गुजर गए। वह बडा धनाढ्य भी हो गया। एक बार चार चोरोंने सोचा कि उसका धन लूटना चाहिए और जान भी लेना चाहिए। जब उसके घर चोरी करने पहुचे तो उस पुरुषको चोरोंने पकड लिया और कहा कि

हम लोग चोर है, तुम्हारे पास जितना धन है वह सब लेंगे और तुम्हारी जान भी लेंगे। तो उसने कहा कि ठीक है यह सब धन भी ले जावो, और जान भी हाजिर है, किन्तु एक प्रार्थना है कि हमने इस प्रभुमूर्तिको २० वर्षोंसे पूजा है, अब हमारा अन्त समय आया है, हमे थोड़ा अवकाश दीजिए कि हम इस मूर्तिको विधिपूर्वक इस पासकी नदीमे सिरा दें। उन चोरोंने विचार किया कि क्या हर्ज है। दो आदमी साथ चले जायेंगे, यह मूर्तिको सिरा देगा, इसे फिर साथ लिए आयेंगे। फिर धन जान तो लेना ही है। सो ले गये नदीके पास। जब मूर्ति को वह पुरुष सिराता है तो क्या कहता है कि हे प्रभो! मुझे जान जानेकी फिक्र नही है, जान जावे, पर एक इस बातका खेद है कि जिन हाथोसे हमने आपको पूजा उन्ही हाथोंसे अखण्डित दशामे आपको हम सिरा रहे है, और दूसरा शल्य यह लग रहा है कि दुनियाके लोग क्या कहेगे कि खूब तो पूजा प्रभुको और आखिर गति क्या हुई, मारे गए और उस मूर्ति को नदीमे सिराना पडा, यह लोकमे अपवाद होगा। तो आकाशवाणी हुई कि हे भक्त! देख तेरी प्रभुपूजा व्यर्थ नही गई। इन चार चोरोको तूने पूर्वभवमे मारा था, सो ये बदला लेने आये है। ये चार बार एक एक करके तुझको मारते, पर इस प्रभुभक्तिके प्रसादसे तुझे चार बार न मारकर केवल एक ही बार सभी मारने आये हैं। इस प्रभुभक्तिके प्रसादसे ही तेरी तीन बारकी मौत कट गई। इतनी बात उन चोरोंने भी सुनी। तो सिराते समय उन चोरोंने कहा—ठहरो, अभी इस मूर्तिको मत सिरावो, वहाँ चलो, वही चलकर हम सब इसका निर्णय करेंगे। सो उस मूर्तिको लिए हुए उस व्यक्तिको लेकर वे चारो ओर उसके घर गए। वहाँ चारो चोरोंने परस्परमे उस विषयमे सलाह की और कहा कि यदि प्रभुभक्तिके प्रसादसे प्रभुने इसके तीन मौत काट दिये तो क्या हम चारो मिलकर इसकी एक मौत भी नही काट सकते? सो उसको यो ही छोडकर वे चारो चोर चले गए।

त्रिलोकाधिपति भुवनेश्वरके गुणानुरागमे रक्षाके सुयोग—भैया! जो प्रभुके गुणोसे अनुराग रखते है उनको कोई न कोई ऐसा प्रसग मिल जाता है कि उनकी रक्षा होती है। एक श्रद्धापूर्वक णमोकार मन्त्रका स्मरण करनेसे ही कितने ही विघ्न शात हो जाते हैं, यह कुछ अनुभवी लोगोंने परखा होगा। तो यह प्रभुका स्मरण मात्र ही हमारा रक्षक है। वे प्रभु भुवनेश्वर हैं। ये प्रभु इस लोकके अन्तमे विराजमान हैं, तो ये लोकाधिपति हैं। प्रभु विराजे हैं ऊपर। लोगोकी प्रकृतिसे ही सिद्ध है कि प्रभु ऊपर विराजे है। जब कोई प्रभुका स्मरण करता है तो अपना मुह ऊपर उठाकर करता है, किसीको नीचे मुँह गडाकर प्रभुभक्ति करते हुए न देखा होगा अथवा न सुना होगा। तो ये प्रभु भुवनेश्वर है।

योगीश्वर तमीशानमादिदेव जगद्गुरुम्।
अनतमच्युत शात भास्वन्त भूतनायकम् ॥२०३८॥

अच्युत अनन्त जगद्गुरु योगीश्वर आदिदेवकी उपासना— योगियोके ईश्वर, सबके नायक, जगतके गुरु ऐसे आदि देव है। जब इस लोकमे बहुत पहिले अनगिनते वर्षो पहिले जब कि भोगभूमि नष्ट हो गई थी और कर्मभूमिका आरम्भ हुआ था उस समय लोग सब अपरिचित थे कि किस तरहसे भूख शात करे, किस तरहसे साधन जुटाये, और किस तरहसे सिंहादिक क्रूर जानवरोसे अपनी रक्षा करे, यो अनेक बाधावोसे व्याकुल थे। उस समय आदिनाथ प्रभु ऋषभदेवने सबको सब युक्तिया सिखायी, सभीको सुखसे जीनेकी विधि बतायी, इससे वे आदिनाथ कहे जाते है, कुछ लोग ब्रह्मा कहते है, कुछ लोग आदम कहते है, कुछ लोग उन्हे योगीश्वरके रूपमे निरखते है। ऋषभदेवकी कितनी परमकरुणा थी कि लोग निर्विघ्न जी सके और फिर मोक्षमार्गमे भी लग सकें। इसलिए ये प्रभु सबके ईशान है, जगतके गुरु है, अविनाशी है। जो पद पाया है, जो ज्ञानानदका स्वाद लिया है अब उससे वे नही गिर सकते। वे समस्त प्राणियोके अधिपति है। प्रभुके गुणोके वर्णनमे इस प्रसगमे अब तीन श्लोक और शेष है जिनमेसे एक श्लोकमे आचार्यदेव कहते है कि—

सन्मति सुगत सिद्ध जगज्ज्येष्ठ पितामहम्।
महावीर मुनिश्रेष्ठ पवित्र परमाक्षरम् ॥२०३९॥

सन्मति महावीर प्रभुका स्मरण--वे प्रभु सन्मति है, सम्यग्ज्ञानमय है और समति नाम चौबीसवें तीर्थंकरका भी है। देखो प्रायः अनेक लोगोने अपने प्रभुको २४ सख्यामे माना, २४ तीर्थंकर हुए। तो ऐसा नियोग है और फिर थोडा अक्षरोमे परखिये कि परमात्मा लिखते है ना, तो उसमे मूर्छा न लगायें, अक्षरोके ऊपर जो लाइन खीचते है वह न खीचे और परमात्मा लिख दे—जैसे "परमात्मा"। तो इसमे पहिला प ५ की तरह है, र २ की तरह है, फिर दूसरा म ४॥ की तरह है, फिर आधा त ८ की तरह है, फिर बडा मा ४॥ की तरह है। तो ५ + २ + ४॥ + ८ + ४॥ = २४। तो २४ तीर्थंकर होते है। यह बात परमात्मा शब्दमे आकारसे निकलती है। २४ वें तीर्थंकरका नाम सन्मति है। प्रभुका नाम सुगत भी है। जिसकी उत्तम गति हुई है, उत्तम अवस्था प्राप्त हुई है ऐसे आत्माको वे सुगत कहते है, ये प्रभु सिद्ध है। जो कार्य उत्कृष्ट है वह उनके सिद्ध है। जगतमे तो फिर उनसे बडा कौन ? यहाँ बडेके मुकाबलेसे दृष्टि की जाती है—यह बडा है, उनसे बडा यह है, और जो समस्त रागादिक विकारोसे रहित हैं, अपने ज्ञानादिक गुणोके पूर्ण विकासमय है, ऐसे प्रभुसे बडा और किसे कहा जाय ? प्रभु महावीर है। ये शब्द विशेषण भी है और प्रभुके नाममे भी दिये जा रहे है। वीर किसे कहते है—वि-विशिष्टां, ई-ईं राति ददाति इति वीरः अर्थात् जो मुनियोमे श्रेष्ठ हैं, पवित्र है वे वीर है, और परम अक्षररूप है। एक एक अक्षर प्रभुके स्वरूपकी ध्वनि बन सकती है। और इसी कारण पहिले समयमे लोग लिखकर कोई भी पत्र नीचे नही डालते थे। वे अक्षरको भी

भी बढकर कोई चमत्कार कल्पनामे आ सकता है क्या ? इसी कारण वे विशुद्ध आनदमे निरन्तर एक रूपसे तन्मय रहे, इससे और अतिशय आत्माका क्या कहा जा सकता है ? ऐसा तीन लोकका ईश्वरत्व और ज्ञानराज्य यो स्वभावसे उत्पन्न हुआ है। यहाँ भी लौकिक प्रसगो मे जो प्रधान लोग है वे इसमे अपनी प्रभुता समझते है कि हमारा ज्ञान विशिष्ट है। हम जो जानते है सो होता है। राज्यमे, समाजमे, व्यवस्थामे किसीमे भी हम अधिकसे अधिक जानें और जो होवेगा उसको हम अभीसे जान लें, इसमे वे ईश्वरत्व समझते हैं और परिचित लोगो पर राज्य समझते है। तो वीतराग सर्वज्ञदेवके ज्ञानमे जब समस्त लोक प्रतिभासित हुआ है तो इसे कितना बडा चमत्कार कहे, ऐश्वर्य कहे ? और फिर भी वह ज्ञानस्वभावसे उत्पन्न है। यहाँ तो बनाकर, साधन जुटाकर, दिमाग लडाकर कुछ निमित्तोसे अनेक तरहसे हम ज्ञान बनाया करते हैं, किन्तु प्रभुका ज्ञान निरावरण होनेसे अब ऐसा फैल गया निसीमः निर्बाध कि सत् हो, कुछ भी कही भी, तो वह उनके ज्ञानमे प्रतिविम्बित है।

प्रभुका वचनातीत ऐश्वर्य—हम जब कुछ थोडा बहुत पदार्थोको जानते हैं सो भी यह ज्ञानकी ही तो महिमा है। जिसके आवरण बिल्कुल नही रहे वे सब सत्को न जानें तो यह तो एक अतथ्यकी बात होगी। इस ज्ञानमे जाननेकी कला है, और इतने उपद्रव, विडम्बनायें, विरोध होनेपर भी कुछ हमारा ज्ञान जान लिया करता है तो जहा कर्मका उपद्रव नही नही, रागादिककी विडम्बनायें नही, आवरण नही, वह ज्ञान समस्त सत्को न जाने तो कारण बतलावो अथवा मर्यादा सहित जाने, आगेकी न जान पाये तो इसका कारण बतलावो। प्रभुका ज्ञानराज्य इतना सातिशय है, स्वभावज है कि अपने आप ही समस्त सत पदार्थ उनके ज्ञानमे पतिभासित होते है। स्वरूपदृष्टिसे हम प्रभुकी महिमा समझ सकते हैं, अन्यथा वह हमे सुख नही देते, दु ख नही देते, फिर महिमा क्या समझेंगे ? प्रभुका महत्त्व तो उनके स्वरूपदर्शनसे ही विदित होगा। उन प्रभुका इतना महान ऐश्वर्य है कि मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञानके धारी योगियोको भी उनके ऐश्वर्यकी छाया नही मिल पाती। यहा ज्ञानी पुरुष प्रभुका ध्यान कर रहे हैं तो उन प्रभुकी महिमाको वे ज्ञानी ही समझते हैं।

साक्षान्निर्विषय कृत्वा साक्ष चेत· सुसयमी।
नियोजयत्यविश्रान्त तस्मिन्नेव जगद्गुरौ ॥२०५०॥

मनको निर्विषय करके प्रभुमे मनको नियोजित करनेका अनुरोध—यद्यपि अल्पज्ञानके धारी पुरुष सर्वज्ञदेवका स्वरूप यथार्थ नही उपयोगमे ले सकते है अर्थात् उनकी जो अनन्त महिमा है उस अनन्त महिमारूप उनका स्वरूप ऐसे छद्मस्थ ज्ञानोके अगोचर है। तो भी इन्द्रिय और मनको विषयोसे हटाकर सयमी मुनि साक्षात् उसी भगवानके स्वरूपमे अपने मन को लगाते है। क्या करें सो बतावो। कहा रहे, कहा जायें, कितना समागम जोडें, कितनोका

स्नेह बनायें, कितनी ममता करे कि यह ठीक गुजारा हो जाय, शान्त जीवन बन जाय ? कुछ उपाय तो बतावो। सिवाय प्रभुनाम स्मरण और आत्मस्वरूप मननके और क्या किया जाय ? कोई पुरुष वास्तविक धोखेसे रहित अपनी साधनाको बना ले तो यह योगी यद्यपि प्रभुस्वरूप के उस अनन्त विकासको अपने ज्ञानमे नही ले सकते, फिर भी कुछ निर्णय तो किया ही है। सो प्रभुमे वे अपना चित्त बसाया करते है। मेरा शरण बाहरसे यथार्थ कौन है ? तो अगुली उठायें प्रभुकी ओर, और परमार्थसे अपना आत्मस्वरूप ही शरण है। जब हम प्रभुकी उपासना कर रहे हैं उस समय भी प्रभुकी उपासनारूप जो हमारा गुणस्मरण है वही हमारा शरण बन रहा है। वास्तवमे खुद ही खुदके जिम्मेदार है। अपनी जिम्मेदारी न समझें तो ससारमे हमे रुलना पडेगा और अपनी जिम्मेदारी समझ सके तो ससारसे मुक्त होनेका उपाय बनाया जा सकता है। देख लो यहाके इस लगावमे कुछ भला नहीं होनेका। यह भी है मनुष्य-जीवनका एक अग।

जीवोमें शरणमान्यताकी प्रकृति—गृहस्थावस्थामे भी कोई शरण है तो अपने आपमे बिराजमान प्रभुस्वरूपका स्मरण है। तो योगीजन चाहे उसका पार न पा सकें तो भी वे प्रभुस्वरूपमे ही अपना मन लगाया करते है। देखिये किसीको आदर्श माननेका, अपना देवता माननेका सबके अभ्यास पडा हुआ है। प्रत्येक मनुष्यके चित्तमे कोई खास एक विशिष्ट जीव समाया हुआ होगा। किसीके चित्तमे प्रभु समाया है तो वह उनका देव बन गया। मोहियोंके चित्तमे कोई पुत्र समाया है, स्त्री समाई है, नेतागिरी समाई है, उनके लिए वे ही देव बन बैठे। उन्हे इससे आगे कुछ पता ही नही है। कुवेंमे जो मेढक होता है उसे तो इतना ही पता है कि इतनी ही बडी दुनिया है, इससे आगे उसे पता ही नही चलता। एक बार कोई हस उस कुवे पर आया तो मेढक पूछता है कहो भाई हस तुम कहासे आये ? तो हस बोला—मानसरोवरसे। मानसरोवर कितना बडा है ?—बहुत बडा। तो मेढक एक पैर फैलाकर कहता है—क्या इतना बडा ? अरे इससे भी बडा ? फिर दूसरा पैर भी फैलाकर कहता है—तो क्या इतना बडा ? अरे इससे भी बहुत बडा। तो मेढक एक जगहसे दूसरी जगह उछल कर कहता है—तो क्या इतना बडा मानसरोवर है ? अरे अभी तो इससे भी बहुत बडा मानसरोवर है ? तब मेढक कहता कि इससे बडी तो दुनिया भी नही। तो भैया ! क्या कहे मेढक ? उस मेढकका तो केवल उस कुवेके अन्दरकी थोडीसी जगहका ही परिचय है, ऐसे ही इन मोही जीवोको जो भी समागम प्राप्त हुआ है बस उतनेको ही अपनी दुनिया समझते हैं। बस ये ही तो मेरे सब कुछ है, यह ही तो सब करनेका मेरा काम है आदि। उन्हे इसके आगे और कुछ पता ही नही।

चित्तवृत्तिके अनुसार बाहिर अवलोकन—जो जैसे चित्तका होता है उसे वही बाहर

सूझता है । क्या करे, ज्ञान ही तो जाननहार है । जैसा ज्ञान है वैसा जानेगा । एक नाई था, जो काफी मजेमे था, घरमे घी दूध वगैरह भी खूब रहता था । एक दिन वह बादशाहकी हजामत बनाने गया । सो बादशाहने पूछा—कहो खवास जी हमारी प्रजामे कैसा सुख है ? तो खवास बोला—महाराज आपकी प्रजामे बडा सुख है । खूब घी दूधकी नदिया बह रही हैं । बादशाह समझ गया कि यह खूब सुखी है इसलिए सारी प्रजाको सुखी समझ रहा है । सो क्या किया कि किसी दीवानको बुलाकर कहा कि इस खवासपर कोई झूठा आरोप लगाकर १०-१५ दिन के लिए इसके जानवरोको मगाकर काजीहौजमे बद कर दो । दीवानने वैसा ही किया । जो भी १०-१५ गाय भैंस उसके घर थी सब मगवाकर काजीहौजमे बद करवा दिया । जब एक हफ्ते बाद फिर वह खवास बादशाहकी हजामत बनाने गया तो बादशाहने पूछा—खवास जी हमारी प्रजाका क्या हाल है ? तो खवास बोला—महाराज आपकी प्रजा बडी दुःखी है, घी दूधके तो किसीको दर्शन ही नही होते । तो सभी जगह यही बात दिखती है कि जिसके चित्त मे जो समाया हुआ है उसे ही वह सही निरखता है । जो योगी जन है, जिन्हे निरतर अपने ज्ञानस्वरूपके अवलोकनकी ही रुचि है, सबसे वैराग्य है, बाहरमे कुछ सुहाता नही है ऐसे ज्ञानी पुरुष अपने आत्माको उस प्रभुस्वरूपके स्मरणमे ही लगाया करते हैं ।

तद्गुणग्रामसलीनमानसस्तद्गताशय ।
तद्भावभावितो योगी तन्मयत्व प्रपश्रते ॥२०५१॥

परमात्मत्वभावित योगीके तन्मयत्वका लाभ—योगी प्रथम तो भगवानके गुणसमूहमे अपने मनको लीन करते है और फिर प्रभुस्वरूपकी भावनासे स्वय भावित होते हैं । इस प्रकार ये योगी परमात्मस्वरूपको प्राप्त करते हैं । इस श्लोकमे बहुत अच्छी योगसाधनाकी विधि कही गई है । परमात्मस्वरूपकी प्राप्तिके लिए इनके ये क्रमश तीन यत्न है—प्रथम तो परमात्मा के स्वरूपमे मनको लगाना । इसका भाव सीधा है । परमात्मामे जो गुण पाये जाते है उनको देखकर निरखकर उनके अनुरागसे उसमे मन लगाये, दूसरा अभ्यास होता है कि उसमे आशय अभिप्राय पडा रहता कि जो प्रभुका स्वरूप है वह मेरा स्वरूप है । जिस रत्नत्रयके मार्गसे ये विशुद्ध हुए हैं उस मार्गसे यहा भी विशुद्धता हो सकती है । जो स्वरूप उनका है वह स्वरूप मेरा है । मुझे क्या करना है, प्रभुभक्तिसे हमारा क्या कर्तव्य है, यह सब आशय उस प्रभुभक्त मे रत हो जाता है । फिर तीसरे प्रयासमे यह तद्भावसे प्रभावित होता है— सोऽह । जो वह है सो मै हू । जो स्वरूप प्रभुका है उस स्वरूपके रूपमे अपनी भावना बनाता है और तद्रूपसे अपने आपकी सम्भावना करता है और ऐसे भावोमे भावित हो जाता है कि तन्मयता आ जाय । तो ऐसी तन्मयताको वह तुरत प्राप्त कर लेता है, और फिर कुछ समय बाद उस परमात्मत्वपदको प्राप्त कर लेता है । जैसे जलते हुए दीपककी उपासना कोई दूसरा दीपक करे

अन्य दीपक भी अधिक जल उठता है, और प्रकाशमान हो जाता है, इसी तरह कोई भक्त अपना स्वरूप प्रभुके स्वरूपमे जोडे तो वह भक्त भी उसके प्रसादसे तद्रूप हो सकता है, क्योकि वह प्रभुके स्वरूपकी निरखसे अपने स्वरूपको जकड करके अपनेमे गुण उत्पन्न कर लेता है।

ध्यानके प्रारम्भिक यत्न—ध्यानके लिए जो प्रथम यत्न है वह इस प्रकार भी हो सकता है—स्थिर आसनसे सीधे बैठकर जिसमे श्वासकी नली मुडे नही, सीधी रहे, वहा और कुछ न बन सके तो यह देखता रहे कि अब मेरी कौनसी श्वास निकल रही है ? जब श्वास लेते है और नासिकामे अगुली लगाकर देखते है तो पता पड जाता है कि कौनसी श्वास चल रही है। यद्यपि श्वास लेनेसे कोई देवदर्शनकी बात बनती हो, सो बात नही है, पर चित्तको एकाग्र करनेकी यह भी एक विधि है। फिर इसके बाद अब हम श्वासके छोडने और लेनेमे जो कुछ छोटीसी एक आवाज चलती है, उस आवाजको ध्यानमे ले। जब श्वास लेते है तब सो की आवाज निकलती है और जब श्वासको बाहर छोडते है तो ह की आवाज निकलती है। इस चीजको करके भी आप देख सकते है। तो अब तो श्वासके लेने और छोडनेके समय मे हम सोह सोह सोह धीरे-धीरे श्वासकी रफ्तारके साथ अब उस शब्दका ग्रहण करें, और बढे तो कुछ शब्दपर दृष्टि प्रधान न रखकर उस शब्दका जो वाच्य अर्थ है सो अर्थात् प्रभु और ह अर्थात् मै। जो प्रभु है सो मै हू—यो निरखें। देखो यह मनुष्य रात दिन सोह सोह कि आवाज निकालता रहता है। अब उस आवाजमे शब्दोका जोड करके हम उस वाच्यपर दृष्टि दे—जो प्रभु है सो मैं हू, अब इसके बाद जब सो बोल रहे है तब उस शुद्ध स्वरूपपर दृष्टि दें जो प्रभुका स्वरूप है। और जब ह शब्द कहे तो अपने आपमे अन्तःप्रकाशमान उस विशुद्ध ज्ञायकस्वभावको लक्ष्यमे लें। सोह। और जब स्थिरता हो जाय तो हम अहका अनुभव करे। फिर इस प्रकार भी मत्रका जाप करे। ॐ नम सिद्धेभ्य., ॐ शुद्ध चिदस्मि, सिद्धो को नमस्कार हो, मैं शुद्ध चित्त हू। अहकी बात नही कही अब, अह तो अस्मिसे सम्बधित है। दो ही तरहकी बात आई यहाँ—प्रभुध्यान व आत्मस्मरण। तो यह बात इस योगीके उन ३ अभ्यासभूमिकाओमे आ गयी। प्रथम तो प्रभुके गुणसमूहमे मनको लीन करे, फिर इनके गुणोमे अपना आशय लगा दे, फिर अतमे जो अपना भाव है, स्वरूप है उस रूपमे अपनेको भावित कर दे। सोह, यह मैं हू।

तद्भावभावनाका प्रभाव—देखो एक बच्चेको भी जो ऊधम मचाता है उसे इतना कह दो कि अरे तू तो राजा है तो वह ऊधम मचाना छोड देता है। तो उसने क्या किया ? अपने चित्तको उसने भावित हो तो किया है। तू राजा है, राजा लोग तो ऐसा ऊधम नहीं किया करते। तो उस बच्चेने अपनेमे राजा भावको भावित किया, और उसने ऊधम मचाना छोड दिया। जो डॉट डपटसे नही मान सकता उसे अच्छे भावोसे भावित कर दीजिये। तो

उसका ऊधम मचाना छूट जायगा। फिर हम तो शुद्ध चैतन्यस्वरूपमात्र हे ही, सो चाहे इस समय वाह्यस्थितिमे कैसे ही हो, फिर भी अपनी शक्ति अनुसार यदि ऐसा अनुभव करें कि परमात्माका जो स्वरुप है सो मैं हू। परमात्मस्वरूपकी भावनासे अपनेको भावित वनायें तो हम अपने आपमे कितना ही उत्कर्ष पा सकते हैं।

यदाभ्यासवशात्तस्य तन्मयत्व प्रजायते।
तदात्मानमसौ ज्ञानी सर्वज्ञीभूतमीक्षते ।।२०५२।।

तद्भावभावनाभ्यासका माहात्म्य—जव अभ्यासके वशसे उस सर्वज्ञ स्वरूपसे तन्मयता हो जाती है उस समय मुनि अपने असर्वज्ञ आत्माको सर्वज्ञ स्वरूपमे देखता है। यह सव अपने को शुद्ध भावोंसे भावित करनेका माहात्म्य है। जब कभी बच्चे लोग घोडा घोडाका खेल खेल खेलते है, घुटनोके बल चलकर एक दूसरे बालकसे सिरमे सिर लडाते हैं, उस समय वे अपनेको घोडा अनुभव करते है। वादमे होता क्या है कि उन वालकोमे परस्परमे हाथापाई हो जाती है और रोते हुए अपने-अपने घर भाग जाते हैं। तो उस समय वे बालक अपनेको घोडारूप अनुभव कर रहे थे, न कि बालकरूप। सुना है कि कोई अमरसिंह राठौरका नाटक हो रहा था। उसमे जो अमरसिहका पार्ट कर रहा था उसने अपनेको वास्तविक अमरसिह अनुभव कर लिया, उसे यह ध्यानमे न रहा कि मैं तो अमुक व्यक्ति हू, यहाँ नाटक कर रहा हू। उसके हाथमे थी सच्चकी तलवार। सो उसने क्या किया कि अपने विरोधीका सिर उसी तलवारसे उतार दिया। तो वहाँ भी क्या था ? उसने अपनेको उसीरूपमे भावित किया था। तो तद्रूपभाविकताकी बात कह रहे है, जैसा भावित वनाओ, परिणति तदनुरूप हो जाती है। वह भक्त यद्यपि उस समय सराग है तथापि उस वीतराग प्रभुके स्वरूपमे एक चित्त होकर तन्मय हो जानेके कारण अपनेको उस समय प्रभुस्वरूप रूपमे निरखता है। सो वह किस प्रकार निरखता है, सो कहते है—

एप देवः स सर्वज्ञ सोऽह तद्रूपता गत।
तस्मात्स एव नान्योऽह विश्वदर्शीति मन्यते ।।२०५३।।

तद्भावभावनामे स्वसवेदन—जिस समय वह अपनेको सर्वज्ञस्वरूपमे देखता है उस समय ऐसा मालूम होता है कि यही सर्वज्ञदेव है। ऐसे उस प्रभुके स्वरूपके निकट वहीका वही तद्रूपको प्राप्त होता है। इस कारण वही सर्वका देखने वाला मैं हू अन्य नही हू, इस प्रकार अपने आपमे इस उत्कर्षताको निरखता है। मानते तो सभी लोग हैं अपनेको कुछ न कुछ। अपनेको लटोरा घसीटा जैसा माननेमे तो कुछ उत्कर्ष न मिलेगा अर्थात् मैं अमुक परि-वारका हू, इतने बच्चो वाला हू, अमुक पोजीशनका हू, अमुक जाति कुलका हू, इत्यादिक रूप अपनेको निरखनेसे अपना उत्कर्ष न मिलेगा। इससे ये मुनिराज अपनेको सर्वज्ञके गुणानुरागमे

इतना लीन कर रहे है, अपने आपको यो ही अनुभव कर रहे है कि यह वही सर्वज्ञ है, यह वही मैं हू, इस प्रकार अपने आपमे विश्वदर्शी रूपसे तत्त्वको निरख रहे है। रूपस्थध्यानमे प्रभुभक्तिकी बहुतसी बातें कहकर अब उस योगीकी महिमाकी बात कह रहे है। जो ध्यान करता है वह भी तो महान् है। उसकी महिमा कैसी होती है ? प्रभुकी महिमा बतानेके बाद अब यह भक्तकी महिमा बताई गई है।

येन येन हि भावेन युज्यते यन्त्रवाहक ।
तेन तन्मयता याति विश्वरूपो मणिर्यथा ॥२०५४॥

यन्त्रवाहककी भावानुसार तन्मयता—यह मत्रवाहक जीव जिस-जिस भवमें युक्त होता है उस-उस भवसे तन्मयताको प्राप्त होता है। जैसे स्फटिक मणि जिस रगवाली उपाधिसे युक्त होती है उस प्रकारसे उस रगमे तन्मय होती है, अथवा उस उपाधिको तो युक्त क्या होता है, वह तो निमित्त मात्र है। वह उसका निमित्त पाकर अपने आपमे जिस रग छाया परिणमनसे युक्त होती है उस रग छायामे तन्मय होता है। इस ही प्रकार यह यत्रवाहक जीव जिस भाव को करता है उस भावमे तन्मय होता है। इस जीवको यत्रवाहक कहा है, एक यत्रको ढोने वाला। यह शरीर यत्र है, और जैसे किसी भी मशीनका चलाने वाला कोई नही हो, चाहे वह कितनी ही ओटोमेटिक मशीन हो, फिर भी और नही तो बटनका खोलने वाला किसीका निरीक्षण करने वाला कुछ भी मूलमे न हो तो उस यत्रकी गति नही होती। इसी प्रकार इस शरीर यत्रमे एक जीवतत्त्व है, उस जीवके सयोगसे यह यत्र भी ढोया जा रहा है। तो यह यंत्रवाहक जीव जब जैसा भाव करता है तब उस भावमें तन्मय होता है। प्रभुभक्तिके प्रसगमे कहा जा रहा है कि यह योगी जब इस भावमे अपने आपको लगाता है, प्रभुके गुणोका चितन करके यह मै सर्वज्ञ हू, यह मैं इस ही स्वरूप वाला हू, इस प्रकारका जब उस भावमे अपने उपयोगको तन्मय करता है, भले ही देखा अपनेको शक्तिरूपसे और प्रभुको देखा व्यक्तिरूपसे, किन्तु सम्बध बनाया और उस भावसे अपनेको नियत किया तो यह भी इस प्रकारके उपयोग-मय होता है कि मै सर्वज्ञ हू या प्रभुसम विकासवान हू, इस प्रकार उस दृष्टिमे यह तन्मयताको प्राप्त होता है।

भव्यतैव हि भूताना साक्षान्मुक्तेर्निबन्धनम् ।
अत सर्वज्ञता भव्ये भवन्ती नात्र शङ्क्यते ॥२०५५॥

भव्यतामे मुक्तिकारणता—प्राणियोकी भव्यता ही भव्यत्व नामक गुण साक्षात् मुक्ति का कारण होता हैं। इस भव्यत्वको एक तो दूरार्थमे भी लगा सकते है और एक भव्यत्वके निकट अर्थमे, जिसका कि ससार निकट रह गया है और रत्नत्रय रूप परिणमन चल रहा है यह उसका भव्यत्व है। जो निकट भव्य है उसकी भव्यता तो निकट कालमे ही मुक्तिका

वरण करायेगी, लेकिन भव्यत्वगुणकी महिमा यहाँ बता रहे है । भव्यक्त्व न हो तो मुक्तिका पात्र नही होता । अथवा सर्वज्ञने जीवोमे छाटकर यह सज्ञा नही रखी कि इतने जीव भव्य हो गए इतने अभव्य, किन्तु जिन जीवोका ऐसा ही होनहार है कि वे कभी भी रत्नत्रयको सम्यक्त्वको नही प्राप्त कर सकेंगे, उनका नाम रखा दूरातिदूर भव्य । कही नामकी सज्ञामे इन जीवोमे छटनी नही की गई है । जो कुछ कालमे मुक्त होंगे, सम्यग्दृष्टि होंगे उन्हे निकटभव्य कहते है और जहाँ ऐसी योग्यता ही नही है उन्हे अभव्य बताया है । तो साक्षात् मुक्तिका कारण प्राणियोकी भव्यता ही है, और इससे हम समझते है कि यह सर्वज्ञता भव्यमे होती है ।

उत्कर्षका मार्ग––सभी जीव अपना उत्कर्ष चाहते है । हमारी उन्नतिकी स्थिति हो ऐसा सभी चाहते है, पर यह तो निर्णय करिये कि उन्नतिकी स्थिति वास्तवमे है क्या ? विशेष धनिक बन जाना, लखपति, करोडपति अथवा अरबपति बन जाना यह क्या जीवकी उन्नति है ? अथवा लोकमे बड़ी नामवरी फैल जाना यह क्या जीवका उत्कर्ष है ? जीवका उत्कर्ष तो वह है जिसमे जीव धोखेसे रहित स्वाधीन वास्तविक शान्ति प्राप्त कर सके । तो अब इन उत्कर्षके लक्षणोसे बँधकर इनकी खोजमे चलिये । हम कौनसा प्रयत्न करें कि इन उत्कर्षोको पायें ? इसको जरा जल्दी समझनेके लिए हमे उस आदर्शका भी चिन्तन करना होगा कि जिसके इन उत्कर्षोको प्राप्त कर ले, बस इसीसे सम्बधित है प्रभुभक्ति । प्रभुभक्तिमे भक्त पुरुष प्रभुके साथ ऐसा नि सकोच अपने भाव जोडता है, उसके निकट पहुचता है कि प्रभुसे अपनेको जुदा नही निरखता ।

प्रभुभक्तिमे नि सकोचताकी घटना—एक बार तो भक्तिमे भक्त यह कह बैठा कि हे प्रभो ! यह तो बतावो कि तुम हमे उठाते हो या हम तुमको उठाते है ? यह एक प्रश्न रख दिया भक्तने । उठानेके मायने उच्च प्रकट करना, उच्च बनाना । तो बतलावो कि प्रभु भक्त को ऊँचा उठाते है या भक्त लोग प्रभुको ऊँचा उठाते है । बात करते करते ऐसे ही कह दिया भक्तने कि भक्त प्रभुको ऊँचा उठाता है । इसे सुनकर यो अचरज करेंगे कि कैसी अनहोनी बात बतायी लेकिन समाधानमे एक समस्या और रख दी कि यह बतावो कि पानीमे हवासे भरी हुई एक मसक डाल दी जाय और उसपर मनुष्य तिर करके किनारे पहुचता है तो यह बतावो कि मसकको पुरुषने तिरा दिया या पुरुषने मसकको तिरा दिया ? इसीका ही उत्तर बता दो, क्या उत्तर होगा ? कुछ तो ऐसा भी लगता कि मसकने पुरुषको तिरा दिया और कुछ ऐसा तो है ही कि पुरुष उस मसकको लिए जा रहा है । तो यह ही बात हम और आपके बीचके प्रश्नकी है । यह तो मानते ही है सब कि प्रभु भक्तको तारते हैं, यह निमित्त दृष्टिसे कथन है, पर यह भी तो देख लो कि भक्तजन न हो तो प्रभुको पूछे कौन ? प्रभुका

स्वरूप जाने कौन ? उनकी शोभा रहे कैसे ? तो भक्तोने तो प्रभुको उठाया है ।

भक्तकी प्रभुसे एक मांग—भक्तिरसमे चूकि आशय बडा विशुद्ध है, गुणानुराग है इसलिए उस आशयमे किस ही प्रकार प्रभुकी भक्ति करे पर अभिलाषा यह होनी चाहिए कि हम प्रभुके स्वरूपसे अपनेको अभेद बनाये है । एक बार भक्तिमे भक्त कहता है कि हे प्रभो ! आप सर्वज्ञ हो ना, तो देखो—हमने आपको अपना कितना नाटक दिखाया कि आज तक अनादिकालसे लेकर अब तक अनन्त जन्म किए, तो हमने आपको कितने नाटक दिखाये ? हा हा अनन्त नाटक दिखाये । तो नाटक दिखाने वालेपर आप प्रसन्न हुए कि नही ? नाटक दिखाने वालोके मनमे यह रहता है कि मेरा मालिक मेरे नाटकको देखकर खुश हो जाय । तो मैने तो आपको कितने ही नाटक दिखाये, पर आप मुझपर प्रसन्न हुए कि नही ? यदि आप मुझपर प्रसन्न है तो जो मै मागता हू सो दो । मै मागता हू मुक्ति, निर्वाण । और यदि आप प्रसन्न न हुए हो मेरे नाटकको देखकर, तो मेरे उन नाटकोको खतम करा दो जिनको देखकर आप खुश ही नही होते । जब आप खुश ही नही होते तो फिर उन नाटकोकी जरूरत ही क्या है ? जब भाव विशुद्ध रहता है, गुणानुराग रहता है तो भक्तिमे कैसा ही कहा जाय, उद्देश्य यही है प्रभुका गुणानुराग ।

अयमात्मा स्वसामर्थ्याद्विशुद्धयति न केवलम् ।
चालयत्यपि सक्रुद्धो भुवनानि चतुर्दश ।।२०५६।।

आत्मसामर्थ्यका अनुपात—देखिये—आत्मामे अनत सामर्थ्य है, विलक्षण शक्ति है । यदि कोई आत्मा अपने आत्माके विशुद्धस्वरूपका अनुभव करके उसमे रम करके सर्वसंकटोसे, परभावोसे, बधनोसे छूटकर निर्वाणको प्राप्त करता है तो इसको आप उसके अनत अद्भुत सामर्थ्यका चमत्कार कहेगे या नही कहेगे ? और यह जीव जिस किसी भी प्रकारसे अपने आत्मस्वभावकी सुधि रखकर जो निगोद अन्य स्थावर या कीडे मकोड़े कितनी ही तरहके पशु पक्षी मनुष्य इनमे जन्म लेता है तो ऐसा आकार बना लेता है, कितनी तरहके परिणमन करता है, इसे भी आप जीवकी सामर्थ्यका एक चमत्कार कहेगे या नही ? सामर्थ्यका यहाँ भी उपयोग है और सामर्थ्यका निर्वाणके लिए भी उपयोग है । तो जब यह जीव अपनी सामर्थ्य से विशुद्धिको प्राप्त होता है तो यह निर्वाणको प्राप्त कर लेता है और अगर आत्माकी सामर्थ्यका उपयोग जब यह क्रुद्ध हो जाय तब करे तो चौदह भुवनोको भी चलित कर देता है ।

चौदह भुवनोको चलित कर देनेका भाव—चौदह भुवनोको चलित कर देने के सम्बन्धमे एक यह घटना भी ले सकते हो कि जब यह जीव अपने आप पर क्रोधी बन जाता है, अपने स्वरूपकी दृष्टि नही रखता, जब अपने आपपर इतनी क्रूरताका बर्ताव करता है तब

यह सर्वलोकोमे जन्म धारण करता है। दूसरी बात सामर्थ्यमे बतायी गई है कि सामर्थ्य इतनी है कि वह समस्त भुवनोको भी चलित कर दे। इन्द्रका सामर्थ्य बताते ही है—और आगममे भी कहा है कि इन्द्रमे इतनी सामर्थ्य है कि जम्बूद्वीपको पलट दे। होता नही है ऐसा और न आगे होगा भी ऐसा, पर एक सामर्थ्यका अनुमान करानेके लिए कहा है। इस ही ढगसे यह भी दूसरा अर्थ ले सकते है कि जब यह जीव सन्नद्ध हो जाता है तो यह चौदह भुवनोको भी चलित कर सकता है। चौदह भुवन कौन है ? इसे कोई लोग किसी तरह कहते हैं पर एक स्थान विशेषकी पद्धतिसे चौदह भवन लगा लीजिए—७ नरक, ८ वाँ भवनवासियो का लोक, ९ वाँ मध्यलोक, १० वाँ ज्योतिषलोक, ११ वा स्वर्गलोक, १२ वाँ नवग्रैवेयक, १३ वा नव अनुदिश और १४ वा पचानुत्तर ऐसे चौदह भवन कहे जा सकते हैं।

जीवकी संसारदशामे सामर्थ्यकी विचित्रता—जीवकी सामर्थ्य इस ढगसे भी देखें कि जब यह जीव अपने ज्ञानस्वरूपका आलम्बन करता है तो निर्वाण प्राप्त करता है और जब परकी ओर दृष्टि करता है तो कैसे कैसे विचित्रभव धारण करता है, परिणमन करता है। लो एक तरहसे देखो और प्रभुकी सामर्थ्य तो एक ही किस्मका काम करती है, पर इन ससारी सुभटोकी सामर्थ्य तो नानाप्रकारके कार्य करने की है। कहो, प्रभु तुम कर सकते हम ससारी सुभटो जैसे काम ? प्रभु नही कर सकते, पर ये ससारी सुभट देखो तो कितनी तरह के कार्य कर रहे है, जन्म धारण कर रहे है, लेकिन ये सब विडम्बनायें है, अशान्ति हैं, उपद्रव है, मलिनता है, इस सामर्थ्यके उपयोगमे क्या रखा है ? वास्तविक सामर्थ्य, वास्तविक पुरु-पार्थ तो वही है जहाँ अनत ज्ञानका विकास है और अनत आनदका अनुभव है।

त्रैलोक्यानदबीज जननजलनिधेर्यानपात्र पवित्रम्।
लोकालोकप्रदीप स्फुरदमलशरच्चद्रकोटिप्रभाढ्यम्।
कस्यामप्यग्रकोटौ जगदखिलमतिक्रम्य लब्धप्रतिष्ठ,
देव विश्वैकनाथ शिवमजमनद्य वीतराग भजस्व ॥२०५७॥

प्रभुभजनका मर्म—रूपस्थध्यानके प्रकरणका यह अन्तिम छद है। इसमे प्रभुभक्तिकी बात चली आ रही थी। आचार्यदेव कहते हैं कि ऐसे वीतराग प्रभुकी सेवा करो, अर्थात् उनका भजन करो। भजन करना और सेवन करना दोनोका एक अर्थ है। भज सेवाया, भज् धातुका सेवा अर्थ है है। पर लोकमे भजन नाम तो रख दिया अच्छे कामका और सेवन नाम रख दिया साधारण अथवा निकृष्ट कामका। लेकिन यहाँ भी देखो कि सेवनमे पद्धति क्या होती है ? जिसको सेवन करे उसमे अनुराग और एकमेकपना तन्मयता अनुभूति कैसी विशिष्ट होती है, जो बात भजन शब्दके कहनेपर विदित नही हो पाती है। भजनमे तो अब भी द्वैत जैसी बात लगती है। ये प्रभु है, ये भक्त है और यह भगत प्रभुका भजन कर रहा है, वह

भजन ऐसा मालूम होता है कि जैसे ऊपरी पृथक्सी बात की जा रही हो, लेकिन भजनका भी अर्थ सेवन है जिससे यह अर्थ लगायें कि प्रभुके गुणोका ध्यान रखकर उन गुणोके सदृश जो गुण है स्वयके अथवा स्वयके क्या, प्रभुके क्या, गुण तो गुण है, ऐसे गुणस्वरूपमे उपयोगको तन्मय कर देवे, उसका नाम है वास्तविक भजन । तो ऐसी अभेदबुद्धिसे, सेवनपद्धतिसे वीतराग प्रभुका भजन करें ।

प्रभुकी त्रैलोक्यानन्दकारणता—कैसे है वे वीतराग प्रभु ? जो तीन लोकके जीवोके आनन्दका कारण है । देखो ना, कितने प्रकारके भक्त है, कोई सम्यक्त्व नही पा सके ऐसे भी भक्त है, कोई सम्यक्त्व प्राप्त कर चुके है ऐसे भी भक्त है और कोई उस गुणप्राप्तिके योगमे लग रहे ऐसे भी भक्त है । इन सब भक्तोको आनन्द मिल रहा है, किसीको किसी ढगसे और किसीको किसी ढगसे । इसमे तीन दृष्टात दिये है, एक मिथ्यादृष्टि पुरुष जो कि प्रभुकी भक्ति कर रहा है उस भक्तिमे भी चाहे वह समस्या उसने नही सुलझा पायी लेकिन सासारिक विषयो मे आनद पा रहा है, और ऐसे सम्यग्दृष्टिजन जिन्होने तत्त्वका निर्णय किया है वे विवेकके साथ प्रभुके गुणोको चितार कर चुके, वैसे ही गुण अपनेमे है तो एक उन गुणोके चिन्तनसे स्वयके गुणोमे विकास हुआ, अतएव वह उस प्रकारका विशुद्ध आनन्द पा रहा है । और योगीश्वर लोग जो प्रभुके गुणोमे अभेद होकर उपासना करते है वे अपनेमे विशिष्ट आनद पाते है, जिसे हम आनदसे परे आनद कह सकते है । आनदमे फिर भी एक विकल्पकी कल्पना कर लिया, मै आनदमय हू और इससे परे आनद जो आकुलतारहित होनेसे आनद है, पर आनद का विकल्प तक भी नही है । जिसे कोई लोग असम्प्रज्ञात समाधि कहते है । आनदसे परे भी एक उच्च आनदकी स्थितिमे पहुच जाते है ये योगीश्वर । ये समस्त जीवोके आनदके बीज है । और आप पूछ सकते है कि जो कीडा मकोडा है उनके लिए वे आनदके कैसे कारण पडे ? तो प्रभुका उपदेश हुआ, उन उपदेशोका पालन किया विवेकी पुरुषोने । उपदेशमे बात आयी है कि जीवोको रक्षा करो, किसी जीवको सतावो नही । तो इन भक्तोने प्रभुकी आज्ञा मानी, वे किसी जीवको सताते नही । तो इन भक्तोने उस उपदेशका पालन किया जिससे उन जीवोकी रक्षा हुई । ये प्रभु तीनो लोक, अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोकमे रहने वाले भक्तोके आनन्दके कारणभूत है ।

प्रभुकी संसारतारणता—ये प्रभु ससारसमुद्रके जहाज है । जैसे जहाजमे चलकर यात्री समुद्र पार कर सकते है ऐसे ही प्रभुके गुणोका सहारा लेकर उसके स्मरण ध्यान और मननके प्रसादसे ससारसमुद्र पार कर लिया जाता है । है कितना ससार ? भक्त कहता है कि जब मैने अपने स्वरूपको यथावत् निरख लिया तो फिर इस ससारसमुद्रका क्या तिरना, यह तो एक चुल्लू बराबर है, इसके पार करनेमे क्या कठिनाई ? एक छोटासा योग है । कोई कहे

कि हमे निर्वाणके मार्गकी बात, मुक्ति कैसे मिले उसकी बात थोडे शब्दोमे बता दीजिये—तो थोडे शब्दोमे भी सुन लो—करने वाले करें चाहे न करें, पर शब्द तो सुन ही लो। 'जित पिट्ठा तित दिट्ठा, जित दिट्ठा तित पिट्ठा।' जहाँ पीठ दिए है, जिस तत्त्वके लिए हम पीठ किए है उस तत्त्वके लिए दृष्टि हो और जिसपर हम दृष्टि लगाये है उसपर हमारी पीठ हो, कितना एक भीतरी योग है। केवल एक ज्ञानकी दिशा भर ही तो बदलनी है। लो निर्वाणका कितना सुगम उपाय मिला। तो ये प्रभु ससारसमुद्रसे तिरनेके लिए जहाजकी तरह पवित्र है।

प्रभुप्रकाश—लोक और अलोकको जाननेके लिए उत्कृष्ट प्रदीप है। जैसे दीपक बहुत प्रकाश कर देता है ऐसे ही ये प्रभु अपने ज्ञानके द्वारा समस्त लोकालोकको प्रकाशित करते है। जिनकी निर्मल शरद चन्द्रकी किरणें शरदकालीन चद्रमाकी प्रभाकी तरह स्फुरायमान हो रही है। शरदकालीन चद्रमा अर्थात् असौज सुदी पूर्णिमाका चद्र जैसे एक निर्मल कान्ति और श्रृङ्गारको लिए हुए है ऐसी किरणोंकी तरह जिनकी प्रभा स्फुरायमान है ऐसे वीतराग प्रभुको भजो। ये प्रभु किसी भी चद्रकान्तिमे समस्त ससारका उल्लघन करके अपनी प्रतिष्ठाको पाये हुए है। ये प्रभु समस्त गुणसम्पन्न है। ऐसे सर्व गुणसम्पन्न सर्व दोषोंसे रहित तीनो लोकके नाथ निर्दोष वीतराग प्रभुका भजन करो।

प्रभुकी सकलगुणसम्पन्नता—श्रीमन् मुनि मानतुग जी ने कहा है कि हे प्रभो! आपमे यदि सारेके सारे गुण समा गये, समस्त गुणोने यदि आपका आश्रय ले लिया तो इसमे आश्चर्य क्या है? हम तो इसमे कुछ भी तारीफकी बात नही समझते। क्यो? ये सारेके सारे गुण इन सारे ससारी जीवोंके पास पहुचे तो उन्होने उन बेचारे गुणोको आश्रय ही न दिया, जावो जावो यहाँ तुम्हारे लिए जगह नही है ऐसा कहकर हटा दिया। सो वे बेचारे गुण कही स्थान न पा सकनेसे आपमे आ गये। और सारे दोषोको इन ससारी जीवो ने आश्रय दिया और कहा—आवो खूब आवो, तुम्हारे लिए सारी जगह खाली है। तो सारे दोष तो इन ससारी जीवोमे बस गए, पर इन बेचारे गुणोको किसी ससारी जीवने आश्रय न दिया तो वे बेचारे सारेके सारे गुण झक मारकर आपके पास आ गए। तो हे प्रभो! इसमे क्या आश्चर्यकी बात है? यह एक प्रभुकी भक्तिका ढग है। प्रभुकी भक्तिमे गद्गद् होकर वह भक्त इस तरहसे कह रहा है। तो ये प्रभु सर्वदोषोसे रहित सर्वगुणसम्पन्न है। ऐसे वीतराग ज्ञानकी मूर्ति अरहत प्रभुका रूपस्थध्यानमे ज्ञानी पुरुष ध्यान कर रहा है।

(रूपातीतध्यानवर्णन प्रकरण ४०)

वीतराग स्मरन्योगी वीतरागो विमुच्यते।
रागी सरागमालम्ब्य क्रूरकर्माश्रितो भवेत् ॥२०५८॥

जगतके चराचर वैभवोमे राग करके हैरान हो चुके पुरुष कुछ विवेक जगाकर इस

तलाशमे हैं कि मैं किस जगह पहुचू कि मेरी ये सारी हैरानी दूर हो जाये । वह जगह कौन मिली इस विवेकीको ? वह जगह मिलती है रूपातीत । अर्थात् जहाँ शरीर नही, मुद्रा नही, किसी प्रकारका रूप नही, मूर्ति नजर न आये, केवल एक ज्ञानज्योतिमात्र तत्त्व बोधमे रहे ऐसा पद मिला इस विवेकीको मोक्ष । उस पदमे जानेसे पहिले उस तत्त्वार्थीको यह शिक्षा दी जा रही है कि देखो कैसे जाना चाहिए वहाँ ? जो वीतराग तत्त्वका स्मरण करता है और जो सराग पुरुषका सराग तत्त्वका आलम्बन करता है वह क्रूर कर्मोंके आधीन हो जाता है ।

पञ्चेन्द्रियके विषय—हिसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह आदिक क्रूर कर्मोंसे शान्ति नही है, वे मिट जाने वाले है । मोहमे ऐसा यह प्राणी ख्याल नही करता । यही कारण है कि जब कभी मिटता है यह वैभव तो एकदम बडा धक्का लगता है । यदि पहलेसे ही कोई इस बातका ध्यान रखे कि यह तो मिटनेके लिए ही है—चाहे जब मिट जाय, चाहे जैसे मिट जाय तो उसके मिटनेपर वह खेद न मानेगा, क्योकि वह तो पहिलेसे ही समझ रहा था कि यह मिटेगा अवश्य । ऐसे ही किसी इष्टके प्रति पहिलेसे ही यह ख्याल हो जाय कि इसका वियोग अवश्य होगा चाहे जब हो, चाहे जैसे हो, तो उसका वियोग होनेपर वह खेद नही मानता, क्योकि वह तो पहिलेसे ही समझ रहा था कि इसका वियोग अवश्य होगा । जैसे कोई नेता सरकार भग होनेके थोडे दिन पहिले ही यह बात बता दे कि शीघ्र ही यह सरकार भग हो जायगी तो भग हो जानेपर वह बडा हर्ष मानता है कि देखो मै जो कह रहा था सो ही हुआ ना, ऐसे ही समझो जिसने अपनी अच्छी समझ पहिलेसे ही बना रखी है वह किसी भी दु खद घटनाके घटनेपर दु.खी नही होता । जो क्रूर कर्मोमे रहता है उसे शान्ति नही मिलती और जो वीतराग प्रभुका स्मरण करता है, उसका परिणाम शुद्ध है तो वह निराकुल है, निर्भार है, नि.सत्त्व है, और वह पुरुष वीतराग प्रभुके स्मरणके प्रसादसे कर्मोंसे मुक्त हो जाता है ।

मन्त्रमण्डलमुद्रादिप्रयोगैर्ध्यातुमुद्यत. ।
सुरासुरनरव्रात क्षोभयत्यखिल क्षणात् ॥२०५६॥

ध्यानकी महिमा बतायी है कि मत्र, मडल, मुद्रा आदिक प्रयोगोसे जो ध्यानमे उद्यत होता है वह पुरुष क्षणभरमे समस्त सुर असुर नर समूहोको क्षोभित कर सकता है । ध्यानका इतना प्रताप है, इतना बल है । एक कथा सुनते है—विष्णुकुमार मुनिराजने उस जमानेमे जब अकम्पनाचार्य आदिक मुनियोपर उपद्रव हो रहा था, कैसा चमत्कार दिखाया, वहा विष्णु ऋषिराजने अपना शरीर इतना बढाया कि एक टाग बीचमे रखी और एक टाग घुमा दी तो सारे मनुष्य लोकको नाप दिया । और यह तो क्या, ध्यानकी इतनी महिमा है कि सुर असुर नरसमूहको भी वह ध्यानी पुरुष क्षुब्ध कर सकता है । उस ध्यानकी विधि बतलाते है कि मंत्र हो, मडल हो, मुद्रा हो, सबध है चित्तका ध्यानके साथ, सबध है चित्तका शरीरके साथ ।

इसका कोई प्रयोग करके भी देख सकता है—पद्मासनसे बैठकर देहको बिल्कुल सीधा रखकर यदि तत्त्व भी ध्यान करनेमे न आये और शरीरके अन्त अवयवका ही ध्यान करने लगे तो ध्यानकी एकाग्रताकी बात कह रहे है, जैसा कि सिद्धान्त बताता है कि—शरीरमे कमलकी रचना है और कही कल्पना करके भी कमल माना है। इस तरहसे शरीरमे ६ जगह कमलकी रचना मानी जा सकती है। अन्य सिद्धान्तोने तो नाभिसे बहुत नीचे एक कमलरचना मानी है और उस जगह उस कमलरचनासे सटा हुआ ऐसा स्थान है जिसे कुण्डलिनी कहा है। उस कुण्डलनीको भावोसे जलाया जाय तो सारे शरीरमे रोमाच होता है और वहासे वायु चलकर सीधी एक ध्रुव स्थानपर नेत्रोके बीच और मध्यमे उसके ऊपर चलती है, तो क्या किया है उस योगाभ्यासीने ? एक ध्यान किया है, वह है प्रथम चक्र। इसी प्रकार ५ जगह और चक्र की रचनायें कल्पनामे माना, वहा उसने चित्तको रोकनेका स्थान बताया है। यदि ऐसे ध्यानके योगका भी कोई अभ्यास करे तो इतना फल तो उसे तत्काल मिल गया कि परिवार की, वैभवकी, परिग्रहकी खबर न रही, इतनी बात तो वहा समा ही जा सकती है, और फिर चित्त प्रसन्न हो, ऐसी स्थितिमे जो तत्त्व है वह ध्यानमे आये, वह सुगम बात होती है। इससे यहा बताया है कि मत्र मडल मुद्रा आदिक प्रयोगोके द्वारा ध्यानमे जो उद्यत पुरुप हैं उनमे इतनी सामर्थ्य बन जाती है कि वह सुर असुर नरसमूहको भी क्षोभित कर सकता है।

रूपातीत ध्यानका प्रसग लानेसे पहिले जो उपयोगी बातें है भूमिकारूप, वे बताई जा रही है। रागका आलम्बन करनेसे हित नही है, वीतरागताका आश्रय करनेसे हित है, यह पहिली बात कहकर दूसरी बात बतायी हैं कि उस वीतरागताका ध्यान ही विधिपूर्वक करे तो उस ध्यानमे इतनी सामर्थ्य है कि सुर असुर नर आदिकके समूहको क्षुब्ध कर सकता है। रागद्वेप आदिक शत्रुवोको, दुष्टोको, विकारोको इन सबको दूर कर सकता है। कोई बात किसी ढगसे भी कही जाती है तो उसका उद्देश्य और उसमे भलेपनकी बात भी छिपी रहा करती है। सामर्थ्य ही तो विपय है, पर ध्यानी पुरुप अपनी सामर्थ्यका इस जगह उपयोग तो नही करता। उस सामर्थ्यका उपयोग उन रागादिक बैरियोके विनाश करनेमे होता है।

(रूपातीतध्यानवर्णन प्रकरण ४०)

आज जो प्रचलित नाम हैं देवी देवतावोके जैसे काली, मुडी, भद्रकाली, चडी, मुडी आदिक ये सब वास्तवमे आत्मानुभूतिके नाम है, एक नाम दुर्गा भी है। दुर्गाका अर्थ है—जो बडी मुश्किलसे प्राप्त हो। ऐसी कौनसी चीज लोकमे है जो बडी मुश्किलसे प्राप्त होती है ? वह चीज है शुद्ध आत्माकी अनुभूति। शुद्ध आत्मानुभूतिको दुर्गा शब्द यदि कह दिया जाय तो शब्दार्थसे ठीक बैठेगा। अब इसे भूल जाये और बाह्यमे अपना रक्षक कोई और देवता है, ऐसी कल्पना करके कोई लोग मानें तो यह उनकी अलग बात है। काली किसका नाम है ? जो

रागादिक दुश्मनोको खा डाले उसे काली कहते है । इस ही शुद्ध आत्माकी अनुभूतिको जरा इस कालीके रूपमे तकिये । यह अनुभूति इन रागादिक शत्रुवोको चबा डालती है । भद्रकाली--भव्योको जो कल्याणमे प्रेरित करे वह भद्रकाली । कौन है वही शुद्ध आत्माकी अनुभूति, जो कि भव्य जीवोको कल्याणमे प्रेरित करती है । इसी प्रकार चण्डी मुण्डी आदिक शब्द भी उस शुद्ध आत्माकी अनुभूतिकी तारीफ कर रहे है । जो रागादिक शत्रुवोका खण्डन मण्डन कर दे सो चडी मुडी आदिक है । एक नाम है चद्रघटा--जो आनदरूपी अमृतको झरानेमे चद्रमासे भी ईर्ष्या करे उसे चद्रघटा कहते है । चद्र क्या अमृत झरायेगा, अमृत तो शुद्ध आत्मानुभूतिसे झरता है । तो ध्यान करनेसे वह सामर्थ्य है कि जो रागादिक विकार आत्माके दु खके कारण है वे सब दूर हो जाते है । इससे एक निर्णय रखो कि मुझे वीतराग तत्त्वका ध्यान ही शरण है, अन्य कोई शरण नही है ।

देखो भैया ! श्रद्धा तो निर्मल रखे रहिये । रही करनेकी बात, सो जितनी योग्यता है, जितनी शक्ति है उस माफिक बात चल सकेगी, पर श्रद्धा तो सही ही होना चाहिए । शामके समय देहातोमे जब गायें घर आती है घास चरकर तो जगलसे ही दौडती हुई घरपर आती है । सो जिन गायोकी पूँछ पूरी है वे अपनी पूरी पूँछ उठाकर अपने बच्चेके स्नेहवश दौडती हुई आती है और जो बाडी गाय होती है वह अपनी आधी ही पूँछ हिलाती हुई डगमग करती हुई अपने बच्चेके स्नेहमे दौडती हुई आती है । तो इन दोनो तरहकी गायोके भीतरी भावको देखो वह तो एकसा ही हे, दोनो ही उसी प्रयोजनसे दौडती है । तो अपनी श्रद्धा पूर्ण निर्मल रखनी चाहिए स्थिति चाहे कैसी ही हो । अन्तर है चारित्रका । तो यहाँ इतनी श्रद्धा एक निर्णयके रूपमे बनाये कि हमारे लिए सार और शरण है तो अतरङ्ग तत्त्वकी उपासना ही है, और कुछ हमारे लिए सार और शरण नही है । जिन कार्योमे हम लग रहे है उनमे कुछ भी सार नही है, यह श्रद्धा अवश्य दृढ रहनी चाहिये अन्यथा धर्मकी नीव न बन सकेगी । जिसे ऐसी श्रद्धा नही है वह धर्मका कोई भी काम किस भावसे करता है उसे क्या बतावें ? लोक लाजवश समझ लो, या घरकी किसी आकुलताके कारण समझ लो--अरे चलो वही मदिरमे ही बैठे, ऐसे भी कुछ भाव हो सकते है, पर श्रद्धा हो तो एक ही भाव होगा । तो श्रद्धा यथार्थ करनेका यत्न रखियेगा और जो श्रद्धा हुई है उसे यथावत् बनाये रहे कि मेरे लिए सारभूत चीज तो मुझमे ही विराजमान अनादि अनन्त अत प्रकाशमान जो केवल स्वरूप है उसका आलम्बन शरण है और यह शरण जिसने प्राप्त कर लिया है ऐसे प्रभुकी उपासना करो ।

क्षुद्रस्याप्यस्य सामर्थ्यमचिन्त्यं त्रिदशैरपि ।
अनेकविक्रियासारध्यानमार्गावलम्बिन ॥२०६०॥

विविधविक्रियारूप असार ध्यान मार्गको अवलम्बन करने वाले क्रोधीके भी ऐसी शक्ति

उत्पन्न हो जाती है कि जिसका चिन्तन देव भी नही कर सकते । प्रसिद्ध बात है द्वीपायनमुनि की । ध्यानी थे, सम्यग्दृष्टि थे और उनको तैजसऋद्धि प्रकट हुई थी, किन्तु जब क्रोध आया तो चाहे उनका भी विनाश हो गया तो हो गया लेकिन उस क्रोधमे वह प्रताप बता ही दिया कि सारी नगरी भस्म हो गई । तो क्रुद्ध हो तो भी उसके उस ध्यानकी ऐसी शक्ति उत्पन्न होती है कि जिसका देव भी चिन्तन नही कर सकते । शायद पुराण और इतिहासोंमे किसी भी देव ने ऐसा न किया होगा कि किसी नगरीको भस्म कर दे । तो देवोंके द्वारा भी अचिन्त्य ऐसे कार्य क्रुद्ध होनेपर किए जाते है । लोग डरते है त्यागी साधुवोको कि कही क्रुद्ध न हो जायें तो हमारा बिगाड हो जाय, लेकिन ऐसा डर उन्हीको है जिनके आत्मामे स्वयमे कुछ बल न हो, और जिनको यह दृढता नही है कि जो होगा वह मेरे ही किन्ही भावोंसे सचित विपाक होनेपर होगा, ध्यानकी सामर्थ्य बतायी जा रही है, ऐसी ऋद्धियाँ पैदा हो जाती है कि वे साधु सत यदि किसीको स्नेहभरी, दयाभरी दृष्टिसे देख ले तो उसके रोग दूर हो जायें और कही क्रुद्ध होकर देख ले तो कहो जीवनसे भी हाथ धोना पडे, इतनी सामर्थ्य है ध्यानमे । अब किस तरह उपयोग करें तो सही कल्याण हो यह उसके विवेककी बात है ।

बहूनि कर्माणि मुनि प्रवीरैर्विद्यानुवादात्प्रकटीकृतानि ।
असख्य भेदानि कुतूहलार्थं कुमार्ग कुध्यानगतानि सन्ति ॥२०६१॥

आज एक प्रकरण शुरू हुआ है नया । तो जिस प्रकरणमे बडे महत्त्वकी बात विस्तार से बतायी जायगी, उस प्रकरणकी बात कहनेसे पहिले कुछ लम्बी प्रस्तावना चलती है । तो उस ही प्रस्तावनामे यह बता रहे है—कि ज्ञानी मुनियोने विद्यानुवाद पूर्वसे असख्य भेद वाले अनेक प्रकारके विद्वेषण उच्चाटन आदि कर्म कौतूहलके लिए प्रकट किए है, परन्तु वे सब कुमार्ग और कुध्यानके अन्तर्गत है । और और भी ध्यानसे बाते बनती है । किसीका उच्चाटन, किसीका मन क्षुब्ध करना, किसीको वश करना, अनेक बाते भी ध्यान द्वारा होती है, पर ये सब ध्यान कुमार्गमे ले जाने वाले है । इनसे आत्मकल्याणकी सिद्धि नही होती । इस कारण उन कुध्यानोको छोडकर जो प्रशस्त ध्यान है उनमे लगना चाहिए । इस प्रकरणमे धर्मध्यानके आखिरी अग रूपातीतका वर्णन किया जायगा, जो रूपसे अतीत है उस ध्यानको समीचीन कहा गया है । उसके विरुद्ध जितने भी सासारिक प्रयाजनोको लिए हुए ध्यान हैं वे सब ध्यान कुध्यान है । मेरे सतान उत्पन्न हो, मुकदमेमे जीत हो, मेरा रोजिगार अच्छा चले, आदिक कुध्यान है । कुछ लोग तो इतना तक भी ध्यान करते है कि अमुकका नाश हो । तो ये जो विरुद्ध आशयको लेकर प्रभुका ध्यान किया जा रहा है वे सब कुध्यान है, उनसे लाभके बदले हानि ही होती है । इससे इन कुध्यानोको छोडकर सच्चे ध्यानमे आयें । वह सच्चा ध्यान क्या है ? उसका वर्णन अब आगे चलेगा ।

असावनन्तप्रथितप्रभावः स्वभावतो यद्यपि यन्त्रनाथः ।
नियुज्यमान स पुन. समाधौ करोति विश्व चरणाग्रलीनम् ॥२०६२॥

अनन्तप्रभावी आत्माका समाधिमे यत्न—यह आत्मा स्वभावसे ही अनन्त प्रभाव वाला है—एक तो यह अमूर्त और दूसरे ज्ञानस्वरूप । इसमे इतना प्रभाव है जो कि आत्मामे स्वभावसे ही पडा हुआ है । फिर कोई समाधिमे अपने उपयोगसे चलित होता हो तो वह प्रभाव कितने गुणित हो जाता है ? इतना अधिक हो जाता है कि वह समस्त जगतको अपने चरणोंके अग्रभागमे लीन कर लेता है । अब देखिये ना, वीतराग सर्वज्ञदेवको, क्या है उनके पास ? लोकदृष्टिसे तो लोग कहेगे कि क्या है उनके पास, जो था सो भी खो दिया । घर छोड दिया, वैभव छोड दिया, और रागादिक विभाव भी आते थे उनको भी छोड दिया । सो पहिले तो भरे पूरे थे, अब तो वे एकदम सूने रह गये । लेकिन उस सूनेपनमे कितनी महिमा बसी है ? रागादिक नही रहे, सर्व विविक्त हो गये, उसका प्रभाव इतना बढ गया कि लो यह जगत स्वय खिचा हुआ फिरता है । जीवलोक समवशरणमे पहुचता है, दर्शनोको उत्सुक रहता है और उपदेशोका अभिलाषी रहेगा समवशरणमे । तो वह सब प्रताप किसका है ? वह उस समाधिमे लगा सो उसका फल पाया । यह रूपातीत ध्यानका वर्णन करनेके पहिले कुछ और श्लोकोमे उसकी प्रस्तावनामे कह रहे है कि ध्यानमे इतना प्रभाव होता है ।

स्वप्नेऽपि कौतुकेनापि नासद्ध्यानानि योगिभि ।
सेव्यानि यान्ति बीजत्व यत सन्मार्गहानये ॥२०६३॥

कुध्यानसेवासे सन्मार्गहानि—कहते हैं कि योगी पुरुषोको स्वप्नमे भी कौतुकवश भी खोटे ध्यानोका सेवन न करना चाहिए । इसका कारण यह है कि वह खोटा ध्यान इस समीचीन मार्गकी हानि करनेके लिए बीजपनेको प्राप्त होता है । इन खोटे ध्यानोसे खुदकी भी और दूसरोकी भी बरबादी होती है । इस कारणसे कौतुकवश भी स्वप्नमे भी, अथवा कभी कोई कषाय जग जाय तो उस कषायवश भी असद्ध्यान नही करना चाहिए । एक अपने आपका संतुलन रखना यह बहुत बडा गम्भीर पुरुष ही कर सकता है । अन्यथा इसी प्रकरणमे थोडी बहुत तृषा जगनेपर इस बातपर उतारू हो जाते हैं कि हमारा चाहे कुछ भी हो जाय, चाहे बरबाद हो जाये, पर इसको तो हम मजा चखा ही देगे । ऐसा भाव बन जाता है । कोई जरा छोटासा कषायका लगार तो लगे फिर तो हानि हो जाती है । तो खोटे ध्यानका सेवन योगी पुरुषोको रच भी न करना चाहिए । इस प्रकरणसे अपने आपको यह शिक्षा ले लेनी चाहिए कि यह तो ध्यानकी बात है । हम आप सबको किसी व्यक्तिके प्रति कुछ द्वेषकी बात जग जाय तो इतना उतारू न हो जाना चाहिये कि मै इसको इतना अधिक कष्ट पहुचाऊं ; जैसे व्यवहारमे कहते है—मजा चखाऊँ क्योकि ऐसी कषाय उमग जानेपर उसकी बरबादी भी

हो जाय तो क्या मिला ? और न हो तो वह अपने आधीन नही, किन्तु खुद कषायका आवेश बना लेनेके कारण सन्मार्गसे चिग गया, अब उसे उल्टी-उल्टी बातें सूझेंगी।

रागद्वेषसे बचनेके लिये मनके सतुलनकी अनिवार्यता—भैया ! मनका विचारका सतुलन बनाये रखना बहुत बडे गम्भीर पुरुषकी बात है। किसी पुरुषमे दश अवगुण हैं और दो गुण हैं तो उस पुरुषके बारेमे, और कोई हो पुरुष ऐसा कि जो किसी कोटिमे अपनी समकक्षता जैसी बात रखता हो तो उसके बारेमे भी गुणोका वर्णन कर सकना बहुत कठिन हो जाता है कषायवान पुरुषको। और फिर जिसमे दोष हो ही नही, कुछ और गुण हो तो ऐसे तकका भी वह वर्णन नही कर सकता। यह बडी गभीरताकी बात है कि किसी भी पुरुषमे जो गुण है, बच्चेमे भी जो गुण हैं। उनको बता सके और दोष होनेपर भी दोषकी बात न रखे, यह तो ऊँची बात है और उसके दोष बताकर भी उसमे कोई गुण हो तो गुण भी बखान दे यह बडी गभीरताकी बात है। जो बडे विद्वान होते हैं, ऊँचे समालोचक होते हैं, दार्शनक फिलास्फर होते है उनमे ऐसी गभीरता होती है कि किसी भी बातमे दोष हो तो दोषको भी कह देते, पर दोष है, दोषोको कह रहे है इस धुनिके कारण गुणोको तिलाञ्जलि दे दें ऐसी बात नही होती है। जो गुण है उन्हे भी कह देते है। यह बात इसलिए कही कि हम किसी व्यक्तिके प्रति कुछ द्वेष उमडनेपर, उसकी कुछ बात न जचनेपर उसके प्रति कषायकी बात प्रविष्ट कर दें, कोई कषाय बढ जाय, तथा उस दूसरेकी ओरसे भी कुछ चेष्टाये हो तो कषायें बढाकर यह अपना ही नुक्सान कर लेता है। आचार्य सतोंने किसी भी चर्चामे प्रश्नोत्तर स्वयं देते-देते जब जरा कुछ बात तेजसी हो गयी, कर रहे है खुद रचना, बोलने वाला कोई नही है, परन्तु उसमे कोई वादविवादके ढग जैसी बात आती है तो बीचमे यह लिख करके ही उस प्रकरणको समाप्त कर देते है कि इससे अधिक मत बढो, नही तो रागद्वेष होगा और उस रागद्वेषसे अपनी ही हानि होगी। तो अपने आपकी रक्षा करना यही है मुख्य कर्तव्य।

योगियोकी समताकी प्रकृति—योगियोको तो बताया है कि वे खोटे ध्यानोको किसी भी कीमतपर न करें और अपने लिए फिर यह शिक्षा ले कि दूसरे व्यक्तिपर हम चतुराईकी बात, उसका बुरा करनेकी बात हम मनमे न लायें। चाहे आनेपर उसके द्वारा कितनी ही हानि छायी हो, कितने ही बार उसने हमपर आघात किया हो, फिर भी चाहे उसका मुकाबला कर लें, बात कह लें, पर हृदयमे उसके अकल्याणकी भावना न जग सके। यह बहुत बडे ज्ञानकी बात है। भला बतलावो—सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष कभी विरोधी हिंसाके प्रसगमे लग जायें, कोई आततताई लोग अथवा अन्याय करने वाले आक्रमण कर दे, धन भी हडप रहे हैं, प्राणो का भी खतरा है तो उस समय मुकाबलेमे आकर भी, कितना ही उसका निराकरण करनेपर भी उस सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुषके चित्तमे किसी भी क्षण यह बात नही आती है कि मैं इनका

अकल्याण कर दू। सोचिये यह कितने बडे भारी ज्ञानबलकी बात है ? रामचन्द्र जी ने कितना राम रावण युद्धके समय पराक्रम दिखाया। रावणकी सेना परास्त हो गई, ऐसे समयमे भी रामचन्द्र जी ने यही कहा कि हे रावण ! तुझसे मुझे कुछ न चाहिए, तेरा राज्य न चाहिए, तेरा प्राण न चाहिए, तेरी कुछ भी चीज न चाहिए, बस न्यायकी बात है कि तू मेरी सीता को वापिस कर दे, फिर तू आनदसे राज्य कर। भला इतनी विजय कर चुकनेपर जहाँ एक थोडा मामला रह जाय कि उसे पूर्ण बरबाद किया जा सकता है ऐसे समयपर भी इतनी गभीरता रख सकना यह बडे ज्ञानबलकी बात है। यहाँ योगी पुरुषोको कहा जा रहा है कि उन्हे स्वप्नमे भी खेल व कौतुकमे भी असत् खोटे ध्यान न करना चाहिए।

सन्मार्गात्प्रच्युत चेतः पुनर्वर्षशतैरपि।
शक्यते न हि केनापि व्यवस्थापयितु पथि ॥२०६४॥

सन्मार्गसे च्युत होनेका परिणाम—खोटे ध्यानके कारण कोई सन्मार्गसे विचलित हो जाय तो उस विचलित चित्तको फिर सैकडो वर्षोमे भी सन्मार्गमे ले जानेकी सामर्थ्य नही हो पाती, इस कारण खोटा ध्यान कभी भी किसीको न करना चाहिए। जैसे द्वेषप्रसगमे किसी को भी द्वेष शुरू न करना चाहिये। चित्तमे थोडी बात कदाचित् आ भी जाय तो भी वचनो से, शरीरसे, चेष्टावोंसे उस द्वेषको व्यक्त न कर देना चाहिए, क्योकि व्यक्त किए जानेसे पहिले हमारा मन हमारे वश हो सकता है, हमारी गल्ती हमारे विचार हम गुप्त ही अपने आपको समझाकर उस दुर्विचारसे अपनेको मुक्त कर सकते है। परतु व्यक्त हो जानेपर, प्रकट हो जाने पर और अब उसका प्रयोग कर देनेपर, जवाब दे देनेपर फिर यह कठिन हो जाता है कि हम अपनी उस कषायको लौटा लें और दूर कर दें और निष्कषाय बन सकें। इस कारण द्वेषकी बात शुरू भी न हो पाये, इस तरहका अपना सतुलन बनाना चाहिए, क्योकि बननेकी बात, लगार होनेपर बढ बढकर इतना तीव्र आवेग हो सकता है कि वह अपने सारे सन्मार्गोको न्यायनीतिको त्याग दे और जो अपने आपको खुद बरबादीमे ले जाय, ऐसे उपायको भी यह कर डालता है। यदि एक बार भी विचलित हो जाय तो सैकडो वर्षोमे भी अपने आपको सन्मार्गमे ले जानेको समर्थ नही हो सकता, अतएव इन दुर्ध्यानोसे दूर रहे, यही विवेकीका कर्तव्य है।

असद्ध्यानानि जायन्ते स्वविनाशायैव केवलम्।
रागाद्यसद्ग्रहावेशात्कौतुकेन कृतान्यपि ॥२०६५॥

खोटे ध्यानोसे स्वयंकी बरबादी—खोटे ध्यान अपने ही नाशके लिए उत्पन्न हुआ करते है। वे कौतुक भावसे किए हुए हो तो भी रागादिक असद्भावोका उसके इतना ग्रहण होता है कि वह नाशके ही सम्मुख रहता है। यह ध्यान बना रहे, चित्तमे बहुत-बहुत बसा

रहे तो यही फिर आचरणमे आ जाता है। कहा तक कोई अपना खोटा भाव छिपायेगा ? जब खोटे भावकी भावना बना रहा है तो बाहरमे चाहे जितनी सफाई रखे, पर वह बात तो बनेगी, वैसी चेष्टा तो बनेगी। उसे कौन दूर कर सकता है ? एक सेठके तीन तोतले लडके थे, सगाईके लिए नाई आया, उनके पिताने उन्हे खूब सजा दिया और समझा दिया कि देखो जब नाई आये तब तुम लोग कुछ बोलना नही। पर हुआ क्या कि जब नाई आया और उनको देखकर उनकी सुन्दरता की कुछ प्रशसा की, तो उस प्रशसाको सुनकर उन लडकोसे न रहा गया, वे बोल ही उठे—एक बोला–अभी टडन मडन टो लगा ही नही, नही तो बडे अच्छे लगते, तो दूसरा बोला—टुप, डड्डाने का कही थी, तो तीसरा बोला—अरे टुप टुप टुप। लो तीनो लडके बोल उठे, उनके तोतलेपनकी पोल खुल गई। ऐसे ही समझ लो कि कोई खोटा ध्यान बनाये रहे, वह चाहे कि हम मायाचारोंसे दूसरोको हितैपिता बताते फिरें, अपनी बडी प्रसन्न मुद्रा भी दिखायें, पर उसकी मुद्रासे, उसके आकारसे, उसकी चेष्टासे वह बात प्रकट हो ही जाती है। खोटा ध्यान बनानेसे तो इस लोकमे भी अपकार है और परलोकमे भी अपकार है। क्या फायदा पाया हमने दूसरेसे जलकर, दूसरेसे घृणा करके ? अरे यह तो ससार है, अनेक प्रकारके जीव है। एक जीवपर क्या दृष्टि देना, अनतानत जीव है। क्यो व्यर्थमे दुर्विचार बनाकर, खोटे ध्यान बनाकर दूसरोसे ईर्ष्या करके, दूसरोंसे जल करके अपनेको बरबाद कर रहे ? उससे कुछ भी पूरा नही पडनेका है।

निर्भरानन्दसन्दोहपदसपादनक्षमम्।
मुक्तिमार्गमतिक्रम्य क कुमार्गे प्रवर्तते ॥२०६६॥

अज्ञानीका सन्मार्ग छोड़कर कुमार्गमे प्रवर्तन—जो पुरुष अत्यत आनन्दके समूहोको उत्पन्न करनेमे समर्थ ऐसे मोक्षमार्गको विशुद्ध ध्यानको छोड देता है और कुमार्गमे प्रवृत्ति करने लगता है तो बतावो ऐसा कौन हो सकता है ? ज्ञानी तो न होगा। अज्ञानी मंदबुद्धि जन ही ऐसा कर सकते हैं कि अच्छे ध्यानको छोडकर खोटे ध्यानमे आयें। अनेक मनुष्य इस धुनि मे रहते है कि मैं इसका विनाश कर दूँ, इसकी मृत्यु करा दू, इसको तकलीफ पहुचा दू, इसका नुक्सान करा दू। मत्र भी सीखते है इन्ही बातोंके करनेके लिए। पुराणोंके दो चार कथन स्पष्ट है कि उन मत्र रचने वालोकी बडी सेवा की, उनकी बडी उपासना की, मत्र सीखा, अमुक मेरे वश हो जाय, अमुक मुझसे बडा न हो सके, कितनी-कितनी बाते ये पुरुष मोहवश ध्यानमे रखते है पर उनसे तत्त्व कुछ भी नही निकलता, लाभ कुछ भी नही मिलता। अपना लाभ तो अपनेमे अपनेसे अपनी एक विशुद्ध परिणतिसे होगा, बाहरमे कही कुछ नही है, उसको निरखकर अपनेमे क्षोभ न लायें, ऐसा ज्ञान बनायें।

भेदविज्ञानके बिना आत्मविनाशके प्रवर्तन—समताकी बात भेदविज्ञानके बिना नही

हो सकती । जो रुच गया उसे मानोगे कि यह मेरा है, और जो बाधक होगा उस विषय-साधनमे उसे मानोगे कि यह मेरा नही है, मेरा शत्रु है । तो ये जो दो भावनाये जगी, यह कितना मोहान्धकारका परिणाम है ? जीव जीव सब समान है, सबका एक स्वरूप है, पर उनमे कोई रुच गया और किसीसे जलन हो गई, ईर्ष्या हो गई ऐसी जो बुद्धि हुई वह ज्ञानका फल है कि अज्ञानका ? यह तो बडे अज्ञान अंधकारकी बात है । इसमे हमारा शृङ्गार नही, आत्माकी इसमे शोभा नही । इसमे तो आत्माका विनाश ही है । इस प्रकारकी सच्ची जानकारी क्या बनाई नही जा सकती ? जानकारी भी बनाई जा सकती है, इस ही सही जानकारी के आधारपर हम अपना उत्थान भी कर सकते है । कितने विवाद मनुष्योने व्यर्थके बना रखे हैं जिनसे खुद बडी चिन्तामे पडे है । दो ही तो प्रयोजन है इस मनुष्य जीवनमे—एक तो आजीविका हमारी सही रहे ताकि ऐसे मौके न आये कि भूखे प्यासे रहना पडे या परिवारके लोगोको भूखे प्यासे रहना पडे । और दूसरे—आत्मोद्धारकी बात बनी रहे । तीसरी बात कौन सी हम आपको आवश्यक है सो तो बतावो ? लोग तो कितने ही ऐसे कार्य करते है जिनका न आजीविकासे सम्बध है और न आत्मोद्धारसे सम्बध है । जैसे व्यर्थके सामाजिक कलह । किसी समारोहमे एककी जगह पर दो बाजे रख लिये, यह आगे रहेगा यह पीछे रहेगा इसी बातपर कलह कर डालते है । यही एक बात क्या, पचासो बातें ऐसी हैं जिनमे ये अज्ञानी जन हठ कर डालते है, उस हठमे बडा विवाद भी कर डालते है, खुद भी अशात होते है और दूसरोको भी अशात करते है, लाभ कुछ नही मिलता । ये सब अज्ञानताकी बातें है ।

सुध्यानको न छोड़नेका अनुरोध—यहाँ यह कह रहे है कि अद्भुत, अतिशय, विशुद्ध आनन्दको प्राप्त करनेमे समर्थ ऐसे सभी सद्ध्यानोको कोई छोड दे तो उसमे अपना ही नाश है । ऐसे सद्ध्यानोको ज्ञानी पुरुष कदापि नही छोड सकते । धनी होनेके लिए किसी देवताकी आराधना करना और यहाँ तक कि वीतराग प्रभु मदिरमे भी रागकी मूर्ति रख देना, और कोई बुरा न कहे इस बचावके लिए उस रागवाली देवीकी मूर्तिके ऊपर आध इचकी कोई भगवानकी मूर्ति बना देना, उस भगवानका पूजन करना, उससे धन वैभवकी प्राप्तिके लिए आराधना करना, ये क्या कोई भली बाते है । कोई मान लो उस तरहसे धनिक भी बन जाय तो उसके माने हुए भगवानने उसे धनिक नही बना दिया । उस भगवानकी भक्तिके प्रतापसे उसका स्वयंका पुण्यरस बढा और उससे अनेक सामग्रिया प्राप्त हुईं जिससे वह धनिक बना । तो धनिक बननेसे भी क्या लाभ है ? मेरी तो जो स्थिति है वही मेरे लिए भली है । मैं तो धर्मके लिए जीवित हू ऐसी भावना होनी चाहिए । खोटे ध्यानमे चित्त जानेसे अपना विनाश ही है, लाभ कुछ नही ।

क्षुद्रध्यानपरप्रपञ्चचतुरा रागानलोद्दीपिता,
मुद्रामण्डलयन्त्रमन्त्रकरणैराराधयन्त्यादृता ।
कामक्रोधवशीकृतानिह सुरान् ससारसौख्यार्थिनो,
दुष्टाशाभिहता· पतन्ति नरके भोगार्तिभिर्वञ्चिता ॥२०६७॥

खोटे आशयसे ध्यान करनेका दुष्परिणाम—रूपातीत ध्यानके वर्णनसे पहिले कुछ आगाहे और की जा रही है—जो मनुष्य खोटे ध्यानके बडे विस्तारके करनेमे चतुर है वे पुरुष अपना अहित करते है, अपनेको नरकमे पतित करते है । खोटा ध्यान करना, किसीका बुरा विचारना, बधबन्धन आदिक चिन्तन करना और अपने स्वार्थकी पूर्तिका उद्देश्य रखकर ध्यान करना, धनवैभव सम्पदा सासारिक सुख मिले आदिक भावनाओसे ध्यान करना—ये सब खोटे ध्यान है । इन खोटे ध्यानोके विस्तारमे जो लोग चतुर हो रहे हैं वे इस लोकमे रागरूपी अग्निसे प्रज्ज्वलित होते है । राग या द्वेष इन दो की जब तीव्रता होती है तो खोटा ध्यान बनता है । रागकी तीव्रतामे तो अपने लिए सम्पन्न होनेकी चाह करनेकी वात आती है । द्वेषकी तीव्रतामे दूसरेके विनाशकी बात आती है और मूलमे देखो तो जो कोई पुरुष किसीसे द्वेष करता है तो किसी रागके वश करता है । इन्द्रियके विपयोमे है राग तो उनमे जो बाधक हुए उनसे द्वेप करता है । ऐसा पुरुप मुद्रा, मण्डल, यत्र, मत्र आदिक साधनोंके द्वारा काम क्रोधसे वशीभूत होकर कुदेवका आदरसे आराधना करता है ।

शाश्वत शुद्ध आनन्द पानेके लिये विषयोसे उपेक्षाकी अनिवार्यता—भैया ! प्रवृत्तिमे दो बाते नही निभती कि कोई विषयसाधन भी करे और मोक्षमार्ग भी अपना चला ले । जैसे एक सूई दो दिशावोमे एक साथ नही सी सकती है, एक रास्तागीर दोनो दिशावोमे एक साथ नही चल सकता, इस ही प्रकार समझिये कि विषयोका भोगना और मोक्षमे जाना ये दो बाते नही निभ सकती, जिन्होने अपना उद्देश्य ससारके सकटोसे सदाके लिए छुटकारा पानेका बनाया है उनको इतना साहस रखना चाहिए कि किसी भी स्थितिमे विपयके साधनोंके अर्थ देवोकी आराधना न करें, एक विशुद्धिके लिए देवकी आराधना होगी । यह भी एक दोपमे सामिक है । जो अपने स्वार्थकी साधनाके लिए वीतराग मूर्तिकी भी उपासना करे, कुदेवकी उपासना करे, वह तो महादोप है ही, किन्तु स्वार्थपूर्तिके लिए दूसरोंके विनाशके लिए इन खोटे उद्देश्योको लेकर यदि कोई वीतरागदेवकी मूर्तिके समक्ष भी उपासना करता है तो भी वह गल्तीपर है । उसने अपना भीतरी लक्ष्य सही नही बना पाया । हम किसलिए अपना जीवन समझें, यह उसका निर्णय ठीक नही है । तो ऐसा पुरुष जो खोटी वासनाओसे उपद्रुत है वह पुरुष कुदेवकी आदरसे आराधना करता है । जो ८.रासी बीमारीमे या अपने किसीकी भलाईकी बडाईमे कुदेवकी आराधना करता है, चण्डी मुण्डी आदिककी आराधना करता है,

अथवा किन्ही छोटे लोगोसे चाण्डाल आदिक लोगोंमे कोई झडवाना आदिक काम कराता है तो वह अपनी श्रद्धामें सही नही है । जिसमे व्यामोहविराधक भी ज्ञान नहीं, साहस नहीं, वह जैन शासनके जो वास्तविक मर्म हैं उनके पालनका पात्र ही क्या बनेगा ? ऐसे जन सासारिक सुखोके चाहने वाले और खोटी आशावोसे पीडित होकर भोगोकी पीडासे तपाये गये वे नरको मे पीडित होते हैं, इस कारण आचार्यदेव उन्हें यह शिक्षा देते है कि—

तद्ध्येयं तदनुष्ठेय तद्विचिन्त्य मनीषिभि' ।
यज्जीवकर्मसम्बन्धविश्लेषायैव जायते ।।२०६८।।

कर्ममुक्तिके अर्थ किये गये ध्यानकी ही श्रेष्ठता—हे मुमुक्षु जनो ! ध्यान उसका ही करो, अनुष्ठान उसका ही करो, चिन्तन मनन भी उसका करो कि जिसके ध्यान आदिकसे यह जीव कर्मसमूहसे रहित हो जाय । जैसे कोई पुरुष दो दिनका आराम पा ले और उसे यह पता हो कि इस आरामके बाद हमे इतना दु ख दिया जायगा तो उस आरामके लिए चित्त नही चाहता । कोई कहे कि हम आपको एक दिनके लिए राजा बनाये देते है और उसके बाद जगलमे छोड देंगे तो वह पुरुष उस ऐश्वर्यको न चाहेगा । लोग तो ऐसी यथायोग्य भली स्थिति चाहते हैं जो चिरकाल तक रहे । तो यहाँके ये समागम, यहाँकी ये बाते जब बहुत समय तक रह नही सकती तो इनके लिए क्यों ध्यान करना और क्यो इनका सग करना ? ध्यान करना उस प्रयोजनसे कि ससारके सकटोसे सदाके लिए छूट जाये ।

(रूपातीतध्यानवर्णन प्रकरण ४०)

सत्य श्रद्धानसे ही कल्याण—श्रद्धान् सही होगा तो पापरस घटेगा व पुण्यरस बढेगा । श्रद्धान सही होनेसे सब प्रकारसे कल्याण कल्याणकी ही बात है और अगर श्रद्धा बिगडी तो न यहाँके रहे, न वहाँके रहे, यह स्थिति बनेगी । इस मनुष्यजीवनका बडा उत्तर-दायित्व समझना चाहिए और अधिक नही तो श्रद्धा तो सही बना लेना चाहिए । इतना साहस तो रखना ही चाहिए कि कोई रागी द्वेषी देवी नामसे प्रसिद्ध हमारे आदर्शभूत नही है, उनको हम आदर्श मानकर, उनकी आराधना करके, उनकी सेवासे हम झझटोसे मुक्त नही हो सकते । है कौन झझटोसे मुक्त कराने वाला ? प्रभुपूजा करके, प्रभुध्यान करके, तपश्चरण करके भी जो पुरुष कुछ वास्तविक आराम पाता है तो वह अपने धर्मसे पाता है, किसी दूसरे की दयासे नही पाता है । तो कौन हमें सम्पन्न बनायेगा ? अपने आपपर दयाका भाव करिये और सच्ची श्रद्धामे अपना जीवन बिताइये । यही तत्त्व ध्यान करने योग्य है जो जीव और कर्मके सम्बधको अलग हटानेका कारण बनता है ।

स्वयमेव हि सिद्ध्यन्ति सिद्धय शान्तचेतसाम् ।
अनेकफलसम्पूर्णा मुक्तिमार्गावलम्बिनाम् ।।२०६९।।

शान्तचित्त पुरुषोंको ही सिद्धियोंका लाभ—कहते है कि जिनका शान्त चित्त है, जो मुक्तिमार्गका आलम्बन लेने वाले है उन पुरुषोकी सिद्धि अनेक फलोसे भरपूर है, स्वय ही निष्पन्न होती है। शान्तिसे तो यहाँ ही त्वरित लाभ होता है। एक राजा अपने बगीचेमे शाम को घूमने गया, तो बागमे दो तीन कमरे जो खास थे, सो एक कमरेमे एक कोई सन्यासी आराम कर रहा था और एक कमरेमे उसका शिष्य। तो पहिले ही गुरुने सकेत कर दिया था शिष्यसे कि देखो भाई यहाँ बनना कुछ नही। शिष्यने कहा—अच्छा महाराज। अब राजा आया सिपाहीके साथ। सो सिपाहीने देखा कि इस कमरेमे कोई आदमी बैठा है, सो राजाकी आज्ञा लेकर वह सिपाही उनको निकालने गया। जब वह सिपाही शिष्यके पास पहुचा तो पूछने लगा कि तुम कौन हो, क्यो राजाके कमरेमे बिना पूछे आये? कुछ गालिया भी सुनाईं। सो वह शिष्य बोला—तुम्हे पता नही हम तपस्वी है, साधु है, ध्यान करने बैठे है। सिपाहीने झट उस शिष्यको वहाँसे निकाल दिया। जब गुरुके पास वह सिपाही पहुचा तो गुरु से भी वही बात कही, पर गुरु कुछ भी न बोला, अपने ध्यानमे बैठा रहा। तो सिपाही राजा के पास जाकर बोला—महाराज! एक कमरेके एक व्यक्तिको तो निकाल दिया और दूसरे कमरेमे बैठा हुआ व्यक्ति तो हमारे पूछनेपर भी कुछ बोलता ही नही है, बडी शान्तिसे बैठा है। तो राजा बोला—अरे उन्हे मत छेडो, वे कोई साधु होंगे। जब राजा घूमकर बागसे चले गये तब बादमे उस शिष्यने कहा—महाराज! तुमने हमे अच्छी जगह ठहराया, वहाँसे तो सिपाहीने हमे निकाल दिया। तो गुरु बोला कि तुम कुछ बने होगे? शिष्य बोला—महाराज! बने तो कुछ नही, सिपाहीने पूछा कि तुम कौन हो, क्यो यहाँ राजाके कमरेमे ठहरे हो? तो हमने यही कहा था कि हम साधु है, तपस्वी हैं, ध्यान करने बैठे है। तो गुरु बोला—बस यही तो बनना है। तो जो शान्त चित्त है, जो कुछ बनते नही है, जो क्षमाभाव धारण करके परमशान्तिका आश्रय लेते है उन्हे सर्वसिद्धिया स्वत ही सिद्ध हो जाती है।

सभवन्ति न चाभिष्टसिद्धयः क्षुद्रयोगिनाम्।
भवत्येव पुनस्तेषा स्वार्थभ्रंशोऽनिवारितः ॥२०७०॥

क्षुद्रयोगियोको सिद्धिके लाभकी असंभवता—जो खोटा ध्यान करने वाले क्षुद्र योगी है, अज्ञानमे मुग्ध है उनको इष्ट सिद्धिया कदापि सिद्ध नही होती, किन्तु उनके उल्टी स्वार्थकी अनिवार्य हानि ही हुआ करती है। चाहे कुछ और हो कुछ, यह खोटे आशय वालोकी गति होती है। यहाँ भी व्यवहारमे देखो—जो पुरुष अधिक मायाचार रखते हैं और अधिक छल कपटका व्यवहार करते है प्रायः करके देखा होगा कि वे पद-पदपर ठगाये जाते है। छल कपट का पता पड जाय दूसरोको तो कोई भी दूसरा उसे अपने निकट भी बैठानेमे सकोच करता है। खोटा आशय रखना अपने लिए अहितकर है। क्रोध आता है तो तब आता है जब कोई

यह समझ लेता है कि देखो इतने इतने लोगोमे मेरी पोजीशन अटकी तभी क्रोध आया। अकेलेमे कोई कितनी ही बात कह ले तो वहाँ क्रोधमे उतनी तीव्रता नही होती है। जिसके चित्तमे ज्ञानमे यह बात समाई हुई है कि जो देख रहे है सो मुझे जानते नही और जो जानते है सो देखते नही, मेरेको तो कोई पहिचानता ही नही है, यदि इन व्यवहारविमूढ जीवोने कुछ सम्मान अथवा अपमान भरे शब्द कह दिये तो उससे क्या उठता है ? वे सब स्वप्नवत् है। ऐसी जो अपने अन्तरङ्गमे परमार्थ स्वरूपसे लगन लगाये है ऐसे पुरुषको क्रोध क्या जगे, अभिमान क्या उत्पन्न हो ? ससारके समस्त समागमोको भिन्न असार मानने वाला पुरुष किस बातके लिए मायाचार करे, किस चीजकी तृष्णा करे, क्या करना है इन पञ्चेन्द्रियके साधनो का ? तो जो पुरुष एक ज्ञानतत्त्वका आशय रखते है उन पुरुषोको सिद्धि होती है, और जो क्षुद्र योगी है, खोटा ध्यान रखते हैं, छल कपटमे बर्तते है उनको उल्टी हानि ही होती है। इससे अपने भावोको सही बनाये रखना चाहिए जिससे कषायोका हममे प्रभाव न जमे, विषय भोगके साधनोमे हमारा चित्त न लुभाये। इस प्रकारसे सजग रहना यह हम आप लोगोंके उद्धारका बीज है।

भवप्रभवसम्बन्धनिरपेक्षा मुमुक्षव ।
न हि स्वप्नेऽपि विक्षिप्त मन' कुर्वन्ति योगिनः ॥२०७१॥

निरपेक्ष ज्ञानी संतोंके स्वप्नमें भी विक्षेपका अभाव—जिनके सम्यग्ज्ञान जगा है वे ससारके सकटोसे मुक्ति पानेकी ही एक मात्र अभिलाषा करते है ऐसे प्राणी ससारमे उत्पन्न हुए सबधमे भी निरपेक्ष रहा करते है। अपने लिए इन सांसारिक समागमोंसे कुछ भी वाञ्छा नही रखते, स्वप्नमे भी अपना मन विक्षिप्त नही करते। जैसा निरन्तर भाव रहता है स्वप्न मे भी उस ही के अनुरूप चित्त रहता है। और जो जगतेमे भी विक्षिप्त है, सोतेमे भी विक्षिप्त हैं उनको अनेक बाधाये आये तो इसमे कौनसे आश्चर्यकी बात है ? अपना परिणाम सबकी भलाई करनेका होना चाहिए। किसी भी जीवको हृदयसे विरोधी न मानें, बल्कि दूसरा जो अपनेको विरोधी समझे उसकी भी हम अज्ञानतापर दयाभाव रखे। कोई भी पुरुष मेरे विरोध के लिए विरोध नही करता किन्तु अपनी कषाय शान्त करनेकी चेष्टा कर रहा है। तो ऐसा ज्ञान जगे भीतरमे कि समस्त जीवोके प्रति समताका भाव बने, किसीको अपना विरोधी न समझ सकें। जो पुरुष ऐसे निर्मल आशा वाले होते है वे इस भवमे भी सुखसम्पन्न होते है और उनका परलोक भी सुधरता है। इस प्रकार इस प्रकरणमे यह आगाह किया गया है कि सुख चाहने वाले पुरुषोको खोटा चित्त मलिन ध्यान न बनाना चाहिए। ऐसा आगाह करनेके बाद अब आचार्यदेव रूपातीत ध्यानका वर्णन करेंगे।

अथरूपे स्थिरीभूतचित्त प्रक्षीणविभ्रमः ।
अमूर्तमजमव्यक्त ध्यातु प्रक्रमते तत ॥२०७२॥

रूपस्थ ध्यानके बाद रूपातीत ध्यानका प्रक्रम—उस ज्ञानीने अभी रूपस्थध्यानमे सकलपरमात्माका ध्यान किया था। अरहत भगवान अर्थात् सशरीर भगवानके ध्यानको रूपस्थध्यान कहते हैं, क्योकि अभी वहाँ मुद्रारूप शरीर दिव्यकाय वह सब उपस्थित है और उस मुद्राके माध्यमसे यहाँ ध्यान हुआ। तो रूपस्थध्यानमे उसने अपना चित्त स्थिर किया, ऐसा वह ध्यानी जिसको किसी भी प्रकारका कुछ विभ्रम नही रहा वह इसके अनन्तर अमूर्त, अजन्मा और अव्यक्त तत्त्वका ध्यान करनेके लिए उद्यम करता है, अर्थात् रूपातीत ध्यानमे अब आता है। रूपातीतका अर्थ है—जो रूप मुद्रा आकार प्रकारसे अतीत है, दूर है। इस ध्यानमे दो स्थानोपर दृष्टि जायगी—एक तो सिद्ध प्रभु और दूसरा अपने आपमे अनादि अनन्त विराजमान शुद्ध चैतन्य तत्त्व। दोनो रूपातीत हैं, और उनमे भी प्रधान है वह ज्ञानस्वभाव जिसके ध्यानमे इसे न अपने व्यक्तिका ख्याल है और न सिद्ध व्यक्तिका ख्याल है। ऐसा जो ज्ञानस्वरूप है, स्वभाव है वह है रूपातीत।

रूपातीत तत्त्वकी अमूर्तता व अजता—रूपातीत ज्ञानस्वभाव अमूर्त है याने रूप, रस, गध, स्पर्शसे रहित है। वह किसी आधारमे नही बँधा, किसी आकारमे नही बँधा। अत वह सर्व प्रकारसे अमूर्त है। इसकी उत्पत्ति नही है, सदासे है, अत. अनादि है। किसने उत्पन्न किया है इस रूपातीत तत्त्वको ? यह विशेषण प्रधानरूपसे आत्मस्वभावमे घटित होता है पर सिद्धस्वरूपको भी देखो तो वह भी अज है, किसीसे उत्पन्न नही है। यद्यपि कर्मोके क्षयका निमित्त पाकर सिद्धस्वरूप बना है, इस व्यवहारदृष्टिसे उस सिद्धपर्यायको सादि कह सकते हैं और जायमान कह सकते है, किन्तु उसकी वास्तविकतापर ध्यान दें तो विदित होगा कि वह सिद्धविकास भी किसी द्रव्यसे उत्पन्न नही हुआ, किसी कारणसे उत्पन्न नही हुआ, कोई वहाँ भिन्न कार्य नही है, क्योकि वहाँ हुआ ही नही कुछ काम। देखिये इतना बडा काम होकर भी ससारके जन्ममरण कट गए, कर्मोका बन्धन मिट गया, रागादिक विकार दूर हो गए तिसपर भी एक दृष्टि ऐसी है कि जिस दृष्टिमे यह नजर आयगा कि सिद्ध भगवानमे जो बात बनी है वह कोई कहीसे आकर नही बनी है।

रूपातीत तत्त्वकी स्वयंभुता पर एक दृष्टान्त—रूपातीत तत्त्वविकासकी अजताके सबधमे एक दृष्टान्त लो। टाँकीसे उकेरी हुई प्रतिमा। एक बडे पाषाणमे एक प्रतिमा बनवानी है तो कारीगरको बुलाकर वह पाषाण दिखाया और कह दिया कि देखो यह प्रतिमा इसमे बननी है। तो पाषाणके देखते ही उस प्रतिमाका वह आकार जो बनाना है वह उस पाषाणके अन्दर उसे दिख गया, और वह कह देता है कि ठीक है प्रतिमा बन जायगी। तो कारीगर

उस प्रतिमाको कोई नई नही बना रहा, किसी चीजको जोड नही रहा, जैसे कि कोई मिट्टीकी प्रतिमा बनाये तो मिट्टी जोड जोडकर उसमे लगा लगाकर एक प्रतिमा खडी करदे, इस तरहसे नही किया जा रहा है किन्तु जो प्रतिमा निकालनी है वह प्रतिमा उस पाषाणके अन्दर बिराजमान है। सिर्फ उस प्रतिमाके ढाकने वाले (आवरण करने वाले) जो अगल-बगलके पत्थर है उन्हे कारीगर हटाता है। जब पूर्ण रूपसे आवरण हट गये तो जो प्रतिमा उस पाषाणके अन्दर पहिले से ही मौजूद थी वह निकल आयी। इसी तरहसे उस सिद्ध अवस्थामे हुआ क्या कि जो आत्मामे था स्वभाव, उसकी अपने सत्त्वके कारण जो बात थी वह प्रकट हो गयी। इस दृष्टिसे यह कहेगे कि यह सिद्ध अवस्था किसी परसे जायमान नही है, अतएव वह भी अज है। जो विशेषण प्रधानरूपसे आत्मस्वभावमे लगे, उसे वहाँ लगाये और जो दोनो जगह लगे उसे दोनो जगह लगाये।

रूपातीत तत्त्वकी अव्यक्तता—वह रूपातीत तत्त्व कल्पनातीत अव्यक्त है। कहाँ प्रकट है? किसीने कहा कि चलो आज हम एक सतके दर्शन करा लायें। चल दिया। वहाँ बता दिया कि ये देखो बैठे हैं महाराज। ठीक है दर्शन कर लिया। अब चलो वीतराग प्रभु के, सकलपरमात्माके दर्शन करा लायें—चलिये—ले गया और करा दिया दर्शन। ये देखो बिराजमान है प्रभु। टीक है दर्शन कर लिया। चाहे परमार्थ बात उसने न भी जानी तो भी दिलको तो चैन हो गया कि हमने प्रभुके दर्शन कर लिये और कोई कहे कि चलो हम तुम्हे उस सिद्ध स्वरूपके, चैतन्यस्वरूपके दर्शन करा लाये। चलो। अब कहाँ दर्शन कराये, कहाँ दिखाये, कहाँ बैठाये? वह स्वरूप तो अव्यक्त है, जो ज्ञानद्वारा जाननेका उद्यम करता है सो ही जान सकता है। ज्ञानियोको तो वह स्वरूप व्यक्त है पर अज्ञानियोको अव्यक्त है, यो भी कह सकते है। और फिर बाह्य सम्पर्क न होनेसे व्यवहारमे किसी भी रूपमे व्यक्त नही है। ऐसा जो रूपातीत तत्त्व है उसका ध्यान करनेके लिए यह योगी उपाय करता है।

चिदानन्दमय शुद्धममूर्त्तं परमाक्षरम्।
स्मरेद्यत्रात्मनात्मान तद्रूपातीतमिष्यते ॥२०७३॥

रूपातीत तत्त्वकी चिदानन्दमयता—चैतन्यात्मक आनन्दस्वरूप शुद्ध अमूर्त परम अक्षर ऐसे आत्माको आत्माके ही द्वारा स्मरण करे तो वह रूपातीत ध्यान है। इन सब विशेषणोमे आप आत्मस्वभावपर दृष्टि लगाये और इसको वहाँ व्यक्त करें। वह तत्त्व चैतन्यात्मक है। कोई भी पदार्थ हो उसकी कुछ न कुछ बॉडी होती है। आत्माकी अपनेमे अपनी बॉडी क्या है? वह तो विध्यात्मक तत्त्व है जिससे जाना जाय कि यह आत्मा है वह है चैतन्यस्वरूप। वह आनन्दमय है। जहाँ आकुलता रच भी न हो उसीको तो आनन्द कहते हैं। दूसरे शब्दोंमे हम यह भी कह सकते कि जो सर्व ओरसे समृद्धिशाली हो उसीका नाम है आनद। अर्थात्

जहाँ गुणोका चरम विकास है, पूर्ण समृद्धि है उसे आनद कहते है। और इस समृद्धिमे आकुलताका नाम नहीं है। तो आकुलता न होनेका नाम आनद है। भक्तिमें यह भी कहा है कि हे प्रभो! मुझे अनत सुख न चाहिए। क्या करना है अनतका, पर इतना चाहता हू कि आकुलताका सताप रच न रहे और होता क्या है उस अनतमे? तो यह स्वरूप आकुलतारहित है। आकुलता तो जीवोने मोह रागद्वेष कर करके बनायी है।

चिन्मात्रस्वरूपकी दृष्टिमें आकुलताका विश्लेष——भैया! अपने आप ही परख लो। ज्ञानदृष्टि जगे, समस्त परजीवोसे, परतत्त्वोसे निराला मेरा यह चैतन्यस्वरूप ही है, मैं इतना ही मात्र हू, ऐसी दृष्टि जगे तो वहाँ फिर आकुलता नहीं रह सकती। जैसे अनेक घरोमे लोग रहते है, उन सब घरोके लोगोसे आपके चित्तमे क्या आकुलता है, वे अच्छे रहे या बुरे रहे। आकुलता इसलिए नही आती कि आपने उनसे तो भेदविज्ञान बना लिया है कि मैं इनसे निराला हू, ये सब गैर है। तो ऐसे ही इन सासारिक समस्त अनात्मतत्त्वोसे यदि यह भेदविज्ञान बने कि मै इन सर्वसे निराला, शरीर तकसे भी निराला चैतन्यमात्र हू, ऐसी प्रतीति बने, ऐसा सत्यका आग्रह बने तो वहाँ आकुलताका फिर क्या काम है? तो वह स्वरूप जो रूपातीत ध्यानमे ध्याया जा रहा है वह आनन्दमय है, शुद्ध है, स्वभावत समस्त परपदार्थोसे पृथक् है। परभावोकी बात अभी नही कह रहे, पर प्रत्येक जीव परपदार्थोसे निराला है। सभी शुद्ध हुए उस नयदृष्टिसे, लेकिन ऐसा होकर भी अपनेको शुद्ध समझ नही सकते। और परपदार्थोमें लगे भिडे सने हुए ही कल्पनासे अपनको मान रहे है, तो वह तो उनकी कल्पनासे परतत्रता है, पर किसी पदार्थमे किसी अन्य पदार्थका प्रवेश नही है, इतनी शुद्धता तो अनादि अनत समस्त पदार्थोमे है और फिर यहाँ स्वभाव और विभावका भेदविज्ञान करके शुद्धको निरखा जा रहा है। ऐसा मैं चैतन्यमात्र शुद्ध आत्मा हू और अमूर्त हू, रूप आदिक विडम्बनाओसे दूर हू, तभी मैं चैतन्यात्मक हू, आनदस्वरूप हू। इस तत्त्वमे जब दृष्टि खचित होती है, फिर उसमे अगर रह जाय उपयोग तो उस समय उस अनुभवमे जो बात होती है, आनन्द होता है, बस दुनियामे सारभूत बात इतनी ही है, बाकी सारी चीजोमे तो कुछ भी सारभूत बात न मिलेगी।

असार सम्पर्कोसे निवृत्त होकर रूपातीत ध्यानमे उतरनेका अनुरोध——भैया! इन सब चीजोका समागम कितने दिनोका है, यहाँ किसको क्या दिखाना है, कौन यहाँ मेरा प्रभु है? यहाँ किसको प्रसन्न करना, किसको दिखाना, किनमे यश चाहना, किनमे पोजीशन बढाना? है ना ये सब व्यर्थकी बातें! अहो मोही जन इन ही व्यर्थ बातोकी कल्पनायें गढ-गढकर अपने जीवनको बरबाद किए जा रहे है। यहाँ एक अपने आत्मस्वभावको भूलकर किन असार पदार्थोमे अपनी दृष्टि गडाई जाय? किन चीजोके लिए अपने जीवनको यहाँ आकुलित बनाया

जाय ? निरतर व्यर्थकी कल्पनायें जो बनायी जा रही है वे तो अपनी बरबादीके ही कारणभूत है। तो यह आत्मा अमूर्त है, परम अक्षर है, अविनाशी है। ऐसे आत्माको इस आत्माके ही द्वारा स्मरण करे तो इस स्मरणको कहेगे रूपातीत ध्यान। धर्मध्यानके इस प्रकरणमे ज्ञानीने प्रभुकी आज्ञाको प्रधान करके ध्यान किया। फिर रागादिक भावोंके विनाशकी उत्सुकताका भाव लगाकर ध्यान किया, फिर कर्मोंके नाना विपाकोको निरखकर ससारसे उपेक्षा भाव करके ध्यान किया, फिर पिण्डस्थ, पदस्थ और रूपस्थमें क्रमसे बढ़-बढकर इसने अपना चित्त एकाग्र किया, और अब उस तत्त्वपर उतरा जा रहा है जिसके लिए ये पूर्वके सारे ध्यान बनाये गए थे। उस आत्मतत्त्वका जो आत्मासे ही स्मरण करे उसके ध्यानको रूपातीत ध्यान कहते है।

वदन्ति योगिनो ध्यान चित्तमेवमनाकुलम्।
कथ शिवत्वमापन्नमात्मान सस्मरेन्मुनि ॥२०७४॥

मुक्तिप्राप्त सिद्ध प्रभुके स्मरणमे अनाकुल चित्तकी संभवतापर प्रश्न—क्षोभरहित परिणामको ध्यान कहते है। जहाँ आकुलता न हो ऐसे एकाग्र चित्तको योगीजनोने ध्यान बताया है। ऐसी बात सुनकर बात तो ठीक है कि नही, लेकिन सुनकर जो कोई विवेकी पुरुष है उसने या तो किसी प्रकारकी आशका मिटानेके लिए यह प्रश्न किया है या प्रकरणको स्पष्ट करानेके लिये यह प्रश्न किया है कि जब क्षोभरहित परिणामका नाम ध्यान है तो मोक्ष प्राप्त आत्माका अर्थात् सिद्ध भगवानका कोई स्मरण कैसे करें, क्योकि ध्यान करने वाला है यह मुनि। और ध्यान किया जा रहा है मोक्ष प्राप्त सिद्ध भगवानका। तो जहाँ यह द्विविधा है— ध्यान और है, ध्येय और है तो ऐसे ध्येयको उपयोगमे लेनेसे तो क्षोभ होगा। इस प्रश्नके उत्तरमे कह रहे है—

विवेच्य तद्गुणग्राम तत्स्वरूप निरूप्य च।
अनन्यशरणो ज्ञानी तस्मिन्नेव लय व्रजेत् ॥२०७५॥

सिद्धप्रभुके स्मरण व उपयोगमे अनन्यशरणताकी संभवतासे ध्यानसिद्धिका समाधान—कहते है कि प्रथम तो परमात्माके गुण समूहको, उसके स्वरूपको पृथक् पृथक् विचारे, और फिर उन गुणोके समुदायरूप परमात्माको गुणगुणीके अभिन्न भावमे विचारे और फिर अन्य किसीकी शरणसे रहित होकर ज्ञानी पुरुष उसी परमात्मामे लीन हो जावे। यह ज्ञानी जब अनन्य शरण हो जाता है तब उस ही मे लयको प्राप्त हो जाता है। भले ही उस सिद्ध प्रभुके ध्यानके प्रारम्भमे द्वैत बुद्धि है और प्रकट भी द्वैतता है। यह ज्ञानी भी ध्यान किसी अन्य क्षेत्र मे विराजे हुएका कर रहा है, लेकिन वहाँ जब गुणसमूहका विचार किया जाता है तो उस विचारमे चलते-चलते एक चैतन्यस्वभावका विचार रह जाता है और व्यक्ति छूट जाती है और उस चैतन्यस्वरूपका फिर जब ध्यान चलता है तो यह द्वैत नही रहता कि ध्यान करने वाला

और है और ध्यानमे लाया गया पदार्थ और है। वह चैतन्यस्वरूप जब उपयोगमे आये तो चैतन्यस्वरूप और उपयोग—ये दोनो वहाँ एकरस हो जाते हैं, भेद नही मालूम होता है। तो उस समय यह ज्ञानी लयको प्राप्त हो जाता है। हम चौकीका ज्ञान करें तो ज्ञान और चौकी एक रस कैसे बन सकते है? विलक्षण चीज है, विरुद्ध चीज है, ध्येय वस्तु अन्य तो ध्याता है व अन्य है और जब ज्ञान ही ध्यान करने वाला है और ज्ञानस्वरूप ही ध्येय बन जाता है तो वहाँ वह ध्यान ध्याता ध्येयका द्वैत मिट सकता है और वहाँ एकरूपता आ सकती है। इस कारणसे रूपातीतके ध्यानके लिए मुमुक्षुजनोको ऋषिजनोने आदेश दिया है।

तद्गुणग्रामसम्पूर्णं तत्स्वभावैकभावित ।
कृत्वात्मान ततो ध्यानी योजयेत्परमात्मनि ॥२०७६॥

परमात्मतत्त्वकी अभेदोपासनाका समाधान—परमात्माके स्वभावमे एक भावसे भावित हुआ योगी अर्थात् परमात्माके स्वभावका ध्यान करते हुएमे तन्मय हुआ अन्य सब सुध बुधोसे, विकल्पोसे दूर हुआ परमात्मतत्त्वरूप अपनेको करता हुआ यह योगी परमात्माके सपूर्ण गुणोंसे युक्त तद्वत अपने आत्माको करके फिर उसे परमात्माको योजित करता है, ऐसा वहाँ ध्यानका विधान है। ध्यान किस विषयमे किया जाता है? वह ध्यान यदि बडी उत्सुकतासे हुआ है तो ध्यान करने वाला अपनेको तद्रूप अनुभवने लगता है। तो जब परमात्मा सिद्ध भगवान के उन समस्त अनत गुणोको चतुष्टयको अनत आनद, अनत ज्ञान इन ज्ञानोंसे ध्याया तो ऐसा एक होकर ध्येयके वे समस्त विकास इसके उपयोगमे ऐसे अभेदरूपसे ज्ञेय बने कि उस रूप अपनेको मानने लगा और ऐसे ध्यानोंके कारण यह योगी परमात्मस्वरूपमे अद्वैतरूपसे ध्यान करने लगता है। यह उस शकाके समाधानमे बात कर रहे है जहाँ पूछा गया था कि भक्त अलग है और सिद्ध भगवान अलग है? एक आत्मा दूसरे आत्माका ध्यान करेगा तो चूकि विषय अन्य हो जानेसे, द्वैत हो जानेसे उसके क्षोभ तो आयगा, कुछ विकल्प तो आयेंगे। तव ध्यान कैसे बनेगा? इसके समाधानमे कह रहे है कि यह योगी परमात्माके स्वरूपको इस प्रकार एक नयसे ध्यान करता है कि वह तो उसका स्वभाव ही भावित हो गया, तो यो वहाँ लीन हो जाता है।

द्वयोर्गुणैर्मत साम्य व्यक्तिशक्तिव्यपेक्षया ।
विशुद्धेतरयो· स्वात्मतत्त्वयो परमागमे ॥२०७७॥

परमात्माके व्यक्त स्वरूप और अपने शक्त स्वरूपकी समानताके अनुभवका प्रभाव—आगममे बताया है कि परमात्माको स्वरूप विशुद्ध है, कर्मरहित है, और यह जो हम आप उपासना करने वाले है वे अभी कर्मसहित है और विशुद्ध भी नही है, किन्तु शक्तिकी अपेक्षा और व्यक्तिकी अपेक्षासे यदि मिलान किया जाय अर्थात् जो उनका व्यक्त स्वरूप है एव अपो

आपमे शक्ति रूपसे मिलाया जाय तो वहाँ समानता पायी जाती है। जैसे एक गर्म पानी और दूसरे ठडे पानीमे व्यक्तिकी अपेक्षासे उनमे अन्तर है लेकिन ठडे पानीके व्यक्तस्वरूपको और गर्म पानीमे इस प्रकारकी दृष्टिसे देखें कि इसका ठडा स्वभाव है तो यह शक्तिसे जो देखा और दूसरे शीतल जलमे जो व्यक्तरूप देखा उसकी समानता मिली। इसी प्रकार भगवानमे जो ज्ञानका, आनदका चरम विकास है उसमे जो उनकी स्थिति है उसे हम अपनेमे शक्तिरूपसे निरखते है तो एक समान है। तो यो व्यक्तिको और यहाँ शक्तिको जोड दिया ध्यानमे तो इस तरह हम उस प्रभुके ध्यानमे एक हो सकते है, लीन, निर्विकल्प हो सकते है। प्रभुका गुणगान करके यदि अपने आपकी शक्तिका परिचय नही पाता है कोई तो आया किसलिए है ? और बाते तो किसी प्रकार अन्यत्र भी बन सकती थी, प्रभुभजनमे तो यह दृष्टि लेना है कि जो प्रभु का आनदमय स्वरूप है वह मेरेमे शक्तिरूप है, हम भी उसी मार्गपर चले तो उसे प्रकट कर सकते है। तो अपनी शक्ति और प्रभुका व्यक्त स्वरूप, इनकी तो समानता है। तो अद्वैतके लिए एकाग्र चित्त होनेके लिए रास्ता तो मिला। इस तरह अपनी शक्तिको छोडकर उस व्यक्तिमे यह जीव एकाग्रचित्त हो जाता है।

य· प्रमाणनयैर्नूनं स्वतत्त्वमवबुद्धचते।
बुद्धचते परमात्मानं स योगी वीतविभ्रम ॥२०७८॥

स्वतत्त्वके अवबोधसे परमात्माका अवबोध—जो पुरुप प्रमाण और नयोके द्वारा अपने आत्माके तत्त्वको जानता है वही योगी भ्रमरहित होकर परमात्माको जानता है। परमात्मासे यह भक्त निरखेगा क्या ? अपने आत्माकी शक्तिस्वभावदृष्टिसे कुछ अनुभवी हुई हो, परिचय हुआ हो तो प्रभुके स्वरूपको भी हम समझ सकते है। यद्यपि कुछ अशो तक हम ऐसी परस्पर अपेक्षा कर सकते है कि प्रभुके स्वरूपको जानेंगे तो हम अपनी शक्तिको जानेंगे, अपनी शक्ति को जानेंगे तो हम प्रभुके स्वरूपको जानेंगे। यद्यपि कुछ कुछ अशोमे हम ऐसी परस्पर अपेक्षा की बात रख सकते है, किन्तु यह तो बतावो कि थोडी बहुत शुरुवात कहाँसे हुई ? कुछ बोध यहाँसे जगे तो फिर परमात्मस्वरूपका बोध हो, फिर उस बोधसे अपने आत्माका और बोध जगे, फिर परमात्मस्वरूपमे बोध जगे, इस तरह बढोतरी हो जायगी। शुरुवात हम कहाँसे कर पायेंगे ? इसका निर्णय कीजिए। शुरुवात हमारी हमारे आत्मासे होगी। यद्यपि इस प्रसगमे हम कही यह निर्णय नही बना सकते कि शुरुवात यह है अब यहाँ चले। एक व्यवहारनयमे, शुद्ध व्यवहारनयमे प्रभुभजनके प्रसंगमे चले आये है, कुछ यहाँ व कुछ वहाँ दृष्टि है, है शुद्धमे सो सफलता मिल जाती है।

स्वके अनुभवके अनुरूप परमें घटनाका बोध—स्थिति कैसी ही हो, पर अपने आपके आत्माकी निरख बिना हम परमात्माके स्वरूपको नही आक सकते कि क्या है ? जैसे किसी

पुरुषको कोई दर्द हो रहा है जिसे कहते हैं कि हडफूटन हो रही है या शरीरके कोई अग बायके कारण तडक रहे है, उस दर्दको हम देख रहे है, उसके रूपको लख रहे है, उस रोगी के मुखसे वेदनाका स्वरूप सुन रहे है, पर हम उस दर्दका अन्दाजा कब कर पाते है ? जब हम अपने उपयोगमे कुछ अपने उस दर्दरूप परिणतिसी ज्ञानमे बनाते हैं तब उस दर्दका अदाजा कर सकते है । ये अन्य बाते तो बहुत-बहुत घटनाओमे घटित होती है । किसी भी जीवके किसी महान दुःख दर्दको निरखकर पशु कट रहे है, पक्षी मारे जा रहे है, उन्हे बहुत बुरी तरहसे मारा जा रहा है, ये बातें देखते है या सुनते है तो हम उनके दर्दकी बात कब समझ पाते है ? जब हम अपने आपमे उस वेदनाका गुन्तारा लगा लेते हैं । यद्यपि हम कुछ समय सोचनेमे नही लगाते, होते है दूसरे काम लेकिन अपने आपमे किसी प्रकार जब इतना गुन्तारा लगाते है यो होता है दर्द, कुछ अपने आपसे हम थोडी झलक करते है—अपने आपके बारेमे दर्दकी, तो हमे उनके दर्दका स्पष्ट अदाजा हो जाता है । किसी दु खी जीवको देख कर करुणा कैसे उपजती है ? उसका स्रोत क्या है जिसमे स्वय उस जातिकी कुछ वेदना जगती है तब करुणा उपजती है । तो इसी तरह हम यह स्वरूप भक्तिके बारेमे भी समझें कि प्रभुके स्वरूपका हम कब बोध कर पाते हैं, कब हम अच्छा अदाजा लगा सकते हैं ? जब हम मे कुछ अपने आपमे भी उन अपने गुणोको किसी अशमे समझा हो, माना हो तो हम प्रभु स्वरूपकी महिमा परख सकते है ।

निज वैभवकी झांकीसे परमात्मवैभवका अन्दाजा—यहाँ कहा जा रहा है कि प्रमाण से नयोंसे अपने आत्माके स्वरूपकी जो व्यवस्था बना सकता है, जानकारी रखता है वह ही परमात्माको जानता है । अब आत्मतत्त्वका बोध कैसे बनता है ? उसकी यह चर्चा विस्तृत है और बहुत कुछ परिचित है सब लोग । स्याद्वाद है यह, जिसमे आत्मतत्त्वका निर्णय किया जाता है । नित्य हो, अनित्य हो, एक हो अनेक हो । यह मैं अनन्त गुणोका पिण्ड हू । जितने गुण है उतनी परिणतियाँ प्रति समय हो रही है । और यह मैं अपने प्रदेशोमे ही रहता हुआ अपने ही स्वरूपमे, अपने ही गुणोमे परिणमता हुआ चल रहा हू, चलता रहूगा आदिक अनेक परिणतियोसे जब आत्मतत्त्वका बोधन हो और बोधनमात्र ही नही किन्तु उसकी अनुभूति जगी हो, ज्ञानमात्रका उपयोग करके उस प्रकारका अनुभव बना हो उसमे जो आनन्द पाया उसके बलसे यह ज्ञानी जानता है कि इस प्रभुके स्वरूपकी क्या महिमा होती है ?

व्योमाकारमनाकार निष्पन्न शान्तमच्युतम् ।
चारमाङ्गात्कियन्न्यून स्वप्रदेशैर्घनै स्थितम् ॥२०७९॥
लोकाग्रशिखरासीन शिवीभूतमनामयम् ।
पुरुषाकारमापन्नमप्यमूर्त्तं च चिन्तयेत् ॥२०८०॥

अनाकार आत्मतत्त्वका अनुभव और प्रभाव—ऐसे विशाल आकाशके बराबर आकार वाला, व्योमाकार, आकाशवत निर्लेप, निराकार परमात्माका ध्यान रूपातीत ध्यानमे होता है। इन्द्रियके व्यापारोको रोककर, शरीरका भी विकल्प तोडकर अपने आपमे निरखने चले तो मिलेगा क्या वहाँ ? एक ज्ञानस्वरूप, एक जाननस्वरूप। जिसे हम किसी रूपमे नही पकड सकते, जिसे हम किसी सिद्धान्तमे नही पकड सकते। केवल भावात्मक तत्त्व है। वह आकाशवत् अमूर्त है, निर्लेप है। इस तरह अपने आपको ध्यानमे ला रहा है यह योगी। ये सब बातें मोह जालके विध्वस करनेमे कारण है इसलिए इसका अपनी शान्तिके लिए बड़ा महत्त्व है। मै आकाशवत् अमूर्त और निर्लेप हू, ऐसा अनुभव पानेके बाद इसके बाह्यमे यह दृढ़ निर्णय होता है कि समस्त समागम प्रकट भिन्न है, मेरे लिए असार है, इनसे मेरेको कुछ लाभ नही है। जब कोई बडे लाभकी बात पा ले तब ही तो वह इन समस्त सासारिक सुख के समागमोको असार जान सकता है। किसी भिखारीसे कोई कहे कि तू अपनी झोलीमे ये १०—५ दिनकी सडी रोटी लिए है, तू इनको फेंक दे, मै तुझे ताजी पूडी पक्वान दूगा। तो उसके कहने मात्रसे वह फेकता नही है। उसे विश्वास ही नही होता। और जब वह ताजा पूडी पकवान लाकर उसके सामने रख दे और उसे दे दे तो वह फेंक भी देगा। उनके रखने से क्या फायदा ? तो हम अपने आपके ज्ञानमात्र अनुभवसे उत्पन्न हुए आनन्दका उपयोग करनेकी धुनि न बनायें और गाते रहे बहुत-बहुत तो इतना गाने मात्रसे यह अपने आपका जो विकार है, विष है वह हट नही पाता है।

ज्ञानानुभवसे ही विशुद्धानन्दका लाभ—यदि रहा सहा जो १०-५ वर्षका समय है उस समयको ऐसे पागलपनमे बिता दें—जिस पागलपनके मायने है जो दुनियाके लिए पागल-पन दिखता है, यदि इसको हम अपने ज्ञानकी धुनिमे बिता दे और चाहे कितने ही उपसर्ग सामने आये उनकी परवाह न करें, उन्हे समझें कि ये है ही नही मेरे ऊपर कुछ, ऐसी धुनि-पूर्वक बिता दे तो अनन्त काल तो हमारा बीत गया, ये १०—५ वर्ष अगर हमारे इस तरह बीत जायें तो कौनसे समयका घाटा है ? समय तो अनन्त है और अनन्त समय तक रहना है। भैया ! ऐसी धुनि बन तो सकती है। थोडा साहस करे और सत्सग बढायें, स्वाध्यायमे समय बढे तो ये सब बातें हम अपनेमे पा भी सकते है। प्रमादसे तो काम न चलेगा, श्रम करना होगा। जैसे लडके लोगोको देखा होगा वे झूठी पगत करते है आपसमे, पत्ते परोस दिये तो कह दिया कि लो ये पूडिया है, ककड परोस दिये तो कह दिया कि लो ये बूदी है, ढेला परोस दिया तो कह दिया कि लो ये लड्डू है। तो इस तरहकी पगत करनेसे उन लडकोका मन भर जायगा, पर पेट तो नही भर पायगा। इसी तरहसे एक अनुभूतिका प्रयोग किये बिना भीतरमे एक आत्महितकी अभिलाषापूर्वक अपनेमे अपनेको जोडे बिना इन बातोको

सुनकर पढ़कर कुछ मन तो भर जायगा, पर वह स्वाद तो न मिल पायगा जो सिद्धप्रभुके समान जातिका ग्रानद भोगा जाता है।

आत्मतत्त्वकी स्वयंनिष्पन्नता—यह ज्ञानी चिन्तन कर रहा है कि यह मैं आकाशवत् निराकार हू, स्वय निष्पन्न हू, मुझे किसीने बनाया नही, अनादिसे ही पूराका पूरा बना हुआ हू, सत्त्वके कारण ही परिपूर्ण हू, अधूरा कभी होता ही नही मै। कोई लोग कहते हैं—पूर्णमदः पूर्णमिद पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णात्पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।। एक पूर्ण ब्रह्मकी स्तुतिमे कहा है लेकिन अध्यात्मसे घटित किया जाय तो एक मर्म विदित होता है--यह आत्मा पूर्ण है, किसी भी समय अधूरा नही है। जब निगोद स्थितिमे है तब भी यह अधूरा नही है। जिस रूप भी परिणम रहा है वह वहाँ उसमे ही परिपूर्ण है, अधूरा क्या है ? जब और अच्छी स्थितिमे आया तब भी यह सत् परिपूर्ण है। कुछ भी अवस्था हो, ऐसा कोई पदार्थ नही है जिसमे अधूरेपनकी कभी कोई बात हो। तो यह आत्मा पूर्ण है और वह भी पूर्ण है प्रभु, जिसको आदर्शमे लेकर हम अपने आपकी समझ बढा रहे है। यह पूर्ण है और पूर्णसे से पूर्ण निकलता है। इस परिपूर्ण आत्मासे जब भी जो पर्याय प्रकट होती है वह परिपूर्ण ही प्रकट होती है। चाहे सिद्ध पर्याय हो, चाहे विकृत पर्याय हो, सत्त्वकी बात तो परिपूर्ण ही है। क्या कोई पर्याय ऐसी है कि जो यह कहे कि हम तो अभी आधे ही बन पाये है, अभी आधे और बनना है ? अरे एक ही समयमे जो कुछ बनता है वह तो पूर्ण है। तो इस पूर्णसे पूर्ण निकलता है और पूर्णसे पूर्णको ग्रहण करके भी उस निकले हुए परिपूर्णको पूर्णमे विलीन करके भी यह शेषमे क्या रहा ? पूर्णका पूर्ण। यह आत्मा स्वतः निष्पन्न है, यह अधूरा नही है।

आत्मतत्त्वकी अच्युतस्वरूपता—यह आत्मा शान्त है, स्वभावत यह निराकुल है। स्वरूप इसका ज्ञानमात्र है, वह अनाकुलताको ही लिए हुए है। यो यह मै शान्त हू और जो कुछ भी मेरा स्वरूप है उस स्वरूपसे मैं च्युत नही होता। कोई पदार्थ अपने स्वरूपको, स्वभावको कभी नही छोड सकता, यह नियम है। यदि छोड देता होता तो आज जगतमे कुछ भी न होता, शून्य होता। ये पदार्थ अब भी मौजूद है। ये इस बातका प्रमाण दे रहे है कि इन सब पदार्थोंमे से किसी भी पदार्थने अपना स्वरूप नही तजा। इनकी उपस्थिति ही इस बातकी घोषणा कर रही है। यह मैं आत्मा अपने स्वरूपसे अच्युत हू, सिद्ध प्रभुका ध्यान चल रहा है। वे प्रभु जिस शरीरसे मुक्त हुए है उस अतिम शरीरसे कुछ न्यून है। न्यून क्या है ? जो हम आपके बाहर निकले हुए नख है या जो केशोंके अन्तिम रोम है या जो इस शरीरके ऊपर की सबसे पतली चमडेकी झिल्ली है, इन सबमे भी आत्मप्रदेश नही है, पर वे भी शरीरके अङ्ग कहलाते है। शरीर जहाँ दूर हुआ बस जितना आत्मा है उतना ही रह गया। अपने

प्रदेशमे घनरूपसे स्थित है, ऐसा सिद्धका ध्यान हो रहा है। सिद्धका ध्यान करनेमे अपनेमे अपना भी ध्यान किया जा सकता है। यह मै भी देहसे कुछ न्यून हू अब भी। इतनी बात घटा लो—बाहर निकले हुए नख, केशोका ऊपरी भाग, शरीरके ऊपरकी पतली चमडेकी झिल्ली, इनमें आत्मप्रदेश नही है, पर मै अपने प्रदेशोमे घनरूपसे स्थित हू, इस प्रकार यह रूपातीत ध्यानी आत्मतत्त्वका चिन्तन कर रहा है।

(रूपातीतध्यानवर्णन प्रकरण ४०)

सिद्ध प्रभुकी लोकाग्रशिखरपर आसीनता—तत्त्ववेदी पुरुष सर्वोत्कृष्ट निर्दोष सर्वगुण सम्पूर्ण सिद्ध परमात्माका ध्यान कर रहा है। यह प्रभु लोकके अतिम शिखरपर विराजमान है, सर्व कर्मकलकोसे छुटकारा पा चुके है। यह जीव स्वभावतः ऊर्ध्व गमन करता है और कहाँ तक चला जाता है, जहाँ तक लोक है। लोकके शिखरपर वहाँ सिद्ध प्रभु विराजे है। ऐसा ऊर्ध्वगमनका जीवमे स्वभाव है, लेकिन कर्मकलकसे दबा हुआ होनेके कारण यह अपने स्वभाव रूप गमन नही कर पाता। जहाँ चाहे ऊच नीच गतियोंमे यह जीव उत्पन्न होता रहता है। तो जैसे कीचडसे भरी हुई तुम्बी पानीमे डाल दी जाय तो वह तुम्बी नीचे चली जाती है, किन्तु जब वह कीचड निखर जाता है तो वह तुम्बी स्वभावसे ही ऊपर आ जाती है, इसी प्रकार जब जीवके ये कर्म निखर जाते है, बन्धन टूट जाता है तो यह आत्मा शुद्ध होकर ऊर्ध्वगतिको गमन करके लोकके अन्त तक पहुच जाता है। ये प्रभु लोकके अन्तमे विराजमान है।

प्रभुकी कल्याणस्वरूपता एवं अनामयता—प्रभु स्वय कल्याणस्वरूप है। इनकी कल्याणमूर्तिको देखकर भव्यजन अपने कल्याणका मार्ग प्राप्त करते हैं। ये प्रभु सर्व रोग रहित है। रोगोका आधार शरीर है। शरीरोसे वे मुक्त हो गए, तब फिर रोगोका वहाँ काम क्या? रोग दूर होनेके लिए ज्ञानी पुरुषोने यह दवा दी है कि रोग रहित आत्माके स्वरूपका दर्शन करने लग जायें। इससे जरूर असर होगा, स्थायी असर होगा। तत्काल असर न भी हो सके, पर कुछ समय बाद यह ऐसे पदको प्राप्त कर लेगा, जैसे कोई रोग हो तो भीतरमे एक ऐसा साहस बने कि इस शरीरसे अपना उपयोग हटाकर केवल ज्ञानमात्र जैसा कि सर्व विविक्त स्वरूप है उसका ध्यान बन जाय तो देह पसीनेसे भर जायगा और सब रोग निकल जायेंगे। ऐसा भी होता है। और इस आत्मस्वरूपको निरखनेपर उसका उपयोग विशुद्ध रहता है। रोगकी कल्पना भी नही है।

पुरुषाकार अमूर्त परमात्मतत्त्वका चिन्तन—ये प्रभु पुरुषाकार है। जिस देहसे मुक्त हो गए उस देहके आकार आकार है। फिर भी आत्माके प्रदेश जहाँ तक ठहरे है इस दृष्टिसे तो उनका आकार है, किन्तु मूर्तिकी तरह आकार बने ऐसा आकार नही है। वे अमूर्त हैं। ऐसे दिव्यस्वरूपका यह ज्ञानी स्पष्ट चिन्तन कर रहा है। ये ज्ञानीजन अपने चित्तको और कहाँ

लगायें ? अन्यत्र अपना चित्त लगानेसे कोई भी प्रयोजन नही सिद्ध होता । वे शुद्ध तत्त्वका ध्यान करते है । सिद्धको जानता हुआ, सिद्धका ध्यान करता हुआ पुरुष उस उपयोग रूप होता है और उसमे परिणति भी शुद्ध होने लगती है और अशुद्धको जाने, अशुद्धमे सम्पर्क रखे तो उसके फलमे शुद्ध परिणतिकी क्या आशा हो सकती है ? ये प्रभु ऐसे निर्दोष सर्वगुण सम्पन्न है । इस प्रकार रूपातीत ध्यानमे ज्ञानी पुरुष उत्कृष्ट परमात्मतत्त्वका चिन्तन कर रहा है ।

निष्कलस्य विशुद्धस्य निष्पन्नस्य जगद्गुरोः ।
चिदानन्दमयस्योच्चैः कथ स्यात्पुरुषाकृति ॥२०८१॥

निष्कल परमात्माकी पुरुषाकारताकी संभवतापर प्रश्न—सिद्धस्वरूपको रुचिसे सुनने वाला और उससे अपना ध्यान विशुद्ध करने वाला कोई श्रोता एक विशद आशय बनानेके लिए एक प्रश्न रख रहा है कि ये भगवान देहरहित है, निष्कल हैं, विशुद्ध है, निष्पन्न हैं, चिदानन्द स्वरूप है, ऐसे आत्माका आकार पुरुषके समान कैसे बनाया जा रहा है ? यह आत्मा फैल भी सकता था । सारे लोकमे फैल जाय या सिकुड करके वटबीजकी तरह छोटा बन जाय, अथवा कुछ भी हो । एक ढगसे पुरुषाकार बन जाना, बना रहना, यह कैसे सम्भव है ? इस प्रश्नका समाधान करते है—

विनिर्गतमधूच्छिष्टप्रतिमे मूषिकोदरे ।
यादृग्गगन सस्थान तदाकार स्मरेद्विभुम् ॥२०८२॥

अन्य आकार होनेका कारण न होनेसे परमात्माकी अन्तिमदेहाकारता—जिस प्रकार से एक मूषिका तैयार की जाती है । उसके अन्दर मोम भरा हुआ होता है और पिघला देने पर उस मूषिकाका एक आकारमात्र रह जाता है । वहाँ एक आकाशका आकार मात्र रह जाता है इसी प्रकार प्रभुका जब वह शरीर उड गया तो वहाँ क्या रह गया ? जैसा वह शरीर है बस तदाकार रह गया । दूसरी बात यह है कि आत्माका फैलना और सिकुडना ये आत्मा मे आत्माके कारण स्वभावसे नही है । किन्तु उस उस प्रकारके कर्मविपाकसे यह सिकुडता और फैलता है । जैसा शरीर मिला उस प्रकारसे यह फैल गया । अभी हाथीके शरीरमे है और मरकर चीटीके शरीरमे आ गया तो चीटीके शरीर बराबर आकारमे फैल गया, यही उसका सिकुडना हुआ । और अभी चीटीके शरीरमे है और मरकर हाथीके शरीरमे पहुच गया तो यह हाथीके शरीरके आकार बराबर फैल गया । यो ही जिस किसी भी जगह यह उत्पन्न हुआ उसी आकार रूपमे यह फैल अथवा सिकुड जाता है । जब कर्मसमूह दूर हुए, शरीर विघटा तो अब क्या कारण होगा कि अन्य आकार बन जाय । फैल जाय तो उसका कारण क्या ? सिकुड जाय तो उसका कारण क्या ? जिस आकारमे है उस मात्र रह गया ।

इसी सम्बन्धमें अब दूसरा दृष्टान्त दे रहे है ।

सर्वावयवसम्पूर्णं सर्वलक्षणलक्षितम् ।
विशुद्धादर्शसङ्क्रान्तप्रतिबिम्बसम प्रभम् ।।२०८३।।

ज्ञानीका वैभव सर्वस्व—समस्त अवयवोसे परिपूर्ण उन समस्त लक्षणोसे लक्षित ऐसे निर्मल दर्पणमे जो प्रतिबिम्ब पड रहा हो उसके समान प्रभावाला यह परमात्मतत्त्व है उसका चिन्तन करें । जैसे निर्मल दर्पणमे जिस पुरुषका प्रतिबिम्ब पडा है उसके समस्त अवयव और लक्षण दिखाई देते है इसी प्रकार परमात्माके प्रदेश शरीरके अवयवरूपसे परिणमते है और वहाँ समस्त लक्षणोकी तरह समस्त गुण रहते है । क्या हो गया ? शरीरका खेल मिट गया और विशुद्ध निर्विकल्प निष्तरग जो था सो रह गया । ऐसी कैवल्यपरिणति जब होती है तो भक्तजन उनके गुणगानमे उनके सम्मानमे अपने जी भर समस्त वैभव लगाकर आनन्द मानता है । सब एक दृष्टिका फेर है, जिसको धर्म रुचा है उसका ऐसे प्रसगोमे ही तन, मन, धन और वचन है । अपने आपमे धर्मकी दृष्टि न जगे, उनके लिए ये परिवारजन जिनमे प्रीति हो, राग हो, जिसके कारण कुछ स्वार्थ अधिक सिद्ध हो, विषयसाधन हो, मनकी वृत्ति हो उसे बस वह ही सर्वस्व है, और कदाचित् उनका वियोग हो जाय तो यह मानता है कि मेरी तो दुनिया लुट गई और कितने ही लोग तो उस समय अपने ही प्राण खो देते है, धीरज समाप्त कर देते है । है क्या ? ये तो सब उन्मत्त चेष्टाये है ।

सिद्ध परमात्माकी उपासनामें ही शरणका लाभ—इस विशाल लोकमे यह परिचित क्षेत्र कितना-सा क्षेत्र है ? यह समस्त लोकका असख्यातवा भाग है, करोडवा भी भाग नही, अरबवा भी भाग नही । इससे भी परे सख्यातया भी भाग नही, यह तो असख्यातवा भाग है । इतनी सी जगहमे मोह ममता करके क्यो अपनेको बरबाद किया जा रहा है ? इनको छोडकर इस सर्वलोकपर दृष्टि दें, सर्वजीवोपर दृष्टि दें और सर्वसमयोपर दृष्टि दे तो आत्मीय ज्ञाननेत्र जगेगा और फिर अन्तरमे यह मोहान्धकार न रहेगा । जिन्होंने ऐसी उदार विशाल दृष्टि की है वे भव्य आत्मा इन बन्धनोको तोड़कर सदाके लिए आनन्दमग्न हो गए । उनका ध्यान न करें तो किसके ध्यानमे लगे ? कौन है जगतमे ऐसा पुरुष अथवा अन्य कोई भी जीव जो हमारे लिए शरण बन सके ? एकमात्र यह निर्दोष परमात्मा ही ध्यानके योग्य है । तो ज्ञानी पुरुषकी बस एक लक्ष्यपूर्वक एक इस ही निर्दोष तत्त्वपर दृष्टि जाती है, वह किसीके बहकाये बहकता नही है ।

देवतासे स्वार्थसाधनाकी प्रार्थनाका व्यर्थ विकल्प—घरमे कोई बच्चा बीमार हो जाय और कोई कह दे कि अमुक देवस्थानपर इसे ले जावो, उसका पूजा पाठ करो तुम्हारा लडका ठीक हो जायगा, तो इस प्रकारकी बातें मानकर खोटे देवी देवताओकी आराधना करना योग्य

नही है। एक ग्वालाके पास १०० भैसे थी। तो एक बार भैसोपर चेचककी बीमारी आयी। तो उस बीमारीमे उसकी भैंसें मरने लगी। तो वह ग्वाला किसी चेचक देवीकी मूर्तिके पास जाकर उसकी बहुत आराधना करे अपनी भैसोको बचानेके लिए। इतना करनेपर भी उसकी रोज-रोज बहुतसी भैंसें मरती गई। यहाँ तक कि जितना अधिक वह उस चेचक देवीसे भैसोके बचनेकी प्रार्थना करे उतना ही अधिक उसकी भैसे मरती जावें। (यह सही घटना सुना रहे है) तो ९० भैंसें मर गयी। जब १० भैंसें बची तो एक दिन वह उस चेचक देवीसे कहता है कि ऐ देवी! ले ले तू मेरी इन १० भैसोको भी। मै अब तेरी आराधना नही करता, और ले तुझे मैं फोड फाडकर इस नदीमे फेंके देता हू। आखिर फैंक ही दिया। उसी दिनसे सुयोग की बात है कि भैसोका मरना रुक गया। वे दसो भैस उस बीमारीसे बच गईं। तो केवल एक कल्पना भर है कि कोई देवी देवता बचा लेता है। यह सब एक चल रहा है नियोग। ससार जन्ममरण, निमित्तनैमित्तिक भाव एक चक्र है यह। यहाँके पाये हुए समागमोंमे जो अनुरक्त रहेगा वह दु खी होगा और जो इनमे विरक्त रहेगा वह इन समागमोमे रहनेके काल मे भी दु खी न होगा।

फंसावका कारण स्नेह—भैया! इन समागमोसे जो बोले, जो राग करे बस वही फस जाता है। एक राजाको किसी जगलमे एक साधु मिल गया। साधुने उसपर प्रसन्न होकर कहा कि राजन्! तुम्हे क्या चाहिए? तो राजा बोला महाराज मैं एक पुत्र चाहता हू। तो साधुने कहा—अच्छा हो जायगा। कई माह गुजर गए। साधुने सोचा कि अब तो रानीके गर्भका समय है पर इस समय कोई जीव मर नही रहा, किसे इस रानीके गर्भमे भेजूं। सो स्वय ही मरण करके रानीके गर्भमे पहुचा। वहाँ बडे बडे दु ख सहने पडे। तो पेटके अन्दर ही प्रतिज्ञा की कि जब मैं पैदा हो जाऊँगा तो कभी बोलूगा नही। आखिर पैदा हो गया। राजघरानेमे बडी खुशी छा गई। पर जब ७-८ वर्ष तक कुछ बोले ही नही तो राजाको बडा दुःख हुआ। और अपने राज्यमे यह डका बजवा दिया कि मेरे पुत्रको जो बोलता बता देगा उसे बहुतसा पुरस्कार दूगा। बहुतसे लोगोने उसे बोलता बतानेका प्रयत्न किया, पर कोई भी उस कामको कर सकनेमे समर्थ न हो सका। एक दिन वह राजपुत्र वाटिकामे शामके समय खेलने गया। देखा कि एक चिडीमार जाल बिछाये चिडिया पकडना चाहता है, किन्तु कोई चिडिया न दिखी। थोडी देरमे ही जाल लपेटकर चलने लगा, इतनेमे ही एक डालपर बैठी हुई चिडिया च्याऊँ च्याऊँ कर बोल उठी। चिडीमार फिर लौट आया, जाल बिछाया, चिडिया फस गई। उस समय उससे न रहा गया, सो वह राजकुमार बोल उठा—जो बोले सो फसे। इतने शब्द चिडीमारने सुन लिए तो झट जालको फेंककर राजदरबारमे पहुचा और राजासे कहा—महाराज! आपका पुत्र बोलता है। बोलता है? हाँ बोलता है। अच्छा मैंने तुम्हे

१० गावोकी जायदाद पुरस्कारमे दी। जब राजपुत्र घर आया तो बहुत बुलवानेपर भी न न बोले। तो राजाको चिडीमारपर गुस्सा आ गया कि चिड़ीमार भी हमसे मजाक करता है। हमारा पुत्र बोलता नही और यह कहता है कि बोलता है? राजाने उस चिडीमारको फासी का हुक्म दे दिया। राजाने कहा कि ऐ चिडीमार तू जो खाना पीना चाहता हो सो खा पी ले या जिससे मिलना चाहता हो सो मिल ले, तुझे फांसी दी जायगी। तो चिडीमारने कहा—महाराज! मुझे खाना पीना कुछ नही है, मुझे तो सिर्फ १ मिनटके लिए राजपुत्रसे मिला दीजिए। मिला दिया। तो चिडीमार कहता है राजपुत्रसे कि हे राजपुत्र! मुझे मरनेका गम नही, ग़म इस बातका है कि दुनिया यही कहेगी कि चिडीमारने राजासे झूठ बोला था इसलिए उसे फासी दी गई थी। सो कृपा करके आप उतने ही शब्द बोल दीजिए जो वाटिकामे बोले थे। फिर क्या था राजपुत्रने सारा वृत्तान्त सुनाया। देखो—मैं पहिले साधु था। राजासे बोल दिया तो मै फस गया, फिर चिडियाने डालीपर बोल दिया तो वह फसी, अगर न बोलती तो क्यों फसती? चिडीमार तो वहाँसे चला ही जा रहा था। और देखो—चिडीमारने राजासे बोल दिया तो इसे भी फ़ासीका हुक्म मिला। सो जो बोले सो फसे। जो स्नेह करेगा किसी भी जीवसे वह बँधता है ही। तो यह तत्त्ववेदी पुरुष किससे अनुराग करे? ये सब बन्धकी चीजे है। वह तत्त्ववेदी पुरुष तो एक इस विशुद्ध परमात्मतत्त्वमे पहुचता है। तो यह रूपातीत ध्यान निर्दोष सर्वगुणसम्पन्न परमात्माका ध्यान कर रहा है।

इत्यसौ सन्तताभ्यासवशात्सजातनिश्चयः।
अपि स्वप्नाद्यवस्थासु तमेवाध्यक्षमीक्षते ।।२०८४।।

ज्ञानस्वभावके संतत अभ्यासमे परकृत चेष्टाओसे क्षोभका अभाव—मै केवल ज्ञानमात्र हूं, सबसे निराला अपने आपमे आनन्द स्वभावको लिए हुए हू। इस प्रकार ज्ञानमात्र अपने आत्माके चिन्तनका अभ्यास होनेसे उसको पूर्ण निश्चय अपने आपके बारेमे हो जाता है कि मै ज्ञानमात्र हू। यह निश्चय इतना दृढ़ हो जाता है कि कोई सम्मान करे अथवा अपमान करे, इन दोनोमे उसकी यह दृढ प्रतीति है कि मै तो ज्ञानमात्र हू। ये लोग किसी दूसरेके बारे मे सम्मान अपमान आदिकी बातें कर रहे है। जैसे कोई पुरुष समझ लेता है कि अमुक आदमी दूसरे के बारेमे निन्दाकी बात करता है तो उस निन्दा करने वालेका विरोध नही होता, इसी प्रकार यह ज्ञानी अपने को ऐसा लख रहा है कि मै तो शाश्वत ज्ञानमात्र हू और लोग जो कुछ भी रागद्वेष आदिकके व्यवहार करते है वे किसी दूसरेका लक्ष्य करके करते है। ये मुझे कुछ नही कह रहे। ये स्वय ऐसे व्यवहारके कारण स्वय अपनेमे क्षुब्ध हो रहे होंगे। यह बात सम्भव ही है कि कोई ज्ञानी पुरुष अपने बारेमे ज्ञानस्वरूपका विश्वास लेता है और दूसरे लोग कुछ प्रतिकूल क्रियाये करे, तो वह ज्ञानीपुरुष जानता है कि ये लोग

मेरा कुछ भी नही कर रहे । इनकी ये सारी चेष्टाये किसी अन्यको लक्ष्यमे लेकर हो रही हैं ।

ज्ञानके सतताभ्याससे स्वप्नादिक अवस्थाओमे भी तत्त्वके दर्शन—मैं तो ज्ञानमात्र हू, इस प्रकार अपने आपके ज्ञानमात्र स्वरूपका निरन्तर अभ्यास होनेसे एक निश्चय उत्पन्न होता है, फिर वह योगी स्वप्न आदिक अवस्थावोमे भी इस ही तत्त्वको प्रत्यक्षरूपसे देखता है । जिसका निरन्तर अभ्यास किया है स्वप्नमे वही इस योगीको दिख जाता है । यह रूपातीत ध्यानका वर्णन है । मुद्रामण्डल आकार प्रकारसे जो परे है ऐसा यह परमात्मतत्त्व कारण-समयसारा अथवा सिद्ध प्रभु हैं कार्य समयसार । वह है रूपातीत स्वरूप । रूपातीत ध्यानमे परमात्माको निरखा तो प्रभाव अपने पर आता है और अपने स्वभावको निरखा तो अपने पर आया ही । यो निरन्तर अभ्यास करता है ज्ञानानुभवका । इसके प्रतापसे स्वप्न आदिक अवस्थावोमे भी यह तत्त्व प्रत्यक्ष दिखता है ।

सोऽहं सकलवित्सार्वं सिद्ध साध्यो भवच्युतः ।
परमात्मा परमज्योतिर्विश्वदर्शी निरञ्जनः ॥२०८५॥

भवरहित सकलवित् स्वरूपका चिन्तन—वह मैं सर्वज्ञ और निज वैभवसे युक्त हू । देखिये एक सिद्ध प्रभुके गुणोंमे दृष्टि लग रही है और उसही के समान अपनी शक्तिको जब निरखा है तो उस निरखनेमे यह यत्न कर लिया कि इस ही प्रकार सर्वज्ञता मेरा स्वरूप है । व्यक्ति और शक्तिकी बात हृदयमे रखे रहियेगा । वह मैं सिद्ध हू, स्वय सत् हू । अपने गुणोंसे निष्पन्न हू । ऐसा यह मै सिद्ध हू, यही साध्य है । सिद्ध भी यह मैं हू और साध्य भी । क्या बना है वह ? पूर्णविकासमय निरपेक्ष केवल, ऐसा मैं बनूगा । ऐसा अपने आपके सम्बन्धमे परमात्मस्वरूपका निरन्तर खुद निर्णय कर रहा है । सोऽहं । वह मैं हू । यह मैं भवच्युत हू, भवसे रहित हू । सिद्धप्रभु भवसे रहित है और उन्हीको निरखकर अपने स्वरूपको समझकर वह योगी मनन कर रहा है कि मैं भवसे रहित हू । यह मै जो सहज शाश्वत ज्ञानस्वरूप हू वह भवसे च्युत है । बहुत अन्तर मननकी बात है कि परिस्थिति तो है यह ससारी की और विकार परिणमन भी है, जन्ममरण भी हो रहा है, नाना दशायें भी बनती है । ऐसी भी स्थितिमे इस ज्ञानीने कहाँ चित्त डाला है, उस सहज स्वरूपपर । सहजस्वरूप प्रत्येक वस्तुका नियमसे होता ही है अन्यथा वस्तुकी सत्ता नही रह सकती । तो मैं अपने सत्त्वमे सहज स्वरूप कैसा हूँ, इस पर दृष्टि देकर जो निर्णयमे आये उसको तो माने कि यह मैं हू और शेष जो कुछ भी इस पर बीत रही है उसे यह न माने कि मैं हू । रागद्वेष शोक विचार वितर्क आदि ये मैं नही हू । कहाँ दृष्टि लगाकर निरख रहा है वैसी ही दृष्टि बनाकर यह प्रकरण सुनना चाहिए । वह मैं भवसे रहित हूँ ।

कैवल्यस्वरूपकी श्रद्धाके अभावमे केवल परिणति होनेकी अशक्यता—देखिये, न श्रद्धा

हो ऐसी कि मेरा स्वरूप तो भवसे रहित है, ससारमे अतीत है तो वह वैसा बननेका उद्यम कर नही सकता। पानी गर्म है, पर यह विश्वास बना है ना कि पानीका स्वभाव ठडा है, सो उस गर्म पानीको झट फैलाकर, पखा चलाकर ठडा कर लेते है, पर अग्निका गर्म स्वभाव है यह सभीको पता है-सो किसीको अग्निको उस तरहसे ठडा करते हुए न देखा होगा। तो अपने बारेमे यदि यह विश्वास न रखे कि मै सर्वविकारोसे रहित केवल ज्ञायकस्वरूप हू, लेकिन जाय दृष्टि अन्तस्वरूपमे, तो हम उस अग्निके माफिक कभी शान्त नही बन सकते। तो यह रूपातीत ध्यानमे आया हुआ योगी अपने आपका कैसा चिन्तन कर रहा है। मै भवसे रहित हू, परमात्मा हू। परमका अर्थ है उत्कृष्ट, मा वाला, जहाँ उत्कृष्ट लक्ष्मी है उसको परम कहते है। परम शब्द विशेषण रूप है। उत्कृष्ट लक्ष्मी वाला ऐसा यह मै आत्मा हूँ।

परमज्योतिस्वरूपके चिन्तनमें सच्ची चतुराई—अहो, ससारकी चतुराईमे सोच तो यह रहा है जीव कि मै बडी चतुराई कर रहा हू, बहुतसे काम कर रहा हू, बडा वैभव जोड रहा हूं, मैं दूसराको खूब सता रहा हू, मै अपने सब काम स्वार्थसे चला रहा हू, यो सोचता है कि मै बडी चतुराईका काम कर रहा हू, लेकिन यह अमूर्त ज्ञाननिधि बरबाद हो जाती है इस चतुराईके कारण। हूँ तो मै परम आत्मा उत्कृष्ट ज्ञान लक्ष्मीयुक्त आत्मा, पर ऐसा विश्वास न होनेसे उस मार्गमे हमारी गति नही हो पाती। यह मैं परमात्मा हू, परम ज्योति उत्कृष्ट ज्योति। ज्योतिका काम है प्रकाश करना। ये दीपक, ये सूर्य चन्द्र क्या वैसा प्रकाश कर सकेंगे जो प्रकाश ज्ञानमे होता है। स्पष्ट समस्त सत् ज्ञानमे आते है उस प्रकाशकी हम क्या सूर्य चन्द्र आदिकसे उपमा दें ? एक क्या करोडो सूर्योंसे भी अधिक प्रभा इस ज्ञानमे है। मैं परमज्योतिस्वरूप हू। सहज स्वभावसे तो यह मै केवल जाननशक्ति मात्र हू, ऐसी यह ज्योति है और पर्यायतः यह ऐसी ज्योतिरूप बन सकेगा कि जिस ज्योतिमे फिर वह प्रकाश प्रतिशत एक साथ प्रतिबिम्बित होता है। ऐसा यह मै परमज्योतिस्व रूप हू, समस्त विश्वका देखने वाला हू। विश्वका ज्ञान करने वाले निज आत्माको जो दर्शनमे, प्रतिभासमे लेता है उसने सारे विश्वका दर्शन किया है। विश्वका दर्शन ज्ञानकी झाकी, विश्व रूपमे याने विश्व के आकार रूपमे नही होता, किन्तु समस्त विश्वके जाननहार परिणति वाले समस्त आत्माको प्रतिभासमे ले, यही विश्वदर्शन है।

निरञ्जन परमात्मतत्त्व—यह मै निरञ्जन हू, इसमे किसी भी परका सम्बध नही, न शरीरका सबध, न कर्मोंका सम्बध, न रागादिक विकारोका सम्बध। किसी भी प्रकारका अञ्जन इस स्वरूपमे नही है। यहाँ उस तत्त्वको निरख रहा है ज्ञानी पुरुष अपने आपमे कि जिसके निरखनेके प्रसादसे यह लग रहा हुआ अञ्जन भस्म हो जाता है। अपनेको निरञ्जन अनुभव करना यह एक भव्यताका सूचक है। तो यह रूपातीत ध्यानी योगी अपने आपका ठीक

उतने रूपमे चिन्तन कर रहा है जितने रूपसे सिद्धप्रभु व्यक्त हुआ करते हैं। आप शक्तिको निरखते है तो कोई बात सिद्धसे कम है क्या ? यदि कम है तो वह बात कितने ही प्रयत्न किए जानेपर भी उत्पन्न नही हो सकती। जितना जो कुछ सिद्धमे है उतना सब कुछ प्रत्येक आत्मामे है, व्यक्त नही है, है शक्तिरूप। चैतन्यस्वरूपके नाते यह समान है और इस ही समानताका यह रूपातीत ध्यान अपने आपमे चिन्तन कर रहा है।

तदासौ निश्चलोऽमूर्तो निष्कलङ्को जगद्गुरुः ।
चिन्मात्रो विस्फुरत्युच्चैर्ध्यान ध्यातृविवर्जित ॥२०८६॥

अमूर्त निष्कलङ्क आत्मस्वरूपका चिन्तन—जिस समय यह योगी निश्चल होता हुआ अपने आपको निरख रहा है कि मैं अमूर्त हू, निश्चल हू, जो स्वरूप अनुभवमें लाया गया है केवल ज्ञानमात्र जो अनुभवका काम है, उस कालमे निश्चल है, वहांसे चलित नही और स्वरूपत स्वभावमे तो कभी भी चलित नही हू, अमूर्त हू। मैं अपने आपको यदि अमूर्त पिण्डके रूपमे देखने लगू तो यहाँ कुछ नजर न आयगा। यह ज्ञान यह प्रकाश यह प्रतिभास अमूर्त रूपमे ही तो ठहर सकता। मूर्तरूप हो तो प्रतिभास सम्भव ही नही है। यह मै आत्मा अमूर्त हू, निष्कलक हू। जो मेरा ढाचा है, भीतर जो बॉडी है, जिस स्वरूपसे मैं रचा हुआ हू चिदानन्दस्वरूप, उस स्वरूपको देखता हू तो उसमे तो वही है, चेतनामे तो चेतना ही है, कोई कलक नही है, स्वरूप निरखा जा रहा है। जलके स्वरूपमे यदि गर्मीका प्रवेश है तो वह कभी ठडा किया ही नही जा सकता।

जगद्गुरु अन्तस्तत्त्वके आश्रय बिना बरबादी—यह आत्मा जगत् गुरु है। चूकि सिद्ध प्रभुको जगत् गुरु निरखा है। जो बातें सिद्धमे निरखी जा रही हैं वे सब बातें इस आत्मामे हैं। तो यह तत्त्व भी जगद्गुरु है। समस्त पदार्थोंमें श्रेष्ठपना यह भी आत्मामे निरखा जा रहा है अपनी शक्तिस्वभावको लक्ष्यमे रखते हुए। इस प्रकार जब यह अपने आपके ध्यानमे, एकाग्रतामे होकर रहता है तो उस समय यह ध्यान ध्याताके भेदसे रहित होकर विकसित होता है। दुनियाके इन लोगोंमे, इन परिवार सबधोमे, ये मेरे है, इनसे मुझे सुख मिलेगा इन बातो मे पडकर इस जीवका कुछ भी विकास न होगा। इन सबसे तो एकदम नेत्र बन्द कर ले, इनका विकल्प तोड दे और ऐसे अद्भुत साहसके साथ अपने आपमे विश्राम किया जाय तो सर्व वैभव विकसित होगा। इन दुनियावी लोगोको अपना माने तो इसमे जीवकी बरबादी ही है। जिनको माना कि ये मेरे है, ये मेरे थे, उनमे से कोई क्या आपका बनकर रह सका ? इतिहासकी, पुराणोकी बात इस समय छोड दो, अपने आपके जीवनमे ही निहार लो, किस किसके बीचमे आपने यह मेरा है, ये मेरे है, इस तरह मानकर रहे थे, बडे मौजके वातावरणो मे रहे थे पर क्या है आज ? कुछ भी नही। व्यतीत हुई बातें सब एक स्वप्न जैसी लगती

हैं। इतने वर्ष गुजर गए, कितनी ही घटनाएँ जीवनमे घट गईं, पर वे आज सब स्वप्नवत् लगती है, और जो कुछ आज हैं वे भी स्वप्नवत् है।

प्रतीतिका परिणाम—इन सर्व बाह्य समागमोमे जिसके मोहबुद्धि नही है, ये मेरे सर्वस्व है, ऐसी जिसकी दृष्टि नही है, वह अपनेको उन सबसे विविक्त समझता है। और इसी कारण वह अपनेको विशुद्ध बना लेता है, अगर प्रतीति खोटी है तो वह अपनेको खोटा ही बना डालता है। एक जमीदारका किसी गरीबके साथ मुकदमा चल गया। पेशीका दिन था। कस्बेसे रेलवे स्टेशन पहुचकर रेलगाडीसे अदालतमें पहुचना पडता था। तो इस गरीबने एक उपाय रचा। पहिलेसे ही किसी तांगे वालेको दो चार रुपये दे दिये और कह दिया कि देखो अमुक सेठ जब यहाँ आये तो उससे इतनी बात बोल देना कि सेठ जी आपका चेहरा आज कुछ गिरासा, तबियत खराब है क्या ? यो ही किसी कुलीसे और स्टेशनमास्टरसे दो-दो चार-चार रुपये देकर सेठसे वही बात कहनेके लिए कह दिया। जब सेठ स्टेशनपर पहुचा तो पहिले ताँगे वालेने वही बात कही, फिर कुलीने भी वही बात कही, फिर स्टेशन मास्टरने भी वही बात कही। अब तो उस सेठको पूरा विश्वास हो गया कि हमारी तबियत वास्तवमे खराब है, नही तो ये सब लोग क्यो कहते ? लो वैसा सोचनेसे वह सेठ बीमार हो गया, घर लौट आया। वह गरीब तो पेशीमे पहुच गया, वह सेठ न पहुच सका। तो उसका फायदा उस गरीबने उठाया। तो जैसा अपनेको बार-बार चिन्तन करे वैसा उपयोग बनता है और उसके अनुरूप परिणति चलती है। तो यह रूपातीत ध्यानी अपने आपके स्वरूपके सबधमे ये सब विचार करता है।

पृथग्भावमतिक्रम्य तथैक्य परमात्मनि।
प्राप्नोति स मुनि साक्षाद्यथान्यत्व न बुध्यते ॥२०८७॥

सिद्ध परमात्माके चिन्तनसे भी अन्तमें एकत्वका अनुभवन—यह ज्ञानी ध्यानी रूपातीत ध्यानके प्रसंगमे प्रथम तो सिद्ध परमात्माका चिन्तवन करता है—अष्ट कर्मोंसे रहित, अमूर्त, लोकके शिखरपर विराजमान, शरीरसे भी अतीत, कषाय आदिक समस्त विकारोसे अतीत प्रभुका ध्यान कर रहा है और इस पद्धतिसे करता है, पृथक् भाव अर्थात् अलगपनेका उल्लघन करके साक्षात् एकताको इस तरह प्राप्त हो जाता है कि जिससे पृथक्पनेका बिल्कुल भान नही होता। तीन मजिल है ध्यान करनेके। प्रथम तो दासोह। मैं दास हू, हे प्रभो मैं सेवक हू, मैं तुम्हारे चरणोकी रज हू, और और भी अनेक प्रकारसे परमात्माकी उत्कृष्टता और अपनी निकृष्टता जानकर भक्ति की जाती है। इस पद्धतिसे भगवान की उपासना कर करके कुछ गुण विकास हो तो दा और छूट गया। सोह रह गया। यह भक्तिकी दूसरी मजिल है। जो वह है सो मै हू, जो आप है सो मैं हू। यदि इस बातको कुछ लौकिक विधिमे बताया

जाय तो यह बात उल्टी जचती है। दासोहकी मंजिल ऊँची और सोहकी मजिल नीची जचती है। दासोहकी मजिलमे निरभिमानता और सोहंकी मजिलमे अभिमानकी बात जचती है। और अहकी मजिल वालेसे जनता घृणा करने लगती है। किन्तु शान्तिमार्गमे अहके अनुभवका सर्वोत्कृष्ट महत्त्व है। सोहके सतत अभ्यासके बाद तीसरी मजिलमे दा भी छूट गया और सो भी छूट गया, सिर्फ अह रह गया। इस अहके ध्यानमे भीतरी चिन्तनकी बात चल रही है। इसमे तो सिर्फ अपने आपका ध्यान रह गया। इसमे लौकिक दृष्टिसे और भी अधिक अभिमान की बात जचती है। लेकिन आत्मयोगका यह मनन उत्तम है, मै वह हू जो है भगवान, जो मैं हू वह है भगवान। यह है एक बीचकी मजिल। प्रभुमे और अपनेमे स्वरूपका साम्य कर करके इतना मग्न हो जाता है यह ज्ञानी ध्यानी कि वहाँ सो भी उडकर सिर्फ ह रह जाता है, अर्थात् ज्ञानानन्दमात्र केवल निज स्वरूपका अनुभव वहाँ रह गया। तो इस प्रकार उस पार्थक्यका उल्लघन करके इस ज्ञानी पुरुपने इस पद्धतिसे प्रभुका ध्यान किया कि साक्षात् जैसे उसे अन्यत्वका बोध न रहे इस प्रकारसे वह ध्यानमग्न हो गया।

ध्यानमे ज्ञानस्वरूपका निरन्तर ज्ञान—देखिये, ध्यानीने क्या किया ? ज्ञानमे क्या किया जाता है ? ज्ञानमे जो किया जाता है वही बात देर तक बनाये रहे वह ध्यानमे किया जाता है। और इस ज्ञानसे व इस ध्यानसे उत्कृष्ट एक और ज्ञान है जहाँ केवल ज्ञातृत्व स्थिति है। वह ध्यानकी ऊची चीज है जहाँ केवल एक जाननहार स्थिति रहती है। उपयोग लगाना, विकल्पोका तोडना, निर्विकल्प स्थितिकी ओर प्रयास करना, इन सबसे ऊपर केवल एक ज्ञातृत्व की स्थिति है। ज्ञानमे कुछ जाना नही जाता। परिजन जान लिया, ऋपिजन जान लिया, अन्य-अन्य बात भी जान लिया, यो ही इसी बीचमे एक बार अपने स्वरूपको भी जान लें। जानने की ही तो बात है। जिस ओर उपयोग लगाया, जिसको ज्ञेय बनाया उसे जान लिया। तो जानना यह क्या है, ज्ञानका क्या स्वरूप है, इस प्रकार उस स्वरूपको भी जानें। तो ऐसा ज्ञान मात्र जब जाननेमे आया तो उसीके द्वारा मै ज्ञानमात्र हू—ऐसा अनुभव भी पा लें और यह अनुभव दासोह सोहके बादका अनुभव है जो एक स्वरूपका और अपनेका भेद नही कर रहा।

निष्कलः परमात्माह लोकालोकावभासक।
विश्वव्यापी स्वभावस्थो विकारपरिवर्जितः ॥२०८८॥

निष्कल आत्मामे देहात्मबुद्धि होनेका दुष्परिणाम—रूपातीत ध्यानका यह एक अंतिम प्रसग है। इसमे उपसहार रूपमे ध्यानकी बात फिर बतायी है। ऐसा चिन्तन होता है कि मैं निष्कल हू, शरीररहित हू, शरीरसे परे हू। शरीरसे परेका उपयोग लगाये तो अब भी विदित होने लगेगा कि मैं शरीरसे परे शरीरसे विलक्षण स्वरूपवाला हू। इस शरीरमे जो रात दिनका सत्कार बसा है, यह मै हू, इस वासनाको हम क्षणभर भी नही छोडना चाहते है। प्रशसामे, निन्दामे, व्यवहारमे, पोजीशनमे, सब स्थितियोमे इस शरीरको शरीरके नाते ही

सब मान रहे है। शरीरको ही 'यह मै हूं' इस प्रकार अनुभव रहे है तो यह कितनी बडी भारी विपदा है ? जो विपदा ससारके सभी सकटोका मूल कारण है। तो घबडाकर और सकटोको मिटानेके लिए तो बाहरमे बडी हठ करते हैं और जो उपाय सूझता है सो बनाते है, पर सब सकटोंसे भी महान सकट जो यह लगा है कि हम आप यह वासना बनाये बैठे है कि यह वासना बनाये बैठे है कि यह शरीर ही मै हू। कहने सुननेमे तो लगता है कि क्या है, जरासी बात है, किन्तु यह बात इतनी बडी है कि जिसके कारण चौरासी लाख योनियोमे, चतुर्गतियो मे, नाना शरीरोमे भटकना पड रहा है, जन्म लेना पड रहा है। बात इतनी जानना है कि इस देहसे रहित यह मै आत्मा हू, ऐसा जानना अनुभव करना, यह कितनी बडी विपदा है ? सारी विपदाओका यही कारण है। भला, निगोद जैसी स्थितियोमे रहना पडे, जीवको स्वरूपतः और विकासकी ओरसे देखो तो कितना बडा अन्तर हो गया ? कहाँ क्या रहा ? कितने प्रकारके सकटोको सहने वाले पशु पक्षी कीडे मकोडे नजर आ रहे है। यह सब किसका परिणाम है ? देहको माना कि यह मैं हू, बस इतनीसी मान्यताका यह सारा परिणाम है। जैसे— विषकी एक बूद सारे भोजनको विषैला बना देती है, इसी प्रकार शरीरको ही 'यह मै हू' इतनी मान्यता ही सारे सकटोका कारण बन जाती है। उसका फल यह ससारका सारा संकट है। धन वैभव, कुटुम्ब, इज्जत प्रतिष्ठा—इनकी उत्सुकता इस शरीरमे आत्मबुद्धि रखनेके ही कारण है। यदि इन सबसे भिन्न अपने आपको निरख सकें तो फिर चिन्ता किस बातकी होगी ?

निष्कलताके अनुभवसे सकल संकटोका अभाव—अनुभव करिये कि मै शरीररहित हू। यह बात छोटी नही, बडी बात है। ऐसा ज्ञान बनेगा, अनुभव बनेगा तो इस ही उपाय से आप शरीररहित बन जायेंगे, विशुद्ध आत्मा बन जायेंगे, पर मूलमे यह यत्न करनेका है और सब कल्याणोकी यह जड है। समस्त ऋद्धिया सिद्धिया एक इसी अनुभवपर निर्भर है— मैं शरीरसे रहित केवल ज्ञानमात्र हू। इन आँखोसे भी बाहरमे निरखना बंद कर लीजिए। इस निरखनेमे जो कुछ नजर आता है वह दिलको उचाटनेका ही कारण होता है। कुछ क्षोभ और और विकल्पोका ही उत्पादक होगा। समस्त इन्द्रियोका व्यापार रोककर निरखिये निजमे शरीरमे है यह, पर कुछ ऐसी उपयोगकी विधि है कि उपयोगमे शरीरका भान ही नही रहता, अत्यन्त निर्भार केवल ज्ञानमात्र रह जाता है। ऐसा अनुभव आने दीजिए। यह ज्ञानमात्रका अनुभव सारे सकट दूर कर देता है। यहाँ न जाने किन-किनको देखकर अपना सम्पर्क बनाया, अपने विकल्पोका विस्तार बनाया, पर उससे क्लेश ही मिला—एक इस ज्ञानमात्र निज तत्त्वका अनुभव हो तो सभी सकट दूर हो जाये।

आत्मरक्षाकी धुनिमे अन्तर्व्यवहार—यह आत्मरक्षाके वास्तविक प्रसगमे बात कही

जा रही है। इस चिन्तनके प्रसादसे सारे संकट दूर होते है। आजकलके सकट देखो—देश विदेशमे शत्रुतायें चल रही हैं, एक देश दूसरे देशको हडप जाना चाहता है। जो जिस देशमे उत्पन्न हो गया उसे यह अपना समझ लेता है, उसीके पक्षमे रहता है, अन्यका विरोधी हो जाता है। यह एक कितनी अज्ञानता भरी बात है ? जरा सोचो तो सही कि जैसा मेरा स्वरूप है वैसा ही सर्व जीवोका स्वरूप है। जैसा स्वरूप इस देशके वासियोका है, वैसा ही स्वरूप अन्य देशवासियोका भी है, फिर उनसे द्वेष किस बातका करना ? उनके प्रति अनेक प्रकारके विकल्प बनाकर, उनसे द्वेप भावना रखकर अनेक प्रकारके सकटोका अनुभव किया करते हैं। पर उन सबका विकल्प छोडकर एक इस निज आत्मतत्त्वका अनुभव किया जाय तो इसी अनुभवके प्रसादसे सारे सकट दूर हो जाते है।

भगवतीका प्रसाद—जोशी लोग कहा करते है अपने भक्तोको कि तेरी भगवती फतेह करे। जरा बतावो तो सही कि वह भगवती कौन सी है ? वह भगवती है प्रज्ञा भगवती, यह ज्ञानानुभूति। इसके प्रसादसे हमारी पूर्ण विजय होती है। सारे सकट टल जाते है। लोग तो ऐसा कहते है कि वह भगवती भगवानके अर्द्धांगमे रहती है। भगवती और भगवानका रूपक भी यहाँ दिखाते है। इस शरीरके ऊपरसे नीचे तक एक ओरका आधा अग तो भगवानका रूपक बनाकर दिखाते हैं और आधा अग भगवतीका बनाकर दिखाते हैं। इस अलकारकी बात को कही तो, पर उसमे भी थोडा डरकर कहा। अरे जरा अन्तर्दृष्टि करके देखो तो भगवानका सारा ही रूप भगवतीरूप है और सारा ही भगवतीरूप भगवानका रूप है। उसमे अर्द्धांगका विभाग नही है। जो भगवानकी परिणति है उसे भगवती कहते हैं। तो उस ज्ञानानुभूति भगवतीके प्रसादसे सारे संकट दूर होते हैं। ज्ञानी चिन्तन कर रहा है कि मैं निष्कल हू, परमात्मा हू, लोकालोकका अवभासन करने वाला हू। समस्त जगत इस ज्ञानमे ज्ञेय होता है। मैं समस्त विश्वमे व्यापक हू, स्वभावमे स्थित हू, विकारोसे रहित हू—इस प्रकार यह ज्ञानी ध्यानी रूपातीत ध्यानके प्रसगमे अपना चिन्तन कर रहा है। अब इस प्रकरणमे एक ऐसे परमात्माको भजो इस अनुरोधरूप अन्तिम छद कहा जा रहा है।

इति विगतविकल्प क्षीणरागादिदोष,
विदितसकलवेद्य व्यक्त विश्वप्रपञ्चम्।
शिवमजमनवद्य विश्वलोकैकनाथ,
परमपुरुषमुच्चैर्भावशुद्धया भजस्व ॥२०८९॥

रूपातीत तत्त्वके ध्यानका अनुरोधपूर्वक प्रकरणका उपसंहार—समस्त विकल्पोंसे दूर निर्विकल्प ज्ञानमात्र, जिसके रागादिक दोष समस्त क्षीण हो गए है, विकारोसे अतीत है, सकल वेद्य विदित हो गए है, कोई सत् जाननेको छूटा नही है। समस्त विश्वके प्रपचोको जिसने

छोड दिया है, केवल एक ज्ञानलीला ही जिनके रही है, सर्व रागद्वेषादिककी लीलायें जिनकी समाप्त हो गई है, ऐसे शिव अज निर्दोष समस्त विश्वके एक नेता ऐसे उत्कृष्ट आत्माको हे भव्य जन ! भावशुद्धिसे ध्यावो, सेवो। उनके गुणसमूहमें ऐसा ध्यान लगावो कि 'वह मै हू' इस प्रकारका पहिले योग चले और स्वरूपमात्रका चिन्तन रहकर एक ज्ञानानुभव बने, इस प्रकारसे उस परमात्मतत्त्वको भजो। इस रूपातीत ध्यानमे पहिले सिद्धप्रभुका ध्यान किया, जहाँ दासोहं जैसी स्थिति है, फिर उस विकाससे अपनी शक्तिसे समता लाकर सोह जैसी स्थिति बनाई गई है। इसके बाद जब स्वरूपमात्र ध्यानमे रहा तो वहाँ केवल ह अनुभवमे आया। ज्ञानमात्र निज तत्त्व अनुभवमे रहता है। यह तत्त्व रूपसे अतीत है, शरीर मुद्रा आकार इन सबसे परे है, इससे इस परमज्योति ज्ञानस्वरूप तत्त्वको रूपातीत कहा है। इस तरह धर्म-ध्यानके प्रसगमे यह ध्यानी आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय और सस्थानविचय आदिक मे क्रमसे बढ़-बढ़कर समस्त विधियोसे चलकर अन्तमे रूपातीत ध्यानमे जो धर्मध्यानको ध्याया था उसको समाप्त करते है। इसके बाद अब धर्मध्यानका फल बताकर शुक्लध्यानका वर्णन करेंगे।

॥ ज्ञानार्णव प्रवचन विंश भाग समाप्त ॥

ज्ञानार्णव प्रवचन एकविंश भाग

(धर्म्यध्यानफलवर्णन प्रकरण ४१)

प्रसीद शान्तिं व्रजसन्निरुद्ध्यता,
दुरन्तजन्मज्वरजिह्मितं मनः ।
अगाधजन्मार्णवपारवर्त्तिना,
यदि श्रिय वाञ्छसि विश्वदर्शिनाम् ॥२०६०॥

विश्वदर्शियोकी श्रीको जानकर अभिलष्यकी जिज्ञासा—त्रिलोकदर्शी पुरुषोका स्मरण करके यदि उन विश्वदर्शियोके जैसे श्रेयकी अर्थात् लक्ष्मीकी वाञ्छा हुई है तो तुझे अब क्या करना चाहिए ? तीर्थंकरोका ज्ञान अनन्त हैं, दर्शन अनन्त है, आनन्द अनन्त हैं, शक्ति अनन्त है, जो कि ससारके सर्व सकटोसे परे है । ससारमे कितने व्यर्थके सकट है । एक जीवका किसी दूसरे जीवसे कुछ सम्बध है नही, हैं सभी अत्यन्त भिन्न, लेकिन उनकी शकल सूरत निरखकर यह पुत्र है, यह पुत्री है, यह रमणी है—ये नाना विकल्प करके जो एक महान अधेरा अपने ज्ञानपर बनाये डालते है, इसे क्या कम सकट समझ रहे । आँखें मिची और सब खतम । जो थोडे ही दिनोमे खतम होगा उसको अन्तिम चार मिनट पहिलेसे भी खतमसा नही मान सकते । एक जुलाहा भी कपडा बुनता है तो बुनते-बुनते आखिर अन्तमे दो चार अगुल पूर छोड ही देता है, पर यह ससारी मनुष्य अपने जीवनके अन्तिम दो चार मिनट भी रागद्वेष मोहका पूरा हुआ ताना नही छोड सकता । यदि प्रभुकी श्रीको अर्थात् लक्ष्मीको सुनकर, उनका क्या विकास है, सर्वसकटोसे परे कृतकृत्य, अब जिनकी आगे कुछ भी उत्सुकता नही है सब कार्य पूरे हो चुके, उन्हे अब कुछ करनेको नही रहा, निर्विकल्प है, निस्तरग है, उनकी लक्ष्मीकी बात सुनकर यदि उन जैसी लक्ष्मीको चाहते हो तो क्या करो ?

सर्वज्ञश्रीकी वाञ्छामे आत्मप्रसादकी आवश्यकता—विश्वदर्शियो जैसी श्री पानेके लिये सबसे पहिली बात है कि प्रसन्न होवो । कोई कहे कि हम तो बडे प्रसन्न है, हमे क्या शिक्षा देते, दूकान अच्छी चलती है, घरमे बालबच्चे अच्छे है, सब ठीक है, अरे यह कोई प्रसन्नता नही है । इस प्रसन्नताकी बात नही कह रहे । इसका नाम प्रसन्नता नही । प्रसन्नताका अर्थ है निर्मलता । साहित्यमे देखो—जब शरद ऋतुका वर्णन आता है तो वहाँ कवि कहता है उन छोटी-छोटी ताल तलैया व बावडियोमे निर्मल जल भरे हुएके प्रति कि ये सब प्रसन्न हो रही

है । यहाँ कोई पूछे कि कहो भाई आप प्रसन्न हो ना, अर्थात् निर्मल हो ना, पर वह उत्तर क्या देता है—हाँ हम बडे मौजमे है, खूब बच्चे है, सभी हमारी बडी खबर लेते है, धन भी खूब है, हम बहुत प्रसन्न है । अरे पूछी तो थी निर्मलताकी बात और उत्तर दे रहे है अपनी मलिननाका । यह तो संसार है । पूछो कुछ और उत्तर मिलता है कुछ ।

बहरोंका झमेला—एक दृष्टात है कि एक बहिरा मुसाफिर किसी गाँवको जा रहा था तो उसे एक बहिरा गडरिया रास्तेमे बकरिया चराते मिला । दोपहरका समय था । गडरिया भोजन करनेके लिये घर जाना चाहता था । सो उस मुसाफिरको देखकर गडरियाने कहा—भैया थोडी देरको हमारी बकरियाँ देख लेना, मै खाना खा आऊँ ।·· अच्छी बात । चला गया गडरिया खाना खाने । ये सब बातें सकेतके साथ हुईं, सो वे दोनो समझ गये थे । जब खाना खाकर १ घटेके बादमे लौटा गडरिया, तो सोचा कि इसने मेहनत किया है, इसे कुछ इनाम देना चाहिए । सो उसके पास थी एक तीन टाँगकी बकरी, एक टाग उसकी टूट गई थी । सोचा कि सिर्फ एक घटा ही तो मेहनत की है, अच्छी बकरी क्यो दूँ, इसीको दे दूँ । जब देने लगा तो वह बहिरा मुसाफिर यह समझता है कि यह कह तहा है कि तुमने तो हमारी बकरी की टाग तोड दी, सो बोला—हमने तो इतनी मेहनत की और कहते कि हमारी बकरीकी टाग तोड़ दी । वह गडरिया बोला—मै क्यो अच्छी बकरी दूँ, तुमने एक ही घटा तो मेहनत की । आखिर दोनो किसी तीसरे व्यक्तिके पास न्याय करवाने चले । रास्तेमे एक घुडसवार मिला, वह भी बहिरा था । उन दोनोने अपनी अपनी बात रखी । सो वह घुडसवार समझता है कि ये कह रहे है कि तुम्हारा यह घोडा चोरीका है, सो वह कहता है—अरे यह घोडा तो हमारे घरकी घोड़ीसे पैदा हुआ था, चोरीका कैसे है ? अब वे तीनो किसी चौथे व्यक्तिके पास न्याय करवाने पहुचे । सो एक गाँवके एक जमीदारके पास गए । वह किसान भी बहिरा था । उसी दिन उसकी घरवालीकी उससे लडाई हो रही थी । वे तीनो ही उसके पास जाकर अपनी-अपनी बात रखते है—एक कहता है—मैने १ घटा तक मेहनत की और यह कहता है कि तुमने मेरी बकरीकी टाँग तोड दी । दूसरा कहता है—इसने एक ही घटा तो मेहनत की, मैं क्यो इसे अपनी चार पैरो वाली अच्छी बकरी दे दूँ ? तीसरा कहता है—यह घोडा तो हमारे घरकी घोडीसे पैदा हुआ था, ये लोग कहते है कि तुम्हारा यह घोडा चोरीका है । तो वह बहिरा किसान सोचता है कि ये लोग हमारी लडाई शान्त करा रहे है, तो झुझलाकर कहता है—अरे यह तो हमारी घरेलू लडाई है । तुम लोग क्यो बेकारमे बीचमे पडते ? आखिर उन तीनो को भगा दिया । तो क्या है ? यह तो ससार है, यहाँ पूछो कुछ और उत्तर मिलता है कुछ । तो जिसे अपनी प्रसन्नता कह रहे हो वह प्रसन्नता नही है ।

प्रसन्नताका उद्यमन—प्रसन्नता कहते है निर्मलताको । यदि इस महाप्रभुकी लक्ष्मीको

चाहते हो तो सबसे पहिले प्रसन्न होवो। इस निर्मलताका भाव इन तीन बातोंमे समझ लो– एक तो इस जगतके प्रति भ्रम न रहे, कौन मेरा है, इस देहको देखकर यही मैं हू, ऐसा विकल्प न आये, दूसरे----इन पचेन्द्रियके विषयोमे राग न आवे और तीसरे---किसी भी प्राणीके प्रति रागद्वेषकी दृष्टि न जगे। झट उस जीवस्वरूपकी ओर दृष्टि ले जायें कि मेरा ही जैसा स्वरूप इन सभी जीवोका है। कोई अगर अपनसे विरोध भी कर रहा है, द्वेष भी कर रहा है तो यही सोच लो कि इसने अज्ञानताकी शराब पी रखी है जिससे मदोन्मत्त होकर पागलकी नाई चेष्टायें कर रहा है। इस बेचारेका दोष नही, दोष तो इस अज्ञानताकी शराबका है। जैसे एक घटना है कि एक बार दतियाका राजा अपने हाथीपर बैठा हुआ घूमने जा रहा था, रास्तेमे एक कोई शराबी मिला। वह शराबी बोला--ओवे रजुवा अपना हाथी बेचेगा ? इस बातको सुनकर राजा बडा क्रुद्ध हुआ, पर मन्त्रीने कहा—महाराज आप दरबार चलिये—इसका निर्णय वही होगा। यहाँ इसे कुछ न कहिये। आखिर दरबार पहुचकर ५-६ घटेके बादमे राजाने उसे बुलवाया। वह बेचारा गरीब आदमी था। वह पहिलेसे ही डरने लगा कि आखिर हमने क्या अपराध किया जो राजाने बुलवाया। जब राजाके सामने पहुचा तो पहिलेसे ही कापने लगा। राजा बोला— क्या तू मेरा हाथी खरीदेगा ? तो वह बोला—महाराज आप यह क्या बात कह रहे हैं, मैं गरीब आदमी आपका हाथी किस तरहसे खरीद सकता हू ? आखिर राजाको मन्त्रीने बताया— महाराज, उस समय यह नही कह रहा था—"ओवे रजुवा अपना हाथी बेचेगा।" इसने पी ली थी शराब, सो शराबका नशा वह बात कह रहा था, यह तो सिर्फ आपके सामने खडा था। तो यो ही जब कोई अपनसे विरोध कर रहा हो, अज्ञानता भरी चेष्टायें कर रहा हो तो यही सोचना चाहिए कि इस बेचारेका कोई दोष नही, इसने अज्ञानताकी शराब पी रखी है सो उस शराबके मदका दोष है। इसका कोई दोष नही। इसका स्वरूप तो मेरा ही जैसा है। मैं इसपर क्या रोष करूँ ?

निर्विरोध होकर प्रसन्न (निर्मल) होनेका उपदेश–भैया ! जैसे किसी पागलके मुखसे कोई गाली भरे शब्द सुन लिए जाते हैं तो क्या उसपर कोई क्रोध करता है ? जब वह पागल है तो उसकी क्रियावोपर क्रोध क्या करना, ऐसे ही किसी अज्ञानीकी अज्ञानता भरी चेष्टावोको निरख-कर क्रोध क्या करना, समझ लिया कि इसके ऊपर कषायोका बोझ लदा है तो उन कषायो के वश होकर यह अपनी अज्ञानता भरी चेष्टायें कर रहा है। तो किसी भी स्थितिमे किसी भी जीवके प्रति बैर विरोधकी अन्तरङ्गमे भावना न जगनी चाहिए। तो भ्रम न रहे, विषयोमे राग न रहे, जीवोसे द्वेष न रहे, बस इसीका नाम है प्रसन्नता। कोई अगर पूछे कि क्या आप प्रसन्न हो, तो उसका अर्थ आप लगा लो कि हमसे यह पूछा जा रहा है, तो उसका उत्तर दें

कि चाहता तो हू कि मै प्रसन्न रहूं, पर रह नही पाता क्योकि ये विक।र सता रहे है। यदि महापुरुषोंके निर्वाण प्राप्त जीवोके वैभवको सुनकर जानकर उसकी इच्छा करते हो तो पहिला काम है कि प्रसन्न होवो।

शान्त होने और मनोनिरोध करनेका आदेश—प्रभुश्रीकी प्राप्तिके लिये अपनेमे शाति को एकमेक करो अर्थात् शान्त होवो, और जो मन जन्म जरा ज्वरसे कुटिल बन गया है जिसका अतिम परिणाम खोटा है ऐसे मनको रोको। कठिन साधना है कि मनमे जो आये बात उसे दवा लें, और यही बुझा ले, नष्ट कर लें, लेकिन यह कठिन साधना जो महाभाग कर सकता है उसे अपूर्व प्रकाश मिलता है और एकदम उन्नतिके पथपर वढ जाता है। बडे पुरुष का यही लक्षण है कि क्षमाशील रहे, नम्र रहे। इन सब स्थितियोमे मनका निरोध कर देना यह एक बहुत बडा गुण है। यो तीन बाते कही है। जिसको प्रभुसम परम आनन्दकी चाह है, उसके लिए ये तीन उपदेश दिए है। और अधिक नही तो एक ही उपदेशको हम अपने आपमे घटा ले तो भला है। क्या ? प्रसन्न रहे। प्रसन्न रहनेमे कुछ बुरासा लगता है क्या ? क्या प्रसन्न रहना नही चाहते ? तो प्रसन्नमे जो भाव भरा हुआ है उस भावमे अपनेको जुटा लें, इसमे कौनसी कठिनाई है ? यदि भीतरमे एक उजेला बना ले, भ्रम मिटा ले तो इसको कौनसी बाधा है ?

यथार्थस्वरूपके विपरीत हठ न करनेमे यथार्थ प्रसन्नता—यह जगत, ये अणु-अणु ये सब जीव अपना-अपना चतुष्टय लिए हुए है। उनका सुख उनमे है, मेरा सुख मुझमे है। किसीसे कुछ भी सम्बध नही। यह बात अगर झूठ हो तो मत मानो। झूठ बात मनानेका जैनशासनमे जरा भी सकेत नही है। निरीक्षण कर लो, बात सत्य उतरे तो सत्य जचनेपर भी उसे स्वीकार न करे, तो यह तो एक ऐसी बुरी हठ है कि जैसे कोई देहाती कह बैठे सभामे कि ४० और ४० ६० होते है, दूसरे लोग कहे—४० और ४० तो ८० होते है। पर उसने ६० की ही हठ पकड ली, और उसने यह भी कह दिया कि अगर ४० और ४० मिलकर ६० न होते हो तो हमारे घर जो ५ भैंसें है उन्हे दे देंगे। जब वह घर जाता है तो उसकी स्त्री दुःखी होकर कहती है कि अब न जाने क्या होगा, क्या बच्चे खायेंगे, कैसे बच्चोका पालन पोषण होगा ? तो वह आदमी बोला, क्यो ? अरे तुमने तो सभामे कह दिया है कि ४० और ४० मिलकर ६० होते है, अगर ६० न होते हो तो अपनी घरकी पाँचो भैंसें दे देंगे। सो कल तो ये सारी भैंसें चली जावेंगी। तो वह पुरुष बोला—अरी बावली, तू तो बडी नादान है, अरे जब हम अपने मुखसे इस बातको कहेगे कि ४० और ४० मिलकर ८० होते हैं, तभी तो ये भैंसें वे पच लोग ले सकेंगे, नही तो है क्या किसीमें ऐसी हिम्मत है जो हमसे भैंसें ले सके ? ये रखा है डंडा। तो इसी तरहकी हठ ये ससारी जीव बनाये हैं। चित्तमे यह

बात ठीक-ठीक जच जानेपर भो कि दुनियामे एक तिनका भी अपना नही है, फिर भी यह हठ किए बैठे है कि जब हम यह मान लें कि ये चीज मेरी नही है तभी तो यह चीज मेरे पाससे जायगी। अरे इस हठसे तो इस जीवकी बरबादी है। सत्य बात मान लें और फिर विषयोका राग छोड दें और जीवके स्वरूपको निरखकर उनसे अतरङ्गमे द्वेपकी भावना न रखें, लो प्रसन्न हो गए और सारा मार्ग मिल गया।

यदि रोद्धु न शक्नोति तुच्छवीर्यो मुनिर्मन'।
तदा रागेतरध्वस कृत्वा कुर्यात्सुनिश्चलम् ॥२०९१॥

मनकी निश्चलताके लिये रागध्वंसका यत्न—यदि कोई अल्प शक्ति वाला मुनि अपने मनको वश नही कर सकता है तो वश करनेके लिए रागद्वेपका नाश करे और मनको निश्चल करे। जब मन वश नही है तव समझिये कि किसी राग या द्वेपमे मन लगा हुआ है। विना रागद्वेषका रग पाये यह मन अस्थिर नही होता। यदि मन स्थिर करना है तो उस रागद्वेपका रग मिटाना चाहिए जिसका ख्याल करके, जिसको चित्तमे रख करके मन अस्थिर हो रहा है। कभी ऐसा लगता है कि मुझे रागद्वेप तो कही नही हो रहा, अच्छी तरह वैठे हैं, किसीसे कुछ प्रयोजन नही, फिर भी मन नही लगता, किन्तु सूक्ष्मदृष्टिसे विचारें तो उपयोगमे यद्यपि बहुत बडा रागद्वेप नही विदित होता, पर कुछ लगाव है, उसका सस्कार है तव मन निश्चल नही हो रहा है। यह ग्रन्थ मुनियोको सम्बोधनेके लिए वनाया गया है, तो वीच-वीचमे मुनि का सम्बोधन करके वर्णन है, किन्तु जो वात बडे साधुजनोको लाभप्रद है वही वात सवको लाभप्रद है, उसकी दृष्टि होना चाहिए, और उसमे यथा शक्ति उद्यम रखना चाहिए। रागद्वेष मिटानेके लिए ऐसा निर्णय होना चाहिए कि सभी जीव, सभी पदार्थ जब स्वय इस रूपमे है कि मेरेसे उनका कुछ सम्पर्क नही तो किनमे राग किया जाय, किनमे द्वेप किया जाय और फिर भी रागद्वेष चलता है तो किसी परमे रागद्वेष नही चल रहा, किन्तु अपनी बरबादीके लिए अपने स्वभावसे हटकर अपनेमे राग और द्वेपका परिणमन किया जा रहा है। इसमे मिलेगा क्या ? जैसे बहुतसा धन जोडनेके बाद आखिर इसे मिलेगा क्या ? मरण होगा तो मिलेगा क्या ? इसी प्रकार पञ्चेन्द्रियके उन समस्त विषयोंमे आसक्त होकर आखिर इसे मिलेगा क्या ?

रागके समूल विनाशसे ही शाश्वत शान्तिका लाभ—जब ये बाह्य पदार्थ स्वय इसके विविक्त नजरमे रहेगे तो यह बुद्धि उत्पन्न होगी कि कहाँ राग करे, कहाँ द्वेष करें ? रागद्वेष करनेका परिणाम रहेगा तो मनमे अस्थिरता बनेगी। अब यह बात यदि आप ध्यानमे नही ला रहे तो उसका कारण यही है कि आप रागद्वेषसे भरे हुए हैं, और जिनका रागद्वेष मद है, जिन्होने यथार्थ निर्णय किया है उनको तो यह बात स्पष्ट विदित होती है। तो मन स्थिर किए

बिना ध्यान नही होता। ध्यान बिना मुक्ति नही होती, मोक्षमार्गमें बढा नही जा सकता। और मनकी स्थिरता होती है रागद्वेषके अभावमे। इस कारण जान देखकर निरख-निरखकर उस रागद्वेषको समूल नष्ट करनेका यत्न करना चाहिए। जैसे धुनिया रुईके अशोको तातोसे पकड पकडकर पिजडेसे रग रग धुनता है ताकि कोई गाँठ न रह जाय, इसी तरह अपनेमे किसी भी रागद्वेषकी गाँठ न रह पाये, इस तरहसे इस रागको धुनना चाहिए। उसमे ऐसी छूट नही है कि हमको एक जीवमे राग है अन्य किसीमे नही है तो हम मुक्तिके बहुत अशोमे अधिकारी हो गए। ऐसी बात नही है। एकका राग इतना कठिन हो सकता है कि कहो उन हजारो लाखोके रागसे भी अधिक हो। थोडासा भी राग हमारे सत्य निर्णयको, सत्यदर्शनको रोके हुए है। उस रागके दूर करनेका यत्न करना चाहिए।

अनुप्रेक्षाश्च धर्म्यस्य स्युः सदैव निबन्धनम्।
चित्तभूमौ स्थिरीकृत्य स्वस्वरूप निरूपयः ।।२०६२।।

धर्मप्रगतिके लिये अनुप्रेक्षण—अब धर्मकी बढवारीके लिए अनुप्रेक्षावोंके चिन्तनका उपदेश किया जा रहा है। अनुप्रेक्षावोकी भावना कीजिए। यह ध्यानकी बात है, इसीलिए इस ग्रन्थमे आदिमे बारह भावनाओका भी वर्णन किया है। उन भावनाओको भाकर, सुनकर चित्त मे उतारकर पहिले आशय विशुद्ध बने तब फिर इसे ध्यानकी बात बतायी जाय। तो पहिले भी बारह भावोका विचार किया और बीचमे उस ध्यानके मार्गमे चले भी, और फिर भी जरूरत पडे तो फिर हम बारह भावनाओका चिन्तन कर रहे है। ये भावनायें ध्यानमे बढने के लिए ऐसा काम करती है जैसे अग्निको जलानेके लिए हवा काम करती है।

अनित्य और अशरण भावनाकी झांकी—जहाँ ध्यानमे आया कि ये सब समागम क्षणिक हैं बस रागके दूर होनेका मौका मिला ? जहाँ ध्यानमे आया कि मात्र केवल अपना ज्ञानस्वभाव ही नित्य है और सदा मेरा साथी है तो यहाँ अनुराग करनेका, रुचि करनेका मौका मिलाना जिससे बाह्यपदार्थोका राग छोडनेमे और अधिक सहयोग मिल जाय। ध्यान हुआ कि इस लोकमे कही कोई शरण नही है। जहाँ शरणमे जाऊँ वहीसे धोखा मिलता है, सकट मिलता है। जो आज सतानके कारण दुःखका अनुभव कर रहे है या किसी और कामके कारण बडा परिवार मिलनेसे कुछ क्लेश अनुभव कर रहे है, उन्होंने विवाहके समयमे ऐसा कुछ सोचा था क्या ? तब तो फूले नही समाते थे। तब तो सोचा कि मैं इसकी शरणमे रहूगा। शरण मानकर ही तो यह एक दूसरेसे राग किया जाता है। यह केवल पुरुषोकी ही बात नही है। स्त्रियोंके लिए भी यही बात है, पर यहाँ तो जिस किसीके भी शरणमे जावो वहाँसे धोखा ही मिलता है। बाह्यमे कही कोई शरण नही है। जब यह निगाहमे आये तो कुछ राग

हटा ना, और समझमे आया कि मेरे आत्माका खुद ही अपना स्वभाव, उसका ही आलम्बन शरण है। निज शरण माननेके फलमे परको शरण माननेका अपनेमे जो सस्कार था वह भी समाप्त हो जाता है। इन भावनाओका विस्तारपूर्वक वर्णन आया है। इन भावनाओके भाने से इस जीवका राग हटता है और ध्यानमे उसके सिद्धि वढती है।

संसार और एकत्वभावनाकी झलक—वाहरमे निरख लो, सर्व स्थितिया दु खरूप हैं। हम क्या यहाँ बन जायें कि सुखी हो जायें, इसका भी कुछ निर्णय कर लो। क्या नेता वन जाये, क्या दूकानदार बन जाये, क्या वावू जी वन जायें, क्या पूजीपति वन जाये ? अरे इन सभी स्थितियोमे केवल क्लेश ही नजर ही नजर आयगा। कोई कष्ट न माने तो यह तो उसके मोहकी बात है, पर वास्तवमे वाहरकी सारी स्थितिया कष्टरूप है। वाहरकी स्थितियाँ नही, जो हमारा उपयोग हमारे आधारको छोडकर बाहर गया वस वही कष्ट है और उसमे वाहरकी स्थितियोकी बदनामी भी आती है। वाहरकी सर्व स्थितिया कष्ट रूप है, जव अन्दरमे निरखा वह कैवल्यस्वरूप शुद्ध आत्मतत्त्व, उसका अवलोकन किया, आलम्बन किया तो वहाँ एक अलौकिक आनन्द प्राप्त हुआ। उस स्थितिमे इस प्रकारका ज्ञान हुआ कि वास्तवमे मैं तो अकेला हू, इसी स्थितिमे एक अद्भुत आनन्द है, अन्य बाहरी स्थितियाँ तो क्लेशोसे ही भरी हुई है। ऐसा विचार करके ही दूसरोसे जो स्नेह किया था, जो दूसरोमे आपा मान रखा था, अपने ऊपर जो सारे विकल्पोके बोझ बना रखा था वे सव दूर हो जाते है। अरे एक परिवार मे भी सबके अपने-अपने कर्म लगे है और उनके पुण्य पापके उदयके अनुसार उन्हे सुख दु ख प्राप्त हो रहे है। आप क्यो स्त्री पुत्रादिकके कारण अपने ऊपर एक वडा भारी बोझसा मान रहे हो ? आप उनका पालन-पोषण नही करते, उनका खुद ऐसा पुण्यका उदय है कि जिसके कारण आपको उनकी चाकरी करनी पड रही है। आपके पुण्यसे भी उन सवका पुण्य अधिक प्रबल है तभी तो आपको उनकी बराबर चिन्ता रखनी पडती है। तो जिन जीवोके पुण्यका उदय चल रहा है उनकी चिन्ता क्या करना ? इस प्रकारकी बात जब दृष्टिमे आती है तब राग निवृत्त होनेका अवकाश मिलता है। यह राग दूर हुआ कि मन स्थिर हो गया।

अन्यत्वभावनाका चिन्तन—अन्यत्व भावनामे चिन्तन चलता है कि सब अन्य हैं, जुदे है, मुझसे न्यारे है। जब उनके पुण्योदयके कारण सेवा करते करते भारी परेशान हो जाते हैं तो झल्ला करके तो सभी कह बैठते है कि सब अपने अपने मतलबके हैं, लेकिन वस्तुस्वरूपको निरखकर समताके साथ उनका आदर रख करके कोई चिन्तन करे कि ये सब अपने स्वरूपमे परिपूर्ण है, और मुझसे उतने ही भिन्न हैं जितने कि अन्य लोग भिन्न है। दूसरोपर झल्ला करके ये गैर है ऐसा माननेमे यहाँ कुछ मिलता नही है, शान्ति नही होती, किन्तु उनको हटा रहे है, जुदा कर रहे है। तो बडे आदरसे, झल्लाकर नही। उनका आदर यही है कि अपने

स्वरूपकी ही तरह उनके स्वरूपको निरखकर फिर समझे कि सब परस्पर विविक्त है, जुदे है, भिन्न है। जब ऐसा अन्यपन चिन्तनमे आता है तब राग दूर होता है।

अशुचिभावनाका चिन्तन—अब अशुचि भावनाकी बात देखिये—इस शरीरका रंग ढग देखिये, जब कोई आदमी कही अकेला ही होता है तो वह खुले बदन जैसा तैसा ही पडा रहता है, उस समयके रग ढगको देखो, और जब वह चार आदमियोके बीचमे जाता है अथवा किसी सभा सोसाइटीमे जाता है तो कैसा हाथ पैर झिटिककर, बडे साफ कपडे पहिनकर खूब सज धज कर जाता है, तो उस समयके उसके रगढगको देखो। पर क्या कोयलेमे बहुत धोया जानेपर भी कही उसमे सफेदी नजर आती है ? नही नजर आती। इसी प्रकार यह मनुष्य इस अत्यन्त अशुचि, अपवित्र शरीरको चाहे कितना ही धोये, साफ करे, पर यह पवित्र नही हो सकता। मनुष्यके अगोमे सबसे अच्छा अग माना जाता है यह कधेके ऊपर चढा हुआ टोकना। पर यह टोकना सबसे ज्यादा गंदा है। कानका कनेऊ, नासिकाकी नाक, मुखके लार थूक कफ, आँखके कीचड़ आदि सब इसी टोकनेमे है। तो इस सबसे अधिक अशुचि अपवित्र इस टोकनेको यह मनुष्य सबसे सुन्दर समझता है। यह एक इस शरीरके अशुचिपनेकी बात कह रहे है। दूसरोंपर क्या निरखना, अपनेको ही निरख लो, ऐसा यह अशुचि शरीर है और इसी अशुचि शरीरपर यह मनुष्य अपनी शान बगरा रहा है। इसी तरहसे धन व ज्ञान आदि पाकर शान बगराता है यह मनुष्य। अनेक प्रकारके नटखट यह मनुष्य किसलिए करता है ? एक इस अपवित्र शरीरकी शान बढानेके लिए। इस प्रकारकी बात जब चित्तमे बैठ जाती है तो फिर इस शरीरमे उसके राग रहेगा क्या ? न रहेगा राग। अरे जहाँ अनेक प्रकारकी बातें सोचा करते हो तहाँ इस अपने शरीरको दृष्टिमे रखकर थोडा उसकी अपवित्रता पर भी विचार करो, उससे बहुत कुछ शिक्षा मिलेगी। इन शरीरोसे राग हटेगा, परसे स्नेह मोह ममतायें दूर होगी। उसी चिन्तनके साथ एक इस प्रकारका भी चिन्तन हो कि इस अपवित्र शरीरसे मैं आत्मा अत्यन्त भिन्न हू, निर्लेप हू, अमूर्त हू, उसमे कोई भी ग्लानिकी बात नही है। ऐसा मै पवित्र आत्मा इस देहके अन्दर विराजमान हू, इस प्रकारके चिन्तनसे इस शरीरकी अशुचिताका ध्यान रखनेके कारण घबडाहट न होगी और एक अपने आपमे तृप्तिका अनुभव होगा। तो यो इन बारह भावनाओके ध्यानसे धर्ममे स्थिर होनेका वड़ा सहयोग मिलता है। इससे हे ध्यानार्थियो ! इन भावनाओका चिन्तन करो।

आस्रव भावनाका चिन्तन—शान्तिका साधन ध्यान है, उसके विषयमे बडी समतासे यदि ध्यान करें तो वहाँ अशान्ति नही ठहर सकती। जब ध्यानमे मन न लगे तो योगियोंको, विवेकियोको बारह भावनाओका चिन्तन करना चाहिए। वे आस्रवभावनाके सम्बन्धमे विचार करते है कि जीव तो स्वयं अपने आप ज्ञानानन्दरससे परिपूर्ण है, किन्तु अनादिसे इसके साथ

कोई दूसरी चीज लगी हैं जिसका फल सामने देख ही रहे हैं कि किस बन्धनमे यह जीव पडा हुआ है । वह दूसरी चीज है कर्म । नाम कुछ भी रखलो, पर यह निश्चय है कि मेरे साथ कोई दूसरी चीज लगी हुई है जिसके कारण मैं नाना विकारोमे चल रहा हू । वे कर्म आते है, वे वडे दुःखदायी है । रागादिक भाव उत्पन्न होते है, वे इस जीवको वडा कष्ट देते हैं, किन्तु खुद का जो आत्माका भाव है वह सर्व परतत्त्वोसे रहित है, इसलिए रागादिक भावोका आकर्पण लाभकारी नही है ।

संवर व निर्जरा व लोकभावनाकी झलक—रागादिक भावोसे उनसे हटकर अपने स्वभावमे रुचि लगाये, वहाँ ठहरे, यह लाभकारी है, इसीका नाम है सवर । अपने आपके स्वरूपमे आना, इससे कर्मोका आना रुकता है, रागादिक विभाव घटते हैं और इस सवरसे जीवको शान्ति प्राप्त होती है । सवर होनेपर कर्मोका झडना शुरू हो जाता है । जो कर्म अज्ञान दशामे बध गए थे वे कर्म अपने शुद्धस्वरूपके परिचयमे झडने लगते हैं । कर्मोका झरना लाभकारी है । योगियोकी दृष्टि लोककी रचना पर प्राय वहुत काल ठहरती है । सस्थानविचय धर्मध्यानमे मुख्यता यही है कि लोक और काल कितना बडा है, यह ज्ञानके सामने आँखोके सामने बना रहे, इससे रागभाव न ठहरता है, न वनता है । जिसे यह विदित है कि ३४३ घनराजू प्रमाण यह लोक है, जम्बूद्वीप एक लाख योजनका है । दो हजार कोश का एक योजन होता है । जम्बूद्वीपसे दूना एक लवणसमुद्र है । एक ओर इससे दूना द्वीप, द्वीप-से दूना समुद्र, इस तरह द्वीप और समुद्र चलते जा रहे हैं । कितने है वे सब ? अनगिनते । तो ऐसे दूने-दूने विस्तारके है और इतना ही विस्तार दूसरी ओर है । यो असख्यात द्वीप समुद्रोमे आखिरी जो समुद्र है वहाँ तक है साराका सारा मध्यलोक । ये सब द्वीप समुद्र चारो तरफके मिलकर एक घनराजू प्रमाण भी नही होते । ऐसे ऐसे ३४३ घनराजूप्रमाण यह दुनिया है । इसके बहुत थोडेसे क्षेत्रमे ही आजकी यह परिचित दुनिया है, फिर जिस क्षेत्रमे हम आप रह रहे है वह क्षेत्र इतनी बडी दुनियाके आगे कुछ गिनती भी रखता है क्या ? अरे जिस जगह आप रहते है उसकी तो बात जाने दो, जिस प्रान्तमे, जिस देशमे आप रहते है उतना क्षेत्र भी कुछ गिनती नही रखता, फिर इस थोडेसे क्षेत्रमे क्या ख्यातिकी चाह करना ? कालकी बात देखो—हम आपका अनन्तकाल व्यतीत हो गया और कितना काल और व्यतीत होगा, अन्त ही नही है । इतन लम्बे कालके भीतर यह १००—५० वर्षकी जिन्दगी क्या गिनती रखती है ? जितनेमे हम आप ओटपाये करते है,बड़ा राग विरोध मचाते हैं लोकभावना मे ये योगीजन उस लोकके स्वरूपका चिन्तन करते है जिससे राग न हो और मन स्थिर हो जाय ।

बोधिदुर्लभ भावनाका चिन्तन—लोकमे सबसे दुर्लभ चीज क्या है ? प्रथम तो

निगोदसे, अन्य स्थावरोसे, विकलत्रयोंसे या और और भवोसे निकलकर मनुष्य बनना यह बडी दुर्लभ चीज है । जैसे बैलगाडीके जुवामे दोनो ओर छोरपर एक एक छिद्र होता है जिनमे एक एक सैल पडा रहता है । उस जुवासे सैल निकालकर मानो किसी नदीमे दोनोको एक एक अलग किनारेसे बहा दिया जाय, वे बहते-बहते फिर किसी जगह इकट्ठे हो जावे और ठीक पहिले की ही भाँति उस जुवाके छिद्रोमे दोनो ओर वे सैल फिर उसी तरह पड जावे तो बतावो यह बडी कठिन बात है कि नही ?···बहुत कठिन है । इसी प्रकार अन्य अन्य भवोसे निकलकर मनुष्यभव पाना बहुत कठिन है । जरा जगतकी जीव .जातियोपर दृष्टि डालकर देख लो । मनुष्य होनेसे योग्य जो परिणाम चाहिए उन परिणामोकी कितनी विरलता है ? खैर मनुष्य हुए तो इतना तो पार पा चुके । अब मनुष्य होनेपर भी उत्तम देश मिलना कठिन है, अगर कोई म्लेच्छ देशमे जन्म हो जाय, जहाँ निरन्तर बर्फ पड रही है, जहाँ खेतीका नाम नही है, जहाँ मांसभक्षियोका निवास है ऐसी जगहमे पैदा हो गए तो ऐसा मनुष्यजीवन भी क्या जीवन है ? तो उत्तम देशका मिलना कठिन है । उत्तम देशके बाद उत्तम कुल मिलनो कठिन है । अच्छे देशमे भी मानो उत्पन्न हो गए, पर उत्पन्न हुए किसी चाण्डालके घर, अथवा भिखारियोंके घर अथवा हिंसक घरानोमे तो वह मनुष्यजीवन भी क्या जीवन है ? तो उत्तम कुल पाना कठिन है । मानो उत्तम कुल भी पा गए तो शरीर पुष्ट मिलना, इन्द्रिय समर्थ होना यह उत्तरोत्तर दुर्लभ है, और फिर बुद्धि ठिकाने हो और धर्ममे रुचि जगे, उपदेश सुनने व उसको ग्रहण करनेका चाव हो, उसको अवधारण करने व सम्यक्त्व प्राप्तिकी भावनाये बनाना ये उत्तरोत्तर कठिन बाते है । सयमी बनना, अपने आत्मामे अपने उपयोगको नियन्त्रित करना, रत्नत्रय धर्म पालना, ये कितनी दुर्लभ चीजें है ? इस प्रकारका चिन्तन बोधिदुर्लभ भावनामे चलता है ।

धर्मभावनाका चिन्तन—धर्मभावनामे धर्मकी महिमा निरखी जायगी । सर्व समृद्धिया, शान्ति, तृप्ति सब कुछ इस धर्मके प्रसादसे प्राप्त होता है । सच तो यह जानो कि जबसे धर्मलाभ हो तबसे अपना जीवन है । कोई पूछे कि आपकी कितनी उम्र है तो आप क्या कहेगे ? क्या यह कह देंगे कि हमारी आयु तो ५०-६० अथवा ७० वर्षकी है ? अरे इस उम्रको अपनी सही उम्र न समझो । वास्तवमे उम्र उतनी है जितने दिनोसे आपको धर्ममे रुचि हुई हो । नही तो आपको अनन्तकालका बूढा कहना चाहिए । वास्तवमे धर्मलाभ से ही यह जीवन सफल है । इस धर्मका फल बिना विचारे, बिना मागे स्वय सामने आता है । धर्मका वास्तविक फल तो सर्व सकलपविकल्पोसे सर्व सकटोसे मुक्त होकर एक शुद्ध कैवल्यस्वरूपका, ज्ञानानदस्वरूपका अनुभव करना है, सदाके लिए सकटोसे छुटकारा पाना है । जब धर्मके प्रति लगन होती है तो उस समय अविशिष्ट रागके कारण विशेष पुण्यका बध होता है जिससे बडी बडी समृद्धियां स्वत ही प्राप्त होती है । ऊँचासे ऊँचा पद ससारके सुखोमे मिलता है तो सम्यग्दृष्टिको ही

मिलता है। तो धर्मके प्रसादसे सर्व समृद्धिया प्राप्त होती है। यदि विशुद्ध धर्मपालन हो तो निर्वाण प्राप्त होता है। ऐसा धर्मभावनामे योगीजन चिन्तन करते है।

स्फोटयत्याशु निष्कम्पो यथा दीपो घन तमः।
तथा कर्मकलङ्कौघ मुनेर्ध्यान सुनिश्चलम् ॥२०९३॥

निर्मल सुनिश्चल ध्यानसे कर्मोका विस्फोटन—जैसे दीपक जो कि निष्कम्प हो, ठीक प्रज्वलित हो, हिलता डुलता न हो, वह दीपक जैसे बडे घने अधकारको शीघ्र ही नष्ट कर देता है इसी प्रकार मुनिका सुनिश्चल धर्मध्यान कर्मकलकोंके मलको शीघ्र ही नष्ट कर देता है। प्रकाश होते ही अधकार किस तरह नष्ट होता है जैसे छिन्न भिन्न करके तोड दिया हो, पता न पडे, इस तरह अधकार दूर होता है ऐसे ही जब मुनिका निश्चल धर्मध्यान होता है तो सारे कर्म उसके फूट जाते है। लोगोपर जब कोई कष्ट आता है, जब कोई इष्ट वियोग होता है तो कहते है कि देखो—इसका भाग्य फूट गया। अरे जिनका भाग्य फूट जाता है उनकी तो पूजा उपासना की जाती है। बडे-बडे समारोह मनाये जाते है। भाग्य फूट गया है सिद्ध भगवानका, अष्टकर्म नष्ट हो गए, कर्महीन हो गए। तो यहाँ उसी फूटनेकी बात कही जा रही है कि जब मन सुनिश्चल हो जाता है, ध्यान सही मिल जाता है तो ये कर्म फूट जाते है, नष्ट हो जाते है।

प्रयोगमे यथार्थता—अष्टाह्निकाके दिनोंमे जब अरहदास सेठ अपनी ८ सेठानियोंके सहित अपने घरमे बैठे हुए धर्मचर्चा कर रहे थे, उसी दिन वहाँका राजा और मत्री नगर घूमने गए। उस धर्मचर्चामे उस राजाके प्रति भी कुछ प्रसग था। राजा छिपकर वह प्रसग सुनने लगा। अरहदास सेठ जो भी धर्मचर्चा करें उसे ७ सेठानिया तो कहे—बिल्कुल सच, मगर सबसे छोटी सेठानी कहे—बिल्कुल झूठ। कुछ प्रसग उस राजा सम्बधी भी था, सभी सेठानियोंने अपनी-अपनी सम्यक्त्वकी कथा की तो सबने कहा बिल्कुल सच, पर वह छोटी सेठानी कहे—बिल्कुल झूठ। राजा सोचता है कि देखो ये सभी तो सच कह रही है पर एक सेठानी कहती है बिल्कुल झूठ, तो इसका हमे व्योरा जानना चाहिए। तो दूसरे दिन राजाने बडे आदरसे सेठको व सभी सेठानियोको अपने यहाँ बुलाया और रात्रिमे जो चर्चा चल रही थी उसके सम्बधमे पूछा। देखो—रात्रिको जो तुम लोगोमे चर्चा चल रही थी उसमेसे कुछ चर्चा हमारे सम्बधमे भी थी, हम भी जानते हैं कथा सच है। उसपर सभी सेठानिया तो कहती थी सच और छोटी सेठानी कहती थी—बिल्कुल झूठ, तो इसका व्योरा क्या है सो हम जानना चाहते है ? छोटी सेठानीने झट सारे आभूषण उतार दिए, एक साडी मात्र पहिनकर विना कुछ बोले चाले ही जगलकी ओर चल पडी। तब जनताने कह दिया कि वह सब तो झूठ था, सच तो वास्तवमे यह है। तो वास्तवमे आत्माको शाति कैसे प्राप्त होती है, कौनसा उत्कृष्ट

पद है, कैसे पवित्रता जगती है, कैसा पावन यह आत्मा है, ये सभी बातें धर्मका अनुभव करने से ही प्राप्त होती है, न कि केवल बाते करनेसे। काम तो करनेसे ही बनता है।

धैर्य और त्यागका लाभ——कभी देखा होगा कि जैसे—जब दो व्यक्ति परस्परमे लड जाते है तो उनमे गम खाने वाला अधिक लाभमे रहता है और उससे विरोध बढाने वाला व्यक्ति हानिमे रहता है, ऐसे ही जो इन परद्रव्योमे मोहित हो जाय, उनको पाकर ही सतुष्ट हो जाय तो वह बहुत बडे लाभसे वचित रह जाता है। बल्कि वह दुर्गतिका पात्र होता है। तो अपना कर्तव्य है कि इन पाये हुए सुखके साधनोमे मग्न न हो, इनको अपना सर्वस्व न समझे, और धर्मकी अगर सही बात बन जाय तो इन सासारिक सुखोसे भी लोकोत्तर, जिसकी कोई उपमा नही है ऐसा निर्वाण सुख प्राप्त होगा। सदाके लिए अनत आनद होगा। थोडीसी चीज दिखाकर ये कर्म इस जीवकी सर्व समृद्धि सर्व जायदाद कोर्ट कर लेते है। अपना अड्डा जमा लेते है।

परवस्तुके लोभमें अनन्त निधिकी हानिपर दृष्टान्त—एक सेठ गुजर गया, उसका दो तीन सालका बच्चा था। उस सेठकी ८-१० लाख रुपयेकी जायदादको सरकारने कोर्ट कर ली। उसकी एवजमे ५००) मासिक बाँध दिया। जब वह बच्चा कुछ समझदार हुआ तो वह सरकारके बडे गुण गावे—वाह, यह सरकार तो बडी दयालु है, देखो घर बैठे हमे ५००) रु० महीना दे रही है। जब वह और बड़ा हुआ करीब २० वर्षका तो उसे पता पडा कि करीब १० लाखकी जायदाद सरकारने कोर्ट कर ली है और उसके एवजमे ये ५००) रु० महीने दे रही है, यदि वह उसी ५००) रु० महीनेमे लुभा जाये तो वह १० लाख रुपयेकी जायदाद पा सकेगा क्या? नही पा सकता। तो उसने झट सरकारको नोटिस दे दिया कि हमारी १० लाख रुपयेकी जायदाद सरकारने कोर्ट कर रखी है, मैं समर्थ हो गया हू, मुझे यह ५००) रु० महीना न चाहिएँ, मेरी १० लाखकी जायदाद मुझे दी जाय। लो पा जाता है वह अपनी सारी जायदाद। यो ही आत्माके अनन्त आनन्दको इन कर्मोंने कोर्ट कर लिया है और उसके एवजमे यह स्त्री सुख, थोडा घरका सुख, थोडा वैभवका सुख दे दिया है, उन्हीमे मस्त हो रहे है ये अज्ञानी जन। जिनको यह पता ही नही है कि हमारी अनन्त आनन्दकी निधि इस कर्मसरकारने जप्त कर ली है, वे तो उन थोडेसे सासारिक सुखोको पाकर बडा हर्ष मानते है और इस कर्म सरकारके गुण गाते है। वाह बडा पुण्य आड़े आ रहा है, भारी समृद्धिया है, बडा सुख है, और जब यह ज्ञान बन जाय, सम्यग्दृष्टि हो, पता पडे कि ओह! मेरे इस अनत आनदकी निधिको तो इस कर्म सरकारने कोर्ट कर लिया है और बदलेमें यह थोडासा पुण्य साधन दे दिया है, तो झट वह पुण्यसरकारको नोटिस दे देता है कि मुझे नही चाहिए ये थोडे से सासारिक सुख, मेरी तो अनन्त आनन्दकी निधि जो इस कर्मसरकारने जप्त कर ली है

वह मुझे दी जाय। बस उसे अनन्त आनन्दकी निधि प्राप्त हो जाती है।

वैराग्य और ज्ञानसे अभ्युदय—बात यहाँ यह चल रही थी कि धर्मका अनुभव बने, भोगोसे उपेक्षा हो, आत्माकी बात रुचिकर हो, और ऐसी लगन बने कि एक ही मात्र हमारा काम है, एक ही लक्ष्य है निज सहज स्वभाव, कारणपरमात्मतत्त्व। अपने आपका वह अन्त. स्वरूप, बस वह मेरे ज्ञानमे रहे, प्रतीतिमे रहे तो मैं तो यह हू। बस इसके मुकावले तीनो लोककी सम्पदा भी आये तो भी उसे जीर्ण तृणकी नाई समझिये। इतना वडा साहस स्पष्ट बोध ज्ञानी जीवके होता है और तभी वह पार पा लेता है। हम आपको भी यही लगना चाहिए। ऐसा ही यत्न करना उचित है कि जिससे हम अपने आपके स्वरूपके निकट अधिक बस सकें।

चलत्येवाल्पसत्त्वाना क्रियमाणमपि स्थिरम्।
चेत शरीरिणा शश्वद्विपर्यैर्व्याकुलीकृतम् ॥२०६४॥

अल्पशक्तिक पुरुषोके चित्तकी अस्थिरता एवं ज्ञानबलसे मनोबलकी वृद्धि—जो अल्प शक्ति वाले मनुष्य है वे ध्यानको कितना ही बनायें पर स्थिर नही हो पाते है, चलित हो जाते है, क्यो उनको यह शक्ति मिलना कठिन है ? यो कि उनका मन निरन्तर व्याकुल रहता है। आत्माका वल ज्ञान है और आत्माकी कमजोरी विषयोकी आशा है। जो विषयोसे व्याकुल न हो और शुद्ध स्वरूपका ज्ञान रखता हो उसको घवडाहट भी नही और उसका आत्मवल भी बढा हुआ है। शरीरके अनेक रोग ज्ञानवलके अभावसे, नाना कल्पनाओंके करनेसे हो जाते हैं। पूर्वकालकी अपेक्षा आजकल मानसिक वेदना, दिलका रोग लोगोके वहुत होता है, ब्लडप्रेसर की बीमारी भी आजकल बहुत होती है, पहिले तो लोग समझते ही न थे कि अब खून मद गतिसे चल रहा या अब तीव्रगतिसे चल रहा, बस थोडा थक गए तो आराम कर लिया, फिर काममे जुट गए। उसकी परवाह न करते थे। आज तो मानसिक वेदनाएँ बहुत प्रविष्ट हो गई हैं, आत्मबल घट गया है। दिलकी धडकन किसी समय तेज हो जाय तो लोग बडे व्याकुल हो जाते है। अरे इस काल्पनिक वेदनासे, मानसिक वेदनासे कुछ बिगाड न होगा, सिर्फ उन गढी हुई कल्पनाओको हटा लो, चित्तको और जगह ले, जावो प्रभुके गुणानुरागमे, अपने स्वरूपके चिन्तनमे, मैं तो इस देहसे भी निराला एक शुद्ध चैतन्यमात्र हू, इसमे बिगाड क्या ? बस इस आत्मतत्त्वमे अपने उपयोगको लगा देनेसे ऐसा बल प्रकट हो जाता है कि वह मानसिक वेदनाओ वाला व्यक्ति उन वेदनाओसे बच जाता है।

ज्ञानबलका प्रभाव—ज्ञानबल बहुत बडा बल है। ज्ञानबल वाला व्यक्ति चाहे गरीब घरानेका हो, पर वह उस बुद्धिहीनकी अपेक्षा अच्छा है जो कि धनिक परिवारमे है। लोग ऐसा कहते भी है। वास्तवमे अपना असली वैभव है बुद्धिका ठीक रहना। जिन पुरुषोकी बुद्धि

व्यवस्थित है वे अपने उपयोगको आत्मचिन्तनमे रत कर देते है और सर्व मानसिक क्लेशोसे बच जाते है, पर जिनका चित्त व्यवस्थित नही, जिनका चित्त विषयोसे व्याकुल है उनके शक्ति कम होती है और उनका ध्यानमे चित्त स्थिर नही रह पाता है।

न स्वामित्वमतः शुक्ले विद्यतेऽत्यल्पचेतसाम्।
आद्यसहननस्यैव तत्प्रणीत पुरातनै ॥२०६५॥

प्रथम संहनन बिना शुक्लध्यानमे स्वामित्वका अभाव—जब कि विषयोसे व्याकुल चित्त होनेसे शक्ति कमजोर है और शारीरिक ढांचा भी कमजोर है तो ऐसे पुरुषके शुक्लध्यान की पात्रता नही होती है। अब इस प्रकरणके बाद शुक्लध्यानका वर्णन आयगा। शुक्लका अर्थ है सफेद, जहाँ कोई रग नही उसे कहते है श्वेत। ऐसा ध्यान जो सफेद है, जिसमे राग-द्वेषका कोई रग नही चढा हुआ है ऐसी स्थितिमे जो ध्यान होता है वह शुक्लध्यान है। तो ऐसे ऊँचे ध्यानकी योग्यता हीन सहनन वालोके नही होती है। ऊँचे ध्यानकी योग्यता तो वज्रवृपभनाराच सहनन वालोके होती है। वैसे शुक्लध्यानमे उपशम श्रेणीमे रहने वालेको पहिला शुक्लध्यान होता है उनके आदिके तीन सहनन सभव है। सो आदिके तीन संहनन होनेपर भी हो जाता है, पर शुक्लध्यानकी विशिष्ट योग्यता वज्रवृपभनाराचसहनन बिना नही होती है। उसका कारण क्या है सो अभी बतावेगे। यह वज्रवृषभनाराचसंहननका शरीर इतना पुष्ट होता है कि कही ऊँचेसे गिर भी जाय तो भी, चाहे पत्थरमे आघात पहुचे, टूट फूट जाय पर शरीरमे किसी भी प्रकारका कोई उपद्रव नही होता। इतना प्रवल सहनन होता है।

वज्रवृषभनाराच संहननकी प्रबलताका एक उदाहरण—जिस समय हनुमान बालक को उसकी अजना माता अपने मामाके साथ विमानमे लिए जा रही थी तो रास्तेमे वह नन्हा सा बालक खेलता कूदता विमानसे नीचे एक पहाडपर गिर गया। अब उसकी माता अञ्जना को बडा शोक हुआ, सोचा कि उसकी स्थिति क्या होगी ? खैर देखना तो था ही। जब विमान नीचे उतरा तो अञ्जनाने क्या देखा कि जिस पत्थरकी शिलापर वह हनुमान बालक गिरा था वह तो टूट फूट गयी थी और वह बालक अपने पैरका अगूठा चूस रहा था। उसे देखकर उसकी माँको बडा आश्चर्य हुआ। समझ लिया कि यह मोक्षगामी जीव है, इसके शरीरमे वज्रवृषभनाराच सहनन है, यह शीघ्र ही मोक्ष जायगा। तभी तो हनुमानको लोग बजरग बली बोलते है। तो उनका यह बोलना ठीक है। हनुमान वज्राङ्ग बली थे अर्थात् उनका शरीर वज्रका था। अञ्जना व हनुमान जीके नानाने हनुमानकी तीन प्रदक्षिणा देकर प्रणाम किया, तो जिनका वहुत छोटा चित्त है, जिनका सहनन हीन है ऐसे पुरुप शुक्लध्यानके स्वामी नही होते। ऋपीश्वरोंने बताया है कि प्रवल संहनन वालोंके ही शुक्लध्यान होता है।

छिन्ने भिन्ने हते दग्धे देहे स्वमिव दूरगम् ।
प्रपश्यन् वर्षवातादिदु खैरति न कम्पते ॥२०६६॥

वज्राङ्गबलीके उपसर्गमे भी विविक्त तत्त्वके ध्यानकी विशेषता—वज्रर्षभनाराच-सहननका धारी महायोगीके शरीर छेदा जाय, भेदा जाय, मारा जाय, जलाया जाय तिस पर भी अपने आत्माको अपने शरीरसे भिन्न निरखनेका सामर्थ्य रहता है सो वह महापुरुष ध्यान से चलायमान नही होता । शरीर वलिष्ठ है, प्रथम सहनन है तो ऐसे शरीर वाला शुक्लध्यान पा ही ले यह तो नियन नही है । प्रथम सहनन वाला अच्छे परिणाम करके मोक्ष भी जा सकता है और खोटे परिणाम करे तो ७ वें नरकमे भी जा सकता है । नियम तो नही है, पर ऐसे सहनन वालोमे यह योग्यता है कि ध्यानसे विचलितनही होता । शरीर छेदा जाय, मारा जाय, जलाया जाय, तिसपर भी उसकी आत्मामे इतना साहस रहता है कि वह शरीरसे भिन्न अपने आत्मतत्त्वकी उपासना रख सकता है ।

उपसर्ग विजयका उदाहरण—गजकुमार मुनि जिनका एक दो दिन पहिले ही विवाह हुआ था, फिर कुछ छोड छाडकर मुनि बन गए तो उनके स्वसुर साहबने क्रोधवश उनके सिर पर मिट्टीकी बाढ़ बनाई, कोयला भरा और आग लगा दी । सिर जलने लगा, लेकिन उत्तम सहननके धारी ज्ञानबलसे बलिष्ठ गजकुमार मुनिने उसको या तो उपयोगमें न लिया और जाननेमे आया तो जैसे परद्रव्यकी परिणति जाननेमें आती है, परद्रव्य तो है ही, उसकी ही परिणति जाननेमे आ रही है, विचलित नही हुए । कितने ही मुनि कोल्हूमे पेले गए, उनमेसे अनेक मुनियोंने मुक्ति भी प्राप्त किया है । कितने ही मुनियोको समुद्रमे फेका, अग्निमे जलाया, अनेक कष्ट दिये, कितनी ही पीडायें दुष्ट जनोंने साधुवोकी दी, पर जो मुनि वज्रवृषभनाराच सहननके धारक हैं ऐसे मुनि अपने ध्यानसे विचलित नही होते ।

अन्तस्तत्त्वकी लगन बिना परिजनसम्पर्कसे बचावकी कठिनता—लगनकी बात है, जहाँ केवल एक यही दिख रहा है कि इस लोकमे सारभूत वस्तु कुछ नही है, वहाँ कहा लगाव रखा जाय, कहाॅ चिपका जाय, धनसे, वैभवसे, परिजनसे अथवा मित्रजनसे ? अरे बाह्यमे मेरे लिए कुछ सारभूत है ही नही । यह दुनिया जुवेका स्थान है । जैसे कोई जुवारी कभी हार भी जाय, थोडा बहुत जो कुछ बचा हो उसको लेकर जाने लगे तो खेलने वाले ऐसी बात कहेगे (बस इतनो ही दम थी, हो चुका खेल, आदि) कि वह वहाँसे उठ नही सकता, और वह अगर कुछ जीत जाय और सोचे कि चलो कुछ तो मिल गया, अब कही ऐसा न हो कि हार जायें, सो चल दे, तो खेलने वाले लोग कहेगे—(बस खेल चुके, इतने खुदगर्ज निकले, जीत लिया बस चल दिया) यो अनेक ऐसी बातें कहेगे कि वह खेलसे उठ नही सकता । इसी तरह इस ससारकी फड भी बडी कठिन है । कोई थोडा विवेक पाकर विरक्त होना चाहता है तो परि-

वारके लोग ऐसी बाते कहेगे कि वह यहाँसे जा न सके। और बडे गुरुवोसे जितने भी प्रयत्न हो सकते है उतने यत्न करते है कि वह वहाँसे भाग न सके। यहाँ ही बना रहे, और जब हार गया है तो उसके यह बुद्धि ही नही उत्पन्न होती कि हम इस भीडसे जा सके। तो पुण्य पापका जहाँ हार जीतका काम चल रहा है ऐसा यह ससार एक जुवे जैसा स्थान है, यहाँसे निकलना कठिन है। किन्तु जिसकी धुनि बन गई है, कुछ सुहाता ही नही है, एक सहज विशुद्ध आत्मस्वभावकी उपासना ही कल्याणका उपाय है, यही मेरा धन है, मेरा सर्वस्व है, इससे आगे मेरा कही कुछ है ही नही। यो ध्यान रखने वाला, अपनी धुनि रखने वाला तत्त्वाश्रयसे च्युत नही होता।

गालियोमें मोहियोकी प्रशंसा कल्पना—यहाँ तो थोडासा धन पाकर, थोडासा यश पाकर खुश हो जाते है। एक बात और ध्यानमे लावो कि यहाँ प्रशसा करता भी कौन है ? लोग तो सोचते है कि इसने मेरी प्रशसा की है पर वास्तवमे वह प्रशसा करने वाला उसे गाली दे रहा है। इस मर्मको खूब ध्यानसे समझ लो। कोई क्या कहेगा प्रशसामे, इसके दो चार उदाहरण तो बतलावो। किसीने कह दिया कि साहब आप इनको जानते हैं ? इनके चार लडके है, एक लडका कलेक्टर है, एक मिनिस्टर है, एक डाक्टर है, और एक डायरेक्टर है, बस हो गई प्रशसा ? इस बातको सुनकर वह सुनने वाला बडा खुश होता है कि मेरी प्रशसा की जा रही है, पर बात वहाँ क्या है कि कहने वालेने उसे गाली दी। अरे इनके लडके तो इतने योग्य है पर यह कोरे बुद्धू है। किसीने कहा कि इनका मकान बहुत बढिया है, चार खण्डका है, और सामनेकी दीवार तो बहुत ही सुन्दर है, द्वारपर तो बढिया नक्कासी खुदी है। बस हो गई प्रशसा। इस बातको सुनकर वह बडा खुश होता है, पर उस प्रशसा करने वालेने तो गाली दी। अरे इन पत्थरोमे तो इतनी कला है, इतनी सुन्दरता है पर इन सेठ जी मे तो कुछ भी कला नहीं है। और भी देखो—बहुतसे व्याख्यानदाता ऐसे होते है कि बोलते चले जाते है पर उनका व्याख्यान किसीको रुचता नही, सो सुनने वाले तो परस्परमे बाते भी कुछ करते है, कभी कभी बीच-बीचमे ताली भी बजा देते है, और चाहते है कि यह व्याख्यानदाता अपना व्याख्यान बन्द कर दे, पर वह बेवकूफ व्याख्यानदाता कल्पनाये करके ऐसा सोचता है कि ये लोग मेरे व्याख्यानको सुनकर बडे खुश हो रहे है। वे सुनने वाले दे तो रहे है गाली, पर वह कल्पनाये करके समझता है कि ये लोग मेरी प्रशंसा कर रहे है। तो ऐसी है यहाँके यशकी बात। लोग किसीके धनका वर्णन करेंगे, शरीरका वर्णन करेंगे, पर्यायका वर्णन करेंगे, इनको सुनकर अज्ञानी जन समझते है कि ये लोग मेरी प्रशसा कर रहे है, पर दे रहे है वास्तव मे गाली।

स्वरूपकी धुनि वाले वज्राङ्गबलीके विशुद्ध परम ध्यानकी पात्रता—अरे कोई उस

शुद्ध चैतन्यस्वरूपका भी गुणगान करता है क्या ? उसकी तो कोई प्रशसा करता नही । उसे तो कोई जानता ही नही । कोई स्वरूपकी प्रशसा करे तो उसमे मैं व्यक्ति तो न आया, स्वरूप तो सबका एकरूप है । ज्ञानी जन यहाँ की प्रशसावोमे अपना चित्त नही देते रीझते नही । वे तो इन सर्व चीजोसे विरक्त रहते है । ऐसे ही पुरुप तो अपनी धुन बना सकते हैं, और ऐसी ही धुन बनाने वाले, उत्तम सहनन वाले महापुरुप अनेक प्रकारके शीत उष्ण आदिककी वेदनाओको समतासे सहन करते हुए अपने आत्मस्वरूपके ध्यानमे रत होते है । इस कारण शारीरिक मजबूती भी एक अपना बडा महत्त्व रखती है यदि ध्यान उत्तम हो तो । इसी विपयमे आगेके प्रकरणमे बतावेंगे कि शुक्लध्यानमे पुरुप किस प्रकारकी स्थितिमे आता है कि एक शान्त अमृतका झरना उसमे झरता ही रहता है ।

न पश्यति तदा किञ्चिन्न शृणोति न जिघ्रति ।
स्पृष्ट किञ्चिन्न जानाति साक्षान्निर्वृत्तलेपवत् ।।२०६७।।

अध्यात्मयोगीकी बाह्यनिर्व्यापारता—ससार शरीर और भोगोसे विरक्त रहने वाले और इस अत बसे हुए शुद्ध सहज ज्ञानस्वभावका आलम्बन ही जिनका शरण है ऐसी धुन वाले योगी जब अपने आपकी सुधमे उपयोग रखते है, उस समय बाहरमे कहाँ क्या हो रहा है उसपर उनकी दृष्टि नही है । उस ध्यानके समय उनकी मुद्रा मूर्तिवत् है, चित्रवत्, हिलती डुलती नही है । इस प्रकार ये योगी मन वचन कायसे निश्चल होते हैं । वे न कुछ सुनते, न कुछ बोलते, न कुछ निरखते, कहाँ कैसी गध है उसपर भी उनका उपयोग नही है । कोई छुए तो उसे भी वे नही जान रहे । ससारमे सारभूत पुरुपार्थ तो यही है कि बाहरसे उपयोग हटकर अपने आपके उस ज्ञानप्रकाशमे उपयोग रहे ।

ध्याताकी अध्यात्मकी धुनि—मैं यह हू आत्माका जानने वाला, ऐसा ध्यान सुगम है, और इसकी बात हजारो बार भी आये तो अध्यात्मप्रेमियोको अपूर्वसी नईसी लगती है । जैसे लोग रोज भोजन करते है तो रोज रोजके भोजनमे वे अघाते नही हैं, रोज-रोज नयासा लगता है क्योकि उस तरफ रुचि है, उसकी उन लोगोंने आवश्यकता समझी है, तो ज्ञानी पुरुषोंने आत्माके ज्ञानस्वरूपकी उपासना करनेकी आवश्यकता इतनी अधिक समझी है कि यह निरतर होता रहे । यह काम पूरा होनेका नही हैं । वे तो इस ज्ञानस्वभावकी उपासना करना ही अपना प्रमुख कर्तव्य समझते है । ज्ञानस्वरूपकी उपासना कर ली तो समझो सब कुछ कर लिया, अब कुछ भी करनेको नही रहा । यो निरन्तर आत्मस्वरूपकी उपासनाका ही काम उनके पडा हुआ है, ऐसा उन ज्ञानी पुरुषोंने समझा है । तो उसकी धुनमे जो आये जीवन तो उनका सफल है । जो कोई सत्यका आग्रह करने वाला योगी है उसीके शुक्लध्यान हुआ करता है । उसीका वर्णन अगले प्रकरणमे किया जायगा ।

आद्यसहननोपेता निर्वेदपदवी श्रिता: ।
कुर्वन्ति निश्चल चेत: शुक्लध्यानक्षम नरा ॥२०६८॥

शुक्लध्यानका विशिष्ट पात्र—जिनके प्रथम सहनन है, जिनके शरीरमे बज्रकी कीली है, बज्रके हाड है, बज्रमय सारा वेष्टन है ऐसे पुष्ट सहनन वाले पुरुष ही वैराग्यकी पदवीको प्राप्त होकर अपने चित्तमे उत्कृष्ट रूपसे शुक्लध्यान करनेमे समर्थ होते है, वे चित्तको परम निश्चल बनाते है । पहिले तो तत्त्वनिर्णय होना, तत्त्वनिर्णयके बाद किसी भी तत्त्वके सम्बध मे ध्यान परम्परा रहना, फिर किसी भी तत्त्वमे एकाग्र चिन्तन करना, फिर उसकी अदल बदलकर उस धारामे स्वरूपका ध्यान करना, फिर ये विचार भी हट जायें और फिर इस प्रकारके विकल्पोका भी जिनके प्रारम्भ नही है, ऐसा केवल जाननहार परिणतिमात्र रहना, यह है शुक्लध्यानकी उत्कृष्ट अवस्था । इसकी पात्रता बलिष्ठ पुरुषोमे होती है, जिनका मनोबल, वचनबल और कायबल भी बढा हुआ है ।

सामग्र्योरुभयोर्ध्यातुर्ध्यान बाह्यान्तरङ्गयो ।
पूर्वयोरेव शुक्ल स्यान्नान्यथा जन्मकोटिषु ॥२०६९॥

ध्यानसिद्धिमें निर्विकल्पताका श्रेय—जब कौरव पाडवोका विवाद समाप्तसा हो गया था, जब कौरवोका कुछ न रहा, उनकी ओरसे कोई विसम्वाद न रहा, तो एक तरहसे युद्धका परिणाम निकल आया, किन्तु इसके बाद थोडे ही समयके पश्चात् उन पाचो पाडवोको वैराग्य उत्पन्न हुआ । इस लक्ष्मीके अभावमे लोग आशा बनाते है और अधिकाधिक रूपमे आ जाय तो यह आशा मर जाती है ज्ञानी पुरुषके । मोही जनोंके तो तृष्णा बढती है । बाहुबलि भरत क्षेत्रपर विजय करने वाले चक्रवर्तीपर भी विजय पा चुका, समझो उसे सारा वैभव प्राप्त हो गया, और वैभवमे बात ही क्या होती है एक लोकमान्यता । इतना बडा वैभव पानेके बाद बाहुबलिका दिल भर चुका, कुछ भी वाञ्छा न रही और सहज ही उनके वैराग्य जगा । तो इन पाडवोको भी विजय प्राप्त हुई, पर उसके बाद विरक्त हो गए और ध्यानस्थ हो गये पाचो पाडव । कौरवोंके किसी रिश्तेदारने पाडवोको निरखकर उनपर बडा क्रोध किया और उन्हे नि शस्त्र बेघरबार देखकर उन्होंने ठान ली यह बात, कि अब इन्हे कुछ युद्धका मजा देना चाहिए । अग्नि जलायी, लोहेके आभूषण बनाकर उस अग्निमे खूब गर्म किये, जब जो लोहे का आभूषण बिल्कुल लाल हो गया तो सडासीसे उसे पकडकर उनके गलेमे डालता गया और कहता गया कि लो तुम्हारे लिए यह हार भेंट है, यो ही हाथमे, पैरोमे व शरीरके सभी अगो मे लोहेके खूब तप्तायमान आभूषण पहिनाये । उनके सारे शरीरके अग जल गए । ऐसे उपद्रव के समय तीन पाण्डवोको तो जरा भी चित्तमे कोई विकल्प न हुआ और नकुल, सहदेवके चित्तमे यह विकल्प आया कि देखो ऐसे निरपराध बलिष्ठ इन तीन भाइयोपर कितना उपसर्ग

हो रहा है ? उन दोनोंने अपने बारेमे तो विकल्प न किया, किन्तु उन तीन योगियोंके प्रति सोचा, सो इतनेसे विकल्पने उनका निर्वाण रोक दिया ।

योगीश्वरोंकी निर्विकल्प समाधिके लाभमे ही लाम माननेका आग्रह—कितने ही मुनि ऐसे हुए कि उनके ध्यानास्थ बैठे हुएमे उनके शरीरको कही सिंहने खाया, कही स्यालिनी ने खाया, कही अन्य किसी हिसक पशुने खाया, पर वे रच भी अपने ध्यानसे नही चिगे, ऐसे मुनिराज आत्मचिन्तनमे रत रहते है, किसी भी प्रकारका विकल्प नही बनाते, अपने इस शरीर तकका भी मान नही रखते, क्योकि वे जानते हैं कि अब तो हमे उस सहज परम-आनन्दका लाभ होने वाला है । ऐसे लाभको छोडकर मैं कहाँ इन बाह्य शरीरादिकोंके विकल्प मे पडू । वे जानते है कि यदि हम इस आत्मस्वरूपसे विमुख होकर किसी भी प्रकारके विकल्प मे पडे तो हम अपने इस आत्मस्वरूपमे मग्न नही हो सकते हैं । वे ज्ञानी पुरुष किसी हिंसक पशु द्वारा शरीरका भक्षण किए जाने पर भी निर्विकल्प समताभावमे स्थित रहते है । उन्हे उस निर्विकल्प परमसमाधिके लाभकी तुलनामे वे बाहरी उपसर्ग न कुछ जैसे प्रतीत होते है । तो ऐसे वैराग्यसे ओतप्रोत साधुके ध्यानकी सिद्धि होती है ।

ध्यानसिद्धिके लिये अन्तरङ्ग और वहिरङ्ग साधन—इस प्रकरणमे ध्यानकी सिद्धिके सम्बन्धमे दो बातें कही गई है—अन्तरङ्गमे तो चाहिए ज्ञान और वैराग्य व वहिरङ्ग मे बताया है वज्रवृषभनाराचसहनन । जो बहुत बडी बडी बाते भी करते हैं धर्मके प्रसगमे और उनके मामूली सा जुखाम भी हो जाय तो भी वे बडी परेशानीका अनुभव करने लगते है, बहुत-बहुत इलाज भी करने लगते है, शीत उष्ण आदिककी वेदनाए भी नही सह सकते, इस प्रकारके व्यक्ति कही ध्यानमे लीन हो सकेंगे, शुक्लध्यानके पात्र वे कदापि नही बन सकते । तो शुक्लध्यानकी पात्रताके लिए ये दो चीजें बतायी है—वहिरङ्गमे वज्रवृषभनाराच-सहनन और अन्तरङ्गमे ज्ञानभाव और वैराग्यभाव । यदि ज्ञानभाव वैराग्यभाव और वज्रवृषभ-नाराचसहनन नही है तो करोडो जन्मोंमे भी इस शुक्लध्यानकी सिद्धि नही हो सकती । यहा देखिये साधनाके आशयमे तो अतरङ्ग तत्त्वको बल दिया जाता है और जिसकी इतनी अन्तरङ्ग सामर्थ्य है उसको यह भव मिलना, शरीर पुष्ट रहना आदिक सहनन मिलना ये सब बातें बनती हैं, उसे मनोवाञ्छित अन्य बाह्य साधन भी सुगमतासे प्राप्त हो जाते हैं ।

ध्यानकी योग्यता पानेके लिये ज्ञान और वैराग्य लाभपर बल—ध्यानकी योग्यता बताई गई है कि प्रबल शरीरधारी हो और ज्ञानवैराग्यसे ओतप्रोत हो, इस बातको सुनकर कोई यह बात पकड ले कि देखो शास्त्रमे बता रहे हैं कि शरीरको खूब बलिष्ठ करना चाहिए ध्यानके लिए, तो चलो अपन इस शरीरको ही पहिले बलिष्ठ बना लें, तो ऐसा करनेमे तो स्वच्छन्दता बढती है । दूसरी जो अन्तरङ्गकी बात कही है वह मुख्य होनी चाहिए । वज्र-

वृषभनाराचसंहनन होने से हम अपने भावोंको अपने वश कर सकते है, भावोकी विशुद्धि कर सकते हैं । उस भावविशुद्धिके प्रसादसे तत्काल भी शान्तिलाभ प्राप्त होता है और भविष्यमे भी भीतरी विकास प्रगतिशील रहता है । तो इस प्रकरणसे हमे यह शिक्षा लेनी है कि ध्यान की बात तो अपनी-अपनी योग्यतापर निर्भर है । व्यवहारमे बताया है कि शुद्ध होकर हाथ पैर धोकर बडे मुद्रा मण्डलसे ध्यानमे बैठना चाहिए, पर ध्यानके लिए ये कुछ आवश्यक बात नही है । ध्यानके लिए तो आत्माकी पवित्रता चाहिए, विशुद्ध ज्ञानदृष्टि चाहिए ।

ज्ञानदृष्टिपर आत्मपवित्रताकी निर्भरता—बुन्देलखण्डकी एक घटना है कि एक औरत के बच्चा पैदा हुआ और उसी स्थितिमे वह बीमार हो गई, मरणासन्न दशा हो गयी, तो पति उसके पास आकर उसकी हालत देखकर रोने लगता है, तो स्त्री कहती है कि तुम क्यो रोते हो ? तो उस पतिने अपने रोनेका कारण बताया । स्त्री बोली कि हम न रहेगी तो तुम्हारी दूसरी शादी तो तुरन्त हो जायगी, तुम्हे क्या है ? तो वह पति बोला कि मेरी यह प्रतिज्ञा है कि अब दूसरी शादी न करूँगा तो स्त्री कहती है कि इस बातको तो या तो भग-वान जानें या हम आप । तीसरा तो कोई गवाह यहाँ है नही । स्त्रीने तीन बार यह कहलवा लिया कि क्या तुम अपनी इस प्रतिज्ञापर दृढ हो । पतिने कह दिया कि हाँ हम अपनी इस प्रतिज्ञा पर दृढ है और अब तो तुम जो चाहती हो सो बतावो । द्रव्य दान कर दें या तुम जो कहो सो दान कर दें या तुम जो चाहो सो कर दें, तो स्त्री कहती है क्या हम जो चाहेगी सो तुम करोगे ? तो पति कहता है हाँ करेगे । तो स्त्री कहती है कि हम यह चाहती है कि अब आप भी यहाँसे चले जाइये, इस बच्चेको भी यहाँसे ले जाइये और कोई भी नाते रिश्ते-दार व अन्य कोई भी पडौसी मेरे पास न आये । आखिर पति वहाँसे चला गया और उस स्त्रीने उसी अवस्थामे नीचे उतरकर, आसन मारकर वह सन्यासमरण कर लेती है । अब कोई कहे कि उसको तो दो तीन दिन बच्चा हुए बीते थे, ५ दिन या ११ दिन तक तो वह अशुद्ध ही थी, उसे इस तरहसे समाधिमरण न करना चाहिए था, उसका यह कहना ठीक नही । तो भाई ध्यानकी सिद्धि तो इस आत्माकी पवित्रतासे होती है आत्माकी पवित्रता ज्ञानदृष्टि पर निर्भर है । इसके लिए हमे वस्तुस्वरूपका निर्णय और अपने सहजस्वरूपकी दृष्टि अधिक बनाना है, फिर तो जो जिस विधिसे हमारी उन्नति होनी होगी, हो जायगी । हमारा तो केवल एक ही काम है—निज सहज स्वभावका आवलम्बन रखना ।

अतिक्रम्य शरीरादिसङ्गानात्मन्यवस्थितः ।
नैवाक्षमनसायोंग करोत्येकाग्रताश्रित ॥२१००॥

धर्म्यध्याताके इन्द्रियविषयोमे मनके संयोगकी अप्रवृत्ति—धर्म सम्बधी ध्यान करने वाला पुरुष सांसारिक परिग्रह छोडकर आत्मामे अवस्थित होते हुए एकाग्रताको धारण करके

इन्द्रिय और मनका सयोग नही करता है अर्थात् इन्द्रियसे जिस पदार्थका ग्रहण होता है उसका फिर मनसे सयोग नही करता। यहाँ इस बातपर प्रकाश मिलता है कि इन्द्रिय तो अपना काम करनेमे समर्थ है, सामने कुछ आ गया तो आँखोंसे दिख ही जायगा, कानोंसे बाहरके शब्द सुन ही पडेंगे, रसनामे रसका स्पर्श होनेसे रसका अनुभव हो ही जायगा, नासिकासे गध का स्पर्श होनेसे गधका भी अनुभव हो जायगा, किसी पदार्थका स्पर्श होनेसे स्पर्शन इन्द्रिय द्वारा स्पर्शका भी अवगम हो जायगा। इन पञ्चेन्द्रियो द्वारा विपयको ग्रहण करनेपर भी मन उन्हे न ग्रहण करे ऐसी बात यह ज्ञानी पुरुष कर सकता है। वह तो मनको केवल अपने स्वरूपमे स्थिर करता है। इससे यह शिक्षा मिली कि जो लोग विवशताका अनुभव करते हैं—पदार्थ ग्रहणमे आये तो मन लग ही जाता है, वे समझ लें कि ऐसा भी ज्ञानबलसे हो जाता है कि मन नही फसता है।

गृहीत इन्द्रियविषयमे मनके असंयोगका उदाहरण—इन्द्रिय द्वारा ग्रहणमे आये और मन न फसे, इसका एक उदाहरण तो यह है कि साधुजन आहार करते है तो उन्हे क्या खट्टा मीठा, नमकीन आदिका स्वाद नही आता ? आता है, किन्तु उनकी उस चीजमे आसक्ति नही है। यदि उन्हे खारा मीठाका पता न पडे तो त्यागी हुई वस्तुके खानेका अन्तराय कैसे पा लें ? साधुजन आहार करते हुए भी निराहार माने जाते है इसी कारण कि उन्हे आसक्ति नही है। जब कि गृहस्थ पुरुषोको मनमे बहुत चाह रहती है कि मैं चाट पकौडी खाऊँ अथवा कोई अच्छी चीज बाजारमे जाकर खाऊँ या घरपर ही बनवाकर खाऊँ, तो चाहे उन्हे ये चीजें किसी कारणवश खानेको उन गृहस्थोको मिल न सकें, पर वे निराहार नही कहला सकते। कारण कि उस चीजके प्रति उनके आसक्ति है, उनका ध्यान उस ओर बना रहता है तो वे साधु आहार ग्रहण करते हुए भी निराहार है। इन्द्रियके द्वारा कोई चीज ग्रहणमे आ जाय तिसपर भी जो ध्यानी पुरुप है, ध्यानी जन है वे उसे मनसे ग्रहण नही करते।

असख्येयमसख्येय सद्दृष्ट्यादिगुणेऽपि च।
क्षीयते क्षपकस्यैव कर्मजातमनुक्रमात् ॥२१०१॥
शमकस्य क्रमात् कर्म शान्तिमायाति पूर्ववत्।
प्राप्नोति निर्गतातङ्क स सौख्य शमलक्षणम् ॥२१०२॥

सम्यक्त्वविकास—जो ध्यानमे बढता है उसके गुणोमे विकास होता जाता है, और इसीका नाम है ऊँचे-ऊँचे गुणस्थानोंमे चढना। चतुर्थ गुणस्थानमे सम्यग्दर्शन हो गया तो आत्माका विकास ही तो हुआ। सर्व पदार्थ यथार्थ ज्ञानमे आने लगे, प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने स्वरूपमे है, कोई किसी अन्यके स्वरूपसे नही है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव—ये चार चीजें प्रत्येक स्वरूपमे है। जैसे घडी, तो जिसे हाथमे उठाया यह पिण्ड द्रव्य है, और जितनेमे यह अवगा-

हित है बस इतना ही क्षेत्र है, और उसकी जो दशा है वह काल है और इसमे जो गुण है वह भाव है। यो कोई भी पदार्थ हो उसमे ये चार चीजे होती है। आत्मामे जितना गुण है, पर्याय है, द्रव्य है वह सबका सब है और जितनेमे यह आत्मा फैला है वह है इसका क्षेत्र और जिस परिणतिको लिए हुए है—क्रोध कषाय अथवा ज्ञानप्रकाश विशुद्ध भाव, वह है इसका काल, और जो गुण है वह है भाव। तो आत्माके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आत्मामे ही रहे कि दूसरेमे पहुच गए ? यो यथार्थ बोध जिसको हो जाता है इस बोधके बलसे अनात्मतत्त्वोसे विविक्त अन्तस्तत्त्वकी प्रतीति हो जाती है बस वही तो सम्यग्दृष्टि पुरुष है।

ज्ञानीकी परतत्त्वमें परताकी प्रतीति—लोग तो इष्ट वियोग व अनिष्ट सयोगमे व घर की अनेक बातोमे पडकर अपनेको मोहभावके कारण परतत्र बना लेते है, पर एक इस वस्तुस्वरूपकी स्वतत्रता और अपने यथार्थ स्वभावका भान कर ले तो उनका विकल्प सकट दूर हो जायगा, फिर वहाँ मोह ममत्व न रहेगा। ज्ञानी जीव इस देहको व किसी भी परद्रव्यको **अपना नही समझता है वह तो अपने सहज स्वभावको** ही यह मैं हू ऐसी प्रतीति करता है। एक बार कोई पति पत्नी कही जा रहे थे, वे धर्मात्मा थे। पति ४०-५० कदम स्त्रीसे आगे था। पतिको एक जगह रास्तेमे २५-३० मोहरें पडी हुई दिखी तो सोचा कि कही हमारी पत्नी इन मोहरोको देखकर इनपर लुभा न जाय सो उसने उनपर धूल डाल दी। इतनेमे ही वह पत्नी आयी तो पूछती है कि यह क्या कर रहे हो ? पुरुषने उत्तर दिया कि ये २५-३० मोहरें पडी है सोचा कि कोई इनको देखकर लूभा न जाय सो इनपर धूल डाल रहे है। उस पत्नीके लिए न कहा। तो पत्नी कहती है—अरे चलो, धूलपर धूल क्यो डाल रहे हो ? तो देखो—पुरुषके मनमे तो यह आया कि ये मोहरें है और पत्नीके मनमे यह आया कि ये मोहरें भी धूल है और जो इनपर डाली जा रही है वह भी धूल है। तो ज्ञानी पुरुषोकी अनेक ऐसी शुभ कल्पनायें होती है जिनसे उनका वैराग्य व्यवस्थित रहता है, वे अपने व्रतमे बढते हैं।

श्रेणीमे उपशमन व क्षपण—प्रमत्तविरतसे जब अप्रमत्तविरतमे चलते है तो परिणामों मे प्रगति होनेसे वे श्रेणीमे चढते है, ऊँचेके गुणस्थानोमे पहुचते है। तो यहाँ दो श्रेणी है—उपशम और क्षपक। जो जीव क्षपक श्रेणीमे चल रहा है उसमे असख्यात गुने कर्मोकी निर्जरा चलती है, कर्म नष्ट होते जाते है, और जो जीव कर्मोसे दबे हुए है उनके असंख्यात गुणे कर्म उपशमको प्राप्त होते जाते है। तो यह सब बल कहाँसे आया ? एक अपने शुद्ध आत्मतत्त्व की भावनासे, उसके आलम्बनसे यह बात आयी कि स्वत. ही ये कर्म झडने लग जाते हैं। किसीने गीली धोतीको सूखने डाल दिया और वह छूटकर गिर गयी तो उसमे धूल चिपट गई। वह उस धूलको यो ही छुडाने लगे तो दूसरा समझदार पुरुष कहता है कि अरे इस धूल को यो न साफ करो, इसे यो ही सूखने डाल दे, सूख जानेपर जरासे झटकेमे सारी धूल झड

जायगी, अन्यथा जैसे जैसे धूलको छुटाना चाहोगे वैसे ही वैसे धूल चिपटती जायगी। तो यही बात यहाँ घटावो कि आत्मामे जो राग स्नेह है, रागकी चिकनाई है जिससे ये कर्म बँध रहे है तो क्या करें कि ऐसी ज्ञानकी धूप दिखावें, ऐसी ध्यानकी तीक्ष्ण किरणें प्रकट होने दे कि जिससे यह रागकी चिकनाई हट जाय तो यह कर्मधूल तो जरासे उपक्रममे झड जायगी।

ज्ञानस्वभावकी उपासनासे कर्मका विश्लेष—देखिये कर्मका नाश हम कैसे करे, हमे तो कर्म दिखते भी नही, कैसे हम कर्मोको पकडें उनपर हमारा क्या वश है ? उपाय यह है कि हम अपने भावोको सम्हालें, रागद्वेषमे न बँध जाये, और अविकार आत्माका जो ज्ञानस्वभाव है उसकी उपासनामे रहे तो यह कर्मधूल अपने आप झड जायगी। तो श्रेणियोमे उन योगीश्वरोंके जो उपशम श्रेणीमे है उनके तो कर्मका असख्यात गुना उपशम होता है और जो क्षपक श्रेणीमे है उनके असख्यात गुना क्षय होता है, और जैसे-जैसे कर्मोका भार हटता है वैसे ही वैसे आत्मीय आनन्दका अनुभव बढता है, जैसे जैसे आत्मीय आनदका अनुभव बढता है वैसे ही वैसे उन कर्मोका भी झडना हो जाता है। इसमे शिक्षाकी बात यह है कि एक अपने को सम्हाल लें तो सब कुछ सम्हल गया और अपनेको न सम्हाल पाया तो सब कुछ बिगड गया।

धर्मध्यानस्य विज्ञेया स्थितिरान्तर्मुहूर्त्तिकी।
क्षायोपशमिको भावो लेश्या शुक्लैव शाश्वती ॥२१०३॥

धर्मध्यानकी मुख्य लेश्या व कालस्थिति—धर्मध्यानकी स्थिति अन्तर्मुहूर्तकी है। बदलता रहे, फिर होता रहे यो परम्परा तो चलती है, पर जो धर्मध्यान हुआ है वह अन्तर्मुहूर्त तक रहता है और इसका भाव क्षायोपशमिक है। धर्मध्यान चारित्र मोहके क्षयोपशमसे और ज्ञानावरणके क्षयोपशमसे होता है, दोनोका सुयोग होनेपर ध्यानकी उत्पत्ति होती है, तो इसका भाव क्षायोपशमिक है और केवल शुक्ललेश्या रहती है यह उत्कृष्टतामे बात बतायी जा रही है। धर्मध्यान चतुर्थ गुणस्थानसे प्रारम्भ होता है और चतुर्थगुणस्थानमे ६ लेश्याये, ५वें गुणस्थानसे ३ लेश्याये सातवें गुणस्थान तक शुभ और अष्टम गुणस्थानसे केवल शुक्ललेश्या है, पर एक अतिशयकी बात बतायी जा रही है कि जो धर्मध्यानमे रहने वाला पुरुष है उसकी इतनी कषाय मद है कि वह अपनी वीतरागताका शाश्वत दर्शन करता है, उसका आलम्बन लेता है, उसके शुक्ललेश्या होती है।

धर्म्यध्यानका प्रभाव—धर्मध्यान करने वाले पुरुषकी एक स्थिति बतलाई गई है कि वह किस अवस्थामे रहता है, धर्म्यध्यानी पुरुष पवित्र है, दूसरोको शान्तिकी छाया दे सकनेमे समर्थ है। यहाँ भी किसी ज्ञानी ध्यानी योगीके निकट कोई बैठे तो उसका विषय कषायोका परिणाम दूर होने लगता है, और जो ऐसे योगीश्वर है उनके निकट तो सिंह हिरण भी एक

साथ खडे हो सकते है, अहिंसाकी उनके परम उत्कृष्टता रहती है । जो एक अपनेमे अविकार भावको ही उपयोगमें लिए हुए है उनका ऐसा विशुद्ध परिणमन है कि उस जगह जाति विरोधी जीव भी हो तो भी उनके दर्शन कर वे अपनी ही कल्पनामे, अपने ही ज्ञानसे प्रभावित होकर बैर विरोधको छोड देते है । कुछ कुछ तो यहाँ भी बात देखी जाती है । कोई पुरुप परस्परमे लड रहे हो और उनके पाससे कोई धीर गम्भीर शान्त पुरुष निकल जाय तो वे लडने वाले लोग कुछ न कुछ शान्त हो जाते हैं ।

परम अहिंसककी आदर्श मुद्रा—अहिसातत्त्वमे जो ऊँचे बढ़े हुए है, अपने स्वभावके ध्यानमे जिनका अभ्यास हुआ है उनकी मुद्रा तो बहुत ही अपूर्व होती है और ऐसे आत्माके ध्यान करने वाले पुरुषके मुखकी जो मुस्कान है वह अन्यत्र नही है । ऐसे पुरुषोंके जिन्हे दर्शन हो जायें उनका बडा सौभाग्य है । उनके दर्शन करनेसे एक विशुद्ध आनद जगता है । उनकी मुख मुद्रा, उनके ओठ इन सबका परिणमन ऐसा विशुद्ध मुस्कानको लिए हुए रहता है कि जिसको निरखकर लोग अपनी कषाय बैर विरोध जोडकर शान्त हो जाते है । यहाँ तो कुछ थोडासा विषय-सुख प्राप्त करके लोग बहुत हँसते है, पर उनके हँसते समयका फोटो लिया जाय तो वह बडा भद्दा जचेगा, लेकिन आत्माका जो विशुद्ध सहज आनद है उसका जो अनुभव होता है, उसमे जो मुद्रा बनती है वह अपूर्व है, अलौकिक है, ऐसी ही मुस्कान प्रतिमाके मुखपर बनानेकी कोशिश कर सकते है कारीगर लोग । प्रतिष्ठित विशुद्ध प्रतिबिम्बकी मुद्राको निरखकर आप अदाजा कर सकते है कि आत्मीय आनदका अनुभवन करने वालेकी मुद्रा किस प्रकार होती है, इसके मुकाबिलेमे जगतके तीनो लोकके समस्त वैभव जीर्ण तृणकी तरह है ।

इदमत्यन्तनिर्वेदविवेकप्रशमोद्भवम् ।
स्वात्मानुभवमत्यक्ष योजयत्यङ्गिना सुखम् ।।२१०४।।

स्वात्मानुभवके प्रतिपक्षी कल्पनावोसे क्लेशोंमे नियुक्ति—ससार शरीर भोगोसे विरक्त होनेके कारण तथा अनात्मतत्त्वमे और सहज आत्मतत्त्वमे विवेक होनेके कारण एव प्रशम भाव होनेके कारण उत्पन्न हुआ जो स्वानुभव प्रत्यक्ष है वह प्राणियोको शान्तिमे लगाता है । देखिये हम एक जाननके सिवाय और क्या कर सकते है ? उसके साथमे रागद्वेपकी भी प्रेरणा होती है जिससे मिलकर एक कल्पना बनती है । कल्पना किसका नाम है ? रागद्वेषके सम्बव से ज्ञानकी जो परिस्थिति बनती है उसका नाम कल्पना है । तो कोई हम कल्पना करते है तो वह भी हम ज्ञानका ही काम कर रहे है । कभी कल्पनातीत होकर एक शुद्ध तत्त्वका अनुभव करते है तो वहाँ भी हम ज्ञानका काम करते हैं, एक जाननके सिवाय और कुछ क्या कर सकते है ? अब इन ज्ञानोमे ही यह विवेक करना होगा कि किस प्रकारका ज्ञान हमारे क्लेश

का हेतु है और किस प्रकारका ज्ञान हमारे आनन्दका हेतु है ? जिस जाननेमे परकी ओर लगाव रहता है, चाहे वह रागरूपमे रहे अथवा द्वेपरूपमे रहे, वहाँ परके लगावके कारण क्लेश होता है। इसका कारण यह है कि पर अत्यन्त भिन्न है, उसकी ओरका जो लगाव है वह इसका मिथ्या प्रयोग है।

आध्यात्मिक चोरीका अपराध—हे आत्मन् ! क्यो अपनाता है ? जो अपनो नही है, अपनेसे अत्यन्त भिन्न है उसको अपनानेसे तो कुछ मिलेगा नही। लोकमे भी जो दूसरेकी वस्तु को अपनाते है उन्हे दण्ड मिलता है। चोरीका अर्थ ही क्या ? दूसरेके घरमे रखी हुई चीजको उठाकर अपने घर रख लेना और उसे अपनी मान लेना, इस ही का नाम तो चोरी है। परकी चीजको यह मेरी है इस प्रकारकी मान्यता चोरीमे होती है। तो यहाँ अध्यात्मविधिमे चोरी का स्वरूप देखो—जो परवस्तु है शरीर धन वैभव, रूप, रस, गध, स्पर्श ये अत्यन्त पर हैं, इन्हे अपनाना, इन्हे आपा मानना, इन्हे अपना हितकारी मानना बस यही चोरी है, ऐसी चोरी करने वाले यहाँ प्राय सभी है तो इन्हे दण्ड कौन दे सकता है ? दण्ड तो इन्हे स्वय प्रकृत्या मिल जाता है। तत्काल तो क्लेश होना, चिन्ता होना और आगामी कालमे भी उस कालमे बँधे हुए कर्मोके उदय कालमे इसे क्लेश होना ये सब चलते है। तो ऐसा जानन जिसमे राग-द्वेपका मैल मिला हो, जिससे कल्पनाओका रूप बनता है वह तो क्लेशका हेतु है। चाहे वह कल्पना एक मौज मानने वाली हो और चाहे वह कल्पना विषाद मानने वाली हो, दोनोमे क्लेश है। जैसे सतप्त पानीमे उबाल आता है तो यहाँ देखिये कि रागके सतप्त हृदयमे भी क्षोभ होता है और द्वेषसे सतप्त हृदयमे भी क्षोभ होता है। पानीके शुद्ध स्वादको पानी गर्म कर दिया जाय तो खराब हो जाता है और ठडी मशीनमे रखकर उसे ठडा कर दिया जाय तो उसका स्वाद बिगड जाता है, यो ही आत्माका जो विशुद्ध परिणमन हे क्षोभरहित वह न राग मे रहता है और न द्वेषमे रहता है।

परद्रव्योंके आकर्षणके कुमार्गमे शान्तिकी असंभवता—जो लोग धन वैभवको पाकर मौज मान रहे है, फूल रहे है, वे लोग जरा भीतर तो निरखें कि क्या कर रहे है ? अपने स्व-रूपसे चिगकर किसी परतत्त्वमे आकर्षित हो रहे है। उपयोग बाहर लगे, परमे रमे तो इसका फल नियमसे क्लेश है, और यही कारण है कि आज कोई भी पुरुष चाहे धनी हो, चाहे नेता बना हो, चाहे मिनिस्टर हो गया हो, पर चैन किसीको नही मिल रहा। शान्ति उन्हे है जो हृदयसे ईमानदारीके साथ अर्थात् सम्यग्ज्ञान और विवेकके साथ परवस्तुवोका त्याग किए हुए हैं, केवल यह मैं ही अपना ज्ञानमात्र तत्त्व हू, मैं ज्ञानमात्र हू, इस प्रकार अपनेको केवलज्ञानरूप जो अपनेको अनुभव करते है शान्ति उनको है। यही स्वानुभवका मार्ग है। जो इन्द्रियसे परे है, ऐसा स्वानुभव प्राणियोको सुखमे लगाता है। वह अनुभव कैसे बनेगा—इसके लिए कुछ

उपाय भी विशेषणमे बता दिए । प्रथम तो विवेक । मैं क्या हू, जब उपयोग केवल ज्ञानज्योति को ही विषय करता है, एक ज्ञानमात्रका जब उसे विवेक आता है कि मै तो यह हू और शेष पर है, जिसके यह विवेक आ गया वह नामवरीको, धन सम्पदाको, लोगोकी प्रशसाको, लोगो मे सम्पर्क बढाया जानेको, इन सारी चेष्टावोको वह धूलवत् मानता है । यह है विवेककी परीक्षा । लोग मुझे जान जाये कि यह ज्ञानी है, विवेकी है, बडा अच्छा है, यदि इस तरहकी चित्तमे धुन है तो समझ लीजिए कि विवेक अभी नही जगा । त्यागकी परम्परा विशुद्ध रूपमे तो ऐसी है कि किसीको पता पाडना भी जरूरी नही है । पता लगे दूसरोकी ओरसे वह बात अन्य है, पर त्याग करने वाला चाहे धनका त्याग करे, चाहे भीतरी दुर्भावोका परित्याग करे वह अपने आप उसे दूसरोको पता करनेका चित्तमे ख्याल नही करता । मैं मै हू, अपने लिए हूं । यो ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वका जिसे दर्शन हुआ है उसको स्वानुभव प्राप्त होता है ।

संसार शरीर भोगोंसे विरक्त जनोका स्वानुभवपर अधिकार--जो ससारसे विरक्त है, संसार मायने अपने रागद्वेष विकल्प, उनसे विरक्त है वही स्वानुभवका पात्र है । जो धर्मचर्चा करते हैं या किसी समाचारकी बात कहते है, और जो मैं कहता हू उसे दूसरे न मानें तो चित्तमे जो क्षोभ करते है, समझिये उसका ससारमे प्रेम लगा है, इसको क्षोभ है । ससार नाम है अपने विकल्पोका । विकल्पोका ऐसा मानना कि ये विकल्प ही मै हू, यही मेरा सर्वस्व है, इससे ही मेरा हित है, इससे ही मेरा शान्तिमय जीवन है, ऐसा जो उसने अपना विश्वास बनाया है, ऐसी जो उन विकल्पोकी पकड की है यही तो ससार है, और जो ससारसे विरक्त है, निर्लेप है, बोल लिया, तत्त्वचर्चा कर लिया, तत्त्वके सम्बधमे कुछ प्रतिपादन कर लिया इस विधिसे कि अपनेको भी सुनाया जा रहा है और अपनेमे भी उसका रस लेता जा रहा है । जब कोई उस बातको न माने तो न सही । अरे जीव तो अनतानत है, इन दो चार जीवोपर ही क्यो विरोध हो गया, ऐसे विकल्पोकी पकड होना यही तो ससारकी पकड है । इसमे सब बाते आ गई । केवल ज्ञानचर्चाके विकल्पकी ही बात नही कह रहे, नामवरीका विकल्प, यशका विकल्प, इन सब विकल्पोकी पकड है वही ससारका राग है । और शरीरके साधनमें, पोषणमे जो कल्पना है, विकल्प है वह है शरीरका राग । और भोगोके साधनमें, इन्द्रियके विषयोंके भोगनेमे जो इसकी प्रीति है वह है भोगोका राग । इन ससार शरीर और भोगके विषयोसे जो विरक्त है तथा जिनके ऐसा समर्थ उच्च भेदविज्ञान है कि कोई पुरुष तुरन्त भी विरोध कर रहा है अथवा पहिले किया है उस पुरुषपर ये क्षमाभाव रखते है, अपनेमे क्षुब्ध नही होते है, ऐसी स्थितिमें वह स्वानुभव उत्पन्न होता है जो इन्द्रियसे परे है, वह स्वानुभव प्राणियोको सुखमें लाता है ।

अपनेमे ज्ञान और वैराग्यका निरीक्षण--अपनेको सुखमें लानेकी बात सभी लोग

सोच रहे है । सबका यही प्रयत्न है, पर सत्य उपाय क्या है ? तो आचार्यदेव करुणा करके बता रहे है--वह यही उपाय है—वैराग्य, सम्यग्ज्ञान । इनमे हम कुछ उपयोग दे रहे है क्या ? निरख लीजिए । सिनेमाकी बात हो कही तो टिकट खरीदनेके लिए रुपया भी खर्च करते, लाइन भी लगाये खडे रहते, कितना चाव रहता है सिनेमा देखनेका । ऐसे ही बडा स्वादिष्ट भोजन करनेके लिए अपना कितना चाव बनाये रहते हैं, खूब दौड धूप करके अनेक प्रकारकी चीजोको जुटाते है, धन वैभवका सचय करनेके लिए तो रात दिन ख्याल बना ही रहता है । अरे उस धन वैभवके बढनेकी कुछ हद भी मान रखी है क्या ? कितना भी हो जाय, पर सतोष नही होता है । तो सन्तोष न होनेसे जो कुछ भी वैभव प्राप्त हुआ है उसका भी सुख नही लूट पाते है, जब उस वैभवकी तृष्णा लगी है तो सुखसे भोजनपान भी नही कर पाते हैं, इधर उधरकी दौड धूप बनी रहती है, धर्मकी बात सुननेका समय नही निकल पाता है, चित्त भी विषयोसे इतना व्याकुल है कि धर्मकी बात, तत्त्वकी बात समझनेको कुछ बुद्धि नही लगायी जाती । इन सभी बातोमे ध्यान देकर आप अपनेमे निरखिये और निर्णय बनाइये कि अभी हम सही रास्तेपर हैं या अभी सही रास्तेसे अलग है ।

सुखके वास्तविक उपायको त्वरित करनेका अनुरोध—सुख पाना है तो सुखका उपाय मात्र ज्ञान वैराग्य है, चाहे इस बातको अभीसे मान लें और चाहे १०-५ वर्ष ठोकर खाकर मानें या कुछ भवोमे ठोकर खाकर मानें । यदि शुद्ध आनन्द मिलेगा तो एक इस ही उपायसे मिलेगा, अन्य कोई उपाय नही है । तो उसके लिए हम विलम्ब क्यो करें ? समय लम्बा क्यो लगाये । कुछ लोग सोचते है कि अभी इतने दिन और मौजमे अपना समय गुजार लें, फिर तो बस धर्ममे ही अपना चित्त लगायेंगे, तो यह सोचना उनका ठीक नही है, क्योकि पहिली बात तो यह है कि उनको वैसा अवसर ही न मिल पायगा कि वे धर्मध्यानमे लग सके, उनका वह समय लम्बा हो जायगा । जो लोग कैसी भी परिस्थिति हो, इस ही समय अपनी शक्ति के अनुसार धर्मपालनका आदर नही करते । वे चाहे कितना ही सोचें और कहे कि हम इतने वर्ष बाद धर्ममे लगेंगे, अभी तो हम एकदम जो कुछ भी रहो, अधर्म पाप तृष्णा इनमे जुटे हुए हैं, और इतने वर्ष बाद एकदम धर्ममे जुट जायेंगे तो उनका यह सोचना और कहना गलत है, क्योकि जिसे धर्मभावका इस वक्त भी कुछ आदर नही है वह धर्मभावका आदर आगे क्या करेगा ? इससे जो भी स्थिति है उस ही स्थितिमे जितना अधिक हो सकता इस धर्मका पालन करें, ज्ञानकी बात सीखे, प्रभुकी भक्तिमे रहे, अपने आत्माका चिन्तन करें । प्रत्येक सम्भव उपायोंसे हम अभीसे धर्ममे अधिक जुट जायें तब तो हमारा भला है । उम्रकी बात नही निरखना है कि अभी तो हमारी उम्र थोडी है, कुछ थोडी उम्र अभी और गुजरने दें, अरे जो जब चेत जाय, जितनी जल्दी चेत जाय उतना भला है । उम्र तो अनत कालकी हो चुकी है, अभी

कितनी उम्र और बढाना चाहते सो तो बतावो । अरे अपने कल्याणका उपाय अभीसे बना लो, सही विवेक जगे, ससार, शरीर और भोगोसे विरक्ति जगे और प्रसमभाव उत्पन्न हो इसीसे स्वानुभव प्रत्यक्ष बनता है और उसके कारण यह वास्तविक आनदका पात्र होता है ।

अलौल्यमारोग्यमनिष्ठुरत्व गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पम् ।
कान्ति प्रसाद स्वसौम्यता च योगप्रवृत्ते· प्रथम हि चिह्नम् ॥२१०५॥

अध्यात्मयोगप्रवर्तकोका प्रथम चिह्न—अध्यात्मयोगमे जो प्रवेश करते है उनके प्रथम चिह्न ये हैं—तो धर्मध्यानमे अपना यत्न करते है उनका परिचय दिया जा रहा है—प्रथम तो विपयोमे इन्द्रियकी लम्पटता नही होती । इद्रियके विपय ५ है, इन ५ विषयोमे इसकी आसक्ति नही रहती है । थोडेसे यत्नमे जो विपयसाधन होने आवश्यक है उनमे ही यह गृहस्थ रहता है, और साधुजन तो उनका विवल्प नही करते । समयपर आवश्यक होनेपर सविधि आहार आदिक कर लिया, पर न विकल्प पहिले और न विकल्प बादमे । इद्रियविपयोमे लम्पटता नही रहती । अब सोच लीजिए, जो लोग खाने पीनेका बडा शौक रखते है, बाजार की चाट पकौडी जलेबी आदि खाते है, बहुत-बहुत चाय पीते है, अनेक प्रकारकी चीजे पाउडर लिपस्टिक आदि बिल्कुल व्यर्थकी चीजोका प्रयोग करते है क्या उन्हे अपने कुछ कल्याणकी भी सुध है ? अरे उनकी दृष्टि तो बाह्यमे लगी हुई है, उन्हे अपने आत्मस्वरूपकी कहाँ सुध है ? आप ही बतावो कि जिसकी इन इद्रिय विपयोमे लम्पटता है, बाह्यमे दृष्टि है वे इस कल्याणकी प्राप्तिके पात्र भी है क्या ? नही है । तो धर्मध्यानमे यत्न करने वालोकी यह प्रथम निशानी है कि वे इद्रिय विपयोमे लम्पटता नही रखते ।

अध्यात्मयोग प्रवर्तकोके शेष चिह्न—धर्मध्यानके प्रवर्तकोका दूसरा चिह्न है—मनका चचल न होना, थोडा कही मन बाहरमे चला भी जाय तो झट स्थिर हो जाय । तीसरा चिह्न है—आरोग्य रहना, चौथी बात है–निष्ठुरता न होना, ५वी बात है शरीरका गध शुभ होना, दुर्गन्ध वाली वात शरीरसे न निकलना, योग साधना वालेकी बात कही जा रही है । आप सोचेंगे कि इनसे उसका क्या सम्बध ? अरे जब अरहत अवस्था होती है तो शरीरका क्या रूप बनता है, वहाँ अतिशय करके बनता है, तो कुछ थोडीसी बात यहाँ भी दिखती है । एक तो योगीके मलमूत्रका अल्प होना, प्राकृतिक है, क्योकि योगियोका आवश्यक अल्प आहार होता है । ज्यादा भोजन करनेसे मलमूत्रकी अधिकता होती है, उनका शरीर कान्ति सहित होता है, अर्थात् शक्तिहीन नही होता है, अपने धर्मध्यानके कार्यमे प्रमाद न आना, चित्तमे प्रसन्नता होना, मनमे रच भी मलिनता न होना, शुद्ध पवित्र होना और शब्दोंका उच्चारण सौम्य होना आदिक ये धर्मध्यानके बाह्य चिह्न बताये गए है । यह केवल एक पहिचानके लिए कहा गया है, भीतरमे तो वे वहाँ लग रहे हैं, किस पावन तत्त्वमे अपना उपयोग जमाये हुए

है वह पवित्रता है उनकी वास्तविक आन्तरिक। पर बाह्यमे ये भी चिह्न हो जाया करते है। इस प्रकरणसे हमे यह शिक्षा लेनी है कि हम विवेक बनायें, वैराग्य बढायें, क्षमाभाव बढायें और अपने आत्माके अनुभव करनेकी धुन रखे, इससे हमारे सकट दूर होंगे।

अथावसाने स्वतनु विहाय ध्यानेन सन्यस्तसमस्तसङ्गा।
ग्रैवेयकानुत्तरपुण्यवासे सर्वार्थसिद्धौ प्रभवन्ति भव्याः ॥२१०६॥

धर्मध्यानके फलमे उत्तम देवगतिमे जन्म—धर्मध्यानके वर्णनके पश्चात् इस प्रकरणमे धर्मध्यानके फलमे भव्य पुरुष पर्यायके अन्त समयमे समस्त परिग्रहोको छोडकर अपना शरीर छोडते है और ऐसे पुरुष पुण्यके स्थानमे उत्पन्न होते है। धर्मध्यान सप्तम गुणस्थान तक कहा गया है। धर्मध्यानकी उत्कृष्टता प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरतमे होती है, वहाँ परिग्रहके त्यागी, केवल आत्मभावके अनुरागी ज्ञानविलासमे रमकर इस पर्यायको छोडते है तो वे ऐसे स्थानोमे उत्पन्न होते है जहाँ पुण्यका उदय प्रचुर रहता है—जैसे नवग्रैवेयक, नवअनुदिश, पच अनुत्तर जिसमे सर्वार्थसिद्धि मुख्य स्थान है। नवग्रैवेयक कहाँ है ? यह स्वर्गोसे ऊपर है।

वैकण्ठवासी देवोकी चर्चा—थोडी चर्चा आजके प्रकरणमे स्वर्ग और स्वर्गसे ऊपर निवास करने वाले देवोकी होगी। उनके स्थान यहाँ है, सोलह स्वर्गोके बाद ग्रैवेयक लगता है, और यो समझिये—जैसे ७ बालक एकके पीछे एक खडे हो जाये और वे पैर पसारकर हाथको कमरपर रखकर खडे हो तो वह लोकका सही आकार बनता है। उसमे जो बीचका बालक है चौथे नम्बरका, उस बालकके गलेसे लेकर जितनी गलेकी चौडाई है उतनी चौडी लाइन नीचे तक जमीन तक खीच लें, जितना उस नालीका स्थान है, वहाँ ही त्रस जीव रहते है, इस कारण उसे त्रसनाली कहते हैं तो नाभिस्थानपर मध्यलोक है, नाभिसे ऊपर ऊर्ध्वलोक है, तो स्वर्गकी रचना बहुत ऊँचे तक चली गई है। इसके बाद ग्रैवेयककी रचना है। ग्रीवासे ग्रैवेयक शब्द बना, और लोग उसे कहते है बैकुण्ठ। और शुद्ध शब्द कहना हो तो वैकण्ठ। जो लोकका कठस्थान है वह है वैकण्ठ। वही है बैकुण्ठ। तो बैकुण्ठमे जाकर जीव चिरकाल तक रहता है, और लोग उसे मोक्ष मानते है, किन्तु ऐसा मोक्ष मानते है कि चिरकाल निवास के बाद उसे फिर जन्म लेना पडता है तो वह यही ग्रैवेयक है। यहाँ भी २३ सागरसे लेकर ३१ सागर पर्यन्तकी आयु होती है। एक सागर अनगिनते अरबो खरबो वर्षोका होता है। उसकी सख्या ही नही, तो वह चिरकाल हुआ, इतने काल तक वहाँ रहता है, फिर उसके बाद वहाँसे उसे यहाँ जन्म लेना पडता है। वहाँ सुख सासारिक दृष्टिसे बहुत कुछ है। वे वेदना-रहित है, उनका दिव्य काय है, मद कषाय है, ऐसे पुण्यस्थानमे धर्मध्यानी पुरुष उत्पन्न होते है, पर इन पुण्यस्थानोमे परिग्रहका त्याग करके ही उत्पन्न हो सकते हैं। मुनिव्रत धारण करके, सकल सयम धारण करके इन स्थानोमे उत्पन्न होते है।

वैकुण्ठसे ऊपरके देवोंके स्थान—स्वर्गोसे ऊपर ९ पटलोमे कुछ विमान बने है। वहाँ नवग्रैवेयक है, उससे ऊपर एक पटलमे विमान है उसे अनुदिश कहते है। अनुदिशमे रहने वाले देव ग्रैवेयकसे भी उत्कृष्ट है, और उसके ऊपर एक पटल है जहाँ ५ विमान है, जिसके बीचमे सर्वार्थसिद्धि है और चारो ओर विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित नामके विमान है। उनमे रहने वाले देव अनुदिशवासियोसे भी उत्कृष्ट है। उसके ऊपर एक सिद्धशिला है और उसके ऊपर सिद्धोका निवास है। उन पुण्यस्थानोमे ये धर्मध्यानी पुरुष उत्पन्न होते है। यहाँ यदि थोडेसे प्राप्त वैभव भोगोका परित्याग कर दिया जाय तो चिरकाल तक ये सुख भोगें ऐसे स्थानो मे उत्पन्न होते है और कुछ वर्षोके पाये हुए समागममे यह जीव लम्पटी हो जाय तो उसकी उत्पत्ति दुर्गतियोमे होती है।

तत्रात्यन्तमहाप्रभावकलित लावण्यलीलान्वित,
स्त्रग्भूषाम्बरदिव्यलाञ्छनचित चंद्रावदात वपुः।
सप्राप्योन्नतवीर्यबोधसुमग कामज्वरार्त्तिच्युत,
सेवन्ते विगतातरायमतुल सौख्य चिर स्वर्गिरग ॥२१०७॥

कल्पवासी और कल्पातीत देवोकी अवस्था—जो देव धर्मध्यानके प्रभावसे स्वर्गमे उत्पन्न होते है, जो ग्रैवेयकसे नीचे और मध्यलोकसे ऊपर है वे भी वहा अत्यन्त प्रभाव सहित है, सुन्दरता और क्रीडावोसे युक्त है, ये स्वर्गोके रहने वाले देव देवागनाओ सहित होते है, ऊपरके देवोके इतने मद कषाय हैं कि उनके कामव्यथा नही जगती है। तब समझ लीजिए कि यह कामकी व्यथा होना पापका उदय है और उसके साधन जुटाना एक क्लेशकी चीज है। स्वर्गोसे ऊपरके देव जिनका प्रभाव, जिनका सुख, जिनकी वृत्ति, जिनको धर्मचर्चाका प्रोग्राम स्वर्गोसे भी उत्कृष्ट है, वहाँ पर कामकी व्यथा नहीं होती है, और वे वहाँ अकेले ही रहते है, उनके साथ देवागनायें नही होती है।

कामव्यथित मूर्खोका उदाहरण—दो मूर्ख जा रहे थे, उन्हे रास्तेमे मिली एक बुढिया। उन दोनो मूर्खोने किया राम राम, बुढियाने दिया आशीर्वाद। तो वे दोनो आगे चलकर इस बातपर झगडने लगे कि बुढियाने आशीर्वाद किसे दिया? एक कहे कि हमे दिया और दूसरा कहे कि हमे दिया। फिर उन दोनोने सलाह की कि चलो बुढियाके पास चलकर पूछे कि तुमने हम दोनोमे से किसे आशीर्वाद दिया? गये वे दोनो बुढियाके पास। पूछा कि तुमने किसे आशीर्वाद दिया? तो बुढिया कहती है कि तुम दोनोमे से जो अधिक मूर्ख होगा उसको हमने आशीर्वाद दिया। तो एक बोला—अच्छा बुढिया दादी तुम हमारी मूर्खताकी कहानी सुन लो। 'सुनावो।' मेरे दो स्त्री है, एक स्त्री तो थी अटारीपर और एक स्त्री थी नीचे। तो जब मैं अटारीसे उतरने लगा तो एक स्त्रीने ऊपरसे हाथ पकडकर ऊपरको खीचकर कहा—यहाँ

आवो, दूसरीने नीचे पैर पकडकर खीचकर कहा—यहाँ आओ सो उस रस्सा-कसीमे देखो हमारी टाग टूट गयी। तो हम कितना वेवकूफ है ? दूसरेने कहा—बुढिया दादी अब हमारी मूर्खता की कहानी सुनो। सुनावो। मेरे दो स्त्री है, एक वार रातमे मै लेटा था, मेरे दोनो हाथोपर दोनो स्त्री सिर रखकर लेटी थी, मेरे मस्तकके पास कुछ ऊपरमे एक दीपक रखा था। एक चूहा आया, दीपककी जलती हुई बाती खीचकर भागने लगा तो वह बाती मेरी आँखपर आ गिरी। अब मैने सोचा कि यदि किसी हाथसे बाती उठाता हू तो इन स्त्रियोको कष्ट होगा, सो बाती न उठानेसे देखो मेरी यह आँख फूट गई। तो मै कितना वेवकूफ हू ? तो अब बतावो बुढिया दादी तुमने किसे आशीर्वाद दिया ? तो बुढिया कहती है कि अच्छा—हमने तुम दोनोको ही आशीर्वाद दिया। सो सर्वत्र समझ लीजिये—ये कामव्यथाये तो पापके उदय हैं।

देवोके सुखका साधारण जनोपर आकर्षण—स्वर्गोमे भी जैसे-जैसे ऊँचे स्वर्गोके देव है वैसे ही वैसे उनमे विकार कम होता रहता है, लेकिन देवागनाये है सोलह स्वर्गोके देवोके। वे देव वहाँ माला, भूषण, वस्त्र दिव्य गध पुष्प आदिकसे युक्त अनेक स्थानोमे रहकर अपना चित्त प्रसन्न करते रहते है। वे शुक्लवर्णके शरीरको प्राप्त करते है। ज्ञानसे वे सुभग हैं, कामज्वरकी वेदनासे रहित है, अतरायरहित ऐसे सुखोको वे चिरकाल पर्यन्त भोगते है। देखो—देवोकी बात प्राय सबके चित्तमे है, और वे स्थूलविवेकी जब धर्म करते है, दान करते हैं, उपवास करते हैं, व्रत पालते है तो यह इच्छा रखते है कि मै देव बनू, पर देव हैं क्या ? ये ही ससारी प्राणी। देवोके चार गुणस्थान बताये गए हैं, इसके मायने यह है कि देव सयमासयमको धारण नही कर सकते। सयमकी बात तो दूर रहो, लेकिन इससे इतनी बात तो जानी गई कि सबके चित्तमे यह बात समायी हुई है कि देवोको सुख बहुत होता है। तभी तो देवजन्मकी वाञ्छा रखते है मनुष्य लोग, पर मोक्षमार्गकी दृष्टिसे जिसमे आत्माका विकास बने उस दृष्टिसे देवगतिसे भी उत्तम यह मनुष्यगति है।

मनुष्यभवका महत्त्व—यदि कोई धर्मके ढाचेमे ढालकर अपना आत्मदर्शन किया करे तो यह मनुष्यगति उस देवगतिसे भी उत्तम प्रतीत होगी है। जब तीर्थंकर भगवान विरक्त होते हैं तो तपकल्याणक मनानेके लिए देव आते है और वे दिव्य पालकी सजाते है। प्रभु पालकीमे बैठते है, और पालकी उठानेको जब देव इन्द्र हाथ लगाते है तो मनुष्य तत्काल रोक देते है, तुम लोग क्या करते हो ? इस पालकीमे तुम लोग हाथ न लगावो, इस पालकीको हम लोग उठायेंगे। तो देव बोले, अरे हमने गर्भकल्याणक मनाया, जन्मकल्याणक मनाया, अन्य भी कल्याणक मनाये, हमारा अधिकार है पालकी उठानेका। तो मनुष्य बोले—कुछ भी हो पर तुम लोग इस पालकीमे हाथ न लगाना। तो लडाई हो गई देवोकी और मनुष्योकी। दो चार बुजुर्ग निर्णायक चुन लिए। मनुष्य और देवोके बयान ले लिये गये। तब उन निर्णायकोने

से पूछा गया कि इन भगवानकी पालकी उठानेका अधिकारी मौन है ? तो उन्होने बयान किया कि भगवानकी तरहका जो सयम धारण कर सके, भगवानकी तरह बन सके वह भगवानकी पालकी उठानेका अधिकारी है। यह बात सुनकर देवता अपने हाथ पसारकर भीख माँगते हैं कि ऐ मनुष्यो ! यह स्वर्गकी सारी सम्पदा हमसे ले लो, पर अपना मनुष्यत्व हमे दे दो। अब सोचिये कि मनुष्यभव पानेका कितना बडा महत्त्व है ?

व्यर्थकी परेशानी—भैया ! सब व्यर्थ ही दु खी हो रहे कल्पनाये कर करके, जरा सोचो तो सही—इस भवसे मरण करके कहीके कही जाकर पैदा हो गए तो फिर क्या होगा ? न कुछसा यह थोडासा क्षेत्र जिसमे अपनी कीर्ति फैलानेकी चाह करते है यह इतनी बडी दुनिया के सामने कुछ गिनती भी रखता है क्या ? पर व्यर्थमे ममता करके कष्ट मान रहे है। अरे आज जो कुछ भी समागम प्राप्त है, जितना भी जिसे वैभव मिला है उतना अपनी जरूरतसे ज्यादा है ऐसा समझ लो। इसका प्रमाण यह है कि जिन लोगोके पास आपसे कई गुना धन कम है उनका भी गुजारा चल रहा है। व्यर्थकी कृपणता रखते, व्यर्थकी लिप्सायें रखते, व्यर्थ के विकल्प बनाते, व्यर्थकी तृष्णायें रखते, ये सब बातें किसलिए की जा रही है ? अरे मनुष्य भव पाकर तो क्या करना था और क्या करने लगे ? करना था धर्मसाधन और लग बैठे विषयसाधनमे। कोई लोग पहिले तो बहुत गरीब थे तब धर्मसाधनाका समय था, कुछ धर्म कर्म भी करते थे, पर जब कुछ धन अधिक हो गया तो अब धर्मसाधना करनेकी फुरसत ही नही मिलती। उनके पास न स्वाध्याय करनेका समय है, न सत समागम करनेका समय है। पर बहुतसे धर्मात्मा सेठ ऐसे हुए है जिनका दो चार घटेके अलावा शेष समय सत सेवावोंमे ही व्यतीत होता था, और आज भी कुछ ऐसे लोग मिल सकते है, बहुत पहिले जमानेके तो बहुतसे उदाहरण आपको मिलेंगे जिनमेसे बहुतोकी आप जानते भी होगे।

विशुद्ध भावसे धर्मपालनका अनुरोध—अरे धन कमाता कौन है यह वैभव ? क्या ये हाथ पैर कमाते है, क्या यह बुद्धि कमाती है ? अरे वह तो पुण्यके उदयसे प्राप्त होता है। वह पुण्य रस बढता है धर्मभावसे, निर्मलताके परिणामसे। तो प्रत्येक स्थितियोमे हमे धर्म-साधनाकी ओर दृष्टि रखना ही चाहिए। यदि दुःखदायी स्थिति है तो धर्मके प्रसादसे दु ख कटेगा और अगर सुखकारी स्थिति है तो धर्मके प्रसादसे सुख चिरस्थायी होगा। यह धर्म-ध्यानकी बात चल रही है। जो बडे विशुद्ध भावोसे धर्मध्यान करते है ऐसे पुरुष मरकर स्वर्गों मे और कल्पातीत देवोमे उत्पन्न होते है। ऐसी बात जानकर मनमे अपने लिए इस तरहकी लालसा नही बनानी चाहिए कि हम भी ऐसे स्वर्गोंमे उत्पन्न हो। ज्ञानी पुरुषोका ध्येय तो ससारसकटोसे छूटकर आत्मस्वभावमे रमनेका है। पर इस धर्ममार्गमे चलकर भी जो रागांश शेष है उसके कारण ऐसा पुण्यबध होता है कि ऐसे स्वर्गोंमे और ऊपरके देवोमे उनकी उत्पत्ति

होती है ।

ग्रैवेयकानुत्तरवासभाजा विचारहीन सुखमत्युदारम् ।
निरतर पुण्यपरम्पराभिर्विवर्द्धते वार्द्धिरिवेन्दुपादैः ।।२१०८।।

तत्त्वज्ञ धर्मध्यानीकी स्वरूपमग्नताकी आन्तरिक अभिलाषा—धर्मध्यानके फलमे ग्रैवेयक और अनुत्तरादि विमानोमे रहने वाले देवोमे जन्म होता है । यहाँ उन देवोका सुख बताया जा रहा है । धर्मध्यानके फलमे देवोंके सुख आते ही है, उत्तम देवोंमे जन्म होता है, लेकिन धर्मध्यानी पुरुषको यह वाञ्छा नही होती है कि मेरा इस प्रकारके सुखो वाली जगहमे जन्म हो । वह धर्मध्यानी पुरुष तो प्रभुकी भक्तिमे भी अपने स्वरूपमे समाना चाहता है । जिसने यथार्थ तत्त्वका निर्णय किया और जिसके ससार शरीर भोगोसे वैराग्य हुआ है वह यह चाहता है कि मैं सर्व विकल्पोसे दूर होऊँ, मै अपने आपमे ऐसा समा जाऊँ, मैं दुनियाके लिए कुछ न रहू । जब प्रभुके उस विशुद्ध ज्ञानानन्दके चमत्कारमे अपनी दृष्टि लगाता है, प्रभुके निकट पहुचता है तो वह और रोये तो कहाँ रोये, अपना दु ख बताये तो किसे बताये ? यहाँ जगतमें तो कोई सुनने वाला नही है । रोये तो उनके गुणस्मरणकी छायामे रहकर रोये । दिल लगाये तो कहाँ लगाये ? अपनी एक धुन एक तान कहाँ लगाये ? वह समझता है कि क्या है इस ससारमे ? केवल यही एक वीतराग प्रभुका गुणस्मरण ही शरण है । ये समस्त वैभव, ये सब पौद्गलिक ठाठ धूलके समान है । जो यह बात लिखी गई है कि कचन काँच बराबर हैं, यह बात केवल लिखी ही नही है । मोही पुरुष तो इसे यो ही लिखी गई है बात ऐसी समझते हैं, और इन्ही धर्मवाक्योको पढकर सुनकर जानकर विद्याबान बनकर भी यदि नही चेतता है तो न चेते, लेकिन जो लोग उसके जानकार है, जो लोग उसका महत्त्व समझते हैं वे तो ऐसे वाक्योको सुनकर ही कचन काचमे समानता निरखने लगते है, और एक शुद्ध स्वभावके स्मरणसे हो अपना हित समझते है । इसी प्रकार मोहीजनोंने तो नियम बना रखा है कि सब धर्म एक ही हैं, परन्तु मोहियोंके माननेका क्या उठता है ? शान्ति तो अनाद्यनन्त एक स्वरूप ज्ञायकस्वभाव अन्तस्तत्त्वकी उपासनासे प्राप्त हो सकती है । यही मात्र एक वह आत्मधर्म है जिसके प्रसादसे मुक्ति प्राप्त होती है ।

निकटभव्यो द्वारा परमब्रह्मत्वके आलम्बनके महत्त्वका अङ्कन—परमपावन चिदानद स्वरूपका ब्रह्मत्वका अनादर तिरस्कार करने वाले प्राय. लोकके सभी प्राणी है, फिर भी निकट भव्य तत्त्ववेदी पुरुष कारणपरमात्मतत्त्वकी उपासना करते हैं । राजा द्वारा आदर न पाने वाले एक कविने कहा—त्व चेन्नीचजनानुरोधनवशादस्मासु मदादर, का नो मानध्यानहानिरिपुता स्यात्कि त्वमेकः प्रभु । गुञ्जापुञ्जपरम्परापरिचयाद्भिल्लीजैनरुज्झित, मुक्तादामनिधाम धारयति किं कण्ठे कुरङ्गीदृशाम् ।। हे राजन् यदि तुमने नीच जनोंके अनुरोधसे हममे मद आदर कर

दिया तो इतनेसे मेरी क्या हानि हुई ? क्या तुम एक ही प्रभु हो ?

परमार्थधर्ममें ही धर्मरूपता—एक राजा राजसभामे बहुत दिनोसे साधारण कल्पित कवियोका आदर कर रहा था, किन्तु एक मुख्य विद्वान कविकी उपेक्षा कर रहा था। वहाँपर बहुतसे कवि लोग एकत्रित हुआ करते थे। तो इस तरहसे जब काफी दिन गुजर गए, तो एक दिन उनमेसे वह कवि एक श्लोकमे बोल उठा—रे रे रासभ भूरिवारवहनात् कुग्रासमश्नासि किं, राजाश्ववसंसि प्रयाहि चणकाभ्यूप सुख भक्षय। ये ये पुच्छभृतो हया इति वदन्त्यत्राधिकारे स्थिता, राजा तैरुपदिष्टमेव मनुते सत्य तटस्था परे ॥ हे गधे ! तू बहुत बोझा क्यो ढोता है, राजाकी अश्वशालामे पहुच जा और खूब दाना खा। लोगोने यह नियम बना लिया कि जिन जिनके पूछ लगी है वे सर्व घोडे है। राजा उनकी ही मानता, बाकी लोग तटस्थ है। यदि राजा घोडेमे और गधेमे अन्तर नही जानता, गधेकी पूछ निरखकर घोडेकी पूछके समान समझकर उस गधेको भी घोडा बता दे, घोडेका अनादर कर दे तो वह उसके मनकी बात है, पर उसके अनादर कर देनेसे कही वह गधा घोडा जैसा तो न बन जायगा। जैसे वनमे फिरने वाली भिल्लनी जिन्हे गुम्चियोका ही परिचय है वे यदि कही मुक्ता फल पा जाये और उसका प्रयोग पैरोमे पहिननेमे करें तो वह उनकी बात है, लेकिन वह मुक्ता फल क्या बड़े-बड़े चक्रवर्ती राजाकी महारानीके गलेमे शोभाको न प्राप्त होगा ? अरे वे भिल्लनिया यदि उस मुक्ता फलको गुम्ची समझकर अनादर करती है तो क्या उससे उसका अनादर हो जायगा ? अर्थात् न होगा। वह मुक्ताफल तो बडी-बडी पट्टरानियोके गलेमे शोभाको प्राप्त होगा। इस ही प्रकार से समझ लो—यदि इस परमात्मतत्त्वका, आत्माके सहजस्वरूपका, कारणसमयसारका कोई मोही पुरुप निरादर करते है, उसकी ओर दृष्टि नही करते, उसपर झुकते नही, उसको एकमात्र शरण नही मानते तो मत मानो, किन्तु जिनका ससार निकट है, जो ससारके सकटोसे निकट कालमे छूटने वाले है, क्या ऐसे पुरुपोके उपयोगमे वह कारणपरमात्मतत्त्व शोभाको न प्राप्त होगा ?

प्रभुस्वीकृत मार्गमें ज्ञानीकी चर्चा—हे प्रभो ! आपने क्या किया ? जो मार्ग अपनाया वही मेरा हित कर सकता है। यदि प्रभुकी भक्ति करके भी प्रभुकी महिमाको न जाना तो कहाँ भक्ति हुई ? यो तो किसी भी कुदेवके पास, किसी भी धनिकके पास, किसी भी नेता, राजाके पास जाकर भीख माँगने वाले लोग ससारमे बहुत पाये जाते है। प्रभुभक्तिका उपयोग तो उनके है जिन्होंने जिस रास्तेसे चलकर प्रभु बने उसी रास्तेमे अपना कदम रखा। जीवन तो उन्हीका धन्य है। ध्यानी पुरुष ग्रैवेयक, सर्वार्थसिद्धि आदिककी वाञ्छा नही करता, बल्कि यह भी कह दीजिए कि उसके चित्तमे यह भी धुनि नही रहती कि मैं सिद्ध बनू। तब क्या धुन रहती है ? मुझे बनना क्या है, यह भी धुन नही रहती। धुन भी क्या रहती है ? जो

बात यथार्थ दिख गई वह भूली नही जा सकती, सो सतत परमार्थ यथार्थ निजको निरखते हैं, बस यही धुन है । सर्व विकल्पोका निरोध होकर अपने आपके सहज ज्ञानज्योतिमे जो विश्राम बनाता है उस विश्रामके प्रसादसे जो अलौकिक आनद आता है वैसा आनन्द सारे देवेन्द्र, सारे चक्रवर्तियोका भी सुख सचित कर लो तब भी उतना आनद नही आता है । ऐसे अद्भुत आत्मीय स्वाधीन आनदका जिसे अनुभव हुआ है उसे यहांके सारे सासारिक सुख फीके लगते है । उसकी तो एक ऐसी धुन रहती है कि मेरे वर्तमान विशुद्ध परिणमनके प्रतापसे जो होता हो, हो, उसके विपरीत किसी असत्यमे जाय तो कहाँ जाय ? यह है ज्ञानीकी चर्या ।

प्रभुभक्तिके प्रसंगमे ज्ञानी भक्तके हर्ष व विषादका अलौकिक संगम—यह धर्मध्यानी पुरुष प्रभुकी भक्तिके समय अपने आपको कैसा भीतर ले जाता है कि जिसके गुणोका स्मरण करके, आँखोमे जो कुछ अश्रुवोकी धारा बह निकलती है तो वह आनन्द और विषादकी सयुक्त स्थिति बनती है । जैसे बिल्कुल विरुद्ध अलग-अलग दिशावोसे आई हुई नदियाँ किसी एक स्थलपर मिल जायें ऐसे विषाद और आनदका मिलन होता है । विषाद तो वहाँ अपनी वर्तमान स्थितिका है और आनंद प्रभुकी तरह अपने आपमे जो चमत्कार और वैभव सिद्ध हुआ है उसका है । तो आनद और विषाद ये दोनो स्थितियाँ एक साथ हो जाती है और वह भी अलौकिक आनद और अलौकिक विषाद जब इन दोनोका मिश्रण होता है तो कोई स्पष्ट बोल नही बोल सकता, बोलेगा तो अस्पष्ट । तोतलोंसे भी गजबका तोतला । और विषादमे जब अधिक होगा तो भी स्पष्ट वाणी नही निकलती । यही देख लो—कोई किसी बातपर बहुत अधिक हँस रहा हो अर्थात् खुश हो रहा हो और उस हँसती हुई हालतमे कोई बात बतावे तो कुछ समझमे आता है क्या ? और अत्यन्त विषादके समय भी जो बोल निकलता है वह भी अस्पष्ट रहता है । तो जहाँ प्रभुके गुणोका स्मरण करके अलौकिक आनद होता है और साथ ही अपनी वर्तमान इस परिस्थितिको निरखकर अलौकिक विषाद होता है जहाँ दोनो एक साथ रहते हैं ऐसा भक्त भगवानके प्रति उमग करके कुछ बोल भी रहा है तो वह किसकी समझमे आये ? साथ ही उस बोलपर वह हैरान भी है क्योकि जिसको कह रहे वह सुनता नही, अन्यको सुनाना नही । फिर भी उससे उससे उस खुशीमे शब्द बोले ही नही जा रहे, ऐसी गद्गद् वाणीके साथ वह भक्त प्रभुकी स्तुति करता है । हे प्रभो ! मुझे आपसे कुछ चाहिए नही ।

अहमिन्द्रके सुखोकी विचारातीतता—भैया ! जो निमित्तनैमित्तिक भावकी बात है वह होती ही है । धर्मध्यानके फलमे परमवीतरागताके अभावमे ग्रैवेयक और अनुत्तरादि विमान के देवोमे उत्पत्ति होती है । उनका सुख विचारातीत है । क्या करें विचार ? एक बार जगल के भील लोग लकडियोका बोझ लादे चले जा रहे थे गावोमे बेचनेके लिए । वे आपसमे आपे

मार रहे थे और राजाकी चर्चा कर रहे थे। एक भील बोला कि राजाको तो बडा ही सुख है। एकने पूछा कैसे ? तो वह बोला—अरे कैसे क्या बतायें, उसको तो बहुत आराम है, वह तो रोज-रोज गुड ही गुड खाता होगा। तो भीलोका विचार कहा तक बढे ? विचारहीन सुख है भीलोके। तो उन अहमिन्द्र देवोकी कषाय अत्यन्त मद है कि जिनकी उपमा यहाँ किसीसे नही दी जा सकती। उन देवोके यहाँ तत्त्वचर्चाका समागम निरन्तर रहता है। वे अपना स्थान छोडकर कही भ्रमण नही करते। उन देवोके शरीर बहुत छोटे है—किसीका १ हाथका शरीर तो किसीका १॥ हाथका शरीर, ऐसे अल्पकाय वाले, दिव्य काय वाले देव जिनको २३से ३१, ३२ अथवा ३३ हजार वर्षमे थोडी भूख लगती है और समय आनेपर कठसे अमृत झरता है उससे तृप्ति हो जाती है। उन दिव्य देहाधिष्ठित देवोका सुख हम आप क्या विचारमे लाये ? इतने अनुत्तर सुख वाले जन्मको पाते है ये धर्मध्यानी जीव।

अहमिन्द्र देवोंके विचारातीत सुखका अनुभवन व पुण्यरसका वर्द्धन—ये अहमिन्द्र देव विचारातीत सुख भी भोग रहे है और साथ ही पुण्यरस भी बढा रहे है। कुछ तो देव ऐसे होते हैं जो पाये हुए सुखोको भोगते रहते है और पापबध करते रहते है जिससे वे दुर्गतिके पात्र होते हैं, लेकिन अहमिन्द्र देव जिनकी एक दूसरेसे रचमात्र भी आधीनता नही, जिनका वैभव एक समान है इस कारण दूसरेके वैभवको देख करके उनमे ईर्ष्या द्वेषकी बाते भी नही होती है, जिनका धर्मचर्चामे समय गुजरता है वे निरन्तर पुण्यरसको बढाते रहते है। जो नवीन-नवीन तत्त्वचर्चायें करके अथवा जो चर्चायें आत्मीय अलौकिक आनन्दको प्रदान करने वाली है, उनको करके ३३ सागरका इतना लम्बा समय व्यतीत कर देते है। उनके पुण्यरस बढता है, वे एक दो मनुष्यभव पाकर ही मुक्त हो जाते है। धर्मध्यानका इतना बडा प्रसाद है। अब क्या करना चाहिए इसपर विचार कीजिये। जो बात यहाँ मनुष्यके वशकी नही है उसकी कल्पनामे अपना समय गुजारना है अथवा जो अपनी बात है, जिसमे अपना उत्थान है, जिसमे अपना उद्धार है उसका स्मरण करना चाहिए। खूब विचार कर लो। यह केवल सुनने मात्रकी बात नही है या केवल कहने मात्रकी यह बात नही है, जो इस बातको अपनेमे उतारेगा वही उसका आनद पायगा।

देवराज्य समासाद्य यत्सुख कल्पवासिनाम्।
निर्विशन्तितोऽनत सौख्य कल्पातिवर्त्तिन ॥२१०९॥

कल्पवासी देवों, इन्द्रोके सुखसे अनन्त गुणा कल्पातीत देवोंका सुख—सोलह स्वर्गोके इन्द्रो देवोको भी बहुत सुख है, स्वाभाविक विक्रियाऋद्धि है, जहाँ चाहे वे क्षणभरमे ही पहुच जायें। कितने ही द्वीप समुद्रोको पार करके पहुच जाये, किसी भी वनमे क्रीडा करे, जिनके शरीरमे पसीना नही, जिनके शरीरमे मल रुधिर आदिक रोग नही, जिनको आजीविकाकी

कोई चिन्ता नही, तो समझ लीजिए कि उनको भी कितना सुख है, लेकिन सभी सोलह स्वर्गों के समस्त देवोका जो भी सुख है वह भी मिला दिया जाय तो भी कल्पातीत देवोंके सुखकी तुलना नही हो सकती। कल्पातीत देवोका सुख तो कल्पनामे भी नही आ सकता। धर्मध्यान ज्ञानचर्चाके अनुरागसे ऐसे कल्पातीत देवोमे धर्मध्यानी पुरुषका जन्म होता है।

सभवन्त्यथ कल्पेषु तेष्वचिन्त्यविभूतिदम्।
प्राप्नुवन्ति पर सौख्य सुराः स्त्रीभोगलाञ्छितम् ॥२११०॥

धर्मध्यानके फलमे कल्पवासियोमे जन्म—धर्मध्यानसे मनुष्य अपनी पर्यायको छोडकर सोलह स्वर्गोंमे भी उत्पन्न होते है, तो वे देव भी अचिन्त्य विभूतिके देने वाले और स्त्रीभोग सहित उत्कृष्ट सुखोको प्राप्त होते हैं। जो यहाँके समागमोमे कल्पित सुख माना जा रहा है उन सुखोकी यदि उपेक्षा कर दी जाय, उनमे लालसा न रखी जाय तो इस प्रकारके पुण्यका बध होता है कि ऐसे दिव्य सुख स्वत ही प्राप्त होते हैं। यहाँके भी सुख चाहना है तो इसके लिए आवश्यक है कि विषयोकी प्रीति छोड दी जाय। देखो जब विषयोंसे प्राप्त होने वाला आनद भी विषयोका त्याग किए बिना नही मिलता तो ससार सकटोंसे सदाके लिए छुटकारा पाकर जो उत्तम आनद प्राप्त होनेको होता है वह कैसे प्राप्त हो सकता है?

विषयपरित्याग किए बिना विषयसेवनकी आसक्ति—यहाँ सुख हैं ६ प्रकारके। स्पर्शनइन्द्रियका सुख—विषयभोग, रसनाइन्द्रियका सुख--रसीले पदार्थोका स्वाद, घ्राण इन्द्रियका सुख—सुगधित पदार्थोका सेवन, चक्षुरिन्द्रियका सुख—सुन्दर रूपोका अवलोकन, और कर्णइन्द्रियका सुख—सुन्दर रागरागनीके शब्द सुनना, और मन इन्द्रियका सुख—कोई विशिष्ट ख्यातिकी बात चाहना आदिक है। स्पर्शनइन्द्रियजन्य सुख वही पुरुष भोगने लायक रहता है जो स्पर्शनइन्द्रियके सुखका त्याग करता है। जो बहुत अधिक स्पर्शनइन्द्रियजन्य सुखोमे रत होता है, विषयसेवन करता है, ब्रह्मचर्यका घात करता है वह स्पर्शनइन्द्रियजन्य सुखोको भली भाति भोग नही सकता। इसी प्रकार रसनाइन्द्रियजन्य सुखमे भी यही बात है। खानेका आनद तब आता है जब पहिले कई घटेसे खाना छोड दिया गया हो। खूब पेट भरा हो फिर भी खाते रहे तो उस खानेमे खानेका वह सुख नही मिलता। बहुतसे लोग तो इसी बातपर हैरान हो जाते है कि पत्तलमे तो बहुतसी मिठाइयाँ परोस दी गई है, पूडी साग भी परोस दिया है अब इनमेसे पहिले क्या खायें कुछ लोग तो ऐसा सोच लेते होंगे कि लावो पहिले पूडी साग खा लें, बादमे मौजसे इन पेडा बर्फियोका स्वाद लेते रहेगे, और कुछ लोग यह सोच लेते होंगे कि लावो पहिले पेडा बर्फी आदि मिठाइयोपर हाथ मारें, पीछे पूडी साग खा लेंगे। देखो भोगके समय भी कितना क्षोभ रहता है? रसनाइन्द्रियजन्य सुख भी तब मिलता है जब पहिले से कई घटोंसे त्याग किया हो। एक निश्चित निर्णय यह है कि भोजनका परित्याग किए बिना

भोजनका आनद नही मिल सकता। खूब खाओ, भली प्रकार खाते रहो तो एकदम १०-२० दिनको यह सारा खाना छूट जायगा, केवल मूँगकी दालपर ही वैद्य निर्भर करा देगा। तो रसनाइन्द्रियजन्य सुख भी रसनाइन्द्रियके विषयोका त्याग किए बिना नही लूटा जा सकता।

गन्धरूप शब्द विषयके भी परित्याग बिना उनके सेवनकी अक्षमता––घ्राणइन्द्रियजन्य सुख भी बिना उसका कुछ त्याग किए लूटा नही जा सकता। कोई बहुत-बहुत गधका उपयोग करता रहे, इत्र फुलेल आदिकी बहुत-बहुत गंध कोई लेता रहे तो उसे उसका सुख नही मिल पाता है, उसकी गधसे थोडी ही देरमे जी घबडा जायगा। तो घ्राणइन्द्रियजन्य सुख भी बिना कुछ उसका त्याग किए नही लूटा जा सकता है। इसी तरह चक्षुरिन्द्रियकी बात है। जो रूप बहुत सुहावना लग रहा है, उसी चामको कोई बहुत-बहुत देखता रहे तो देखते-देखते मन थक जायगा, आँखें थक जायगी, और देखते रहनेमे वह सुख न मिल पायगा। उसका कुछ त्याग करे तो उस चक्षुरिन्द्रियजन्य सुखको लूटा जा सकता है। इसी प्रकारकी बात कर्णेन्द्रिय सुखकी है। कोई बहुत बढिया रागरागनीके गाने हो रहे हो, रातभर होते रहे तो लोग कह भी बैठते है कि अब बन्द करो। अरे जब बडी सुख वाली वह चीज है तो बन्द क्यो करवाते हो? तो त्यागपूर्वक ये इन्द्रियके सुख भोगे जा सकते है। यही मनकी परिस्थिति है। जो उस ही ध्यानमे लगा रहता है फिर उसकी मौज नही रहती। तो जब ससारके सुख भी विषयो का कुछ परित्याग किए बिना प्राप्त नही हो सकते, भोगे नही जा सकते तो समझ लीजिए कि त्यागकी कितनी महत्ता है?

निष्कलङ्क अन्तस्तत्त्वके अवधारणका अनुरोध––भैया! एक ही तानमे अपने आपको अपनेमे समा दे, ऐसा भाव व ऐसा ही यत्न करें। यहाँका समागम प्रकट भिन्न व असार है। आज यदि हम मनुष्य न होते, कही कीडे मकोडे होते, तो मेरे लिए यह दुनिया क्या थी, जिनकी शकलको निरखकर ये इद्रिय और मनके व्यवहार हो रहे है। अगर गर्भमे ही मर गया होता, या जन्मते ही मर गया होता या बचपनमे ही मर गया होता तो मेरे लिए यह घर, ये दुनियाके लोग क्या थे, जिनको निरखकर ये इन्द्रिय और मन बेकाबू हो रहे है। हे आत्मन्! किसी भी समय जिस ढगसे भी बने—सोच लो, बाह्यसे विरक्त और स्वरूपमे अनुरक्त होना योग्य है। सीधा ढंग तो एक ही है अपने आपके शुद्ध कार्य परमात्मस्वरूपकी दृष्टि रखना, इस व्यवसायसे सहज तत्त्वरमण बनता जाता है। चीज एक ही है उपादेय। एक रगरेज था, उसके पास बहुतसे लोग भिन्न-भिन्न प्रकारके रगोमे पगडी रगानेके लिए आया करते थे। सो वह रखा तो लेता था सभी पगडियाँ और कह भी देता था कि हाँ रग देंगे, पर उस रगरेजको केवल एक ही रंग प्यारा था—आसमानी। कलाकार लोग तो अपने घरके राजा हुआ करते है, जो उन्हे पसंद होता है वह करते है। तो सारी पगडियाँ रखा लेनेके बाद वह रगरेज वह देता

था कि देखो—पगडी चाहे किसी रगमे रगावो, पर खिलेगा केवल आसमानी रग। दूसरा कोई भी रग न खिलेगा। तो यो ही सुखके उपायोमे, धर्मके प्रसगमे कुछ भी तत्त्व बना लें, पर शुद्ध विकासकी परमशातिकी सुगम, कुञ्जी तो केवल एक ही है जिसके किए बिना किसी ने निर्वाण नही प्राप्त किया, और वह है बिना सम्पर्कके, बिना उपाधिके, बिना रागद्वेषके स्वय अपने आपमे बसा हुआ अपने ही स्वरूपके कारण जो परमपारिणामिक भाव शुद्ध स्वभाव ज्ञान ज्योति है, उस सहज भावका शरण लें, उसकी दृष्टिमे चलें, उसको ही अपना सर्वस्व समर्पित करना यह ही मात्र एक सुगम उपाय है। धर्मध्यानी पुरुष इस ही पर तो रहता है, उसे किसी भी चीजकी वाञ्छा नही है।

दशाङ्गभोगसम्भूत महाष्टगुणवर्द्धितम् ।
यत्कल्पवासिना सौख्य तद्वक्तु केन पार्यते ॥२१११॥

कल्पवासियोके सुखकी भी विशेषता—धर्मध्यानके फलमे कल्पवासी देवोमें जन्म होता है। वहाँ १० प्रकारके अग भोगोसे उत्पन्न हुआ सुख और अणिमा आदिक ८ गुणोसे बढा हुआ सुख जो कल्पवासियोको होता है वह यहाँ कहा जानेमे नही आ सकता। एक सासारिक सुखकी बात कही जा रही है। जो सुख वहा स्वर्गोमे है कि कल्पवृक्षसे जो चाहो सो मिले। अणिमा महिमा आदिक अनेक प्रकारकी वहाँ प्राकृतिक कलायें है। अपने शरीरको कहो इतना छोटा बना लें कि एक दो अगुलका ही हो, और कहो इतना बडा बना लें कि जितना बडा कोई जानवर भी न हो सके। अपने डीलडौलको कहो इतना वजनदार बना लें कि देखनेमे तो अत्यन्त छोटा हो और उसका वजन बहुत अधिक हो। और कहो डीलडौल तो बहुत ही विस्तृत और वजन उसका बिल्कुल थोडा हो, अपने रूपको जितना सुन्दर चाहें वे बना सकते है। कहो ऐसा सुन्दर रूप बना लें कि जिसकी यहाँ कुछ उपमा ही न दी जा सके। इस प्रकार की कलावोंसे उत्पन्न हुआ सुख कल्पवासी देवोको जो है उसकी यहाँ मनुष्यलोकके किसी भी सुखसे उपमा नही दी जा सकती। यह सासारिक सुखकी बात चल रही है। सुख सुन करके कुछ चित्तमे मलिन भाव लानेका अवकाश भी हो सकता है। ऐसे सुखकी चाह करने लगे कोई इसके लिए यहाँ नही कहा जा रहा है किन्तु धर्मध्यानमे ऐसा फल मिलता ही है जब तक ससार है, और फिर कोई साधारण जन ऐसा भी सोच सकते है कि मनुष्यलोकमे इन अशुचि असार सुखोंसे दिल हटा ले तो एक सागरो पर्यन्तका ऐसा सुख मिल सकता है।

सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्त सर्वाभ्युदयभूषितम् ।
नित्योत्सवयुत दिव्य दिवि सौख्य दिवौकसाम् ॥२११२॥

स्वर्गोमें नित्योत्सवकी विशेषता—स्वर्गोमे देवोका सुख सर्व प्रकारके द्वन्द्वोसे रहित है। कोई वहाँ छोटा नही, वहाँ अस्थिरता नही है, एकसी व्यवस्था है। इन्द्र है, उसकी

आज्ञा चलती है, वहाँ ऐसे देवोका जन्म होता है और उस ढगमे रहते है, उनके कोई अस्थिरता नही है, न वहाँ कोई झगडा झासाकी बात है। सब देव सुखी है। और वहाँ पर समस्त अभ्युदय है, नित्य उत्सव वहाँ होते रहते है। आज किसी देवका जन्म हुआ उसका ही उत्सव चल रहा है, किसी दिन किसी बडे देवका जन्म हुआ, इन्द्रका जन्म हुआ, बडा समारोह मनाया जा रहा है। वहाँ किसीके कोई बाल बच्चा नही पैदा होता। जैसे यहाँ मनुष्योमें कोई बच्चा पैदा होता है और उसका उत्सव मनाया जाता है जो कि एक मलिन भावो सहित उत्सव है, लेकिन यहाँ विशिष्ट पुण्यवान जीव आया है, कोई मुनि था, कोई श्रावक था, बडा धर्मपालन किया, उसके फलमे यह जन्म हो रहा है, तो उसका उत्सव मनाने के लिए देव आते है। एक साधुता जानकर, सजातीयता जानकर बिना मोहभावके शुभभावो से उत्सव समारोह मनाया करते है और साथ ही यह भी सोच सकते कि जो देव जन्म ले रहा है उसके पुण्यकी ऐसी प्रेरणा है कि देव आकर उसका उत्सव मनाते है। स्वर्गोमें देव उत्सव किस विधिसे मनाते है, किस विधिसे उसका प्रयत्न रखते हैं, यह भी एक अलौकिक पद्धति हैं। देव जब जन्म लेता है तो अन्तर्मुहूर्तमे ही वह बडा पुष्ट और युवावस्था सम्पन्न होता है, और जन्म लेकर जब देखता है सोचता है—अरे मैं यहाँ कहाँ आ गया, ये कौन लोग खडे है, बडे असमजससे, कैसा ये लोग टकटकी लगाये हमे देख रहे है, यह सब क्या है, इस प्रकार जब वह देव कुछ अचम्भा करता है तो पासमे खडे हुए देव कहते है—महाराज ! आप बडे पुण्यके कारण यहाँ पधारे है, आपका जन्म हुआ है, यह स्वर्ग है, ये देवता लोग खडे है। ये सब आपका आदर करनेके लिए इकट्ठा है और थोडी ही देरमें अवधिज्ञानसे वह सब कुछ जान भी जाता है। ऐसा वहाका सद्व्यवहार है।

प्रतिसमयमुदीर्णं स्वर्गसाम्राज्यरूढ,
सकलविषयबीज स्वान्तदत्ताभिनन्दम्।
ललितयुवतिलीलालिङ्गनादिप्रसूत,
सुखमतुलमुदार स्वर्गिणो निर्विशन्ति ॥२११३॥

स्वर्गवासी देवोका विविध सुखमे समययापन—स्वर्गके देव प्रत्येक समयमे उदय आये हुए विच्छेद रहित स्वर्गके साम्राज्यसे प्रसिद्ध उदार सुखका अनुभव करते है। ऐसा सुख भोगते हैं जो अन्त करणको आनद देने वाला है, जहाँ सुन्दर देवागनाएँ है उनकी लीलावोसे, उनके रागअलापोसे जो सुख उत्पन्न होता है वह सासारिक सुखकी दृष्टिसे अद्भुत सुख है। ऐसे सुखो मे ये देव सागरो पर्यन्तका समय बिता देते है, पर कुछ उन्हे पत नही पडता कि इतना समय कैसे व्यतीत हो गया-?

सर्वाभिमतभावोत्थं निर्विघ्न स्व·सुखामृतम् ।
सेव्यमाना न बुद्धयन्ते गत जन्म दिवौकस ॥२११४॥

स्वर्गसुखमे सारा समय गुजर जानेका अबोधन—ये स्वर्गवासी देव अपने समस्त मनोवाञ्छित पदार्थोंसे उत्पन्न बाधारहित ऐसे अद्भुत सुखामृतका सेवन करते हुए व्यतीत हुए समयको नही जानते । सुखके दिन जल्दी व्यतीत हो जाते हैं, उसका कारण यह है कि सुखोमे इतनी अधिक आसक्ति हो जाती है कि वह समय जाना नही जाता । कही ऐसा नही है कि सुखके दिन छोटे होते हो और दुःखके दिन बडे । दु खके दिन तो काटे नही कटते है, दु ख तो किसीको भी इष्ट नही । इसीसे दु.खका समय अधिक लम्बा मालूम पडता है । तो सागरो पर्यन्तकी आयु है स्वर्गोमे । २२ सागरकी आयु सोलहवे स्वर्गमे देवोकी बतायी है । १ सागर कितना बडा होता है ? कल्पना करो कि दो हजार कोशका लम्बा, चौडा, गहरा कोई गड्ढा है और उसमे बालोके छोटे-छोटे टुकडे, जिनका दूसरा हिस्सा न हो सके, सो भी बहुत कोमल पतले बालोके टुकडे ठसाठस भर दिये जायें, उसपर सैंकडो हाथी फेर दिये जाये, फिर प्रत्येक १०० वर्षमे एक बालका टुकडा निकाला जाय तो सारे बाल-खड निकालनेमे कितने वर्ष लगेंगे ? जितने वर्ष लगे उतनेका नाम है व्यवहारपल्य और उससे अनगिनते गुणे वर्षोका नाम है उद्धारपल्य और उससे अनगिनते गुणे वर्षोका नाम है अद्धापल्य । एक करोड अद्धापल्य मे १ करोड अद्धापल्यका गुणा करें, उसका नाम है एक कोडाकोडी अद्धापल्य । ऐसे १० कोडा कोडी अद्धापल्यका १ सागर होता है, ऐसे-ऐसे २२ सागरकी भी उम्र सुख भोगते-भोगतेमे गुजर जाती है, पता नही पडता । जब मरणका समय आता है तो सोच होता है कि अब तो मेरा मरनेका वक्त आ गया है ।

सांसारिक सुखमग्नतासे महती विपन्नता—भैया ! सुखमे मग्न होना भी बहुत बडी विपदा है । मोही जन तो इन सुखोमे आसक्त हो जाते है, ज्ञान और वैराग्यका बल लगानेका वे प्रयत्न नही करते । ये इष्ट समागम मिले है तो सोचना चाहिए कि ये कभी बिछुडेंगे । यदि यह विचार आ गया तो इष्ट समागममे आसक्ति नही होती । और फिर इष्ट समागम क्या है ? कोई क्या कर देगा अपनेमे ? कैसा ही प्रिय हो, कैसा ही मित्र हो, कैसा ही आज्ञाकारी हो, कर क्या देगा ? वह अपनेमे अपना ही परिणाम करेगा । दूसरा अपनेमे अपनी ही कषाय शात करेगा । प्रभुका ध्यान करके प्रभुसे यही मागे कि हे नाथ ! यह सासारिक सुखमे मग्न होनेकी विडम्बना विपदा मेरे पर न आये, मैं उस सुखमे ही सुखी हू, मैं उस दु खमे ही आनद मानूगा जिस दु खमे रहकर हे प्रभो ! तेरी याद तो आती रहे । अपने आपके उस परमात्मस्वरूपकी सुध तो आती रहे तो दुःख भी मुझे मजूर है ।

कष्टसहिष्णुताका गुण—ये सासारिक सुख कर्मोके आधीन हैं, उदय ठीक है तो सुख

मिलेंगे, जिन सुखोका अन्त होता है, जिन सुखोके बीचसे अनेक दुःख भरे पडे हुए है, जो सुख पापके बीज है ऐसे सुखोका राग न हो। भैया! विनती करे प्रभुसे और अपने चित्तमे ऐसी सहनशीलता उत्पन्न करें कि जो कोई दुःखकी स्थिति आये तो उन सब दुःखोको सहन करनेमे समर्थ हो, जो दुःख ऐसे है कि मेरे शरीरपर कोई प्रयोग न कर सके, बाहर बाहरकी ही बातें है, उन दुःखोको सहन करनेमे कौनसी कठिनाई है ? धन कम हो गया, कोई रूठ गया, किसी इष्टका समागम नही हो सक रहा, किसी इष्टका वियोग हो गया तो ये तो बाहर ही बाहरकी होने वाली बातें है। शरीरपर मार तो नही पड रही। ऐसे दुःखोको सहन करनेमें कौनसी कठिनाई आ रही है ? अगर कुगति आ गयी तो उसका फल कौन भोगेगा ? खुदको ही तो भोगना पडेगा। सो ऐसे सुखोके दिन स्वर्गवासियोके ऐसे व्यतीत हो जाते कि वे जाने नही जाते।

(धर्म्यध्यानफलवर्णन प्रकरण ४१)

तस्माच्च्युत्वा त्रिदिवपटलाद्दिव्यभोगावसाने,
कुर्वन्त्यस्या भुवि नरनुते पुण्यवशेऽवतारम्।
तत्रैश्वर्यं परमवपुष प्राप्य देवोपनीतै—
र्भोगैर्नित्योत्सवपरिणतैर्लाल्यमाना वसन्ति ॥२११५॥

धर्मध्यानका अन्तिम परिणाम—आचार्यदेव अब स्वर्ग सुखकी विडम्बनाओसे उस जीव को निकाल रहे हैं। स्वर्गके देव दिव्य भोगोको भोगकर स्वर्गपटलसे च्युत होते है और इस भूमण्डलमे अवतरित होते है और ऐसे पुण्य वशमे जन्म लेते हैं जहाँ लोग नमस्कार करते है। देखिये—थोडासा फर्क है पहिलेके कथनसे, जो स्वर्गोके सुखोमे आसक्त रहते है ऐसे देवोको यह मौका नही रहता, जो स्वर्गोमे रहकर भी, उन सुखोके बीच रहकर भी उनसे उदास रहते है, ऐसे देवोको यह मौका मिलता है। उनका उस आयुके पूर्ण करनेके बाद पवित्र वशमे, उच्च घरानेमे जन्म होता है जहाँ लोग नमस्कार करते है। तत्त्वज्ञानका प्रभाव है यह। जैसे ये नारकी जीव यदि कोई सम्यग्दृष्टि है तो वह नरकके दुःखोको भोगकर भी अन्तरङ्गमे अनाकुल रहता है, क्योकि यथार्थ ज्ञानका प्रकाश हुआ है, वहाँ ऐसे ही जो तत्त्वज्ञानी देव है उन्हे अनेक प्रकारके समागम मिले हो तिसपर भी उन सुखोसे वे उदासीन रहते है। वे करें क्या, धर्मध्यानके फलमे देवगतिमे जन्म लिया, वही धर्मध्यानका सस्कार वहाँ भी है।

देवगतिमे धर्मसंस्कार—यहाँ इस कालमे जो अनेक ऋषिराज हुए है—कुन्दकुन्द स्वामी, अमृतचन्द्राचार्य, समन्तभद्राचार्य, अकलक देव, विद्यानद स्वामी आदि, कल्पना तो ऐसी आती है कि वे ऐसे विशुद्ध भाव वाले थे कि इस कालमे मोक्ष तो उनका नही हो सका, पर गये है वे स्वर्गोमे, तो ये ऋषि सत वीतराग भावमें रहते होंगे। उनपर क्या गुजर रही होगी

कि अनेक देवागनायें उनके पास आकर नृत्य कर रही होगी, उनके मनको लुभा रही होगी, और कभी वे ऋषिराज हाथकी ताली भी बजा देते होंगे, सिर भी हिलाते होंगे, उनके रागरग में सहयोग भी देते होगे, कल्पना तो आती है कि ऐसा हो भी सकता है लेकिन जो तत्त्वज्ञान तपश्चरण उन ऋषिसतोने यहाँ किया था उसका सरकार वहाँ होगा। वहाँके उन सभी प्रसगो में वे उदास चित्त रहते होगे और तत्त्वकी भावना भाते रहते होंगे। तीर्थकरोंके कल्याणकोमें, अनेक धर्म समारोहोमें जिनका गमनागमन रहता है, दिलचस्पी रहती है ऐसी आयुको पार करके इस भूमण्डलमें जन्म लेते है और ऐसे पुण्यवशमें जन्म लेते हैं कि जहाँसे फिर वे धर्म-ध्यान कर विशिष्ट सयम धारण कर निर्वाण भी प्राप्त कर लेते है। ऐसे वे देव यहाँ परम ऐश्वर्यको पाते हैं, उत्कृष्ट शरीर प्राप्त करते है और उनके भी जीवनमे नित्य उत्सव रहा करता है। महापुरुषोंके प्राय नित्य उत्सव समारोह होते रहते है, वे देव अनेक भोगोमें अपना निवास करते थे। अब देवगतिसे आकर होते है मनुष्य, पर वहाँ भी अनेक पुण्यवत पुरुषोको वे देव अपने यहाँसे भोग सामग्री लाते है, वस्त्र लाते है और दिव्यभोजन भी लाते है।

प्रभुभक्तिमें भक्तकी आन्तरिक चाह—यहा तीर्थंकर देवके प्रति चिन्तन कीजिये कि नाथ! जब आप स्वर्गसे भी यहाँ न आये थे तो यहाँकी नगरी उससे ६ माह पहिलेसे ही स्वर्ग-मयी बन गई थी, आये न देवलोकसे थे आप यहाँपर, फिर भी वह नगर स्वर्गसम्पदाका घर बना दिया था। तब हे नाथ! जब भक्तिभावसे आपको हृदयमे विराजमान कर रहा हू, और तिसपर भी मैं आपसे कोई चीज नही मागता हू। ईमानदारीकी बात तो यह थी कि आप नगरमे न आ पाये थे और ६ माह पहिलेसे ही सम्पदाका घर बन गया था। अब यहाँ आप विराजे हो तो अब तो न जानें यहाँपर मेरे हृदय आसनपर क्या न बन जाना चाहिए, लेकिन वह भी मैं कुछ नही मानता हू। केवल इतना ही चाहता हू, आपका सुख न चाहिए। मैं यह चाहता हू कि इतना तो हो जाय कि मेरा जो वैभव है, मेरी जो निजकी निधि है वह तो मुझे मिल जाय। जानूं प्रभो तुम्हे प्रभु व दया जब मेरा जगजाल मिट जाय। तो प्रभुभक्ति करके धर्मध्यानी पुरुष अन्य कुछ नही चाहता। केवल यह भावना रहती है कि मेरा जन्म मरणका सकट दूर हो।

सांसारिक क्लेश व उससे मुक्तिका उपाय—ससारमे कौनसा पदार्थ ऐसा है जो चाहने योग्य हो? किन्तु जब महापापका उदय आया तब इस जीवकी बुद्धि किसी दूसरेके प्रति प्रेम और स्नेहभावमे लग गयी। वहाँ समझिये कि यह मोह भी एक दुख देने वाली वस्तु है। दुःख देने वाला अन्य कोई पदार्थ नही है, केवल एक मोह ही है। मोहको निद्रा बताया है। निद्रामे जैसे पुरुष अचेत हो जाता है ऐसे ही मोहमे यह अचेत हो जाता है। उस मोहका दुख कौन मिटाये, किसी दूसरेमे सामर्थ्य नही। खुद ही जग जाय, मोहको दूर करे तो सुखी हो

सकता है अन्यथा उसके सुखी होनेका औषधि दुनियामे कही नही है। एक सेठको अपने महलमे नीद आ गई और स्वप्न आ गया कि मुझे बडी गर्मी लग रही है, मुझे आज गगा नदी मे नावसे सैर करने चलना चाहिए। स्त्री बोली कि हमे भी गर्मी लग रही है, हमे भी ले चलो, पुत्र, पुत्री व पहरेदार सभी कहने लगे कि हमें भी तो गर्मी लग रही है, हम भी सैर करने चलेंगे। सो घरमे ताला लगाकर सभी लोग सैर करने चले गए। नावमे बैठकर मजधारमे पहुचे। यह स्वप्नकी बात बताई जा रही है। एक भवर ऐसी आयी कि नाव डगमगाने लगी। सेठ दु खी होने लगा। ओह! सब मरे। यह धन भी गया। मल्लाहसे कहता है—बचावो, बचावो हम तुम्हे ५००) रु० देंगे। अरे कहाँ बच सकते हो ? अरे ५०००) रु० देंगे बचावो।·· अरे जब हम ही न रहेगे तो ये रुपये कौन लेगा ? हमे छुट्टी दो, नाव अब नही बचेगी, हम तो अपने भुजबलसे तैरकर निकल जायेंगे। अब उस सेठके दु खका क्या ठिकाना ? देखा पडा तो है वह महलमे और कितना दु.खी हो रहा है ? अब उसके दुःख दूर होनेका क्या इलाज है सो तो बतावो ? क्या पासमे खेलने वाले उसके बच्चे, अथवा पासमे ही बैठे हुए मित्रजन अथवा अन्य परिजन लोग उसके उस दु.खको मेट सकेंगे क्या ? अरे उसके दुःखको मेटनेमे कोई समर्थ नही है। हाँ, वह स्वय जग जाय, उसकी निद्रा भग हो जाय तो उसका सारा दु ख मिट सकता है। वह सेठ जग गया और देखा कि अरे यहाँ तो कुछ भी दु ख नही है। हम तो अपने महलमे पडे है, वह दु ख तो सब एक स्वप्नका था, लो वह सुखी हो गया, तो ऐसे ही मोहकी नीद्रमे अचेत पुरुषोको स्वप्न आ रहा है, मेरी स्त्री, मेरा पुत्र, मेरा घर, मेरा वैभव। ये मरे जा रहे है, नष्ट हुए जा रहे है, यो सोचकर ये अचेत प्राणी दु:खी हो रहे है। इनका यह दुःख कैसे मिट सकेगा ?···अरे इनके इस दुःखको मिटानेमे कोई भी समर्थ नही। हाँ केवल एक ही उपाय है कि ये स्वय जग जायें, इनकी मोह-निद्रा भग हो जाय।

ततो विवेकमालम्ब्य विरज्य जननभ्रमात्।
त्रिरत्नशुद्धिमासाद्य तपः कृत्वान्यदुष्करम् ॥२११६॥
धर्मध्यान च शुक्ल च स्वीकृत्य निजवीर्यतः।
कृत्स्नकर्मक्षय कृत्वा व्रजन्ति पदमव्ययम् ॥२११७॥

मुमुक्षुको विवेककी प्रथम आवश्यकता—जब कि ससारमे किसी भी वस्तुका शरण लेना हितकारी नही है तब समस्त परपदार्थोसे विरक्त होकर परमशरणभूत जो आत्माका स्वरूप है, भगवानका जो स्वरूप है उसमे दृष्टि देना, उसकी शरण गहना, यही एक हितकारी है। जब इस धर्मध्यानमे यत्न होता है सत पुरुषोका तो उसके फलमे मनुष्यभवके बाद वे अहिमिन्द्र देवमे उत्पन्न होते हैं और वहाँसे आयु पूरी कर बडे श्रेष्ठ मनुष्य होते है। फिर वैराग्य से सुवासित होकर, दीक्षित होकर, आत्मध्यानमे लगकर निर्वाणपद प्राप्त करते है। इस कारण

से जिन्हे मोक्षकी इच्छा है वे इस विवेकका आलम्बन करें। यहाँ ससारमे तो सारा अटपट सम्बध है। जो आपके घरमे दो चार जीव आ गए हैं वे उन अनत जीवोमे से हैं, यदि ये न आते, इनकी जगहपर और कोई आते तो उनसे मोह करते। तो फिर अपना तो कोई न रहा। तब विवेक करना चाहिए कि इस आसक्ति स्नेह और मोहसे कुछ भी सिद्धि न होगी। जो पुरुष मोही होगा, आसक्त होगा वह अपना जीवन व्यर्थमे खो रहा है, हाथ कुछ लगेगा नही और व्यर्थ ही जिन्दगीमे कष्ट सह रहा। यदि धर्मकी प्रीति हो जाय तो इस जीवको इस भवमे भी शान्ति मिले और आगे भवका भी रास्ता मिले, जिससे रत्नत्रयकी साधना कर सकें। तो विवेक करना चाहिए।

अविवेकका उदाहरण और विवेककी ओर झुकाव—जैसे किसी आदमीने किसी लडके को बहका दिया कि देख लडके! तेरा कान वह कौवा लिए जा रहा है, तो वह लडका उस कौवाका पीछा करता है। कोई पूछता है—अरे बेटा क्यो भागे जा रहे हो? तो वह कहता—अरे बाबा जी छेडो मत, बडा गजब हो गया, अरे क्या हो गया? अरे मेरा कान कौवा ले गया। वह समझाता है—अरे कौवा तेरा कान कहाँ लिए जा रहा है, अपने कानको टटोल-कर देख तो सही। जो उसने टटोलकर देखा तो कहता है—अरे कान तो यही लगा है। तो ऐसे ही दुनियाके मोही प्राणियोको बहका रखा है दूसरे बहके हुए व्यक्तियोने—देखो अमुकमे सुख है, ऐसे इन्द्रिय भोगोमे सुख है, यो भोजन करो, यो देखो, यो सुनो, इसमे सुख है। यो बहका रखा है और अपने सुखके लिए दौडा जा रहा है विषयसाधनोंके पास। आचार्यदेव समझा रहे है—अरे भाई कहाँ दौडे जा रहे हो? तो ये मोही प्राणी कहते—आचार्य महा-राज, आप चुप बैठे रहो, मेरा सुख उन विषयोमे है, वैभवमे है, धनमे है। आचार्य कहते—अरे क्यो श्रम करते हो? जरा अपनेको तो टटोलो, तेरा सुख तेरेसे बाहर नही गया, किसीने छीना नही है। अपने स्वरूपको तो तको, और कदाचित् यह जीव अपने स्वरूपपर दृष्टिपात कर ले तो मान जायगा—अहो! मैं सुखके लिए कहाँ-वहाँ बाहर दौडा भटका, किसके पीछे भागें, मेरा सुख तो यही रखा हुआ है। मैं स्वय आनन्दस्वभावी हू।

मनःसंयमनका प्रभाव—देखो भैया! जिन बडे मुनीश्वरोकी कथा हम बडी भक्तिसे सुनते है तो बात क्या हुई उनमे? उन्होने अपना स्वरूप पहिचाना। ज्ञान और आनदरूप मैं हू ऐसा उन्होंने पहिचाना, जिसके फलमे बाहरमे उनको कुछ खोजनेकी चाह न रही, इसी कारण वे महान हुए है और हम उनकी बडी भक्तिसे चर्चा करते हैं। देखो—करनेको कोई कैसा ही पाप करे किन्तु १० आदमियोमे वह पापकी बातका उपदेश करे तो वह किसीको न रुचेगा, बोलने वालेको भी न रुचेगा। तो पाप यदि अच्छी चीज होती तो उसे भी समारोहमे उपदेश मे या भाषणमे खुले रूपसे उपदेश देते, पर उसका उपदेश कोई नही देता। वहाँ तो त्याग,

व्रत, सयम, दान, परोपकार आदिककी ही बाते करनी होगी। तो जिसकी बात भी करना पाप है वह कार्य इस जीवका हित कैसे कर सकता है ? तो विवेक करिये--बाह्यपदार्थोमे दौड न लगाइयेगा, ससारके भ्रमणसे विरक्त होइये। थोडा मनको सयत करना है कि आनद मिलेगा अपार। थोडा मनको ढीला किया, थोडा मार्गसे च्युत हुए कि करा कराया जो कुछ है वह समाप्त हो जाता है। विवेक करे और ससारके भ्रमणसे विरक्त हो, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रकी शुद्धि प्राप्त करें, इतना आधार पाने वाला साधु फिर अत्यत दुष्कर तपश्चरण को भी करे, धर्मध्यान, शुक्लध्यानको स्वय करे तो वह समस्त कर्मोका क्षय करके अविनाशी पद प्राप्त कर लेता है।

कल्याणपथिक होनेके लिये आत्मप्रयोगके बलकी आवश्यकता—कोई ऐसी शका करे कि हमने तो बहुत विद्या नही पढी, बहुत शास्त्र नही देखा, हम अपना कल्याण कैसे कर सकेंगे ? तो जरा उन बदरोसे, मेढकोसे भी तो पूछ लो, जिनकी चर्चा पुराणोमे है, कि तुमने किस पाठशालामे पढा था और कैसे सम्यक्त्व उत्पन्न कर लिया था ? यद्यपि मनुष्यकी बात तिर्यञ्चोसे कुछ निराली है भवके कारण, इन्हे विद्याध्ययन करना चाहिए, किन्तु कोई ऐसा निरुत्साह हो जाय कि हमने बचपनमे अध्ययन किया नही, तर्क छंद व्याकरण आदिक कलावो को सीखा नही, तो अब क्या होगा ? तो उन्हे निरुत्साह होनेकी जरूरत नही है। अरे उन्हे भी इतना ज्ञान तो है कि जगतके सभी पदार्थ भिन्न है और नष्ट हो जाने वाले है, जिसको आत्मकल्याणकी लगन है उसको इतना ज्ञान तो सही मायनेमे होता है कि विश्वके ये सारे समागम न्यारे है, विनाशीक है, इनसे मेरा पूरा नही पड सकता है, इतना ज्ञान तो चाहिए। फिर चूकि उसने भिन्न जाना, अहित जाना, विनाशीक समझा सो समस्त परपदार्थोसे ऐसी उपेक्षा कर ले, ऐसा अपना चित्त बनाये, ऐसी अपनी समझ बनाये कि दिलमे कोई भी पर-पदार्थ बस न सके, कोई भी पदार्थ ख्यालमे न आये, बस कह दे कि तुम मेरे ख्यालमे मत आवो, तुम हमसे अत्यत भिन्न हो, विनाशीक हो, तुम्हारा ख्याल करनेसे मेरेको कुछ भी लाभ नही है, यह तो एक मोटीसी बात है, इसके लिए कोई पैनी बुद्धिकी जरूरत नही है। समझ लिया, पर एक ऐसा विशुद्ध आग्रह होना जरूरी है कि मैं किसीको भी अपने चित्तमे न बसाऊँगा। यो समस्त परको चित्तसे हटाकर और एक निर्भारसा बन जाय, कुछ नही सोचना है, ऐसी स्थिति बन जाय तो स्वय आत्मदर्शन हो जायगा और उस दर्शनसे फिर इसका मार्ग सब स्पष्ट हो जायगा। प्रयोगकी आवश्यकता है। मोह बिल्कुल न तजा जाय तो कैसे यह आशा की जा सकती कि यह कल्याणपथ पा सकेगा ?

पुराण पुरुषोकी चर्यासे शिक्षा—श्री रामचन्द्रजीका कितना प्रबल स्नेह था लक्ष्मणसे और लक्ष्मणका श्रीरामसे। स्नेहकी इससे अधिक अच्छी मिसाल अन्यत्र कही नही मिल सकती।

केवल नारायण और बलभद्रमें ही यह मिसाल मिलती है, ऐसा ही घनिष्ट स्नेह श्रीकृष्ण और बलदेवजीमे था, मगर श्रीरामका प्रताप इसलिए बडा समझिये कि बलभद्र होकर भी श्रीराम की सेवा लक्ष्मणने की। नारायणकी सेवा बलभद्र किया करते है, पर राम बलभद्रकी सेवा लक्ष्मण नारायणने की। उनमें परस्परमें कितना महान प्रेम था ? राम तो गए बनमे, लक्ष्मण से घर रहा न गया, वे भी वनको गए। यद्यपि उनको घरपर बडा आराम था, पर जगल गए रामका साथ निभानेके लिए, और रामचन्द्र जीका स्नेह देखिये कि जब लक्ष्मणका वियोग हुआ तो ६ माह तक उनका चित्त विभ्रम रूप रहा, लक्ष्मणकी देहको नही छोडा। कितना महान स्नेह था उनका परस्परमें, पर आज इस भूलोकमे हमें वे कहाँ दिख रहे ? श्रीराम भगवान हुए, मोक्ष पधारे, लक्ष्मण भी थोडे ही समममे मोक्ष जायेंगे, तो कहाँ रहा वह सयोग ? बडो बडोकी जब ये स्थितियाँ रही तो इस थोडेसे वैभवको पाकर, साधारण जनोको पाकर मोहमे इतरा रहे हैं, यह कौनसी बुद्धिमानी है ? विदेक करिये—उन बडोंने क्या किया ? बडा वैभव पहिले जोडा, खूब आरामके साधन बनाये, बडी व्यवस्थाये बनायी, बडा प्रताप फैलाया, और जिन्दगी व्यतीत हुई। अतमे क्या हुआ ? कोई कभी बिछुडा, कोई कही बिछुडा, कोई दीक्षित हो गया और फिर मैदान साफ। तो ससारकी यह स्थिति है। यथार्थ बात तो विचारिये, और उस भूल-भटकसे निकलकर अपने आत्माके शुद्ध प्रकाशमे आये, शान्ति इस ही उपायसे प्राप्त होगी, अन्य उपायसे नही।

कल्पनाके पुलके टूटनेका क्लेश—शेखचिल्लीकी एक कथा है कि एक श्मश्रुनवनीत नामका कोई पुरुष था। देखो करतूतके अनुसार उसका नाम भी श्मश्रु नाम है। श्मश्रु नाम है मूछका और नवनीत नाम है मक्खनका। तो श्मश्रुनवनीतका अर्थ हिन्दीमे हो गया मूछ-मक्खन। सो एक दिन वह किसी श्रावकके घर छाछ पीने गया। पीनेके बादमे उसने ज्यो ही अपनी मूछोपर हाथ फेरा तो कुछ मक्खन हाथमे लग गया। सोचा कि यह तो बडा ही अच्छा रोजगार है। १०-२० घरोमे रोज मट्ठा पी आया करेंगे और उसे पोछकर इकट्ठा कर लिया करेंगे, फिर उसका घी बनाकर बेचेंगे। सो उसी दिनसे उसने वही काम शुरू कर दिया। एक दो सालमे ही उसने करीब १ सेर घी जोड लिया। एक दिन जाडेके दिनोमे अपनी झोपडी मे वह हाथ ताप रहा था, घी एक मिट्टीके डबलेमे था, जो कि उसी झोपडीमे ऊपर लटक रहा था। कुछ उसे निद्रासी आई सो लेट बया। लेटे हुएमे उसने विचार किया कि मैं कल बाजार मे इस घीको बेच दूंगा। जो भी रुपये मिलेंगे उनका खोम्चा लगाऊँगा, जब १०-२० रु० हो जायेंगे तो एक बकरी खरीदूगा, फिर उसके बच्चे होंगे, बच्चोको बेचकर व दूध आदिको बेचकर जब ५०-६० रु० हो जायेंगे तो एक गाय खरीदूगा, फिर उससे बैल व भैंस आदि खरीदूगा, फिर कुछ जमीन खरीदूगा, फिर शादी भी कर लूगा। बच्चे होंगे। कोई बच्चा

बुलाने आयगा कि चलो दद्दा खाना खाने–माँजी ने बुलाया है तो मना कर दूगा । फिर सोचने लगा कि लडका फिर बुलाने आया है—कहता है दद्दा खाने चलो, माजी ने बुलाया है । तो वह कहता है—अभी हम नही जाते । जब कई बार उस लडकेने कहा तो गुस्सेमे आकर पैर फटकारकर उस लडकेसे कहा—अबे कह दिया कि अभी हम नही जाते । लो उसका पैर लग गया उस घीके डबलेमे । वह घीका डबला आगपर गिर गया, आग खूब जल उठी, झोपडी भी जलने लगी, तो वह झट बाहर निकलकर चिल्लाता है—अरे मेरी स्त्री मर गयी, मेरे बच्चे मर गए, मेरा घर जल गया, मेरे जानवर जल गए, मेरी सारी सम्पदा नष्ट हो गई । लोग जुडे । सोचने लगे कि यह कल तक तो भीख मागता था और आज यह इस तरहसे कह रहा है । देखें तो सही कि आखिर मामला क्या है ? सो एक सेठजी ने उससे पूछा तो उसने सारा हाल बताया । तो सेठ जी कहते है—अरे तू क्यो रोता है, तेरे पास कुछ था तो नही, केवल कल्पना ही तो कर लिया था । वह तो एक शेखचिल्लीपनेकी बात थी, तेरा कुछ जला तो नही, तेरा कुछ नष्ट तो नही हुआ ? तू क्यो रोता है ? तो कोई एक समझदार पुरुष थे । उसने सेठ जीसे कहा—अरे सेठ जी तुम्हारी भी तो यही हालत है । तुम्हारा यहाँ है कुछ नही, केवल कल्पनासे मान रखा है कि यह मेरी स्त्री है, ये मेरे पुत्र है, यह मेरा वैभव है । तुम क्यो इनके पीछे दु खी होते हो ? ये तो तुम्हारे कुछ भी नही है, तुमसे अत्यन्त भिन्न है, तुम भी व्यर्थमे इनके पीछे दुःखी होते । तो इस दुनियामे इन तृष्णावोको करके कुछ भी तत्त्व न पाया जा सकेगा । जो भी हो, पर यह यथार्थ भान होना चाहिए कि परवस्तुके ममत्वसे मेरा हित नही हो सकता ।

जिस क्लेशसे दुःखी होना उसी क्लेशमे रमना—खेदकी बात तो यह है कि धक्के खाते जाते है फिर भी उन्हीमे मोह करते जाते है । जैसे किसी बूढेके ५-६ पोता पोती थे, वे उस बूढेको बहुत हैरान करते थे । कोई पोता सिरपर चढे, कोई मूछ फटाये । वह बडा हैरान हो रहा था । एक सन्यासी जी वहाँसे निकले, पूछा—बाबा जी ! तुम क्यो रोते हो ? तो वह बूढा बोला—सन्यासी जी, हमारे ये ५-६ पोता पोती है, ये हमको बहुत हैरान करते है । तो सन्यासी बोला—तुम दु खी मत हो, हम तुम्हारा यह दु ख मेट देगे । इस बातको सुनकर वह बूढा बडा खुश हुआ । सोचा कि सन्यासी जी कोई ऐसा जादू डाल देंगे कि ये बच्चे फिर तो हमारे सामने हाथ जोडे ही खडे रहेगे । सो कहा अच्छा सन्यासी जी हमारा यह दुःख मेट दो । तो सन्यासी जो कहते है—अच्छा तुम हमारे साथ चलो, हमारे ही पास रहना, फिर ये सारे दु ख मिट जायेंगे । तो वह बूढा कहता है—अरे ये पोते आखिर हमारे पोते ही रहेगे और हम इनके बाबा ही कहलायेंगे, तुम बीचमे कौन तीसरे बहकाने आये ? तो जिन बातोसे धोखा ही मिलता है, कष्ट ही मिलता है उन ही बातोमे ये मोही प्राणी पडते है । अब इसका

कौन इलाज करे ? परवस्तुविषयक मोहमे किसने शान्ति पायी ? एक भी दृष्टान्त ऐसा बता दो जिससे मोह करके यह प्राणी सुखी रहा हो ? तो विवेकसे ही पूरा पड सकेगा और विवेक खो करके तो कुछ पूरा नही पडता। तो यो भेदविज्ञान करें, ससारसे विरक्त हो, रत्नत्रयकी आराधना करे, तपश्चरण करे और उत्तम ध्यानको स्वीकार करके आत्मस्थ हो। यही एक उपाय है कि सर्व कर्मोंका क्षय करके अविनाशी पद प्राप्त किया जा सकता है।

(शुक्लध्यान वर्णन प्रकरण ४२)

रागाद्युग्ररुजाकलापकलित सन्देहलोलायित,
विक्षिप्तसकलेन्द्रियार्थगहने कृत्वा मनो निश्चलम्।
ससारव्यसनप्रबधविलय मुक्तेर्विनोदास्पद,
धर्मध्यानमिद विदन्तु निपुणा अत्यक्षसौख्यार्थिनः ॥२११७॥

अतीन्द्रिय आनन्दके अभिलाषी योगियोंका मनकी निश्चलताका उद्यम—जो अतीन्द्रिय सुखके अभिलापी हैं, केवल आत्माके स्वरूपके ध्यानके प्रसादसे जो निराकुलताका अनुभवन होता है उस आनन्दके जो अभिलाषी है ऐसे मुनिजन मनको निश्चल करते हैं। मनकी निश्चलतामे वैराग्यका प्रबल सहयोग है। रागादिक होनेके कारण मन निश्चल नही रह पाता, तब वे योगी प्रथम ही रागादिक तीव्र रोगोका अभाव करते है। मनकी चचलता रागादिक भावोके कारण ही है। अनेक सन्देशोसे यह मन चलायमान रहता है। कोई आदमी बीमार है तो उसके प्रति यह ख्याल रखते है कि कही यह मर न जाय। यद्यपि उस स्थिति मे दोनो बातें सम्भव है—मर भी सकता और अच्छा भी हो सकता, किन्तु रागभाव ज्यादा है तो इस ओर अधिक ध्यान रहता कि कही यह मर न जाय। ऐसे अनेक सदेह वहा ही होते है जहाँ रागादिक भाव विराजते है। जब तक यथार्थ निर्णय न हो तब तक यह चित्त स्थिर नही रहता है। विपयरूपी गहन वनमे यह मन यत्र तत्र खूब भटकता फिरता है। तो सर्वप्रथम अतीन्द्रिय आनदके अभिलाषी साधु सतजन मनको निश्चल करते है। ससारके कष्ट अनेक व्यसन आदिक आयें तो भी निश्चल मन वाले उनसे विचलित नही होते। निश्चल मनमे जो ध्यान होता है उसे आदर्श धर्मध्यान कहते है। जब तक साधक रागसहित है तब तक धर्मध्यान चलता है और जहाँ राग अत्यन्त मद हो जाते हैं अथवा रागादिक नही रहते हैं वहाँ शुक्लध्यान चलता है।

शुक्लध्यानमे प्रवेश होनेसे पूर्व धर्मध्यानकी प्रेरणा—शुक्लध्यानका प्रकरण शुरू होने को है उससे पहिले धर्मध्यानकी प्रेरणा दी है आचार्यने कि इस धर्मध्यानका अनुभव करो। आत्माका एक धर्म ही शरण है, यह आत्मा बाहरमे करता कुछ नही है। किससे स्नेह करना, किससे विरोध करना, किसका सग्रह करना, ये सब विपरीत बाते जो देखी जा रही

है वे आत्माके द्वारा नही की जा रही है ।

यह आत्मा तो अपनेमे मात्र भाव बनता है । वह भाव या तो पुण्यरूप होगा या पापरूप होगा या विशुद्ध धर्मरूप होगा । भावोके अतिरिक्त आत्मा कुछ करनेमे समर्थ नही है । जब भाव ही कर पाता है । यह जीव तो अपने विशुद्ध भाव बना ले तो इसका उद्धार हो जायगा । धर्मके बिना इस ससारमे नाना जन्ममरण और कष्ट भोगने पडते है । एक रानीने अपने (पति) राजाको समझाया कि तुम रोज धर्म किया करो । तो राजा कहे वाह—हम धर्म क्यो करे, हमारे पास किस चीजकी कमी है, धर्म तो गरीब लोग करे । तो मरण तो सबका होता ही है । राजा मरण करके बादशाहके यहाँ ऊँट बना और रानी मरकर बादशाहकी लडकी बनी । लडकीका जब विवाह हुआ तो उस बादशाहने उस ऊँटको भी दहेजमे दे दिया । अब जब बरात जाने लगी तो बरात वाले सोचते हैं कि यह ऊँट क्यो खाली जाय, इसपर कुछ लाद दिया जाय । सो उस दुल्हिनके कपडे उसके ऊपर लाद दिये । रास्तेमे ऊँटको हो गया जातिस्मरण । सोचा—अहो ! ये तो मेरी स्त्रीके ही कपडे मेरे ऊपर लदे हैं । पूर्वभवकी वह उसकी स्त्री ही तो थी । अब वह चले नही तो उसका चलाने वाला उसे खूब पीटे । उसी समय हो गया उस दुल्हिनको भी जातिस्मरण । सोचा—ओह ! यह ऊँट तो मेरा पूर्वभवका पति है । सो उसके न चलनेका कारण उसने समझ लिया । सो उस ऊँट खेदने वालेसे कहा—भाई तुम लोग इसे मारो मत, हम इसे समझा लेंगे । सो उसने अकेलेमे उसे समझाया कि देखो मैं कहती थी कि कि तुम रोज धर्म किया करो, नही तो मरकर कुगतिमे जावोगे । तुमने धर्म नही किया उसका फल है कि तुमको ऊँट बनना पडा है । अब तो अच्छा यही है कि तुम चले चलो, नही तो डडे पडेंगे ही । तो जितने भी जीव यहा नजर आ रहे है कीडा मकोडा पशु पक्षी आदिक यह सब धर्म न करनेका फल है । इन बैल, भैंसा, घोडा घोडी आदिकी हालत देखो—गर्दन सूझ गई है, खून भी बह रहा है फिर भी बहुत सा बोझा लादे चले जा रहे है, डडे भी पडते जा रहे है । ये सब हालतें जो हो रही है वे धर्मध्यान न करनेका फल है ।

मनुष्यभव पाकर जिम्मेदारीका निभाव—आज मनुष्यभव पाया है तो अपनी बडी जिम्मेदारी समझिये । सर्व गतियोमे, सर्व पर्यायोमे मनुष्यका जन्म हो सकता है । अब भी न चेते तो चार दिनोका जो स्वप्न है, मोहमे कल्पना आ गई यह तो मिटेगा, किन्तु अधर्म पाप परम्परासे यह आगामी भविष्यमे भी बहुत समय तक क्लेश पायगा । एक धर्म ही शरण है । किसीसे मित्रता करे तो ऐसी करे कि हमसे उसे भी धर्मकी प्रेरणा मिले और उससे हमें भी धर्मकी प्रेरणा मिले । घर गृहस्थीमे, स्त्री पुत्रादिकमे भी ऐसा ही व्यवहार रखे कि हमारे द्वारा इन सबको धर्मकी प्रेरणा मिले और इनके द्वारा हमे धर्मकी प्रेरणा मिले । धर्मसे दूर रहकर जो परिणाम बनेगा वह दुःखका ही कारण होगा । मनको निश्चल करके ही धर्मध्यान

होता है और इस मनकी निश्चलतामे सासारिक व्यवहारकी प्रवृत्ति नही जगती । ऐसा मन को स्थिर बनाकर किसे देखे---अपने आपमे जो अपने आपका सहज स्वरूप है उस स्वरूपदर्शन के उत्सुक बनें । ऐसी भावना भायें कि मैं मात्र ज्ञानस्वरूप हू, जो जानन है, जो ज्ञानस्वरूप है, जो ज्ञानपुञ्ज है एतावन्मात्र मै हू । इस प्रकार ज्ञानस्वरूपकी भावना करनेसे यह उपयोग एक ज्ञानोपयोग बनेगा, निराकुल होगा और विशुद्ध आनदका अनुभव होगा । इससे जो मुनि जन इस अतीन्द्रिय आनदके अभिलाषी है । उन्हे सर्वप्रथम आवश्यक है कि अपने मनको निश्चल करे और धर्मध्यानमे कुशल होवें ।

आत्मार्थ श्रयमुञ्च मोहगहन मित्र विवेक कुरु,
वैराग्य भज भावयस्व नियत भेद शरीरात्मनो ।
धर्म्मध्यानसुधासमुद्रकुहरे कृत्वावगाह परं,
पश्यानन्तमुखस्वभावकलित मुक्तेर्मुखाम्भोरहम् ॥२११६॥

आत्मप्रयोजनके आश्रयणका अनुरोध---हे आत्मन् ! तू आत्माके प्रयोजनका आश्रय कर । दुनिया स्वार्थी है । अच्छी बात है, स्वार्थी सबको होना ही चाहिए किन्तु वास्तविक स्वार्थी होना चाहिए अर्थात् स्व मायने आत्मा उसके अर्थी मायने अभिलाषी । आत्माका जो स्वरूप है उस स्वरूपके दर्शनका अभिलाषी आत्मस्वभावमे रमण करनेका इच्छुक वास्तवमे स्वार्थी है । हे आत्मन् ! तू अपने आत्माके प्रयोजनका आश्रय कर । अन्यके आश्रयको छोड दे, इस मोहरूपी बनको छोड दे । इससे निकल, भेदविज्ञानको अपना मित्र बना । बाहरमे किसको मित्र बनाते हो, कौन पुरुष ऐसा निष्कपट अथवा आपका कल्याण कर सकने वाला मिलेगा ? वस्तुस्वरूप ही ऐसा नही कि कोई किसीका साथ निभाये । लोग स्नेहमे कहते हैं अपने मित्रसे कि देखो मित्र हमारे तुम्हारे शरीर तो दो है पर आत्मा एक है । यह बात कभी हो सकती है क्या ? और यह बात हो सकती है कि शरीर तो एक हो और आत्मा अनेक हो । एक निगोद शरीरमे अनतानत जीव होते है, मगर दो शरीरोमे एक जीव रह सके ऐसा कही सम्भव है क्या ? उसका अर्थ यह लगाना चाहिए कि हमारा किसीसे सम्बध नही। एक बार चिरौंजाबाईजीको किसी रिश्तेदारने निमत्रण दिया और कह दिया कि देखो तुम्हे जरूर आना पडेगा, तो चिरौंजाबाईजी बोली हाँ हम जरूर आयेंगी, सिरके बल आयेंगी । जब उस समय वह न पहुच सकी तो वह रिश्तेदार उलाहना देने आया, कहा कि तुमने तो कहा था कि हम जरूर आयेंगी, सिरके बल आयेगी पर आयी क्यो नही ? तो उन्होंने कहा कि हाँ कहा तो था, सिरके बल चलनेकी कोशिश भी की, पर चलते ही नही बना । (हँसी) तो जो ज्यादा बढ बढकर बाते होती है उनमे समझो कि वहाँ वास्तविक स्नेहका लगाव नही है । न वहाँ कोई विशुद्ध सम्बध है । वह स्नेह एक मोहकी सीमाका उल्लघन करके है । तो

हे आत्मन् ! देख भेदविज्ञान कर और विवेकको अपना मित्र बना । वैराग्यकी सेवा कर ।

अराग ज्ञानमात्र स्वरूपके निरीक्षणका अनुरोध---आत्मन् ! अपने आपको ऐसी स्थिति मे निरख, इस स्वरूपमें देख कि यहाँ तो केवल एक ज्ञानकला है, राग नही है, राग आता है तो किसी पर-उपाधिका निमित्त पाकर आता है । यह मेरा स्वरूप नही । अपनेको रागरहित स्वरूपमें अनुभव कर तो तेरा रागसे छुटकारा हो जायगा । जो अपनेको ऐसा ही मानता है कि जैसा कि राग कर रहा है---मै तो यही हू, मैं तो लटोरा घसीटा हू तो ऐसा ही घसीटना पडेगा । अपनेको रागरहित स्वरूपमे तो तको और जो राग लगे है वे सब राग इस जीवके लिए आपत्तियाँ है, ऐसा निर्णय रखकर वैराग्यकी सेवा करो । और शरीर तथा आत्मामे भेद की भावना रखो । यह शरीर रूप, रस, गध, स्पर्शमय है, जड है, आत्मा चैतन्यस्वरूप है, इस उपायसे धर्मध्यानके शीतल समुद्रमे अवगाहन कर और व्यथावोको दूर कर । जब कोई सताप होता है, गर्मीकी बाधा होती है तो लोग करते क्या है कि शीतल जलसे स्नान करते है । तो यह राग आग इस जीवको जला रही है । तो राग आगके सतापसे बचनेका उपाय क्या है ? ज्ञानध्यान रूपी शीतल जलनिधिमे प्रवेश करना, यह है राग आगको शान्त करनेका उपाय । सीधीसी बात झट ख्याल कर लें---मैं तो केवल ज्ञानप्रकाशमात्र हू, रागद्वेष मोह विरोध ये कुछ भी ऐब मेरे स्वरूपमे नही है ।

जीवपर महती विपदा---अहो, कितनी बडी विपत्ति है इस जीवलोकपर ? कुछ सम्बध नही, कोई बाह्यपदार्थ अपने नही । जैसे किसी चौहट्टेपर यहाँ वहाँसे आये हुए मुसाफिर एक जगह दो सेकेण्डको मिल जाते है और अपना-अपना रास्ता नापकर चले जाते है, ऐसे ही इस घरमे हो क्या रहा है कि चौहट्टोसे चारो गतियोंसे मुसाफिरी करते हुए जीव आये, थोडे समय को ठहरे, फिर बिदा हो गए, कुछ भी सम्बध नही किन्तु यह मोही प्राणी अपनी सुध बुध भूलकर इन समागमोको ही सर्वस्व समझता है और इस ही पर यह इतराता है, घमड करता है, और इस समागममे कोई बाधा करे तो यह खेद मानता है । यह ही मात्र एक आपदा है, और आपदा ही कुछ नही । कुछ भी स्थितियाँ बने, धन कम हो जाय, किसी इष्टका वियोग हो जाय, बाह्यमे सब कुछ हो गया, वह कोई विपदा नही है, पर मोहभाव चल रहा है भीतर गहन अधकार अज्ञानका चल रहा है विपदा तो वह है ।

भ्रमकी महती विपदा---एक बार १० जुलाहे एक नगरमे कपडा बेचने गए, रास्तेमे एक नदी पडी । जब कपडा बेचकर वापिस आये, नदी पार कर ली तो एक जुलाहा बोला कि अपन गिन तो लें, १० जने थे सो १० के १० है या नही । जो वे गिनें नो सामने जो दिखें उन्हीको गिन ले और अपनेको गिनना छोड दें । उन सभी जुलाहोने ६ मित्र गिने । अब एक मित्र कम पडा तो वे सभी दु.खी होकर रोने लगे । वे आपसमे यही कहे कि गये तो थे

अपन १० मित्र दो रुपयेके लाभके लिए, पर एक मित्र खो आये। पता नही नदीमे वह गया या क्या हो गया ? उनमे परस्परमे बडा अनुराग था। इतना उन सभीको दुःख हुआ कि वे अपना-अपना सिर फोडने लगे। वहाँसे निकला एक घुडसवार, उसने उन सबके रोनेका कारण पूछा तो उन सभीने सारा वृत्तान्त बताया। घुडसवारने एक निगाहमे ही देख लिया कि हैं तो ये १० के १०, और कहते हैं कि ९ है। समझ लिया कि ये सभी महामूर्ख हैं। तो उसने कहा—अच्छा भाई कहो तो हम तुम्हारा वह १०वा मित्र बता दें, तो उन्होंने कहा हम तुम्हारा बडा आभार मानेंगे। सो उसने क्या किया कि उन दसोको एक लाइनमे खडा किया, हाथमे एक बेत लिया, और एक तरफसे गिनता जाय—१, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९ और १०वें के जरा जोरसे मारकर कहे—तू है १०वा। इसी तरहसे सभीको बता दिया कि तू है १०वा। वे सब बडे खुश हुए अपने १०वें मित्रको पाकर। वे खुश तो हो गए, उनका दु ख तो मिट गया, जो भूल पडी थी अन्दरमे वह तो दूर हो गई किन्तु उस भूलके कालमे जो ढेलोंसे अपना सिर फोड लिया था वह दर्द तो अभी नही दूर हुआ। हाँ वह दर्द तो नही दूर हुआ, पर उस भीतरमे पडी हुई भूलका जो दर्द था उसके मुकाबले तो यह न कुछसा दर्द है। तो इसी तरह समझिये कि इष्टका वियोग हुआ, अनिष्टका सयोग हुआ, शरीरमे वेदना हुई, धन कम हो जाय, और और भी उपद्रव उपसर्ग आ जायें इतनेपर भी ये कोई दु ख नही है और अन्तरङ्गमे जो भूलका दुःख है, यह सब कुछ मेरा है यह भूलका दर्द बहुत कठिन है।

व्यामोहका परिणाम—गुरुजी एक घटना सुनाते थे कि बम्बईमे कोई गणितका प्रोफेसर था, लखपति घरानेका था, उसे अपनी स्त्रीसे बडा मोह था। जब स्त्री कही घूमने जाये तो वह प्रोफेसर साहब उस स्त्रीपर छाता लगाकर जावे, इसलिए कि कही इसके धूप न लग जाय। तो वह स्त्री एक दिन कहती है कि तुमको हमसे इतना अधिक मोह न रखना चाहिए, नही तो तुमको बडा कष्ट भोगना पडेगा, पागल हो जावोगे। आखिर हुआ भी ऐसा ही। वह स्त्री तो गुजर गयी और वह प्रोफेसर पागल-सा ही हो गया। एक बार वह प्रोफे-सर बनारसमे एक धर्मशालामे ठहरा था, पास ही के एक कमरेमे चिरौंजाबाई जी ठहरी थी। तो चिरौंजाबाई जी को ये शब्द सुननेमे आये—देखो बाई जी ने तो रोटी बनाली, पडित जी को खिला भी दिया, १० बज गये, अभी तक तुमने रोटी नही बनाई ? तो बाई जी उससे बोली कि तुम किससे वे सारी बातें कह रहे थे ? यहाँ तो कोई नही है। तुम्ही अकेले हो। तो उसने अपनी सारी कथा सुनाई कि हमको अपनी स्त्रीमे बडा मोह था, उसके मर जाने पर इस फोटोको देखकर मुझे उसकी याद आ जाती है। और मुझे क्लेश होता है। तो बाई जी बोली कि तुम्हे क्या यह पता नही कि यह कागज है, फोटो है, यह रोटी नहीं बना सकता ? तो वह प्रोफेसर बोला—हाँ हम जानते है इस बातको, पर उसके मर

जाने से मेरे हृदयमे एक बहुत बडा धक्का पहुंचा है, उसका वियोग हो जानेसे हमारा मन काबूमे नही हैं। तो यहाँ रहना कुछ नही है लेकिन उस मोहके कालमे जो मन गडबड कर लिया जाता है उसका दु ख उनको ही भोगना पडता है। इस कारण जितना सचेत बन सकते हो, बनें।

बाह्य अर्थमें शरणत्वका अनवकाश—खूब निरख लीजिये कि जितने भी समागम है उन सबका नियमसे वियोग होगा। ऐसी बात जान लेनेसे कितना फायदा है ? एक तो उस समय भी यह अधेरेमे न रहेगा, मोहमे व्याकुल न रहेगा और जब वियोग होगा तब इसको अधिक आकुलता न होगी, क्योकि वह समझेगा कि यह बात तो मै वर्षोसे जानता था कि जो समागम मिला है उसका वियोग अवश्य होगा। तब इन समागमोमे राग करने से लाभ कुछ नही है। वैराग्यकी सेवा करें और सबसे निराला जो अपना ज्ञानस्वरूप है उसकी भावना करे। निज कारणपरमात्मतत्त्वकी उपासनासे ही हम आपका कल्याण हो सकता है। जगतमे और कोई दूसरा नही है ऐसा कि जिसका आश्रय कर लेनेसे कल्याण हो सकेगा बाकी तो सब स्थल लात मारने वाले है। जैसे फुटबाल जिस बालकके पास पहुचता है वह बालक उसे हृदयसे नही लगाता बल्कि लात मारकर उसे वहाँसे भगा देता है, फिर वह फुट-बाल जहाँ जाता है वहाँ भी यही हाल होता है, इसी तरह यह जीव जहाँ जायगा, जिन जिन की शरणमे पहुचेगा वहीसे धक्के खायगा, किसीके वशकी बात नही है। कैसा भी किसीसे प्रेम हो, धक्का न देना चाहे, लेकिन कोई न कोई बात ऐसी बन ही जाती है कि वहा धक्का ही लग जाता है। प्रत्येक जीव अपने-अपने ही स्वरूपमे परिपूर्ण है, उनकी परिणति न्यारी है, कैसे वे शरण बन सकते है ? तो बाह्य पदार्थोंमे शरणत्वकी बुद्धि छोडकर एक अपने आत्माका आश्रय लें।

मिथ्यात्रितयका क्लेश और उससे बचनेको त्रियत्नका अनुरोध--भैया ! जैसा ही दु.ख रागसे होता है वैसा ही दु ख द्वेषसे होता है और मोहसे भी दु ख है। ये तीनो ही ससारके कारण है। एक ब्राह्मणी थी, उसके थे तीन लडके। एक छोटा, एक मझला और एक बडा, यो समझ लो। एक बनियाने सोचा कि हमे एक ब्राह्मण जिमाना है तो चले जाये कलके दिन को उस बुढिया ब्राह्मणीके घर, सबसे छोटे बच्चे को निमत्रण दे दें। पहुचा वह बनिया उस बुढियाके पास और बोला कि बुढिया मा कलके दिनको तुम्हारे छोटे बच्चेको हमारे यहाँ भोजन करनेका निमत्रण है, तो बुढ़िया कहती है कि हमारे तीन लडके है, तुम चाहे छोटेको निमत्रण दो, चाहे बडेको, चाहे मंझलेको। हमारे तो तीनो ही लडके तिसेरिया है अर्थात् तीन सेर खाने वाले हैं। तो ऐसे ही भव-भवमे भटकाने वाले ये मिथ्या-दर्शन-ज्ञान-चारित्रका तिगड्डु अथवा मोह रागद्वेषकी त्रिपुटी ये सभी हमारी बरबादीके कारण है—हम उनमे क्या छाटे कि कौन कम

है कौन ज्यादा है ? कभी ऐसा हो कि मोह कम रहा और रागद्वेष जिन्दा है तो वे बढकर फिर कभी बडे पतनकी स्थिति बना सकते है। बुद्धिमान पुरुष ऐसा सावधान रहते हैं कि वे किसीमे रच भी रागद्वेष नही करते, और जैसे धुनिया रुईको जर्रे जर्रे करके धुन देता है इसी तरह वे बुद्धिमान जन इन राग द्वेषोको धुन डालते है। रचमात्र भी राग कभी बहुत बडी महान विपदाका कारण बन जाता है। तो भेदविज्ञान करें, वैराग्यकी सेवा करें और आत्म-स्वरूपकी भावना बनायें। यह इस एक धर्मध्यानका पूर्णरूप होगा। इस प्रकार धर्मध्यानमे अनुरोध करके अब आचार्यदेव शुक्लध्यानका वर्णन करेंगे।

अथ धर्म्यमतिक्रान्त शुद्धि चात्यन्तिकी श्रित.।
ध्यातुमारभते वीर शुक्लमत्यन्तनिर्मलम् ॥२१२०॥

योगीका शुक्लध्यानके लिये उपक्रम—अब यह योगी धर्मध्यानको अतिक्रान्त करके बहुत ऊँची आत्मसिद्धिको प्राप्त करता हुआ शुक्लध्यानका ध्यान करनेको उद्यत हो रहा है। धर्मध्यानका बहुत विस्तारपूर्वक वर्णन चला था, उन सब विशुद्धियोमे रहकर जिसने आत्म-शोधन किया अब ऐसा महापुरुष शुक्लध्यानका प्रारम्भ करने जा रहा है। धर्मध्यान ७वें गुणस्थान तक बताया है और ८वे गुणस्थानसे शुक्लध्यान। इस शुक्लध्यानमे बहुत पवित्रता है। रागकी वहाँ प्रेरणा नही है। धर्मध्यानमे तो अनुराग भी था, विकल्प भी था किन्तु शुक्ल-ध्यानमे राग नही, रागकी प्रेरणा नही। प्रथम शुक्लध्यानमे क्वचित् जो कुछ राग परिणमन रहा आया तो रहा आये किन्तु न उसका उपयोग है और न उसकी प्रेरणा है। एक शुद्ध जाननकी स्थिति है, उसीमे उपयोग है, ऐसे शुक्लध्यानका प्रारम्भ करते हैं।

निष्क्रिय करणातीत ध्यानधारणवर्जितम्।
अन्तर्मुख च यच्चित्त तच्छुक्लमिति पठ्यते ॥२१२१॥

शुक्लध्यानका साधक पुरुष ऐसे ध्यानमे आ गया है कि जहाँ निष्क्रिय अवस्था है, कुछ क्रिया नही करनी है। धर्मध्यानके समय तो आसनसे बैठना, कुछ उसका भी उपयोग, कुछ अपनी साधनाका उपयोग, प्रभुके गुणोंके अनुरागका उपयोग ये सब अनुरागवश चल रहे थे किन्तु शुक्लध्यानमे ऐसी विशुद्ध अवस्था होती है कि वहाँ क्रियाका कुछ उपयोग नही है। शुक्लध्यान प्राय मिनट दो चार मिनटो जितने कालकी चीज है। यद्यपि बताया है कि अन्त-र्मुहूर्त तक शुक्लध्यान रहता है किन्तु ४५-४८ मिनटकी बात नही है। कभी ऐसा अनुभव किया होगा कि जब यह उपयोग अपने आपमे बसे हुए शुद्ध स्वरूपकी ओर चलता है तो यहाँ वहाँसे दिल हटानेमे और तद्विषयक ज्ञानके करनेमे बहुत समय व्यतीत करना पडता है और जब उस शुद्ध स्वभावको ज्ञानमे लेते है तब वह समय बहुत थोडा रहता है, और कहो न भी शुद्ध स्वभावका अनुभव कर पाये उतनेको छूकर ही अथवा दृष्टिसे निरखकर ही लौट आता है,

बहुत कम समय आता है यह वर्तन जहाँ किसी प्रकारका विकल्प नही होता है और एक विशुद्ध ज्ञानस्वरूपका उपयोग रहता है। यह तो यहाँकी बात है जहाँ शुक्लध्यान नही, धर्मध्यान ही है और फिर श्रेणीमे चढते है। ७वे गुणस्थानकी दो श्रेणी होती है—उपशम और क्षपक। जब ७वे के ऊपर ८वें गुण गुणस्थानमे पहुचते है, तो वहाँ शुक्लध्यानका प्रारम्भ होता है, वह तो निष्किम्प अवस्था है। कुछ वहा करनेकी बात नही है, इन्द्रियातीत अवस्था है, इन्द्रियका वहा व्यापार नही है, इन्द्रियके द्वारा वह ध्यान या वह स्थिति बनती नही है, इन्द्रियके अगोचर है।

अन्तर्मुख चित्तस्थितिकी श्रेष्ठता—भैया! जिसकी चर्चा कर रहे है वह तत्त्व, वह स्थिति इतनी उच्च है कि जीवने प्राप्त नही की। यदि उस श्रेणीकी अवस्थाको, इस शुक्लध्यानको प्राप्त कर ले तो निकट कालमे ही निर्वाण होगा। जहा रागद्वेष नही, मात्र एक ज्ञाताद्रष्टा रहनेकी स्थिति होती है वह है ध्यानकी एक शुद्ध अवस्था। वहा ध्यान धारणा नही रहती। धर्मध्यानमे तो इस ध्यानकी धारणा रहती है पर शुक्लध्यानमे नही रहती है। इस शुक्लध्यानमे चित्त अन्तर्मुख रहता है, चित्त भीतरमे ही कुछ निरखनेके लिए चलता है और इस प्रकार अभिमुख होकर चलता है और इस प्रकार अभिमुख होकर चलता है कि जहा यह भी कह सकते है कि चित्तका वहा नाश हो जाता है, विकल्पोका वहा अभाव रहता है, इस प्रकारका अन्तर्मुख हो जाता है। यह चित्त तब पनपता है जब बहिर्मुख होता है। जैसे कोई बेल तब पनपती है जब उसे बाहर बढनेका अवकाश मिलता है। इसी प्रकार यह चित्तकी बेल तब बढती है जब यह बहिर्मुख होता है, बाह्यमे बहुत-बहुत विकल्प करता है और जब यह चित्त अतर्मुख होता है तो इसका पनपना समाप्त हो जाता है, और ज्ञानका विशुद्ध प्रकाश फैलने लगता है। इस ही स्थितिको शुक्लध्यान कहते है।

आदिसहननोपेत पूर्वज्ञ. पुण्यचेष्टितः।
चतुर्विधमपि ध्यान स शुक्ल ध्यातुमर्हति ॥२१२२॥

बज्रर्षभनाराचसंहननधारी पूर्वविद् योगीके ध्यानार्हता—शुक्लध्यानका धारक बज्रवृषभनाराचसहननका धारी पुरुष होता है। शुक्लध्यानको उत्कृष्ट रूपसे निभा सके, ऐसी पात्रता उस पुरुषके होती है जिसका शरीर बज्रके समान पुष्ट है। जिसके हाथ, पैर, कीली आदिक सारे अग बज्रवत् है, जो अत्यन्त कष्टसहिष्णु है, जो बधबन्धन आदिक अनेक उपद्रव उपसर्ग आनेपर भी रच भी चलित न हो ऐसे बज्रवृषभनाराचसहननका धारी पुरुष तथा ग्यारह अग और चौदह पूर्वका ज्ञाता पुरुष शुक्लध्यानी बननेका पात्र होता है। यद्यपि आगममे यह भी बताया है कि अष्ट प्रवचन मातृकाका ज्ञान रखने वाले साधु भी उच्च होते है। उसका स्पष्ट निष्कर्ष यह है कि जिस योग्यतामे वर्षो समय गुजर जाता है उस योग्यतामे अष्ट प्रवचन

मातृकाका ज्ञान है—भेद ज्ञान, और उसके प्रसादसे जो कुछ निज शुद्धस्वरूपका भान है, आलम्बन है उसके आश्रयसे वह निर्वाण प्राप्त करता है। किन्तु यह बहुत सम्भव है कि ऐसा साधु जब श्रेणीमे चढता है तो उस श्रेणीके समयमे इतनी विशुद्धि जगती है कि वहाँ श्रुतज्ञानावरणका क्षयोपशम हो जाता है। जब ज्ञानावरण मिटनेके लिए है तो मिटनेसे पहिले श्रुतज्ञानावरणका इतना क्षयोपशम हो जाय कि जहाँ द्वादशागका ज्ञान हो जाय इसमे कोई आश्चर्यकी बात नही। चूँकि वह श्रेणीका काल बहुत कम है और शीघ्र ही वह सयोग-केवली बन जाता है, अरहत भगवान बन जाता है। सो उनका जो बहुत समय गुजरा वह अष्टप्रवचन मातृकाके बोधमे गुजरा और जो सद्व्यावहारिकताका समय था वह सब इसी योग्यतामें गुजरा, अत यह कथन ठीक है और यह भी ठीक है कि द्वादशागके जानने वाले साधु शुक्लध्यानको ध्यानेके योग्य होते हैं। इसके सम्बन्धमे सूत्र जी मे भी कहा है—शुक्ले चाद्ये पूर्वविद.।

पुण्यचेष्टित महापुरुषोके शुक्लध्यानका अधिकार—ऐसे महापुरुष जो पुण्यमे स्थित है, जिनकी चेष्टा, जिनका दर्शन पवित्र है वे ४ प्रकारके शुक्लध्यानोका ध्यान करनेके योग्य होते है। लौकिक दृष्टिसे देखिये—जो शरीरका व्यवहार है, नामवरी है, लगाव है, सम्पर्क है, ये सब समूल नष्ट हो जायें तो मिलेगा वह विशुद्ध ज्ञानविकास, जिस ज्ञानमे समस्त लोकालोक प्रतिभासित होता है। मोही लोग तो सुन कर हैरान होगे कि जब मैं सबको जानना चाहता था तब तो हमको ज्ञान हुआ नही और जब वीतराग हो गए तो ज्ञान हो रहा है, तो उससे फायदा क्या पाया ? मोही जन इस प्रकारसे सोच सकते हैं, पर जहाँ केवल ज्ञानकी स्थिति रहती है, ऐसा ज्ञान रहता है तो उसका स्वभाव है कि वह समस्त सत् पदार्थों का जाननहार होता है। तो समस्त सत्को जान लिया इससे प्रभुकी परिणतिकी उपादेयता न समझिये, किन्तु ऐसा जाननेके साथ अनत आनद रहता है, वीतरागतासे परम निराकुलता रहती है, उस निराकुलताका आदर्श है प्रभुके। ऐसे शुक्लध्यानको ध्यानेके लिए प्रथम सहनन वाला द्वादशागका वेदी पुण्यमयी चेष्टा वाला योगीश्वर पात्र होता है।

शुचिगुणयोगाच्छुक्ल कषायरजस क्षयादुपशमाद्वा।
वैदूर्यमणिशिखा इव सुनिर्मल निष्प्रकम्प न ॥२१२३॥

कषायके उपशम व क्षयसे ध्यानकी शुक्लता—आत्माके पवित्र गुणके सम्बधसे इस ध्यानका नाम शुक्ल पडा है। शुक्ल मायने सफेद। इस शब्दमे अनेक मर्म भरे हैं। लाग-लपेट रहित है भगवान। लाग तो हुआ विभाव और लपेट हुआ शरीर। प्रभुके अब शरीर भी नही रहा, ये विभाव भी नही रहे। तो जहाँ रागका अभाव होता है वहाँ आत्मामे पवित्रता उत्पन्न होती है और फिर जो कुछ उसके ज्ञानमे आता है वह उसका शुक्लध्यान होता है। यह

शुक्लध्यान क्योकि क्षय और उपशम दोनो प्रकारसे प्रकट होता है। जो चारित्र मोहनीयका उपशम प्रारम्भ करता है वह उपशम श्रेणीमे चढता है और जो क्षय प्रारम्भ करता है वह क्षपक श्रेणीमे चढता है। चारित्र मोहके उपशमसे भी व क्षयसे भी शुक्लध्यान होता है। किंतु उपशमसे पृथक्त्ववितर्क विचार नामका प्रथम शुक्लध्यान ही हो सकता है इससे आगे नही, और चारित्र मोहके क्षयकी श्रेणीसे चारो शुक्ल होते है। वह शुक्लध्यान निर्मल है और निष्कम्प है, वह समय धन्य है जिस समय आत्माका उपयोग अपने आत्मामे ही निश्चल होकर ठहर जाय। नीरग निस्तरग कोई प्रकारकी जहाँ बाधा नही, विकल्प नही। जो थोडी ही देर मे संसारसे पार हो जायगा ऐसा समय, ऐसा सुयोग, ऐसी परिस्थिति जिन्हे प्राप्त हुई है वे वंदनीक हैं। जिसे कोई लोग असम्प्रज्ञातसमाधि कहते है। निर्विकल्प समाधि, जहाँ कोई कल्पना नही, जहा कोई वितर्क नही, विचार नही और अस्मिता रूपसे भी अनुभव नही, ऐसी उत्कृष्ट पवित्र प्रभुत्वकी स्थितिको असम्प्रज्ञातसमाधि कहते है। ये सब शुक्लध्यानकी स्थितियाँ है।

कषायमलविश्लेषात्प्रशमाद्वा प्रसूयते ।
यत पुसामतस्तज्ज्ञैः शुक्लमुक्त निरुक्तिकम् ॥२१२४॥

कषायके विश्लेष अथवा उपशमसे उत्पन्न हुए ध्यानकी शुक्लताका औचित्य—यह शुक्लध्यान कषायमलके विनाशसे उत्पन्न होता है अथवा कषायोके उपशमसे उत्पन्न होता है इस कारणसे जो तत्त्वके जानकार है ऐसे ऋषि सतोने इसका शुक्लध्यान नाम बहुत ही ठीक रखा है। शुक्ल नाम है श्वेतका, जहाँ कोई दाग लाग नही, ऐसी केवल एक जाननहारकी स्थिति वह है शुक्लध्यान। इस शुक्लध्यानके ४ भेद है—जिनका वर्णन आचार्यदेव स्वय इसी प्रकरणमे करेंगे। तो एक साधारण लक्षण जो सबमे घटित हो, जो अति शीघ्र विदित हो जाय उसके लिए यह शुक्ल शब्द बहुत उपयोगी है। श्रद्धाकी बहुत बडी महत्ता है शिव-पथमे बढनेके लिए। जो इस शुक्लध्यानको प्राप्त करते है उनकी श्रद्धा आत्मतत्त्वके विषयमे निष्प्रकम्प रहती है तब यह ध्यान रहता है। यदि श्रद्धा डावाडोल है, कुछ लगे और जगह तो ऐसे पुरुषोको ऐसे ध्यानकी स्थितियाँ प्राप्त नही हो सकती। मै आत्मा ज्ञानमात्र हू और केवल ज्ञानस्वरूपके रूपमे ही अपने आपको निरखना, परखना, अनुभवना यह अन्तःप्रयोग चलता है जिसके प्रतापसे ऐसा विशिष्ट ध्यान प्राप्त करते है।

उपसर्गविजयकी कुञ्जी—आश्चर्य होता होगा लौकिक जनोको कि कैसे सुकुमालने उन विकट परीषहोंको सहा, तीन दिन तक स्यालिनी खून चाटती रही, पैर खाती रही लेकिन सुकुमाल फिर भी ध्यानसे विचलित नही हुए। सुकुमाल, सुकौशल, राजकुमार आदि अनेक मुनि ऐसे हुए जिनपर बडे-बडे उपसर्ग ढाये गए, फिर भी वे अपने ध्यानसे विचलित नही हुए।

अनेक मुनि तो ऐसे हुए जो कोल्हूमे पेल दिए गए अथवा उपलोका घर बनाकर उनके अन्दर बद कर जला दिए गए, फिर भी वे अपने आत्मध्यानसे रच भी चलित नही हुए। तो उन्होंने अपने भीतरकी कोई ऐसी कुञ्जी पा ली थी कि जिससे वे ऐसे उपद्रवोमे भी रच भी विचलित नही हुए। कितना उत्कृष्ट भेदविज्ञान और कितना उत्कृष्ट स्वरूपका अनुभवन कि जिसके प्रतापसे यह भी स्थिति बनी जो उन्हे विदित भी नही रहा कि यहाँ कोई खा भी रहा है, आग भी जला रहा है, और कदाचित् विदित भी हो तो यो जानो जैसे कोई बाहर ही ईंधन मे आग लग रही हो, यह शरीर भी बाह्य ईंधन है, आत्मा तो जलता नही, गलता नही। यह बात सहसा सुनकर तो यो लगता है कि यह तो कहनेकी बात है और शास्त्रोमे लिखी बात है। चलो ऐसा ही सही, पर जिस बातको सुनते ही आनन्द उत्पन्न होता है वह बात किसीकी करनीमें आ जाय तो उसके आनदका कौन टिकाना ? मै ज्ञानमात्र हू, केवल ज्ञान-प्रकाश ज्ञानज्योतिमात्र मैं हू ऐसा जिसके अनुभवन चलता है, वह अनुभव है उपसर्गविजयकी कुञ्जी। उपसर्ग क्या चीज है, हो रहा है बाहरमे। जहाँ जो परिणति होती है वह उसके अपने स्वरूपमे उस काल है।

परम नि.संगताके यत्नकी आवश्यकता—हम आप सब इस बातका यत्न करें कि ऐसा हम मनन करते रहे कि मैं सबसे निराला केवल ज्ञान प्रकाशमात्र हू। बात सही है तब कही जा रही है, और जिसको कोई भी विवेकी पुरष अपने अत प्रयोग द्वारा समझ सकता है और फिर जिसे यहाँके समागमोमे राग न रहा हो, लोगोका लगाव न लगा हो, नाम, यश, पोजीशन, ये सब जिसके कलक दूर हो गए हो ऐसे पुरुषको मरनेका कुछ दु.ख नही है। वह तो जानता है कि मेरा मरण कहाँ, मैं तो इस जगहको छोडकर दूसरी जगह जा रहा हू, मेरा जो वैभव है वह तो मैं साथ लिए जा रहा हू, जो मेरा वैभव है वह मुझसे कभी छूट नही सकता। मेरा वैभव तो जहा मैं होऊँगा वहाँ ही रहेगा। कितना बलिदान है उसका कि जब परिचित दुनियाका उसने मोह छोडा, छूट गया सब, धनका, नामवरीका, परिजनका सबका मोह छूट गया, केवल एक ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वकी ही उसको धुनि है, मैं इतना ही हू, और अन्य सर्व परपदार्थोंको तो मैं जानता ही नहीं, यहा कोई मुझे जानने वाला भी नही, मैं तो अपने अन्त.स्वरूपको ही समझ रहा हू, उसे ही जान रहा हू, यही मेरी दुनिया है, आनद यही, मेरा निजी घर भी यही। मोही जन तो महलोकी चिन्तायें करते है, ऐसा अच्छा मकान होना चाहिए, ऐसे ढगसे रहना चाहिए, पर आत्माका निजी घर कितना है, जिसमे कोई पिण्ड नही, जिसमे रूप, रस, गध, स्पर्श नही, जिसको कोई छू नही सकता, छेड नही सकता, रच भी बाधा नही पहुचा सकता, ऐसे अमूर्त प्रदेशोसे जिसकी रचना है ऐसा निज घर है, जिसमे मैं बस रहा हू, और जब चलूगा यहासे तो पूरा अपना घर साथ लिए जाऊँगा।

वह मेरा घर कभी मेरेसे छूटता नही। दुःख किस बातका ? अपने आपके इस ज्ञानस्वरूपमे ऐसी दृष्टि खचित हो जाना, यह है इस जीवनकी सफलताका काम। यह जिन्होने पाया उनका जीवन सफल है, और इस निज मर्मको जो नही पा सके वे कितना ही अपना यहा प्रचार प्रसार कर ले किन्तु उनको लाभ कुछ भी नही है। यो शुक्लध्यानके प्रकरणमे ऐसे विशुद्ध आत्माका वर्णन आ रहा है।

छद्मस्थयोगिनामाद्ये द्वे तु शुक्ले प्रकीर्त्तिते।
द्वे त्वन्त्ये क्षीणदोषाणा केवलज्ञानचक्षुषाम् ॥२१२५॥

आद्य दो शुक्लध्यान और उनके स्वामी—शुक्लध्यान ऐसी स्थितिका नाम है कि जहा मन चलायमान नही, मन अन्तर्मुख है, विकल्पोका विलास नही, ऐसे विशुद्ध अत्यन्त एकाग्र उपयोगका नाम शुक्लध्यान है। यह शुक्लध्यान श्रेणीमे रहने वाले मुनीश्वरोके होता है। शुक्लध्यानके चार भेद कहे है। जिनका नाम है—पृथक्त्ववितर्कवीचार एकत्ववितर्क अवीचार, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति, व्युपरतक्रियानिवृत्ति। इनमेसे आदिके दो शुक्लध्यान छद्मस्थ योगियोके होता है। केवलज्ञानसे पहिलेकी श्रेणियोके दो शुक्लध्यान होते हैं। पृथक्त्ववितर्कवीचारमे क्या होता है इसको आगे स्पष्ट करेंगे, पर साधारणतया ऐसा भाव समझ ले कि जहा रागकी प्रेरणाके बिना तो ध्यान हो रहा है, पर जिस किसी भी पदार्थका ध्यान कर रहे है उस ही मे नही ठहर पाते। बदल बदलकर पदार्थोंका ध्यान इसमे हुआ करता है, और एकत्ववितर्कअवीचारका अर्थ है कि जिस पदार्थमे ध्यान जमा उस ही का ध्यान स्थिरता से रहता है और उस ही स्थितिके बाद एकदम केवलज्ञान हो जाता है। पृथक्त्ववितर्कवीचार ८वे गुणस्थानसे ११वे गुणस्थान तक और थोडे समयको १२वें गुणस्थानमे होता है। इसके बाद जब एक ही पदार्थको ज्ञेय रखकर ध्यानकी एकाग्रता होती है तब वह भी सकल प्रत्यक्ष के द्वारा ज्ञात रहेगा और सारे विश्वके एक पदार्थ भी ज्ञात हो जायेंगे, ऐसा केवलज्ञान प्रकट होता है।

अन्तिम दो शुक्लध्यानके स्वामी—छद्मस्थयोगियोकें आदिके दो शुक्लध्यान होते है, और जो पुरुष क्षीण दोष हैं, रागादिक जिनके दूर हो चुके है, केवल ज्ञाननेत्र प्रकट हो गया है उनमे अन्तिम दो शुक्लध्यान होते है। यद्यपि भगवानके ध्यानकी कोई आवश्यकता नही है तथापि ध्यानका फल है कर्मोका निर्जरा होना, और यह काम वहा भी देखा जाता है, जो कुछ कर्म शेष रहे है उनको निर्जरा होती है अतएव ध्यान शब्दसे कह देते है—पर जो न सज्ञी है, न असज्ञी है, केवलज्ञानके द्वारा समस्त विश्वको जानते है उनका मन भी कहा है ? मनको अब किस तरफ रोकनेका वे काम करें ? एक ओर चित्तके निरोधका नाम ध्यान कहा है। तो ध्यानका लक्षण घटित न होनेपर भी ध्यानका काम देखा जाता है, फल देखा जाता है,

इससे केवली भगवानके भी दो ध्यान कहे गए है ।

श्रुतज्ञानार्थसम्बन्धाच्छ्रुतालम्बनपूर्वके ।
पूर्वे परे जिनेन्द्रस्य नि शेषालम्बनच्युते ॥२१२६॥

शुक्लध्यानके पद—पहिलेके दो शुक्लध्यानोका सम्बध श्रुतज्ञानसे है क्योकि १२वें गुणस्थान तक श्रुतज्ञान रहता है और वहा जो कुछ भी चिन्तन चलता है वह श्रुतज्ञानार्थके सम्बधसे और श्रुतज्ञानके आलम्बनपूर्वक चलता है, परन्तु जिनेन्द्र देवके, अरहत भगवानके जो शुक्लध्यान होता है वह समस्त आलम्बन सहित होता है अर्थात् वहा श्रुतज्ञानका आलम्बन नही है, जिस केवलज्ञानका अभ्युदय हुआ है उस ही के सम्बधमे होता है । यह बात ससारके आखिरीकी चल रही है । जिनका ससार समाप्त हो जाने वाला है ऐसे योगीश्वरोके किस प्रकारके परिणमन होते है, उनकी यह चर्चा है । इस शुक्लध्यानका सकेत अन्य दार्शनिक भी करते है अपने शब्दोमे । जिसे वितर्कानुगतसमाधि, विचारानुगतसमाधि, अस्मिदानुगतसमाधि, आनदानुगत समाधि व असप्रज्ञातसमाधि कहते हैं । उन्होंने भी ध्यानके पाच पद तके है । जहां तर्क वितर्क का निर्णय रखते हुए ध्यान चले, समाधि बने, वह वितर्कानुगतसमाधि है । दूसरी समाधि है विचारानुगतसमाधि । जहा नाना तरहके तर्क वितर्क तो दूर हो गए पर एक विचार बन रहा है दृढ. उसमे प्राप्त जो समाधि है वह विचारानुगतसमाधि है । तीसरी है अस्मिदानुगतसमाधि । जहा न वितर्क रहा, न विचार रहा, केवल एक अस्मिका अनुभव है—यह मैं हू, इस प्रकार अह प्रत्ययमे लगा हुआ जो ध्यान है वह अस्मिदानुगतसमाधि है । इसके बाद चौथे नबरकी समाधि है—आनदानुगतसमाधि जहा अस्मिका भी भाव छूट गया, केवल एक आनदका ही अनुभव रहा, जहा लौकिक ज्ञान ही नही रहा ऐसी समाधिको आनदानुगत समाधि कहते है । जहा किसी प्रकारका ज्ञानविकल्प न हो, उसे असम्प्रज्ञातसमाधि कहते हैं । यो उत्तरोत्तर प्रकर्षताके ये भेद हैं, किन्तु इसमे आप यह पायेंगे कि कई समाधि तो धर्मध्यानमे शामिल हैं । जहा तर्क वितर्कका, विचारका निर्णय हो वह तो धर्मध्यानकी दशा है, जहां निर्णयकी बात तो नही होती किन्तु एक पदार्थके ज्ञानकी ओर ध्यानकी ही बात होती है, जहा रागकी रच प्रेरणा नही है उसे शुक्लध्यान कहते है । तो इसमे प्रथम दो शुक्लध्यान तो श्रुतज्ञानसे सम्बध रखते है और अन्तिम दो शुक्लध्यान केवलज्ञानके साथ होते है, उनका श्रुतज्ञानसे सम्बध नही ।

सवितर्कं सवीचार सपृथक्त्व च कीर्त्तितम् ।
शुक्लमाद्य द्वितीयं तु विपर्यस्तमतोऽपरम् ॥२१२७॥

प्रथम शुक्लध्यानका स्वरूप—प्रथम दो शुक्लध्यानोमे से पहिले शुक्लध्यानमे तो

वितर्क है और वीचार है अर्थात् विषय बदलकर जो ज्ञानमे आ रहा है, ध्यानमे जो तत्त्व चल रहा है उसे बदल-बदलकर और अपने भोगोसे भी बदलकर जो ज्ञानमे आ रहा है, ध्यानमे जो तत्त्व चल रहा है उसे भी अनेकशः बदल-बदलकर और अपने योगोको भी बदलकर ध्यान किया जाता है। अभी पुद्गल तत्त्वका ध्यान किया जा रहा था, अब आकाश तत्त्वका ध्यान चल रहा है, यो अनेक परिवर्तन पृथवत्ववितर्कवीचारमे होते है किन्तु एकत्ववितर्कअवीचारमे यह परिवर्तन नही है। यह परिवर्तन इस बातको सिद्ध करता है कि अभी रागाश है। रागांश के उपशम क्षयके बाद भी उपशान्त मोहमे प्रथम शुक्लध्यान रहता है वह पूर्व कर्मोका वेग है। यद्यपि उस रागका क्रियात्मक प्रयोग नही किया जा रहा है किन्तु पहिले सस्कार वासना से इस ज्ञप्तिमे भी निश्चिन्तता नही हो सकी है, अतएव नाना विषय इसमे बदलते रहते है। यह पृथक्त्ववितर्कवीचार ८वें गुणस्थानसे ११वें गुणस्थान तक कहा है और १२वें गुणस्थान के प्रारम्भमे भी थोडे समयमात्र रह सकता है।

सवितर्कमवीचारमेकत्वपदलाञ्छितम् ।
कीर्तित मुनिभि शुक्ल द्वितीयमतिनिर्मलम् ॥२१२८॥

एकत्ववितर्क अवीचार शुक्लध्यानका स्वरूप—अब दूसरा शुक्लध्यान वितर्क सहित है, श्रुतज्ञानका तो आलम्बन है, परन्तु उसमे परिवर्तन नही है। जिस तत्त्वका ध्यान किया था उस ही तत्त्वके ध्यानमे रहता है तब तक भी यह शुक्लध्यान है अर्थात् केवलज्ञान न उत्पन्न हो जाय। उससे पहिले ध्यानकी बात इस दूसरे शुक्लध्यानमे नही होती, इसलिए इसका नाम मुनि-जनोने एकत्ववितर्क अवीचार रखा है। एक ही पदार्थमे श्रुतज्ञानको लगाये रहना उसमे वीचार न बने, परिवर्तन न बने, ऐसा ध्यान अत्यन्त निर्मल होता है। यहाँ वीचारका अर्थ परिवर्तन है, विचार करना नही कि एक वीचार सहित है और एक वीचार रहित है; किन्तु प्रथम शुक्लध्यानमे तो इतनी कमी है कि वहाँ परिवर्तन चलता रहता है। इस द्वितीय शुक्लध्यानमे अर्थात् एकत्ववितर्क अवीचारमे ऐसी दृढता है कि ज्ञेय पदार्थको बदलनेका वहाँ काम नही, किन्तु ध्यान किया और उसके पश्चात् केवलज्ञान हो जाता है।

सूक्ष्मक्रियाप्रतीपाति तृतीय सार्थनामकम् ।
समुच्छिन्नक्रिय ध्यान तुर्यमार्यैर्निवेदितम् ॥२१२९॥

प्रभुका तृतीय और चतुर्थ शुक्लध्यान—तीसरे शुक्लध्यानका नाम है सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति। १२वें गुणस्थानमे अर्थात् अरहत भगवानके पहिले तो बहुतसे योग रहते है, वे विहार करते है, उनकी दिव्यध्वनि खिरती है, तो बहुत लम्बे चौडे योग चलते है। इसके बाद जैसा

कि पुराणोमे वर्णन आया कि अमुक तीर्थंकरने मुक्तिमे जानेसे एक माह पहिले योगनिरोध किया, उसका अर्थ योगनिरोधसे नही है किन्तु मोटे जो योग चलते थे—विहार करना, दिव्यध्वनि खिरना ये नही रहते है, किन्तु आत्मामे तो प्रदेशोका कम्पन अब भी है, आखिरी अन्तर्मुहूर्तोमे, वादरवचनयोग, वादरमनोयोग, वादरकाययोग, सूक्ष्म वचनयोग, सूक्ष्म मनोयोग का क्रमशः निरोध होता है, फिर केवल सूक्ष्म काययोग रहनेकी दशामे सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यान होता है। जो सूक्ष्मक्रिया योग सहित है किन्तु अप्रतिपाती है, जिसकी अब परमनि सग अवस्था होनी है, यह तृतीय शुक्लध्यान है। वह केवली भगवानके अन्तिम क्षणोमे होता है। भगवान करोडो वर्षों तक भी अरहत अवस्थामे रहते है। जितनी आयु शेष रह गयी केवलज्ञान उत्पन्न होनेके बाद वह उतने समय तक अरहत अवस्थामे रहता है। पर यह तृतीय शुक्लध्यान इस समस्त जीवनमे न होगा, किन्तु सयोगकेवलीके अन्तिम अन्तर्मुहूर्तमे होगा। चौथा शुक्लध्यान है समुच्छिन्नक्रिय, जहाँ समस्त काययोग नष्ट हो गए हैं, कोई क्रिया नही रहती है, परमनिष्क्रिय दशा है, आत्मप्रदेशोमे किसी भी प्रकारका हलन-चलन कम्पन नही है, ऐसी स्थितिमे कहलाती है व्युपरतक्रिय अर्थात् समुच्छन्नक्रिय। यह चौथा शुक्लध्यान है।

भगवत्स्वरूपके बाह्य चमत्कारकी भी यथार्थता—समुच्छिन्नक्रियके पश्चात् फिर भगवानके शरीरका त्रियोग होता है, शरीरके अणु कपूरकी तरह उड जाते हैं, देह नही पडा रहता है। जैसे मुनिराजका देह मरण होनेपर यही पडा रह जाता है, इस प्रकारसे भगवानका देह पडा हुआ न मिलेगा। देखिये—कितनी यथार्थतासे निरूपण है ? परमवीतरागता जहाँ प्रकट हुई है, वे प्रभु आहार करें, कही तो कितना अटपटा सा लगे, और जब निर्वाण होता है, आयु समाप्त होती है उस समय यह शरीर मृतक पडा रहे तो यह भी एक भगवत्ताके कायदे से फिट नही बैठता है। प्रभुका शरीर कपूरवत् उड जाता है। केवल नख और केश रहते है, वे भी क्यो रहते हैं कि जितने नख इन अगुलियोसे बाहर निकले हुए हैं उन नखोमे आत्मप्रदेश नही है और जो केशोका ऊपरी भाग है वहाँ भी आत्मप्रदेश नही हैं, जहाँ आत्मप्रदेशो का सम्बध नही है वह तो बाहरी जड पदार्थोकी तरह है। उनसे जब आत्माका सम्बध ही नही तो वे कैसे उड जायें ? तब उन नख और केशोको इन्द्र आकर उठा ले जाता है और भक्तिपूर्वक उन्हे क्षीरसागरमे सिरवा देता है, ऐसा वर्णन आया है। तो देखिये—यह मनुष्य शरीर ढाईद्वीपके बाहर नही जा सकता। लेकिन क्षीर समुद्र तो ५वें द्वीपके बादका समुद्र है, ढाई द्वीपसे कितनी ही दूर है, वहाँ नख और केश चले जा सकते है। कारण यह है कि नख और केश शरीरके अग नही है, वे जड है और शरीरके मल है। तो समुच्छिन्नक्रिय निष्कम्प अवस्थाके बाद भगवानका निर्वाण होता है। यो अरहत अवस्थामे ये दो शुक्लध्यान बताये

गए है ।

तत्र त्रियोगिनामाद्य द्वितीय त्वैकयोगिनाम् ।
तृतीयं तनुयोगाना स्यात्तुरीयमयोगिनाम् ।।२१३०।।

योगकी अपेक्षा शुक्लध्यानका निरूपण---अब योगकी अपेक्षा इन शुक्लध्यानोका वर्णन करते है । योग तीन प्रकारके होते है—मनोयोग, वचनयोग और काययोग । मनके कारणसे आत्मप्रदेशोके हिलनेका नाम है मनोयोग । वचन प्रवृत्तियोके कारणसे आत्मप्रदेशोके हिलनेका नाम है वचनयोग और कायकी प्रवृत्तियोसे आत्मप्रदेशोके हिलनेका नाम है काय-योग । प्रथम शुक्लध्यान इन तीनो योग वाले मुनियोके होता है और उस प्रथम शुक्लध्यानके समयमे यह योग बदलता रहता है । अब मनोयोगमे रहते हुए ध्यान चल रहा है तो अब वचनयोग हो गया अथवा काययोग हो गया । इस तरह ये योग बदलते रहते है । यो प्रथम शुक्लध्यान त्रियोगी योगियोके होता है । दूसरा शुक्लध्यान एक योग वालेके होता है । अब वह कोईसा भी योग हो, नियम नही है १२वें गुणस्थानमे जबकि एक ही किसी पदार्थके ध्यानमे एकाग्रता हुई है तो पदार्थ भी ध्यानमे एक है और जिस योगमे रहकर ध्यान बना है वही योग रहेगा उस द्वितीय शुक्लध्यान तक । तो दूसरा शुक्लध्यान जो कि परिवर्तन रहित है वह एक योग वाले योगीश्वरके होता है । तीसरा शुक्लध्यान सूक्ष्म काययोग वाले जीवोके होता है । ऐसी है सयोगकेवलीकी अन्तिम अवस्था, जहाँ केवल सूक्ष्म काययोग रह जाता है उस ही समय सयोगकेवली भगवानमे सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाती ध्यान होता है, और चौथा ध्यान अयोगियोंके होता है । अयोगकेवली जिनके योग नही है ऐसे भगवानके सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ध्यान होता है । एक परिणति बतायी गई है कि १४वें गुणस्थानमे कोई क्रिया नही है, समस्त योग नष्ट हो गए है, इसके प्रसादसे वहाँ कर्मोंकी निर्जरा चलती है अतएव ध्यान कह लिया गया है ।

पृथक्त्वेन वितर्कस्य वीचारो यत्र विद्यते ।
सवितर्कं सवीचार सपृथक्त्व तदिष्यते ।।२१३१।।

पृथक्त्ववितर्कवीचारका शाब्दिक लक्षण---अब प्रथम शुक्लध्यानका स्वरूप कुछ स्पष्ट शब्दोमे बतला रहे है कि जिस ध्यानमे पृथक्-पृथक् रूपसे वितर्क हो, श्रुतका परिवर्तन हो, जिसमे अलग-अलग श्रुतज्ञान बदलते रहे, जिस एक ध्यानमे नाना ज्ञान चलते रहे, ज्ञानके विषय भी बदलते रहे उस ध्यानको सवितर्कसवीचारसपृथक्त्व ध्यान कहते है । विषय अलग अलग, ज्ञान भी अनेक और योग भी अनेक चलते है । वे शब्द भी बदले जा रहे है, जिन अन्तर्जल्पोसे अभी ध्यान किया जा रहा था, अब वे अन्तर्जल्प न रहकर दूसरे अन्तर्जल्पोसे ध्यान चलता है । यो प्रथम शुक्लध्यानको पृथक्त्ववितर्कवीचार बताया गया है ।

अवीचारो वितर्कस्य तत्रैकत्वेन सस्थित ।
सवितर्कमवीचारं तदेकत्व विदुर्बुधा ॥२१३२॥

एकत्ववितर्क अवीचारका शाब्दिक लक्षण—जिस ध्यानमे वीचार नही होता, जो एक रूपसे रहता है, जिस तत्त्वको ध्यानमे लिया है, जिस योगमे रहकर वह ध्यान जमाया है, न तो तत्त्व बदले, न योग बदले, इस प्रकार अर्थके न बदलनेसे, योगके न बदलनेसे तथा जिन अन्तर्जल्पोंसे जो कि अत्यन्त सूक्ष्म है, ध्यान किया जा रहा है, उन शब्दोके भी न बदलनेसे ऐसे एक भावको लिए हुए ध्यान होनेको एकत्ववितर्कअवीचार शुक्लध्यान कहते है। इस ध्यानमे ऐसी सामर्थ्य है कि इसके बाद नियमसे केवलज्ञान उत्पन्न होता है। यो शुक्लध्यान के वर्णनमे दो शुक्लध्यानोका स्वरूप कहा है, अब शेष आगे कहेगे।

पृथक्त्व तत्र नानात्व वितर्कः श्रुतमुच्यते ।
अर्थव्यञ्जनयोगानां वीचार सक्रम स्मृतः ॥२१३३॥

पृथक्त्ववितर्कवीचारका स्वरूप—जब योगी ध्यानी मुनिके विशिष्ट समाधिके बलसे रागप्रक्रिया रुक जाती है तब उस आत्मामे ज्ञान और ध्यानकी कैसी स्थिति चलती है, उस समयका यहाँ वर्णन है। जिस योगीने अपने जीवनका वहुभाग तत्त्वनिर्णयमे बताया है और तत्त्वनिर्णय करके जो उपादेय निज कारणसमयसार अथवा शुद्ध स्वभावकी उपासनामे विताया है, धर्मध्यानमे वहुभाग समय वितानेपर जब रागप्रकृति रुक जाती है और सप्तम गुणस्थानको पार करके जब श्रेणीमे प्रवेश होता है उस समय उस ध्यानी मुनिके राग व्यवहारके बिना उसके ज्ञानकी किस किस प्रकारसे स्थिति बनती है, उसका वर्णन है। तो सर्वप्रथम ध्यान चल तो रहा है शुक्लध्यान अर्थात् रागद्वेषरहित, किन्तु पूर्वमे ऐसा सस्कार था जिससे ज्ञानविषयोको बदल-बदलकर जानता रहता था। किसी एक पदार्थपर ध्यानमे चित्त जमा ही नही रहा करता था। उस सस्कारसे कहो अथवा कुछ अशोमे अभी रागाश है जिसका कि प्रक्रियारूपमे तो उदय नही है, काम नही है फिर भी कुछ उदय है, इस कारण ज्ञप्ति परिवर्तन होता रहता है। वहाँ नाना पदार्थोंका ज्ञान चलता है, श्रुतज्ञानके आलम्बनसे चलता है, ज्ञानमे पदार्थ बदलता रहता है और जिन शब्दोसे ध्यान किया जा रहा है यद्यपि वे शब्द प्रकट रूपमे नही है, भीतर ही अन्तर्जल्पको लिए हुए हैं, तो जिन शब्दोसे ध्यान जग रहा है वे शब्द भी बदलते जाते है और जिन योगोंमे रहकर ध्यान चलता रहा है वह योग भी बदल जाता है। मनका योग, वचनका योग, कायका योग ऐसी अस्थिरता तो है किन्तु राग भाव करे और किसी ओर हर्ष विषादका परिणाम आये, विकल्प आये, यह बात रच मात्र भी नही होती। ऐसा विशिष्ट पृथक्त्ववितर्कवीचार नामक प्रथम शुक्लध्यान है।

अर्थादर्थान्तरापत्तिरर्थसंक्रान्तिरिष्यते ।
ज्ञेया व्यञ्जनसंक्रान्तिर्व्यञ्जनाद्व्यञ्जने स्थिति ॥२१३४॥
स्यादियं योगसंक्रान्तिर्योगाद्योगान्तरे गतिः ।
विशुद्ध यानसामर्थ्यात्क्षीणमोहस्य योगिनः ॥२१३५॥

संक्रान्तियाँ और वर्तमानपदमें अपना कर्तव्य—जिन योगियोने अपने ज्ञानध्यानका विषयमात्र परमपावन ज्ञानस्वभाव ही बनाया है उनका आत्मा कितना पवित्र है और उन पवित्र आत्मावोकी जो उपासनामे रहते है वे भक्त जन भी पवित्र हो जाते हैं। ऐसे ये योगीश्वर पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यानमे चलते है, एक पदार्थसे बदलकर दूसरे पदार्थका ज्ञान करने लगते हैं। करें ज्ञान। अब ये इतने कुशल हैं इतने अपने ब्रह्मस्वरूपके निवासी है कि कितना भी ज्ञान बदलता रहे, पर परिणामोमे विचलितता नही हो सकती। यह बात शुक्लध्यानकी है। हम आप लोगोको तो यत्न कर करके बाह्य पदार्थोंसे हट-हटकर एक विशुद्ध ध्रुव निज ज्ञानस्वभावकी उपासनाका यत्न करना चाहिए, क्योकि हम आपकी बुद्धि व्यभिचारिणी है यो कहो, अर्थात् यह बुद्धि कभी कही लगती, कभी कही। किसी एक पदार्थमे स्थिरतासे यह बुद्धि नही ठहरती। तो इस बुद्धिको सयत करनेका उपदेश दिया गया है कि तुम सर्व ओरसे बुद्धि हटाकर एक निजतत्त्वमे ही लगावो, लेकिन जो निजतत्त्वकी उपासनासे ब्रह्मस्वरूपका स्वसम्वेदन चिन्तन करता है ऐसे पुरुषके ज्ञानमे कुछ भी पदार्थ आये, वे सब उनकी शुक्लताको ही रखते है। तो वहाँ एक पदार्थसे दूसरे पदार्थका बदलना होता है यह तो है अर्थसक्रान्ति। किन्ही शब्दोसे ध्यान कर रहे थे, अब बदलकर किन्ही शब्दोसे ध्यान करने लगे हैं, यह है व्यञ्जनसक्रान्ति, और मनोयोगी बनकर ध्यान कर रहे थे—यह वचनयोगी बन गया अथवा काययोगी बन गया, इस प्रकार योगोका परिवर्तन होता है, यह है योगसक्रान्ति। इस विशुद्ध ध्यानकी सामर्थ्यसे जब मोह क्षीण हो जाता है तब उस योगकी यह अदल-बदल भी समाप्त होती है और उसके बाद थोडे ही समयमे केवलज्ञानका उदय हो जाता है।

अन्तर्जल्पकी गहराई—देखिये—हम कितना ही मौन रख लें तिसपर भी भीतरमे अनेक प्रकारकी गुत्थियाँ चलती रहती है, और वे जो कुछ भी विचार चलते है वे पूरे वाक्य बोल बोलकर चल रहे है, फिर थोडासा एक मनपर काबू होता है, अपने अतर्वचनोपर सयम होता है तो इतना बडा सेन्टेन्स तो चाहे न बोला जाय एक कल्पनामे जैसे कि किसी चीजके प्रोग्राम चलते हैं, फिर भी कुछ भी ज्ञान होता है तो उस ज्ञानके साथ वे शब्द बीधे बीधे फिरते हैं। जैसे आँखें खोलकर देखा कि यह भीत है तो भीतरमे यह भीत है—इन शब्दोका उदय हो जाता है। तो इस पकार उस श्रेणीकी स्थितिमे भी, जिसकी हम अपने अतर्जल्पोसे तुलना तो

नही दे सकते, इतना तो बहुत गडवड अन्तर्जल्प है, एक विराटरूपको लिए हुए है, किन्तु उनका वह सूक्ष्म ज्ञान, सूक्ष्म ध्यान वह भी कुछ न कुछ अतर्जल्प अथवा सूक्ष्म कुछ भी वचनो की परम्पराको लिए हुए चलता है। कुछ समय तक उस श्रेणीमे रहने वाले योगीश्वरोका ध्यान भी वचनोको बदल-वदलकर चलता रहता है। किन्तु वहा ध्यानकी सतति रहा करती है, अतएव वह ध्यान एक ध्यान है, क्योकि एक ध्यानमे अनेक ज्ञान चलते रहते है।

अर्थादर्थं वच शब्द योगाद्योग समाश्रयेत्।
पर्यायादपि पर्याय द्रव्याणोश्चिन्तयेदणुम ।।२१३६।।

संक्रान्तिमे अबुद्धिपूर्वक समाश्रयण—एक पदार्थसे दूसरे पदार्थपर ज्ञान पहुचे। एक शब्दसे दूसरे शब्दमे ध्यान जमाना, एक योगसे दूसरे योगमे रहकर ध्यान बनाना, एक पर्याय से हटकर दूसरी पर्यायका ध्यान बनाना और किसी भी द्रव्यसे हटकर किसी भी अणुका ध्यान जमाना, इस प्रकार द्रव्यसे द्रव्यान्तर, पर्यायसे पर्यायान्तर, अर्थसे अर्थान्तर, वचनोंसे वचनान्तर, योगसे योगान्तर, इतने परिवर्तन उनके सहज होते रहते है। वे कुछ थक जानेके कारण उसे बदलते हो, यह बात नही है। जैसे यहा हम आप किसी चीजका ज्ञान करने लगे तो थक जाते है, कोई कठिन तत्त्वकी बात सुनने लगे दो एक जनोसे तो वे थक करके कोई एक ऐसी बात पूछ देंगे कि वह विषय ही बदल जाय, और हमारे मनकी थकान मिट जाय, ऐसी थकान शुक्लध्यानीके नही होती है, जिस थकानके कारण वह तत्त्वचिन्तनमे पदार्थको बदले किन्तु वहा एक ज्ञप्तिकी अपूर्ण अवस्था होनेके कारण यह परिवर्तन चलता है।

अर्थादिषु यथा ध्यानी सक्रामत्यविलम्बितम्।
पुनर्व्यावर्त्तते तेन प्रकारेण स हि स्वयम् ।।२१३७।।

योगीका प्रथम शुक्लध्यानमे ज्ञेयादिव्यावर्तन—जो ध्यानी अर्थव्यञ्जन आदि योगोमे जैसे शीघ्रतासे सक्रमण करता है वह ध्यानी अपने आप पुन उसी प्रकारसे लौटता है। जैसे बहुत हल्के गर्म जलमे, जब कि उस जलके ऊपर कुछ बिंदु नही आ पाती, जब जल गर्म होता है, तो उसके ऊपर कुछ चनेसे, बताशे से झलक उठते है ना, तो जब जल अति साधारण गर्म हो कि उस जलके ऊपर कोई बिन्दु नही उठता, कोई बहान नही होता, फिर भी आप देखो–उस जलके अन्दर ही अन्दर कुछ बिन्दुवे चलने लगती हैं, उसके बाद फिर अधिक गर्म होनेपर उसका रूप कुछ बडा होता है और ऊपर कुछ सरसोंके दाने बराबर बिन्दुवे उत्पन्न होने लगती है। तो जैसे गुनगुने जलमे भीतर ही भीतर बिन्दुवोका सचरण होता है, ऊपर भी चलता है, लौट भी आता है, बहुत गर्म जलमे तो जो बिन्दु ऊपर जाते है वे लौटते नही है, वे ऊपर मुह बा करके अपना अस्तित्त्व खो देते है, किन्तु उस कुनकुने जलमे अन्दरकी बिन्दुवे कुछ उठती भी है, कुछ उठकर लौट भी आती है, उनका सचरण यथा तथा भी होता है, यो

ही समझ लीजिए कि वहा संताप नही है आगका, अतएव कुछ एक मंद आगमे जहां सज्वलन कपाय अत्यन्त मंद है, सप्तम गुणस्थानसे भी अधिक मद है ऐसी स्थितिमे उनके अन्दर ही रागका मुख न बाकर स्वय सहज अर्थ योग वखन आदिकके सचरण चलते रहते है और वे स्वयं होते है। स्वय बदलना, स्वय लौटना, यह सब उनके ज्ञानमे चलता है। यह एक उस ऊँची समाधिकी बात चल रही है जबकि योगी अब अपना व्यवहार और ससारके लागलपेट से निवृत्त होने वाला है और कुछ ही कालमे केवलज्ञान प्राप्त करने वाला है, ऐसे ही वहा पृथक्त्ववितर्कवीचार नामक शुक्लध्यानमे पदार्थोके विज्ञानका परिवर्तन चलता है।

त्रियोगी पूर्वविद्य स्यादिद ध्यायत्यसौ मुनि ।
सवितर्क सवीचार सपृथक्त्वमतो मतम् ॥२१३८॥

सहजतत्त्वके दर्शनमें सहजभावकी सहजसिद्धि--जिसके तीनो योग होते है, जो पूर्व का जाननहार है ऐसे ज्ञानीके पहिले शुक्लध्यान होता है, तभीसे योग बदलेंगे। अगर एक एकत्वमे ही शुक्लध्यान हो तो उसके बदलनेका कोई कारण नही है, फिर तो द्वितीय शुक्लध्यानकी स्थिति होगी, जिसके बाद नियमसे केवलज्ञान होगा। आज कोई लोग सोचते होंगे कि विषय बडा कठिन है, क्या इतना कठिन विषय समझनेका परिश्रम हम न करेंगे तो मुक्ति का रास्ता ही न मिलेगा ? तो भाई यह सब कुछ जाननेमे तो कठिन चाहे लगे पर किए जाने मे कठिन नही है। जो भी योगी हो, चाहे वह अष्टप्रवचनमातृकाका ज्ञानी है, एक अपने निज परमात्मतत्त्वका ज्ञान होना तो अनिवार्य है। उसके बिना तो आगे गति चल नही सकती। व्याकरण, छद, ज्योतिष आदि अनेक पर्यायोका ज्ञान, अनेक शास्त्रोका ज्ञान ये चाहे न भी हो सकें, किन्तु प्रयोजनभूत जो एक निज शुद्ध आत्मतत्त्व है, सहज स्वभाव है, उसका परिचय होना तो अनिवार्य है, उसकी उपासनाके प्रतापसे ये सब बाते होती है, जिसकी समझ विना कठिन लग रहा है, और जिसका आलम्बन करना भी कुछ कठिनसा मालूम होता है, ये सारी की सारी कठिन बातें उनके सहज हो जाती है जो एक अपने विशुद्ध तत्त्वका निर्णय करके बस उसकी ही शरण गह लेते है।

आत्मनिधिकी श्रद्धामे निराकुलता----श्रद्धाकी बात है। जिसने अपने जीवनका कुछ लक्ष्य निर्णीत नही किया ऐसा पुरुष आकुलतावोंमे अपना जीवन व्यतीत करता है, और जिसका एक मात्र यही निर्णय है कि हम मनुष्य हुए हैं तो केवल इसलिए अपने सहजस्वरूप को जाने और उसके निकट अपना उपयोग बनाये रहें, क्योकि जगतमे कही मेरा कोई शरण नही है, मैं किससे स्नेह करूँ, यहाँ कौन मेरा रक्षक बन सकेगा ? वस्तुस्वरूप ही ऐसा है। तब फिर जो कुछ भी करना है वह अपने आपको ही करना पड़ेगा ऐसा समझकर जो अपना एक इसी प्रकारका लक्ष्य बनाता है उस व्यक्तिका जीवन आकुलतारहित व्यतीत होता है।

बहुत बडी जिम्मेदारी है यह अपने आपपर। थोडा मानो सम्पदा काफी मिल गई, खाने पीने पहिनने ओढनेके अच्छे साधन मिल गए, घरके लोग भी बडे प्रेमी मिल गए तो इतने मात्रमे सन्तुष्ट होकर जीवन गुजारनेमे कोई बुद्धिमानी नही है। बुद्धिमानी तो इसमे है कि अन्य बातो की परवाह न करें। कुछ भी आता है तो आये, जाता है तो जाये, उसमे क्या हर्ष विषाद करना? दशरथ महाराजके पुत्र श्री रामचन्द्र जी समस्त पब्लिकके आँखोंके तारे थे, जिन्हें राजगद्दी मिलनी थी, बडे वैभव और ऐश्वर्यमें जिनका जीवन था, वे क्षणमात्रमे वहाँसे कहाँ गए, जगलमे। उनके साथ क्या था? कुछ भी स्थितियाँ आयें—महत्ता तो इन बातमें है कि बाह्यमे कुछ भी होता हो उसकी परवाह न करे और अपने आपमें बसा हुआ जो विशुद्ध परमात्मतत्त्व है उसकी उपासना करे।

आत्मतत्त्वाश्रयके वैभवकी महत्ता—यह आत्मतत्त्व जब अपने निकट है तो परवाह करनेकी क्या जरूरत? जब अपना आत्मतत्त्व अपनी दृष्टिमें है, तो फिर बाहरका कोई भी उपद्रव क्या बिगाड कर सकेगा? उपद्रव तो मानते है ये ससारी अज्ञानी प्राणी। कुछ उदयवश सम्पदा ऐश्वर्य प्राप्त हो गयी तो उतनीसी ही बातपर ये अपने आत्महितके मार्गको खो देते हैं तो इसमे कौनसी बुद्धिमानी है? मिलता है तो ठीक है, चक्रवर्तीके भी तो पुण्यका उदय है, बडी बडी विभूतिया उनके समक्ष आती है। पर ज्ञानी चक्रवर्ती उन विभूतियोसे भी उदास रहता है, ये भोग विषयके साधन तो दु खके ही कारण हैं, इनमे क्या लुभाना? ऐसा वह ज्ञानी चक्रवर्ती समझता है। तो बहुत बडी जिम्मेदारी है अपने आपपर। अभीसे ही जिसकी जो आयु हो, इसी समयसे इस परमात्मतत्त्वके दर्शन करनेकी धुनि बनाये। उसकी ही उपासनासे ज्ञानी और विरक्त रहकर अपना जीवन सफल करे। अनेक जन्म पाये, बडी-बडी विभूतियाँ प्राप्त की होगी, पर आज उनका क्या रहा? इन सभी समागमोंसे आज इस जीवको मिल क्या रहा है? यो ही समझिये कि इस वर्तमानमे भी हमें मिलना ही क्या है?

उदारताकी प्रकृतिसे आत्मशृङ्गार—यह वैभव ठीक है, रहो, कमाना भी जरूरी है गृहस्थपदमे, ठीक है कमावो, पर समय आये तो उससे विरक्त होनेमे देर न लगे। ऐसा ज्ञान तो बना रहे। एक जौहरीकी लडकी किसी बडे घी बेचने वाले सेठके घर ब्याही गई। वह घी बेचने वाला भी धनी था और जौहरी भी धनी था। कुछ दिनोके बाद बहूने एक दिन घी के कारखानेकी ओर निगाह डाली तो देखा कि सेठ जी एक मक्खी उस घी की कडाहीके ऊपर पकडे हुए उसमे एक आध बूद लगा हुआ घी गिरा रहे हैं, तो इस दृश्यको देखकर उस बहूका होश उड गया, हाय मैं कैसे कजूसके घर आयी? कहते भी है लोग मक्खीचूस। उसका और अर्थ ही क्या है? सो उस बहूका सिर दर्द करने लगा। बीमार पड गई। सेठके पास खबर पहुची। आगे सेठ जी और पूछा कि क्या तकलीफ है? बहूने अपनी सिरदर्दकी तक-

लीफ बतायी । आखिर उस सेठने कई डाक्टरोसे दवा करवायी, बडा खर्च किया, पर उसका सिरदर्द न मिटा । मिटे कैसे ? वह तो दूसरे ही प्रकारका दर्द था । आखिर सेठ पूछता है— कहो बहू—तुम्हारे यह दर्द कभी और भी हुआ या नही ? तो बहूने बताया कि हाँ कभी-कभी हो जाता था । तो वह मिटता कैसे था ? मोतियोको पीसकर उसका मस्तकपर लेप करनेसे । तो सेठने झट दस हजार रुपये देकर आध पाव मोतियाँ मगायी और ज्यो ही उनको खुद ही पीसने चला तो बहू बोली—बस पिताजी आप इन्हे पीसे नही, मेरा सिरदर्द ठीक हो गया । अरे कैसे ठीक हो गया, जब इनका लेप लगावोगी तभी तो ठीक होगा ।'' नही, ठीक हो गया ।···कैसे ठीक हो गया ? पिताजी वह दर्द उस मक्खीचूसकी घटनाका था कि एक आध बूद घी लगा होगा उस मक्खीमे और आप उसे पकडे हुए उस घी को टपका रहे थे । उस घटनाको देखकर मैने सोचा—ओह मै कैसे कजूसके घर ब्याही गई, उसका दर्द था, पर जब देखा कि आप मौका पडनेपर हजारो रुपये खर्च करनेको तैयार है तो हमारा वह दर्द मिट गया । तो वह सेठ कहता है—अरी बहू तू अभी जानती नही है—हमारा यह सिद्धात है कि कमायें तो इस तरह कमाये और खर्च करें तो इस तरह खर्च करे । तो बहूने कहा—हाँ पिताजी अब समझ गई । तो हम उस तरहसे मक्खीचूसी करके कमानेकी बात नही कह रहे है । ठीक है कमाते हो तो कमाइये, गृहस्थपदमे रहकर कमाना ही चाहिए, पर इतनी बात तो अवश्य होनी चाहिए कि मौका पडनेपर उसे खूब खर्च करनेकी भावना रखें । उस कमानेके साथ ही यह तत्त्वज्ञान बनाये रहे कि ये सब चीजे हमसे अत्यन्त भिन्न है, कुछ आवश्यकताएँ हैं जिनके कारण हमे कमानेकी प्रवृत्ति करनी पडती है, ये व्यवहारके सहायक भी है, पर वास्तवमे ये सब मेरे आत्माके हितमे सहायक नही हैं । मेरा हित करने वाला तो मेरा आत्म-दर्शन है, अन्य किसी भी पदार्थसे मेरा हित नही है ।

अस्याचिन्त्यप्रभावस्य सामर्थ्यात्स प्रशान्तधीः ।
मोहमुन्मूलयत्येव शमयत्यथवा क्षणे ।।२१३८।।

पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यानसे सकल मोहविजय—शुक्लध्यानोमे प्रथम शुक्लध्यान का ऐसा अचिन्त्य प्रभाव है कि उसके ध्यानकी सामर्थ्यसे चित्त शान्त हो जाता है, और ऐसे मुनि क्षणभरमे ही मोहनीय कर्मोंका मूलसे नाश कर देते है अथवा उनका उपशम कर देते है । जो उपशम श्रेणीमे हैं वे योगीश्वर इस पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यानके प्रसादसे चारित्र मोहका उपशम करते हैं और जो क्षपक श्रेणीपर है वे चारित्रमोहका क्षय करते है । कर्मोंमे प्रबल कर्म मोहनीय कर्म है । मोहनीय कर्मके ध्वस्त होते ही सर्व कर्म बिदा होने लगते है । सब कर्मोकी जड कहो, सब कर्मोंका आधार मोहनीय कर्म है । मोह राजा है और कितनी-कितनी इच्छायें रागद्वेष ये सब उसकी फौजें है । जहाँ मोह राजा ही जीत लिया जाता है वहाँ फिर

ये रागद्वेष आदिककी फौजे काम नही देती ।

इदमत्र तु तात्पर्यं श्रुतस्कंधमहार्णवात् ।
अर्थमेकं समादाय ध्यायन्नर्थान्तरं व्रजेत् ॥२१४०॥

पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यानमे अर्थान्तरव्रजन—इस शुक्लध्यानके लक्षणमे तात्पर्य यह है कि इस ध्यानमे अर्थादिक पलटते है । महान श्रुतस्कंध अर्थात् द्वादशाग शास्त्ररूप महासमुद्र लेकर किसी पदार्थका अभी कोई ध्यान कर रहा था, अब थोडे ही क्षण बाद दूसरे अर्थका ध्यान करने लगता है । वीतराग ध्यानमे जो पदार्थोंके जाननेका परिवर्तन चला करता है वह केवलज्ञान अथवा समूल, चारित्र न होनेमे होता है । समूलचारित्र नष्ट होनेसे पहिले ऐसी ही आसक्ति रहती है कि ज्ञानका परिवर्तन चला करता है । इस ज्ञप्ति परिवर्तनकी दशामे यह पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यान होता है ।

शब्दाच्छब्दान्तरं यायाद्योगं योगान्तरादपि ।
सवीचारमिदं तस्मात्सवितर्कं च लक्ष्यते ॥२१४१॥

प्रथम शुक्लध्यानमे सवीचारता—इस ध्यानमे एक शब्दसे दूसरे शब्दका आलम्बन होता है, एक योगसे दूसरे योगका आलम्बन होता है, इसी कारण यह ध्यान सवीचारसवितर्क कहलाता है । ध्यानकी एक ऐसी स्थिति कि जहाँ रागकी प्रक्रिया नही चल रही है, किन्तु एक विशुद्ध परिणामसे ध्यान चल रहे हैं, ज्ञेय पदार्थ ज्ञानमे आ रहे है, ऐसी स्थितिमे भी वे ज्ञेय पदार्थ बदलते रहते है, ऐसी वीतराग दशामे अर्थात् जहाँ राग तो सत्तामे है, पर जिनका व्यवहार नही, ऐसी स्थितिमे इस ज्ञानका परिवर्तन स्वत चलता रहता है । यह एक निर्विकल्प समाधिके सम्बधकी बात है । जहाँ राग द्वेषका विकल्प तो कुछ नही, फिर भी वह ज्ञान बदलता रहता है । तो वह ज्ञान श्रुतज्ञानका आलम्बन लेता है । शास्त्रोमे जो तत्त्व निरूपण किया है उसमेसे किसी एक पदार्थके ज्ञानका आलम्बन लेता है और कुछ ही समय बाद फिर दूसरे पदार्थ जाननेमे आने लगते है, यो चूकि इसमे परिवर्तन है, अतएव यह सवीचार और सवितर्क है ।

श्रुतस्कन्धमहासिन्धुमवगाह्य महामुनि ।
ध्यायेत्पृथक्त्ववितर्कवीचारं ध्यानमग्रिमम् ॥२१४२॥

महामुनिका प्रथम शुक्लध्यान—महामुनि द्वादशाग शास्त्ररूप महासमुद्रको अवगाहन करके इस पृथक्त्ववितर्कवीचार नामक पहिले शुक्लध्यानका ध्यान करता है, जिसमे बहुत शास्त्रोका रहस्य बसा है, बहुश्रुतका विज्ञान है तो उन तत्त्वोमे किसी भी तत्त्वका आश्रय लेकर ध्यान किया, फिर दूसरे तत्त्वका ध्यान किया, इस प्रकार पृथक्त्ववितर्कवीचार ध्यानके अधिकारी उन्हे बताया है जो योगीश्वर शास्त्रोमे पारगत है । इसमे जो भी कमी है वह सत्तामे

राग पडा है उसकी वजहसे कभी है, और चूकि मोहका उपशम कर दिया अथवा क्षय कर दिया दर्शनमोहका, इस कारण वहाँ किसी प्रकारका कोई खोटा विकल्प नही उत्पन्न होता है। ऐसी स्थितिमे भी यह प्रथम शुक्लध्यान होता है वहा पूर्वप्रयोगसे वीचार होता है। कुछ ही समय बाद मोह नष्ट होगा और उत्कृष्ट शुक्लध्यानकी दशा प्रकट होगी। जैसे किसी राजा के मर जानेपर सेना निरुत्साह हो जाती है और मैदानको छोड देती है इसी प्रकार मोह राजा के नष्ट होनेपर यह रागादिककी सेना अपना मैदान छोड देती है और शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। यो पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यानमे उस मोहके उपशम और क्षयकी ही प्रक्रिया चलती है।

एवं शान्तकषायस्या कर्मकक्षा शुशुक्षरिणः ।
एकत्वध्यानयोग्य स्यात्पृथक्त्वेन जिताशय ॥२१४३॥

कषायविश्लेषसे एकत्ववितर्कावीचारकी योग्यता—यहा पहिले शुक्लध्यानकी चर्चा चल रही थी कि नाना प्रकारके तत्त्वोंके ज्ञान करते रहनेसे जो आत्मामे एक बल प्रकट हुआ है अब उसके कारण इसकी कषाये शान्त होती है, कर्मोके समूह दूर होते है और एकत्ववितर्क अवीचार शुक्लध्यानके योग्य हो जाता है। देखिये जब सारे रागद्वेष समाप्त होते है तब परमार्थ शुक्लध्यान होता है। यह शुक्लध्यान १२वे गुणस्थानमे है और १०वे गुणस्थानके अत मे समस्त कषाये नष्ट हो जाती है। तो इस पृथक्त्ववितर्कवीचार ध्यानके प्रतापसे चारित्र मोहकी २१ प्रकृतियोका विनाश होता है। इनके विनाश होनेपर ये योगीश्वर एकत्ववितर्क-अवीचार शुक्लध्यानके पात्र होते है।

पृथक्त्वे तु यदा ध्यानी भवत्यमलमानस ।
तदैकत्वस्य योग्यः स्यादाविर्भूतात्मविक्रमः ॥२१४४॥

द्वितीय शुक्लध्यानीका आत्मविक्रम—जिस समय ध्यानीका चित्त इस पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यानके द्वारा कपायोसे रहित होता है तब उस योगीमे अद्भुत पराक्रम प्रकट होता है और वह द्वितीय शुक्लध्यानके योग्य होता है। अभी तो ज्ञानमे बहुत अदल-बदल चल रहे है किन्तु एकत्ववितर्कअवीचारध्यानमे ये सब अदल-बदल समाप्त होते है। जिस पदार्थसे जाना हे, जो ज्ञेय है उस ज्ञेयसे बदलेगा नही और वह ज्ञान उत्पन्न हो जायगा, ऐसा यह शुक्लध्यानका दूसरा चरण है।

ज्ञेय प्रक्षीणमोहस्य पूर्वज्ञस्यामितद्युते ।
सवितर्कमिद ध्यानमेकत्वमतिनिश्चलम् ॥२१४५॥

एकत्ववितर्क अवीचार शुक्लध्यानका प्रताप—जिसका मोहकर्म सब दूर हो गया है, नष्ट हो गया है, क्षयको प्राप्त हो गया है उसी पुरुषके दूसरा शुक्लध्यान होता है। यह

शुक्लध्यान क्षपक श्रेणीसे चढने वाले जीव ही पा सकते है। १२वें गुणस्थानमे जिसके प्रथम समयमे समस्त कषायें नही रही वहाँ यह ध्यान उत्पन्न होता है। यह भी पूर्व द्वादशाग जानने वालेके होता है और इसकी ज्ञप्ति अपरिवर्तित है। इस ध्यानके प्रतापसे अब केवलज्ञानका असीम प्रकाश उत्पन्न होगा, जिसमे पदार्थके जाननेका परिवर्तन नही है। यह ध्यान छद्मस्थ जीवोमे सर्वोत्कृष्ट योगीश्वरोके ही होता है। इसके बाद कोई उत्कृष्ट पद नही है। फिर तो इसके बाद भगवानका पद है। जो योगी द्वितीय शुक्लध्यानको ध्या रहे है उस पदके बाद यदि अन्य कोई पद है तो अरहतका पद है। इस एकत्ववितर्कअवीचार ध्यानके प्रतापसे केवलज्ञान प्रकट होता है।

अपृथक्त्वमवीचार सवितर्कं च योगिन ।
एकत्वमेकयोगस्य जायतेऽत्यन्तनिर्मलम् ॥२१४६॥

द्वितीय शुक्लध्यानमे सर्वतः एकत्व—एक योग वाले मुनिके यह दूसरा शुक्लध्यान होता है, अर्थात् द्वितीय शुक्लध्यानके अधिकारीके योग परिवर्तन भी नही होता, जिस योगसे ध्यान कर रहे थे—मनोयोग लगाकर वचनयोगमे अथवा काययोगमे, उसी योगमे १२वा गुणस्थान पूर्ण व्यतीत होता है और जिस शब्दसे ध्यान कर रहे उसी शब्दसे ही ध्यान चलता है। जिस ज्ञेयको जाना है उस ही ज्ञेयको जानते रहते है इस प्रकारसे यह सब ओरसे एकत्व भावको लिए हुए है। सो यह द्वितीय शुक्लध्यान अत्यन्त निर्मल होता है।

द्रव्य चैकमणु चैक पर्याय चैकमश्रमः ।
चिन्तयत्येकयोगेन यत्रैकत्व तदुच्यते ॥२१४७॥

द्वितीय शुक्लध्यानके एकत्वका विवरण——इस ध्यानमे श्रम तो कोई करना नही पडता। जैसे किसी चीजको समझनेके लिए लौकिक जनोको दिमाग लगाना होता है, किसी चीजमे ध्यान जमानेके लिए कुछ अन्तरमे परिवर्तन करना होता है, वैसे कुछ इस ध्यानमे कोई श्रम नही करना होता। स्वत. ही इतनी सामर्थ्य है कि बिना श्रम किए, बिना उपयोग लगाये स्वय ही किसी एक द्रव्यका ध्यान चल रहा है, एक परमाणुका ध्यान चल रहा है। एक पर्यायको जान रहा है बस उसीको ही जानता रहता है और जिस योगसे वह जान रहा है उस ही योगसे जानता रहता है। इस कारण इस शुक्लध्यानमे ऐसा एकत्व बसा हुआ है, श्रुतज्ञानका तो आलम्बन है, इसमे एकत्वका वितर्क है और एक ही योगसे एक पदार्थको जान रहे है अतएव एकत्व है और उसमे परिवर्तन नही है इस कारण अवीचार है, ऐसी यहाँ द्वितीय शुक्लध्यानी योगियोकी प्रकृति होती है। अब इसके बाद एकत्ववितर्क अवीचार शुक्लध्यानके प्रतापसे योगियोके कैसा वैभव प्रकट होता है, इसका वर्णन चलेगा।

एक द्रव्यमथाणु वा पर्याय चिन्तयेद्यदि ।
योगैकेन यदक्षीण तदेकत्वमुदीरितम् ॥२१४८॥
अस्मिन् सुनिर्मलध्यानहुताशे प्रविजृम्भिते ।
विलीयन्ते क्षणादेव घातिकर्माणि योगिन ॥२१४९॥

एकत्ववितर्क अवीचार शुक्लध्यानके प्रतापसे शेष घातिया कर्मोंका विनाश—इस एकत्ववितर्क अवीचार नामक द्वितीय शुक्लध्यानके प्रतापसे इसमे अपनी निर्मल ध्यानरूपी अग्निके वढ जानेपर योगीके क्षणमात्रमे घातिया कर्म नष्ट हो जाते है। १२वें गुणस्थानमे मोहनीय कर्म नही है। १०वे के अन्तमे समस्त मोहनीय कर्मोंका नाश होता है, पर तीन घातिया कर्म अभी शेप है—ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय। ज्ञानावरणके कारण अनन्त ज्ञान प्रकट नही होता। दर्शनावरणके निमित्तसे अनत दर्शन नही होता और अन्तराय कर्मके निमित्तसे आत्माकी अनत शक्तिया प्रकट नही होती। ये तीन घातिया कर्म अव इस द्वितीयशुक्लध्यानके प्रतापसे क्षणभरमे नष्ट हो जाते हैं और घातिया कर्मोंके नाश होते ही अरहत अवस्था प्रकट होती है।

आधारके नष्ट होते ही आधेयका लोप—वच्चे लोग एक कहानी वोला करते हैं—एक जगलमे स्याल और स्यालिनी थे। स्यालिनीके गर्भ था, स्यालिनीने पूछा कि वच्चे कहाँ पैदा करे ? तो एक शेरका घर (चूल) था, उस समय वह खाली था। स्यालने कहा कि यहाँ पैदा करो। उसीमे वच्चे पैदा हुए। अव दूरसे देखा कि एक शेर आ रहा है—तो स्यालिनी वोली कि अव तो खैर नही है, स्याल वोला—घवडावो मत, हम इसका इलाज करेंगे। देखो—जव शेर आये तो तुम वच्चोको रुला देना। हम पूछेंगे कि वच्चे क्यो रो रहे है ? तो तुम यो जवाव दे देना। आखिर जव शेर निकट आ गया तो वह स्याल ऊपरकी चोटीपर चढ गया। शेर आया वच्चे रोने लगे। स्यालने पूछा कि वच्चे क्यो रोते है ? तो स्यालिनी वोली—ये वच्चे शेरका मास खानेको मागते हैं। तो इस वातको सुनकर वह शेर डरकर भाग गया। सोचा कि यहाँ तो हमारा भी मास खाने वाला कोई है। इसी तरहसे दसो शेर आये और डरकर भाग गए। एक दिन वहुतसे शेरोंने सलाह दिया कि चलो उस जगह चलकर देखो तो सही कि हम सव शेरोका मांस खाने वाला कौन है ? गए वहाँ। ऊपर वैठे हुए स्यालको देखकर वोले—वस इस स्यालकी सारी करतूत है, चलो इसको पकडकर मार दें। परन्तु वहाँ चढें कैसे ? सलाह किया कि एक पर एक शेर चढ जाय और ऊपर वाला शेर उसे पकडकर मार दे। तो सवसे नीचे कौन शेर खडा हो ? सलाह हुई कि यह लगडा शेर नीचे खडा हो क्योकि यह ऊपर चढ नही सकता। नीचे लगडा शेर खडा हुआ, उसके ऊपर एक पर एक करके सभी खडे हुए। स्यालिनीने वच्चोको रुला दिया, स्यालने पूछा कि ये

बच्चे क्यो रोते है ? स्यालिनी वोली—ये बच्चे लगडे शेरका मास खानेको मागते है। वह लगडा शेर डरकर भागा, और एक पर एक भद्दद् करके गिरकर भागे। तो ऐसे ही सर्व विकारोका मूल दर्शन मोहके नष्ट होते ही चारित्र मोह तो सब यो ही नष्ट हो जाते है, इस पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यानके प्रतापसे चारित्रघातक कर्म शीघ्र ही नष्ट हो जाते है, और फिर चारित्रमोहके नष्ट होनेके बाद एकत्ववितर्कअवीचार शुक्लध्यानके प्रतापसे शीघ्र शेष तीन घातिया कर्म भी नष्ट हो जाते हैं।

दृग्बोधरोधकद्वन्द्व मोहविघ्नस्य वा परम्।
स क्षिणोति क्षणादेव शुक्लधूमध्वजार्चिषा. ॥२१५०॥

एकत्ववितर्क अवीचार शुक्लध्यानके द्वारा शेष घातित्रयका विनाश—एकत्ववितर्क-अवीचार नामक शुक्लध्यानकी अग्निकी ज्वालासे दर्शनावरण और ज्ञानावरण एव अतराय कर्मको क्षणमात्रमे वह नष्ट कर देता है और मोहनीय कर्मका तो १०वें गुणस्थानमे पृथक्त्व-वितर्कवीचार शुक्लध्यानके बलसे ही विनाश कर देते हैं। यो १२वें गुणस्थानके अन्तमें चार घातिया कर्मोका अभाव होता है। जीवके साथ ८ प्रकारके कर्म लगे हैं जिनमे चार घातिया कर्म है और चार अघातिया। घातिया उन्हे कहते है जो आत्माके गुणोको घातें। और अघातिया उन्हे कहते है जो घातियाको किसी प्रकार सहयोग पहुचायें, किन्तु गुणको साक्षात् नही घात सके। इन आठ कर्मोमे से ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अन्तराय कर्मका तो निपेधरूपसे क्षय हो चुका और शेष नामकर्मकी प्रकृतियोका भी क्षय हो गया। यो ६३ प्रकृतियोका नाश होते ही ये अरहत भगवान हो जाते हैं। जब १३वा गुणस्थान सयोगकेवली हो जाता है वहाँ क्या स्थिति होती है ? अब उसके सम्बधमे वर्णन चलेगा।

आत्मलाभमथासाद्य शुद्धि चात्यन्तिकी पराम्।
प्राप्नोति केवलज्ञान तथा केवलदर्शनम् ॥२१५१॥

उत्कृष्ट शुद्धिके कारण प्रभुमे केवलज्ञान व केवलदर्शनकी निरन्तर उपलब्धि—घातिया कर्मोका नाश होनेके अनन्तर आत्मलाभको प्राप्त हुआ यह उत्तम पुरुष अत्यन्त उत्कृष्ट शुद्धता को पाकर केवलज्ञान और केवलदर्शनको प्राप्त करता है, केवलज्ञानके द्वारा समस्त लोकालोक को एक साथ स्पष्ट जानता है और केवलदर्शनके द्वारा यह ऐसे ज्ञाता आत्माको अपने दर्शनमे लेता है। तो इस प्रकार भगवानके केवलज्ञान और केवलदर्शन उद्भूत होते है। उपयोग क्रमश १२वें गुणस्थान तक चलता है। यद्यपि आत्मामे जितने गुण है उन सब गुणोका निरन्तर परिणमन होता है, ज्ञानगुण भी निरन्तर परिणमता रहता है और दर्शन गुण भी निरन्तर परिणमता है किन्तु उपयोग छद्मस्थ अवस्थामे क्रमश होता है। ज्ञान और दर्शन तो निरन्तर परिणमते ही चले जाते है, किन्तु उनका उपयोग १२वें गुणस्थान तक क्रमसे

होता है, और चूँकि उपयोग लगानेकी बात नही रही-ऐसे इस १३वे गुणस्थानमे, जहा समस्त ज्ञानावरण व दर्शनावरणका क्षय है अतएव केवलज्ञान और केवलदर्शन एक साथ उपयोगमे होते है।

अलब्धपूर्वमासाद्य तदासौ ज्ञानदर्शने।
वेत्ति पश्यति निःशेष लोकालोक यथास्थितम् ॥२१५२॥

प्रभुके समस्त लोकालोकका ज्ञातृत्व द्रष्टत्व—जीवने केवलज्ञान और केवलदर्शन कभी नही प्राप्त किया था। उनकी प्राप्ति होनेके बाद फिर इनका कभी वियोग नही होता। अनत काल तक केवलज्ञान और केवलदर्शनरूप परिणमन चलता ही रहेगा। वह प्रभु ऐसी अलब्ध पूर्ण विशुद्धिको पाकर ज्ञान दर्शनकी प्राप्ति करके अब समस्त लोकको जानता और देखता है। यद्यपि निश्चयनयसे प्रत्येक जीव अपने आपको ही देखता है और जानता है। ये प्रभु तो अत्यन्त निर्मल हो चुके है। जो मलिन जीव है वे भी निश्चयसे अपनेको जानते है और अपनेको देखते है। वे अपने विभावोरूप परिणमते और उस ही रूप अपना उपयोग बनाये रहते है। किन्तु किसी भी वस्तुमे यह सामर्थ्य नही है कि अपने गुण अथवा पर्याय अपने प्रदेशोको कही बाहर रख दे। परिणमनको मीमासक सिद्धान्तमे कर्म शब्दसे कहा गया है। जीवके जितने भी परिणमन होते है वे सब जीवके अपने ही प्रदेशोमे होते है। किन्तु ज्ञानमे जो विषय बना है उस विषयकी अपेक्षासे व्यवहारसे यह कहा जाता है कि भगवान लोकालोकको जानते है। जैसे यहाँ भी व्यवहारसे यह कहा जायगा कि हम चौकी आदिक अनेक पदार्थोंको जानते है। निश्चयसे तो चौकी आदिक पदार्थोंको ग्रहण करने वाला जो भीतरमे परिणमन है, ज्ञेयाकार हुआ है उसको जानते है। तो ऐसा कहनेसे कही यह अर्थ नही होता कि भगवान लोकालोकको जानते ही नही हैं। वे तो व्यवहारसे जानते है, वह मिथ्या है ऐसी बात नही है किन्तु नय पद्धतिसे मर्म समझना चाहिए। बातें दोनो यथार्थ है, प्रभु अपनेको जानते है और समस्त लोकालोकको जानते है। जैसे यह बात यथार्थ है कि हम अपनेको जानते है और जितने सामने खम्भा चौकी आदिक जो कुछ है उन्हे भी जानते है, ये अयथार्थ कुछ नही है, किन्तु नयपद्धतिसे विवेचना करनेपर यह कहना ही होगा कि निश्चयनय एकत्वको विषय करके प्रकाश डालता है और व्यवहारनय अनेक पदार्थ अथवा औदयिक भावोका विषय करके बताता है। तो इस दृष्टिसे निश्चयसे तो अपनेको जानते है और व्यवहारसे अन्य पदार्थोंको जानते है। प्रभु भी समस्त लोकालोकके जाननहार है और इस प्रकारके जाननहार अपने आपके आत्माका दर्शन करते है, इससे यह भी कह सकते कि लोकालोकको जैसे केवलज्ञानने जाना इसी प्रकार दर्शनमे लोकालोकको देखा। ज्ञान और दर्शनमे फिर भी आन्तरिकका अतर है। व्यवहारमे भी अन्तर है। समस्त लोकालोकको जानने वाले आत्माको दर्शनमे देखा तो

ज्ञानलक्ष्मी सर्व जगतके प्राणियोका हित करने वाली है । कुछ समय तक तो इस ज्ञानलक्ष्मी को उपादेय माना जाता रहा, उसीकी पूजा होती रही । पर कुछ समय बादमे ज्ञानकी बात तो छूट गयी और ससारी जीवोने अपने विषयसाधनोंसे ही अपना सब कुछ हित माना । तो इन विषयसाधनोमे साधनभूत जो कल्पित लक्ष्मी मानी गई है उसकी उपासनामे लग गये, पर यह विदित नही किया कि यह लक्ष्मी तो, यह धन वैभव तो पुण्यका उदय आनेपर स्वत आता है और पुण्यका उदय विलीन होनेपर यह विलीन हो जाता है । उपासनासे, पूजासे वैभव नही आता है । यह तो अपने षट्कर्मोसे, दया दान परोपकारके भावसे विशिष्ट पुण्य-सचय होता है, इसके उदयमे ये सब प्राप्त होते हैं । प्राप्त हो, किन्तु उससे आत्माका उत्कर्ष नही है ।

बाह्य लक्ष्मीकी क्लेशरूपता—एक सेठ करोडपति था, पापका उदय आनपर उसे अपनी सारी सम्पदासे हाथ धोना पडा । गुजारा चलानेके लिए उसे अरजीनवीसीका काम करना पडा । कुछ दिनो वाद वह सेठ अटारीसे जीनेकी सीढियोपरसे उतर रहा था तो उसे कुछ शब्द सुनाई पडे । वे शब्द थे—क्या मैं आऊँ ? सेठने—आकर वह वृत्तान्त सेठानीको बताया । तो सेठानीने कहा कि इस बार कहे तो उससे कह देना कि मत आवो । आखिर दुबारा जब कहा—क्या मैं आऊँ, तो उस सेठने कहा मत आवो । वह आवाज थी लक्ष्मीकी । यो जब कई बार उस लक्ष्मीने कहा—क्या मै आऊँ तो एक बार सेठको कहा सेठानीने कि अच्छा इस बार कह देना कि आवो तो सही पर आकर जाना नही । तो वह लक्ष्मी कहती है आऊँगी तो सही पर जब चाहे चली जाऊँगी । सेठने फिर सेठानीसे सलाह ली, तो सेठानीने कहा कि कुछ अनुरोध और करना, और मजूर कर लेना । फिर अगले दिन बात हुई तो लक्ष्मी कहती है कि मैं सदा तो नहीं रह सकती, पर यह वचन देती हू कि जब जाऊँगी तो कहकर जाऊँगी । अब देखिये क्या होता है ? अगले दिन उस सेठने जो कि गरीबी आ जानेके कारण अरजी-नवीसीका काम कर रहा था, रानीकी ओरसे उसके वही बाहर गए हुए राजाको एक पत्र लिख दिया । राजा उस पत्रको लेकर आया और उस पत्रपर इतना खुश हुआ कि उस सेठको अपना मत्री बना लिया । अब क्या था ? लक्ष्मी आनेके उसके पास अनेक उपाय थे । यो कुछ ही दिनोमे वह फिर बडा धनिक बन गया । एक दिन सोचा कि वह लक्ष्मी तो कहती थी कि आऊँगी तो सही, पर चली जाऊँगी, सो अब मै देखूँगा कैसे वह लक्ष्मी जाती है ? सो उसने अपना बहुतसा धन हडोमे भरकर ऊपरसे तवा जडाकर जमीनमे गडवा दिया था । सोचा कि अब तो हमारे पाससे यह लक्ष्मी किसी तरह भी नही जा सकती । पर हुआ क्या कि एक दिन वह राजा अपने मत्री इसी सेठको लेकर जगल गया क्रीडा करनेके लिए । राजा की थकान मेटनेके लिए उस मत्रीने अपनी जांघपर सिर धरकर लिटा दिया । राजाके कमर

मे तलवार लटक रही थी। जब राजाको कुछ निद्रासी आने लगी तभी वह लक्ष्मी आयी और बोली कि अब तो मैं जाती हू, तो वह मत्री कहता है कि मै तुझे न जाने दूगा, आखिर दुबारा कहा कि मै जाती हू तो उस मत्रीने तलवार निकालकर लक्ष्मीको मारनेके लिए हाथ उठाया इतनेमे ही कुछ झटकासा लगनेसे वह राजा जग गया। देखा--ओह ! मत्रीके हाथमे तलवार। सोचा कि इसने मुझे मारनेकी सोची होगी। खैर, वहाँ तो कुछ न बोला वह राजा, पर अपने दरबार आनेपर पहरेदारोसे कहा कि ऐ पहरेदारो इस मत्रीको सपरिवार हमारे राज्यसे बाहर निकाल दो। वह मत्री सपरिवार राज्यसे बाहर निकाल दिया गया। अब देखो उसका सारा धन उसके पाससे जाता रहा। तो यह लक्ष्मी उसकी पूजा करनेसे, उसकी उपासना करनेसे नही प्राप्त होती है। अपने परिणाम अगर ठीक होगे तो उससे पुण्यका बध होगा और यह लक्ष्मी प्राप्त होगी और यदि अपने परिणाम खोटे है तो उससे पापका बध होगा और उसे नरकमे जाना पडेगा। तो वास्तवमे लक्ष्मी तो ज्ञानलक्ष्मी कहलाती है। ये प्रभु इस ज्ञानलक्ष्मी को पाये हुए है। उनका आन्तरिक तपश्चरण सदा आत्मामे रहता है। ये प्रभु अब अत्यन्त विशुद्ध हो गए। देवताओने जो समवशरण लक्ष्मीकी रचना की उसमे वे शोभित हो रहे है। ऐसे ये प्रभु सर्वप्रकारकी लक्ष्मीको पाकर धर्मचक्रके अधिपति होते है। ऐसी आदर्श अवस्था प्राप्त होती है, यह सब शुक्लध्यानका प्रसाद है।

कल्याणविभव श्रीमान सर्वाभ्युदयसूचकम्।
समासाद्य जगद्वन्द्य त्रैलोक्याधिपतिर्भवेत् ॥२१५७॥

जगद्वन्द्य त्रैलोक्याधिपति----अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग लक्ष्मी करके सहित केवली भगवान तीन लोकोसे वदनीय हैं और कल्याणरूपी वैभवको पाकर तीनो लोकके अधिपति है। लोकमे सबसे बडा कौन है ? दृष्टि पसारकर निरखो तो जिसे ससारमे मोहीजन बडा मानते है वे भी किसी अन्यको बडा समझते है और इस तरह एक दूसरे बडेकी शरणमे रहते है पर वे प्रभु केवली भगवान तो इतने महान है, कि जिनकी शरणमे देव देवेन्द्र योगीश्वर आदि वन्दना करनेके लिए पहुचते है; वे प्रभु परमकल्याणरूपी वैभवके अधिपति है।

तन्नामग्रहणादेव नि शेषा जन्मजा रुज।
अप्यनादिसमुद्भूता भव्याना यान्ति लाघवम् ॥२१५८॥

प्रभु नाम स्मरणकी महिमा—जिन भगवानके नाम लेने मात्रसे ही जीवोंके अनादि कालसे उत्पन्न हुए जन्ममरण रूपी रोग भी क्षीण हो जाते है ऐसे वे भगवान प्रभु शुक्लध्यान के प्रसादसे हुए। हे प्रभो, आपके स्तवनकी बात तो दूर रही, आपका नाम लेने मात्रसे भी लोगोंके पाप क्षणभरमे नष्ट हो जाते है। सूर्यका प्रकाश तो तब आयगा जब सूर्य उदित हो चुके। पर सूर्यका प्रताप तो देखो कि पहिले ही याने जब सूर्यका उदय काल आता है तो

इससे दो घडी पहिले अंधकार विलीन हो जाता है, तो प्रभु नाम स्मरण, आत्मगुण स्मरण इसके सिवाय हम और आप कौनसा वैभव पायेंगे ? लोकमे वैभव है वह तो असार है, रहा तो क्या, न रहा तो क्या ? उससे तो ज्यादासे ज्यादा ऐसा मौज मान लिया कि हजार लाख व्यक्तियोंके बीच कुछ महिमा बढ गई। लोग ऊँचा आसन देंगे, समारोहोंमे अध्यक्ष बना देंगे, लोग तारीफ करेंगे, पर यह सब है क्या ? एक स्वप्नकी जैसी बात है।

मोहनिद्रा अस्त करनेका स्मरण—भैया ! अपनी जिन्दगीसे ही विचार लो, कितने ही पुरुष यहाँ ऐसे बैठे हैं जिनके दादा, पिता, माँ आदि नही रहे, बहुतसे इष्ट जनोका वियोग हो गया। ये सभी गोदमे लेकर बडे प्रेमसे खिलाते रहे, कभी जमीनपर पैर न रखने देते थे, सभीके सभी इसे बडे लाड-प्यारसे रखते थे, पर आज वे सब समागम कहाँ गए ? आज तो लगता होगा कि वे सब स्वप्न जैसी बाते थी। स्वप्नमें तो चेत रहना सम्भव है, पर मोहकी नीदमे चेत रहना सम्भव नही है। यह मोहका स्वप्न नीदके स्वप्नसे भी बदतर है। कभी स्वप्न ऐसा आया होगा कि कोई खोटा प्रसग आनेको हो और बडा विवाद हो जाय स्वप्नमे ही, कही कोई जबरदस्ती करे, किसी रागी देवके पास ले जाय कि तुम इसे नमस्कार करो, ऐसा स्वप्न दीखा और आप वहाँसे हट जायें, तकलीफ पसद करे, ऐसी भी दृढता स्वप्नमे हो सकती है, पर मोहकी नीदमे तो जहाँ इष्ट राग है, अनिष्ट द्वेष है, वहाँ आत्माका चेत नही रहता। तो इस स्वप्नमयी दुनियामे अपना सारा जीवन न्यौछावर कर देना यह कहाँका विवेक है ? तो ऐसा सोचना चाहिए कि जब हम सर्वज्ञदेवकी शरणमे आये हैं तो उनके बताये हुए मार्गको अपनायें और उस ही प्रकारकी अपनी दृष्टि रखें।

मायाके गर्वकी व्यर्थता—एक कोई सेठ था, उसकी दूकानके सामनेसे रोज-रोज एक साधु निकला करता था। साधु कहे राम-राम तो वह सेठ कुछ बोलता ही न था। वह सेठ अपने रोजिगारमे इतना फसा रहता था कि उसे रामराम कहनेकी भी फुरसत न थी। तो साधुने सोचा कि इस सेठको कुछ मजा चखाना चाहिए। सो वह सेठ रोज-रोज एक नदीमें नहाने जाता था, एक घटेमें नहाकर आता था। तो उस साधुने क्या किया कि उस सेठका ही जैसा रूप बनाकर सेटसे पहिले ही उसके द्वारपर आ गया, फिर घरके भीतर बैठ गया। अब बादमे सेठ आया, तो पहरेदार उसे हटाने लगे कि तू यहाँ कौन बहुरूपिया बनकर आ गया, यहाँसे चल। तो वह सेठ बोला—अरे यह हमारा ही तो घर है, तुम हमारे ही तो पहरेदार हो। आखिर बाहर ही पडा रहा सेठ। सेटने उस साधुपर मुकदमा दायर कर दिया। वह सेठ वही द्वारपर ५-७ दिन तक पडा रहा। साधु उसे थोडा बहुत खानेको भी दे दे इसलिए कि कही यह मर न जाय। आखिर अदालतमे जब बयान हुए तो जजने पूछा सेठसे कि इस मकानके बनवानेमे तुमने कितना खर्च किया था ? सो शायद कोई ठीक-ठीक रुपया

आना पाईमे हिसाब नही दे सकता । वह सेठ कोई उस समय उत्तर न दे सका और साधुने अपने ज्ञानबलसे सोचकर बता दिया कि इतने रुपये इतने आने और इतने पाई खर्च हुए थे इस मकानके बनवानेमे । आखिर निर्णय यही हुआ कि यह मकान इसका (साधुका) है । अब क्या था ? उस सेठको मजा चखा ही दिया उस साधुने । एक दिन सेठ बाहर ही बैठा था, साधु निकला, पूछा—कहो सेठ जी तबियत दुरुस्त है ना, उसने कुछ उत्तर न दिया । वह साधु स्वय कहने लगा—देखो सेठ मै रोज-रोज तुम्हारी दूकानके सामनेसे निकलता था, राम राम करता था पर तुम कुछ न बोलते थे, उसीसे हमने तुम्हे मजा चखाया था । तो इस धन वैभवकी कमाईमे ही लोग जुटे हुए है, अपने आपके कल्याण करनेकी कुछ फुरसत ही नही है । लोग तो इस धन वैभवके कमाने व उसके जोडनेमे ही अपनी चतुराई समझते है, पर यह उनकी भूल है । अरे यह वैभव न तो वर्तमानमे ही शान्तिका कारण हो सकेगा और न भविष्य सम्बधी कोई लाभ हो सकेगा । एक अपने आत्मस्वरूपका ज्ञान कर लिया जाय तो यह ज्ञानसस्कार आगे भी काम देगा और वर्तमानमे भी वह शान्तिपूर्वक रह सकेगा । तो जिस किसी भी प्रकार हो सके हमे शीघ्र ही इन ससारके सकटोसे सदाके लिए छूटनेका उद्यम कर लेना चाहिए । अपने कुटुम्ब जनोको, अन्य रिश्तेदारोको सभीको इस ही मार्गमे लगना चाहिए तभी आपका कुटुम्बमे रहना सार्थक है । अन्यथा सम्बध तो पशु पक्षियोमे भी होता है, उनके भी झुण्ड होते है, बच्चे होते हैं, और वे पशु भी अपने बच्चोसे बडा प्यार करते है । तो सच्चा प्यार वही है परिजनोमे, कुटुम्बमे कि सभीको धर्ममार्गमे लगाये, सभीको ज्ञानप्रकाशमे पहुचायें, यह है सच्चा प्रेम । और शेष तो सब स्वप्न जैसी बातें है । तो ये प्रभु ऐसे कल्याणरूपी विभवके अधिपति होते है । जिसके नामके लेने मात्रसे जन्मरूपी क्लेश दूर होते है ।

तदार्हन्त्व परिप्राप्य स देव. सर्वग शिव ।
जायतेऽखिलकर्मौघजरामरणवर्जित ॥२१५९॥

प्रभुकी अर्हता—तब वे सर्वगत और शिव ऐसे भगवान अरहत अवस्थाको प्राप्त करके सम्पूर्ण कर्मोके समूह और जन्म जरा मरणसे रहित हो जाते है । अरहतपना पाकर ये सिद्ध परमेष्ठी हो जाते है । गुणस्थानमे क्या है ? गुणोका विकास है । चौथे गुणस्थानमे सम्यक्त्व का विकास हुआ है और यहाँसे समझिये कि उसका मोक्षमार्ग शुरू हो गया । सच्चा ज्ञान हो जाय तो फिर घबडाहट नही रहती । चाहे घर गृहस्थीमे रहकर किस ही प्रकारकी परिस्थि-तियाँ आये पर ज्ञानबलके प्रसादसे उसे रच भी आकुलता नही होती । सारी बातें सहनी तो खुदको ही पडेंगी, दूसरे लोग तो दूसरोके दुःखको देखकर हँसेंगे, कोई किसी दूसरेके दु खको मिटा न देगा । आये कोई घटना दुःखकी तो उसको अपने ही दिलमे ही रखकर सहन कर

लीजिए। उस समय यह ख्याल रखिये कि आया है यह दुःखका अवसर तो इस समय हमारी कोई मदद न कर देगा, इस प्रकारका विवेक रहेगा तो एक समय वह आयगा कि वे सारे दुःख मिट जायेंगे। यदि दुःखके समयमे भी विवेक सही बनाये रहे तो वे सारे दुःख भी हँस-खेलकर समतापूर्वक सहन कर लिए जाते है। तो सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई चतुर्थ गुणस्थानमे, उसके बाद फिर कषायोपर विजय होती है; चारित्रमे विकास होता है, समस्त कषायें नष्ट हो जाती है। १२वें गुणस्थानमे पहुचनेपर अरहत भगवान हो जाते है, सो वे रहते है जब तक उनकी आयु है। आयु समाप्त होनेपर सब कर्म एक साथ नष्ट होते है, शरीर रहित सिद्ध पर-मेष्ठी हो जाते है।

तस्यैव परमैश्वर्यं चरणज्ञानवैभवम्।
ज्ञातु वक्तुमह मन्ये योगिनामप्यगोचरम् ॥२१६०॥

प्रभुका वचनागोचर परम ऐश्वर्य—सर्वज्ञ भगवानका ऐश्वर्य उनके चारित्र और ज्ञान वैभवकी महिमा बडे-बडे योगी भी नही बखान सकते है। प्रभुमे क्या वैभव है; क्या प्रभुता है, इस बातको जो समझ ले वही सम्यग्दृष्टि है, वह नियमसे निर्वाण प्राप्त करेगा। प्रभु ज्ञान और आनदका एक पिण्ड है। अब उसे क्या रहा दुःख, क्या क्लेश रहा ? जितने क्लेश हैं वे सब मुझे यह करना है, मुझे यह करना है, बस यह बुद्धि ही क्लेश है, और यह देख लीजिये—क्लेशमे सभी है, उसका मूल कारण यह है कि सभीके चित्तमे यह बात बसी है कि मेरेको यह काम करनेको पडा हुआ है। सम्यक्त्वका प्रकाश होनेपर ही यह श्रद्धा होती है कि मेरेको पर-पदार्थोंमे कुछ भी काम करनेको नही पडा है। करना पड रहा हो, तिसपर भी यह बुद्धि रहती है कि मेरे करनेको तो अब कुछ नही है। तो वे प्रभु कृतार्थ हैं, निर्विकल्प हैं; परम निराकुलता का अनुभवन करते है, ज्ञानबलमे सदा रत करते है, उनके आशा रच भी नही है, इच्छा विकार कुछ भी नही है। ऐसे विशुद्ध ज्ञानके पिण्ड है प्रभु। उसकी महिमाको योगीश्वर भी न जान सकते है और न मुखसे कह सकते है। तो इस प्रभुकी प्रभुताको जानकर हम उसपर ही न्यौ-छावर रहे, उस ही अवस्थाको प्राप्त करनेके लिए अपना तन, मन, धन, वचन सर्वस्व समर्पित करें। यहाँ कौन है ऐसा पवित्र आत्मा, कौन है मेरा सहाय, ये सब बातें निरखकर जरा भीतरमे चित्तको प्रकाशमय बनाये, तभी भगवानके उस परम ऐश्वर्यका अनुभवन किया जा सकता है।

मोहेन सह दुर्द्धर्षे हते घातिचतुष्टये।
देवस्य व्यक्तिरूपेण शेषमास्ते चतुष्टयम् ॥२१६१॥

मोहक्षयके पश्चात् अवशिष्ट समस्त कर्मोका विनाश—जब केवली भगवानके चार घातिया कर्म नष्ट हो जाते है तब अघातिया कर्म ही तो शेष रहे। घातिया कर्म—ज्ञानावरण,

दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय—इन सबमे मुखिया है मोहनीय। जैसे आजकल ससदो मे विधायकोके नेता भी बना दिये जाते है। न रही सरकार खुदकी तो जितने मेम्बर रह गए है उनका एक नेता बना दिया। तो इन घातिया कर्मोका नेता कौन है ? घातिया कर्मोका नेता है यह मोहनीय कर्म। सो सम्यक्त्व जब उत्पन्न होता तब चार अनतानुबधी और मिथ्यात्व, सम्यक् प्रकृति इन ७ प्रकृतियोका जब विनाश हुआ तब समझ लीजिये कि कर्मोका बंटाधार तो तभी हो गया। अब कब तक रहेगे कर्म ? फिर शेष चारित्र मोहकी २० प्रकृतियाँ ९वें गुणस्थानमे समाप्त हुई, सज्वलन लोभ १०वें गुणस्थानमे समाप्त हुआ। तो मोहनीय कर्म की सेना सब खतम हो गई। जैसे कोई हरा वृक्ष है उसकी जडें काट दी जायें तो वृक्षके गिर जानेपर भी दो चार दिन उसकी पत्तियाँ हरी रहती है तो रहे हरी, पर वे प्रति समय मुर्झाने के सम्मुख है, अब उनमे वह हरापन नही आनेका है, इसी प्रकार इन कर्मोकी जड मोहनीय कर्म जब कट गई तो फिर सारे कर्म मुर्झानेके सम्मुख है, अब शेष ३ घातिया कर्म १२वें गुणस्थानमे नष्ट होते है। अब अघातिया रह गए। इनका काम क्या ? जिनके कारण अभी शरीर बना है, शरीरमे जीव बना है आदि। अकिञ्चित्कर ये बातें रह गयी है अभी, तो उनके अब शेप घातिया कर्म मात्र रह गये। तो वे घातिया कर्म कैसे दूर होते है ?

सर्वज्ञः क्षीणकर्मासौ केवलज्ञानभास्कर।
अन्तर्मुहूर्तशेषायुस्तृतीय ध्यानमर्हति ॥२१६२॥

प्रभुमें तृतीय शुक्लध्यानकी योग्यताका काल—कर्मोसे रहित केवलज्ञानरूपी सूर्यसे पदार्थोको प्रकाश करने वाले वे सर्वज्ञदेव जब उनके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण आयु शेप रह जाती है तब सूक्ष्मक्रियाअप्रतिपाति शुक्लध्यानके योग्य होते है। अरहत भगवानका जीवन करोडो वर्षों का भी हो, १३वें गुणस्थानमे करोडो वर्ष भी कवलाहार बिना परम पवित्र योग्य शरीर वर्गणावोंके आहार लेते रहनेसे उनका शरीर दिव्य और दीप्त रहा करता है। जब आखिरी अतर्मुहूर्त शेष रह जाय, मानो दो एक मिनट रह जाय उस समय तृतीय शुक्लध्यान होता है। यहाँ एक शका यह हो सकती है कि किसी भगवानकी आयु तो रह गयी अत्यल्प और शेप कर्मोकी स्थिति हो अभी हजारो वर्ष तो ये सब कर्म एक साथ कैसे समाप्त होगे ? आयु शीघ्र ही खतम हो जायगी, तो फिर ये कर्म कहाँ रहेगे ? तो उसके उत्तरमे कहते हैं—

पण्मासायुषि शेषे सवृत्ता ये जिनाः प्रकर्षेण।
ते यान्ति समुद्घात शेषा भाज्याः समुद्घाते ॥२१६३॥

समुद्घातके अधिकारी प्रभु—जो भगवान उत्कृष्ट ६ महीनेकी आयु शेप रहनेपर केवली हुए है वे अवश्य ही समुद्घात करते है और ६ महीनेसे अधिक आयु रहनेपर जो केवली हुए हैं उनमे से कोई समुद्घात करते है और कोई नही भी करते है। समुद्घातका क्या अर्थ है ?

इसमे तीन शब्द है--सम उत् और घात । सम मायने अच्छे प्रकारसे उत् मायने उत्कृष्ट, घात मायने कर्मप्रकृतिका विनाश भली प्रकार उत्कृष्ट रूपसे समस्त कर्मप्रकृतियोंके नाश होनेका नाम है समुद्धात । समुद्धातसे कर्मोका प्रक्षय होता है, तो क्या होता है समुद्धातमे ? सो निरखिये ।

यदायुरधिकानि स्यु कर्माणि परमेष्ठिनः ।
समुद्धातविधि साक्षात्प्रागेवारभते तदा ॥२१६४॥

शेष तीन अघातिया कर्मोको आयुसम करनेके लिये समुद्धातका आरम्भ--जब अरहत परमेष्ठीके आयुकर्म अन्तमुर्हूर्तका अवशेष रहता है और शेष कर्मोकी स्थिति अधिक होती है तब समुद्धातकी विधि प्रारम्भ होती है । देखिये-अन्तर्मुहूर्तमे अनेक अन्तर्मुहूर्त समाये हुए रहते है । तो आखिरी अन्तर्मुहूर्तमे अनेक जो अन्तर्मुहूर्त पडे है उनमे पहिले समुद्धात किया, फिर योग निरोध किया, फिर जब सब योगोका निरोध होने पर केवल एक सूक्ष्म काययोग रह जाता है उस समयमे तृतीय शुक्लध्यान होता है । शेष समस्त जीवनमे यह शुक्लध्यान नही है । उन अरहत भगवानको ध्यानकी जरूरत तो न तब थी, न अब है । चित्त तो उनका नष्ट हो गया, यो कहो कि अब वे सज्ञी तो रहे नही अनुभय है । १३ वें गुणस्थान वाले न सज्ञी है, न असज्ञी है, ध्यानकी कहाँ बात हो ? ध्यानका फल है कर्मोकी निर्जरा होना । वह निर्जरा अतिम अन्तर्मुहूर्तमे विशेष होती है, सो उस फलको देखकर बताया गया है कि वह भगवान सूक्ष्मक्रिय है, उनके सूक्ष्म काययोग रह गया है और अप्रतिपातीपना है । बहुत उत्कृष्ट परिवर्तनमे आने वाले है तो उस समय इनका समुद्धात होता है । देखिये समुद्धातका अर्थ तो उत्तम है, पर समुद्धात ७ प्रकारके होते है—इसका नाम है केवली समुद्धात । समुद्धातमे क्या हुआ कि केवल भगवानका आत्मा अपने शरीरमे रहता हुआ भी प्रदेश फैलने लगते है, उसके शरीरसे बाहर भी प्रदेश फैलते है और फैलते-फैलते आखिर वे लोकमे सर्वत्र फैल जाते है । उस समय जहाँ ये सब जीव है वहाँ ही भगवानके प्रदेश भी हो गए और भगवानके प्रदेशोंके बीच सब लोग बैठे है, यदि इस समय अरहत भगवानका समुद्धात हो रहा हो, विदेह क्षेत्रमे तो अरहत सदा होते रहते है तो उनके प्रदेश सारे लोकमे फैले हुए है, पर उनसे भी अपना सहारा कुछ नही, जो दु ख है सो है ही । उनके यहाँ की तो बात क्या कहे ? जो सिद्ध लोक है, जहाँ सिद्ध भगवान विराजे है वहाँ भी अनत निगोदिया जीव बस रहे है, पर वे सिद्ध तो अपने अनत सुखको, अनत आनदको भोग रहे हैं और वे निगोदिया जीव इतने दु.ख भोग रहे है कि एक श्वासमे १८ बार जन्ममरण कर रहे है । जो बात यहांके निगोदिया जीवोमे होती है वही बात वहांके निगोदिया जीवोमे है । तो समुद्धातका सही अर्थ वाला काम केवली भगवानमे ही बनता है और मे नही । हाँ प्रदेश फैलनेसे वे समुद्धात कहे गये हैं । जैसे गीली धोती है उसे फैला दिया जाय तो जल्दी सूख जाती

है, इसी प्रकार ये आत्मप्रदेश जब फैल जाते है लोकभरमें तो कर्मप्रदेश फैलकर बिखरकर शीघ्र ही सूख जाते है। उस समय भगवानकी आयुके बराबर शेष तीन घातिया कर्म होते है तो जब वे मुक्त जायेंगे तो एक साथ सब कर्म नष्ट होगे और उनका निर्वाण हो जायगा।

अनतवीर्यप्रथित प्रभावो दण्ड कपाट प्रतर विधाय।
स लोकमेन समयैश्चतुर्भिनिश्शेषमापूरयति क्रमेण ॥२१६५॥

अघातिया कर्मोंकी स्थिति समान होनेके लिये समुद्घात—योगीश्वर पृथक्त्ववितर्कवीचार और एकत्ववितर्कअवीचार नामक दोनो शुक्लध्यानोके प्रसादसे क्रमश मोहनीय व शेष घातिया कर्मोंका नाश कर देते है। तब सयोगसेवली गुणस्थानवर्ती होते है। वे अरहत है, प्रभु है, उनके अब चार अघातिया कर्म शेप रह गये है, उनमे यदि आयुकर्मकी स्थिति विशेष अधिक है तो उन विशेष स्थिति वाले अघातिया कर्मोंको आयुके बराबर करनेके लिए समुद्घात होता है। इस समुद्घातका नाम केवलिसमुद्घात है। केवलिसमुद्घातमे आत्माके प्रदेश पहिले नीचे और फिर ऊपर जाते है। जैसे कि पद्माशनसे विराजे हो तो शरीरकी मोटाईसे तीन गुना फैलकर जाते है और यदि खड्गासनसे विराजे हो तो शरीर परिमाणकी मोटाई लेकर नीचेसे ऊपर तक भगवान आत्माके प्रदेश फैल जाते है। यह हुआ उनका दडसमुद्घात। इसके पश्चात् अगल-बगल फैल जाते है तब होता है कपाटसमुद्घात। दडसमुद्घातमे भगवान के प्रदेशोका आकार डडेकी तरह लम्बा रहा और कपाटसमुद्घातमे किवाडकी तरह उनके प्रदेश फैलते है। इसके पश्चात् तीसरे समयमे आगे पीछे फैलते है, अब यहाँ तक उनके प्रदेश लोकालोकमे सर्वत्र फैल गए, केवल वातवलय बचे इस लोकके चारो तरफ। जिन वातवलयो पर यह सर्व लोक सधा हुआ है उन वातवलयोमे अभी अरहत भगवानके प्रदेश नही फैले प्रतरसमुद्घातमे। लोकपूरण समुद्घातमे प्रदेश वातवलयोमे भी ठहर जाते है। उस समय लोक के एक-एक प्रदेशपर आत्माका एक एक प्रदेश रह जाता है, इसे कहते है एकत्ववर्गणा होना। लोकपूरण समुद्घातमे आत्माके प्रदेश पूर्ण लोकाकाशमे फैल गये, कही किसी भी जगह दो प्रदेश न रहे, सर्वत्र एक प्रदेश रहकर वह आत्मा फैल जाता है। इसके पश्चात् ५वे समयमे प्रतर जैसी स्थिति हो जाती है। फिर छठे समयमे कपाट जैसी स्थिति, ७वे समयमे दड जैसी स्थिति रह जाती है और ८ वे समयमे शरीरमे प्रवेश हो जाता है। इन ८ समयोकी प्रक्रिया से शेप बढे हुए तीन कर्म आयुकर्मके बराबर हो जाते है।

पिण्डलोकका आधार वातवलय—इस लोकका आधार क्या है, यह लोक किसपर टिका हुआ है? इस सम्बधमे कोई लोग कुछ कहते है, कोई कुछ। कोई लोग तो एक बाराह अवतार हुआ उसपर टिका बताते है, कोई लोग कहते कि कीलीपर दुनिया टिकी, कोई कहता कि शेपनागके फनपर दुनिया टिकी, कोई लोग कहते कि इस लोकके चारो तरफ तीन प्रकार

की विशिष्ट हवायें है और लोकके नीचे गहराईमे और अधिक मोटाईमे वह हवा है जिसपर यह लोक सधा हुआ है । यो अनेक मान्यतायें है । शेषनागकी बात तो बहुत प्रसिद्ध है, पर उसका सही अर्थ देखे । पहिले नाग शब्दमे देखो तीन शब्द है—न, अ और ग । गच्छति इति गः । जो चले सो ग, न गच्छति इति अग , जो न चले सो अग, न अगः इति नागः, जो न चलने वाला नही है उसे नाग कहते है अर्थात् हवा । और शेषनागका अर्थ है जो शेष रही हवा है वह । तो लोकमे सर्वत्र वायु भरी है, सो भीतरकी समस्त वायुसे बची हुई जो हवा है, विशिष्ट वातवलय है उसका नाम है शेषनाग । यो यह सब लोक उन वातवलयोके आधारपर है । प्रभु भगवान आत्माके प्रदेश लोकपूरण अवस्थामे, लोकके वातवलयोमे भी फैल जाते है, और उस प्रक्रियामे क्या होता है कि जो अधिक स्थितिके अघातिया कर्म थे वे आयुकर्मके समान हो जाते है ।

तदा स सर्वज्ञ सार्व सर्वज्ञ सर्वतोमुख ।
विश्वव्यापी विभुर्भर्त्ता विश्वमूर्तिमहेश्वर ॥२१६६॥

लोकपूरणसमुद्धातमे प्रभुकी व्यापकता—जब केवली भगवान लोकपूरण समुद्धातमे होते है अर्थात् लोकके समस्त प्रदेशोमे पूर्ण रूपसे फैल जाते है तो उस समय ये चार बातें—धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, भगवानके प्रदेश और लोकालोकके प्रदेश, ये बराबर हो जाते है, तीन तो पहिलेसे ही उतने थे, अब आत्मा भी उतना हो गया । अब न कोई कम, न कोई ज्यादा रहा । इस लोकपूरण अवस्थामे भगवानको इन शब्दोसे कहा जाय तो वह अत्युक्ति है । वह प्रभु उस समय सर्वज्ञ है, सर्वत्र व्यापे हुए है । लोकका कोई प्रदेश ऐसा नही बचा जहाँ प्रभु न विराजे हो । उस समय वे सार्व है । सर्वके हितरूप है, सर्वके निकट मौजूद है, सर्वके जाननहार हैं, सर्वत्र उनकी गति है, सब ओर उनका सुख है । जो लोग प्रभुकी ऐसी स्तुति करते है कि वे प्रभु सर्व ओर देखने वाले है, सर्व ओर उनकी आँखें है, सर्व ओर उनकी भुजाये हैं । वह अवस्था यही तो है प्रभुकी । वे प्रभु उस समय विश्वव्यापी कहे जाते है, सर्वत्र व्यापक है । देखिये—प्रदेशोसे तो वे लोकव्यापक है लेकिन ज्ञानसे अब भी वे लोकालोकव्यापी हैं अर्थात् उनका ज्ञान लोक और अलोक सबका जाननहार है । उनके ज्ञानमे लोकालोक समाया है । प्रदेशदृष्टिसे अरहत भगवान विश्वव्यापी है, विभु है, विश्वमूर्ति हैं, महेश्वर हैं । ऐसी फैलनेकी स्थिति केवल एक समयको होती है । एक समय कितना होता है ? पलक शीघ्रतासे जितने समयमे गिरे और उठे उतने समयमे अनगिनते समय हुआ करते है, उनमे से एक समयके लिए यह स्थिति हुई है प्रभुकी । और उस फैलावके कारण कर्म भी फैल गए । क्योकि कर्मवर्गणाओका और आत्माका अभी एक क्षेत्रावगाह सम्बध है । कर्म के फैलानेके लिए तो समुद्धात बना है । आत्माको फैलानेकी क्या जरूरत थी ? होते है सब

काम अपने आप सहज। कर्म फैल जायेगे तो जैसे धोतीको फैला दिया जाय तो शीघ्र ही सूख जाती है इसी प्रकार ये कर्म सारे विश्व भरमे फैल गए तो ये सब कर्म सूख जाते हैं।

लोकपूरणमासाद्य करोति ध्यानवीर्यतः।
आयु. समानि कर्माणि भुक्तिमानीय तत्क्षणे ॥२१६७॥

केवलिसमुद्घातसे तीन अघातिया कर्मोंकी आयुकी स्थितिके समान स्थिति—केवली भगवान लोकपूरणमे अपने प्रदेशोको सारे लोकमे व्याप देते है। वे प्रभु न तो अब सज्ञी है, न असज्ञी। उनके तो अब मनोबल भी नही है, अनत ज्ञानवल है। मनसे भी वे अब कुछ विचार नही करते है। उनके तो एक विशुद्ध आत्मशक्ति प्रकट हुई है जिस विकाससे ही सीधा समस्त त्रिलोक और त्रिकालवर्ती पदार्थोंको स्पष्ट जानते है। उस समय उस ध्यानके प्रतापसे उदयमे लाकर, भोगमें लाकर अथवा यो ही एक समयमे लाकर आयुके बराबर उन कर्मोको कर दिया जाता है। अब यहाँ इस प्रभुके चार अघातिया कर्म एक समान स्थितिके हो गए।

तत· क्रमेण स पश्चाद्विनिवर्त्तते।
लोकपूरणत श्रीमान चतुर्भि समयैः पुनः ॥२१६८॥

लोकपूरण समुद्घातके पश्चात् चार समयोमे प्रदेशोकी देहसमता—श्रीमान केवली भगवान। अहो, भगवानको ही श्रीमान कहना चाहिए वस्तुतः। लोकव्यवहारकी पद्धति तो सबके साथ श्रीमान लगानेकी है—श्रीमान घसोटेमल जी, श्रीमान लटोरेमल जी आदि। पर श्रीमान शब्दका प्रयोग वस्तुतः प्रभुमे ही लगेगा। श्री कहते है—श्रयते इति श्री। जो आत्मा का आश्रय करे उसका नाम है श्री। उस श्रीको कहाँ ढूढ रहे हो? वह श्री उस आत्मामे है, आत्माका आश्रय करना है। आत्मामे पूर्ण विकास हुआ है, उसका नाम है श्री। वह श्री है ज्ञानलक्ष्मी, परिपूर्ण केवलज्ञानसे युक्तको कहते है श्रीमान् तो इस अतरगकी श्रीसे शोभायमान वे केवली भगवान लोकपूरण समुद्घात करके अब वापसी सकोच प्रदेश करते हुए वे अपने आपके देहमे समा जाते हैं जिसमे चार समय लगते है।

काययोगे स्थितिं कृत्वा वादरेऽचिन्त्यचेष्टित।
सूक्ष्मीकरोति वाक्चित्तयोगयुग्म स वादरम् ॥२१६९॥

अचिन्त्यचेष्टित प्रभुके योगोका सूक्ष्मीकरण—देखिये—प्रभुके विहारका समय वहुत वर्षो तक भी चलता है, सो किसी प्रभुका विहारमे वहुत समय व्यतीत हो गया। भगवानके दिव्य उपदेशसे भी इन तीनो लोकके प्राणियोने लाभ प्राप्त किया। अव सयोगकेवलीके अतिम अन्तर्मुहूर्तकी स्थिति वतायी जा रही है। समुद्घात किया और समुद्घात करनेके वाद अव उनके लिए काम और कुछ नही पडा। काम तो पहिले भी न था, पर जैसे विहार होना,

दिव्य उपदेश होना, ये कार्य होते थे, अब इनका भी समय न रहा। अब तो सयोगकेवली होकर शीघ्र ही निर्वाण प्राप्त करेंगे। भगवान अरहतको १३वे गुणस्थानमे सयोगकेवली शब्द से पुकारा गया है। केवली तो है किन्तु सयोगी है, योग सहित हैं। मनोयोग, वचनयोग, काययोग ये तीन प्रकारके योग अभी उनके चल रहे है, पर इस समय अब क्या होना चाहिए जिससे भगवानका उत्कर्ष बढे ? तो योग मिटना चाहिए। अयोगकेवली बनना है तो भगवान के योग किस तरह दूर होते हैं, उसका अब यह वर्णन है। वह प्रभु अपने आपके अतरङ्गमे क्या किया करते हैं और बाहरमे उनकी क्या प्रवृत्ति हो रही है, यह बता रहे है। उन भगवानके योगनिरोधकी बात कही जा रही है।

वादरवचनयोग व वादरमनोयोगका सूक्ष्मीकरण—वे प्रभु उस समय वादरकाययोग मे स्थित होकर वचनयोगका निरोध करते है। इससे पहिले श्वासोच्छ्वासका निरोध होता है। प्रभुके वचनयोग, काययोग वचनबल कायबल आयु और श्वासोच्छ्वास–ये चार प्राण माने गए है। आयुका निरोध नही किया जाता। यहाँ मनोयोगकी बात निरोधमे आयगी सो निरोधकी चीजे चार है—श्वासोच्छ्वास, वचनयोग, मनोयोग, काययोग। उनमे सबसे पहिले श्वासोच्छ्वास समाप्त हो जाता है। जब श्वासोच्छ्वास पूर्णरूपसे रुद्ध हो जाता है तब योगोमे से सबसे पहिले वादरवचनयोगको वे सूक्ष्म कर देते अर्थात् वादरवचनयोग नही रहता। अब सूक्ष्मवचनयोग रहा। इसके पश्चात् वादरमनोयोगको भी सूक्ष्म करते है। वादरमनोयोग भी नही रहा। शरीरके जो द्रव्य मनकी रचना है उस मनके स्थानपर मनोवर्गणाये आती रहती हैं। अब इस समय मनोवर्गणाका रुकाव हो गया, वादरमनोयोग नही रहा, अब सूक्ष्म मनोयोग रहा। इस प्रकार वादरवचनयोग और वादरमनोयोगोको भगवानने सूक्ष्म कर दिया अर्थात् वादरमनोयोग नही रहा। सूक्ष्मवचनयोग और काययोग अभी बने हैं।

काययोग ततस्त्यक्त्वा स्थितिमासाद्य तद्वये।
स सूक्ष्मीकुरुते पश्चात् काययोग च वादरम् ॥२१७०॥

वादरकाययोगका सूक्ष्मीकरण—यह योग क्या चीज है ? आत्माके प्रदेशोंके कम्पन का नाम, हलनका नाम योग है। जैसे आप जब गुस्सा कर रहे है, शरीरसे अनेक प्रकारके कार्य कर रहे हैं तो उस समय आत्माके प्रदेश ज्यादह हिलते हैं। यह बात तो झट मान ली जाती है, और जब कभी आप एक पद्मासनसे निश्चल आसनसे बैठे हुए है जहाँ रच भी देह का हलन नही हो रहा तो उस समय भी आपके आत्माके प्रदेश भीतर कम्पन कर रहे है। जैसे किसी वटलोहीमे पानी भरकर उसे गर्म किया जा रहा है तो उसमे अन्दर ही अन्दर बिन्दुवे उठकर यत्र तत्र भ्रमण करती रहती है, इसी प्रकार आत्माके प्रदेशोमे भी एक कम्पन सा होता है। उस कम्पनका नाम है योग। ये योग हम आप सबके चल रहे है। अब सयोग-

केवली भगवान अयोगकेवली होनेको है जहाँ योग नही रहेंगे, निष्कम्प अवस्था रह गयी । उस अवस्था रहनेके पहिले योग किस तरह समाप्त होते है उसकी विधि बतायी जा रही है । अब वे भगवान काययोगको छोडकर वचनयोग और मनोयोगमे ठहरकर वादरकाययोगको सूक्ष्म करते हैं । एक समयमे एक जीवके एक योग रहा करता है । जैसे किसी एक सम्यग्दृष्टि चतुर्थ गुणस्थान वाले जीवके योग पाये जायेंगे कितने ? आहारकाययोग, आहारक मिश्रकाययोग और योगरहितके बिना ग्यारह योग तो चतुर्थ गुणस्थानमें होते है, किन्तु औदारिकद्वय व वैक्रियकद्वय एक सम्यग्दृष्टिके नही पाये जाते । एक सम्यग्दृष्टिका अर्थ है चाहे वह देव हो, चाहे नारकी नारकी हो या मनुष्य हो, या सज्ञी तिर्यंच हो, कोई एक ले लो । तो अगर मनुष्य सम्यग्दृष्टि है तो वैक्रियक काययोग, वैक्रियक मिश्रकाययोग न हो सकेंगे । तब ग्यारह योग होगे । उन ग्यारह योगोमे एक साथ उनकी वृत्ति नही है । कार्माणकाययोग तो विग्रह गतिमे था, औदारिक मिश्रकाययोग जन्मस्थानपर पहुचनेपर था अब नही रहा । अब तो ९ योग चल रहे । उनमे भी एक समयमे एक योग रहेगा, शेष ८ न रहेंगे । यहाँ सयोगकेवली की बात चल रही है, सो ये किसी एक योगमे रहकर अन्य योगका निरोध करते है । काय-योगसे सूक्ष्म काययोगका नम्बर आया तो वे अरहत भगवान या तो वचनयोगमे आ जायेंगे या सूक्ष्म मनोयोगमें आयेंगे । उस समय वादरकाययोगको कृश कर दिया जायगा । तो अब वादरकाययोग भी उनके नही रहा । तब क्या रहा ? सूक्ष्मवचनयोग, सूक्ष्ममनोयोग और सूक्ष्मकाययोग । अब इन तीनो योगोका निरोध कैसे होता है ? उसे बताते है ।

काययोगे तत सूक्ष्मे स्थितिं कृत्वा पुन क्षणात् ।
योगद्वय निगृह्णाति सद्यो वाक्चित्तसज्ञकम् ॥२१७१॥

सूक्ष्मकाययोगमे स्थित प्रभुके समस्त वचनयोग व मनोयोगका विनाश—अब वे भगवान सूक्ष्मकाययोगमे स्थिति करके सूक्ष्मवचनयोग और सूक्ष्ममनोयोगको नष्ट कर देते है, इस समय वे भगवान केवल सूक्ष्म काययोगमे रह गये । और वादरकाययोग सभी मनोयोग और सभी वचनयोग, ये दूर हो गये । इस समय प्रभुमे सूक्ष्मकाययोग रह गया । यह स्थिति बतायी जा रही है उन अरहत भगवानके अन्तिम समयकी, जिसके बाद उनको अयोगकेवली भगवान की स्थिति प्राप्त होनी है । जिस समय समस्त योगोको नष्ट करके सूक्ष्मयोगमे आ गए तो क्या होता है, उसका वर्णन करते है ।

सूक्ष्मक्रिय ततो ध्यान स साक्षात् ध्यातुमर्हति ।
सूक्ष्मैककाययोगस्थस्तृतीय यद्धि पठ्यते ॥२१७२॥

सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपाति शुक्लध्यानके अधिकारी—तदनतर उनके सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपाती नामका तृतीय शुक्लध्यान प्रकट होता है । अब आपने जाना होगा कि यह तीसरा शुक्लध्यान

न तो मनोयोगके समय रहा । सिर्फ औदारिक काययोगके समय जब कि सूक्ष्म काययोग रहा तब यह सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपाति शुक्लध्यान हुआ । जहाँ सूक्ष्म काययोग रहा वह है सूक्ष्मक्रिय, अब ये अयोगकेवली अवस्थामे पहुचनेके सम्मुख है उस समय यह सूक्ष्मक्रियाऽप्रतिपाती नाम का शुक्लध्यान प्रकट होता है । यह इस समय सूक्ष्मकाययोगमे विराजे है । यहाँ उनका तृतीय शुक्लध्यान है । यह प्रकरण शुक्लध्यानका चल रहा है । पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्ल-ध्यान ८वे गुणस्थानसे लेकर ११वें गुणस्थान तक अविरल रूपसे रहा और क्षपक श्रेणीसे चलने वाले साधुवोके १०वें गुणस्थानके बाद सीधा १२वा गुणस्थान होता है । तो उसके प्रारम्भमे थोडे समय पहिले शुक्लध्यान रहता है, बादमे यह द्वितीय शुक्लध्यान होता है । देखिये सब शुक्लध्यानोका प्रताप वर्तमान शुक्लध्यानके बलसे तो मोहनीय कर्मका नाश हुआ था और द्वितीय शुक्लध्यानके बलसे शेष तीन घातिया कर्मोका नाश हुआ । अब इस सूक्ष्म-क्रियाऽप्रतिपाति नामक शुक्लध्यानके बलसे बहुत कर्मोंकी स्थितियाँ अनुभाग ये सब जीर्ण शीर्ण हो जाते है । उस समय केवल ८५ प्रकृतियाँ शेष रहती है, उनकी कैसे निर्जरा होती है, इसकी बात आगे कहेगे ।

द्वासप्ततिर्विलीयन्ते कर्मप्रकृतयो द्रुतम् ।
उपान्त्ये देवदेवस्य मुक्तिश्रीप्रतिबन्धकाः ॥२१७३॥

आत्मशोधनके अतिरिक्त अन्य कार्यकी अकार्यता——लोकमे सार मात्र इतना है कि यह जीव अपने आपके आत्माकी शुद्धि प्राप्त कर ले । ये बाहरी उपाधि, पर बधन आदि जो कुछ है वे सारे दूर हो जाये तब आत्माका शुद्ध विकास हो, आत्मामे निराकुलता जगे । इससे बढकर लोकमे कोई और कार्य भी कहा जा सकता है क्या ? एकका भाई गुजर गया तो लोग उसके पास आये सहानुभूति प्रकट करनेके लिए और कोई यह भी पूछ बैठा कि तुम्हारा भाई अपने जीवनमे क्या कर गया ? तो वह उत्तर देता है——क्या बताये यार क्या कारोनु-माया कर गए । बी ए. किया, नौकर हुए, पेन्सन किया और मर गए । सबकी हालत यही है——व्यापार करने वाले भी क्या कर जाते है ? कुछ सीखा, कुछ उसमे प्रवेश किया, व्यापार किया, धनी बने और मर गए । यो सबकी यही हालत है, चाहे धनी हो, चाहे विद्यावान हो । ये धनिक लोग, ये विद्वान् लोग कल्पना करते हैं कि इस देशमे हम नाम कमायेंगे, इति-हासमे हमारा नाम चलेगा । अरे यहाँके मरे इस ३४३ घनराजू लोक प्रमाणमे न जाने कहाँ के कहाँ पैदा होगे ? और इतने बडे लोकके आगे यह थोडीसो परिचित दुनिया कुछ गिनती भी रखती है क्या ? तो इस लोकमे सारभूत काम मात्र यही है कि जिस प्रकार भी बने आत्मशुद्धि प्राप्त कर लें । मिथ्यात्वमे सारे सकट है । कषायोमे किसीको चैन नही मिलती । ऐसी वाञ्छाको ही तो निदान कहते हैं और निदान आर्तध्यानमे शामिल हैं । लोकमे सार अन्य कुछ कार्य नही है । केवल आत्मशुद्धि प्राप्त हो, यही एक उत्कृष्ट कार्य है ।

शुक्लध्यानोंका प्रताप—जो पुरुष वस्तुस्वरूप जानकर यथार्थ तत्त्ववेदी बने, ससार शरीर भोगोसे विरक्त हुए, आत्मशुद्धिके मार्गमे जिन्होने कदम बढाया, अतस्तत्त्वकी धुनि बनी ऐसे पुरुष सर्वका परिहार करके, मूर्छा दूर करके निर्ग्रन्थ आत्मसाधन किया, और उस साधना के फलमे श्रेणीपर चढे, क्षपकश्रेणीसे चढकर प्रथम शुक्लध्यानके प्रतापसे चारित्र मोहनीयकी शेष २१ प्रकृतियोका क्षय किया और क्षीणमोह गुणस्थानवर्ती बनकर शेप तीन घातिया कर्मों का विनाश किया और अब चार घातिया कर्मोके नष्ट होनेपर वे अरहत प्रभु हुए, सयोगकेवली बने, तब उनके योग भी समाप्त हो जाते है, सूक्ष्मकाययोग भी नष्ट हो जाता है सूक्ष्मक्रियाप्रति-पाति ध्यानके प्रतापसे, तब वे अयोगकेवली होते है। अयोगकेवली भगवानके उपात्य समयमे ७२ प्रकृतियोका विलय हो जाता है। कर्मोंकी कुल १४८ प्रकृतिया होती है, जिनमेसे ६३ प्रकृतियोका अभाव होनेपर अरहत अवस्था बनती है। शेप रहती है ८५ प्रकृतिया, जिनमे ७२ प्रकृतियोका कर्मोके प्रकारोका उपान्त्य समयमे विनाश होता है। जिस आत्माके यह बात हो रही है आदर्श तो वही है, ससारके सकटोसे सदाके लिए छूट जाने वाला आत्मा है। इतना दृढ निर्णय बनाये कि मनुष्यजीवन पाया है तो सम्यक्त्व प्राप्त करें और चारित्रमे अपना कदम बढायें, जिससे स्वानुभूतिमे हमारी स्थिरता रहे। ससार सकटोको नष्ट करनेका अमोघ उपाय रच डाले, यही जगतमे सारभूत काम है।

तस्मिन्नेव क्षणे साक्षादाविर्भवति निर्मलम्।
समुच्छिन्नक्रिय ध्यानमयोगिपरमेष्ठिनः ॥२१७४॥

अयोगकेवली भगवानके समुच्छिन्नक्रिय शुक्लध्यानका आविर्भाव—भगवान अयोग-केवली परमेष्ठीके साक्षात् निर्मल समुच्छिन्नक्रिय नामका चतुर्थ शुक्लध्यान उत्पन्न होता है। उस शुक्लध्यानके प्रतापसे ७२ प्रकृतियोका नाश किया था। अब शीघ्र ही शेप तेरह प्रकृतियो का विनाश करके गतिरहित हो जायेंगे। जीवोमे जो खोज की जाती है वह एक सपर्यायताके रूपसे की जाती है। जैसे जीव ५ प्रकारके है—नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव और गतिरहित। लेकिन यह पहिचानिये कि जिसपर ये ५ अवस्थाये बीतती है, वह स्वरूपत: है क्या? जो इन ५ अवस्थावोमे एक ध्रुव तत्त्व है वह स्वरूप, उसकी पहिचान करनेके लिए, उसका परिचय और अनुभव करनेके लिए ये समस्त ज्ञान बताये गए है। उसे कारणपरमात्मतत्त्व कहो, कारणसमयसार कहो, शुद्ध स्वरूप, चैतन्यभाव किन्ही भी शब्दोसे कहो—उसका ध्यान जिसने पाया, उसकी ज्योति जिसके प्रकट हुई है वह ही धन्य है, वह ही ससारसकटोसे छूट-कर सदाके लिए अनत आनदस्वरूप बना है। यहाँ चरम साधक अयोगकेवली भगवानके समु-च्छिन्नक्रिय नामक शुक्लध्यान होना बताया जा रहा है। ध्यान तो क्या है, चित्त तो है नही, न वे सज्ञी है, न असज्ञी है, जिस स्थितिमे कर्म झडते है वह स्थिति इस ध्यानमे पाई जाती

है। विशुद्ध ध्यान बने तो कर्म झडते है। तो कर्म झडनेकी बात सुनकर वहाँकी स्थितिका किसी विशेषणसे नाम तो लिया जायगा। वह है समुच्छिन्नक्रिया। इसके बाद क्या होता है अयोगकेवली भगवानके सो सुनो।

विलय वीतरागस्य पुनर्यान्ति त्रयोदश।
चरमे समये सद्यः पर्यन्ते या व्यवस्थिता. ॥२१७५॥

अयोगकेवलीके अन्तसमयमे अवशिष्ट समस्त प्रकृतियोका विनाश—फिर उस अयोगकेवली भगवानके अन्तिम समयमे शेष बची हुई तेरह प्रकृतियोका विलय हो जाता है। देखिये सब ही अरहतोंके तेरह प्रकृतिया अन्तमे नही रहती। किसीके बारह शेष होती है, किसीके तेरह। तीर्थंकर प्रकृतिके उदय वाले जो तीर्थंकर है उनके तीर्थ प्रकृति होनेसे तेरह प्रकृतिया कही जाती है, जो तीर्थंकर तो नही है किन्तु उत्कृष्ट मुनिराज होकर जिन्होने कर्मोंका विनाश किया हे उनके बारह प्रकृतियोकी सत्ता होती है। जिनके बारह प्रकृतिया है उनके बारहका विनाश होता है, जिनके तेरह प्रकृतिया हैं उनके तेरहका विनाश होता है। इस प्रकार वे समस्त कर्मोंसे रहित हो जाते है और उस ही क्षण उनका शरीर कपूरकी तरह उड जाता है और वे इस ससारसे अनतकालके लिए विदा हो जाते है। उस समय विदाई देनेके लिए देव देवेन्द्र आते है मोक्षकल्याणक मनानेके लिए। यहाँ भी कोई किसी अच्छे देश जा रहा हो, जहाँ कि सुख साधन और उत्कर्ष बहुत हो सकते हो तो ऐसे देशमे भेजनेके लिए विदाईके समय यहाँ कितने लोग उपस्थित होते है और कितना ठाठसे भेजते हैं। फिर भला बतावो—जो पुरुष इन सासारिक विपदाओसे सदाके लिए हटकर आनदमय मोक्ष अवस्थामे जा रहा हो और वह हम आपके बीच बहुत बडे परिचयमे था गृहस्थावस्थामे, मुनि अवस्थामे, अरहत अवस्थामे, जिनके चरण रजको मस्तकपर चढाकर हम अपना अहोभाग्य समझते थे, भला ऐसे प्रभुका मोक्षकल्याणक मनानेके लिए कितने ठाठ और उत्साह मनाये जाते होगे?

तदासौ निर्मल शान्तो निष्कलङ्को निरामय।
जन्मजानेकदुर्वारबन्धव्यसनविच्युतः ॥२१७६॥

निर्मल शान्त निष्कलङ्क परमेष्ठित्व—उस समय ये भगवान निर्मल हो जाते है, निर्मल तो ये अरहत अवस्थामे हो गए थे। कोई विकार नही रहा, विशुद्ध ज्ञान, परम वीतराग दशा, अनत आनद। सिद्ध परमेष्ठीसे अरहत भगवानके कोई कमी नही रही अनुभवनमे, परिणमनमे, सर्वज्ञतामे, आनदमे, लेकिन ऊपरी पिटारा जो पहिलेसे लदा आया है और कुछ अघातिया कर्म जो कि गुणका घात करनेमे तो समर्थ न थे, पर पहिलेसे ये जुटे आये हैं, इनका अब वियोग होता है। तो उस मलसे भी दूर हो जाते है। वे प्रभु शान्त है, निष्कलङ्क हैं, कल ही नही है तो कलङ्क कहासे आये? जितनी भी आपदाये है वे सब कलसे उत्पन्न

होती है, कल मायने शरीर। जैसे लोग कहते न कि हमे कल-कल नही सुहाता तो वह कल-कल क्या है ? वहाँ शरीर ही शरीर है, वे शरीर एक दूसरेसे भिड रहे है, होहल्ला कर रहे है, वह ही कल-कल है। तो वे प्रभु कलसे भी रहित है, कलकसे भी रहित है।

निरामय निरापद सिद्ध परमेष्ठित्व—प्रभु रोगरहित भी है। जब शरीर ही नही है तो रोग कहाँ ठहरे, दर्द कहाँ हो ? जन्मजरामरण आदिक सभी रोग उनसे विनिर्मुक्त हो गए है, जन्मसे ही उत्पन्न होने वाली अनेक दुर्गन्धियोके पदसे वे मुक्त हो गए है। मोही जन तो अपना थोडासा यश फैल जानेपर अपनी चतुराई समझते है, कदाचित् देव दर्शनके लिए भी जाये तो उनके चित्तमे उस देवकी महत्ता नही ज्ञात होती किन्तु देव दर्शन करनेके ढगसे उन्होंने अपना ही बडप्पन बना लिया। देव तो होगा कोई, बुद्धिमान तो हम है, लोकमे हमारा कैसा यश है, लोकसे हम कैसी अपनी कला दिखाते है, लेकिन ये सब कलायें, ये सब वैभव, ये सब स्वप्नकी बातें ये क्या काम देंगे, ये ही बन्धन है, विपदा है मुझमे। सीधा सादा समझना हो तो इतने शब्दोमे समझा जा सकता है कि हमे जो कुछ मिला है जो समागम मिला है, जिसके बीच हम है, ये सब व्यसन है, बन्धन हैं, उपाधिया है, इनमे रमनेसे हमे कल्याण न मिल सकेगा। निरखते रहिए अपने आपमे बसे हुए शुद्ध सनातन स्वरूपको। ऐसी धुनिमे रहकर यदि कुछ वैभव कम हो जाय, व्यापार कम हो जाय, कैसी ही परिस्थितिया आ जाये वे कोई भी मेरे बाधक नही है। वे समस्त परिणतिया बाह्य पपार्थोकी है, मै तो अपने आपके आनन्दपुञ्ज प्रभुसे मिल रहा हूँ, फिर मेरे लिए क्या बाधा है ? तो जन्मसे उत्पन्न होने वाले समस्त बध व्यसनोसे अब ये प्रभु रहित हो गए है।

सिद्धात्मा सुप्रसिद्धात्मा निष्पन्नात्मा निरञ्जन ।
निष्क्रियो निष्कल शुद्धो निर्विकल्पोऽतिनिर्मल ॥२१७७॥

प्रभुका सिद्धात्मत्व—ये प्रभु अब सिद्धात्मा हो गए। जिनका आत्मा सिद्ध हो गया, पक गया, विकसित हो गया, परिपूर्ण अवस्थाको प्राप्त हो गया, अथवा समस्त दुर्गतियोसे निकलकर उत्तम स्थानमे पहुच जानेको सिद्ध होना कहते है। ये प्रभु योगी जनोंके उपयोगमे सुप्रसिद्ध है, निष्पन्न आत्मा है, जो यथार्थतया होना चाहिए वह निष्पत्ति अब हुई है, जो था वैसा हो गया। मोहीजन ऐसा कह सकते है कि हे प्रभो ! तुम्हारी क्या बढाई ? तुम क्या हो, जो थे सो ही रह गए। तुम तो उतने ही हो ना, और देखो हम लोगोमे कैसी शक्ति है कि चौरासी लाख योनियोमे घूमते फिरते है, एकेन्द्रियसे लेकर पचेन्द्रिय तकके नाना शरीरो मे रहते है, अनेक प्रकारकी लीलाएँ करते है, पर भाई यह तो सारा दु खजाल है, एक अपने आपके उस निरपेक्ष सहजस्वरूपको जाने बिना ये सारी विडम्बनायें बन गईं। निष्पन्न आत्मा तो वह प्रभु है जिसको अब कुछ भी नही बनना है। जो उच्चसे उच्च बात आत्मा

की हो सकती हे वह वहाँ प्रकट हुई है ।

प्रभुका निरञ्जनत्व—वे प्रभु निरञ्जन हैं, अञ्जनरहित हैं । अब न उनमे कोई कर्म है, न कोई रागद्वेषादिक भाव है, न शरीर है । सब अञ्जनोंसे रहित निरञ्जन हो गए । लोग अपना नाम रखते है तो प्राय' भगवानके नामपर या आत्मविकासके नामपर रखते हैं । लोक मे उसका महत्त्व कूतते तो हैं पर अपने आपमे अच्छा नाम कहलवा लेना यहाँ तक ही वे उस महत्त्वको समाप्त कर देते हैं । जिन नामोमे इतनी रुचि हुई है उन नामोंके अनुरूप जिनका विकास हुआ है उनका आदर्श समभना चाहिए, जिसके अनुसार हम अपना उत्कर्ष कर सकें । ये प्रभु निष्क्रिय हैं । अब उनको कुछ करनेको नही रहा, कृतार्थ है, वास्तविक सुख भी वास्तवमे तभी है जब यह भाव बना हो कि मेरे करनेको तो अब कुछ भी नही रहा । इच्छा हुई कि चलो मदिर चलें तो इस इच्छाके साथ ही है ना कुछ क्लेश ? मदिर जाना है, मदिर जानेका काम पडा है ऐसा भाव बना है जिससे वहाँ क्लेश है । यह बात एक ऊँचे दृष्टान्तके रूपमे कही । बात यह है कि शान्ति अथवा सुखकी प्राप्ति तभी होती है जब यह भाव बने कि मेरे करनेको अब यह काम नही रहा । जिन लोगोको भी इन रात दिनके चौबीस घटोके अन्दर जो कुछ शान्ति व सुखकी प्राप्ति हो रही है वह इसी भावसे कि अब मेरे करने को कुछ रहा नही, पर इसपर दृष्टि नही है किसीकी, दृष्टि तो इस बातपर जाती है कि मुझे ये ये चीजें प्राप्त हुईं, इससे सुख मिला । तो वे प्रभु कृतार्थ है, निष्क्रिय हैं ।

प्रभुकी परम शुद्धता—प्रभु शरीररहित हैं, शुद्ध है, निर्विकल्प हैं और अत्यन्त निर्मल है । जो बात जिस विधिसे होती है वह उस ही विधिसे प्राप्त की जा सकती है—चाहे तो किसी अभीष्ट पदार्थको, पर उसमे अपना पुरुषार्थ न लगाये तो प्राप्ति नही होती । एक बालक बोला—माँ मुझे तैरना सिखा दो । अच्छा बेटा सिखा देंगी । माँ तैराना सिखा तो देना पर मुझे पानीमे पैर न रखना पडे और मुझे तैरना आ जाये । अरे भाई यह बात तो हो ही नही सकती । तैरना सीखनेके लिए पानीमे पैर धरनेकी तो बात क्या, पानीमे एक दो बार डूबने जैसी भी स्थिति आयगी, तब तैरना सीख पायेगा । ऐसे ही लोग सोचते है कि काम तो हमारा अच्छा बन जाय, धर्मका पालन हो जाय, कर्म कट जायें, सद्गति मिले, मुक्ति हो जाय, पर उसकी जो विधि है, जो कार्य करने आवश्यक है इस परमपदकी प्राप्तिके लिए उन कार्यो के करनेके क्या समाचार है उन्हे भी तो जानें । बहुत अधिक न जानो तो एक बात पकड लीजिए कि मैं क्या हू ? जगह-जगह पूछ करके, चर्चा करके, विचार करके, ध्यान करके यह निर्णय बना लीजिए कि मैं क्या हू ?

स्वपरिचय बिना कल्पित दु सह क्लेशका अनुभवन—उस मैंको ही तो भूल गए लौकिक प्राणी, इसलिए दुखी हो रहे हैं, रो रहे हैं । एक कोई लडका था उसका नाम था

रुलिया। उसकी माँ ने एक दिन साग भाजी लेनेके लिए बाजार जानेको कहा। वह लडका बोला—माँ मुझे न भेजो बाजार, कही मै रुल न जाऊँ। तो उस माँने क्या किया कि उसके हाथमे एक धागा बाँध दिया और कहा—जावो बेटा, अब तुम न रुलोगे। आखिर हुआ क्या, कि वह धागा बाजारमें भीडभाड़मे टूट गया, वह रोने लगा। रोते रोते घर लौट आया और कहने लगा—देखो माँ मैं कहता था ना, कि मुझे बाजार न भेजो साग भाजी लेने, कही मै रुल न जाऊँ। तो वही हुआ ना। तो उस माने कहा—बेटा तू हैरान मत हो, कुछ देरके लिए सो जा, तेरा रुलना मिल जायगा। जब वह सो गया तो उसके हाथमे एक धागा बाँध दिया। जब वह सोकर जगा तो मांने पूछा—देख बेटा अब तू मिल गया ना? · हाँ मिल गया। तो ऐसे ही समझो, ये सब खुद खुदको भूले है, बस इसीसे दुःख है। दुःखकी यहाँ और कोई बात नही। अपना लक्षण पहिचानो—मैं क्या हू, यह निर्णय करो और इसपर ही डट जावो—कि मै यह हू। उसको ही निरखते रहो चावसे, और कुछ भी नही देखना है। यहाँ किसे देखना, किसको क्या दिखाना, कौन क्या करेगा, यो धुनसे आत्मदर्शन करे तो यह सब मोक्षपथ मिलेगा।

आविर्भूतयथाख्यातचरणोऽनतवीर्यवान्।
पराशुद्धि परिप्राप्तो द्रष्टेर्बोधस्य चात्मन. ॥२१७८॥

आत्माके यथार्थ परिज्ञानसे उत्कर्षताकी प्राप्ति—कर्मोका यथायोग्य क्षयोपशम पाकर ज्ञानी सतोंके उपदेशसे अपने चित्तको धर्मकी ओर अग्रसर करके विशुद्ध परिणामोके उत्तरोत्तर निर्मलताके बलसे उच्च परिणामोंके द्वारा जब मिथ्यात्व कर्मका विश्लेष कर दिया जाता है, सम्यक्त्व उत्पन्न होता है तब इस जीवको विदित होता है कि अहो, मै तो यह स्वय आनन्द की निधि हू। यहाँके तो सभी पदार्थ परिपूर्ण है, मेरेमे भी कुछ अधूरापन नही है। मुझे क्या वनना है, जो हू सो सब बना हुआ हू। इस तत्त्वज्ञानके बलसे जिसने सहज आनद प्राप्त किया है, निज प्रभुताके दर्शन किए हैं ऐसा महाभाग महात्मा चारित्रके बलसे परम निर्ग्रन्थ आत्म-स्वरूपका अनुभव करके श्रेणियोमे चढकर प्रथम शुक्लध्यानके अनुभवसे मोहनीय कर्मका क्षय करता है और द्वितीय शुक्लध्यानके बलसे शेष अघातिया कर्मोका विनाश करता है और फिर योगोका निरोध करके अयोगकेवली होकर एक साथ चार घातिया कर्मोका विनाश करके सिद्ध होता है।

जीवकी चिरन्तन अवस्थायें—इस जीवकी चिरकाल तक रहने वाली दो अवस्थायें है—एक तो निगोदकी दशा और १ सिद्ध अवस्था। इस जीवको निगोद अवस्थामे अनतकाल तक रहना पडा था। अब सिद्ध अवस्था पायेंगे तो वह अनतकाल तक रहेगे। वे अयोगकेवली प्रभु अब हिलते-डुलते नही, योगी नही। सिद्ध भगवान भी योगरहित होते है उन्ही जैसी

निष्कम्पता पाई है देखिये—कैसा तो ज्ञानपुञ्ज स्वरूप आत्मा, उसका क्या सम्बध कि वह हिले डुले। ज्ञानपुञ्ज अपने आपके अन्दर ही रहकर जलबिन्दुवोकी तरह चक्कर लगाया करे इसका क्या अवकाश था, कैसा विकार हुआ, कैसा विभाव हुआ कि ससार अवस्थामे इस आत्माके, चाहे शरीर निश्चल भी बैठा हो तब भी भीतर ही भीतर प्रदेश परिस्पद रूप हुआ करते है, किन्तु अब आधार शरीरसे विविक्तता हो रही, अतएव उनके प्रदेश परम निष्क्रिय हो गए। सिद्ध भगवान शरीररहित है। परमात्मा दो प्रकारके कहे गए हैं—एक सकलपरमात्मा, दूसरा निकलपरमात्मा। कल मायने शरीर। शरीरसहित परमात्माको सकलपरमात्मा कहते है। यह अवस्था तेरहवें और १४वे गुणस्थानमे है। शरीर है और वीतराग भगवान भी है। अब अयोगकेवलीके अन्त समयमे शरीरका व अवशिष्ट कर्मोका एक साथ वियोग होता है। तो अब ये सिद्ध भगवान कायरहित हो गए। ये प्रभु शुद्ध है, सर्वथा शुद्ध है। न द्रव्यकर्मका सम्बध है न भावकर्मका, न रागादिक विकारोका, न शरीरका। इन सबका अब त्रिकाल भी सम्बध न होगा। ऐसे ये पभु निष्कल है।

विकल्प हटते ही प्रभुताकी स्वयंभुता—अतरगमे निरखते जाइये—जो सिद्ध प्रभुमे बात है वह सब अपने स्वरूपमे बात है, उनका विकास है और यहाँ शक्तिरूपमे है, अन्तर यही हो गया कि उनके समस्त गुणोका विशुद्ध स्वाभाविक विकास है और यहाँ आवरण पडा हुआ है, यहाँ विषय कषायोंके विकार चल रहे है और अविकसितता हैं, पर होता क्या है वहाँ, जो है यहाँ, वही केवल रह जाता है। केवल हटने ही हटनेका काम है, जुडनेका कोई काम नही। प्रभुता पानेके लिए केवल हटाने हटानेकी बात है, जो लगा हुआ रहेगा वह तो लगा ही है। कर्म विभाव विकार ये सब हटें तो जो तत्त्व है, जो परमार्थ है वह प्रकट हो जाता है। इसीके मायने हैं प्रभु हो गए, सिद्ध हो गए। वे प्रभु शुद्ध है, निर्विकल्प हैं, किसी भी प्रकारका विकल्प नही है। विकल्प तो बडे-बडे योगीश्वरोकी साधनाको रोक देते हैं। पाँचो पाण्डव जब तपश्चरण कर रहे थे और उनके दुश्मनोने बहुत गर्म लोहेके आभूषण उनके शरीरके अगोमे पहिनये थे। उस भयानक उपद्रवको देखकर नकुल और सहदेव दो भाइयोको यह विकल्प हुआ कि देखो ये पवित्र निर्दोष धर्मात्मा तीन बन्धु किस तरहसे दुःसह उपसर्ग सह रहे है, लो इतनेसे विकल्पके कारण उन दोनोका मोक्ष रुक गया।

प्रभुताकी प्राप्तिमे विकल्पकी बाधकता—बाहुबलि स्वामी निराहार एक वर्ष तक एक आसनसे तपश्चरण करते रहे, उनके बलकी महिमा क्या बतायी जाय, पर उन्हे तब तक केवलज्ञान नही हुआ, तब तक प्रभुता नही मिली जब तक उनको यह विकल्प रहा कि अरे मेरे कारण मेरे भाईका अपमान हो गया। जब उनको यह विकल्प था तब भरतेश्वर वहाँ गए और नमस्कार किया, उनकी सानुराग प्रसन्नताको देखकर उनका विकल्प हटा और

केवलज्ञान प्राप्त हुआ । तो यह थोडासा भी विकल्प एक बहुत बुरी चीज है । यदि कोई तौलने की चीज होती विकल्प तो आपसे जब हम यह पूछते कि कितने विकल्प है आपमे, तो शायद आप क्विन्टलसे नीचे न कहते । पर वह विकल्प कोई तौलनेकी चीज नही । ऐसे विकल्पोमे रहकर हम आप कैसे सुगति प्राप्त कर सकेंगे ? अरे इतना तो सोच लें कि जब कुछ रहना ही नही है अपने पास, आखिर वियोग होगा ही, हम सब कुछ छोडकर जायेंगे, चाहे यहाँ रहते हुएमे छूट जाये, चाहे मरण होनेपर छूट जायें, पर छूटना तो है ही । तो जो बात छूटनी है उसकी हम आसक्ति न रखें और जो कल्याणकी बात है तत्त्वज्ञान, कुछ ध्यानका आश्रय चारित्रमे अपनेको बढाना—इन सब बातोकी ओर कुछ ध्यान दें तो भला भी हो जाय ।

अयोगकेवली भगवानकी परम यथाख्यातरूपता—ये अयोगकेवली भगवान निर्विकल्प शान्त निर्मल है, जन्ममरण दूर हो गए । जिनके यथाख्यात चारित्र प्रकट हुआ, हुआ था, अब वे ऐसे परम यथाख्यात है, ऐसा विशुद्ध स्वाभाविक उनका परिणमन है कि यथाख्यात चारित्र मे उनकी उत्कृष्ट स्वाभाविक परिणति है जहाँ योग भी नही है । यद्यपि क्या बता सकें कि यथाख्यात चारित्रमे विशेष अधिक शुद्धता क्या है, किन्तु जहाँ चारित्रका व्यवहार है, जहाँ तक उसका कथन चलता है चरणानुयोगकी ही चरणविधिसे तो वह अतीत है । अब वे प्रभु असयम, सयम, सयमासयम—इन तीनोसे रहित होने वाले है । शब्दोसे यो लगावो कि जैसा आत्माका स्वरूप है वैसा ही प्रसिद्ध हो गया, ख्यात हो गया, ऐसा चारित्र, ऐसा चरण, ऐसी स्थिति उन प्रभुकी है । वे अनन्त वीर्यवान हे । प्रभुमे क्या अनत शक्ति है ? प्रभुमे जो अनत गुण प्रकट हुए है वे अनत गुण बराबर आत्मामे अनतकाल तक बने रहे ऐसी बात उनमे चल रही है । वह उनकी उस अनत शक्तिका ही प्रताप है । यो वे प्रभु अनत शक्तिमान है ।

अयोगी त्यक्तयोगत्वात्केवलोत्पादनिर्वृतः ।
साधितात्मस्वभावश्च परमेष्ठी पर प्रभु ॥२१७९॥

अयोगी योगेश्वरकी परमेष्ठिता—यह ज्ञानार्णव ग्रन्थ ध्यानकी मुख्यतासे प्रतिपादन करता है । इस ग्रन्थकी रचना शुभचन्द्राचार्यने भर्तृहरिभाईको सम्बोधनेके लिए की । तो उस ध्यान विधिमे चूकि बारह भावनाओका भाना अधिक ध्यानका साधक होता है, सो भावनाओ के वर्णनसे इस ग्रन्थकी शुरुवात की, और दिव्य उपदेशसे अन्तमे ध्यानका वर्णन किया । यहाँ व्युपरतक्रियानिवृत्ति शुक्लध्यानसे आत्माकी क्या स्थिति बनती है, उसका वर्णन है । अब वे प्रभु शरीरके बन्धनसे भी दूर है, कर्मोसे भी निराले है और रागादिकके लवलेशसे भी दूर कुछ पहिलेसे हो हो गये है । जो मात्र कुछ है ज्ञानपुञ्ज वही उनके प्रकट है । ऐसी परम शुद्धिको प्राप्त हुए वे भगवान समस्त गुणोकी सिद्धिसे विराजे हैं, जिनका दर्शन और ज्ञान अनत है, परम शुद्ध है, वे योगरहित है और केवल जो कुछ आत्मामे स्वरूप है उस स्वरूपकी

ही वहाँ रचनायें है। यह ससार तो एक मोहियोका घर है। यहाँ रहनेके अधिकारी मोहीजन है। मोह न रहा तो अधिकार छिन गया, अब तुम जावो, तुम अब इस ससारमे रहनेके काबिल नही रहे। जब तक तुम मोह करते थे तब तक ही तुम इस ससारमे रहनेके काबिल थे। तो वे प्रभु अब सब प्रकारके मोहोसे दूर हो गए, अत्यन्त शुद्ध हो गए, केवल रह गए, जो थे सो ही रह गए। यही स्थिति अत्यत शुद्ध और अनत आनदमय है। अतः ये सिद्ध प्रभु ससारके सकटोंसे छूटनेकी इच्छा करने वाले योगीश्वरोके ध्येय है और आदर्श है।

लघुपञ्चाक्षरोच्चारकाल स्थित्वा तत परम्।
स स्वभावाद्व्रजत्यूर्ध्वं शुद्धात्मा वीतबन्धन ॥२१८०॥

अयोगकेवलीका अतिशीघ्र लोकाग्रगमन—अब ये अयोगकेवली भगवान एक छोटे अन्तर्मुहूर्तमे अयोगकेवली गुणस्थानमे रहकर मुक्त हो रहे है—लघु जो ५ अक्षर है अ इ उ ऋ लृ इन अक्षरोके शीघ्र बोलनेमे जितना समय लगता है उतने ही समय इस अयोगकेवली गुणस्थानमे रहकर ये स्वभावसे ऊर्ध्वगमन करते है क्योकि इनके सब प्रकारका बन्धन दूर हो गया। जैसे किसी तुम्बीमे राख भर दी जाय और उसे नदीमे डाल दिया जाय तो तुम्बी नीचे बैठती है। जैसे उसकी राख गल जाय, बिल्कुल अलग हो जाय तो वह तुम्बी स्वभावसे ही ऊपर आ जाती है, इसी प्रकार जब तक इस जीवमें शरीरविकारोका मैल भरा है, भार लदा है, बन्धन पडा है तब तक यह जीव इस ससारमे रहता है, और जब ये सब दूर हो, ये भार ये धूल ये राख गल जाये तो निर्भार होकर यह जीव ऊर्ध्वगमन करता है। कुछ लोगोका ऐसा ख्याल है कि यह जीव मरता है तो एक बार तो वह ऊपर जाता ही है, बादमे जहा जाता हो, चाहे नीचे जाय अथवा किसी भी दिशा विदिशामे जाय। तो भाई ऐसा नियम नही है, ऐसी बात नही है। यदि जीवको मरकर ऊपर जन्म लेना है स्वर्गादिकमे किसी भी जगह तो यह ऊपर जायगा और उदि नीचे ही जन्म लेना है तो सीधा नीचे चला जायगा। कर्मभारसे सहित है, ऊर्ध्वगमनस्वभावकी बात उसमे प्रकट नही हुई है। कदाचित् यह ऊपर भी जाता है ससार अवस्थामे तो वह स्वभावकी बात नही है। वह भी एक कर्मोकी प्रेरणा है सो जाता है ऊपर। किन्तु, जब जीव सर्वबन्धनोसे रहित हो जाता है तब इसका ऊर्ध्व गमन स्वभाव विकसित होता है, कोई बाधा नही आती है और यह ऊपर लोकमे चला जाता है और जहाँ तक लोक है वहाँ तक यह एक समयमे पहुच जाता है।

अवरोधविनिर्मुक्त लोकाग्र समये प्रभुः।
धर्माभावे ततोऽप्यूर्ध्वगमन नानुमीयते ॥२१८१॥

अयोगकेवलित्वके अनन्तर प्रथम समयमे ही निर्वाणभूमिसे निर्वाणक्षेत्रमे गमन—जब सर्व प्रकारके बन्धन जीवके कट जाते हैं तो इसका कोई विरोध करने वाला नहीं रहा

फिर यह अपने ऊर्ध्वगमन स्वभावसे एकदम लोकके अग्रभाग तक पहुचता है, आगे नही पहुचता। लोकसे बाहर न पहुचनेका एक हेतु है कि जहाँ तक लोक है, जहाँ तक गतिका हेतुभूत धर्मास्तिकाय है वहाँ तक गमन हुआ है। ये प्रभु लोकके अग्रभागमे ठहर गए, जितने भी सिद्ध हुए जहाँसे हुए वहीसे सीधे लोकमे विराजमान है, उनके मोडे वाली गति नही होती। मोडेकी जरूरत भी नही। ४५ लाख योजन प्रमाण यह मनुष्य लोक है। यहाँसे जिस जगहसे मुक्त होगे उसके सीधमे लोकके अग्रभागमे वे अवस्थित हो जायेगे। सिद्ध लोक भी ४५ लाख योजन प्रमाण है। इस मनुष्य लोकमे कोई भी स्थान ऐसा नहीं मिलेगा जहाँसे अनेक सिद्ध न हुए हो। जिस स्थानपर हम आप अभी बैठे हुए है वहाँसे भी अनेक सिद्ध हुए। तब फिर यह निर्वाण क्षेत्र हुआ। इसकी लालसा कौन करे ? यहाँ हम आप रहते है कहाँ ठहरे, कहाँ सोयें, कहाँ शौच जाये, आखिर सब यही तो करेंगे। इसकी महत्ता कौन जानता है ? वे देव और देवेन्द्र चाहते है कि मैं इस मनुष्य लोकमे जन्म लूँ जहाँ निर्वाण क्षेत्र है। यहाँका एक-एक प्रदेश एक-एक जर्रा-जर्रा समझिये यह निर्वाणभूमि है जहाँ हम आप विराज रहे है। तो ये प्रभु लोकके अग्रभागमे पहुचे है ऊर्ध्वगमन करके।

धर्मोगतिस्वभावोऽयमधर्मः स्थितिलक्षण।
तयोर्योगात्पदार्थाना गतिस्थिती उदाहृते ॥२१८२॥

धर्मद्रव्य व अधर्मद्रव्यका निमित्तत्व—ये धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य क्या है ? हैं ये सूक्ष्म अमूर्त तथा रूप, रस, गध, स्पर्शसे रहित, किन्तु ये ऐसी एक असाधारणताको लिए हुए है कि जीव और पुद्गल गमन करे तो उनके गमनमे निमित्त होते है। जैसे कोई मुसाफिर गर्मीके दिनोमे चला जा रहा है, रास्तेमे कोई वृक्ष मिला तो कुछ देर वह उस वृक्षके नीचे बैठकर विश्राम करता है। वृक्षने उसे बुलाया नही, किन्तु वह मुसाफिर स्वय वहाँ जाकर ठहरता है, तो वह वृक्ष उसके ठहरानेमे उदासीन कारण है, ठहरने वाला ठहरना चाहे तो ठहर जाये, इसी प्रकार ये जीव जब चलें, उनका गमन हो तो उसमे यह धर्मद्रव्य सहायक निमित्त है और अधर्मद्रव्य चलते हुए जीव पुद्गल जब ठहरें तो उनके ठहरानेमे उदासीन निमित्त है। यह धर्मद्रव्य लोकाकाशमे ही रह रहा है, इससे बाहर नही, अधर्मद्रव्य भी बाहर नही। ऊर्ध्वगमनस्वभावी जब ये परमात्मा ऊपर गमन कर रहे है, तो जहाँ तक धर्मास्तिकाय है वहाँ तक इसका गमन बिना अविरोधके हो रहा है। जहाँ ये सर्वथा निष्कलङ्क आत्मा ठहरे है वह सिद्ध लोक है।

सिद्धत्वव्यवस्था—सिद्धके सम्बधमे हिन्दी स्तवनमे कहते है कि—जो एक माँहि एक राजे एक माहि अनेकनो। एक अनेकनकी नहि संख्या, नमो सिद्ध निरञ्जनो॥ इसका अर्थ यह है कि सिद्ध भगवान जो कि निरञ्जन है, द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्मसे रहित है वे प्रभु सिद्ध

लोकमे विराजे है । सो एकमे एक ही है वह, एकमे दूसरा सिद्ध नही है । वस्तुका स्वरूप ही ऐसा है कि एक वस्तु दूसरी वस्तुमे नही समाती । यहाँ प्रदेशकी बात नही कह रहे, गुण पर्याय अनुभवन परिणमनकी बात चल रही है । जैसे एक घरमे रहते हुए उन गृहवासी चार आदमियोमे परस्परमे प्रेम न हो, रहते है वे एक घरमे, पर है वे एक दूसरेसे निराले, विपरीत, उल्टे । किसीमे कोई लगा ही नही है । यह तो एक मोटी बात कह रहे है । वस्तुत तो कोई भी जीव किसी अन्यमे लगा ही नही, तो ऐसे ही वे प्रभु सिद्ध लोकमे विराजे है, वहाँ अनत सिद्ध है तिसपर भी उन सब सिद्धोका परिणमन ज्ञान उनके प्रदेश एकका एकमे ही है । एकमे दूसरा समाया नही है । यो प्रभुका परिणमन एकका एकमे है, और एक माहि अनेकनो, सो बिल्कुल प्रकट बात है । इस ही जगहसे अनत जीव मुक्त हुए है तो उन्हे और क्या कहा जाय ? एकमे अनेक विराज रहे यही कहा जायगा । तत्त्ववेदी पुरुष जब स्वरूपकी उपासना करता है तो कहता है कि एक अनेकनकी नही सख्या । उसके लिए न तो अनेक सिद्ध है और न एक सिद्ध है । उसकी दृष्टिमे तो एक शुद्ध चित्स्वरूप है । ऐसे निरञ्जन सिद्ध प्रभुको नमस्कार हो ।

तौ लोकगमनान्तस्थौ ततो लोके गतिस्थिती ।
अर्थाना न तु लोकान्तमतिक्रम्य प्रवर्त्तते ॥२१८३॥

पदार्थोकी लोकानतिक्रमणता––कर्मके बंधनमे फसा हुआ यह जीव जब कर्मोसे रहित होता है तो यह ऊर्ध्वगमन स्वभावके कारण ऊपर ही चला जाता है । कुछ लोग तो ऐसा मानते है कि वे ऊपर चले ही जा रहे है अब तक और अनत काल तक चलते जायेंगे, किन्तु जैन शासनके अनुसार यह उपदेश है कि वे प्रभु एक ही समयमे एकदम लोकके अन्त तक पहुच जाते हैं, उसके आगे क्यो नही गमन होता कि लोक इतना ही है । लोकसे बाहर केवल आकाश ही आकाश है, जीव पुद्गल आदिक अन्य द्रव्य नही हैं । धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय ये लोक पर्यन्त ही हैं, इस कारण पदार्थोकी गति और स्थिति लोकमे ही होती है, लोकका उल्लघन करके नही होती ।

स्थितिमासाद्य सिद्धात्मा तत्र लोकाग्रमन्दिरे ।
आस्ते स्वभावाजानतगुणैश्वर्योपलक्षित ॥२१८४॥

सिद्धात्माकी स्थितिका दिग्दर्शन––कहाँ पहुच गए सिद्ध प्रभु ? वहाँ स्थित हो गए लोकके अग्रभागपर, वही है वास्तविक मदिर, जहा साक्षात् निष्कलक सिद्ध प्रभु विराजे हो । वहाँ कोई वेदना नही है, कोई लाग लपेट नही है । केवल आकाश ही आकाश है । जिस लोकके अग्रभागपर जाकर वे प्रभु विराजे है वह स्थान तो साक्षात् मन्दिर है । वहाँ वे प्रभु स्वभावसे उत्पन्न हुए अनत गुणोके ऐश्वर्यसे युक्त है । जैसे जब कोई काम बन जाय तो लोग

कहते है ना कि हमारा काम तो सिद्ध हो गया। तो सिद्ध होना अच्छी बात है, पर सदाके लिए सिद्ध हो जाय काम, जिसके बाद फिर कुछ काम करना न रहे ऐसा सिद्ध होना वास्तव मे सिद्ध होना है। एक प्रजातन्त्र राज्यमे ऐसा नियम बना था कि एक वर्षके लिए प्रजामे से किसीको राजा चुन लिया जाय और एक वर्षके बादमे उस राजाको जगलमे छोड दिया जाय, मरे, जिये कुछ हो। क्योकि वह फिर यहाँ रहेगा तो उसका अपमान होगा कि देखो यह अभी तक तो राजा था और अब इस हालतमे है। यो बहुतसे लोग राजा बने एक वर्षके लिए और बुरी मौत मरे। एक बार कोई बुद्धिमान पुरुष एक वर्षके लिए राजा बना दिया गया। अब क्या था, वह एक वर्ष तक जो चाहे सो करे। उसने उस जगलमे मकान बनवा दिया, बहुतसा वैभव वहाँ भेज दिया, खूब खेतीबाडीका साधन बना लिया। एक वर्ष बादमे जब वह राजपदसे हटा दिया गया तो उसी जगलमे जाकर वह आरामसे रहने लगा। तो ऐसी ही बात यहाँ भी है। हम आपने मनुष्यभव पाया है। इस थोडे दिनोंके जीवनमे इन सभी जीवोमे राजा बना दिए गए है। जो चाहे सो कर सकते है, नही तो यहाँका तो यह नियम ही है कि कुछ ही दिनो बादमे नरक निगोदमे ढकेल दिए जायेंगे। बुद्धिमानी तो इसीमे है कि इस मनुष्यभवमे आकर तत्त्वज्ञान उत्पन्न करें, आत्मदृष्टिका अभ्यास बनाये जिससे परलोक सुधरे, और ऐसा परलोक कि जहाँ किसी भी प्रकारका क्लेश नही है। परम ऐश्वर्य है ऐसा सिद्ध लोक, वह परलोक उत्कृष्ट लोक है। वहाँ ये प्रभु अनत ऐश्वर्यसहित विराजमान हैं।

आत्यंतिक निराबाधमत्यक्ष स्वस्वभावजम्।
यत्सुख देवदेवस्य यद्वक्तु केन पार्यते ॥२१८५॥

भगवानके सुखके वर्णनकी अशक्यता—भगवानका सुख आत्यतिक है, उससे अधिक सुख कही नही है, सुख क्या, आनद, जो निर्बाध है। जहाँ कोई बाधा नही है, यहाँके सुखोंमे तो बडी बाधा है। बच्चोमे देखो तो, जवानोमे देखो तो और बूढोमे देखो तो—सभी क्लेश का अनुभव करते है। बच्चे लोग बडोका अधिकार निरखकर—ये पैसा भी देते है, इनकी हुकूमत चलती है, ये जहा कहे वहा बैठना पडता है, तो बच्चे लोग सोचते होंगे कि अगर मैं भी बडा हो जाऊँ तो ऐसा ही करूँ। इन बडे लोगोको तो बडा सुख है, इस प्रकार बच्चे लोग अनुभव करते है. और बडे लोग क्या सोचते है कि ये बच्चे लोग तो बहुत ही मजेमे हैं, इनको कुछ कमाना धमाना नही, कोई चिन्ता नही, कोई फिकर नही। तो यहा कोई सुखी नही, और फिर अन्य भवोकी बात तो सुनते ही कष्ट पहुचता है। नारक तिर्यञ्च पशु पक्षी कीडे मकोडे आदि तो ससारमे सुखी कहां है? इन सब आवरणोसे कर्मकलकोंसे छुटकारा मिले तो सुख है, आनद है। आनद सिद्धप्रभुमे है। उनमे स्वभावसे आनंद उत्पन्न

होता है, ऐसे सिद्ध प्रभुके आनन्दका वर्णन करनेके लिए कौन समर्थ है ?

तथाप्युद्द शतः किञ्चित् ब्रवीमि सुखलक्षणम् ।
निष्ठितार्थस्य सिद्धस्य सर्वद्वन्द्वातिवर्त्तिन. ॥२१८६॥

प्रभुके आनन्दका दिग्दर्शनमात्र वर्णनका संकल्प—यद्यपि सिद्ध भगवानके आनन्दका कोई वर्णन नही कर सकता है, उसे बताया नही जा सकता, तो भी नाममात्र सही, किसी भी ढगसे कुछ तो सुखका लक्षण कहना चाहिए । तो आचार्य कहते हैं कि जिस सिद्ध प्रभुके समस्त प्रयोजन सिद्ध हो गए है, जो समस्त दद फदोसे दूर हो गए हैं, उसके सुखका हम थोडा बहुत नाममात्रका वर्णन करते है । सुख और आनदमे अन्तर देखिये—सुखमे दो शब्द हैं सु और ख । सु मायने सुहावना और ख मायने इन्द्रिय । जो इन्द्रियोको सुहावना लगे वह सुख कहलाता है । और आनन्द उसे कहते है जहाँ किसी भी प्रकारका इन्द्रियजन्य व्यापार न हो, निराकुलता प्राप्त हो । अर्थात् आत्मामे चारो ओरसे समृद्धि बढे उसका नाम है आनद तो यह आनद इस सुखसे अधिक उत्कृष्ट है । लोग तो इस सुखको ही आनन्द शब्दसे कह देते हैं । जैसे कोई दरवाजेके बाहर शामके समय दालानमे अपने थोडा पैर पसारे पैरोपर हाथ घरे विश्रामसे बैठा हो । कोई वहासे गुजरे और कहे कि कयो भाई कया हालत है ? तो वह कहेगा--खूब आनद है । प्रकृतिके शब्दोको देखिये--वह सुख शब्द न बोलेगा, क्योकि उस समय न स्पर्शनइन्द्रियका, न रसनाइन्द्रियका, न किसी अन्य इन्द्रियका विषय पल रहा, ऐसी स्थितिमे उसके स्वभावत आनन्द शब्द निकलता है । तो उस पुरुषको न तो वहाँ कुछ खानेको दिया जा रहा है, न अन्य कोई चीज दी जा रही है, फिर उसे किस बातका आनन्द है ? अरे वह आनन्द है निराकुलताका । इस आनन्दका सम्बध ज्ञानसे है और सुखका सम्बध रागसे है ।

अनन्तज्ञानसे सम्बन्धित आनन्दका नाममात्र वर्णनका संकल्प—किसी बालकसे पूछा जाय कि १६ × ८ = कितने होते हैं ? तो जब तक वह कुछ सोच विचार रहा है तब तक आकुलित है, और जब सोच विचारकर बता दिया कि १६ × ८ = १५२ । तो इस सही उत्तरके दे लेनेपर वह बडा खुश होता है । तो उस समय उसे जो एक खुशीका अनुभव हुआ, प्रसन्नताका अनुभव हुआ वह हुआ ज्ञानके कारण, एक सही जानकारीके कारण । किसीके हिसाबमे १ आनेकी गल्ती हो जाय तो उस गल्तीको दूर करनेके लिए सारी रात बिजली जलाकर चार आनेकी बिजली जला देगा, बडा परिश्रम कर डालेगा, पर जब वह सही जानकारी कर लेता है कि अरे मै इस जगह यह हासिल लगाना भूल गया था, बस उस सही जानकारीके कारण प्रसन्नताका अनुभव करता है । तो आनद होता है ज्ञानसे सम्बधित होकर और सुख होता है रागसे सम्बधित होकर । भगवान सर्वज्ञ पूर्ण जानकार है अत उन्हे अनत आनन्द प्राप्त है, जिसका वर्णन हम इस रूपमे कह सकते है ।

यदेव मनुजा सर्वे सौख्यमक्षार्थसम्भवम् ।
निर्विशन्ति निराबाध सर्वाक्षप्रीणनक्षमम् ।।२१८७।।
सर्वेणातीतकालेन यच्च भुक्त मर्हाद्धिकम् ।
भाविनो यच्च भोक्ष्यन्ति स्वादिष्ट स्वान्तरञ्जकम् ।।२१८८।।
अनन्तगुणित तस्मादत्यक्ष स्वस्वभावजम् ।
एकस्मिन् समये भुङ्क्ते तत्सुख परमेश्वरः ।।२१८९।।

प्रभुके आनन्दका एक अन्दाजा—दुनियाके समस्त प्राणी देव देवेन्द्र सुर असुर आदि इस समयमे जितने सुख भोग रहे है ये सारे सुख अर्थात् जो सुख बडे वैभवसहित है, जो सुख समस्त इन्द्रियोको अत्यन्त सुखी करनेमे समर्थ है ऐसे बडे-बडे महापुरुषोके सुख और अबसे पहिले अतीतकालमे जितने भी पुण्यवान सुखिया लोग हुए है उनका सुख और भविष्यकालमे जितने भी सुख होगे, उन सभी सुखोको इकट्ठा करके, उससे भी अनन्तगुना सुख सिद्ध भगवान के स्वभावत· हुआ करता है । उनके कोई आकुलता नही है, विकल्प रच नही है । कही-कही तो कोई लोग ऐसा प्रश्न कर बैठते है कि भगवानका वहाँ जी कैसे लगता होगा ? घर नही, बच्चे नही, भाई नही, कोई लोग नही, कुछ बात नही, अकेले ही अकेले रह रहे है तो उनका समय कैसे गुजरता होगा ? तो वे लोग अपने इस लौकिक सुखकी ही तुलना करके दूसरेकी बात समझना चाहते है । अरे वे प्रभु तो इन समस्त इन्द्रियोसे रहित है, इस शरीरसे रहित है । यहाँ तो सभी ससारी जीवोके साथ यह शरीर बन्डल अथवा शरीर बिस्तर बँधा है । बिस्तर उनको ही तो रखना पडता है जिनके साथ अनेक खटपट, चिता, शोक, परिग्रह, घर द्वार आदि लगे है । तो वह बिस्तर तो विपतर है अर्थात् विषसे भी अधिक बुरा है । ये ससारी जीव अनेक खटपटोंके बीचमे है, अत इन्हे इस शरीरका बोरियाबन्डल साथ रखना पड रहा है । उन प्रभुके तो यह बोरिया बडल, यह शरीर अब नही रहा, जब उनके पास कोई खटपट ही न रही तो यह बोरियाबन्डल साथ बाँधनेकी उनको क्या जरूरत ? तो हम अपने सुखसे प्रभुके सुखकी क्या तुलना करे ?

आत्मसामर्थ्यका स्मरण—जिन प्रभुके सुखकी चर्चा चल रही है, समझिये उन जैसा ही स्वरूप हम आपका है । एक ८--८। वर्षका बालक सम्यक्त्व उत्पन्न कर सकता है, चौथा गुणस्थान पा सकता है, और मुनि बन जाय तो छठा गुणस्थान पा ले, और अन्तर्मुहूर्तमे श्रेणी मार दे तो वह बच्चा अरहत भगवान बन जाय । और फिर रह गई हो उसकी करोडो वर्षकी उम्र तो अरहत अवस्थामे विहार करे, उपदेश दे । क्या नही है अपनेमे सामर्थ्य, पर लगन नही है, आत्महितकी तीव्र धुन नही है, कर्मोका ऐसा ही विपाक है और अपना प्रमाद है, सग भी उत्तम नही, आशय भी निर्मल नही, तब फिर कहो उस सिद्धके मार्गमे हम आ

अपना कदम कैसे बढा सकते है ? यह तो संसार है, मोही जन है, अज्ञानी जन है, यहाँ तो जिन्होने कुछ वैभव पाया है उनकी ही दाल गलती है, उनका ही सब जगह आदर्श माना जाता है। लोग धनिकोको देखकर, नेताओको देखकर वैसा ही अपनेको बनानेका भाव बनाते है। समीचीन दृष्टिकी उपासना तो यहाँ विरले ही व्यक्ति कर पाते है।

मूढताभरी चतुराईसे सिद्धिका अभाव––कोई दो भाई थे, उनमे से छोटा भाई बनारसमे पढता था। बारह वर्ष तक खूब अध्ययन करनेके बाद जब उसे घर लौटना हुआ तो अपना सारा सामान एक घोडेपर लादकर चल पडा। रास्तेमे एक गाँवमे एक मुखिया रहता था, वह मिल गया उस पंडितको। उसने पूछा कि आप कौन है, कहाँसे आ रहे है ? तो उसने बताया कि मैं पंडित हू, बनारससे पढकर आ रहा हू। तो मुखिया बोला––यहाँका रिवाज है कि जो विद्वान् निकले वह शास्त्रार्थ करे, अच्छा हम आपसे प्रश्न करेंगे, यदि आप उत्तर दे देंगे तो हमारे घर जो कुछ है सो तुम्हे दे देंगे, और यदि उत्तर न दे सके तो तुम्हारे पास जो कुछ है सो छीन लेंगे। अच्छा मुखिया जी करो प्रश्न। सरपटसो ? दो उत्तर। वह कुछ न समझ सका। उत्तर न दे सका। मुखियाने घोडा सहित सारा सामान अपने घर रख लिया। वह पंडित खाली हाथ अपने घर गया। भाईने खाली हाथ आनेका कारण पूछा तो उसने सारा हाल कह सुनाया। तो वह बडा भाई कहता है कि भाई तुम पढे लिखे जरूर हो, पर कुछ कढे नही हो। देखो मैं अभी जाता हू और मुखियासे सारा सामान छीनकर लाता हू। उसने कुछ कागज बर्तन आदि एक घोडेपर लादे, उसी पंडितका जैसा रूपक बनाया और उसी गाँवमे पहुचा जहाँपर वह मुखिया रहता था। मुखिया झट पहुचा उस पंडितके पास और उसी तरहसे प्रश्न किए जिस तरहसे पहिले पंडितसे किए थे। अच्छा–पंडित, सरपटसो ? दो उत्तर। तो उसने क्या किया कि जैसे धान मूसलसे कूटे जाते हैं उस तरहसे मुखियाको पकडकर नीचे ऊचे पटककर कूटा और कहा—पहिले मुखिया धम्मक धैया (धान जब कूटे जाते है तो धम्मक धम्मक होते है ना) फिर मुखियाको इधर-उधर पटका और कहा—बादमे मुखिर फट्टक्फो, (धान जब सूपसे पछोरे जाते है तो फट्टरफट्टर होते है न) फिर मुखियाको खूब चारो ओर नचाया और कहा—बादमे मुखिया खदरबदर (खिचडी जब पकाई जाती है तो उसकी आवाज खदरबदर होती है न) फिर मुखियासे कहा–तब तो मुखिया सरपटसो। समझे मुखिया, क्या मतलब है सरटपसोका—धम्मक धैया फट्टक्फो, खदरबदर तब सरपटसो। इतना पूरा छद है, तू तो अधूरा ही बोल रहा था। अरे भाई जब खिचडी खायी जाती है तब सरपटसो होता है, पर खिचडी यो ही तो नही खानेको मिल जाती। पहिले धान कूटे जाते, फिर सूपसे पछोरे जाते, फिर पकाये जाते, तब तो खिचडी खायी जाती। यो मुखियाकी मरम्मत कर दी। हार गया मुखिया और वह पहिले पंडितका भाई

अपने भाईका व जो कुछ उसका था, सारा सामान लेकर चला आया। देखो भैया! ससार मे तो ऐसोका बोलवाला है, किन्तु इससे भलाई कुछ नही। यह तो मूढता है, तो भाई पहिले अपना विवेक बने, अपने आत्मतत्त्वकी दृष्टि बने, अपना मोह हटे, अपना प्रकाश मिले, निराकुलता हो तो उससे ही अपना जीवन सफल है। अन्य कार्योंको करके जो चतुराई मानी जा रही है वे तो सब थोथी बातें है। उनसे अपने किसी भी कार्यकी सिद्धि नही है।

त्रिकालविषयाशेषद्रव्यपर्यायसङ्कुलम् ।
जगत्स्फुरति बोधार्के युगपद्योगिना पते ॥२१९०॥

प्रभुताकी शक्तिके विश्वासमे प्रभुताका लाभ——कर्म कलकसे मुक्त, केवल अपने आपके सत्त्वके कारण अपने इस स्वरूपमे अवस्थित प्रभुके ज्ञानमे तीन काल सम्बधी समस्त द्रव्य गुण पर्यायोसे व्याप्त सारा जगत एक साथ स्फुरायमान होता है। चर्चा किसकी की जा रही है? भगवानकी, और साथ ही अपनी। जो भगवानमे बात प्रकट है वे सब बाते अपने स्वरूपमे नही है तो भगवानकी भक्तिसे लाभ क्या मिल पायगा? भगवान एक ज्ञानानन्दस्वरूप है, वे प्रकट हो गए और यहाँ शक्ति है उस शक्तिका विश्वास हो तब तो यह साहस बने कि विषयकषायके भावोको परित्याग करके इस विशुद्ध ज्ञानज्योतिमे समा जाय। जब अपने स्वभावका परिचय ही नही, प्रभुताका चमत्कार प्रत्येक आत्मामे है, यह विश्वास ही नही तो कहाँसे साहस जगे? कोई समझ ले कि हम तो ऐसे ही हैं कायर ही है तो उसका क्या इलाज? एक बार कोई महान् युद्ध छिडा था तो उस समय एक स्त्रीने अपने पतिसे कहा कि देखो——इस समय देशपर सकट है। युद्धमें सभी भाग ले रहे है। तुम तो बडी वीरताकी बातें करते हो, अब कृपा करके उस रणमे पहुचिये और देशकी रक्षा कीजिये। तो वह पुरुष बोला कि हम वहाँ जायेंगे, लडेंगे और मर गये तो क्या होगा? तो स्त्रीने एक दरेतीसे कुछ चने दर दिए। उसमे कुछ चने तो बिल्कुल पिस गए, कुछ टूट फूट गए और कुछ बिल्कुल समूचे निकल आये। तो स्त्री कहती है——देखो जैसे ये चने दरे जानेपर भी कुछ चने बिल्कुल समूचे निकल आये है ऐसे ही युद्धमे भी सभी नही मरा करते। कुछ लोग बराबर युद्ध करके अच्छी तरह बचकर आते है। तो वह पति कहता है कि भाई हम तो उन चनोमे से है जो पिसकर भूसी बन गए है, जो चने समूचे निकल आये है उनमेसे हम नही है। अब बताओ इस कायरताकी दृष्टिका क्या इलाज? तो भाई जब तक अपनेमे यह साहस न जगे कि मेरेमे तो वह अनन्त ज्ञान स्वरूपमे ही समाया हुआ है, तब तक आत्माका उद्धार नही हो सकता। इन सारहीन विषयसाधनोकी ओर उपयोग लगाकर इस अमूल्य जीवनको यो ही क्यो खोया जा रहा है। कितने वर्षका जीवन है, क्या होगा आखिर? मरण तो होगा ही। अब थोडेसे समय के लिए नाना विकल्पजालोमे फस करके क्या किया जा रहा है?

ज्ञानानन्दसागरमें अवगाहनके साहसकी लाभकारिता––प्रभुके गुणोकी चर्चा की जा रही है यहाँ। बतावो सोचकर यह चर्चा किसकी है ? भगवानकी है, आपकी है, हमारी है। यदि भिन्न पदार्थोंसे, विषयोसे, सारहीन विकारोंसे यह मुख मोड लिया जाय एक साहसपूर्वक, तो स्वत ही आनन्दमय हमारा पद विकसित हो जायगा। जैसे जाडेके दिनोमे बहुतसे बच्चे तालाबके किनारे बैठे ठिठुरा करते है, जाडेके मारे पानी छुवा नही जाता है। यदि उनमे से कोई बालक थोडा साहस बनाकर उस तालावमे कूद पडे तो उसका सारा जाडा एकदम ही खतम हो जाता है। ऐसे ही यह स्वयका ज्ञानसमुद्र जिसके किनारे बैठे हुए दूरसे ही उसे निरख रहे है, उसमे कूदनेका साहस नही बनता, सकटोका अनुभव कर रहे है, पर कोई ज्ञानी पुरुष ऐसा साहस बनाकर एक बार तो उस निर्विकल्प ज्ञानज्योतिका अनुभव करके तो देखे––बस सारे सकट समाप्त हो जायेगे। जो जीव आपके घरमे आज रह रहे है उन्हे आप अपना समझ रहे हैं और अगर ये ही जीव किसी दूसरेके घरमे आये होते तो इन्हीको आप गैर मानते। आप इनसे कुछ भी प्रेम न रखते। और जो जीव दूसरेके घरमे बस रहे हैं, जिन्हे आप गैर मान रहे है यदि वे ही आपके यहाँ पैदा हो गए होते तो आप उनको ही अपना मानते और उनमे मोह करते। तो देखो––यह मोह अटपट है या सिलसिलेवार। कुछ दम भी रखता है यह व्यवहार या कोरी एक शेखचिल्ली जैसी कल्पना है ? भैया ! सब मायाजाल है यह। अपने आत्माकी सुध बने, साहस बने, अपने आपमे उतारने का बल प्राप्त हो तो ससारके सकट दूर हो सकते है। बाहरी बातोमे तो सकट दूर नहीं हो सकते। तो जिसके सकट समाप्त हो चुके है। शरीरसे, कर्मसे, विकारसे, सबसे जो दूर हो गए ऐसे उस विशुद्ध आत्माके ज्ञानमे सारा लोकालोक एक साथ स्फुरित होता है, ठहरने लगता है।

सर्वतोऽनन्तमाकाश लोकेतरविकल्पितम ।
तस्मिन्नपि घनीभूय यस्य ज्ञान व्यवस्थितम ॥२१९१॥

ज्ञानघन प्रभुके स्मरणकी शरण्यता––जिसका ज्ञान समस्त लोकालोकमे घनीभूत होकर रह रहा है ऐसे प्रभुका स्मरण हम आपके लिए शरण होवो। जब कोई दुखी होता है तो गद्गद् होकर, एक शरण मानकर किसी न किसीकी गोदके निकट जाकर यह शान्ति चाहता है। ऐसा कौन मिलेगा कि जिसके निकट रहकर हम शान्तिलाभ पा सकें ? एक केवल ज्ञानपुञ्ज प्रभुका ही स्मरण शरण है। हे नाथ ! आप हमे ऐसा बल दें अर्थात् आपके स्मरणसे मुझमे ऐसा बल प्रकट हो कि केवल मेरे लिए आप ही आप दृष्टगत हो। मुझे और कुछ न चाहिए। बहुत ही आज्ञाकारी, विनयशील सुन्दर रूपवान कोई सतान भी हो, परिजन के लोग भी हो तो वे क्या हैं ? ये सब राग आगमे मुझे जलानेके साधन है और ससारमे

जन्ममरण करके बरबाद होनेके साधन हैं। हे प्रभो! कहाँ जाये, कहाँ ध्यान लगायें ? यह सारा जहान मायामयी है। एक प्रभुका स्मरण ही हम आपके लिए सहाय है।

ज्ञानस्वरूपके मननकी आवश्यकता—थोड़ा दिन रातमे सब कुछ कार्य करके और शामके समय हम आप एकत्रित बैठते है और प्रभुकी चर्चा सुनते है तो यह बडे सन्तोपकी बात है। लोग कहते भी है कि सुबहका भूला शामको घर आ जाय तो वह भूला नही कहलाता। हम दिन भर कहा भूलते है ? वैभवमे, परिजनमे, रागमे, न जाने कहाँ-कहा विचरते हैं, चलो शामको घटाभरके लिए हमे मिलता है बोलकर अपने आपको सम्हालनेका मौका और आप सबको मिलता होगा सुनकर अपने आपको सुधारनेका मौका। यही बहुत है चलो, लेकिन इतनेसे सन्तोपकी बात नही कही जा सकती। जैसे व्यापारके या अन्य किसी सम्बन्धके कार्य करते है तो कितनी विधिपूर्वक सिस्टेमेटिक ढगसे करते है तो यदि वास्तविक शान्ति चाहिए तो धर्मका ज्ञान, धर्मका पालन, धर्ममे मग्न होनेका पुरुषार्थ ढगसे विधिसे करे तो इनकी भी सिद्धि हो सकती है, लेकिन धर्मका कार्य तो समझ लिया फुरसतके समयकी बात और मुख्य काम समझ लिया विपयसाधनोके जोडनेकी बात, तो अब समझ लीजिए कि फुरसतकी जो बात समझी हो उसका महत्त्व आ सकता है क्या ? समय निकाले विशेष तत्त्वज्ञान बढानेके लिए। सत्सगति और स्वाध्यायमे अपना समय अधिक व्यतीत हो तो वह स्फूरणा मिल सकती है कि जिससे हम ज्ञानानुभवके पात्र बन सकें। जब विशुद्ध विकास होता है तो जो कुछ भी सत् यह अनन्त आकाश और जिसमे समस्त द्रव्य जितने भी है वे सबके सब भगवानके ज्ञानमे घनीभूत होकर अवस्थित है, लटोरे खचोरे जैसा ज्ञान नही कि जैसे हम बहुत दूर तककी भी बात जानते है, तो वहाँ भी कुछ यह जाना, कुछ वह जाना, पर भगवानके ज्ञानमे सर्व कुछ घनभूत रूपसे पडा हुआ है।

निद्रातन्द्राभयभ्रान्ति रागद्वेषार्त्तिसशयैः।
शोकमोहजराजन्ममरणाद्यैश्च विच्युतः ॥२१९२॥

प्रभुकी निर्दोप परिणति—यह प्रभु सिद्ध भगवान निद्रा, तन्द्रा, भय, भ्रान्ति, रागद्वेप, वेदना, सशय, शोक, मोह, जन्म, जरा, मरण आदिक दोपोसे अतीत है। क्या है वहाँ ? एक अमूर्त ज्ञानपुञ्ज। उन्हे नींद कहाँसे आये ? केवलज्ञान है निरन्तर, जागृत स्वरूप है, थकानका क्या काम ? शरीररहित है, तो वहाँ तद्रा क्या होगी, रोग कहाँ ठहरेंगे ? जहाँ ज्ञानका विशुद्ध विकास है वहाँ ये रागद्वेपादिक समस्त दोप कहाँ ठहर सकते हैं। वे प्रभु जन्म-जरा मरण आदिक समस्त दोपोसे मुक्त हो गए। जन्मके समयमे बालक कुछ दुःखी होकर ही आता है ना, और तुरन्त गर्भसे निकलकर इन्ही आवाजोमे तो रोता है—कहाँ-कहाँ। इसका यही तो अर्थ लगा लीजिये कि मैं कहाँ आ गया ? अभी देवताओंका वर्णन करते हुए बताया गया था कि जब वे देव उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न होकर जवान हो जाते हैं तो वे यह सोचते हैं।

मैं यहाँ कहाँ आ गया, ऐसे ही यहा मनुष्योका जन्मजात बच्चा अपने मुखसे स्पष्ट तो नही बोल सकता, पर निकलते इसी तरहके शब्द है—कहा-कहा, इसका अर्थ यही है कि वह सोचता है कि मैं कहा आ गया ? वह बच्चा तो रो रहा है, दु खी हो रहा है और घरके लोग ढोलक बजा रहे है, खुशिया मना रहे है। अरे जन्मके समयमे भी मरणका जैसा दु ख होता है। इन दु खोसे छुटकारा पानेके लिए यह मरण तो मदद कर सकता है, पर जन्म मदद नही कर सकता। अरहत भगवानके निर्वाणका नाम है पडितपडितमरण और साधु पुरुषोके मरणका नाम है पडितमरण और श्रावक ब्रह्मचारीके मरणका नाम है बालपडित मरण और अविरत सम्यग्दृष्टिके मरणका नाम है बालमरण, किन्तु मिथ्यादृष्टि लटोरे खचोरो के मरणका नाम है बालबालमरण। तो जो विवेकपूर्वक, सम्यक्त्वपूर्वक, समाधिपूर्वक मरण होता है वह मरण ससारके सकटोसे छुटकारा करा देगा, पर कोई भी जन्म ऐसा नही है जो कि इन सकटोसे छुटकारा करा सके।

अज्ञानमे मरणभय—इन जीवोकी एक आदत बन गयी है, मरणसे डर लग रहा है, जन्ममे लोग खुशी मनाते है, लेकिन उस मरणसे क्या डरना जो हमारे हितमे साधक है। मरणसे तो वे डरें जिन्हे अपने स्वरूपकी सम्हाल नही है। जिनके इस वैभवमे, परिजनोंमे बाह्यमे प्रीति बसी है, मोह है, अधेरा छाया है, डर तो उनको है। एक बहुत पुरानी बुढिया थी, वह अपने कमरेमे पडी रहा करती थी, नाती पोते बहुवें जो कुछ खाने पीनेको दे दें उसे वह खा पी लेती थी, न दे तो यो ही पडी रहे। वह रोज-रोज हाथ जोडकर भगवानसे प्रार्थना करती थी कि हे भगवन, तू अब मुझे उठा ले। अर्थात् मैं मर जाऊँ तो अच्छा है। एक दिन उसके पाससे एक साप निकला, वह चिल्लाई---अरे बच्चो बचावो बचावो, साप आया। तो वे पोते कहते हैं—अरी बुढिया दादी तू क्यो चिल्लाती है ? तू रोज-रोज भगवान से प्रार्थना किया करती थी कि मुझे उठा ले, तो भगवानने तेरी प्रार्थना सुन ली है, तुझे उठानेके लिए दूत भेजा। तो भाई मरना कोई नही चाहता। सभी मरनेसे डरते हैं। लेकिन जो मरना नही चाहते तो वे तो कहो मर जायें और जो मरण चाहते वे कहो न मरें। नारकी जीव बहुत चाहते है कि हम मर जायें, पर शरीरके तिल-तिल बराबर खण्ड हो जाने पर भी वे खण्ड पारेकी तरह मिल जाते है, वे नारकी जीव असमयमे नही मरते। तो वे प्रभु इन समस्त प्रकारके दोषोसे रहित है।

क्षुत्तृट्श्रममदोन्मादमूर्च्छामात्सर्यवर्जितः।
वृद्धिह्रासव्यतीतात्मा कल्पनातीतवैभव ॥२१९३॥

प्रभुकी कल्पनातीतवैभवता----यह सिद्ध भगवान क्षुधा तृषा मद मूर्छा मात्सर्य आदिक समस्त दोषोसे रहित हैं, अब इनमे वृद्धि और ह्रास नही होता। जैसे प्रकट हुए है, जिस

आकारमे हैं, जैसे गुण विकसित हुए है बस सदा काल उस रूप ही रहेगे । इस भगवानका वैभव कल्पनासे परे है । हम क्या कल्पना करें ? भैया ! कुछ ऐसी आदत बन गई कि ये सब बाते हैं माननेकी, बोलनेकी, पर इसके लायक हम अपनी योग्यता तो बनाते नही । चाहे घरमे हो, चाहे दूकानमे हो या अन्यत्र कही हो, सर्वत्र यही बात सीखें कि इन कषायोको न उत्पन्न होने दे । एक सेठ सेठानी थे, तो सेठ था शान्त प्रकृतिका और सेठानी थी कुछ गरम मिजाजकी । जिस समय सेठजी भोजन करने बैठते थे उस समय सेठानी उन्हे दसों बातें सुनाती थी—अभी तुमने अमुक गहना नही बनवाया, अभी तुमने अमुक चीज नही ले दी, आदि । सेठजी बेचारे कुछ न बोलें । रोज-रोजकी उन बातोसे सेठ जी परेशान थे । आखिर एक दिन क्या हुआ कि सेठ जी जब ऊपरसे सीढियोसे उतर रहे थे तो उस सेठानीने क्रोधमे आकर दालका धोवन सेठजीके ऊपर डाल दिया । सेठ जी बोले—सेठानी जी गरजी तो तुम बहुत थी, पर बरसी आज हो । सेठ जीके उन शान्तिभरे शब्दोको सुनकर सेठानी पानी-पानी हो गई अर्थात् वह भी बडी शान्त हो गई और सेठ जीके पैरोमें गिरकर बोली—अभी तक मैंने आपको बहुत सताया, पर मै आजसे यह नियम करती हू कि कभी भी आपसे तेज वचन भी न बोलूगी । तो सदुपयोग करें अपने इन वचनोका । किसीको कटुक वचन न कहे हम और उस समय अपने आपमे न कषाय करे तो क्या बिगड गया ? अरे, मान किसपर बगराना, यहाँके मानसे फायदा भी क्या निकलेगा ? मान तो वह हो कि फिर ससारमे जन्म ही न लेना पडे और सदाके लिए उत्कृष्ट विकास रहे । अभी तो कोई राजा है और मरण करके कीडा मकोडा बन गया, तो काहेका मान करना, किस बातपर मायाचार करना, कौनसी चीज यहाँ हितकारी है ? किसका लोभ करना ? तो कुछ अपने जीवनको इस जीवनमे ढाले कि मद कषाय वाले बनें और श्रद्धा यथार्थ बनी रहे तो हम इस योग्य हो सकते हैं कि यह जान सके कि वास्तवमे भगवानका कैसा ज्ञान और कैसा आनन्द है ?

निष्कल करणातीतो निर्विकल्पो निरञ्जन ।
अनन्तवीर्यतापन्नो नित्यानन्दाभिनन्दितः ॥२१६४॥

निरञ्जन प्रभुकी नित्यानन्दाभिनन्दितता—ये प्रभु समस्त कलकोंसे दूर हुए, सिद्ध भगवान सर्वोच्च विकास चिदानन्द स्वरूप है । ये प्रभु शरीररहित है, इन्द्रियोंसे अतीत है, कायरहित है, इन्द्रियरहित है और विकल्परहित हैं । वे प्रभु निरञ्जन है । किसी भी प्रकार का उनमे अञ्जन नही रहा । जैसे अजन नेत्रोमे लगाया जाय तो उसके पोछनेपर भी वह नेत्रो से नीचे, अगल-बगलमे भी चिपटता जाता है ऐसे ही ये रागादिक दोष चिपटकर आत्मामे लग जाते है । तो इस प्रकारके दोषोसे भी रहित वे प्रभु है । उनमे किसी भी प्रकारका अजन नही रहा अर्थात् किसी भी प्रकारका दोष नही रहा । जो अनन्त वीर्यमे सम्पन्न है, अनन्त

शक्तिसे सम्पन्न है और विशुद्ध आनन्दसे आनन्दित है ऐसे ये सिद्ध भगवान हमारे दृष्टिपथमे सदाकाल रहे। जब यह ज्ञानपुञ्ज प्रभु हमारी दृष्टिमें नही रहता तो यहाँके अत्यन्त मोही कलकित जीवोपर दृष्टि पहुचती है, और राग अथवा द्वेप होता है, जिस सतापमे जलकर हम अपनेको बरबाद करते है। हममे तो इन समस्त आवरणोको नष्ट करनेकी सामर्थ्य है। तो अपनी सावधानी बनायें जिससे प्रभुका स्मरण रहे और अपने स्वरूपका ध्यान रहे।

परमेष्ठी पर ज्योति परिपूर्ण सनातनः।
ससारसागरोत्तीर्णः कृतकृत्योऽचलस्थितिः ॥२१९५॥

प्रभुकी स्वपरपरमोपकारिता—जिसके लिए लोग मैं मै कहा करते है—मैं आया, मैं करता, मैं पढता, मैं हू, वह मैं जब केवल मैं रह जाय, अन्य कुछ भी चीज उस मैं के साथ न रहे तब इसका ऐसा ज्ञानप्रसार होता है, समस्त कलकोका ऐसा ध्वस होता है कि वहाँ अपने आपमे भी अचिन्त्य चमत्कार प्रकट होता है और समस्त लोकके जीव भी उनके निमित्त से अपना भला कर लेते है। ऐसे सिद्ध भगवानके स्मरणमे यह प्रकरण चल रहा है। ये प्रभु परमपदमे स्थित है। प्रत्येक मनुष्य चाहता है कि मैं ऊँचीसे ऊँची स्थितिमे पहुचू। जब दुनियाकी ओर दृष्टि जाती है तो यह गम नही खाता, सन्तुष्ट नही हो पाता। उसकी यही भावना बनी रहती है कि मैं विश्वमे सबसे अधिक धनिक बनू। लोग तो सोचते है कि मुझे इतना धन मिल जाय तो मै सन्तुष्ट हो जाऊँगा, पर होता क्या है कि उतना मिल जानेपर फिर असतोषकी लहर दौड जाती है। लोग तो इस विश्वमे ऊँचेसे ऊँचे पदमे स्थित होना चाहते है। जरा सोचो तो सही कि इस दुनियामे कोई स्थान है क्या कि जो ऊँचासे ऊँचा कहा जा सके। यहाँके सभी पद क्लेशोंसे भरे हुए है। क्लेशरहित सर्वोच्चपदमे स्थित है तो यह सिद्ध भगवान। ये सिद्ध भगवान परमपदमे स्थित है। ये परमज्योतिर्मय उत्कृष्ट ज्ञानस्वरूप है। क्या है उनके? केवल सत्यप्रकाश। जिनके पास कुछ है उनसे ऐसी आशा नही की जा सकती है कि उनकी उपासनासे कुछ मिल जाय, पर जिनके पास कुछ नही है उनकी उपासना करके यह आशा की जा सकती है कि कुछ मिल जाय। जैसे समुद्र लबालब पानी से भरा हुआ है, पर उससे कोई अपनी प्यास नही बुझा सकता है और न उसमेंसे कोई नदी भी निकलती है, लेकिन ये पहाड, जहाँ कुछ भी नजर नही आता, पानीका जहाँ नाम नही वहाँसे कितनी ही नदिया निकलती है, कितने ही झरने झरते है। तो हे नाथ! आपके पास ये धन वैभव परिजन आदि कुछ भी नही रहे, आप अकिञ्चन हो गए, कुछ भी नही रहा आपके पास, लेकिन आपकी उपासनासे हमे आशा है कि मैं सर्वस्वहित प्राप्त कर सकता हू।

प्रभुभक्तिका उदाहरण—एक बार राजसभामे गुरुवोकी चर्चा चल रही थी। लोग

कहते थे कि मेरे गुरु ऐसे हैं, मेरे गुरु ऐसे है। तो एक जैन श्रावक बोल उठा कि मेरे गुरु शान्त है, विशुद्ध आचरण रखने वाले है, जगतके जीवोपर सच्चा प्यार रखने वाले है। तो कोई एक व्यक्ति बोल उठा कि ऐसी बात नही है। तुम्हारे गुरु तो कोढी होते है। उसने किसी निर्ग्रन्थ मुनिको कोढी देखा था। पर यह नियम तो नही हो सकता कि जो कोढी हो वह पवित्र न हो सके। लेकिन उसने ऐसी निन्दा की। उस समय उस श्रावकने और कुछ तो न कहा, पर यही कहा कि मेरे गुरु कोढी नही होते। तो राजाने उस व्यक्तिसे कहा कि तुम इनके गुरुवोको कोढी बताते हो। हम देखेंगे, अगर कोढी न होते होगे तो तुम्हे दण्ड मिलेगा। वह आलोचना करने वाला व्यक्ति जब घर गया और स्त्रीसे उस विषयमे चर्चा की, तो स्त्री कहती है कि अरे क्या हर्ज था—कोई गुरु अगर कोढी हो, रोगी हो, उपद्रवोसे ग्रस्त हो तो क्या इससे उस गुरुकी गुरुता मिट जाती है ? तो वह व्यक्ति बोल उठा कि अब तो मैंने बोल दिया है, अब क्या किया जा सकता है ? तो स्त्री बोली कि इसका और तो कोई इलाज नही है, केवल एक उपाय है। तुम उन्ही गुरुके पास जावो जिन्हे उसने कोढी देखा था, उनसे इस घटनाको बताकर निवेदन करो। गया वह शामके समय। सध्यासे पहिले गुरुको नमस्कार करके बोला वह श्रावक—महाराज मैने बहुत अपराध किया। सारी घटना सुनायी—मैं यो बोल उठा, अब क्या होगा ? मेरी हँसी होगी, मुझे दण्ड मिलेगा, इसकी तो मुझे परवाह नही, पर इससे धर्मकी अप्रभावना होगी। खैर, गुरुने कहा—तुम जावो, विश्राम करो। वह घर चला आया। तो शामके समय रात्रिमे ध्यान करते हुए उस साधुने प्रभुभक्ति की, और उस भक्तिमे एक स्तवन रच डाला जिसका नाम है एकीभावस्तोत्र। भक्तिमे बोल उठा—ओह ! भगवानकी भक्तिसे तो भवभवमे सचित किये हुए दुर्निवार पापो का समूह भी नष्ट हो जाता है तो इसमे क्या आश्चर्य है कि जो ससारके दुख दूर हो सके।

नमस्करणीय प्रभुस्वरूप—भैया ! श्रद्धा कीजिए—प्रभुभक्तिमे अद्भुत सामर्थ्य है। एक णमोकार मत्र जिसका वाच्य केवल आत्मविकास है, जिसमे पक्षपातकी गध नही, लेकिन आत्माकी साधनाके लिए एक लोगोकी दृष्टिमे दीवाना बनकर निकले, वही तो हमारा गुरु है, और ऐसे गुरुराज आत्मसाधनाके बलसे जब घातक कर्मोका ध्वस कर देते है तो वही तो हुआ सर्वज्ञ अरहतदेव। और जब शरीरसे भी रहित केवल ज्ञानमात्र आत्मतत्त्व रह जाता है उसे कहते हैं सिद्धदेव। अहो ! कितना निष्पक्ष यह नमस्कार मत्र है, केवल आत्माके विकासकी पूजा है, किसी देवका नाम नही, किसी गुरुका नाम नही, केवल आत्मविकासका स्मरण है, प्रभुभक्तिका अद्भुत प्रताप है, पर हो तो निष्कपट। जिस बालकका अपने पिताके प्रति निष्कपट प्यार होता है उस बालकको यह अधिकार है कि पितासे कभी हठ भी कर सकता है। यदि हम आपके हृदयमे प्रभुके प्रति ऐसा निष्कपट प्यार हो, उनके गुणोका ऐसा अनुराग

हो तो हम आप कभी स्तवनमे प्रभुसे कुछ हठ भी कर सकते है ।

प्रभुभक्तिका प्रसाद—वे मुनिराज-जिनका नाम था वादिराज—स्तवन करते करते एक बार बोल उठे कि हे नाथ ! जब आप स्वर्गसे भी यहाँ न आये थे, उससे ६ महीना पहिले से नगरमे रत्नोकी वर्षा हो रही थी तो कुछ हमने आपको ध्यानके द्वारसे बुलाकर अपने हृदय के मदिरमे विराजमान कर लिया । अब तो यह शरीर स्वर्णमय हो जाय तो इसमे आश्चर्य क्या ? ओह ! उस परमभक्तिका माहात्म्य देखो कि उनका सारा कोढ दूर हो गया । देदीप्यमान स्वर्णवत उनका शरीर होने लगा, इतनेमें ही उन्हे ख्याल आया कि उस व्यक्तिने जिसने मुझे देखकर कोढी बोल दिया है, राजा यदि इस बातको झूठ साबित कर देगा तो बडा दण्ड देगा । उससे तो एक बहुत बडी अप्रभावना होगी । सो उन्होने उस व्यक्तिके प्राण बचाने व अप्रभावना न होने हेतु अपनी छिगुली (छोटी) अगुलीको बडे जोरसे दाब लिया ताकि उसका कोढ न खतम होने पाये । सो उस छिगुलीमे कोढ रह ही गया । जब राजाने उन मुनि राजको देखा तो वहाँ तो कोढका नाम न दिखा । उस निन्दा करने वाले व्यक्तिपर राजाको बडा क्रोध आया । तो मुनिराज बोले—राजन् ! क्षमा करो, उसका कोई दोप नहीं है । देखो यह कोढ जो हमारी इस छिगुलीमे स्थित है वह सारे देहमे स्थित था । लो राजाके ज्ञान जगा और उस निन्दा करने वाले व्यक्तिको क्षमा कर दिया ।

स्वसुखमे अन्यका असहयोग—भाई भगवानका प्रताप हृदयगम कीजिए, केवल एक परिजनोंके मोहसे ही निस्तारा न होगा, ये कोई भी लोग तुम्हारा कल्याण न कर देंगे । एक सेठ था, उसके चार लडके थे । ५ लाखकी जायदाद लडकोको बाँट दी और १ लाखकी जायदाद अपने पास रख ली । तो सेठने जिस कमरेमे वह रहता था उसमे भीतके अन्दर गड्ढोंमे सोना, चाँदी, रत्न जवाहरात जो कुछ भी उसके पास था रखकर उन गड्ढोको बन्द करवा दिया था । लडकोको सब पता था । जब वह मरने लगा, बोल बद हो गया, कान जरूर सही काम कर रहे थे, उस समय पच लोग आये । कहने लगे—सेठ जी, अब तो आपका अतिम समय है, जो कुछ दान पुण्य करना हो कर जावो, वह सब धन धर्मकार्यमे लगा दिया जायगा । सेठको वह बात अच्छी जची, वह बोल तो न सकता था, पर इशारा करके बताने लगा कि वहाँ जो धन रखा है वह सब धर्मकार्योमे लगा देना । उस इशारेको वे पच लोग न समझ सके । पचोने लडकोको बुलवाकर पूछा कि भाई सेठ जी क्या कहते हैं ? तो वे लडके कहते हैं कि सेठ जी इस बातका इशारा कर रहे है कि हमारे पास जो कुछ था वह सब इन भीतो के चिनवानेमे लगा दिया, अब हमारे पास कुछ नही बचा, वह बेचारा सेठ यह चाहकर भी कि मेरा धन धर्मकार्यमे लग जाय, पर बोल न सकनेके कारण उसे धर्मकार्योमे न लगा सका । लडकोकी बातें सुनकर वह मन ही मन कुढ रहा था । तो भाई यहाँ किसका विश्वास बनाया

जाय कि कोई हमे कल्याण करनेमे मदद दे देगा ? कोई नही है ऐसा ।

आत्मोद्धारकके वास्तविक पितृत्व—एक ब्राह्मणकी लडकीने किसी नग्न दिगम्बर गुरुराजका उपदेश सुना और ५ पापोके त्यागका नियम उन गुरुराजसे लिया। जब घर आयी, अपने पितासे बताया तो उसका पिता उसपर बहुत नाराज हुआ। बोला—तुमने क्यो बिना मेरी आज्ञाके ऐसे नियम लिये, और क्यो उस गुरुने तुझे ऐसा नियम दिया। चलो चलें ऐसे मुनिके पास देखे तो सही कि कौनसा वह मुनि है ? चलते-चलते रास्तेमे देखा कि एक व्यक्ति फासीपर लटकाया जा रहा था। लडकीने पूछा—पिता जी यह व्यक्ति क्यो फासीपर लटकाया जा रहा है ? तो बताया कि इसने किसी व्यक्तिकी हत्या की है इससे फासीपर लटकाया जा रहा है। तो वह लडकी बोली—पिताजी तब फिर मैंने उस हिंसाका (हत्याका) त्याग कर दिया तो कौनसा बुरा किया ? अच्छा बेटी चल इस एक नियमको रख ले, पर और चार नियम तो छोड दे। आगे चले तो देखा कि एक व्यक्तिकी जिह्वाका पुलिसके द्वारा छेदन किया जा रहा था, लडकीने पूछा—यह व्यक्ति क्यो दण्डित किया जा रहा है ? तो बताया कि इसने झूठ बोला है। · तो पिताजी मैंने झूठ बोलनेका त्याग कर दिया तो कौनसा बुरा किया ?· अच्छा बेटी तू इन दो नियमोको रख ले, पर अन्य तीन नियमोको तो त्याग दे। आगे चले तो देखा कि पुलिसके लोग एक व्यक्तिको हथकडी डाले हुए लिए जा रहे थे।··· पिताजी इसका क्या मामला है ? इसने चोरी किया है। तो फिर मैंने चोरीका त्याग किया तो क्या बुरा किया ?·· अच्छा बेटी तू इन तीन नियमोको रख ले, पर दो तो छोड दे। कुछ और आगे बढे तो देखा कि एक व्यक्ति बहुतसे लोगो द्वारा एक जगह खूब पीटा जा रहा था। लडकीने पूछा—पिताजी इसका क्या मामला है ? बेटी इसने कुशील सेवन किया है।···तो पिताजी मैंने कुशीलको त्याग दिया तो क्या बुरा किया ?·· अच्छा बेटी तू इन चार नियमोको रख ले, पर एक नियम तो त्याग दे। कुछ और आगे बढे तो देखा कि पुलिस के लोग एक व्यक्तिको बाँधकर लिए जा रहे थे। पूछा, इसका क्या मामला है ? तो बताया—बेटी इसने तृष्णा करके दूसरोपर अन्याय किया है। तो पिताजी मैंने इस तृष्णाको त्याग दिया तो क्या बुरा किया ? अच्छा बेटी तू सभी नियम रख ले, पर चल देखें तो सही कि वह कौनसा मुनि है जिसने तुझे ये नियम दिए है। पहुच गए मुनिराजके पास तो वह पुरुष बोला—मुनिराज तुमने मेरी बेटीको क्यो ५ नियम दिये ? तो वह मुनि कहता है—यह बेटी तुम्हारी नही, यह तो मेरी है। ·यह कैसे ? उस समय दर्शकोका बडा ठट्ट जुड गया। तो उस मुनिने उस लडकीके सिरके ऊपर हाथकी छाया कर दी आशीर्वाद रूप मे। उस लडकीको अपने पूर्वभवका स्मरण हुआ और जो कुछ भी उस लडकीने पूर्वभवमे

ज्ञानार्जन किया था वह सब धाराप्रवाहसे बोल उठी। तो वास्तवमे हम आप संतान तो उनके है जो हम आपको हितमार्गमे लगायें। लोग कहा करते हैं कि हम वीरकी संतान हैं। अरे वीरके तो संतान ही नही हुए, शादी वगैरह तो हुई नही, फिर वीरके संतान क्यो कहते? अरे उन्होंने हम आप सबको हितमार्गमे लगाया इससे अपनेको महावीरकी संतान कहते है। यहाँ निष्कपट प्यार तो वह है जो हितमार्गमे लगाये। तो वे प्रभु परमज्योतिस्वरूप हैं, परिपूर्ण सनातन है, कृतकृत्य है, ये भगवान सिद्ध इस चतुर्थ शुक्लध्यानके प्रतापसे बने हैं। अयोगकेवली गुणस्थानके प्रतापसे शेष कर्मोंका विनाश हुआ कि सिद्ध पद प्राप्त हो जाता है।

सतृप्त सर्वदैवास्ते देवस्त्रैलोक्यमूर्द्धनि।
नोपमेय सुखादीना विद्यते परमेष्ठिन ॥२१९६॥

संतोषमे वैभवशालिता—ये सिद्ध भगवान् सतृप्त है, अपने आपमे संतुष्ट है। असन्तोष ही दरिद्रता है, संतोष ही अमीरी है। नही तो आप लोग कमेटी करके निर्णय करके ही बतावो कि कितना धन प्राप्त हो जाय तो अमीर कहलायगा। आप लोग इसका कोई निर्णय नही दे सकते। तो वास्तवमे जो सन्तुष्ट है वे ही अमीर है। बुन्देलखण्डके एक राज्यमे राजाके मर जाने पर राजमाता राज्य करती थी। उसके एक पुत्र था। उस पुत्रका चित्त बडा उदार था। बहुत-बहुत धनका दान करता था जो उसे मिल जाय। वह राजमाता उस लडके की इस उदारता व अच्छी भावनाओ के कारण बहुत प्रसन्न थी। एक बार उस राजमाताने कहा—बेटे यह जो सामने पहाड खडा है इतना धन यदि तुम्हारे सामने रख दिया जाय तो तुम कितने दिनोमे दान कर दोगे? तो वह बालक बोला—माँ, मै तो एक मिनटमे ही दान कर दूंगा, पर उठाने वाले चाहे कितने ही दिनोमे उठाये। तो वास्तवमे जो सन्तुष्ट है वह परमधनी है और जो असन्तुष्ट है वह अति निर्धन है।

आत्मरक्षार्थ विपदाओके स्वागतका अनुरोध—भैया! यहाँ किसकी बात सुनते हो, किसके बहकावेमे आते हो? यहाँ किसके लिए इतनी अधिक धनके पीछे होड लगाई जा रही है? अरे उदयके अनुसार अगर आता है धन तो आये, उसमे व्यवस्था बना लेंगे। धनी होनेके लिए, अमीरीका सुख भोगनेके लिए यह मानवजीवन नही पाया, किन्तु तत्त्वज्ञान पाकर अपने आत्मामें बसे हुए परमात्मप्रभुका दर्शन कर करके पवित्र बननेके लिए हमने यह मनुष्यजीवन पाया है। कैसी भी स्थितिया आये, विचार करें कि हे विपदावो, तुम तो हमारा हित करने वाली हो, जितनी आ सको आवो। अरे इन रागकी नीदमे सोये हुए पुरुषोको जगाने वाली आप ही तो हो। जिस क्षेत्रमें विपदायें नही होती उस क्षेत्रसे मुक्ति नही होती। देवलोकमें जहाँ कोई विपदा नही, खाने पीनेका संकट नही, रोजिगार करना पडता नही, बस खेल खेलमें ही सारा समय व्यतीत होता है, तो क्या वहासे किसीको मुक्त

होते सुना है ? आगममें देखा है भोगभूमिके क्षेत्रमे कोई विपदा नही। जुगलिया पैदा हुए, वे ही पुरुषस्त्री बन गए, जिन्दगीभर सुखमे रमे, अन्त समयमें गर्भ रहता, बच्चा बच्ची दोनो साथ ही पैदा हुए और मा बाप तुरन्त मर गए। तो वहा काहेका दु ख ? दुःख तो उन्हे तब हो जब वे उन बच्चा बच्चीका मुख देख लें। तो विपदायें आती है तो आयें। जो निर्वाण हजारो वर्ष तक तप करने पर प्राप्त हो सकता है वह निर्वाण किसी उपसर्गके आने पर अन्तर्मुहूर्तमें ही प्राप्त हो सकता है। गजकुमारसे बहुतसे लोगोको हे विपदा ! तूने मुक्तिमे पहुचाया। तेरी आशा करूँ तो मुझे कुछ हाथ आ सकता है, पर सम्पत्तिकी आशा करूँ तो केवल जीवन खोना है, हाथ कुछ नही आता है। विपदावोसे डर मान लिया तो जीवन कायर बन गया, कुछ कर ही नही सकते। विपदावोसे क्या घबडाना। राम लक्ष्मण सीता घर छोडकर बनमे रहे तो उन्होने क्या विपदा मानी ? यहा तो थोडी सी हानि हो जाय या लाभमें कमी आ जाय तो लोग हैरानी मानते है। इतना साहस बनावो कि हम तो जो भी स्थिति आयगी उसीमे खुश रहेगे। धर्मके लिए जीवें। दरिद्रता आये तो आये, अपने बच्चोको, स्त्रीको सबको धर्मकी बाते सुनाकर, जीवनका मूल लक्ष्य बताकर, उनके दुःखमे सहानुभूति दिखाकर उन्हे तृप्त करले। वे तो धर्मके रगमें रग जायेंगे। क्या यहा कष्ट है ? जो अपने आपमें सतृप्त हो वही धनी है।

सहज ज्ञानकी प्रियतमता—प्रभु सर्व प्रकार अपने आपमे तृप्त रहा करते है। वे तृष्णारहित है, लोकके शिखरपर सदा विराजमान है। अब वे वहाँसे कभी चिगेंगे नही। इस ससारमे कोई भी पदार्थ ऐसा नही है जिसकी उपमा भगवानके गुणोके लिए दी जाय, भगवानके आनन्दके लिए दी जाय। जीवकी आदत रहती है कि जो वस्तु अधिक प्रिय हो उसको ही हृदयमे बसायें। तो बतावो सबसे अधिक प्रिय क्या है ? कोई एक बात बैंठती ही नही है। जब बच्चा है तब मां की गोद प्यारी है। जब बढकर कुछ बडा हुआ तो खेल खिलौने प्रिय हो गए, कुछ और बडे हुए तो शिक्षा प्रिय हो गई, फिर डिग्री प्रिय हो गई, फिर स्त्री पुत्रादि प्रिय हो गए, धन प्रिय हो गया। अब एक घटना घटती है—वह किसी दफ्तरमे है, खबर पहुची कि घरमे आग लग गई। वह झट घर पहुचकर सारा सामान, सारे बच्चे आदिको निकलवाता है। अन्तमे कोई बच्चा घरके भीतर रह गया, आग बहुत अधिक बढ गई तो वह कहता है अरे उस बच्चेको निकालो—१० हजार रुपये इनाम देंगे। अब उसे धन भी प्रिय न रहा, अपनी जान प्यारी हो गयी। कदाचित् हो जाय वैराग्य, साधु हो जाय तो अब वह अन्तस्तत्त्वके ध्यानमे इतना मस्त है कि अनेक उपसर्ग भी आ रहे है, जान भी जा रही है, और बल इतना है कि वह उन उपद्रवियोको भगा सकता है, लेकिन इन विकल्पो को भी वह नही चाहता है। अब क्या प्यारा रहा उसे, सो तो बतावो ? उसे प्यारा रहा अब

अपना ज्ञान । तो जो सबसे अन्तमे प्यारा रहा वही प्यारा कहलायेगा । तो अपने लिए प्यारा है अपने आत्माका ज्ञान, जिसके होनेपर फिर जगतमे कोई कोई चीज प्रिय नही लगती । वह पूर्ण ज्ञान प्रभुके प्रकट हुआ है इसलिए प्रभुका ध्यान किया जाता है ।

चरस्थिरार्थसम्पूर्णे मृगमाण जगत्रये ।
उपमानोपमेयत्वं मन्ये स्वस्यैव स स्वयम् ।।२१९७।।

प्रभुकी निरुपमता---भगवानका ज्ञान किसकी तरह है, वह प्रभु किसके समान आनदमय है, उन प्रभुकी उपमाके लिए यहा कुछ है क्या ? ढूढ लो । चर और स्थिर पदार्थोसे भरे हुए इस लोकमे खूब ढुढाई कर लो, पर कोई उनकी उपमाके लायक पदार्थ न मिलेगा । अजी भगवानका ज्ञान सूर्यके समान तो होगा ? अरे सूर्य तो अस्त भी हो जाता, पर प्रभुका ज्ञान-साम्राज्य कभी नष्ट नही होता । सूर्यको तो केतु आकर ग्रस लेता है, पर भगवानको कोई नही ग्रसता । सूर्यके नीचे बादल आ जानेपर उसका प्रकाश रुक जाता है, पर प्रभुके ज्ञानमे आडे कुछ नही आ सकते । अच्छा---तो प्रभुका ज्ञान चन्द्रमाकी तरह तो होगा ? अरे चन्द्रमा तो कभी उदयमे आता है कभी नही आता, प्रभु तो नित्य उदित प्रतिभासमान हैं । चद्रबिम्ब मे तो कोई कलक लगा हुआ है---जैसे कोई बच्चे लोग कहते हैं कि चन्द्रमामे कोई बुढिया बैठी हुई सूत कात रही है, कोई लोग कहते हैं कि हिरण उछल रहा है, कोई लोग कहते है कि चन्द्रमामे बरगदका पेड है । यो चन्द्रमामे तो अनेक कलक लगे हैं पर प्रभुके ज्ञानमे कहाँ कलक है ? तो यहाँ प्रभुके ज्ञानकी किससे उपमा दें ? उपमा देने लायक यहा कोई नही है । यह कह सकते हैं कि भगवानकी उपमा लायक तो भगवान ही हैं । अनेक विधियोसे तत्त्वज्ञान करके अपने आत्माकी साधना करके जो महान आत्मा सिद्ध प्रभु बने हे उनके वैभवकी कुछ चर्चा चल रही है ।

यतोऽनन्तगुणाना स्यादनन्ताशोपि कस्यचित् ।
ततो न शक्यते कर्तुं तेन साम्य जगत्रये ।।२१९८।।

प्रभुके अनन्त वैभवकी तुलना बतानेके लिये तीन लोकमे पदार्थोका अभाव—कहते है कि अनन्त गुणयुक्त भगवानकी समता हम किससे करें, जिसका अनन्तवा अश भी ज्ञान और आनन्द किसीके पाया जाय तो क्या उससे तुलना कर देना युक्त बात होगी ? प्रभु अनत विकासमय है, और यहाँ प्रभुके विकासका अनतवा भाग विकास वाला है, तो किसका उदाहरण लेकर प्रभुका वैभव बताया जाय ? जो एक विशुद्ध ज्ञानमे मग्न है, जिससे ज्ञानमे रच मात्र भी रागद्वेषकी तरग नही है, निरन्तर एक समान ही जिसका ज्ञान चल रहा है, ऐसे परमपुराण पुरुष सिद्ध महाराजकी परमनिराकुलता निरन्तर बर्त रही है । इससे उत्कृष्ट पद और क्या हो सकता है ? जो यहाँका मोह छोड सकता है, जो असार ससारके विषय-

साधनोका परित्याग कर सकता है वह ही तो इस पथपर चल सकेगा, कायर तो नही चल सकते। एक बार बुन्देलखण्डमे टीकमगढ स्थानमे एक पहलवान आया, वह कुश्तीमे विश्व-विजयी था। वहाँ पहुचकर उसने कह दिया कि हम अपनी कुश्तीकी कला दिखायेंगे। जो चाहे सो हमसे लड सकता है। किसीको साहस न हुआ। तब एक अत्यन्त दुबला पतला आदमी उठा, जिसने कभी कुश्ती भी न लडी थी, वह बोला कि हम इससे लडेंगे, मगर अभी नही। यह थक करके आया है, इसको पन्द्रह दिनका समय दो, अपनी थकान मेट ले, और खा पीकर खूब तैयार हो जाय तब लडे। यो पहिले ही उसने धमकी देकर उसको घबडवा दिया। जब १५ दिनके बादमे कुश्ती लडनेका समय आया तो दोनो आ गए लडनेके लिए। वह दुबला पतला पुरुष साहस भरे शब्दोमे कहता है कि तुम कौनसी कुश्ती लडोगे ? सिर मसकनेकी कुस्ती लडोगे या दाँव पेचकी ? तो वह पहलवान बोला कि सिर मसकनेकी कुश्ती लडेगे। वह पहलवान—कौनसी कुश्ती लडोगे, ऐसा सुनकर और भी घबडा गया। वह दुबला पतला आदमी कहता है अच्छा पहिले तू हमारा सिर मसक। उसने सिर मसका तो उसे अभ्यास था, सहन कर लिया। अब सिर मसकनेकी कुश्तीमे तो एक कलाकी बात है। हर एकमे तो सब जानकारी नही होती, कहां नस है, कहाँ मसकना, क्या करना, वह तो एक ज्ञान सम्बधी बात है। तो जब उस दुबले पतले आदमीने उसके सिरको मसल दिया तो वह पहलवान बोल उठा—बस छोड दो, अब तुम जीत गए। तो साहसकी बात बतलाते है कि साहस हो तो क्या नहीं किया जा सकता। और आत्मकल्याणके लिए साहस कही खरीदना नही है, उसमे किसी परकी अपेक्षा नही है। दृढतासे चित्तमे एक चिन्तन ही तो करना है कि मुझे शान्ति मिल सकती है तो मेरेको केवल मेरे दर्शनसे अनुभवसे ही मिल सकती है। तो ऐसे शुद्ध चैतन्यतत्त्वकी जिसने उपासना की हो, वह होता है कर्मोंसे मुक्त। उस मुक्त पुरुषके वैभवकी यह बात चल रही है।

शक्यते न यथा ज्ञातु पर्यन्त व्योमकालयोः।
तथा स्वभावजाताना गुणाना परमेष्ठिन ॥२१९९॥

परमेष्ठी प्रभुके गुणोका ज्ञान किये जानेकी अशक्यता—जैसे कोई आकाश और काल को मापे तो क्या उसके अन्तको पा सकता है ? नही पा सकता। इसी तरह स्वभावसे उत्पन्न हुए परमेष्ठियोके गुणोका कोई अन्त भी पा सकता है क्या ? नही पा सकता। कोई आकाश का आखिरी ढूढना चाहे तो वह पा सकेगा क्या ? अगर आखिरी आया तो उसके बाद क्या है सो बतावो ? या तो कहोगे कि पोल है या कहोगे कि पर्वत आदिक है। पर इस पोलका ही तो नाम आकाश है, और जो पर्वत आदिक है वहाँ भी आकाश है और उसके बाद भी कही भी जावो, सर्वत्र आकाश है। और फिर लोक इतना महान है कि जिसका अन्त ही

नही है । जैसे कोई आकाशका अन्त समझना चाहे तो वह समझसे बाहर है इसी प्रकार भगवानके गुणोका कोई अन्त समझना चाहे तो वह भी समझसे बाहर है । यह सब वैभव कैसे मिलेगा ? कषायोका अभाव होनेसे । अपने आत्मस्वरूपका परिज्ञान हो, उसमे मग्नता हो तो यह वैभव प्राप्त होगा, पर इतनी कायरता है कि कषाय नही छोड सकते । क्रोधके कारण उपस्थित हो तो क्रुद्ध हो जाते हैं । जरा-जरासे प्रसगोमे लोग अपनी नामवरीका, अपने सम्मानका, घमडका बर्ताव करते है, जरा-जरासी चीजोंके लोभमे मायाचार बर्तते है, तृष्णा इतनी बेहद लगा रखी है कि जिसका कोई आरोपार नही । तो ऐसे बर्ताव वाले व्यक्ति कैसे हितमार्गपर चल सकेंगे ? नकलसे काम न बनेगा । काम तो असलियतसे ही बनेगा ।

तत्त्वप्रतीति बिना उत्कर्षकी अशक्यता—एक कोई लकडहारा था, उसको जगलमे एक मुनिराजके दर्शन हुए । बैठ गया मुनिराजके पास और कहा—महाराज ! मुझे भी कुछ नियम दीजिए । तो मुनिराजने कहा—णमो अरिहताण, इस मत्रका हर जगह, हर स्थितियो मे, हर समय जाप करो । लो वह घर चला आया, अब तो उसको उसी मत्रकी धुनि बन गई । कोई भी उससे कुछ कहे–वह उत्तरमे णमो अरिहताण बोलता । स्त्री कहती–क्या कुछ कमाने न जावोगे ? वह बोला—णमो अरिहताण । अरे ऐसे ही काम चल जायगा ? णमो अरिहताण । एक बार स्त्रीने कहा—चलो खीर बनी है खा लो, वह बोला णमो अरिहताण, रोषमे आकर स्त्रीने हाथ पकडकर खीचकर चौकेमे बैठा दिया और कहा अब तो खावो—वह बोला—णमो अरिहताण । तो उस स्त्रीको गुस्सा आया और चूल्हेसे एक अधजली लकडी उठाकर उसके सिरपर मारी । लकडी फट गई और उसके अन्दर कुछ भरे हुए मोती बिखर गए । लो, वह तो अब मालोमाल हो गया । एक दिन पडौसकी किसी सेठानीने पूछा कि भाई तुम इतनी जल्दी कैसे धनिक बन गए ? तो उसने सारा हाल कह सुनाया । उस सेठानीने सोचा—वाह यह तो धनिक बननेका बडा ही अच्छा उपाय है । सेठ जी से कहा कि तुम हर जगह हर समय हर स्थितियोमे णमो अरिहताण कहना, फिर हम काम बना लेगी । सेठानीने खीर बनायी । कहा चलो खीर खा लो, सेठ बोला—णमो अरि-हताण, सेठानीने हाथ पकडकर जबरदस्ती चौकेमे बैठा दिया और कहा अब तो खावो । तो वह सेठ बोला—णमो अरिहताण । सेठानीने गुस्सेका जैसा रूपक बनाकर एक अधजली लकडी उठाकर सेठके सिरपर मारा, अब इधर उधर देखती है कि रत्न बिखरे या नही । अरे वह तो नकल थी, असलियत थोडे ही थोडे ही थी । सेठको कोई उस णमोकार मत्रसे श्रद्धा थी क्या ? श्रद्धा तो न थी । तो श्रद्धा सहित अगर इतने ही पदका कोई जाप करे, पूर्ण णमोकार मत्रकी तो बात है ही, इस एक ही पदका कोई श्रद्धासहित जाप करे—मुझे

कुछ न चाहिए, प्रभुकी छत्रछाया चाहिए. प्रभुका गुणस्मरण चाहिए, यो उस प्रभुकी यदि कोई हार्दिक उपासना करे तो उसपर सकट नही ठहर सकते । हम पहिले श्रद्धा तो लायें । मनको पवित्र बनाना सर्वप्रथम काम है । सो जो काम प्रभुने किया, जिस भीतरी भावकी बात जो उन योगीश्वरोने किया उस पथपर चलें तो हमारा भी जीवन सफल हो सकता है ।

गगनघनपतङ्गाहीन्द्रचन्द्राचलेन्द्र,
क्षितिदहनसमीराम्भोधिकल्पद्रुमाणाम् ।
निचयमपि समस्त चिन्त्यमान गुणाना,
परमगुरुगुणौघैर्नोपमानत्वमेति ॥२२००॥

प्रभुगुणोंके उपमानका अभाव—भगवानका ज्ञान, भगवानका आनन्द, भगवानका साम्राज्य कितना महान है ? आकाश सबसे महान है, पर आकाशसे भी महान है प्रभुका ज्ञान । प्रभुके ज्ञानमे समस्त लोकाकाश एक बिन्दुकी तरह प्रतिभात होता है । यहाँ किसकी उपमा दी जाय ? मेघको बताते तो हैं गम्भीर, पर क्या गुण है मेघमे ? अरे ये सब एक क्षणिक पदार्थ है । उस ज्ञानानन्दस्वरूपकी इनसे क्या उपमा दी जा सकती है । सूर्य, चन्द्र, मेरु, पृथ्वी, अग्नि, वायु, कल्पवृक्ष इनसे प्रभुका गुणसमूह चिन्तन किया जाय तो सतुलन नही हो सकता । इनकी तरह प्रभुका ज्ञान और आनन्द है ऐसा कहा नही जा सकता कोई पदार्थ है ही नही । सारे दुःख मिट जायें और आनन्द ही आनन्दमे मग्न रहा करें ऐसी स्थितिकी और किससे तुलना की जा सकती है ? उससे उच्च और कुछ नही है । देखो जिसमे आनन्द भरा है, जिससे आनन्द मिलता है वे सब चीजें आपकी आपमे बसी हुई है । कही बाहरसे नही लाना है । जब जरा बाह्यपदार्थोंकी दृष्टि, बाह्यका विकल्प छोडें तो खुद ही यह प्रभु है, खुद ही यह अपने आपकी परख कर लेगा ।

कल्याणके लिये उम्रका हिसाब लगानेकी अनावश्यकता— जिस स्त्री, पुरुष, गृहस्थ, साधु, जवान अथवा बच्चा, जिसको भी अपने आपके आत्मस्वरूपका अनुराग जग गया धन्य तो उसका जीवन है । इसमे उम्रकी बात क्या ? ८ वर्षका भी बालक सम्यग्दर्शन उत्पन्न कर सकता है और साधु होकर चारित्र पालकर भगवान बन सकता है । कृष्णकी सभामे जब नेमिनाथ स्वामीके समवशरणमे व्याख्यान सुनकर आये श्रीकृष्ण जी ! दरबार लगा था, वहाँ कहा कि देखो यह द्वारिकापुरी बारह वर्षमे समाप्त होगी । जिसे उत्थान करना हो, जिसे जो कुछ करना हो सो करे । तो भरी सभामे प्रद्युम्न बच्चा खडा हो गया, कोई अधिक उम्र न थी, शादी हुए थोड़े दिन हुए थे, वह प्रद्युम्न खडा होकर बोला—मुझे तो विरक्ति हुई है और सब घर परिवार छोडकर दीक्षाके लिए जाऊँगा । लोग समझाते है—श्रीकृष्ण जी बोले—बेटा क्या कहते हो ? और लोग भी बोले—अरे छोटी उम्र है तुम्हारी, अभी दीक्षा लेने क्यो जा

रहे हो ? तो वह प्रद्युम्न कहता है कि अब तो मुझे किसीसे भी अनुराग नही रहा, मैं अब इस ससारके खम्भ बनकर रहना नही चाहता । चल दिया वहाँसे । पहुचा घर और स्त्रीसे कहा कि हमे तो अब विरक्ति हुई है, हम तो जा रहे है दीक्षा लेने । तो स्त्री कहती है कि तुमको अभी अच्छी तरह विरक्ति नही हुई । क्योकि यदि अच्छी तरहसे विरक्ति हुई होती तो हमारे पास खबर भी देने न आते । और तुम तो जब विरक्त होओ तब होओ, लो मैं तो यह चली । तो कल्याणके लिए क्या उम्र पूछना ? जब जिसमे ज्योति जगे तब उसे अपना लाभ उठा लेना चाहिए ।

धर्मविद्याका महत्त्व आकनेका अनुरोध--देखिये यह धर्मविद्या आपकी लौकिक विद्यावो से कितने ही गुणा महत्त्व रखती है, पर समयका प्रभाव है लोग लौकिक विद्यावोका, आजीविकाकी विद्यावोका बहुत महत्त्व बताते हैं, पर धर्मविद्याको बेकार समझते हैं । समय मिला तो धर्म पढ लिया । वह तो एक दिल बहलावाकी बात है, पर यह तो बतावो कि अन्तमे इन लौकिक विद्यावोंसे लाभ क्या मिल जायगा ? महत्त्व दें धार्मिक ज्ञानको । ये तो ससारकी परिस्थितिया है । जो भी परिस्थिति मिलेगी उस ही मे गुजारा कर सकते हैं, और फिर परिस्थितिके उत्पन्न करनेके हम अधिकारी नही हैं, ये परिस्थितिया तो उदयानुसार होगी, पर अपने आपके ज्ञानप्रकाशकी बात तो हमारे ही आधीन है, और उसमे इतना अद्भुत आनद है कि सदाके लिए ससारके सब सकट टल जायें । यह बात इस धर्मविद्याके प्रतापसे ही प्राप्त हो सकती है । तो हम अब अपमा पैंतरा बदले अर्थात् अपने उपयोगको बदलें, अन्यथा वह समय निकट ही है कि जब यहाँका सब कुछ छोडकर जाना होगा ।

प्राप्त समयका लाभ उठानेकी शीघ्रताका अनुरोध—एकका मित्र बीमार था, वह शामके समय उस मित्रके घर उस मित्रसे मिलनेके लिए गया । मित्रसे पूछा कि भाई क्या हाल है ? तो मित्रने बताया कि आज तो मित्र ! बिस्तरसे उठा जाता नही । दूसरे दिन वह फिर दोपहरको गया, और वह मर गया था सुबह ही । जब वहाँ पूछा तो उसे वह मित्र न दिखा । तो घरके लोगोसे पूछा कि आज उन्हे किसी दूसरी जगह लिटा दिया क्या ? कहाँ है हमारा वह मित्र ? तो घरके लोग बोले—आज तो वह दुनियासे चला गया । तो वह झुझलाकर कहता है—अरे, दुनियासे चला गया । "कल तक तो यू कहते थे कि बिस्तरसे उठा जाता नही और आज दुनियासे भी चल देनेकी ताकत आ गई । तो क्या विश्वास है इस जीवनका ? वह तो खैर बीमार था, पर जो बीमार नही है, वे भी तो चले जा रहे है । जो अभी खुश है उनके भी मरणका पता नही कि किस समय मरण हो जाय ? तो भाई यहाँके समागमोको तरसकर हम क्या लाभ उठायेंगे ? इस धर्मविद्याका अभ्यास करना चाहिए और उसमे ही अपनी रुचि बढाना चाहिए ।

नासत्पूर्वाश्च पूर्वा नो निर्विशेषविकारजाः ।
स्वाभाविक विशेषा ह्यभूतपूर्वाश्च तद्गुणाः ।।२२०१।।

प्रभुगुणोकी भूतपूर्वता और अभूतपूर्वता—सिद्ध भगवानमे जो गुण प्रकट हुए है वे गुण ऐसे नही है कि पहिले न थे और ऐसा भी नही है जो पहिले थे । इसका तात्पर्य यह है कि आत्मामे यदि ज्ञान आनन्द आदिक गुण न हो तो किसी भी प्रकार वे प्रकट नही हो सकते । धूलमे तेल नही है तो धूलको कितने ही बार पेला जाय तो भी उससे तेल नही निकल सकता, ऐसे ही जिसमे जो शक्ति नही है कितनें ही उपाय किए जाये, उससे वह वस्तु प्रकट नही हो सकती । सिद्ध भगवानके आत्मामे एक विकास है तो आत्मामे वह स्वय है गुण तब सिद्ध भगवानके प्रकट हुआ है । कारीगर लोग मूर्ति बनाते है पत्थरमे से तो कारीगर क्या वह चीज बना लेता है जो पत्थरमे न थी ? नही बना सकता । जो निकला है पत्थरमे से, जो प्रतिमा बनी है, जो मूर्तिरूप हुआ, वह अग वह अवयव वह स्कध पत्थरमे था । छेनी हथौडेसे क्या किया कारीगरने ? कोई चीज नई लगायी क्या ? जो उसके आवरक पत्थरके टुकडे थे उन्हे दूर किया, चीज वही प्रकट हुई जो पत्थरमे पहिलेसे थी । इसी प्रकार जब आत्मा परमात्मा होता है तो परमात्मामे नई चीज नही आती है । जो आत्मामे था और वह विषयकषाय कर्म आदिक आवरणोसे ढका हुआ था, एक समाधिके उपायसे, ध्यान अग्निसे उन आवरणोको जलाया, हटाया तो जो था, सो ही सिद्ध रूपमे प्रकट हुआ । इस कारण कहते है कि सिद्धभगवतमे जो गुण प्रकट हुए है वे ऐसे नही है कि पहिले न थे अब हुए है । दूसरी बात सुनो—सिद्ध भगवानमे जो गुण प्रकट हुए है वे पहिले नही थे, केवलज्ञान केवल दर्शन आदिक गुण सिद्ध भगवानमे जो है क्या वे सिद्ध होनेसे, अरहत होनेसे पहिले थे ? तो एक दृष्टिसे यह बात जचती है कि भगवानमे जो गुण प्रकट हुए है वे पहिले न थे अब हुए और एक दृष्टिसे यह बात जच रही है कि सिद्ध भगवतमे जो गुण हुए है वे पहिले न थे और एकदम नये ही कहीसे आ गए, ऐसी बात नही है । इसका कारण यह है कि जो बिल्कुल ही कुछ नही है उसकी उत्पत्ति नही है, उसका आविर्भाव नही, प्रकाश नही । वह गुण स्वाभाविक विशेष विकारभूत नही है, इस कारणसे भगवानके जो गुण है वे अभूतपूर्व भी है और पहिले थे वे ही उत्पन्न हुए है । ये दोनो बाते यथार्थ जान लेना चाहिए ।

वाक्पथातीतमाहात्म्यमनन्तज्ञानवैभवम् ।
सिद्धात्मना गुणग्राम सर्वज्ञज्ञानगोचरम् ।।२२०२।।

सिद्धात्माके गुणोकी सर्वज्ञज्ञानगोचरता—जिसको माहात्म्य वचनोसे नही कहा जा सकता, जिसके अनन्त ज्ञानका विभव है ऐसे सिद्ध परमेष्ठियोका गुणसमूह सर्वज्ञके ज्ञानके गोचर है । जैसे धनिकोकी बात धनिक ही जानें, क्या खर्च होता है, क्या खर्च दिखाते है,

क्या आय दिखाते है—ये सब बाते धनिकोको ही विदित होती है। गरीब क्या जानें ? जो जिसके समक्ष हो वह उसके दुःख, सुख, चिन्ता, उलझन आराम आदि सारी बातोको परख सकता है। ज्ञानी पुरुष ज्ञानीके मर्मको परख सकता है। जो जिस गुणका प्रेमी है वह उस गुणकी बातको जान सकता है। एक सभामे संगीत हो रहा था, तो बहुतसे लोग एक लाइनमे संगीत वाले बैठे हुए थे और संगीत बजा रहे थे। उस समय एक कोई अंधा पुरुष भी उस संगीतसभामे बैठा हुआ था। वह भी संगीतकलाका विशेष जानकार था। तो उसने उस संगीत के सम्बधमे बताया कि इनमे जो इतने नम्बरपर बैठा हुआ तबल्ची है उसका अगूठा निजी नही है, बनावटी है, वह तबलेकी आवाज सुनकर परख गया था। जब लोगोने देखा तो उन्हे यह बात सही दीखी। उसकी उस कलाको देखकर जो उसमे नृत्यकारिणी वेश्या थी वह बहुत प्रसन्न हुई। अब दूसरी बात देखो—उस संगीतके साथ-साथ वह नृत्यकारिणी गाती भी जाती थी और नाच भी रही थी। तो उस समय उसके शरीरपर कोई भ्रमर आकर बैठ गया। अब वह नृत्यके समय, संगीतके समय यदि वह अपने हाथसे उस भ्रमरको उडाये तो उसकी उस नृत्यकलायें कुछ अन्तर आ सकता है। तो उस नृत्यकारिणीने उस संगीतकी ही कलामे इस गानेके भीतर ही ऐसी श्वास भरी आवाज छोडी कि वह भ्रमर अपने आप शरीरपरसे उड गया। इस कलाको भी वह अंधा पहिचान गया याने जो जिस कलाके विशेष जानकार होते है वे उस कलासम्बधी अत्यन्त सूक्ष्म बातको भी पकड लेते हैं तो उस अंधेने नृत्यकारिणीकी कलापर प्रसन्न होकर जो एक दुशाला ओढे हुए था नृत्यकारिणीको न्यौछावर कर दे दिया। राजाने पूछा कि तुमने इसमे ऐसा क्या काम देखा जो अपना नया दुशाला इसको भेंट कर दिया ? तब अंधेने उस नृत्यकारिणीको नया दुशाला भेंट करनेका कारण बताया। तब लोगो को विदित हुआ। तो जो ऐसी सूक्ष्म कलावोंके जानकार होंगे वे ही तो इस तरहकी सूक्ष्म बात बता सकेंगे। सर्वज्ञके वैभवको सर्वज्ञ ही बता सकेंगे।

स स्वयं यदि सर्वज्ञः सम्यग्ब्रूते समाहित।
तथाप्येति न पर्यन्त गुणाना परमेष्ठिन. ॥२२०३॥

सर्वज्ञके गुणोका सर्वज्ञ द्वारा भी अवक्तव्यता—सर्वज्ञ भगवान प्रभु प्रभुके गुणोको जानते हैं, किन्तु वे प्रभु भी यदि प्रभुके गुणोको कहने बैठ जायें तो वे भी कहकर उसका अंत न कर सकेंगे। किसी नदीमे जहाँ पानी नही रहा, वहाँ जितनी धूल पडी है, जितने छोटे-छोटे कण पडे है उन सबको आप वहाँ खडे हुए जानते है कि नही ? और अगर पूछें कि बतावो वे कण कितने हैं ? तो क्या आप उनकी सख्या बता सकेंगे ? नही बता सकते, किन्तु जानते सब है। तो सर्वज्ञमे प्रभुमे कितने गुण है, क्या वैभव है यह सर्वज्ञके ज्ञान द्वारा गोचर है। वे जानते है, किन्तु वे भी यदि कहने लग जायें तो कह नही सकते। प्रयोजन यह है कि

ससारकी किसी मायामे, वैभवमे, विषयसाधनोमें, किन्हीमे भी मोह मत बढावो, व्यामुग्ध मत हो। कुछ बनता है मोह, पर जानते तो रहो कि ये सब भिन्न चीज है, भिन्न समागम है। यहाँ राग करनेसे पूरा न पडेगा। जो किया जा रहा है राग वह हमारी गल्ती है। किसी दिन तो वियोग होगा, और वियोगके समयमे बहुत क्लेश भोगना पडेगा। तो इन प्राप्त समागमोके प्रति ऐसा ध्यान बनाये रहो और अपने आपमे अपनी परख करके अपने आपके स्वरूप को निहार करके तृप्त रहो, सुखी रहो। बस वही वास्तविक अमीरी है। इस उपायसे प्रभुता प्राप्त कर लोगे और स्वय जान जावोगे कि प्रभुका वैभव क्या है ?

वास्तविक अमीरी—बाह्य चीजोमे यदि अपना लगाव है तो चाहे राजा ही क्यो न हो फिर भी वह गरीब है। एक फकीरको कोई पुरुष एक पैसा चढा गया, विचार किया कि यह पैसा मै उसे दूगा जो मुझे अत्यन्त गरीब दिखेगा। बहुत ढूँढा, पर कोई भी अत्यन्त गरीब न मिला। एक बार बादशाह हाथीपर बैठा हुआ अपनी सेना सहित उसके पाससे निकला, वह किसी दूसरे राजापर चढाई करने जा रहा था। साधुने और लोगोसे जानकारी कर ली कि यह बादशाह दूसरे किसी छोटे राजापर चढाई करने जा रहा है, तो सोच लिया कि इससे गरीब और कौन हो सकेगा जो दूसरे निरपराध छोटे राजाका धन हडपने जा रहा है। सोचा कि यह पैसा मै इस बादशाहको दूगा। जब पासमे आया तो साधुने उसकी झोलीमे वह पैसा फेक दिया। बादशाहने पैसा फेकनेका कारण उस साधुसे पूछा। तो उसने बताया कि यह पैसा हमे किसीने चढाया था, सो विचार किया था कि हमे जो सबसे अधिक गरीब दीखेगा उसीको यह पैसा दूँगा। तुमसे गरीब मुझे कोई दिखा नही सो यह पैसा मैने तुम्हे दिया।" वाह मै गरीब कैसे ? मेरे पास तो इतनी सेना, इतना वैभव, इतना सब कुछ। 'अरे यदि आप गरीब न होते तो बेचारे निरपराध छोटे राजाका धन हडपने तुम क्यो जाते ? बादशाहके ज्ञान जगा, और कहा—महाराज, आपके इस पैसेने मुझे धनिक बना दिया। वहीसे वह बादशाह वापिस लौट आया। तो इस बातकी चिन्ता छोड देनी चाहिए कि मेरे पास तो कुछ भी वैभव नही है। जो वैभव है वह भी जरूरतसे अधिक है, ऐसा भाव बनाये।

आत्महितनिर्णय—अरे इस वैभवकी प्राप्ति करनेके लिए यह जीवन नही पाया है। यह जीवन पाया है—सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन व सम्यक्चारित्रके पालनके लिए। दुनियामे हजारो लोग आये और अपनी-अपनी करतूत दिखाकर चले गए, केवल ग्रन्थोमे व इतिहासमे उनका नाम शेष है। क्या है यहाँ ? तो इस चिताको दूर करें और जो मिलता है वह भाग्य से मिलता है। उसमे घरके सभी जीवोका भाग्योदय काम करता है। तो फिर जो कुछ आय हो उसीमे व्यवस्था बनाकर गुजारा चलायें और तृप्त रहे। भगवानकी भक्ति करके और अपने आपके वैभवको निहारकर। क्या दु ख है ? विपदा तो यह है कि कही कुसग न हो जाय,

कही बुद्धि न फिर जाय । विपदा तो इसका नाम है । धन कम हुआ यह कोई विपदा नही है । रही पोजीशनकी बात । तो आत्माका महत्त्व बडप्पन तो आत्माके विकासमे है और बात मे नही है, तो अपने वैभवको, अपनी ज्ञानशक्तिको, अपने ज्ञानपुञ्जको निरखिये और उसका निर्णय रखिये तो उससे आपकी सच्ची शोभा बढेगी । बाहरी कपडोसे, शृ गारोसे इस अपवित्र देहकी शोभा बढायी तो क्या बढाया ? अपने आपमे बसा हुआ जो ज्ञान है, गुण है, निधि है, परम शान्ति है उस स्वभाव निधिको निरखकर तृप्त होवो तो अपनी वास्तविक शोभा बढेगी । तो एक इस अपने कारणपरमात्मतत्वके आलम्बनसे वे गुण विकसित होते हैं जिन गुणोको सर्वज्ञ प्रभु ही जान सकते है । वे सर्वज्ञ भी यदि उन गुणोको बताना चाहे तो उनका अन्त न बता पायेंगे ।

त्रैलोक्यतिलकीभूत निःशेषविपयच्युतम् ।
निर्द्वन्द्व नित्यमत्यक्ष स्वादिप्ट स्वस्वभावजम् ॥२२०४॥
नरौपम्यमविच्छिन्न स देवः परमेश्वर ।
तत्रैवास्ते स्थिरीभूत पिबन् ज्ञानसुखामृतम ॥२२०५॥

प्रभुकी ज्ञानामृतसे तृप्तता—वे प्रभु योगीश्वर उपमारहित, नामरहित निरन्तर अनुभव मे आ रहे हुए उस स्वाभाविक ज्ञानानन्दामृतको पीते हुए स्थिर होकर वही ही ठहर जाते हैं ऐसा है वह अमृत जो तीनो लोकमे अदृष्ट है, समस्त विषयोसे परे है, अतीत है, जिसमे कि ददफद कलह नही है, निरुपम है ऐसे स्वाभाविक ज्ञानानन्दामृतको पीते हुए वे प्रभु अपने स्वभावमे ही ठहर जाते है । यहाँ भी तो जब कोई कभी बहुत ही रुचिकर स्वादिष्ट चीज खा रहा होगा तो उस समयमे यहाँ वहाँकी बातें भूलकर अपने आपमे हो सिकुडे हुए होकर, एकतान होकर उसके रसको अनुभवते है । तो जब कोई उच्च आनन्द प्राप्त होता है तो फिर उसे छोडकर बाहर कहाँ जाय ? प्रभुको स्वाभाविक केवलज्ञान और अनत आनंदका जो अनुभवन है उस अनुभवको भोगकर अब वह बाहर कहाँ जाय ? वह निर्विकार है, अपने ही आनन्दमें निरन्तर तृप्त रहता है ।

मोहियोकी क्लेशसाधनोमे रुचि—मोही जन ही यहाँके लौकिक वैभवको कुछ घटनाओको निरखकर मौज मानते है । मोहियोकी ही ऐसी अवस्था है कि अपने स्वभावसे च्युत होकर बाहरमे अपना उपयोग रमायें । एक जगह एक महफिल लगी हुई थी । उस महफिल मे मिरदग भी बज रहा था, मजीरा भी बज रहे थे, और एक वेश्या गीत गा गाकर नाच रही थी । तो उस समयके दृश्यको कविने अपनी कवितामे खीचा है । वह कविता क्या है कि मिरदग कहे धिक है, धिक है, मजीरा कहे किनको, किनको । तब वेश्या हाथ पसारि कहे, इनको इनको इनको इनको । मिरदगकी आवाज ऐसी ही तो होती है ना—धिक् धिक्, अर्थात्

धिक्कार है धिक्कार है । मजीरेकी आवाज किनको विनको वी होती है, अर्थात् मजीरा मानो पूछ रहे है मिरदगसे कि किनको धिक्कार है । तब वेश्याने हाथ पसारकर चारो दिशावोमे बैठे हुए लोगोकी ओर सकेत करते हुए कहा—इनको, इनको, इनको, इनको । अर्थात् इन चारो दिशावोमे बैठे हुए लोगोको धिक्कार है । तो देखो—जो घटना इस प्रकारकी बात बता रही है उसी घटनामे लोग रति करते है । उसीमे वे मौज मानते है ।

शान्तिके अनुभवकी पात्रता—एक कहावत है कि वे पुरुष खीरको क्या जानें जो पजीरीमे ही रम रहे है । पजीरी होती होगी कोई बासी बफूडी चीज । जो इन बासी बफूडी चीजोमे ही रम रहे हैं वे क्या जानें खीरका स्वाद ? ऐसे ही जिनको विषयोमे प्रीति लगी है, बाहरी पदार्थोंमे राग लगा हुआ है वे पुरुष किसी भी समय अपने आत्मामे बसे हुए उस सहज कारणपरमात्मतत्त्वके दर्शन नही कर सकते है । शरण तो केवल अपनेको अपने आपमे ही मिलेगा, अन्यत्र न मिलेगा । यह बात बिल्कुल सत्य है, ऋषि सतो द्वारा कही हुई है । इस बात को लिखकर रख लो कि जगतमे शरण अपनेको अपने आपमे ही मिलेगा अन्यत्र नही । शान्ति तो अपने आपमे ही आकर प्राप्त हो सकती है, बाहरमे शान्ति कभी भी नही पा सकते । तो वह उपाय करना होगा, अपने स्वभावका आलम्बन लेना होगा जिसके प्रसादसे ससारके सकट सदाके लिए छूट सकते है ।

देवः सोऽनन्तवीर्योद्गवगमसुखानर्घ्यरत्नावकीर्ण,
श्रीमान्त्रैलोक्यमूर्ध्निप्रतिवसति भवध्वान्तविध्वसभानु ।
स्वात्मोत्थानन्तनित्यप्रवरशिवसुधाम्भोधिमग्न स देव,
सिद्धात्मा निर्विकल्पोऽप्रतिहतमहिमा शाश्वदानन्दधामा ॥२२०६॥

प्रभुकी अनन्त चतुष्टयात्मकता—इस ज्ञानार्णव ग्रन्थमे कर्ममुक्त अनन्त आनन्दमय ज्ञानस्वरूप देवको आदर्श मानकर उस पदमे पहुचनेके उपायोका दर्णन किया गया है । तो ध्यानका वर्णन करके उसके फलमे जो स्थिति प्राप्त होती है उस स्थितिका यह एक अतिम मनन है । देव वह है जो अनन्त शक्तिमान है । अपने आपके गुणोके विकासको बनाये रहना, उससे न हटना, इस प्रकारके असीम कायरूपको बनानेके लिए अनन्त बल काम दे रहा है । प्रभुका अनन्त बल ऐसा बल नही है कि हम आपको भी कुछ सुख दुःख दे अथवा कुछ बनाये रहे । यहाँ उनके वशकी बात नही चल रही है । यह तो वस्तुस्वरूपके विरुद्ध ही बात है, किन्तु उनका बल उनके अपने आपके गुणोंके विकासमे जुटता रहता है, उससे हटने नही देता है, यह है प्रभुका अनन्त बल । ये प्रभु अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तआनन्दरूप अमूल्य रत्नोंके पिटारे है ।

स्वके उद्धारके लिये उत्सहन—आत्माको क्या चाहिए ? शान्ति । वास्तविक शाति

जिस उपायके मिले उस उपायमे लगना ही तो कर्तव्य है, वास्तविक शान्ति तो ज्ञान और वैराग्यके मार्गसे प्राप्त हो सकती है। यद्यपि ज्ञान और वैराग्यसे दूर रहे अनन्तकाल व्यतीत हो गया और उन ही अवस्थावोंके सस्कारके कारण कुछ थोडा-थोडा ज्ञान वैराग्य पाकर भी बीचमे शिथिलता होती है, गिरते है, उठते है, ऐसी बार-बार इच्छा करके भी उत्साह भग नही करना है। आखिर गिरकर उत्साह भग करके मनको खुला छोडकर क्या सिद्धि कर ली जायगी ? मार्ग तो एक यही है जिस किसी प्रकार अपने स्वरूपको पहिचानकर उसमे मग्नता होती है। जैसे कोई चींटी भीतसे गिरती है, फिर चढती है, फिर गिरती है, पर हिम्मत न हारनेके कारण वह ऊपर तक चढ ही जाती है इसी प्रकार हम आपमे गिरनेकी बात अनादिकालसे लगी ही रही आयी, इसमे यह नहीं सोचा जा सकता है कि हम अनादि से ही यो चले आये है तो इस परिपाटीको क्यो मिटायें ? कोई पुरुष यदि कुल परम्परासे निर्धन चला आया है, गरीब चला आया है तो वह यह नही सोचता कि हम पुरखोसे गरीब चले आये है, तो यह परिपाटी क्यो मिटायें, धनिक क्यो बने ? सभी धनिक बनना चाहते है। चाहे कुल परिपाटी चल भी रही हो किन्तु गरीबी कोई नही पसद करता, इसी तरह मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याआचरण अपने स्वरूपको न पहिचानकर बाह्यवस्तुमे आसक्ति-पूर्वक लगना, यह गरीबी तो अनादिकालसे चली आयी है लेकिन जो गौरवशाली पुरुष है, जिनका अपने आत्मतत्त्वपर गौरव है, जो आत्मकल्याणार्थी है उन्हे तो इस गरीबीको मिटा करके अमीरी प्राप्त करना है, सो वे उस अमीरीको प्राप्त करके सदाके लिए सकट मुक्त हो जाते है। उसके लिए हमे आदर्श चाहिए। बच्चा भी यदि कोई चित्र बनाता है तो एक चित्र सामने रखे रहता है, वह है आदर्श। इसके माफिक हमे चित्र बनाना है, इसी प्रकार हमे अपने आपका उद्धार करना है, अपनेको निर्मल ज्ञानप्रकाशमे रखना है। तो उसके लिए आदर्श है ये प्रभु, सर्वज्ञ वीतराग ज्ञानपुञ्ज। उनको निरख-निरखकर ज्ञानद्वारा अपने आपमे भी वही चीज बना लीजिए।

प्रभुकी श्रीमत्ता–प्रभु अनतज्ञान, अनतदर्शन, अनतआनद और अनतशक्तिसे सपन्न है। वह श्रीमान हैं अर्थात् ज्ञानवान हैं, तीन लोकके ऊपर बसते है, लोकके सिरपर बसते है। जो श्रेष्ठ होगा उसे ऊँचा ही आसन चाहिए ना। हम आपमे भी जो श्रेष्ठ होता है वह ऊँचे आसन पर बैठाया जाता है। वे प्रभु तो सर्व प्रकारके रागादिक विकारोसे मुक्त होकर स्वभावसे ही तीन लोकके मूर्धापर विराजमान होते है और कभी वहाँसे हट नही सकते। वे श्रीमान हैं। यहाँ जो गाली बोली जाती है वे गाली नही है, वे तो स्तुतिके शब्द है लेकिन छोटे आदमीको यदि बडी बात कह दी जाय तो वह छोटा तो गाली ही मान लेता है। यो वे शब्द गाली बन

गए, मगर एक श्रीमान शब्द ऐसा है कि जो बडा ऊँचा शब्द है। जो आत्माका आश्रय करे उसे कहते है श्री। तो श्री है विशुद्ध ज्ञान, केवलज्ञानविकास। किसीको यदि श्रीमान कह दिया जाय तो वह गाली नही समझता है। तो यह श्रीमान शब्द इतना विलक्षण शब्द है कि इसको किसी छोटे व्यक्तिने भी बुरा नही माना। किसी कंजूससे कह दिया जाय कि आइये कुबेर साहब तो वह तो शरमा जायगा और समझ जायगा कि यह तो हमारी मजाक कर रहा है, यो वह उस शब्दको गालीरूपमे मान लेगा। जो जो भी इकहरे शब्द है वे स्तुतिके शब्द है, पर किसी छोटे पुरुषको कहा गया तो उसने गाली समझ ली। जैसे पुगा, लुच्चा, लफगा, नगा आदि। ये सब शब्द तो प्रशसाके है पर छोटे लोगोको जब ये शब्द कहे जाने लगें तो गालीरूपमे वे माने जाने लगे। लफंगा अर्थात् जिसके अग नम्र हो गए है, जो बडा विनयशील है उसका नाम है लफगा, कितना ऊँचा शब्द है, पर लोग इस शब्दको सुनकर गाली समझ लेते है। लुच्चा, जो केशोका लोच करे अर्थात् मुनिराज। पुगा अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष। स्वस्ति त्रिलोकगुरवे जिनपुङ्गवाय। जिनेन्द्र भगवान है पुगा, मायने सबसे श्रेष्ठ। बुद्धू जिसकी बुद्धि खूब ठस-ठसकर भरी है उसका नाम है बुद्धू, यो ही पचासो शब्द है जो बडा उच्च अर्थ रखते है, पर छोटे लोगोको वे शब्द बोले गए इसलिए गालीरूपमें वे माने गए। गाली शब्द भी खुद बडा अच्छा शब्द है। गा ली, तुमने हमारी कीर्ति गा ली, स्तुति गा ली, प्रशसा गा ली, गानेकी बात जब कही जायगी तो प्रशसाके लिए कही जायगी, पर एक यह श्रीमान शब्द ऐसा है कि जिसे सुनकर लोगोंने बुरा नही माना। शायद यह सोचकर बुरा न माना होगा कि आखिर यह श्री यह ज्ञान प्रभुकी महत्ता बताता है। वे प्रभु श्रीमान है जो कि तीन लोकके मूर्धपर निवास करते है।

ज्ञानप्रकाशका सातिशय महत्त्व—प्रभु भवरूप अधकारको नष्ट करनेके लिए सूर्यकी तरह है। यहाँ ही मोह ममता रागद्वेष आदि करके रचे पचे जा रहे है, यही है संसारका अंधकार। इस अधकारको प्रभुने पूर्णरूपेण नष्ट कर दिया। ये प्रभु अपने आत्मामे उत्पन्न अनत और सदाकाल रहने वाले उत्तम मोक्षामृत रूप समुद्रमे मग्न है, जिनको कोई विकल्प नही, जिनकी महिमा अप्रतिहत है। जो लोग नही जानते वे प्रभुकी महिमा नही कह सकते। तो इससे प्रभुकी महिमा, महत्त्व, बडप्पन, श्रेष्ठता तो न मिट जायगी। गधे मिश्री खा लेते है तो उससे झट जुकाम हो जाता है, उन्हे वह पचता नही है, पर बडे लोग तो उसका सेवन करते ही है। तो जो कलाकी बात है, आत्मतत्त्वकी बात है उसे असार समझकर यदि ये ससारके व्यामोही जन इससे अलग रहते है तो रहे, लेकिन इस अनुभव कलाका अवधारण करके अनेक पुरुषोने निर्वाण प्राप्त किया जो कि अनत आनदमय है और अब भी उस कला का आश्रय लेकर महापुरुष अपना उद्धार कर रहे है।

ज्ञानसमुद्रसे अवगाहनका सन्देश—देखिये—अपने आपमे भी यह आत्मा ज्ञानसमुद्र है। यहाँ कोई स्वरूपकी दृष्टिसे छोटा बडा नही है। जिसे आज हम बालक समझते है—कहो वह हमसे भी शीघ्र निष्कलक बन सकता है। यह आत्मा ज्ञानसमुद्र है और इसमे आनदका जल परिपूर्णरूपसे भरा है, इसमे समस्त गुण रत्न बस रहे है। पदार्थसमूह, यथार्थज्ञान, अनेक अनन्त गुण आदिक इसमे रत्न बस रहे है, मगर कुछ मगरमच्छोने जैसे समुद्रको गदा कर दिया इसी तरह रागद्वेष मोहरूपी इन जंतुवोने इस ज्ञानसमुद्रको मलिन कर दिया। सो इन जतुवोका निवारण करे, रागद्वेष मोह छोडे, थे न अपनेमे अपने पायें तो ज्ञानस्वरूप मुझमे ही है। ऐसे निर्मल ज्ञानसमुद्रमे अपनी शक्ति सम्हाल करके अवगाहन कीजिए, मग्न होइये नहाइये। भीतर प्रवेश करके कुछ खोज करके जो तत्त्व है उसको उत्कृष्टरूपसे उभार लीजिए और इस प्रकार फिर अपने आपके गुणोमे उपयोग लगाकर, तृप्त होकर, वलिष्ट बनकर मोक्षमे पधारिये तथा समस्त सकटोसे दूर होइये।

निजशक्तिकी सम्हालकी अनिवार्यता—देखिये—साहस जगाये विना किसी भी उत्कृष्ट काममे सफलता नही मिल सकती। व्यापारमे तो लोग लाखो रुपये लगा देते है, उसमे तो ऐसा नही सोचते कि अरे टोटा हो जायगा तो फिर क्या होगा, काम चलेगा कि न चलेगा आदि। लोग लाखो रुपये उस व्यापारमे खर्च करते है और एक साहस बनाकर उस कार्यको करते है, ऐसे ही इस आत्मशान्ति महान कार्यके लिए यदि कुछ लौकिक हानिया होती हैं, तो उनकी भी परवाह न करके अपनेमे एक साहस बनाना है, अपनी इस ज्ञानभूमिमे एक ऐसा साफ स्वच्छ एक रस बनाना होता है कि उसमे किसी परका मोह न बसे। ऐसा करनेमे साहस रखना होगा तब शान्तिकी प्राप्ति हो सकेगी। क्यो जी, कोई एक दो भव तो लगा ही इस निर्मोह निराकुल दशाको बनानेके लिए, या एक भी भव नहीं लगाना चाहते और मोक्ष मिल जाय क्या ऐसी मनमे इच्छा है? अरे, जब मोक्ष हो जायगा तो फिर एक भी भव न रहेगा, फिर अपना प्यारा भव कहाँसे लाओगे? तो चिन्तन मनन करके अपनी जिम्मेदारी समझ करके, किसी अन्य भवमे करेंगे ऐसी अपेक्षा न करके इस ही भवमे अपने इस करने योग्य कामको कर जाइये। आज जो भव मिला है, यदि आज महाप्रमाद किया जा रहा है तो आज जो दशा मिली है, आज जो स्थितियाँ मिली है वे कभी न मिल पायेगी। इन समस्त अच्छे साधनोके बीच रहकर एक धर्म कर्म करनेकी हो बात अपने मनमे ठान ले तो उससे सफलता मिलती है। आत्मसाधनाके लिए धनकी अपेक्षा नही है कि इतना धन मिल जाय तो हम धर्मसाधना कर सकेंगे। धर्म तो ज्ञानसे सम्बधित है, आत्मदृष्टिसे सम्बधित है, यह हर एक कोई कर सकता है। तो अपनी-अपनी शक्ति सम्हालकर अपने आपमे अपना अवगाहन करके, तत्त्वको धारण करके इन समस्त सकटोसे दूर होनेका प्रयत्न कीजिये।

स्वयंके निर्भारताकी स्वयंसे ही सम्भवता—अपने आवरणके भारका परिहार अपने को ही करना पडेगा। घरमे किसी कमरेकी छत गिर गई, मलवा गिर गया तो अब उसे उठाने कौन आयगा ? अरे उठाना तो खुदको हीं पडेगा। किसी दूसरेके सहारे बैठे रहे तो यो बैठनेसे तो काम न चलेगा। अरे उठाकर फेंकना होगा, अथवा उठवाना होगा। ऐसे ही समझिये कि अपने आपमे जो यह रागद्वेष विषय कषाय आदिकका मलवा इकट्ठा हो गया है, इसे भी कोई दूसरा दूर करने न आयगा, इसे खुदको ही दूर करना होगा। एक कथानक है कि कोई एक धनिककी लडकी थी, उसका नाम था द्रोपदी। शादी होनेके बाद थोडे ही दिनोमे वह विधवा हो गयी थी। तो समय बडा नाजुक है, स्वार्थियोसे भरा हुआ है तो उसे घर वालोने आश्रय न दिया। वह अपने पिताके घर रहने लगी। वहाँ रहते रहते उसका थोडा चलन खराब हो गया। बहुत समय गुजरा, अचानक ही उसे अपने कृत्यपर पछतावा हुआ और एकदम उसके ऐसी ज्ञप्ति जगी, बस इस नगरको ही अब छोड दे और चलें किसी तीर्थमें और वहां चलकर अपने परिणाम सुधारे। यो जब तीर्थ चलनेके के लिए उसने अपना प्रोग्राम रखा तो बहुतसे लोग उसे कुछ दूर तक पहुचनेके लिए चले। किन्तु उसके चरित्रकी बात गावमे काफी फैल चुकी थी, सो हसने वाले लोग यही कहे कि देखो बिल्ली सौ चूहे खाकर अब यह हज करने जा रही है। हुआ क्या था कि उसके दुश्चारित्रके कारण उसके बागके फल कडुवे हो गए थे, बावडियोके जलमे कीडे पड गए थे। तो जब लोग बाग उसकी मजाक कर रहे थे तो उस समय उसने बडा साहस करके लोगोको ललकारा और कहा कि तुम सब लोग मूढ हो, परिणामोकी गति नही जानते हो, तुम मजाक करते हो। जावो उन बगीचोके बडे मीठे फल है, जावो, खावो और उन बावडियोका बडा मीठा जल पियो, मैं तो उस तीर्थधामपर जाती हू, वहाँ जलधारा देते हुएमे मेरे प्राण विसर्जन होगे। वह तो तीर्थधाम गयी, लोगोने उन बगीचोके फलो व बावडियोकी जलकी परीक्षा की तो वास्तवमे वे बडे मीठे हो गए थे। आखिर उसकी परीक्षाके लिए बहुतसे लोग उस तीर्थस्थानपर भी गए, वहाँ उस लडकीने उस देवीका पूजन अर्चन किया, जलधारा की और उसके पश्चात् ही उसके प्राण विसर्जन उसी जगह हुए। तो देखो जीवन पतित हो भी जाता है तो उसका उद्धार भी किस तरह होता है ? ज्ञान किरणें फैलें, अपना प्रकाश फैले तो इस प्रकार उद्धार होता है। मासभक्षी राजा भी अहिंसा धारण करके उसी भवसे मोक्ष गए। हम इस बातसे कायर न बनें कि हमारा तो जीवन बडा खराब है। हमारा कैसे उद्धार हो सकता है। हम तो अभी यो ही रहेंगे, अगले भवमे उद्धारकी बात देखी जायगी। तो ठीक है अभी न साहस बनाओगे फिरका क्या पता ? अरे केवल एक भाव ही तो बनानेका काम है। तो इस ज्ञानसमुद्रमे अवगाहन करके यहाँ उस तत्त्वका उद्धरण कीजिए और उन तत्त्वो

के मननसे अपने आपको कर्मोंसे मुक्त करिये।

इति कतिपयवरवर्णैर्ध्यानफल कीर्तित समासेन।
नि शेष यदि वक्तु प्रभवति देव. स्वय वीर: ॥२२०७॥

ग्रन्थसमाप्तिपर अन्तिम कथन—ग्रन्थकार कहते है कि यहाँ कुछ वर्णनके द्वारा संक्षेप में ध्यानका फल बताया है, पर पूर्णरूपसे यदि कहनेके लिए कोई समर्थ है तो वह स्वय वीर प्रभु ही समर्थ है। ध्यानके फलको हम किन शब्दोमे कह सकते है, सकेत ही है। तो यह सकेत उनको रास्ता दिखाता है जिनको कुछ कुछ परिचय है। शब्दमे यह सामर्थ्य नही कि अपरिचितको भी स्पष्ट चित्रण करा दे, तो कुछ शब्दोंसे वर्णन किया गया है। यह आचार्य की भाषा है, किन्तु आपने समझा ही है कि कितनी उत्तम रीतिसे ध्यानका उपाय और ध्यान के फल आदिक सब वर्णन आचार्य महाराजने किये। इस प्रकार यह ज्ञानार्णव ग्रथकी समाप्ति हो रही है। अब उपसहार रूपमे आचार्यदेव कह रहे है।

इति जिनपतिसूत्रात् सारमुद्धृत्य किञ्चित्,
स्वमति विभव योग्य ध्यानशास्त्र प्रणीतम्।
विबुधमुनिमनीषाम्भोधिचन्द्रायमाण,
चरतु भुवि विभूत्यै यावदद्रीन्द्रचन्द्र: ॥२२०८॥

ध्यानशास्त्रका जयवाद—यह ग्रन्थ ध्यानशास्त्र है। जिनेन्द्रदेवसे प्रणीत जो शास्त्र सूत्र है, द्वादशाङ्गमय वचन हैं उन सूत्रराजोसे सारको कुछ ग्रहण करके अपनी बुद्धि वैभवकी योग्यताके अनुसार प्रणीत हुआ है। सो यह तब तक प्रवर्तमान रहे जब तक पर्वतराज मेरु और चन्द्र हैं। मेरु चद्र आदिक अकृत्रिम पदार्थ अनादिसे है और अनतकाल तक रहेगे। तो यह ध्यानशास्त्र भी सदा प्रवर्ते, जिस सारतत्त्वकी उपासनासे जीव शान्तिमार्ग पाते रहे। यह ध्यानशास्त्र विद्वान मुनि जनोकी बुद्धि रूप समुद्रको बढानेके लिये चन्द्रमाके समान है। जिस प्रकार पूर्णचन्दके उदयका निमित्त पाकर समुद्र जल वृद्धिगत हो जाता है, इसी प्रकार इस ध्यानशास्त्रमे वर्णित उपायोका मनन प्रयोग करके विवेकी मुनि जनोका ज्ञान वृद्धिगत होता है, विकसित होता है। ऐसा यह ध्यानशास्त्र चिरकाल तक जयवत प्रवर्तो।

ज्ञानार्णवस्य माहात्म्य चित्ते को वेत्ति तत्त्वत.।
यज्ज्ञानात्तीर्यते भव्यैर्दुस्तरोऽपि भवार्णव ॥२२०९॥

ज्ञानार्णवका वचनागोचर माहात्म्य—यह ज्ञानार्णव शास्त्र ज्ञानसमुद्रका वाचक होने से ज्ञानसमुद्र है। जिसमे सम्यक्त्व, ज्ञान, चारित्र आदि अनेक गुण रत्न भरे पडे है। इसके माहात्म्यको यथार्थरूपसे कौन जान सकता है? इसके ज्ञानसे भव्य जीव दुस्तर भवसमुद्रको पार करके अनत पवित्र आनदका अनुभव करते हैं। यह भवसमुद्र अपार है, इसमे रागद्वेष

मोहविकारोके मगरमच्छ रहते हैं। इसका पार कर लेना अति कठिन है, किन्तु सम्यक् ज्ञानकिरणका ऐसा प्रताप है कि इसके बलसे यह भयानक भवसमुद्र अन्तर्मुहूर्तमे भी पार किया जा सकता है। जिसके प्रसादसे अनंतकाल तकके लिये संकट छूट जायेंगे, उसकी महिमा तो अचिन्त्य है, वचनोका गोचर वह हो ही नही सकता। यह ग्रन्थ मुनिजनोको विशेषतया संबोधनेके लिये कहा गया है, किन्तु इसके अध्ययनसे गृहस्थ जनोका भी कल्याण होता है। भावना व ध्यान सत्यके विवेकी पुरुषोको लाभकारी है। अतः सभी मुमुक्षु जन इस शास्त्रके अध्ययनसे निज परमात्मतत्त्वकी उपलब्धिका लाभ ले।

॥ ज्ञानार्णव प्रवचन एकविंश भाग समाप्त ॥

इति ज्ञानार्णव प्रवचन एकविंशतम भागके
समाप्त होनेके साथ ज्ञानार्णवके
समस्त प्रवचन पूर्ण हुए।

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहर जी वर्णी
'सहजानन्द' महाराज विरचितम्
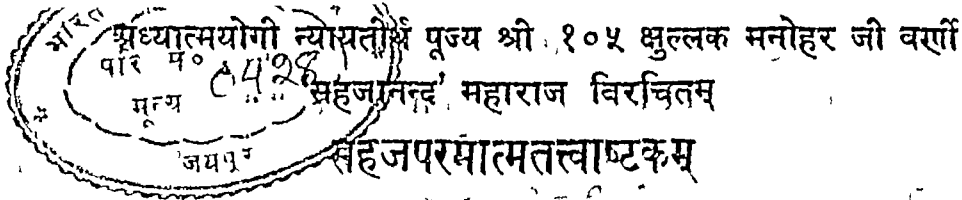
सहजपरमात्मतत्त्वाष्टकम्

॥ शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥

यस्मिन् सुधाम्नि निरता गतभेदभावाः प्राप्स्यन्ति चापुरचल सहज सुशर्म ।
एकस्वरूपममल परिणाममूल, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥१॥

शुद्ध चिदस्मि जपतो निजमूलमत्र, ॐ मूर्ति मूर्तिरहित स्पृशत. स्वतत्रम् ।
यत्र प्रयान्ति विलय विपदो विकल्पा, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥२॥

भिन्न समस्तपरतः परभावतश्च, पूर्ण सनातनमनन्तमखण्डमेकम् ।
निक्षेपमाननयसर्वविकल्पदूर, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥३॥

ज्योति पर स्वरमकर्तृ न भोक्तृ गुप्त, ज्ञानिस्ववेद्यमकल स्वरसाप्तसत्त्वम् ।
चिन्मात्रधाम नियत सततप्रकाश, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥४॥

अद्वैतब्रह्मसमयेश्वरविष्णुवाच्य, चित्पारिणामिकपरात्परजल्पमेयम् ।
यद्दृष्टिसश्रयणजामलवृत्तितान, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥५॥

आभात्यखण्डमपि खण्डमनेकमश भूतार्थबोधविमुखव्यवहारदृष्ट्याम् ।
आनदशक्तिदृशिबोधचरित्रपिण्ड, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥६॥

शुद्धान्तरङ्गसुविशासविकासभूमि, नित्य निरावरणमञ्जनमुक्तमीरम् ।
निष्पीतविश्वनिजपर्ययशक्ति तेजः, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥७॥

ध्यायन्ति योगकुशला निगदन्ति यद्धि, यद्ध्यानमुत्तमतया गदित समाधि ।
यद्दर्शनात्प्रभवति प्रभुमोक्षमार्ग, शुद्ध चिदस्मि सहज परमात्मतत्त्वम् ॥८॥

सहजपरमात्मतत्त्व स्वस्मिन्ननुभवति निर्विकल्पं य ।
सहजानन्दसुवन्द्य स्वभावमनुपर्यय याति ॥

वदनीय समझते थे। फिर कुछ समय बाद जो लौकिक समाचार है वे नीचे रहने लगे, पर जिसमे कुछ अच्छा उपदेश होता उसे नीचे न डालते थे, फिर उनकी भी उपेक्षा हो गई, पर जो आगमके नामसे प्रसिद्ध है, जो शास्त्र कहे जाते हैं उनके अक्षर, अब भी नही लोग नीचे डालते। बहुत पहिले तो कैसे ही अक्षर हो, उन्हे लोग नीचे न डालते थे। ये पृथ्वीपर फर्श पर जो नाम लिखे जाते है जो पैरोके नीचे भी पड जाते है। शायद कुछ पहिले इस तरहसे नाम न लिखे जाते थे, अगर लिखना हुआ तो भीतपर लिखते थे। तो जो प्रभुके नाम हुए वे अक्षर-अक्षर वदनीय है। वे प्रभु अविनाशी है। ज्ञानी सम्यग्दृष्टि पुरुष उस प्रभुका ध्यान कर रहा है।

सर्वज्ञ सर्वद सार्वं वर्द्धमान निरामयम्।
नित्यमव्ययमव्यक्त परिपूर्ण पुरातनम् ॥२०४०॥

सर्वज्ञ प्रभुका स्मरण—ये प्रभु सर्वके ज्ञाता है और सर्व कुछ देने वाले हैं। प्रभुके गुणोका कोई भक्त यथार्थ रूपमे अवलोकन कर ले, ध्यान कर ले तो उसे सब कुछ तो मिल गया। उसके कुछ चाह ही न रही तो सब मिल गया। चाहके न रहनेका नाम है सर्व अर्थों की सिद्धि होना। तो प्रभुकी भक्ति जो लोग करते है उन्हे सर्व कुछ प्राप्त होता है। ये प्रभु सबके हितकारी है। उन प्रभु के किसी भी प्रकारका रागद्वेष नही है। वे तो सदा निर्दोष ज्ञानानदका ही अनुभव किया करते है। ये प्रभु वर्द्धमान है, अर्थात् बढते हुए हैं। इसमे चौबीस तीर्थंकर आ जाते है और सभी अर्हंत आ जाते है, वे सभी वर्द्धमान है, ये सर्वरागोंसे रहित है, अविनाशी है, और सबको अव्यक्त है। जो पुरुष ज्ञानी है, आत्माके स्वरूपके ज्ञाता हैं उनको तो प्रभु का स्वरूप कुछ व्यक्त होता है, पर अज्ञानी जनोको रचमात्र भी व्यक्त नही होता। वे परिपूर्ण है और पुरातन हैं, परम है, ये अनादिसे चले आये हुए है।

इत्यादिसान्वयानेक पुण्यनामोपलक्षितम्।
स्मर सर्वगत देव वीरममरनायकम् ॥२०४१॥

पुण्यनामोपलक्षित वीर देवका स्मरण— इस रूपस्थध्यानमे के विशेषणोको कहकर अन्तिम श्लोकमे आचार्यदेव आदेश कर रहे है कि हे भव्यजनो! अनेक पवित्र नामोसे सहित वीर प्रभु का स्मरण करो। भगवानके जितने नाम है वे सब नाम एक पुण्यरूप हो गए। क्यो हो गए? यो कि अक्षरोमे प्रभु वाचकता होनेसे पुण्यरूपता आ गई। जो महापुरुष पवित्र हुए है, वीतराग सर्वज्ञ हुए है, उनके साथ जुटे हुए नाम भी पुण्य हो गए है। तीर्थंकरोंके नामोमे भी तो एक साधारण शब्द ही है, पर इन नामो वाले तीर्थंकरोने अपने आत्माको पवित्र किया। सर्व दोषोंसे मुक्त होकर निर्वाण प्राप्त किया। तो ऐसे पवित्र आत्मा जिस देहमे बस रहे उस देहका नाम भी पवित्र हो गया। प्रभु अनेक पवित्र नामोसे सहित हैं। लोग भी तो अपने

बच्चोके नाम महापुरुषोके नामपर रखनेकी उत्सुकता रखते है, और जब नामकरणकी विधि होतो है तो अनेक नाम वे ही रखे जाते है जो महापुरुषके हुए, उनमेसे जो एक नाम आ जाय, कोई उठा लें, या जिस किसी भी विधिसे वह नाम उनका रख दिया जाय। तो जिस नामके रखनेमे भी लोग बडा गौरव समझते है उस नामधारी तीर्थंकर कितने विशुद्ध प्रभु थे, इसका भी अदाज कर सकते है। अनेक पुण्य नामोसे सहित वे शरणागत देव, जो देवोके नायक है, सर्व जगतके नेता है ऐसे वीर प्रभुको हे भव्य पुरुषो ! स्मरण करो।

स्वपरप्रभुतास्मरण—भैया ! काम दो ही तो करनेके मुख्य है—एक तो भजन और एक आत्मस्मरण। और तीसरी बात कहाँसे लाये ? सारभूत बात इतनी ही है। अन्यत्र सभी जगह शरण सोच सोचकर, शरणकी आशायें कर करके बहुत-बहुत धक्के खाये। उन सभी अनुभवोंसे भी इसी निर्णयपर आना पडता है कि जगतमे शरण बाहरमे कही कुछ नही है। अपना शरण तो एक प्रभु भजन और अपने ही आत्मगुणोका स्मरण है। जिस क्षण अपना उपयोग आत्मस्वरूपके स्मरणमे लगे वह क्षण धन्य है। यहाँसे हटकर बाहरमे, विषयो मे, पापोमे, मौजोमे जानेसे तो कुछ भी लाभ न होगा। तो यह ही अपना निर्णय रखो कि कर्तव्य तो हमारे ये दो ही है—व्यवहार और निश्चय, बाह्य और अन्तरङ्ग, प्रभु भजन और आत्मस्मरण।

अनन्यशरण साक्षात्तत्सलीनैकमानसः।
तत्वस्वरूपमवाप्नोति ध्यानी तन्मयता गत· ॥२०४२॥

ज्ञानपुञ्ज प्रभुकी अनन्यशरणतासे प्रभुत्वलीनता—भगवानका स्वरूप एकदम सीधे ज्ञानपुञ्ज रूपमे निहारना चाहिए। एक दृष्टिसे निहारें तो उस दृष्टिसे कि जहाँ ज्ञानको निहारा जा रहा है और ज्ञानरूपमे ही देखा जा रहा है तो प्रभुके ध्यानमे फिर यह भक्त तल्लीन हो जायगा, अन्य रूपोमे ध्यान करनेपर ऐसी लीनता न आयगी। मानो प्रभुको यो देखा एक विशिष्ट मनुष्यकी भाति हाथ पैर, उन मुद्रावोमे चलना, विहार करते हुए, वैसा आमान माड-कर योगमुद्रामे, किसी भी रूपमे प्रभुको देखा, तो इस बाह्य निरखनमे प्रभुत्वलीनता न आवेगी। उस प्रभुके जो और गुण है आनन्द शक्ति आदिक उनको भी अगर हम देखे तो भी उसमे वह लीनता न आयगी जैसी लीनता हम भगवानको मात्र ज्ञानस्वरूप देखे, ज्ञानका पुतला, ज्ञानपुञ्ज, ज्ञान ही ज्ञानका जहाँ प्रसार है, मात्र वह शुद्ध ज्ञान, वह प्रभु है, ऐसा जब हम उस ज्ञानस्वरूप प्रभुको निरखेंगे, तो प्रभुत्वमे लीनता आवेगी। जो योगी उसमे ही एक लीन चित्तवाला हो जाता है, फिर वह अनन्य शरण होकर तन्मयताको प्राप्त होता है।

परमज्ञानज्योतिकी अनन्यशरणताका औचित्य—जब ससारके सारे नटखट देख लिए जाते है, यहाँ सार कुछ नही, शरण कुछ नही, सब विडम्बनायें है, सब मोहाधकार है, सब

मोहकी नीदका स्वप्न है, यो जब इस स्पष्टताका परिचय होता है तो फिर यह भव्य पुरुष या तो अपने आपमे बसे हुए ज्ञानमय पदार्थका सहारा लेता है या प्रभुको अपना अनन्य शरण बनाता है। तो जो योगी इस ज्ञानज्योति प्रभुके चित्तमे एक चित्त होकर लीन होता है वह अनन्य शरण होता हुआ ध्यानसे परमात्मस्वरूपको प्राप्त कर लेता है। आत्माका हित परमात्मस्वरूपमे है, अन्यत्र नही है। भोगविषयोमे प्रीति है, नामवरीमे, विषयसाधनोमे चित्त लगता है, इनमे ही मौज माना जाता है सो ठीक है, उदय है पुण्यका, मान लें मौज, किन्तु यह न भूलना चाहिए कि ये भोगसाधन जिनमे अभी मौज माना जा रहा है, बडे महगे पडेंगे। ये भोगनेमे तो बडे आसान लग रहे है पर इनका फल बडा कटुक है। यहाँ कोई भी पदार्थ प्रीति के लायक नही। एक स्वरूपको ही अपना शरण मानकर उसमे ही लीन हो तो उससे लाभ मिलता है।

यमराध्यशिव प्राप्ता योगिनो जन्मनिस्पृहा ।
य स्मरन्त्यनिश भव्याः शिवश्रीसगमोत्सुका ॥२०४३॥
यस्य वागमृतस्यैकामासाद्य कणिकामपि ।
शाश्वते पथि तिष्ठन्ति प्राणिनः प्रास्तकल्मषा ॥२०४४॥
देवदेव स ईशानो भव्याम्भोजैकभास्कर : ।
ध्येय सर्वात्मना वीर. निश्चलीकृत्य मानसम् ॥१०४५॥

प्रभुमे कृतकृत्यताका महत्त्वशाली योग—वीरप्रभुका ध्यान करो, जिसकी आराधना करके योगीजन मुक्तिको प्राप्त हुए है। किसी भी प्रसगमे प्रश्न करते जाइये, उत्तर देते जाइये। फिर क्या होगा ? तो एक समाधान रूपमे उस तत्त्वका निर्णय कर सकते है। अच्छा, अब जन्म हुआ है, फिर क्या होगा ? बडे होगे, पढेंगे। फिर क्या होगा ? डिग्रिया पायेंगे। फिर क्या होगा ? धनार्जन करेंगे, गृहस्थी बसायेंगे। फिर क्या होगा ? बूढे होंगे, शरीर शिथिल होगा। फिर क्या होगा ? बस इसी तरह किसी दिन मरण हो जायगा। फिर क्या होगा ? फिर अगले भवोमे कीट, मकोडा, पशु पक्षी आदिक जिस किसी भी योनिमे पहुचेंगे वहाँके दुख भोगने होंगे। फिर क्या होगा ? तो इस चर्चाका कोई अन्त ही नही। इसका समाधान कहाँ खत्म होगा ? हाँ, यदि कोई ऐसा यत्न करे—जो आत्मसाधनाका, रत्नत्रयकी साधनाका, आत्मविश्वास, अध्यात्मयोग इनकी साधनाका यत्न करे तो फिर क्या होगा ? यह बात पूछ लो, चर्चा का अत हो जायगा। अच्छा, क्या होगा ? कर्मनष्ट होंगे। फिर क्या होगा ? सिद्ध होंगे, फिर होगा ? अनन्त आनन्दका अनुभव करते रहेगे। फिर क्या होगा ? बस उसी अनत आनदका अनुभव करते रहेगे। अब इसके आगे प्रश्नकी गुजाइश नही। कृतकृत्य हो गये, फिर होगा ? यह प्रश्न खडा ही नही हो सकता। तो यह ससार रमने योग्य नही है, इसे तजकर जिन

योगियोंने प्रभुस्वरूपकी आराधना की। उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया। जो भव्य जीव इस मोक्ष-लक्ष्मीके अभिलाषी हैं वे निरतर जिस प्रभुका स्मरण करते है उस प्रभुका हे भव्यजनो! ध्यान करो। जिसके वचनरूपी अमृतकी एक कणिकाको भी पा करके शाश्वत आनदमय पदको प्राप्त किया जाता है, ऐसी वीरप्रभुका ध्यान करो।

वीर प्रभुका आदर—इस चतुर्थ कालके अन्तमे २४ वे तीर्थंकर वर्द्धमान (महावीर) स्वामी हुए है, उनकी उपदेशपरम्परासे जो आज हमे उपदेश मिला है उस उपदेशको पाकर यथार्थ निर्णय करके हम अपनेको कृतार्थ समझते हैं। इस सम्बधमे हम कितना आभार माने वीरप्रभुका? है तो सभीका आभार, किन्तु एक उनके शासनमे, उनकी वाणीकी परम्परामे हमने अपने कल्याणका मार्ग जान पाया है। तो उनके वचनामृतकी कणिका भी इस जीवका भला कर देगी। किसीके हृदयमे कहो कोई बात ऐसी लग जाय कि वह उसके आधारपर ही सम्यक्त्व पैदा कर ले। और फिर उन वचनोकी उपासना करनेसे जो पुण्यरस बढ़ता है, उससे लौकिक समृद्धियाँ मिलती है। एक भाईको जैनशासनके उपदेशसे इतना विरोध था कि जब वह बाजारकी गलीसे निकले तो अपने कानोको बंद करके निकले इसलिए कि कही कोई शब्द हमारे कानमे न पड जाय। एक बार निकल रहा था और उसी समय पैरमे काँटा लग गया तो तुरन्त कान खुल गये। काँटा निकालने लगा। इतनेमे कुछ शब्द उसके कानोमे पड गए—देवोंके छाया नही होती है। उनका वैक्रियक शरीर होता है और उनके शरीरकी छाया भूमि पर नही पडती। इतना शब्द उसने कानोंसे सुन लिया और चल पिया। योग ऐसा हुआ कि उसी दिन दो तीन पुरुष भूत जैसा भेष बनाकर (जैसा कि नाटकोमे चेहरा लगाकर लोग अपना भेप बदल देते है) उसके घर पहुचे। वे चोर तो यह समझते थे कि घरके लोग हमे भूत समझकर डरकर भाग जायेंगे और हम लोग मनमाना धन लूट लेंगे। सो वह पुरुप पहिले तो डरा, पर बादमे देखा कि इनके शरीरकी छाया तो जमीनमे पड रही है, ये भूत नही है ये तो मनुष्य है, भूतका भेष बनाकर आये है, सो उसने डटकर उनका मुकाबिला किया, वे भाग गए, सारा धन भी बच गया। तो उसने सोचा कि देखो—जैनधर्मके एक छोटेसे वाक्यको सुन लिया तो उससे इतना लाभ हुआ, फिर और अगर जैन धर्मके सारे उपदेशको सुना जाय तो न जाने कितना लाभ होगा? उसे जैनधर्मसे श्रद्धा हुई।

संकटमोचक मूल उपाय—जैनधर्ममे सकटमोचकका मूल उपाय बताया है वस्तुस्वरूपका यथार्थ ज्ञान करना। एक एक चीज एक एक परमाणु प्रत्येक पदार्थ अपने आपके स्वरूपमे परिपूर्ण है, अधूरा पदार्थ कोई नही है। किसीसे कुछ निकलता नही है, सभी पदार्थ पूरेके पूरे बने हुए है। कभी जीव राग करता है तो, द्वेप करता है तो वह अपना पूराका पूरा परिणमन करता है, अधूरा परिणमन नही करता। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपसे है परके स्वरूपसे नही

है । इस उपदेशने ऐसा प्रकाश दिया कि जिससे मोह नष्ट हो जाता । मोह नष्ट हो जाय यह सबसे महान वैभव है, और आनन्दका घात करने वाला जो मोह था, मोह दूर हो गया तो उसे शांति ही समझिये । किसी आदमीको अपने ही घरमे कुछ अधेरे उजेलेमे किसी जगह पडी हुई रस्सीमे यह भ्रम हो जाय कि यह तो साँप है तो उसे देखकर वह पुरुष वहुत घवडाता हे, लोगोको भी वुलाता है, वडा बेचैन होता हे । पर कुछ थोडी हिम्मत करके उसके निकट जाय, देखें तो सही कि कौनसा साँप है, उसे देखकर कुछ अदाज हुआ कि यह तो चल भी नही रहा है, जरासा हिलडुल भी नही रहा है, थोडासा और निकट जाकर देखा तो मालूम पडा कि यह साँप नही है । जरा और हिम्मत वनाकर पास गया तो ज्ञात हो गया—ओह ! यह तो रस्सी है । लो इतना ज्ञान होते ही उसकी सारी घवडाहट, सारी व्याकुलता, सारी विह्वलता मिट गई । अब उसे कोई कितना ही घबडवाये तो वह नही घवडा सकता । कोई कहे कि मैं इतने रुपये इनाम दूगा, उसी तरह घब्डाकर दिखा दो ,तो वह नही दिखा सकता । भले ही धनके लोभसे वह कुछ बनावटी घवडाहट बनाये, पर वह घवडाहट नही अपनेमे ला सक्ता । तो इसी तरह समझिये कि जब चित्तमे यह भली भाति निर्णय हो जाता है कि जीव सब अपने अपने स्वरूपमे पूरे है, किसीका कुछ किसी दूसरे जीवमे नही जाता, तब इस सत्य निर्णयके होनेपर फिर मोह कहाँ ठहर सकता है ? जिनमे जब भी जितना मोह है उन्हे यह सोचना चाहिए कि हमारे निर्णयमे कमी है, उस भेदविज्ञानको उतारनेमे कमी है। वस्तुस्वरूपका जिसे यथार्थ निर्णय हुआ है उसके मोह नही ठहर सकता है ।

ज्ञानज्योतिर्मय वीर प्रभुकी उपास्यता—जिनप्रभुके उपदेशकी रच भी कणिका प्राप्त कर भव्यजन मुक्त हो जाते है ऐसे वे वीर प्रभु हम आप सबके ध्यानके योग्य है । ऐसे जगतके नाथ, भव्यरूपी कमलको पफुल्लित करनेके लिए सूर्यके समान है । वे प्रभु सोमनाथ है, जगत के स्वामी हैं । चन्द्रप्रभु कहो अथवा चद्रकी तरह अमृत बरसानेमे कुशल वे नाथ है । किन्ही भी शव्दोमे कहो, वे प्रभु सावरिया है । पार्श्वनाथका साँवला रूप कहा ही जाता है । किन्ही भी शव्द कहो, यदि ज्ञानपुञ्ज रूपमे उसे निहार सकते है तो हम प्रभुके सत्य गुण तक पहुच सकते हैं और एक ज्ञान मूलको यदि न जाना और कुछ भी जानते रहे प्रभुके बारेमे तो वहा तत्त्व नही प्राप्त कर सकते, जिसके ध्यानसे हम प्रभुमे एकरस लीन हो सके । ऐसे ज्ञानपुञ्ज प्रभु वीर नाथ है, जिनकी आराधना करके प्राणी ममत्वको दूर करके विशुद्ध निर्णय बनानेका परिणाम करते है, वे वीर प्रभु ऐसे ध्यान करने योग्य है कि जहाँ चित्तको पूर्ण स्थिर कर लिया जाय । एक मन होकर उन प्रभुका ज्ञानी सम्यग्दृष्टि पुरुष ध्यान करते हैं ।

तस्मिन्निरन्तराभ्यासवशात्सजातनिश्चला. ।
सर्वावस्थासु पश्यन्ति तमेव परमेष्ठिनम् ॥२०४६॥

अभ्यस्त तत्त्वका सतत अवलोकन—सर्वज्ञदेवके ध्यानमे अभ्यास करनेके प्रभावसे जो निश्चल हुए है ऐसे योगीजन समस्त अवस्थाओमे उसी परमेष्ठीको, उसी ज्ञानको देखते है। जिसकी जहाँ श्रद्धा है उसका चित्त वही लीन रहता है। जिसका जहाँ चित्त लगा है उसे उस ही के दर्शन होते है। एक दृष्टान्त दिया है कि—एक पडितजी पगडी बाँधे हुए कही शास्त्र पढ रहे थे। एक बजाज सेठ भी पंडित जी के पीछे बैठा हुआ शास्त्र सुन रहा था। शास्त्र सुनते हुएमे उस सेठके निद्रासी आ गई, कुछ स्वप्नसा भी आ गया। स्वप्नमे क्या देखता है कि मैं दूकान पर बैठा हू, कपडा खरीदने वाले लोग आ रहे है। किसी खरीददारने पूछा कि यह कपडा क्या भावमे दोगे ? सो उसने कहा २ रुपया गज। उसने १।।) रु० गज माँगा। आखिर तय न होनेपर खरीददार चलने लगा। तो वह सेठ उस पडितजी की पगडी खीचकर फाडकर कहता है अच्छा १।।) रु० गजमे ही ले जावो। तो कोई एक ही बात नही, सभी कामोमे यही बात है, जिसका चित्त जहाँ लगा होता है उसे स्वप्नमे भी वही बात दीखती है। कभी आपने स्वप्न मे देखा होगा कि हम तीर्थयात्रामे गए हुए है, एक टोकसे दूसरी टोकमे झट पहुचकर बन्दना कर रहे हैं, कभी बडे-बडे पर्वतोपर जरा-जरासी बातमें लाँघकर जा रहे है और कही एकदम उडते हुए चले जा रहे है। तो ऐसे स्वप्न उन्हे आते है जिन्हे उन तीर्थक्षेत्रोके प्रति श्रद्धा है, उनके प्रति ध्यान बनाते है।

चित्तप्रासादमे हितसम्बन्धित स्वप्न—जिनके चित्तमे जो बात बसी है स्वप्नमे भी वही बात दीखती है। जब कभी इस प्रकारके अच्छे स्वप्न किसीको दिखते हैं तो उनमे वह बडा खुश होता है, उन्हे अपना सगुन समझता है, वह सोचता है कि मेरे मनका सतुलन ठीक था, मेरे भाग्यका उदय हुआ है, नही तो ऐसा स्वप्न न आता। यो सोचकर वह बडा सन्तुष्ट होता है। कभी ऐसा स्वप्न आये कि हम समुद्रमे गिर गए या मगर हमारा पैर पकडे खीच रहा है, या सिहादिक क्रूर जानवर हमपर आक्रमण कर रहे है तो उन स्वप्नोको देखकर हम घबडा जाते है, दुःखी होते है। तो जैसा अभ्यास हो उसके अनुसार वही चीज दिखती है। इन योगीजनोको सर्व अवस्थावोमे उस ही ज्ञानपुञ्ज भगवान परमेष्ठीका दर्शन होता रहता है। ८२ एक बात और जाननेकी है कि हमारा चित्त यदि समाधानरूप है, धीर है, गम्भीर है तो स्वप्न आयेंगे नही, और अगर आयेंगे तो एक विश्राम पहुचाते हुए स्वप्न आयेंगे। तो ज्ञानी पुरुष जो इस आत्मतत्त्वके अभिलाषी है, उन्हे जब भी स्वप्न आयेंगे तब आत्मतत्त्वका अनुभव करने के प्रसग ही आयेंगे। उनके इन बाह्य इन्द्रियोका व्यापार बद होता है शयन अवस्थामे, मन भी उपशातसा रहता है, किन्तु वह मन अपने भीतर ही काम करता रहता है। तो जिन योगीजनोंने अभ्यास किया है वे सर्व अवस्थाओमे परमेष्ठी प्रभुको ही निरखते है। जैसे मोही जन कोई धनसम्पदाकी प्राप्तिका स्वप्न देखकर बडे खुश होते है और जगनेपर जरा खेदसा

मानते है ऐसे ही जब कुछ आत्मानुभवकी आनदकी वात कही जाती है तो किसी भी स्थितिमे चाहे सोते हुएमे, चाहे जगते हुएमे, और जव वह स्थिति मिलती है तव जगनेपर उस आत्माको कुछ खेद होता है, ऐसी स्थिति क्यो न बनी रही ?

स्वप्नवत् असार समागमोको त्यागकर प्रभु स्मरणका अनुरोध—सासारिक मौजका स्वप्न देखकर भी लोग जगनेपर विपाद करते है। एक मनुष्य था उसे स्वप्न आया कि मुझे राजाने ५० गायें इनाममे दी हैं। ग्राहक लोग उन्हे खरीदने आये। पूछा—इन गायोका क्या मूल्य है ? तो उसने बताया कि इन सभी गायोका मूल्य १००-१०० रु० है। ग्राहक लोग ५०-६०-७० रु० प्रति गायका मूल्य लगा रहे हैं। वह ९०) रु० प्रति गाय कहने लगा। वात न पटी तो ग्राहक लोग चल पडे। इतनेमे वह जग गया, देखता है ओह ! यहा तो कही कुछ भी नही है। तो झट आँखे बद कर लेता है और कहता है—अच्छा तुम ७०-७० रु० मे ही ले जावो। था तो वहाँ कुछ नही, वह तो स्वप्नकी बात थी, पर उसीको वह सत्य मान रहा था। ऐसे ही मोहनिद्रामे सोये हुए इन प्राणियोको यहाकी सारी वातें—मेरा घर, मेरे परिजन, मेरा वैभव आदिक सभी बातें सच मालूम हो रही हैं, पर है वास्तवमे किसीका कुछ नही, किसीसे कोई सम्बध नही, पर मोहवश अपने आपको दु खी कर रहे हैं और दूसरोको भी सत्पथसे विचलित करते हैं। जव ज्ञानज्योति जगती है तब विदित होता है—ओह ! ये सब मोहनिद्राके स्वप्न हैं। जैसे अभी अपने जीवनमें जिन लोगोका वियोग हुआ है—पिताका, बहिनका, भाईका या किसीका भी, वे अब स्वप्नवत् लग रहे हैं, तो जैसे बीती हुई बाते स्वप्नवत् लग रही हैं इसी तरह वर्तमानमे भी जो कुछ समागम हैं वे भी स्वप्नवत् ही समझिये। इन असार तत्त्वोको त्यागकर इनसे उपेक्षा करके जो ज्ञानपुञ्ज प्रभु के स्वरूपमे तल्लीन होते हैं वे प्रभुको निहारते हैं और प्रभुस्वरूपको प्राप्त करते हैं।

तदालम्ब्य पर ज्योतिस्तद्गुणग्रामरञ्जितः।
अविक्षिप्तमना योगी तत्स्वरूपमुपाश्नुते ।।२०४७।।

अविशेष परं ज्योतिके आलम्बनसे परमात्वकी उपलब्धि—ध्यानी पुरुष सर्वज्ञकी उस परमज्योतिका आलम्बन करके उनके गुणस्वरूपमे रजायमान होकर, अपने आपमे विशेषतावो को छोडकर प्रभु स्वरूपको प्राप्त करते हैं। जो अपने आपमे विशेषतायें लगा रखी हैं—मैं अमुक हू, ऐसी पोजीशनका हू, अमुक नामका हू आदिक ये सव विशेषतायें प्रभु दर्शनमे बाधक हैं, और जब अपनेको एक ज्ञानमात्र मानकर प्रभुके ज्ञानस्वरूपका निर्णय करके इस उपयोगको विस्तृत करते है, सर्व जीव एक ज्ञानस्वरूपमात्र हैं और वही परमार्थ है, वास्तविक स्वरूप हैं, उस वास्तविक स्वरूपकी ओरसे मुझमे और समस्त जीवोमे प्रभुमे कही कुछ भेद नज़र नही आता। सर्व ज्ञानस्वरूप है, यो निहारकर अपनी विशेषताओंको छोडकर एक साधारणरूपमे

जब एक ज्ञानज्योतिमे हम आते है तब हम अविशेष बनते है और उस समय स्थिरचित्त होकर हम उस स्वरूपमे लीन होते है और उस ही को प्राप्त कर लेते है। हमारा कर्तव्य है कि उन सब सासारिक समागमोमें ये मायारूप हैं, भिन्न हैं, इनसे मुझमें कुछ भी नही आता, ऐसा निर्णय बनाकर अपने आपको दयारूप यत्न करे, हमारी दया है प्रभुस्वरूपका भजन व आत्मस्वरूपका स्मरण। दो ही तो काम करना है—एक तो प्रभुभजन और दूसरा अपने आत्मस्वरूपका चिन्तन। इन्ही दो कार्योको करके हम सदाके लिए ससारके सकटोंसे बचनेका अपना उपाय बना लें। अपना एक यही निर्णय बनाये और निश्चय रखे कि हमारे लिए शरण एक तो है प्रभुभजन और एक है आत्मस्वरूपका स्मरण। चाहे करना कुछ पड रहा हो, मगर श्रद्धा तो इसी भाति होनी चाहिए।

इत्थ तद्भावनानदसुधास्यन्दाभिनंदित ।
न हि स्वप्नाद्यवस्थासु ध्यायन्प्रच्यवते मुनिः ।।२०४८।।

परमात्मत्वभावनाभिवन्दित मुनिका स्वरूपप्रतीतिसे अच्यवन—वीतराग सर्वज्ञ प्रभुकी भावनासे जो आनन्दामृत उत्पन्न हुआ है उसके प्रवाहसे आनन्दमे हुए मुनि स्वप्न आदिक अवस्थाओमे भी ध्यानसे च्युत नही होते। ससार शरीर भोगोसे विरक्तिके कारण और वस्तुके यथार्थस्वरूपके निर्णयके कारण योगीके चित्तमे ही एक ज्ञानज्योतिकी धुनि रहती है और उस धुनिमे इतना लीन हो जाते है कि स्वप्न आदिक अवस्थाओमे भी ये ध्यानसे चिगते नही है। स्वप्नमे भी मूर्तिदर्शन हो, स्वप्नमे भी विहार करते हुए प्रभुके दर्शन हो, ऐसी तत्त्वकी धुनि बनती है कि स्वप्नमे भी वे दर्शन होते है। निद्रामे इन्द्रियाँ सुप्त हो जाती है और इन्द्रियकी सुप्तिके कारण सोने वालेको विदित नही रहता कि मैं क्या कर रहा हू? तो किसी-किसी समयमे विकल्पो द्वारा यह कुछ अनुभव करता है, सो यह योगी मुनि स्वप्नमे भी प्रभुका ध्यान रखता है।

तस्य लोकत्रयैश्वर्यं ज्ञानराज्य स्वभावजम् ।
ज्ञानत्रयजुषा मन्ये योगिनामप्यगोचरम् ।।२०४९।।

प्रभुका परम ऐश्वर्य—प्रभुका तीन लोकका ईश्वरत्व कितना महान है वह स्वरूपदृष्टिसे विदित होता है। सभी जीवोको सुख दुःख दे, उनसे पाप पुण्य करायें, उन्हे उसका फल दें ऐसी व्यग्रता तो होती नही है प्रभुमे। तब फिर महिमा क्या जानी जाय? अज्ञानी लोग तो इसमें महिमा समझते है कि प्रभु हमपर नाराज हो जाये तो हमारा बिगाड कर दे, ऐसी बात चित्तमे हो तो वे प्रभुकी महत्ता जानते हैं, किन्तु ऐसा तो है नही। प्रभुकी महत्ता स्वरूपदृष्टिसे जानी जाती है। रागद्वेषकी अवस्थाका अभाव होनेसे आत्मामे वह ऋद्धि समृद्धि उत्पन्न होती है जिसका चमत्कार विलक्षण है। समस्त लोक जिनके ज्ञानमे प्रतिबिम्बित हो, इससे